* श्री गणेशाय नमः *



गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुष्पम्

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

(श्रीकृष्णजन्मखण्डात्मकम्)

तस्य

द्वितीयो भागः

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्"

(मत्स्यपु०)

राधाकृष्ण मोर

५, क्लाइव रो, कलकत्ता

सम्वत् २०१२] [सन् १९५५



Gurumandal Series No. XIV.

Brahma Vaivartta Puranam

(Containing Shri Krishna Janma Khanda)

BY

SHRIMANMAHARSHI VEDAVYAS

Volume II

5, Clive Row,
Calcutta.

Vikram Era. 2012 | First Edition 5000 | Christian Era. 1955

Printed by :
Gopal Printing Works,
87/A, Raja Dinendra St.,
Calcutta-6.

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

अध्यायः	विषय	पृष्ठांक
१	श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम्	५२३

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

देवर्षि नारद का भगवान् नारायण से पुराणविषयक प्रश्न

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे ब्रह्मन् प्रथम ब्रह्मखण्ड ब्रह्मा के मुखारविन्द से श्रवण किया। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से शीघ्र ही आपके पास आकर अमृतखण्ड से भी परम श्रेष्ठ प्रकृतिखण्ड को सुना फिर जन्म-मरण के जाल से छुड़ानेवाले गणपतिखण्ड को सुना परन्तु मेरा मन तृप्त नहीं हुआ क्योंकि मैं और भी विशेष सुनने की इच्छा रखता हूं। अतः मनुष्यों के जन्मादि को खण्डन करनेवाला, सम्पूर्ण तत्त्वों का प्रदीप, कर्मों को नष्ट करनेवाला, तत्काल वैराग्य पैदा करनेवाला, भवरोग से छुड़ानेवाला, मुक्ति का कारण, संसाररूपी समुद्र से पार लगानेवाला, कर्म के उपभोग रोगों को नष्ट करने में रसायनरूप भगवान् श्रीकृष्ण के कमलरूपी चरणों की प्राप्ति में सोपान (सीढ़ी) रूप वैष्णवों का जीवन-धन और संसार को परम पवित्र करनेवाला श्रीकृष्णजन्मखण्ड शरण में आये हुए मुझ शिष्य को विस्तारपूर्वक कहिये कि किसकी प्रार्थना से पूर्णकला से युक्त स्वयं परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण इस महीतल (पृथ्वी) पर, किस युग में, किस कारण से तथा कहाँ अवतरित हुए ? भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वासुदेवजी कौन थे तथा माता देवकी कौन थी, भगवान् का जन्म किस कुल में हुआ ? कीटतुल्य

कंस से भगवान् को भय कैसे हुआ तथा कंस के भय से सूतिकागृह से गोकुल गये कैसे ? भगवान् हरि ने गोप वेष से गोकुल में क्या किया एवं गोपियों के साथ कहाँ विहार किया ? कौन गोप थे कौन गोपियाँ थीं, कौन यशोदा थीं कौन नन्द थे तथा उन्होंने क्या पुण्य किया था ? गोलोकवासिनी पुण्यवती राधा व्रज में व्रजकन्या होकर भगवान् हरि की प्रियतमा कैसे हुई ? गोपियों ने दुराराध्य भगवान् ईश्वर को कैसे प्राप्त किया एवं भगवान् कृष्ण उनको छोड़कर पुनः मथुरा क्यों गये ? पृथ्वी का भार हरण कर क्यों कर अपनेधाम को प्रस्थान किया ? हे महाभाग ! ऐसे उत्तम श्लोक भगवान् का गुणानुवाद वर्णन कीजिये। हरि भगवान् की कथा संसाररूपी समुद्र से पार लगानेवाली नौका है तथा भोगरूपी बेड़ियों के क्लेश को छेदन करनेवाली कैंची है एवं पापरूपी इन्धन (लकड़ी) को जलाने में जलती हुई अग्नि की ज्वाला है और सुननेवाले पुरुषों के करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करनेवाली है। हे कृपानिधे ! मुझ भक्त शिष्य को ज्ञान दीजिये।

पिताजी द्वारा प्रेषित ज्ञानप्राप्ति के निमित्त आपके पास आया हूं।

नारदजी के प्रश्न को सुनकर भगवान् नारायण ने कहा कि हे नारद ! तुम धन्य हो, मैंने जान लिया है कि तुम पुण्यराशि की ज्वलन्त मूर्ति हो तथा संसार को पवित्र करने के लिये ही भ्रमण करते हो। तुम जीवन्मुक्त हो एवं भगवान् गदाधर के शुद्ध भक्त हो। सम्पूर्ण वसुन्धरा को अपने चरणों की रज से पवित्र करते हो। इसी कारण से तुम्हारी निर्मल बुद्धि हरि भगवान् की सुमाङ्गलिक कथा के सुनने में उत्सुक है। जहाँपर हरिभगवान् की कथा होती है वहाँ सब देवता रहते हैं एवं सब ऋषि-मुनि तथा अखिल तीर्थ निवास करते हैं। कथा सुनने के उपरान्त वे निरापद स्थान को चले जाते हैं तथा जहांपर कृष्णकथा होती है वह स्थान तीर्थ होजाता है। भगवान् कृष्ण की कथा कहनेवाला अपने सैकड़ों पुरुषों (पीढ़ियों) का उद्धार कर सुननेवाले के सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है। पूछनेवाला तो प्रश्नमात्र से ही अपने कुल को तथा स्वयं को पवित्र करता है एवं

श्रोता श्रवणमात्र से अपनेको और अपने बान्धवों को पवित्र कर देता है। सौ जन्म के तप से पवित्र हो मनुष्य भारतवर्ष में जन्म लेता है फिर यहाँ आकर हरिभगवान् की कथारूपी अमृत को पानकर जन्म को सफल बनाता है। भगवान् की पूजा, वन्दना, मन्त्रजप, भगवान् के चरणारविन्दों का सेवन, स्मरण, कीर्त्तन, निरन्तर भगवद् गुणानुवाद का श्रवण, सम्पूर्ण कर्मों को प्रभु में निवेदन करना और दास्य भाव ये भक्ति के नौ लक्षण हैं। इस तरह जो भगवान् में संलग्न हो जाता है उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता तथा उसके घर काल (यम) नहीं आता है; जैसे, गरुड़ के पास सर्प नहीं आते हैं। जो मनुष्य हरि भगवान् की कथा श्रवण करता है उसको सम्पूर्ण अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा उस पुरुप के चारों तरफ भगवान् का सुदर्शनचक्र रात-दिन भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से उसकी रक्षा के लिये चक्कर दिया करता है। भगवद्भक्त के समीप में यमराज के दूत स्वप्न में भी नहीं आते हैं; जैसे, जलती हुई अग्नि को देखकर शलभ (टिड्डियां) पास नहीं जाती हैं। इस प्रकार हरिकथा की महत्ता को कहकर भगवान् नारायण ने महर्षि नारदजी से श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन प्रारम्भ किया।

२ श्रीदमा-राधाकलहवर्णनम् ५२७

भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा कि हे देवर्षे! भगवान् श्रीकृष्ण जिसकी प्रार्थना से इस भूमण्डल पर आये एवं जो-जो कार्य कर अपने धाम को गये, पृथ्वी के भार उतारने का उपाय एवं दुष्टों के वध का सफल प्रयत्न अच्छी तरह सम्पूर्णतया तुम्हें कहूंगा। जिस समय गोप वेष से भगवान् श्रीकृष्ण का गोकुल में आगमन गोपालिका (ग्वालिन) राधा के निमित्त हुआ वह तुमसे कहता हूँ सुनो। श्रीदामा और राधा की कलह। राधा के शाप से श्रीदामा का शङ्खचूड़ होना एवं श्रीदामा के शाप से राधा का मानवीय योनि में व्रज में व्रजाङ्गना रूप में जन्म

लेना। श्रीदामा के शाप से भयभीत हुई राधा का भगवान् श्रीकृष्ण से कहना कि मुझे श्रीदामा के शाप से गोपीरूप बनना होगा। हे भवभञ्जन! मैं क्या उपाय करूँ, कहिये। मैं आपके विना जीवन को कैसे धारण करूँगी। आपके बिना एक क्षण भी सौ युग के समान है। हे नाथ! मैं तो रात-दिन चक्षुचकोरों से आपके अमृतपूर्ण मुख को पीती रहती हूं। आप ही मेरी आत्मा हो, प्राण हो, जीवन हो एवं परम धन हो। मैं आपके विना एक क्षण भी नहीं रह सकती। भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा के वचन सुनकर कहा कि मैं वाराह कल्प में महीतल (पृथ्वी) पर अवतरित होऊँगा तब तुम्हें हृदयेश्वरी बनाकर निर्भय कर दूँगा। मैंने अपने साथ में पृथ्वी पर तुम्हारा जन्म भी निरूपित किया है। व्रज में जाकर वन में विचरण करो, मेरे रहते तुम्हें क्या भय है? ऐसा कहकर भगवान् हरि ने राधा को सान्त्वना दी। इस कारण भगवान् जगन्नाथ गोकुल में नन्दजी के यहां गये नहीं तो उन्हें क्या भय था वे तो स्वयं भय का अन्त करनेवाले हैं। माया और भय के छल से राधा के पास भगवान् का जाना एवं गोपवेष धारण कर उनके साथ विचरण करना गोपाङ्गनाओं के साथ प्रतिज्ञा पालन करने के लिये ब्रह्माजी की प्रार्थना से महीतल पर अवतार लेना तथा पृथ्वी का भार हरण कर अपने धाम को प्रस्थान करना। तदनन्तर नारद का भगवान् से प्रश्न कि राधा के साथ श्रीदामा की कलह क्यों हुई सो संक्षेप से कहिये। भगवान् नारायण ने नारद को उत्तर दिया कि एक समय गोलोक में भगवान् हरि राधा के साथ रासमण्डल में विहार कर उसको अतृप्त ही छोड़कर अन्य विरजानामक गोपी के यहां शृङ्गारार्थ चले गये। वृन्दारण्य में विरजा नामक गोपी जो रूपलावण्य में राधिका के समान थी एवं उसकी अवस्था की सुन्दर रूपवाली शतकोटि गोपियाँ थीं। उस विरजा गोपी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर राधिका की सखियों ने जाकर राधा से सारी बातें कही कि श्रीकृष्ण तो विरजा नामक गोपी के साथ हैं। ऐसा सुनते ही राधिका क्रोधित हो बोली यदि तुम लोग सत्य कहती हो तो मेरे

साथ चलो। राधिका के ऐसे वचन सुनकर मद से युक्त गोपियों ने हाथ जोड़कर कहा कि हम आपको विरजा सहित प्रभु को दिखा देंगी। तत्पश्चात् श्रीराधिका त्रिषष्टिशतकोटि गोपियों के साथ जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण उस गोपी के साथ थे वहां गई एवं शीघ्र ही रथ से उतरकर सहसा उस रत्नमण्डप में गई। वहां पर लक्ष गोपों से परिवृत द्वारपाल को देखा जो श्रीकृष्ण का प्रिय श्रीदामा नाम का गोप था। जिसे देखते ही भगवती राधिका ने क्रोधित हो कहा कि तुम अति लम्पट हो दूर हटो। तुम्हारा प्रभु एकान्त में किस सुन्दरी के साथ है उसे देखूँगी। राधिका के ये वचन सुनकर निःशङ्क उस वेत्रपाणिवाले द्वारपाल ने वलपूर्वक राधा को रोका। उनके कोलाहल शब्द को सुनकर राधा को क्रोधित जान भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान हो गये। उधर उस विरजा नामक गोपी ने भी राधिका के शब्द से भगवान् को अलक्षित देख स्वयं राधा के भय से आर्त्त हो योग से प्राणों को त्याग दिया तथा तत्काल ही नदीरूपा हो गई।

३ सप्तसमुद्रोत्पत्तिः राधाश्रीदाम्नोः शापः ५३१

राधिका ने उस मण्डप में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण को अलक्षित देखा तथा विरजा को नदीरूप में देखकर पुनः घर प्रस्थानकिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने विरजा को नदीरूप में देखकर उसके तीर पर उच्चस्वर से रुदन करने लगे एवं कहा कि तुम नदी की अधिष्ठात्री देवी मूर्तिमती बन मेरे आशीर्वाद से स्त्रियों में श्रेष्ठ रूपवाली बनो तथा पहिलेवाले रूप से भी अधिक रूपवती होओ। भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसा कहते ही उसने जल से उठकर नवीन शरीर धारण कर भगवान् हरि के आगे साक्षात् राधा का सा रूप वना लिया। भगवान् ने उसको रूपवती देखकर प्रेमाधिक्य से आलिङ्गन किया। तदनन्तर विरजा ने रजोयुक्त हो भगवान् के अमोघ वीर्य को धारण कर गर्भवती हुई। उसने सात सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। एक समय भगवान् हरि विरजा के साथ स्थित थे उसी समय बड़े भाइयों से पीड़ित कनिष्ठ पुत्र

आकर माता की गोद में बैठ गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण द्वारा विरजा का त्याग एवं राधागृह गमन। श्रीकृष्ण वियोग में विरजा का विलाप एवं अपने पुत्र को शाप कि तुम लवण समुद्र बनोगे तथा तुम्हारा जल कोई भी प्राणी नहीं पवेगा। तत्पश्चात् अन्य छहों पुत्रों को भी महीतल पर समुद्र होने का शाप दिया एवं कहा कि तुम्हारी एक जगह स्थिति नहीं होगी। इनके जल से सृष्टि में अन्न होगा एवं सातों के नाम—लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध, और जल ये सातों समुद्र सप्तद्वीपवती पृथ्वी पर व्याप्त हैं तथा उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने हैं। राधा और कृष्ण का संवाद। कुपित राधा का कृष्ण से कहना कि तुम्हें तो विरजा ही प्रिय है जो नदीरूप हो गई है अतः तुम भी नद रूप होने के होग्य हो। अपनी-अपनी जाति में ही विशेष प्रेम होता है जैसे—

नदस्य नद्या सार्द्धञ्च सक्रमो गुणवान्भवेत्।
स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात्॥

राधा और श्रीदामा का संवाद।

४	नारीणां रक्षकनिरूपणम्	५३७
	मन्त्रादिमङ्गलवस्तूनां भूमिस्थापननिषेधः	५३९
	ब्रह्मादिकृत भगवत्स्तुतिः	५४१
	गोलोकवर्णनम्	५४३

नारदजी का भगवान् नारायण से पुनः प्रश्न कि हे वेदविदांवरः (वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ) भगवान् कृष्ण किसकी प्रार्थना से एवं किस हेतु पृथ्वी पर आये यह वर्णन कीजिये। तब भगवान् नारायण ने नारद से कहा कि पहिले वाराह कल्प में वसुन्धरा पापियों के भार से दुःखित हो ब्रह्माजी की शरण में गई एवं साथ में असुरों से संतप्त देवता भी ब्रह्म की सभा में गये। ऋषि, मुनि और सिद्धगणों से

सेवित कृष्ण नाम को स्मरण करते हुए ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ब्रह्माजी को देखकर भक्तियुक्त देवताओं सहित वसुन्धरा ने प्रणाम कर अपना सम्पूर्ण दुःख निवेदन किया। उसको अश्रुपूर्ण देखकर जगद्धाता ब्रह्माजी ने कहा कि तुम क्यों ऐसी अवस्था में हो एवं क्यों स्तुति करती हो ? हे भद्रे ! तुम्हारे आने का कारण कहो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम सुस्थिर हो जाओ मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ? इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी ने आदरपूर्वक देवताओं से कहा कि मेरे पास आने का क्या कारण है कहो ? तब देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा वसुधा (पृथ्वी) भार से व्याकुल है एवं हमलोगों को दैत्यों ने तङ्ग कर रक्खा है। आप ही संसार के रचयिता हो अतः हमारी शीघ्र ही इस दुःख से निष्कृति कीजिये। देवताओं के वचनों को सुनकर ब्रह्माजी ने पृथ्वी से पूछा कि हे पद्मविलोचने पृथ्वि! तुम किसके भार को वहन करने में असक्त हो यह बताओ तुम्हारा कल्याण होगा। ब्रह्माजी के वचन को सुनकर भगवती पृथ्वी ने कहा कि हे तात! मैं अपनी मानसी व्यथा आपसे कहती हूं। विना विश्वासी बन्धु के अपना दुःख कहने में उत्सुक नहीं हूं क्योंकि स्त्रीजाति अवला है एवं निरन्तर अपने बन्धुओं से रक्षणीय है, वे रक्षक जनक, (पिता) स्वामी और पुत्र हैं। आप तो संसार के स्रष्टा हो अतः आपको कहने में कोई भी लज्जा नहीं है। अब मैं जिनके भार से पीड़ित हूं आप सुनिये—

कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः। येषां महापातकिनामशक्ताभारवाहने ॥
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः। श्राद्धहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता ॥
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः। ये न कुर्वन्ति तेषाञ्च न शक्ता भारवाहने ॥
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः। निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नः स्थाप्यहारि तेषां भारेण पीडिता
कल्याणयुक्तनामानि हरेर्नामैकमङ्गलम्। कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीडिता ॥
जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः। शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीडिता

पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च । येये मूढ़ा निहन्तार स्तेषां भारेण पीडिता
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिं हरिकथाभक्ति तेषां भारेण पीडिता
शङ्खचूड़स्य भारेण पीड़िताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता

जो कृष्णभक्ति से विमुख तथा भगवद्भक्तों का निन्दक है उन महापापियों के भार को वहन करने में असमर्थ हूं। जो अपने धर्म और आचार से हीन है एवं नित्यकर्मों से विवर्जित हैं तथा वेदों में जिनकी श्रद्धा नहीं है उनके भार से पीड़ित हूं। जो पुरुष पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र एवं अपने आश्रितवर्ग का पोषण नहीं करते हैं तथा जो मिथ्यावादी हैं, दया और सत्य से रहित हैं, गुरु और देवताओं के निन्दक हैं उनके भार से पीड़ित हूं। मित्र द्रोही, कृतघ्न, मिथ्या साक्षी देनेवाला, विश्वासघाती एवं धरोहर को पचानेवालों के भार से पीड़ित हूं। हरिभगवान् के कल्याणयुक्त नामों के विक्रय करनेवालों के भार से पीड़ित हूं। जीव को मारनेवाले, गुरुद्रोही ग्रामयाजी (भिखारी), लुब्धक, शवदाही (श्मशान में) शूद्रभोजी, पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत और नियमों को भंग करनेवालों के भार से पीड़ित हूं। जो मनुष्य गो, विप्र देवता और भगवद्भक्तों से सदा ही द्वेष करते हैं एवं जिनकी भगवान् हरि में तथा भागवती कथा में भक्ति नहीं है मैं उनके भार से पीड़ित हूं। ऐसा कहकर वसुधा बारम्बार रुदन करने लगी। उसके रुदन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारा भार दूर कर दूँगा। हे वसुन्धरे! कार्यसिद्धि उपायों से होती है तुम्हारा भार भगवान् दूर करेंगे।

यन्त्रं मङ्गलकुम्भञ्च शिवलिङ्गञ्च कुङ्कुमम् । मधुकाष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्
खड्गंगण्डकखड्गञ्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम् ॥

शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमाजलम् ।
शङ्खं प्रदीपमालाञ्च शिलामर्च्याञ्च घण्टिकाम् ॥

निर्माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिन्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥
गोरोचनाञ्च मुक्ताञ्च शुक्तिं माणिक्यमेवच । पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा ॥

रजतं काञ्चनञ्चैव प्रवालरत्नमेव च। कुशाद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् ॥
त्वंयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढ़ाश्चैतानि सुन्दरि।
तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥

हे सुन्दरि! देवयन्त्र, मङ्गलकलश, शिवलिङ्ग, कुङ्कुम (रोली), मधु, काष्ठ, चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ की मृत्तिका, खड्ग (तलवार), गैण्डे की खड्ग, स्फटिकमणि, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, शालग्राम भगवान् की मूर्ति, शङ्ख, तुलसीपत्र, भगवान् का चरणोदक, दीपक, माला, घण्टिका (टाली,) भगवान् के चढ़ाया हुआ नैवेद्य, हरितवर्ण की मणि, ग्रन्थियुक्त यज्ञसूत्र, दर्पण, श्वेत चामर, गोरोचन, मोती, सीप, माणिक्य, पुराण, वेद, अग्नि, कर्पूर, परशु, चांदी, स्वर्ण, सूंगा, रत्न, कुशा, द्विज, तीर्थ का जल, गव्य (दूध, दही, एवं घृत), गोमूत्र, गोबर इन वस्तुओं को जो मूढ़ तुम्हारे पर स्थापित करता है वह निश्चय दश हजार वर्ष तक कालसूत्र नरक में वास करता है। इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी देवता और पृथ्वी के साथ जगत् को धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर के यहां कैलाश में गये। कैलाश की सुन्दरता का वर्णन। वहांपर अक्षयवट की मूल में व्याघ्रचर्म को धारण कर दक्षकन्या सती की अस्थियों के बने आभूषणों को पहने नाना सिद्ध योगियों से सेवित एवं अपने पांचों मुखों से माङ्गलिक हरि के नामों का उच्चारण करते हुए आशुतोष भगवान् शंकर को देखकर देवताओं सहित ब्रह्माजी ने प्रणाम किया तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। इसे सुनकर माता पार्वती एवं भगवान् शंकर दुःखित हुए। तत्पश्चात् उनको आश्वासन देकर वसुन्धरा को देवताओं सहित कैलाश में छोड़ ब्रह्माजी को साथ ले भगवान् शंकर शीघ्रता से धर्मराज के मन्दिर में गये वहां से धर्मराज को साथ लिया तथा वे सब भगवान् विष्णु के पास वैकुण्ठ में गये। वहाँ रत्नसिंहासन पर स्थित रत्नालङ्कार से भूषित पीतवस्त्र धारण किये हुए परमानन्दरूप भगवान् विष्णु को देख सब ने भक्ति से प्रणाम किया और ब्रह्माजी, शङ्कर तथा धर्म ने बहुत सुन्दर रूप में भगवान् की

स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हुए भगवान् ने उनसे कहा कि आपलोग अपनी-अपनी कलाओं से गोलोक में अवतीर्ण होइये आपकी कार्यसिद्धि होगी मैं भी बाद में आप सब की इष्टसिद्धि के लिये वहीं अवतार लेकर कार्य सम्पादन करूँगा। तदनन्तर वे सब भगवान् को प्रणाम कर जरामृत्यु से रहित गोलोक में चले गये। गोलोक का विशद वर्णन।

५ राधाप्रसादवर्णनम् ब्रह्माकृतकृष्णस्तोत्रम् ५४७

ब्रह्मादि देवतागण ने सम्पूर्ण गोलोक को देखकर प्रसन्न मन से राधा के भवन के प्रधान द्वार पर जाकर जहां पीतवस्त्र धारण किये हुए रत्नभूषणों से भूषित वीरभानु नामक द्वारपाल को देखकर अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। जिसे सुनकर द्वारपाल ने निःशङ्क हो कहा कि मैं विना भगवान् की आज्ञा के आपलोगों को भीतर जाने देने में असमर्थ हूं। तव भगवान् के स्थान में किङ्करों को भेज उनकी आज्ञा से देवता भीतर गये एवं भगवान् से वार्तालाप कर फिर दूसरे द्वार पर गये वहां भी चन्द्रभानु नामक द्वारपाल को देख उससे बताकर आगे तीसरे द्वार पर गये। उन्होंने इसी प्रकार राधाभवन के सोलह द्वारों की अपूव छटा देखी अन्त में, करोड़ों सूर्यों की कान्ति के सदृश तेजसमूह को देखा जो सर्वव्यापी, सवका मूल एवं नेत्रों को रोधन करनेवाला था उस तेजःस्वरूप को देख ध्यानतत्पर हुए देवता परमभोक्ति से नतमस्तक हो प्रणाम कर स्तवन करने लगे। ब्रह्माजी, शङ्कर एवं धर्मराज ने भगवद्गुणानुवाद से परिपूर्ण बहुत सुन्दर स्तुति की। ब्रह्माकृत स्तुति का महत्त्व वर्णन। इस स्तोत्र को पढ़नेवाले को निश्चल भक्ति की प्राप्ति होती है एवं अणिमादि सिद्धियां तथा वाक्सिद्धि और मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति होती है।

६.	ब्रह्मादिकृतलक्ष्मीनारायणस्तोत्रम्	५५४
	भगवद्भक्तमहत्त्ववर्णनम्	५५७
	देवानां भूमौ जन्मग्रहणम्	५५६
	शङ्करपार्वतीसम्वादवर्णनम्	५६३
	श्रीकृष्णराधिकासम्वादवर्णनम्	५६५

ब्रह्मा, शंकर और धर्मराज द्वारा लक्ष्मीनारायण भगवान् की स्तुति। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा कि हे देवगण ! मेरे रहते हुए आपलोगों को कोई भी चिन्ता नहीं है। आपलोगों के अभिप्राय को मैं जानता हूं। संसार में जितने भी शुभ, अशुभ छोटे और वड़े कार्य समय से ही होते हैं "समय एव करोति बलाबलम्" अपने समय पर ही वृक्ष फल देते हैं। इस पृथ्वी पर वहुत-से राजा, मनु, इन्द्रादि देवता सव अपनी-अपनी कीर्ति एवं पाप, पुण्य, यश को लेशमात्र छोड़कर कालकवलित हो गये। हे देवतो ! "ब्रह्मादि तृण पर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः" ब्रह्मा से तृण पर्यन्त सव जगत् का मैं स्वामी हूं। मैं ही संसार की रचना करता हूं तथा पालन एवं संहार भी मैं ही करता हूं। लेकिन भगवद्भक्तों के संहार करने में समर्थ नहीं हूं क्योंकि भक्त मेरे अनुगामी हैं तथा मेरे पदार्चन में तत्पर हैं और मैं उनकी रक्षा के लिये निरन्तर उनके पास रहता हूं। संसार में बारम्बार सम्पूर्ण चीजें उत्पन्न होती हैं परन्तु मेरे भक्त कभी भी नष्ट नही होते हैं। जैसे—

सर्वेषामपि संहर्ता स्रष्टा पाताऽहमेव च। नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारो नित्यदेहिनाम्
भक्ता ममानुगा नित्यं मत्पादार्चनतत्पराः। अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे॥

सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः।
न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः॥

भक्तगण अपने स्त्री, पुत्र एवं अपने मित्रों को छोड़ दिन-रात मेरे को भजते हैं

और मैं भी आपलोगों को छोड़कर उनको अहर्निश भजता हूं। इसलिये हे देववृन्द! आपलोग अपने-अपने अंशों से शीघ्र पृथिवी पर अवतरित होइये और मैं भी शीघ्र ही पृथ्वी पर आऊँगा। तदनन्तर देवताओं का पृथ्वी पर जन्मग्रहण। शङ्कर और पार्वती का पृथ्वी पर अवतरित होने में संवाद जिसमें शंकर ने कहा हे पार्वति! तुम जाम्ववान् के घर जन्म लो। तदुपरान्त पार्वती को अभय दान। श्रीकृष्ण और राधा का संवाद कथन।

७	श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम्	५७०
	श्रीकृष्णजन्मवर्णनम्	५७१
	ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तवनम्	५७३
	श्रीकृष्णस्य वरप्रदानम्	५७५

महर्षि नारद का भगवान् नारायण से यह प्रश्न कि महत्पुण्य को देनेवाला जन्म, मृत्यु और जरा को दूर करनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म वताइये। वसुदेवजी किसके पुत्र थे एवं देवकी किसकी कन्या थी? वसुदेव तथा देवकी कौन थी एवं उनके विवाह का वृत्तान्त कहिये। कंस ने देवकी के छै पुत्रों को क्यों मारा एवं भगवान् हरि का जन्म किस दिन हुआ मुझे कहिये। वसुदेवजी और देवकी ने पूर्वजन्म के पुण्य फल से ही श्रीहरि को पुत्ररूप में प्राप्त किया। देवमीढ़ के मारिषा नाम की स्त्री में वसुदेवजी उत्पन्न हुए जिनके जन्मसमय में देवताओं ने दुन्दुभियां वजाईं जिससे वसुदेवजी का नाम आनकदुन्दुभि हुआ। यदुवंशी आहुक के ज्ञानसिन्धु देवक हुआ एवं देवक के देवकी नाम की कन्या हुई। यदुकुलाचार्य गर्गजी ने शास्त्र विधि से देवकी का सम्वन्ध वसुदेवजी से करवा दिया। विवाह के दहेज में देवक ने सहस्रों घोड़े, स्वर्णपात्र, अलंकृत सैकड़ों दासी एवं नानाप्रकार के द्रव्य, मणि रत्नादि दिये, उनको ग्रहण कर रथ में

वैठ विदा हुए उस समय कंस को सम्बोधित कर आकाशवाणी हुई कि हे राजेन्द्र ! तुम क्या प्रसन्न हो रहे हो हितकारक सत्य वचन सुनो। देवकी का आठवां गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण वनेगा। उन देववाक्यों के भय से क्रोधित हुआ पापी कंस तलवार हाथ में लेकर देवकी को मारने के लिये तैयार हुआ। वहिन को मारने के लिये उद्यत हुए कंस को नीतिशास्त्र में विशारद नीतिज्ञ वसुदेवजी ने कहा कि तुम राजनीति को नहीं जानते हो, मेरी हितकर बातें सुनो जो दोषों को नष्ट करनेवाली, यश को देनेवाली एवं शास्त्रोक्त हैं। हे राजन्! इसके आठवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु है तव इसे मारकर दुष्कीर्ति एवं नरक की प्राप्ति क्यों करते हो? क्षुद्र जन्तुओं एवं हिंसकों को मारने से मृत्युकाल में एक कर्षापण (८० रत्ती ताम्र) देने से छुटकारा हो सकता है और अहिंसक को मारने से तो सौ गुना प्रायश्चित्त वतलाया है तथा मनु ने विशिष्ट जन्तुओं एवं पशुओं को कालविशेष में मारने पर सौगुना पाप कहा है। म्लेच्छ जाति के मनुष्यों को मारने से सौ गुना पाप होता है। सौ म्लेच्छों को मारने से जो पाप होता है एक श्रेष्ठ शूद्र को मारने से होता है। इसी प्रकार नाना पापों को वतलाकर कहा कि जितना पाप ब्रह्महत्या से होता है उतना ही पाप स्त्री के वध में होता है। सौ स्त्रियों के वध से जो पाप होता है उतना ही वहिन के वध से होता है। इसलिये हे कुलदीपक! इसे छोड़ दो। इसके गर्भ से जो संतान होगी वह आपको देदिया करूंगा। तदुपरान्त कंस ने देवकी के छः पुत्रों को क्रमशः मार दिया। देवकी के सप्तम गर्भ को माया ने आकर्षण कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया तब रक्षकों ने कंस से कहा कि देवकी के गर्भस्राव हो गया है। इस कारण से उस वालक का नाम सङ्कर्षण हुआ। देवकी के आठवें गर्भ में भगवान् का प्रवेश। गर्भगत भगवान् की जगद्योनि इत्यादि ४२ नामों से देवताओं द्वारा स्तुति। भगवान् का भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र जयन्ती योग में जन्म हुआ। वहां पर भगवान् ने अपना अति सुन्दर रूप नवीन मेघों के समान श्याम पीताम्बर

धारण किये हुए मणिरत्न आदि के भूषणों से विभूषित कौस्तुभमणि से अलंकृत किशोर अवस्थावाला शान्त स्वरूप दिखाया। जिसे देखकर परमभक्ति से नतमस्तक हो वसुदेव तथा देवकी ने गद्गद हो भगवान् की स्तुति की। वसुदेवजी की प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा कि तुम्हारी तपस्या का ही फल है जो मैं तुम्हारे पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूं। तुम पहिले तपस्वियों में श्रेष्ठ सुतपा नामक प्रजापति थे उस समय तुमने पत्नी से युक्त हो मुझे तपस्या से प्रसन्न कर मेरे समान पुत्र की याचना की तब मैंने तुम्हें वर दिया कि तुम्हारे मेरे जैसा पुत्र होगा। वरदान के अनन्तर मैंने सोचा त्रिलोकी में मेरे समान कोई नहीं है इस हेतु मैं ही पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूं। मुझे तुम पुत्रभाव से भजो चाहे ब्रह्मभाव से अन्त में मुझे प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाओगे। अब तुम शीघ्र ही मुझे व्रज के यशोदाभवन में स्थापित कर वहां से माया को यहां लाकर स्थापित करो। ऐसा कहकर भगवान् हरि बालरूप हो गये। तदनन्तर वसुदेवजी बालक को लेकर नन्दजी के यहां गये जहां लतिकागृह में सोई हुई यशोदा को देख वहां पर स्थित कन्या को उठाकर भगवान् को वहीं छोड़ वापस कारागृह में आगये। पश्चात् उस कन्या को ग्रहण कर कंस मारने को उद्यत हुआ उस समय वसुदेव एवं देवकी ने कहा कि हे कंस तुम नीतिशास्त्र में विशारद हो अतः हमारे नीतियुक्त सत्य वचन सुनो। तुमने हमारे छः पुत्रों को मारा है हे तात! तुमको जरा भी दया नहीं आई। अब यह आठवीं कन्या हैं इसे मारकर क्या तुम पृथ्वी पर महैश्वर्य प्राप्त करोगे ऐसा कहकर वसुदेव देवकी कंस के सामने रोने लग गये। तब कंस ने कठोरतापूर्वक कहा मेरे वचनों को सुनो। भाग्य से तृण भी पर्वत को नष्ट कर सकता है, मच्छर हाथी को और छोटा कीड़ा सिंह को मार सकता है इत्यादि कहकर कंस ने बालिका को मारने की इच्छा की। तब वसुदेव ने कहा इस निरपराध बालिका को क्यों मारते हो तदनन्तर कंस ने उसको छोड़ दिया। एवं वसुदेव देवकी ने उसको ग्रहण कर ब्राह्मण को उस बालिका के निमित्त धन दिया। वह भगवान् कृष्ण की बहिन हुई जिसका रुक्मिणी के

विवाह के समय में दुर्वासाजी के साथ पाणिग्रहण हुआ। यह भगवान् कृष्ण का जन्मचरित्र वर्णन जन्म, मृत्यु, जरा के विघ्न को नष्ट करनेवाला और पुण्य को देनेवाला है।

८ जन्माष्टमीव्रतमाहात्म्यवर्णनम् ५७७

सषोडशोपचारं हरिपूजाविधानवर्णनम् ५७९

जन्माष्टमीव्रते पारणनिर्णयवर्णनम् ५८१

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न हे प्रभो! व्रतों में उत्तम व्रत जन्माष्टमी व्रत का फल तथा जयन्ती योग का सामान्यतया फल कहिये। इस व्रत को न करने से क्या दोष होता है? एवं जयन्ती में उपवास करने से क्या फल मिलता है एवं व्रत का पूजाविधान, यम नियम, उपवास और पारण का विधान क्या है? उत्तर में भगवान् नारायण ने कहा कि भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को सावधान होकर हविष्यान्न भोजन करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्म कर व्रतोपवास का सङ्कल्प करे। मन्वादि दिवस की प्राप्ति में स्नान-पूजादि का जो फल होता है उससे करोड़गुना फल भाद्रपद की कृष्णाष्टमी का होता है। जन्माष्टमी को जो अपने पितरों के लिये जलमात्र भी देता है उसको सौ वर्ष तक गयाश्राद्ध करने का फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है। नित्यक्रिया के अनन्तर सूतिकागृह का निर्माण; खड्ग से युक्त रक्षकों की नियुक्ति, बहुविध द्रव्य, बाल छेदन की कैंची एवं यत्नपूर्वक धात्री स्वरूपा नारी की नियुक्ति करे। पश्चात् पादप्रक्षालन कर स्वच्छ वस्त्र पहिन आसन पर स्थित हो स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करे तथा वसुदेव देवकी, यशोदानन्द, रोहिणी बलदेव, षष्ठीदेवी, वसुन्धरा, ब्राह्मणी, अष्टमी, स्थान देवता एवं अश्वत्थामा सहित सप्तचिरंजीवों का आवाहन कर भगवान् हरि का ध्यान करे। फिर भगवान् की षोडशोपचार से पूजा करे। पूजनोपरान्त भक्तिभावयुक्त हो भगवान् के जन्म-चरित्र की कथा सुने तथा रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल आह्निक कर्म कर

श्रीहरि की पूजा करे तदुपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करावे। पुनः व्रतकाल व्यवस्था पर नारदजी का प्रश्न। भगवान् नारायण का उत्तर कि अर्ध रात्रि में यदि एक पाद भी अष्टमी हो तो वही मुख्यकाल है एवं उसी में भगवान् हरि का जन्म है। वेदविदों से सम्मत यही प्रधानकाल है। सप्तमी सहित यदि अष्टमी नक्षत्रयुक्त हो तब भी सप्तमी सहित अष्टमी वर्जनीय है। व्रत करनेवाला रोहिणी नक्षत्र के बाद पारण करे। सम्पूर्ण उपवासों में दिन में पारण करना ही श्रेयस्कर है अन्यथा फल हानि होती है। रोहिणी व्रत को छोड़ किसी भी व्रत का पारण रात्रि में नहीं करे। पारण के विषय में विशेष बात यह है :—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात् पारणं बुधः। हन्यात् पूर्वकृतं पुण्यमुपवासार्जितं फलम्
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्। तस्मात् प्रयत्नतः कुर्य्यात् तिथिभान्ते च पारणम्
महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते व्रती
षण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्याञ्च तत्र भुक्त्वा च नारद॥

शुद्ध जन्माष्टमी व्रत करनेवाले मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है एवं सप्त जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

९ यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम् ५८२

बलदेवस्य जन्माख्यानवर्णनम् ५८५

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे प्रभो! भगवान् श्रीकृष्ण को यशोदा मन्दिर में स्थापित कर वसुदेवजी के जाने पर नन्दजी ने पुत्रोत्सव के सम्बन्ध में क्या किया? गोकुल में भगवान् ने क्या किया तथा वहां पर कितने वर्ष तक स्थित रहे? भगवान् की रासक्रीड़ा और जलक्रीड़ा का विस्तार-पूर्वक वर्णन कीजिये। नन्दजी, यशोदा और रोहिणी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त एवं बलदेवजी का जन्म कहां हुआ? इसका वर्णन कीजिये। भगवान् नारायण का नारदजी को उत्तर—पूर्वजन्म में नन्दजी द्रोण नामक वसु थे और यशोदा धरा-

नामक उनकी पत्नी थी। रोहिणी सर्पमाता कद्रू थी उनका जन्मचरित्र तुम्हारे लिये कहता हूं सुनो। एक बार पत्नी सहित द्रोण ने गौतमाश्रम के निकट गन्धमादन पर्वत पर दस हजार वर्ष तक कृष्ण दर्शनार्थ तप किया परन्तु उनको भगवान् हरि के दर्शन नहीं हुए। तब वे हताश हो अग्निकुण्ड बना प्रवेश करने को उद्यत हुए। उसी काल में आकाशवाणी हुई कि तुम गोकुल में श्रीहरि को पुत्ररूप में देखोगे। तदनन्तर धरा और द्रोण का अपने घर के लिये प्रस्थान एवं भारतवर्ष में जन्म। अब देवताओं से भी सुगोप्य रोहिणीचरित्र सुनो। एक बार देवमाता अदिति ने रजोदर्शन के बाद रति की इच्छा से अपने पति कश्यपजी को याद किया एवं कामबाण से पीड़ित हुई पति के आगमन की प्रतीक्षा में घर में स्थित रही। जब उसने सुना कि कश्यपजी तो सर्पमाता कद्रू के घर हैं तब उसने सर्पमाता को शाप दिया कि तुम देवस्थान के योग्य नहीं हो अतः मानवीय योनि को प्राप्त हो जाओ। कद्रू ने जब देवमाता का शाप सुना तब उसने भी बदले में उसे मानवी योनि में जाने का शाप दिया। तत्पश्चात् कश्यपजी का अदिति के पास आना और उसकी वाञ्छापूर्ण करना। फिर अदिति को देवकीरूप में, सर्पमाता कद्रू का रोहिणीरूप में एवं कश्यपजी का वसुदेवरूप में अवतरित होना। अब बलदेवजी का आख्यान सुनो। रोहिणी, वसुदेवजी की प्रिय भार्या थी एवं वसुदेवजी की आज्ञा से कंस से डरी हुई सङ्कर्षण की रक्षा के लिये गोकुल में चली गई। उधर देवकी के सप्तम गर्भ का माया द्वारा आकर्षण एवं रोहिणी के गर्भ में स्थापना। कुछ काल बाद ब्रह्मतेज से युक्त बलदेवजी का जन्म। प्रसन्न हुए नन्दजी द्वारा ब्राह्मणों को दान एवं गोपियों द्वारा जयजयकार। अब गोकुल में भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल चरित्र सुनो। भगवान् श्रीकृष्ण को गोकुल में नन्दजी के घर में स्थापित कर वसुदेवजी के जानेपर जयजयकार से युक्त सूतिकागार में नवीन मेघ के समान कान्तिवाले अतीव सुन्दर नग्न, गृह के शिखर को देखते हुए पुत्र को देख नन्दजी बहुत हर्षित हुए। पश्चात् धात्री द्वारा शीतलजल से बालक को स्नान

करवाना एवं नालच्छेदन। हर्षित हुई गोपियों द्वारा जयजयकार तथा आशीर्वाद। नन्दजी द्वारारा सचैल स्नान एवं ब्राह्मण भोजन तथा नानाविध दान। ब्राह्मणों द्वारा वेदपाठ व स्वस्तिवाचनं। ज्योतिः शास्त्र में विशारद अनेक गणकों और वचन सिद्धों का आगमन। नन्दजी द्वारा उनका आतिथ्य। ज्योतिर्विदों द्वारा भगवान् कृष्ण का भविष्यकथन। इस प्रकार नन्दजी के घर में भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलदेवजी का बढ़ना जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है।

१० पूतनामोक्षवर्णनम् ५८७

भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म के अनन्तर स्वर्णसिंहासन पर स्थित कंस ने सभा के मध्य में आकाशवाणी सुनी कि हे महामूढ़! क्या करते हो अपने कल्याण की चिन्ता करो। तुम्हारा काल पृथ्वी पर उत्पन्न हो गया है, अब रक्षा का उपाय करो। वसुदेवजी ने तुम्हारे अन्तक पुत्र को नन्दजी को देकर वहां से कन्या ग्रहण कर तुम्हें देकर निश्चित हो गये। तुम्हारा मारनेवाला नन्दमन्दिर में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है एवं देवकी का सातवां गर्भ भी वहीं वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार आकाशवाणी सुन कंस चिन्तामग्न हो गया। तत्पश्चात् उसका पूतना को निमन्त्रित करना एवं गोकुल जाने का आदेश देना तथा कार्य के लिये कहना कि तुम अपने स्तनों को विषाक्त बनाकर शीघ्रता से शिशु को दो क्योंकि तुम माया-शास्त्र में निपुण हो एवं मनकी गति के समान चलनेवाली हो। अतः माया से मनुष्यरूप बनाकर गोकुल में जाओ तुमने दुर्वासाजी से सर्वत्र गमन का महामन्त्र प्राप्त किया है। तुम सम्पूर्ण रूपों को धारण करने में समर्थ हो। ऐसा कहकर कंस सभा में स्थित हो गया। तदनन्तर कंस को प्रणाम कर पूतना का व्रज गमन। नन्दजी के गृह में प्रवेश करती हुई पूतना को देखकर गोपियों ने उसका बहुत सम्मान किया। उसके सुन्दर रूप से चकित हुई गोपियों ने मन में कहा कि क्या पद्मालय से भगवान् श्रीष्ण को देखने के लिये दुर्गा आई है? गोपियों ने

उसे प्रणाम किया तथा कुशलक्षेम पूछ कहा कि क्या तुम साक्षात् ईश्वरी भगवती हो ? तुम्हारा स्थान कहां है क्या नाम है, यहां पर क्या काम है ? कहो। गोपियों के वचनों को सुन पूतना ने कहा मैं मथुरा की रहनेवाली विप्रपत्नी हूं। नन्दकुमार को देखने तथा आशीर्वाद देने आई हूं। इस प्रकार उसके वचन सुन यशोदा का अपने पुत्र को उसकी गोद में देना। शिशु को गोद में लेकर पूतना का बारम्बार चुम्बन करना तथा भगवान् हरि को स्तन पान कराना और यशोदा से कहना कि हे गोपसुन्दरि यह तुम्हारा बालक अद्भुत है तथा गुणों में नारायण के समान है। भगवान् श्रीकृष्ण का विषयुक्त दुग्ध का अमृत की तरह प्राणों के साथ पान करना एवं पूतना का प्राण छोड़कर पृथ्वी पर गिरना तथा उसका स्थूल देह को छोड़कर सूक्ष्म देह में प्रवेश कर दिव्य रत्नसार से निमित रथ पर आरूढ़ हो पार्षद प्रवरों से वेष्टित दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जाना। पूतना मोक्ष को देख नारदजी का नारायण से प्रश्न कि वह पुण्यवती सती राक्षसी रूप को क्यों प्राप्त हुई तथा किस पुण्य से भगवान् के दर्शन कर श्रीकृष्ण मन्दिर को गई ? तब भगवान् ने नारद से कहा कि बलि के यज्ञ में भगवान् वामन के सुन्दर रूप को देख बलिकन्या रत्नमाला ने उसपर पुत्रस्नेह किया तथा मन में कहा कि इसके सदृश मेरे पुत्र हो और मैं उसे स्तन देकर अपने वक्षःस्थल पर रक्खूँ। हरि भगवान् ने उसके मनकी बात जान कर इस जन्म में उसके स्तन पान कर मातृगति प्रदान की।

११ श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम् ५६०

तृणावर्तमोक्षवर्णनम् ५६१

एक बार नन्दगेहिनी यशोदा गृहकर्म में आसक्त बालक को गोद में लिये हुए थी। सर्वान्तरयामी प्रभुका बाल्यरूप तृणावर्त नामक दैत्य का आवागमन जानकर भारयुक्त होना। भाराक्रान्त यशोदा का गोद से बालक को त्याग कर शयन कराना तदनन्तर असुर का बालरूपधारी भगवान् कृष्ण को हवा में उड़ाते

हुए सौ योजन ले जाना तथा हरि भगवान् के चरणस्पश से प्राण त्याग कर हरिमन्दिर में जाना। अन्धकार के नष्ट होनेपर गोपगोपियों ने जब भगवान् को शयन स्थान पर नहीं देखा तब भयविह्वल हो रुदन करते हुए खोज करने लगे तब नदी के किनारे श्रीकृष्ण को देखा। नन्दजी ने घरपर लाकर मङ्गलाचरण किया। नारदजी ने नारायण से पूछा कि दुर्वासा ने पाण्ड्य देश के राजा को क्यों शाप दिया ? तब नारायण ने कहा कि पाण्ड्यदेश का राजा सहस्राक्ष हजार स्त्रियों के साथ निर्जन वन में स्थल विहार कर नदी में जलक्रीड़ा कर रहा था। इसी बीच दुर्वासा एक लाख शिष्यों के साथ वहां आ पहुंचे। मुनि को देख राजा ने न प्रणाम किया और न वह उठा ही। तब दुर्वासाजी ने शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तुम योग से भ्रष्ट होकर असुर योनि में प्राप्त होकर एक लाख वर्ष तक भारत में निवास करो। पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से गोलोक की प्राप्ति होगी। इतना कह दुर्वासा ने स्त्रियों से कहा कि तुम्हारा भी स्थान-स्थान पर जन्म होगा। राजा का स्त्रियों के साथ अग्निप्रवेश। पश्चात् तृणावर्त के शरीर की प्राप्ति। रानियों का भारतवर्ष में जन्म।

१२ श्रीकृष्णबाललीलावर्णनम् ५६३

एक समय नन्दपत्नी श्रीकृष्ण को स्तन पान करा रही थी। उसी समय वहीं पर बहुतसी बालिकायें एवं वृद्ध नारियां आईं उनके सत्कार के लिये यशोदा का गमन। क्रोधित श्रीकृष्ण द्वारा शकट का गिराना। शकट के उत्पात को देखकर गोपों ने बालकों से पूछा कि यह गाड़ी कैसे टूट गई ? तब बालकों ने कहा कि इस विषय में हम कुछ नहीं जानते हैं। श्रीकृष्ण के चरणों से ही यह टूटी है। तदनन्तर जो कवच ब्रह्माजी ने योगमाया को दिया था उससे श्रीकृष्ण की रक्षा की। इस कवच को कण्ठ में, या दाहिने हाथ में जो बांधता है उसे विष, सर्प, अग्नि और शत्रु का भय नहीं होता है। इस कवच को धारण कर भगवान् शङ्कर ने त्रिपुरासुर को तथा भगवती काली ने रक्तबीज को मारा था।

१३ श्रीकृष्णमाहात्म्ये बालचरित्रकथनम् ५९५
श्रीकृष्णनामकरणे शिष्यैः सह महर्षिगर्गप्रवेशवर्णनम् ५९७
श्रीकृष्णनाम्नो गुणानुकीर्तनम् ५९९
राधानामनिर्वचनवर्णनम् ६०१
श्रीकृष्णस्यान्नप्राशनसंस्कारसाङ्गतसिद्ध्यर्थदानवर्णनम् ६०३
श्रीकृष्णस्यान्नप्राशननिमित्तकभूरिदानवर्णनम् ६०५
गर्गप्रस्थानवर्णनम् ६०७

श्रीकृष्ण के बालचरित्र का वर्णन। एक समय नन्दपत्नी कृष्ण को गोद में लिये स्वर्णसिंहासन पर बैठी हुई स्तन पान करा रही थी। उसी समय एक विप्रेन्द्र हजारों शिष्यों के साथ वहाँ आये। मुनि को देखकर यशोदा ने पूजन किया और कृष्ण से प्रणाम करवाया। पुनः हाथ जोड़ प्रार्थना की कि हे योगिराज! मैं आपको पूछने में समर्थ तो नहीं हूं किन्तु मैं आप का शुभ नाम पूछना चाहती हूं क्योंकि मैं बुद्धिहीन हूं। सज्जन पुरुष मूढ़ व्यक्ति के दोष को क्षमा करदेते हैं। इसलिये हे मुनीन्द्र! आप, अङ्गिरा, अत्रि, मरीचि, गौतम, क्रतु, प्रचेता, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, कर्दम, वशिष्ठ, गर्ग, जैगीषव्य, देवल, कपिल, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढ़ु, पञ्चशिख, आसुरि, सौभरि, विश्वामित्र, वाल्मीकि, नामदेव, कश्यप, संवर्त, उतथ्य, कच, बृहस्पति, भृगु, च्यवन, शुक्र, नर, नारायण, शङ्खि, पराशर, व्यास, शुकदेव, जैमिनि, मार्कण्डेय, लोमश, कण्व, कात्यायन, आस्तीक, जरत्कारु, ऋष्यश्रृङ्ग, विभाण्डक, पौलस्त्य, अगस्त्य, शरद्वान्, गिरि, शमीक, अरिष्टनेमि, माण्डव्य, पैल, पाणिनि, कणाद, शाकल्य, शाकटायन,

अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, वत्स, जावालि, याज्ञवल्क्य, वैशम्पायन, यति, हँस, पिप्पलाद, मैत्रेय, करुष, उपमन्यु, गौरमुख, अरुणि, और्व, कक्षिवान्, भरद्वाज, वेदशिरा, शङ्कुकर्ण और शौनक इन महानुभावों में से कौन हैं ? इसपर मुनि ने कहा कि मैं यादवों का चिर पुरोहित गर्ग हूं तथा श्रीकृष्ण के नामकरण के लिये आया हूं। पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण के नामों का वर्णन। राधा के नामों का वर्णन। राधा और श्रीकृष्ण का विवाह वृन्दावन में होगा तदनन्तर श्रीकृष्ण के भूत, भविष्यत् और वर्तमान में होनेवाले कार्यों का विवरण किया पुनः गर्गजी ने अन्नप्रासन संस्कार कराकर तन्निमित्त वहुतसा दान करवाया। पुनः गर्गजी का प्रस्थान।

१४ श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम् ६०६
नलकूवरमोक्षवर्णनम् ६११

एक समय यशोदा यमुना स्नान करने गईं। आकर घर में क्या देखती है कि दधि, दुग्ध, घृत, तक्र (छाछ) मक्खन के भाण्ड फूटे हुए हैं। तब बालकों से पूछा कि यह अद्भुत कर्म किसका है। तब बालकों ने कहा कि ये सब तुम्हारे ही पुत्र के कार्य हैं। बालकों का वचन सुन यशोदा हाथ में बेंत ले श्रीकृष्ण को मारने के लिये दौड़ीं। श्रीकृष्ण भी आगेर दौड़ने लगे। माता को परिश्रम से व्याकुल देख भगवान् ठहर गये। तब यशोदा ने वस्त्र से श्रीकृष्ण को बांध दिया। श्रीकृष्ण एक वृक्ष के मूल में खड़े हो गये। उनके स्पर्श होते ही वृक्ष गिरपड़ा और दिव्य पुरुष हो गया। पुनः दिव्यरथ में बैठ अपने स्थान को चला गया। वृक्ष के शब्द को सुन यशोदा का कृष्ण को गोद में लेना। गोपों ने यशोदा को बहुत डांटा और नन्द का आगमन। नन्द ने यशोदा से कहा कि मैं आज ही बालक को लेकर तीर्थ जाऊँगा अथवा तुम यहां से चली जाओ। जैसे कहा है कि—

शतकूपसमा वापी शतवापी समं सरः। सरः शताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम्। सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इहैव च परत्र च॥
पुत्रादपि परोवन्धुर्न भूतो न भविष्यति।

इतना कहकर नन्दजी अपने घर में रहने लगे। नारदजी ने नारायण से पूछा कि वृक्षरूप से जो सुन्दर पुरुष हो गया वह कौन था और किस कारण से वृक्षत्व की प्राप्ति हुई? नारायण ने कहा कुबेर का पुत्र नलकूवर रम्भा के साथ नन्दनवन में क्रीड़ा के लिये गया वहांपर मुनि देवल आ गये। मुनि ने रम्भा को नग्न देखकर दोनों को शाप दिया कि हे पापिष्ठ! तुम वृक्ष होजाओ तथा हे रम्भे! तुम मानुषी योनि को प्राप्त कर जन्मेजय की पत्नी वनो। मुनि ने कहा कि तुम श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से पुनः अपने रूप को प्राप्त करोगे तथा हे रम्भे! तुम इन्द्र के संयोग से फिर स्वर्ग में जाओगी। रम्भा के आख्यान का वर्णन। रम्भा का सुचन्द्र के घर में जन्म। पुनः जन्मेजय के साथ विवाह। जनमेजय का अश्वमेध यज्ञारम्भ। यज्ञ के घोड़े को देखने के लिये जन्मेजय की पत्नी का आगमन। इन्द्र द्वारा उसका अपहरण। पश्चात् संभोगमात्र से रानी का देहत्याग यज्ञ की समाप्ति।

१५ राधास्वरूपवर्णनम् ६१२

राधाकृष्णसम्मेलनवर्णनम् ६१५

ब्रह्मकृतराधाकृष्णस्तोत्रम् ६१७

राधाकृष्णविवाहवर्णनम् ६१९

नन्दजी का श्रीकृष्ण को साथ ले वृन्दावन में गमन। श्रीकृष्ण की माया से आकाश मेघों से आछन्न हो गया एवं वर्षा वरसने लगी। यह देख श्रीकृष्ण का रुदन पुनः राधा का आगमन। राधा द्वारा श्रीकृष्ण को ले जाना। भगवान् के स्वरूप को देख राधा को मोह प्राप्ति। श्रीकृष्ण ने राधा से कहा कि हे राधिके!

तुम्हारे में और मेरे में कोई भी भेद नहीं है जैसे दुग्ध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध है उसी तरह हम दोनों में कोई भेद नहीं है। जैसे कुम्हार मिट्टी के विना घट को वनाने में समर्थ नहीं तथा स्वर्णकार सुवर्ण के विना कुण्डल नहीं वना सकता। उसी तरह मैं तुम्हारे विना सृष्टि रचना में समर्थ नहीं हूं और हे राधे "सृष्टेराधारभूता त्वं वीजरूपोऽहमच्युतः" तुम्हारे विना मुझे कृष्ण नाम से पुकारते हैं और तुम्हारे रहने से श्रीकृष्ण नाम से। जो कोई राधा और कृष्ण में भेद समझते हैं तथा निन्दा करते हैं उनको नरक की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी ने राधाकृष्ण की स्तुति करते समय कहा कि—

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः। आत्मना देहरूपा त्वमस्याधारस्त्वमेव हि
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः॥

ब्रह्माजी को राधा का वरदान। राधा और श्रीकृष्णका वेदमन्त्रोच्चारण-पूर्वक विवाह। श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा एवं श्रीकृष्ण का अन्तर्धान और राधा का विरह। श्रीकृष्ण का यशोदा के पास गमन।

१६ वकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम् ६२२
वकादीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम् ६२५
त्रैमासिकव्रतवर्णनम् ६२७
गोपानां वृन्दावनगमनम् ६३१

एक समय श्रीकृष्ण अन्य वालक एवं वलराम को साथ लेकर श्रीवन में क्रीड़ा करने गये वहां से मधुवन पहुंचे। वहां एक दैत्य वक के आकारवाला आया और श्रीकृष्ण को निगल गया जैसे अगस्त्यजी ने वातापी को निगल लिया था। यह देखकर सब हाहाकार करने लगे। इन्द्र ने वक के ऊपर मुनि के अस्थि से वना हुआ वज्र छोड़ा जिससे उसका एक पक्ष जल गया। चन्द्रमा ने वक पर शीतास्त्र छोड़ा उससे शीतार्त हो गया। यमराज ने यमदण्ड;

वायु ने वायव्यास्त्र, वरुण ने शिलावृष्टि, अग्नि ने अग्न्यस्त्र और ईशान ने त्रिशूल का प्रयोग किया तथापि असुर मरा नहीं। पुनः असुर के सब अङ्गों को जलाकर श्रीकृष्ण का निकलना। वृषरूप धारण कर प्रलम्बासुर का आगमन एवं बलराम द्वारा उसकी मृत्यु। केशी दानव का घोड़े के रूप में आना। श्रीकृष्ण को मस्तक पर रख आकाश में प्रस्थान पुनः भगवान् के तेज से उसकी मृत्यु। बक, प्रलम्ब, और केशी के पूर्वजन्म का वर्णन। गन्धवाह नाम गन्धर्व के चार पुत्र थे। वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक इनमें बड़ा वसुदेव तो दुर्वासा का शिष्य था एवं अविवाहित ही ब्रह्मतेज से शरीर त्याग श्रीकृष्ण का पार्षद होगया। सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक तीनों हीं परम वैष्णव एवं भगवद्भक्त थे। एक दिन वे कमलों को लाने के लिये चित्रसरोवर पर गये वहां शङ्कर के गण उनको पकड़कर शङ्करजी के पास ले गये। शङ्करजी ने पूछा तुम कमलों को हरण करनेवाले कौन हो ? पार्वतीजी त्रैमासिक व्रत में सहस्र कमल से भगवान् का नित्य पूजन करती हैं इसलिये कमलों की रक्षा एक लाख यक्ष करते हैं। गन्धर्वों ने कहा कि हम गन्धवाह के पुत्र हैं भगवान् को नित्य कमल देकर जल पीते हैं। हम यह जानते हैं कि यह सरोवर पार्वती के लिये रक्षित है इसलिये आप हमारे कमलों को लेकर हमारा मनोरथ पूर्ण कीजिये। शङ्करजी ने कहा कि मेरे वैष्णव परम प्रिय हैं किन्तु मेरी स्वीकृति मिथ्या न होगी। जो पार्वती के व्रत में कमलों का हरण करेंगे वे आसुरी योनि को पायेंगे। श्रीकृष्ण के भक्तों का कभी भी अनिष्ट नहीं होता है "नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्" श्रीकृष्ण के दर्शन से दिव्यरूप की प्राप्ति होगी। त्रैमासिक व्रत का विधान जिसमें भगवान् का पूजन सहस्र कमलों से प्रतिदिन करे तथा राधा सहित श्रीकृष्ण के लिये घृतयुक्त तिलों की १०८ आहुति दे इस तरह तीन मास करे। अन्त में असंख्य ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दान करे। इतने उत्पातों को देखकर सम्पूर्ण गोपों का वृन्दावन गमन।

१७	नगरनिर्माणवर्णनम्	६३३
	कलावत्युपाख्यानवर्णनम्	६३५
	पतिमहत्त्ववर्णनम्	६३७
	वृन्दावननगरनिर्माणवर्णनम्	६४१
	राधायाः षोडशनामवर्णनम्	६४५
	वृन्दावननगरवर्णनम्	६४७

नन्दादिकों के शयन करने पर कुवेर के किङ्करों द्वारा नगर वनाने के लिये सामग्री का लाना एवं विश्वकर्मा द्वारा नगर का निर्माण। सम्पूर्ण गोपों के लिये यथोचित स्थानों का निर्माण कर वृषभानु के गृह का निर्माण किया वहांपर कलावती का अपने पति के साथ निवास। नारदजी का कलावती विषयक नारायण से प्रश्न कि कलावती कौन थी जिसके लिये इतने सुन्दर स्थान की रचना विश्वकर्मा ने की? नारायण ने कहा—कलावती पितरेश्वरों की मानसी कन्या एवं लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न और वृषभानु की स्त्री तथा राधा की माता थी। जिस राधिका की चरणरज से सम्पूर्ण पृथ्वीतल पवित्र हो गया। सद्भक्त उसकी सुदृढ़ भक्ति की इच्छा करते हैं। पित्रेश्वरों से तीन मानसी पुत्रियों की उत्पत्ति जिनका नाम कलावती, रत्नमाला और मेनका था। रत्नमाला ने जनक को और मेनका ने पर्वतराज हिमालय को वरण किया। रत्नमाला की अयोनिसम्भवा सीता नाम की लड़की थी जिसका विवाह श्रीराम के साथ हुआ और मेनका की अयोनिसम्भवा पार्वती जिसका विवाह शङ्करजी से हुआ। कलावती का विवाह मनुवंश में उत्पन्न होनेवाले सुचन्द्र के साथ हुआ। कलावती ने सुचन्द्र को अपने मनोनुकूल अतिसुन्दर गुणवान् रूपवान् मान उसके साथ दिव्यरथ पर आरूढ़ हो पर्वतों की कन्दराओं में, द्वीपों में एवं एकान्तस्थानों में रमण करते हुए नवसङ्गम के

संयोग से उन्हें दिन-रात की भी सुध नहीं रही। इस प्रकार हजार वर्ष मुहूर्त्तवत् व्यतीत हो गये। पश्चात् सुचन्द्र का विषयों से वैराग्य एवं कलावती के साथ तप के लिये विन्ध्याचल को प्रस्थान। सुचन्द्र को ब्रह्माजी का वरदान कि तुम्हारी मोक्ष होगी। इतना सुन कलावती ने कहा मेरे स्वामी को मुक्ति देते हो तो मेरी क्या गति होगी ? क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों के एकमात्र पति ही देव हैं। जो स्त्री पतिभक्ता नहीं होती है उसे नानाविध नरकों की प्राप्ति होती है। स्वामी का वियोग बन्धु एवं पुत्रादिकों के वियोग से भी अधिक है। सन्त श्रीतुलसीदासजी ने भी अपने रामचरितमानस बालकाण्ड में जब श्रीराम ने सीताजी को अयोध्या में ही रहने को कहा तब सीताजी कहती हैं कि—

"जिय बिनु देह नदी बिन वारी। तैसे ही नाथ पुरुष बिन नारी॥"

साध्वी स्त्री के लिये पति से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है।

नहि कान्तात्परोबन्धुर्न हि कान्तात्परः प्रियः।
नहि कान्तात्परोदैवो नहि कान्तात्परो गुरुः॥
नहि कान्तात्परोधर्मो नहि कान्तात्परं धनम्।
नहि कान्तात्पराः प्राणा न कः कान्तात्परः स्त्रियः॥

इसलिये हे ब्रह्मन् मैं आपको शाप दूँगी जिससे आपको स्त्रीवध का पाप लगेगा। तदनन्तर ब्रह्माजी ने कहा कि तुम दोनों की एक साथ ही मुक्ति होगी। कुछ स्वर्गभोगों को भोगकर फिर भारत में जन्म होगा और तुम्हारे राधा नाम की पुत्री होगी। सुचन्द्र का वृषभानु रूप में तथा कलावती का सुनन्दन की पुत्री रूप में उत्पन्न होना। वृषभानु एवं कलावती का विवाह। वृन्दावन नगर के निर्माण का वर्णन। वृन्दावन की व्युत्पत्ति कई तरह से बताई जाती है—केदार नामक एक राजा था जो सम्पूर्ण पृथ्वी का पालक एवं धार्मिक था। वह अपने पुत्रों को राज्य दे अपनी रानी सहित तप करने चला गया। उसके वृन्दा नाम की पुत्री थी। उसने साठ हजार वर्ष तक तपस्या की और भगवान् कृष्ण

को वरण किया। वृन्दा ने जहां तप किया उसका नाम हुआ वृन्दावन। दूसरी बात कि राजा कुशध्वज के दो पुत्री थी तुलसी और वेदवती। वेदवती ने तप कर नारायण को प्राप्त किया जो सीता नाम से सर्वत्र विख्यात है। तुलसी ने श्रीकृष्ण की अभिलाषा से तप किया किन्तु भाग्यवश दुर्वासा के शाप से शङ्खासुर को प्राप्त हुई। श्रीकृष्ण का तुलसी को शाप कि तुम वृक्षरूपा होगी और तुलसी का भगवान् को शाप कि शालग्राम होओगे। तीसरी वात की राधा के सोलह नामों में यह आया है "कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा" इसलिये भी वृन्दावन हुआ। वृन्दावन की शोभा का वर्णन।

१८	विप्रपत्नीनां मोक्षणम्	६४८
	विप्रपत्नीकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्	६५१
	विप्रपत्नीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तः	६५३
	विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावः	६५५

नारद और नारायण के संवाद में कृष्णलीला का वर्णन करते हुए कहा कि एक समय श्रीकृष्ण अन्य गोप एवं बलराम के साथ मधुवन में गये वहांपर बालकों द्वारा भोजन की इच्छा प्रगट करना। श्रीकृष्ण ने कहा कि ब्राह्मणों के यज्ञस्थान पर जाओ वे अन्नदान करेंगे यदि विप्रलोग अन्नदान न दें तो विप्रपत्नियों के पास जाना। बालकों का अन्न लाने के लिये प्रस्थान। बालकों के अन्न मांगने पर ब्राह्मणों ने कुछ भी उत्तर न दिया। तदनन्तर बालकों का विप्रपत्नियों के पास अन्न की याचना करना। स्त्रियों ने पूछा कि आप कौन हैं? बालकों ने कहा कि बलराम एवं श्रीकृष्ण द्वारा हम भेजे हुए हैं और भूख एवं प्यास से पीड़ित हैं। विप्रपत्नियों का अनेक भाण्डों में पकान्न रख भगवान् के पास प्रस्थान। वहां पर विप्रपत्नियों द्वारा भगवान् की स्तुति। भगवान् से दृढ़ भक्ति एवं दास्यभाव

का वर मांगना। विप्रपत्नियों का स्वगृह गमन मार्ग में ब्राह्मणों का समागम। ब्राह्मणों ने कहा कि हे पत्नियों ! तुम धन्य हो, हमारा वेदपाठ एवं जीवन व्यर्थ ही है। संसार में सब विभूतियां भगवान् की ही है। विप्रों का स्वगृह जाना। विप्रपत्नियों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन। विप्रपत्नियाँ पूर्वजन्म में सप्तर्षियों की स्त्रियां थी। वे अत्यन्त सुन्दरी थीं जिनकी सुन्दरता से मुनियों का भी मन मोहित होजाता था। उनकी सुन्दरता को देख अग्नि का मोहित होना तथा अङ्गिरा का अग्नि को शाप कि तुम सर्वभक्षी होओगे। अग्नि की अङ्गिरा से प्रार्थना। मुनिपत्नियों को शाप कि तुम्हारा जन्म भारत में ब्राह्मणों के घर होगा। श्रेष्ठ विप्रों के साथ तुम्हारा विवाह होगा। मुनि पत्नियों ने अपने पतियों से प्रार्थना की कि हे ऋषियो ! हम निष्पाप हैं आप के विना हमारा जीवन व्यर्थ है हम आपका चरण कब प्राप्त करेंगी ? दूसरों से भयभीत हुई स्त्रियां अपने पति के शरण जाती हैं लेकिन पति के डर से दुःखित हुई किसके पास जायँगी ? इसलिये हमको अभय दान दीजिये। पत्नियों के वचन सुन ऋषि रोने लगे और कहा कि शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। दूसरे से भोगी हुई स्त्री को जो मूर्ख भोगता है वह कालसूत्र नरक में जाता है इसलिये स्त्री एवं पाककपात्र की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिये। भगवान् को अन्न देने से विप्रपत्नियों की मोक्ष।

१९ कालीयदमनाख्यानम् ६५६

सुरसाकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम् ६५७

सुरसायै वरप्रदानम् ६५९

नागराजकृत श्रीकृष्णस्तोत्रम् ६६१

कालियदमनाख्यानम् ६६३

कालीयमोक्षणम् ६६५

श्रीकृष्ण अन्यबालकों के साथ गाय चराने के लिये गोकुल में गये। वहांपर

गायें नये घास को खाकर विष युक्त जल पीने लगी जिससे उनकी मृत्यु हो गई। भगवान् ने योगसे उनको जीवदान दिया फिर कालिय के स्थान पर गये। श्रीकृष्ण द्वारा कालिय का दमन। सुरसा नामक नागपत्नी द्वारा भगवान् की स्तुति। नागपत्नी को वरदान देकर कहा कि तुम मेरी धर्मपुत्री हो यह नाग मेरा जँवाई है अब तुमको गरुड़ से भय नहीं है। मेरे चरणों के चिह्नों को देख गरुड़ भी प्रणाम करेगा। नागराज कालिय द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। श्रीकृष्ण ने नागराज को वरदान देकर कहा कि रमणक द्वीप में जाओ। नागराज के जाने के बाद यमुना का जल निर्विष हो गया। नारदजी ने पूछा कि कालिय अपने पूर्व स्थान को छोड़ यमुना म क्यों रहने लगा। नारायण ने कहा कि नागराज शेष की आज्ञा से नागगण प्रतिवर्ष कार्तिक की पूर्णिमा को पुष्करराज में पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और बलिदान से गरुड़ की पूजन करते हैं। अभिमानी कालिय ने गरुड़ की पूजा नहीं की और पूजा की सामग्री को स्वयं ही भक्षण कर गया। नागेन्द्र और गरुड़ का युद्ध। पराजित नागेन्द्र का यमुनाजल में प्रवेश। वहांपर गरुड़जी नहीं जा सकते थे क्योंकि गरुड़जी को ऋषि सौभरि का शाप था। ऋषि सौभरि ने वहां दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या की। गरुड़जी द्वारा जल से मत्स्यों को पकड़ना। दुःखित हुए एक मच्छ ने ऋषि की शरण ली। मुनि ने कहा हे गरुड़ तुम्हारी क्या योग्यता है और क्या मेरे सामने से इस जीव को ले जा सकते हो? यहां से चले जाओ। तुमको यह घमण्ड होगा कि मैं भगवान् का पार्षद हूं, किन्तु यह ध्यान रखना कि तुम्हारे जैसे वाहन भगवान् अनेक बना सकते हैं इसलिये आज से कभी यहां नहीं आना। कालिय की मोक्ष। वन में अग्नि का लगना। भगवान् के द्वारा दावाग्नि पान एवं गोपों की रक्षा।

---

२० ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम् ६६७
ब्रह्मकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम् ६६६

श्रीकृष्ण का क्रीड़ा निमित्त गोकुल गमन। ब्रह्मा का गौ के वत्सों एवं बालकों का हरण करना। भगवान् द्वारा अन्य वत्सादिकों का निर्माण। इस तरह एक वर्ष तक यमुनातट के पास क्रीड़ा करते रहे। ब्रह्माजी ने भगवान् के प्रभाव को जानकर स्तुति की। ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जो भक्ति पूर्वक ब्रह्मकृत स्तोत्र को पढ़ता है वह इस लोक में सुख भोग अन्त में हरिपद को प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण का बालकों को साथ लेकर अपने स्थान पर जाना।

२१ इन्द्रयागवर्णनम् ६७०
ब्राह्मणपूजनादौ गुणाः ६७३
गोब्राह्मणमहत्त्ववर्णनम् ६७५
इन्द्रमखभङ्गानन्तरं गोवर्धनपूजावर्णनम् ६७७
इन्द्रपराजयवर्णनम् ६७६
नन्दकृत कृष्णस्तववर्णनम् ६८१

इन्द्रयाग का वर्णन। नन्दजी ने गोपियों को आज्ञा दी कि दही, दूध, घृत, मक्खन, गुड़ और मधु से इन्द्र की पूजन करो। गर्गादि मुनियों का आगमन। नन्दजी द्वारा मुनियों का सत्कार। इन्द्रयाग के निमित्त बाजे बजाने लगे एवं अप्सरायें नाचने लगीं। नाना तरह के पकान्न, फल एवं अनेक तरह के सुवर्ण और चाँदी के पात्र तथा वस्त्र सजाये गये। श्रीकृष्ण का क्रीड़ास्थान से घर आना। श्रीकृष्ण ने नन्दजी से कहा कि हे नन्द आप किसकी पूजा करते हैं। इसके करने से क्या फल होता है एवं प्रसन्न होने से देव क्या देता है? जो पूजा

वेदविहित नहीं है वह हानिकारक है। ब्राह्मणों की पूजा सब फलों को देनेवाली है। ब्राह्मण के प्रसन्न होने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। देवता को नैवेद्य देकर ब्राह्मण को नहीं देता है उसकी पूजन की हुई निष्फल होती है। भगवान् को नैवेद्य न देकर जो भोजन करता है वह अन्न विष्ठा है एवं जल मूत्र के समान है। यह नियम सभी वर्णों के लिये समान रूप से लागू है।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्।
सर्वेषाञ्च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः॥

इसलिये ब्राह्मणों की पूजा बहुत फल देनेवाली है। ब्राह्मण के स्पर्श से महापापी भी पवित्र हो जाते हैं। विद्वान् हो या मूर्ख हो ब्राह्मण विष्णु का शरीर है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा कि "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनू" इसलिये हे नन्दजी अगर यह द्रव्य ब्राह्मणों को नहीं देंगे तो सब कार्य निष्फल हो जायेंगे। जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से शाखाय हरी-भरी हो जाती हैं उसी तरह भगवान् की पूजन करने से सब देवताओं की पूजन हो जाती है। अथवा गोवर्धन की पूजा करो जो नित्य गउओं को बढ़ाता है तथा उनके चरने के लिए कोमल घास देता है। जितना पुण्य सब व्रत, दान और तप करने से तथा पृथ्वी की परिक्रमा करने से मिलता है उतना ही पुण्य गौओं को घास खिलाने से मिलता है। घास चरती हुई गौ को जो रोकता है वह ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण एवं गौ के अङ्गों को ताड़ना देता है उसको ब्रह्महत्या के समान पाप होता है और उसको कालसूत्र नरक की प्राप्ति होती है। इतना सुन नन्दजी ने कहा कि इन्द्र की पूजा परम्परा से होती आई है इससे अच्छी वृष्टि और अन्नादि पैदा होते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन की पूजा करवाना। इन्द्रयाग भङ्ग होने से व्रज पर इन्द्र का प्रकोप एवं मूसलाधार वर्षा का आरम्भ। नन्द द्वारा इन्द्र की स्तुति। श्रीकृष्ण का गोवर्धन धारण करना। व्रजवासियों की वर्षा से रक्षा। इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इन्द्रकृत स्तोत्र को जो

पढ़ता है उसको भक्ति की प्राप्ति होती है एवं जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःखों से छूट जाता है वह स्वप्न में भी यमराज के पास नहीं जाता है। नन्द द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। गोवर्धन आख्यान के श्रवण तथा पठन का फल कथन।

२२ धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम् ६८३
धेनुकवधवर्णनम् ६८७

श्रीकृष्ण का अन्य बालकों के साथ तालवन में प्रवेश। तालवन का रक्षक खररूपी धेनुक था। तालवन के फलों को भक्षण करने के लिये बालकों ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर कहा कि हे कृष्ण ! हम धेनुक से डरते हैं। तब श्रीकृष्ण ने कहा दैत्य से कोई भी भय नहीं है तुमलोग स्वच्छन्दता से फल खाओ। बालकों का फल तोड़ना एवं धेनुक का आगमन। राक्षस को देख बालकों का भयभीत होना। बालकों द्वारा राक्षस से रक्षा के लिये श्रीकृष्ण से प्रार्थना। श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा यह दानव बलि का पुत्र है। दुर्वासा के शाप से गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ है। इसलिये हे भ्रातः ! आप बालकों की रक्षा करें मैं इसको मारूँगा। इतना कह श्रीकृष्ण का दानव के पास जाना। दानव ने कहा तुम मेरे पिता के यज्ञ के भिक्षुक तथा राज्य हरण करनेवाले हो। मुनि दुर्वासा के शाप से मैं गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ हूं तथा आपके चक्र से मेरी मुक्ति बताई है तदनन्तर धेनुक द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति। धेनुककृत स्तुति का जो पठन करता है उसको विद्या, लक्ष्मी, सुकविता का ज्ञान, सालोक्यादिमुक्ति, यश और पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति होती है। धेनुक एवं श्रीकृष्ण का युद्ध तथा धेनुक की मृत्यु। श्रीकृष्ण का बालकों को साथ ले अपने घर पर जाना।

---

२३ दुर्वाससः शापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम् ६८९
साहसिकतिलोत्तमासंवादवर्णनम् ६९१
तिलोत्तमाबलिपुत्रयोर्दुर्वाससः शापः ६९७

नारदजी ने नारायण से पूछा कि बलिपुत्र को गर्दभ योनि की प्राप्ति कैसे हुई ? इसपर नारायण ने कहा कि जिस कल्प में तुम उपबर्हण नामक गन्धर्व थे तथा तुम्हारे ५० स्त्रियां थीं फिर ब्रह्माजी के शाप से तुम दासी पुत्र हुए। उस समय वैष्णव ब्राह्मणों के उच्छिष्ट भक्षण करने से ब्रह्मपुत्र नारद हुए थे उस कल्प की वार्ता तुम्हें कहता हूं। एक समय बलिपुत्र साहसिक सब देवों को जीतकर गन्धमादन पर्वत पर रहने लगा। तिलोत्तमा का चन्द्रलोक में जाने की इच्छा से उसी तरफ से जाना। साहसिक और तिलोत्तमा का संवाद। साहसिक ने कहा हे तिलोत्तमे ! मैं तुम से गुप्त बात पूछना चाहता हूं कि देव, दानव, गन्धर्व और राजाओं में तुम्हें कौन प्रिय हैं ? तिलोत्तमा ने कहा कि हे साहसिक ! मैं तुम्हें गुप्त बात कहती हूं। विद्वान् पुरुष वेद, वेदाङ्ग एवं अन्य शास्त्रों के अन्त को जान सकता है लेकिन दिशा, स्वर्ग और स्त्रियों के अन्त को नहीं जान सकता है। स्त्रियों के युवा पुरुष यदि सर्वस्व हरण करनेवाला हो तथापि सदा प्रिय है परन्तु वृद्ध पुरुष विष से भी बढ़कर अप्रिय है; जैसे—

विषादप्यप्रियो वृद्धो रत्नादपि च योषिताम्।
युवा सर्वस्वहर्ता चेत्प्राणेभ्योऽपि परः प्रियः॥

इस प्रकार कुलटाओं के चरित्र का वर्णन कर उसने कहा कि मेरे देवताओं तथा गन्धर्वादिकों में बहुत से प्रिय हैं परन्तु चन्द्रमा में मेरा विशेष प्रेम है। चन्द्रस्थान से वापिसआपके पास आऊँगी। इतना सुन हँसकर साहसिक ने कहा---"कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये"। तिलोत्तमा ने कहा कि मैं आपको क्रोधित कर चन्द्र के पास नहीं जाऊँगी। जो पुरुष स्त्री का सम्मान रखता है उसको पद-पद पर शुभ

कामना की प्राप्ति होती है। तिलोत्तमा एवं साहसिक का प्रेम मिलन। अत्यधिक कामासक्त होने से मुनि दुर्वासा का ध्यानभङ्ग। मुनि ने कहा कि हे गर्दभाकार! सबही अपनी-अपनी जाति से लज्जा करते हैं केवल पशु ही लज्जा नहीं करते। इसलिये हे दैत्य! तुम्हें दानवी योनि की प्राप्ति होगी। पुनः दानव की प्रार्थना पर दुर्वासा ने कहा तालवन में गर्दभ योनि से श्रीकृष्ण द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। तिलोत्तमा से कहा कि तुम वाणपुत्री उषा होओगी।

२४ कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः ६९८

कन्दलीं प्रति दुर्वाससः शापः ७०१

तिलोत्तमा और साहसिक के शृङ्गार को देख मुनि दुर्वासा को कामोत्पत्ति। "संसर्ग जा दोषगुणा भवन्ति" उसी तरह जितेन्द्रिय होते हुए भी मुनि अपने मनोद्वेग को न रोक सके। और्व के कन्दली नाम की पुत्री थी वह अयोनिजा थी तथा दुर्वासा से दूसरे को पति नहीं वरण करती थी। कलहप्रिय एवं कटु-भाषिणी थी। उसे देख मुनि दुर्वासा को मोह। दुर्वासा ने कहा—

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकृत्। व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम्॥
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगड़ं परम्। अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शङ्करादिभिः

संसार में नारीरूप मुक्ति मार्ग का रोधक है एवं तपस्या को खण्डित करने-वाला है परन्तु श्रेष्ठ स्त्री का सङ्ग ही उत्तम है।

मतिश्चैवावशीलान्ता सुस्त्री जन्मनि जन्मनि।
यावज्जीवी च सुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम्॥

लेकिन भगवान् का स्मरण सब कार्यों से उत्तम है। इतना कहकर मुनि ने कहा कि मैं तुम्हारी कन्या की सौ कटूक्तियों को क्षमा करूँगा। पश्चात् इसको फल मिलेगा। मुनि दुर्वासा एवं कन्दली का वेदोक्त रीति से विवाह एवं और्व

का कन्या वियोग में विरह। और्व ने अपनी कन्या से पातिव्रत धर्म का उपदेश कर कहा—"पतिसेवा परो धर्मः सर्वशास्त्रेपु पठ्यते" पति सेवा स्त्री के लिये सबसे उत्तम धर्म एवं कर्म है। कन्दली द्वारा अकारण ही मुनि से कलह। वचनबद्ध मुनि ने सौ कटूक्तियों को क्षमा कर कहा तुम भस्म हो जाओगी पश्चात् कन्दली का भस्म होना। आकाश में स्थित कन्दली के जीव द्वारा दुर्वासा से प्रार्थना। इतना सुन मुनि को मूर्छा। शिशुरूप जनार्दन का मुनिको ज्ञानोपदेश। मुनि का तपस्या में रत होना। कन्दली का कन्दली जाति में प्रकट होना। साहसिक दैत्य का तालवन में गर्दभरूप में तथा तिलोत्तमा का बाणपुत्री उपा के रूप में जन्मवर्णन।

२५ दुर्वाससं प्रति और्वशापः ७०३

अम्बरीपोपाख्यानम् ७०५

दुर्वाससो मोक्षणार्थं सर्वदेवानां भगवत्स्तुतिकरणम् ७११

सरस्वती नदी के तट पर तपस्या करते हुए और्व का धौतवस्त्र (धोती) वायु से धारण किया गया पृथ्वी पर गिर पड़ा। वस्त्र के गिरने से मुनि ने ध्यान से देखा तो कन्या का वृत्तान्त मालूम हुआ। दुःखी और्व का दुर्वासा के पास गमन। कुपित और्व की दुर्वासा के प्रति उक्ति कि आप कमलांशा अनसूया अत्रि के अंश से भगवान् शङ्कर की कृपा से उत्पन्न हुए हो। मेरी पुत्री को स्वल्पापराध के निमित्त भस्म किया है अतः आपका भी महान् पराभव होगा। इस पर नारदजी ने नारायण से दुर्वासा का पराभव किसने किया ? यह पूछा। तब नारायण ने कहा कि सूर्यवंश में अम्बरीष नाम का राजा महान् प्रतापी एवं विष्णुभक्त था। उसकी रक्षा भगवान् का चक्र दिन-रात करता था। राजा एकादशी का व्रत कर द्वादशी को ब्राह्मणभोजन कराकर स्वयं भोजन करने के लिये तैयार हुआ। तब मुनि दुर्वासा का आगमन हुआ। दुर्वासा द्वारा भोजन की याचना करना। मुनि का अघमर्षण जप करने के लिये जाना। ऋषि वशिष्ठ का राजा के पास

आना। राजा ने कहा दुर्वासाजी भोजन के लिये कहकर गये हैं और द्वादशी तिथि समाप्त हो रही है इस विषय में मुझे क्या करना चाहिये? वशिष्ठ ने कहा जो मनुष्य द्वादशी बीतने पर त्रयोदशी में पारण करता है उसका उपवास का फल नष्ट हो जाता है तथा स्वयं भी नष्ट हो जाता है। भक्ष्य द्रव्य से मदिरा के समान तथा ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है। जो मनुष्य अतिथि को भोजन नहीं कराता है वह कुम्भीपाक नरक में जाता है उसे सौ वर्ष तक चाण्डाल योनि मिलती है। इसलिये श्रीकृष्ण भगवान् का चरणामृत पीकर पारण करो यही एकमात्र उपाय है। तत्पश्चात् मुनि का आगमन तथा कृत्या की उत्पत्ति। भगवान् का चक्र कृत्या को जलाकर मुनि का पीछा करने लगा। चक्र से दुःखित हुए दुर्वासा ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु की शरण में गये परन्तु कोई भी रक्षा न कर सके पुनः विष्णु ने कहा—

अहं प्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः। तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनाश्च हिंसकः

इसलिये हे महामुने ! अम्बरीष की शरण जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेगा। पुनः मुनि की रक्षा के लिये ब्रह्मादि देवों ने भगवान् विष्णु की स्तुति की। प्रसन्न हुए भगवान् ने कहा कि मैं मुनि की रक्षा तो अवश्य करूँगा परन्तु अम्बरीषके घर पारण करने से ही रक्षा होगी। इसके बाद मुनि का अम्बरीष गृह गमन एवं भोजन करना।'

२६ एकादशीव्रतविधानवर्णनम् ७१३

एकादशीव्रतनिरूपणम् ७१७

एकादशी व्रत का माहात्म्य एवं विधान बहुत ही सुन्दर है। जैसे पूज्यों में गणेश, विद्वानों में सरस्वती, शास्त्रों में वेद, नदियों में गङ्गा, प्राणियों में वैष्णव, मित्रों में सुशील, वृक्षों में पीपल, पुष्पों में तुलसी, महीनों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, एकादश रुद्रों में शङ्कर, आठ वसुओं में भीष्म, राजाओं

श्रीराम, सिद्धों में कपिल और सुन्दरियों में रम्भा उत्तमहै उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत है। एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न खाता है उसको नरकों की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन कर एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को पारण करना चाहिये। जो मनुष्य कलामात्र दशमी के दिन लङ्घन (उपवास) करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती है तथा वंश की हानि होती है। द्वादशी को उपवास कर त्रयोदशी को पारण करने में दोष नहीं है। जिसदिन सम्पूर्ण एकादशी हो तथा दूसरे दिन प्रभात में किञ्चिन्मात्र हो तो उसी दिन (दूसरे दिन) व्रत करना चाहिये। दशमी, एकादशी और द्वादशी यदि साठ घटी हो तो गृहस्थों को पूर्व दिन उपवास तथा यतियों को दूसरे दिन करना चाहिये। वैष्णव, यति विधवा, सन्यासी, भिक्षु और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशी उपोष्य हैं। स्मार्त मतवाले गृहस्थी शुक्ला एकादशी ही करते हैं उनको कृष्णा के उल्लंघन में दोष नहीं है। हरिशयनी एवं हरिप्रवोधिनी के वीचवाली कृष्णपक्ष की एकादशी गृहस्थ करे और नहीं।

शयनीवोधनीमध्ये या कृष्णैकादशीभवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन

व्रत के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा विधान से करे तथा रात्रि में जागरण करे।

२७	गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम्	६१८
	ब्रह्मकृतजयदुर्गास्तोत्रम्	७२९
	गोपीवस्त्रापहरणम्	७२१
	गौरीव्रतवर्णनम्	७२५
	गौरीव्रतकथावर्णनम्	७२७
	राधायै पार्वत्या वरः	७२९
	राधाकृष्णसंवादवर्णनम्	७३१

हेमन्त के प्रथम महीने में गोपिकाएँ यमुना नदी के किनारे मिट्टी की पार्वती

वनाकर कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये "ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्न-विनाशिन्यै नमः" इस मन्त्र से पूजन करने लगी। मधुकैटभ से पीड़ित ब्रह्मा ने जय दुर्गा की स्तुति की। प्रसन्न हुई दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को कवच दान। ब्रह्मा ने इस स्तोत्र को महेश को दिया जिससे शङ्करजी ने त्रिपुरासुर की जीत लिया। उसी स्तोत्र के प्रभाव से गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त किया। गोपकन्याकृत स्तोत्र सम्पूर्ण वाञ्छित फलों को देनेवाला है। इसको शैव, शाक्त, एवं वैष्णव यदि भक्तियुक्त पढ़ते हैं तो दुःख से छूट जाते हैं। इस तरह व्रत करती हुई गोपियाँ व्रतान्त के दिन नग्न हो जल में स्नान करने गईं। नग्न स्नान शास्त्रों में निषिद्ध है इसलिये कृष्ण द्वारा गोपिकाओं के वस्त्रों का अपहरण। गोपियों का भगवान् से वस्त्र मांगना भगवान् ने कहा कहा हे गोपिकाओं सुनो।

व्रते तु नग्ना या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम्। वरुणानुचरावासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्हृतिम्॥

नग्न स्नान करना निषिद्ध है अतः यह वरुण का प्रकोप है। राधा की आज्ञा से नग्न गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के पास वस्त्र लाने के लिये जाना। राधा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इस स्तोत्र को जो कुमारी एक वर्ष तक सुनती है उसे श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त होता है। राधाकृत स्तोत्र को विपत्ति में पढ़ने से सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा बहुत दिन से गया हुआ धन फिर मिल जाता है। इसके पाठ से पतिभेद, पुत्रभेद, मित्रभेद एवं सङ्कट में पढ़ने से सब वाधा दूर हो इष्ट वस्तु की प्राप्ति होनी कही गई है। श्रीकृष्ण द्वारा गापियों के वस्त्र दान। गौरी व्रत का विधान जिसमें पूर्व दिन उपवास कर दूसरे दिन मार्गशीर्ष की संक्रान्ति में शुद्ध वस्त्र धारण कर गणेश, सूर्य, वह्नि, नारायण, शिव और दुर्गा की पूजन करे। पुनः बालुका की गौरी वना पाद्यादि षोड़शोपचार से पूजन करे। इस व्रत को कुशध्वज की पुत्री वेदवती ने किया जिसके फलस्वरूप समाप्ति के दिन साक्षात् पार्वती प्रसन्न हो वरदान देने के लिये प्रगट हुईं। पार्वती ने कहा कि त्रेतायुग में अयोध्या नगरी में दशरथ के घर रामावतार होगा और तुम मिथिला में जनकपुत्री बनोगी

वहां श्रीराम तुम्हारे पति होंगे। मिथिलापुरी में खेती करते हुए राजा जनक के हल के अग्रभाग द्वारा पृथ्वी से सीता की उत्पत्ति। राधा द्वारा पार्वती की स्तुति करना। राधा को पार्वती का वरदान—

यथा सौभाग्ययुक्ताऽहं हरस्य श्रीहरिप्रिये।
तथा सौभाग्ययुक्ता त्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि॥

राधा और श्रीकृष्ण का सम्वाद वर्णन।

२८ रासक्रीड़ाप्रस्ताववर्णनम् ७३२
रासक्रीड़ायां गोपनामवर्णनम् ७३३
रासक्रीड़ावर्णनम् ७३५

श्रीकृष्ण का वृन्दावन में रासक्रीड़ा प्रारम्भ करना। मुरली के शब्द से राधा को मोह। जागृत होकर राधा का सुशीलादि ३३ सखियों का कृष्ण के पास जाना। सुशीला के सङ्ग से और भी १६ हजार सखियों का आगमन। दशहजार सखियों के साथ कुन्ती गोपी का आगमन। कदम्बमाला का १३ हजार सखियों के साथ, यमुना के साथ १४ हजार, जाह्नवी के साथ ६ हजार, पद्ममुखी के साथ ६ हजार, सावित्री का १५ हजार सखियों के साथ, स्वयं प्रभा का सात हजार सखियों के साथ रासक्रीड़ा में आगमन; सुधामुखी के साथ १४ हजार गोपिकाएँ, शुभा नामक गोपी के साथ भी १४ हजार, पद्मा के साथ १४ हजार, सर्वमङ्गला के साथ १६ हजार, गौरी एवं पद्मा के साथ १४ हजार, कालिका, कमला एवं दुर्गा के साथ १६ हजार गोपियों का आगमन। सरस्वती के साथ १३ हजार, भारती के साथ १० हजार, अपर्णा के साथ १४ हजार, रति के साथ १४ हजार, गङ्गा के साथ १४ हजार, अम्बिका के साथ १६ हजार, सती के साथ १३ हजार, नन्दिनी के साथ दश हजार: सुन्दरी के साथ १३ हजार,

कृष्णप्रिया और मधुमती के साथ १६ हजार, चम्पा के साथ १३ हजार और चन्दना का १६ हजार सखियों के साथ रासक्रीड़ार्थ आगमन। इस प्रकार रात्रि में भाण्डीर, श्रीवन, कदम्बकानन, नारिकेलवन, पूगवन, कदलीवन, निम्बारण्य, मधुवन, जम्बीर कानन, तुलसी कानन, कुन्दवन, चम्पक कानन, वदरी कानन, बिल्ववन, नारिङ्ग कानन, अश्वत्थ कानन, वंशवन, दाड़िम कानन और मन्दर कानन इत्यादि ३३ वनों में गोपिकाओं के साथ रासक्रीड़ा महोत्सव का वर्णन।

२६ रासक्रीड़ावर्णनम् ७४२

अष्टावक्रस्य कृष्णसमीपेगमनम् ७४३

गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीड़ा का वर्णन। ऋषि अष्टावक्र का श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आगमन। अष्टावक्र को देखकर राधा का हँसना तथा श्रीकृष्ण का राधा को हास्य से रोकना। अष्टावक्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। स्तुति के पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रकार योग से शरीर का त्याग। अष्टावक्र के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो पढ़ता है उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

३० श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम् ७४५

असितकृतशिवस्तोत्रम् ७४७

देवलरत्नावल्योः परिणयः ७४६

राधा और श्रीकृष्ण का संवाद वर्णन। मुनि अष्टावक्र के मरने के बाद श्रीकृष्ण का दाहक्रिया करना। देव विमान का आगमन। मुनि का गोलोक गमन। राधा का अष्टावक्र के रहस्य को पूछना तथा श्रीकृष्ण का राधा को उत्तर हे राधिके! मैं तुझे अष्टावक्र का आख्यान कहता हूं जिसके सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा के मन से सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की

उत्पत्ति । ब्रह्माजी ने उनको सृष्टि रचने के लिये आदेश दिया लेकिन वे तप करने ही चले गये तत्पश्चात् अत्रि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । वे सब गृहस्थधर्म में प्रवृत्त हो गये । मुनि असित का पुत्र की प्राप्ति के लिये पत्नी सहित दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या करना । पुत्र प्राप्ति न होने से ऋषि का प्राण त्यागने के लिये उद्यत होना । मुनि को आकाशवाणी हुई कि क्यों प्राण त्यागते हो शङ्कर के पास जाकर उनसे मन्त्रग्रहण कर सिद्ध करो । मुनि का शिव के पास जाकर स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो शङ्कर ने कहा कि मेरे समान ही मेरे अंश से तुम्हारे पुत्र होगा । असित के देवल नामक पुत्र की प्राप्ति । देवल का सुयज्ञ राजा की कन्या रत्नावली के साथ विवाह । पश्चात् सम्पूर्ण सुखों का परित्याग कर रात्रि में शयन करती हुई गृहिणी को छोड़ देवल का तप के लिये गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान । रत्नमाला का स्वामी विरह में देह त्याग । जितेन्द्रिय देवल की दिव्य हजार वर्ष तक तपश्चर्या एवं त्रिलोकी के चित्त को मोहन करनेवाला वेष बनाकर अप्सरा रम्भा का आगमन । रम्भा द्वारा देवल से रति की याचना । देवल का रम्भा को उत्तर—

धर्मोऽयं मुक्तकाले च स्वयोषिति रतोद्विजः । सर्वत्रपूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोषिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि
इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥

ऐसे-ऐसे सुन्दर वेद के सारभूत वाक्यों का कहना । रम्भा का क्रोधित होकर शाप देना । शाप के प्रभाव से देवल का विकृतरूप होना एवं उसके आठ अङ्ग टेढ़े देखकर भगवान् द्वारा अष्टावक्र नाम रखना । तदनन्तर मलयाचल पर्वत पर साठ हजार वर्ष तक परम तप कर प्रभु में लीन होना ।

---

३१ ब्रह्मणः शापकारणकथनम् ७५१
मोहिन्युपाख्यानम् ७५३
मोहिनीकृतकामस्तोत्रम् ७५५

भगवान् श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न कि जो तीनों लोकों का रचनेवाला तथा तप के फल को देनेवाला विधाता है वह कुलटा के शाप से कैसे अपूज्य हुआ ? तब भगवान् ने कहा कि रैवत मन्वन्तर में तपस्वी, वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञानी एवं परमधार्मिक सुचन्द्र नाम का राजा हुआ। उसने मलयाचल में एक सहस्र वर्ष तक दुश्चर तप किया। जिसे देखकर कृपालु ब्रह्माजी उस तपःस्थान में वर देने के लिये आये एवं कमण्डलु के जल से सिञ्चन कर वर दिया। तत्पश्चात् आकाश से दिव्यरथ का आगमन तथा राजा का पार्षदरूप हो भगवद्लोक में गमन। ब्रह्मलोक में जाते हुए ब्रह्माजी को देख मोहिनी का मोहित होना। जितेन्द्रिय ब्रह्माजी उसकी मोहित अवस्था देखकर भी विकार को प्राप्त नहीं हुए और अपने लोक में चले गये। मोहिनी का दिन-रात ब्रह्माजी को चिन्तन करना। मोहिनी एवं रम्भा का संवाद। रम्भा द्वारा मोहिनी को उपाय बताना। मोहिनी का पुष्कर में कामार्थ तपस्या करना। कामदेव का आगमन एवं मोहिनी के साथ ब्रह्मलोक में गमन। मोहिनी का नाच-गान से ब्रह्माजी को मोहित करना।
का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः। विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह ॥

हतोद्यमा मोहिनी का कामदेव की स्तुति करना। यह स्तोत्र मोहिनी को गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने दिया था। कामी मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक पढ़े तो उसको अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति एवं साध्वी पत्नी की प्राप्ति होती है।

---

३२ ब्रह्ममोहिन्योः संवादः ७५६

मोहिनी के स्तुति करने पर कामदेव प्रसन्न हो गये और अपने पिता ब्रह्माजी को कामास्त्र से चञ्चल बना दिया। श्रीहरि को स्मरण करते हुए ब्रह्माजी ने काम की चेष्टा को जान क्रोधयुक्त हो शाप दिया कि हे यौवनोन्मत्त कामदेव ! मेरी अवहेलना करने से तुम्हारा दर्प भङ्ग होगा। कामदेव का स्वस्थान गमन। ब्रह्माजी ने मदनातुरा मोहिनी से कहा हे मातः ! तुम अपने स्थान पर जाओ मैं इस कार्य के योग्य नहीं हूं। वेद में जो निन्दनीय कर्म है मैं उसको करने में असमर्थ हूं कारण मैं स्वयं वेदकर्ता हूं तथा संसार का व्यवस्थापक हूं। भगवान् हरि वेदोक्त कर्म करनेवाले पर ही दिन-रात प्रसन्न रहते हैं कारण—"हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन् रुष्टे भवोरिपुः" अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता ही संसार की प्रसन्नता है ऐसा कहकर ब्रह्माजी चुप हो गये। तब मोहिनी ने ब्रह्माजी से कहा कि आपके नीतियुक्त वाक्यों से मेरा मन स्थिर नहीं हुआ है। आपके त्यागने से मेरा सम्पूर्ण शरीर जड़ हो गया है। अतः हे कृपासिन्धो ! आप मेरे पर कृपा कीजिये आप मुझे हताश करने योग्य नहीं हैं। आपके आश्लेषमात्र से मैं विज्वर हो जाऊँगी। ऐसा कहकर मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी को तिरछी नजर से देखा जिससे सर्वज्ञ सर्वयोगवित् कामदेव ने प्रगट होकर पांच बाण छोड़े। कामदेव के अस्त्र से हत चित्त एवं मनको रोकने में असमर्थ ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति करना।

३३ ब्रह्माणं प्रति मोहिन्याः शापः ७६१

ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर उनके समीप स्थित हो गये। काम विह्वल मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी का वस्त्र पकड़कर खींचा। तब ब्रह्माजी ने भय से आतुर हो अमृततुल्य वचन कहे कि हे मोहिनि ! तुम स्त्रीजाति को संसार में निर्लज्ज मत

करो ऐसा कहते हुए ब्रह्माजी को काम से हत चित्तवाली मोहिनी ने छेड़ा व उनके वस्त्र को फिर खींचा। इतने में ब्रह्मतेज से देदीप्यमान मुनियों के समूह का आगमन। मुनियों ने ब्रह्माजी से पूछा कि स्वर्ग की वेश्याओं में प्रवरा मोहिनी का आपके पास आगमन कैसे हुआ ? तब ब्रह्माजी ने मुनियों से कहा – "यह नृत्य-गीत से थकी हुई जैसे कन्या पिता के पास रहती है वैसे ही मेरे पास खड़ी है।" ऐसा कहकर मुनियों के मध्य में ब्रह्म हँसे तथा सर्वज्ञ मुनिसमाज भी इस बात को सुनकर हँसने लगे। तदनन्तर मोहिनी का ब्रह्माजी को शाप।

दासीतुल्यांविनीताञ्च दैवेन शरणागताम्। यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम्
तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति योनरः सदा। भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम्॥

मोहिनी का मदनालय को प्रस्थान। ब्रह्माजी को भगवान् की शरण में जाने के लिये मुनियों का कहना। हतप्रभ ब्रह्माजी का भगवान् की शरण में जाना एवं स्तुति करना। भगवान् नारायण द्वारा ब्रह्माजी को आश्वासन। तत्पश्चात् नारायण के समीप दशमुख, शतमुख और सहस्रमुख ब्रह्माओं का आगमन। उनको देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा का दर्पभंग कारण "आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः"। तदनन्तर सर्वान्तर्यामी भगवान् का शाप निवारणार्थ उपाय कहना।

३४ जाह्नव्या जन्मवृत्तान्तः ७६५

भगवान् नारायण के स्थान में वृषारूढ़, व्याघ्रचर्माम्बरधर, सर्प की यज्ञोपवीत एवं भूरि जटाओं को धारण किये अर्धचन्द्र से युक्त भगवान् आशुतोष शङ्कर का आगमन। ऋषि-मुनियों एवं सम्पूर्ण इन्द्रादि देवता, आदित्य, वसु और सिद्ध चरणों का भी वहीं आगमन। नतकन्धर सम्पूर्ण देवताओं का शंकर को प्रणाम। तदनन्तर शंकर का स्वरतालयुक्त संगीत। जिससे सम्पूर्ण वैकुण्ठ जलपूर्ण हो गया। जलाधिष्ठात्री देवी गङ्गा का आगमन। गङ्गा के नामों की पृथक्-पृथक्

परिभाषा। इसीलिये मृत्यु समय में भी गङ्गाजल दिया जाता है। कलियुग में ५ हजार वर्ष तक गङ्गा की स्थिति बताई है।

३५ ब्रह्मणो गोलोकगमनम् ७६८
श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम् ७६९

भगवान् नारायण का कहना कि हे चतुर्मुख ब्रह्मन्! उठो तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ स्नान कर शापमुक्त हो पवित्र होओ। अब तुम शीघ्र ही मेरे स्थानों में सर्वश्रेष्ठ गोलोक में जाओ जहां प्रकृति की अंशकला मङ्गल को देनेवाली भारती मिलेगी। संसार के मूलस्वरूप भगवती प्रकृति का भजन करो। ब्रह्माजी का गोलोक में जाना तथा वहाँ पर भगवान् नारायण के मुखरूपी कमल से उत्पन्न सर्वविद्याधिदेवी वागीश्वरी भगवती सरस्वती को प्राप्त कर प्रसन्न होना। वहां से ब्रह्माजी का अपने स्थान ब्रह्मलोक में आना। अपने लोक में भी उसी वागीश्वरी भगवती भारती को कौतुकपूर्वक देखना। भगवती भारती के साथ ब्रह्माजी का सुखसम्भोग में निमग्न होना। ऐसा कहकर भगवान् ने राधिका से कहा कि यह सब पुराणों में गुप्त है अब आगे क्या सुनने की इच्छा है? तदनन्तर राधिका ने कहा कि स्वयं उपस्थित वेश्या को ब्रह्माजी ने क्यों ग्रहण नहीं किया? क्योंकि स्वयं उपस्थित स्त्री को त्यागने में महान् दोष है इस बात को जानते हुए विधाता ने मोहिनी का त्याग क्यों किया? राधिका के वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् मधुसूदन ने पाद्म कल्प का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। एक बार मेरे से प्रेरित ब्रह्माजी ने संसार की रचना में ब्रह्मतेज से देदीप्यमान मानसपुत्रों की रचना की एवं उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढ़ु, पञ्चशिख, विभु, असित, कपिल एवं मेरी कलाओं से उत्पन्न सिद्धों को प्रजा रचने के लिये कहा। वे पिता की बात न मानकर तप करने चले गये। पुनः क्रोधित ब्रह्मा ने एकादश रुद्रों को उत्पन्न किया। वशिष्ठादि ऋषियों की उत्पत्ति। कामदेव तथा एक कन्या की उत्पत्ति।

ब्रह्मा ने कामदेव को सम्मोहन आदि ५ वाण दिये। स्त्री और पुरुष को प्रसन्न करने में तत्पर रहो तथा सब का मोहन करो। जब ब्रह्माजी अपनी पुत्री को वरदान देने गये तव कामदेव ने अपने वाणों की परीक्षा करने के लिये उन्हें ब्रह्माजी पर छोड़ा। अति वृद्ध महायोगी ब्रह्मा उनसे मोहित हो गये। क्षणभर के बाद जब चेतना प्राप्त हुई तो वह अपनी पुत्री से सम्भोग करने को उद्यत हुए, तब कन्या दौड़ी और अपने भाइयों की शरण में गई। ऋषियों ने पिता से कहा यह क्या नीच कार्य कर रहे हैं ? आप वेद को जानने वाले हैं कन्या मातृवर्गों में मान गई है।

गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती।
पत्नी च भ्रातृसुतयो र्मित्रपत्नी च तत्प्रसूः॥
प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नीश्वश्रूः स्वकन्यकाः।
जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा॥
स्वाभीष्टसुरपत्नी च धात्रिकान्नप्रदायिका।
गर्भधात्री स्वनाम्ना च भयात्त्रातुश्च कामिनी॥
एतावेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः।
एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्तिकासु च॥

कन्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, ज्ञान देनेवाला, अभय देनेवाला, जन्म देनेवाला, मन्त्र देनेवाला और ज्येष्ठ भ्राता ये पिता वताये गये हैं इनका जो अपमान करते हैं वे नरक को प्राप्त करते हैं। ब्रह्माजी का ब्रह्म में लीन होना। कन्या पिता को मृत देख रोदन करने लगी। पुनः श्रीनारायण द्वारा ब्रह्मा को जीवित करना। ब्रह्मा द्वारा भगवान् की प्रार्थना। नारायण द्वारा ब्रह्मा को सत्कर्मों का उपदेश। हे ब्रह्मन्! कुमार्ग में जानेवाले को कृषिकर्मवाले भी निन्दा करते हैं। आज से तुम्हारा मन कभी भी परस्त्री एवं परवस्तु में नहीं रहेगा। यह कन्या कामदेव की कामिनी होगी।

---

३६ हरदर्पभङ्गवर्णनम् ७७४

पार्वतीदर्पभङ्गप्रसंगवर्णनम् ७७७

शंकरप्रशंसावर्णनम् ७७६

राधा एवं श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि ब्रह्मा कुलटा के शाप से अपूज्य कैसे हुए एवं उनका दर्पभङ्ग कैसे हुआ? उत्तर में भगवान् ने कहा ब्रह्मा को चिरकाल तक तपस्या करने पर जब मैंने वरदान दिया तो उन्हें मैं सर्व संसार का ईश्वर हूं ऐसा महागर्व हुआ। ब्रह्माण्ड में गर्वपर्यन्त ही उन्नति है ऐसा विचारकर ब्रह्मा का गर्व दूर किया गया। प्रथम ब्रह्मा का गर्व चूर्ण कर अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्र, रवि, वह्नि, दुर्वासा, धन्वन्तरि और अन्य क्षुद्र एवं बड़ों का जो गर्व नाश किया वह तुम्हें कहता हूं। वृकासुर की शङ्कर की तपस्या करना उससे शङ्कर का प्रसन्न होना। वृक ने वरदान माँगा कि जिसके शिर पर मैं हाथ रक्खूं वही भस्म हो जाय। शङ्कर ने तथाऽस्तु कह दिया। वृकासुर का पार्वती की अभिलाषा से शिव के मस्तक पर हाथ रखने के लिये दौड़ना। पुनः भगवान् द्वारा संकटापन्न शङ्कर की रक्षा एवं वृकासुर का भस्म होना। एक समय त्रिपुरासुर को मारने के लिये मेरे दिये त्रिशूल एवं कवच को छोड़ रुद्र युद्ध में गये। दोनों का एक वर्षपर्यन्त युद्ध हुआ। पहले पृथ्वी में युद्ध कर एक मास पर्यन्त आकाश में युद्ध हुआ। राक्षस ने अपने बाणों से शङ्कर के रथ एवं बाणों को तोड़ दिया। शङ्कर ने दानव पर मुष्टिप्रहार किया जिससे उसको एक क्षण मूर्छा हुई। चेतना प्राप्त कर दैत्य ने सोये हुए शङ्कर को रथ सहित नीचे गिरा दिया। देवताओं में हाहाकार मच गया। शङ्कर ने भी शीघ्र ही मेरी स्तुति की। तब मैंने विप्ररूप धारण कर सोये हुए शङ्कर को सीङ्गों से उठाया उन्हें अपना कवच और त्रिशूल दिया। पार्वती के दर्पभङ्ग का वर्णन आगे किया जायगा। शङ्कर की प्रशंसा का वर्णन। शङ्कर भी पञ्चवक्त्रों से मेरा ही ध्यान करते हैं।

३७ हरनिर्माल्यशापप्रसंगवर्णनम् ७८०

शिवनिर्माल्य के शाप का वर्णन - एक समय वैकुण्ठ में भोजन करते हुए विष्णु की सनत्कुमार ने गुप्त स्तोत्रों से स्तुति की। प्रसन्न हुए भगवान् ने सनत्कुमार को भुक्त अन्न देकर कहा कुछ अपने वन्धुओं के लिये रखना। उसे सनत्कुमार ने सिद्धाश्रम में शङ्कर को दिया। उस अन्न को भक्षण करने से नाचते-गाते हुए शङ्कर मूर्छित हुए इसी वीच पार्वती का आगमन। पार्वती ने सनत्कुमार से शङ्कर की मोहावस्था का कारण पूछा। सनत्कुमार ने सब यथावत् वर्णन किया। पार्वती का शाप देने के लिये उद्यत होना एवं शङ्कर द्वारा स्तुति। पार्वती ने कहा मैं आपकी किङ्करी हूं आपने नारायण का प्रसाद मुझे नहीं दिया विष्णु का नैवेद्य सबसे उत्तम होता है। जो विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता है उसे साठ हजार वर्ष तक की हुई तपस्या का फल मिलता है। इसलिये हे महेश्वर! आपने विष्णु के प्रसाद से मुझे वञ्चित रक्खा है उसका फल यह है कि—

अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव। ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते॥

जो तुम्हारे निर्माल्य को ग्रहण करेंगे वे एक जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त होंगे। पार्वती का रोदन करना। शङ्कर के कण्ठ पर रोती हुई पार्वती का दृष्टिपात उससे नीलकण्ठ हो गये। शङ्कर द्वारा पार्वती की स्तुति।

३८ दुर्गादर्पविमोचनम् ७८३
हिमालयकृत शिवस्तोत्रम् ७८७

भगवान् श्रीकृष्ण का भगवती राधिका से कहना कि हे देवि! तुमने जगद्गुरुशङ्कर का दर्पभङ्ग सुना अब मेरे द्वारा दुर्गा का दर्पभङ्ग सुनो। जगत् जननी भगवती का सम्पूर्ण देवताओं के तेज से प्रगट होना एवं समग्र दानवेन्द्रों को नष्ट कर देवकुल की रक्षा करना। तदनन्तर उनका प्रजापति दक्ष के घर

सतीरूप में जन्म लेना। देवताओं के कार्यसाधन के लिये पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर द्वारा सती का पाणिग्रहण। दैवयोग से देवसभा में दक्ष का शिव के साथ मानसिक अभिवादन को लेकर मनमुटाव। दक्ष का यज्ञ करना जिसमें शङ्कर को छोड़ सबको निमन्त्रण भेजना। देवताओं का स्त्रियों सहित दक्षयज्ञ में आना। दक्षपुत्री सती का भगवान् शङ्कर को पिता के यज्ञ में चलने के लिये कहना। शंकर के निमन्त्रण न देने से मना करने पर भी सती का पिता के घर आना। शंकर के शाप से सती का दर्पभङ्ग होना। यज्ञ में गई हुई सती का पिता ने वचनमात्र से भी स्वागत नहीं किया। वहांपर अपनी पति की निन्दा सुनकर सती ने देह त्याग दिया। सती का पार्वती रूप में हिमालय के घर जन्म। पार्वती को यह आकाशवाणी हुई कि शिव को कठोर तप करनेसे ही प्राप्त करोगी। पार्वती ने यौवन से गर्वित हो संसार में मेरे से अधिक सुन्दर कौन है शंकरजी मुझे विना तपस्या के ही ग्रहण करेंगे, ऐसा विचार कर तप नहीं किया। दूत का हिमालय के पास आना। दूत ने कहा कि अक्षयवट के पास शंकरजी विराजमान हैं उनका पूजन करो। शंकर के स्वरूप को देख हिमालय का स्तुति करना।

३६ मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम् ६८८
शिवसमीपे पार्वतीगमनम् ७८६

हिमालय द्वारा शंकर की पूजा। मेनका का स्त्रियों के साथ महादेवजी के दर्शनार्थ आगमन। शिव के रूप को देख मेनका का प्रसन्न होना। कामातुर स्त्रियों का मोहित होना। स्त्रियों का शंकर के विषय में नाना तरह की वार्ता करना। पार्वती का शंकर के पास जाना। पार्वती ने शंकर को सात प्रदक्षिणा की तब शङ्कर ने कहा हे सुन्दरि! तुमको सुन्दर पति की प्राप्ति होगी तथा नारायण के समान गुणवाला पुत्र होगा और तुम्हारी संसार में पूजा होगी एवं

हे सुन्दरि। तीर्थ, कान्त, अभीष्टदेव, गुरु, मन्त्र और औषध में जैसी भावना होती हैं, वैसा ही फल प्राप्त होता है। शङ्कर का ध्यानमग्न होना। इन्द्र की आज्ञा से शंकर के तपोभङ्ग के लिये कामदेव का आना। कामदेव का शंकर पर बाण छोड़ना। क्रोधित महादेव के कपालस्थित तीसरे नेत्र से अग्नि का निकलना। देवों द्वारा महादेव की स्तुति। क्रोधाग्नि से कामदेव का भस्म होना एवं रति का विलाप। रतिविलाप को देख पार्वती को मूर्छा तथा पार्वती का दर्प भङ्ग। देवों द्वारा रति को आश्वासन। पार्वती की कृपा से रति की तपस्या। शङ्कर की कामदेव की प्राप्ति।

४० राधिकाकृष्णसंवादवर्णनम् ७६१

पार्वतीसमीपे शिवस्य गमनम् ७९३

पार्वतींप्रति शिववाक्यम् ७९५

मेनकाशैलयोः शिवरूपदर्शनम् ७९७

देवान् प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम् ७९९

राधा और श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि पार्वती ने क्या कठोर तप किया तथा किस प्रकार से रति ने कामदेव को जीवित किया? साथ ही पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन कीजिये। श्रीकृष्ण ने कहा कि माता-पिता के द्वारा रोकने पर भी पार्वती तप करने के लिये चली गईं। एक वर्ष तक निराहार रहकर, ग्रीष्म ऋतु में चारों तरफ अग्नि जलाकर, वर्षा में श्मशान में योगासन लगाकर और शीतकाल में जल में खड़ी होकर वह मन्त्र जपने लगी। इतनी कठोर तपस्या करने पर भी शंकरजी प्रत्यक्ष नहीं हुए तब अग्निकुण्ड में प्रवेश करने को उद्यत हुईं। तपस्या से कृश तथा अग्नि में गिरती हुई पार्वती का देखकर कृपा-सिन्धु शंकर बालकरूप धारण कर उसके पास गये। बालकरूप शंकर का पार्वती

के साथ वार्तालाप। शंकरजी का पार्वती से कहना कि हे भद्रे ! तुम कल्याणरूप शिव को पतिरूप में वरण करने की इच्छा रखती हो। जो तुम संहारकर्ता को पति बनाने की इच्छा रखती हो ऐसी कौन स्त्री है जो सबका संहार करनेवाले पति की इच्छा करे। हे सुन्दरि ! यदि तुम उस सर्वलोक भयंकर संहारकर्ता की इच्छा रखती हो तो वह तुम्हें मिलेगा। उस अभीष्टदेव को सेवन करने से तुम्हारी मोक्ष नहीं होगी। भगवान् हरि की स्मृति ही अमोघ एवं सम्पूर्ण मङ्गलों को देनेवाली है। अब तुम शीघ्र ही पिता के घर जाओ वहाँपर शंकरजी के दर्शन होंगे ऐसा कहकर शंकर का अन्तर्धान होना। पार्वती का पिता के घर जाना। एकदिन हिमालय का तप करने को जाना एवं प्राङ्गण में सुखपूर्वक बैठी हुई मेनका और पार्वती के पास गाते हुए भिक्षुक का सहसा आगमन। भिक्षुक के गायन को सुनकर नगरके नरनारी, बालक और युवा सभी मोहित हो गये। पार्वती ने भी मूर्छित अवस्था में हृदय में शङ्कर को देख मन-ही-मन प्रणाम कर वर मांगा कि आप मेरे पतियोग्य हैं। फिर शंकर को हृदय में न देख पार्वती को चेतना प्राप्त हुई। मेनका द्वारा भिक्षुक को नानाविध आभरणों का दान। भिक्षुक ने कहा पावती के बिना आप से भिक्षा नहीं लेंगे। भिक्षुक के भिक्षा न लेने पर मेनका का तिरस्कार। हिमालय का आगमन। हिमालय को शंकरजी के नानाविध रूपों के दर्शन। भिक्षुक का अन्तर्धान। मेनका और हिमालय को ज्ञान प्राप्ति। देवताओं की परस्पर मन्त्रणा। पुनः बृहस्पति के साथ विचार। बृहस्पति द्वारा देवों को समझाना।

---

४१ देवब्रह्मसंवादवर्णनम् ८००
विप्ररूपेण शिवस्य हिमालयसमीपेगमनम् ८०१
हिमालयवशिष्ठ संवादवर्णनम् ८०३
अनारण्यकन्यकोपाख्यानम् ८०७

देवताओं का ब्रह्माजी के साथ वार्तालाप। देवों ने कहा हे ब्रह्मन्! हिमालय रत्नों की खान है अगर अपनी पुत्री शंकरजी को देंगे तो हिमालय की भी मोक्ष हो जायगी तथा पृथ्वी भी रत्नगर्भा नहीं रहेगी। अतः आप हिमालय के पास जाकर शंकरजी की निन्दा करें। ब्रह्मा ने कहा हे देवो! मैं शंकर की निन्दा करने में समर्थ नहीं हूं। शंकर को ही भेजिये वही अपनी निन्दा करेंगे। देवताओं का शंकर की स्तुति करना। स्तुति से प्रसन्न हो देवों को आश्वासन देकर विप्ररूपधारण कर शिवजी का हिमालय के घर जाना। पार्वती ने विप्ररूप शंकरजी को प्रणाम किया तथा विप्र ने आशीर्वाद दिया विप्र एवं हिमालय का वार्तालाप। विप्र ने कहा मैंने सुना है कि आप शंकरजी को अपनी लड़की देना चाहते हो परन्तु श्मशानवासी सर्प आभूषणवाले शंकरजी को न देकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारायण पार्वती के योग्य हैं। इस विषय में पार्वती को छोड़ अन्य बान्धवों से मन्त्रणा करो। क्योंकि रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती कुपथ्य रुचिकर होता है। विप्ररूप शंकरजी का अपने स्थान जाना। मेनका ने कहा हे शैलेन्द्र! मैं शंकर को अपनी लड़की नहीं दूँगी, विषभक्षण करूँगी अथवा वन में जाऊँगी। इस प्रकार बातचीत करती हुई मेनका पृथ्वी पर सो गई। पश्चात् सप्तर्षि एवं अरुन्धती का आगमन। अरुन्धती का मेनका के साथ वर्तालाप तथा हिमालय का वशिष्ठ से। हिमालय ने कहा—शंकरजी के न कोई आश्रम है न बान्धव ऐसे अयोग्य वर के लिये कन्या देनेवाला पिता नरकगामी होता है। वशिष्ठ ने कहा—हे शैलेन्द्र! लोक में तथा वेद में तीन तरह के वचन कहे हैं—

असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतम् श्रुतिसुन्दरम्। सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितञ्च कदाचन।
आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम्। दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम्॥
श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम्। सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम्॥

शंकरजी सब तरह से योग्य हैं वही संसार के कर्ता, पालक एवं संहर्ता हैं। हे शैल! पार्वती पूर्वजन्म में दक्ष के घर में जनमी थी उस समय इसका नाम सती था अब वही मेना के गर्भ से उत्पन्न हुई है इसलिये पार्वती को शंकरजी के लिये प्रदान कीजिये। शंकरजी तो योगिराज हैं और विवाह करने को उत्सुक भी नहीं हैं। परन्तु देवताओं की प्रार्थना से तथा ब्रह्माजी के कहने से विवाह स्वीकार किया है। अगर शंकर के साथ पार्वती का विवाह नहीं करोगे तो विवाह भावी बल से अवश्य शंकरजी के साथ होगा ही, क्योंकि शंकर ने द्विजरूप से पार्वती को वरदान दिया है। शंकरजी, नारायण तथा अन्य देवों को साथ ले तुमसे युद्ध कर पार्वती को ले जायेंगे। एक पुत्री के लिये सब सम्पत्ति नष्ट करवाना उचित नहीं। देखो, अनारण्य ने अपनी लड़की को ब्राह्मण को दे विप्रशाप से मुक्त हो गया। मनुवंश के मङ्गलारण्य नामक मनु तपस्वी एवं ज्ञानी हुआ। सन्तान न होने से वह पुष्कर में तप करने चला गया। पुनः शंकरजी की कृपा से अनारण्य नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। उसके पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। एक समय महर्षि पिप्पलाद ने स्त्रियों में रत गन्धर्व को देखा। मुनि पुष्पभद्रा में स्नान करने जारहे थे तब पद्मा नजर आई। मुनि ने पूछा यह किसकी कन्या है। मनुष्यों ने कहा यह अनारण्य की कन्या पद्मा है। मुनि अनारण्य की सभा में गये। राजा ने पूजा की तब मुनि ने कहा तुम अपनी कन्या मुझे दो। राजा मुनि के वचन सुनकर चुप हो गया तब मुनि बोले मुझे अपनी कन्या देदो नहीं तो मैं भस्म कर दूँगा। राजा ने अपनी रानी से सलाह कर अपनी पुत्री महर्षि को देदी।

---

४२ अनारण्यकन्यकोपाख्यानम् ८०८

सतीदेहत्यागवर्णनम् ८१३

वशिष्ठ ने कहा हे शैलराज ! अनारण्य कन्या मन, वचन और कर्म से मुनि की सेवा करने लगी। एक समय गङ्गा में स्नान करने के लिये जाती हुई पद्मा को नृपवेशधारी धर्म ने देखा और कहा हे सुन्दरि ! तुम जरातुर वृद्ध मुनि के पास शोभा नहीं देती हो। अतः इसको छोड़ सहस्र सुन्दरियों के पति और कामशास्त्र में पण्डित मुझे अङ्गीकार करो। इतना कह वह रथ से उतर पद्मा का हाथ पकड़ने के लिये तैयार हुआ तब पद्मा ने कहा—हे पापिष्ठ ! दूर जाओ यदि कामभाव से मुझे देखोगे तो भस्म हो जाओगे। पिप्पलाद मुनि को छोड़ स्त्रीजित एवं रतिलम्पट के पासकभी भी नहीं जाऊँगी क्योंकि—"स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति"। तुमने जो माता को स्त्रीभाव से वचन कहा है अतः तुम्हारा नाश हो जायगा। सती का शाप सुनकर धर्मराज ने नृपरूप त्यागकर अपना रूप धारण किया और सती से प्रार्थना की। पद्मा ने कहा हे धर्मराज ! सती का शाप अन्यथा नहीं होगा परन्तु तुम्हारा क्षय त्रेतायुग में एक पद तथा द्वापर में दो पाद कलियुग में तृतीयपाद तथा शेष कलि में चतुर्थ पुनः सत्ययुग में पूर्ण हो जायगा। तुम्हारा रहने का स्थान, वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता, बुद्धिमान्, वानप्रस्थ, भिक्षुक, धर्मशील राजा, एवं सद्वैश्यजाति में रहेगा। देवगुरु ब्राह्मणों की निन्दा करनेवालों में, सुरापान कलह स्थानों में, कन्या विक्रय करनेवालों में तथा पति की निन्दा करनेवाली स्त्रियों में तुम्हारा स्थान नहीं रहेगा। धर्मराज ने पद्मा को वरदान दिया कि तुम्हारा पति युवा हो तथा मार्कण्डेय से भी अधिक चिरजीवी हो और तुम दश पुत्रों की माता बनो यही आशीर्वाद है। इसलिये पार्वती को शङ्करजी के लिये दानकर कृतार्थ हो जाओ। यह पूर्वजन्म दक्ष

पुत्री सती थी तथा कलह के कारण योगाग्नि से गङ्गा तट पर शरीर त्याग किया था। सती का देहत्याग सुनकर शंकर का देवी-शरीर के पास जाना।

४३ सतीदेहत्यागानन्तरं शङ्करविलापवर्णनम् ८१४

शङ्करं प्रति विष्णोः प्रबोधवाक्यम् ८१७

शङ्करकृतप्रकृतिस्तोत्रम् ८१६

जाह्नवी के तटपर सती के शरीर को देख शंकरजी मूर्छित हो गये। स्त्री का विरह बलवान् है जो योगिराजों के गुरु शंकर को भी बाधा करता है। शंकरजी ने विलाप करते हुए कहा—हे सति! उठो मैं तुम्हारा स्वामी हूं तुम्हारे विना मैं शवतुल्य हूं।

शक्तोऽहञ्च त्वया सार्द्धं सर्वशक्तिस्वरूपया। शक्तिहीनः शवशमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु

सती के विरह में उद्विग्न हुए महादेव सती को वक्षःस्थल पर रख पागल की तरह चलने करने लगे और बारम्बार हे सति! हे साध्वि!! कहकर नेत्रों से आंसू गिराने लगे। जिनसे दो योजन में फैला हुआ एक तालाव हो गया वहांपर स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता तथा सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। सती के अङ्गों से जगह-जगह सिद्धपीठ हो गये। महादेव ने अवशिष्ट अङ्गों का संस्कार कर अस्थिमाला बना कण्ठभूषण बना लिया। शंकर सती के भस्म को शरीर में धारण कर हे सति! हे प्राणेश्वरि!! कह फिर मूर्छित हो गये। पश्चात् पार्षदों सहित नारायण तथा ब्रह्मा, शेष, धर्म और देवों का शंकरजी के पास आना। भगवान् नारायण ने शंकर को चेतना देकर समझाया। नारायण ने कहा कि कण्व शाखोक्त दिव्यस्तोत्र से जगन्माता की स्तुति करो उससे तुम्हारा स्त्री विरह दूर हो जायगा। महादेव का प्रकृति की स्तुति करना। स्तुति के बाद सौ भुजावाली, आकाश में रत्नसार रथ में बैठी हुई देवी को देख पुनः स्तुति

करने लगे। प्रकृति ने प्रसन्न हो कहा--हे महादेव! आप मेरे प्राणों से प्रिय हो और जन्म-जन्म में मेरे पतिदेव हो। मैं पर्वराज हिमालय के घर जन्म ले आपकी पत्नी बनूंगी। आप विरह ज्वर को छोड़ दीजिये। इतना कहकर देवी का अन्तर्धान होना। देवों का अपने-अपने स्थान पर जाना। इस शिवकृत स्तोत्र का पाठ करने-वाले को जन्मजन्मान्तर में भी स्त्रीविरह नहीं होता है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

४४ पार्वतीपरिणयवर्णनम् ८२०

हिमालयकृतशिवस्तोत्रम् ८२३

वशिष्ठजी का वचन सुन मेना चकित हो गईं एवं पार्वतीजी हँसी। अरुन्धती ने मेना को प्रबोधित कर शोक दूर किया। हिमालय ने वशिष्ठ की आज्ञा से कई स्थानों पर पत्र भेज शिवजी के पास मङ्गल पत्रिका भेजी। हिमालय ने मङ्गल दिन देख वैवाहिक कार्य आरम्भ कर दिया। भगवान् नारायण का पार्षदों सहित हिमालय के यहाँ जाना। ब्रह्माजी का देवताओं के साथ आगमन। शंकर को देखने के लिये नगरवासी स्त्रियों का आगमन। शंकर के स्वरूप को देख कई स्त्रियाँ मोहित हो गईं और कई एक कहने लगीं कि ऐसा वर आजतक नहीं देखा पार्वती भाग्यवती है। हिमालय ने वस्त्र, चन्दन एवं आभूषणों से विधानपूर्वक वेदमन्त्रों से शंकरजी को पार्वती के अर्पण कर दिया। दहेज में दास-दासी, रत्न एवं वस्त्र दिये तदनन्तर हिमालय ने शंकरजी की स्तुति की। हिमालयकृत स्तोत्र का पठन करने से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

---

४५ पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम् ८२४
देवस्त्रीणां शङ्करेण सह हास्यालापः ८२७
शङ्करविवाहवर्णनम् ८२६

शंकरजी का पार्वती के साथ वेदविधान से विवाह होने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर मङ्गलकार्य कर हिमालय के अन्तर्वास में जाना; वहाँ सपूर्ण देवस्त्रियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और देवकन्या, नागकन्या, मुनिकन्या आदि शंकरजी से हास्यालाप करने लगीं। उनके हास्यों को सुन शंकरजी बोले हे देवियों! तुम सब जगत् की माताएँ हो पुत्र के साथ चपलता का व्यवहार नहीं करना चाहिये। तब देवियाँ चित्रलिखित पुत्तलियों की तरह चुप हो गईं। प्रातःकाल नानावाद्यों के साथ सब चलने की तैयारी करने लगे। तब धर्मराज ने महादेव से कहा अब यात्रा का शुभमुहूर्त है, सिद्ध कीजिये। यात्रा के समय मेना ने महादेवजी से प्रार्थना की कि मेरी पुत्री के दोषों को क्षमा कर उसका पालन करना। मेना का पार्वती से मिलन। शंकर पार्वती का कैलाश गमन। वहां मङ्गल साज सजाकर वायुपत्नी, कुवेरपत्नी, शुक्र की स्त्री तारा आदि असंख्य स्त्रियों ने उनको वासस्थान पर पहुंचा दिया। शिवजी का पार्वती को पूर्ववृत्तान्त का स्मरण करवाना। देवों का अपने-अपने स्थानों में गमन। नारायण एवं ब्रह्माजी भी अपने स्थान को चले गये। मेनका का पार्वती को लाने के लिये मैनाक को भेजना। पार्वती का आगमन तथा माता से मिलन पुनः शंकर पार्वती का हिमालय पर वास।

---

४६ श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम् ८२०
मङ्गलवर्णनम् ८३३

राधा ने श्रीकृष्ण से पूछा कि रति ने चिरकाल से मृत पति को शंकर से पुनः प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्रियों को पति का वियोग मरण से भी दुष्कर है और फिर मिलना तो परम दुर्लभ सुख है। बहुत दिन से सती के वियोग से व्याकुल शंकर ने पार्वती को प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्री का विरह पुरुषों को अत्यन्त दुष्कर है तथा फिर मिलना प्राणदान से भी अधिक सुखकर है। श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! रति ने मृत पति को प्राप्त कर अपना तथा पति का सुन्दर वेष बनाकर रत्नयुक्त विमान में बैठकर नाना स्थानों में विहार किया। शंकरजी भी शक्ति को प्राप्त कर रत्नयान से नाना स्थानों में घूमते हुए क्रीड़ा करने लगे। शिवशक्ति का क्रीड़ा विहार देखकर पृथ्वी भाराक्रान्त हो गई उस भार से शेष तथा शेष के भार से कच्छप तथा उसके भार से सम्पूर्ण वायु और वायु से भयभीत देवताओं ने नारायण से कहा। नारायण ने ब्रह्मा से कहा कि हे विधे ! श्रीशङ्करजी का संभोग कोई भी भेद नहीं कर सकता वह एक हजार वर्ष बाद स्वयं विराम को प्राप्त होगा। जो कोई स्त्री-पुरुष का रति विच्छेद करता है उसका जन्मजन्मान्तर तक स्त्री पुरुष में भेद हो जाता है अन्त में कालसूत्र नरक में जाता है। उदाहरण जैसे—रम्भायुक्त इन्द्र का भेद दुर्वासा ने किया तो उसको स्त्रीविच्छेद हुआ। अन्त में शंकर की कृपा से दिव्य हजार वर्ष के बाद दूसरी पत्नी मिली। रोहिणी सहित चन्द्रमा का रति वियोग महर्षि गौतम ने किया तो उसे स्त्रीवियोग हुआ। पुनः शिवजी के कृपा से दिव्य हजार वर्ष बाद अहल्या को प्राप्त किया। इसी तरह बहुतसे उदाहरण पाये जाते हैं। अजामिल जो वृषली के साथ रत था उसको किसी भी देवता ने विच्छेद नहीं किया। अन्त में मेरे नामोच्चारण

से मुक्ति मिली। यह मङ्गल वर्णन जो सुनता है उसको कभी भी पुत्र, स्त्री एवं बन्धुविच्छेद नहीं होता।

४७ इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ८३४

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके! इन्द्र के दर्पभङ्ग को सुनो। इन्द्र सव देवताओं का मालिक बन तपस्या से सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कर सम्पत्ति से मूढ़ हुआ ब्रह्मस्वरूप को नहीं मानता था। प्रकृति ने उसे शाप दिया। उसके शाप से हतवुद्धि इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु को प्रणाम नहीं किया। गुरुजी रुष्ट हो तप करने चले गये। इन्द्र ने गुरुपत्नी से प्रार्थना की तब तारा ने कहा हे इन्द्र! सुदिन दुर्दिन, सुख दुःख के कारण हैं। इन्द्र का गङ्गातट पर गमन वहां पर अहल्या का दर्शन। कामातुर इन्द्र का गौतमपत्नी के साथ व्यभिचार करना। इन्द्र को गौतम का शाप कि तुम वेद को जानकर योनिलुब्ध हो गये हो अतः तुमको सहस्र योनियां होंगी पुनः सूर्य की आराधना करने से योनि नेत्र हो जायेंगे और मेरी प्राणेश्वरी को तुमने दूषित किया है अतः मेरे शाप से तथा गुरु के क्रोध से भ्रष्टश्री होजाओगे। अहल्या को शाप दिया कि तुम पत्थरकी होजाओगी पुनः श्रीराम के चरणस्पर्श से शुद्ध बनोगी। प्रकृतिदेवी की अवहेलना से इन्द्र को वृत्रासुर के मारने से ब्रह्महत्या की प्राप्ति। इन्द्र का ब्रह्महत्या से भयभीतहो मानस सरोवर में कमलनाल में प्रवेश होना। नहुष को इन्द्रपद की प्राप्ति। नहुष का इन्द्राणी की याचना करना दुःखित इन्द्राणी का तारा के पास गमन। तारा के कहने से गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना। इन्द्र की बृहस्पति से प्रार्थना। इन्द्र को संसारविजयनामक कवच का दान। अमरावती का निर्माणकथन। बालकरूप भगवान् का इन्द्र के पास गमन। बालक और इन्द्र का संवाद। बालक द्वारा इन्द्र को आध्यात्मिक उपदेश। इसी बीच अतिवृद्ध योगिराज का आगमन। इन्द्र ने ब्राह्मण को देख प्रणाम किया और पूजन की। बालकरूप

भगवान् ने विप्र से पूछा हे ब्राह्मण ! आपका क्या नाम है ? तथा कहाँ से आये हैं ? आपके मस्तक पर चटाई क्यों है ? मुनि ने कहा मैंने अल्पायु में गृहस्थ स्वीकार नहीं किया। मेरा लोमश नाम है वर्षादि की शान्ति के लिये यह चटाई है। मेरे शरीर में जितने रोम है उतनी ही मेरी आयु है। एक लोम गिरने से एक इन्द्र की आयु शेष होती है। ब्रह्मा के दूसरे प्रहर में मेरी मृत्यु है। असंख्य ब्रह्म चले गये हैं और चलेजायेंगे मैं भगवान् का स्मरण करता हूं मुझे पुत्र कलत्रादि की इच्छा नहीं। इसके बाद शिशुरूपी भगवान् का अन्तधान होना। इन्द्र ने विश्वकर्मा को रत्न दे विदा किया पुनः अपने पुत्र को राज्य देकर भगवान् की शरण जाने लगे तब इन्द्राणी ने गुरु बृहस्पति से कहकर इन्द्र को नीति पाठ पढ़वाया और इन्द्र फिर राज्य करने लगे।

४८ रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम् ८४३

राधिका का भगवान् श्रीकृष्ण से रवि के दर्पभंग विषयक प्रश्न। भगवान् श्रीकृष्ण का उत्तर कि एक दिन सूर्य भगवान् उदय होकर अस्त हुए उसी समय शंकरजी के वर से महासम्पन्न मदोन्मत्त माली और सुमाली नामक दैत्येन्द्र रात्रि को दिन करने के लिये तैयार हुए। उसके प्रभाव से रात्रि दिन में बदल गई। जिससे सूर्य ने रुष्ट हो अपनी शूल से उन दोनों दैत्यों को मारा। सूर्य की शूल के प्रहार से वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर गये। तब भगवान् शंकर ने अपने भक्तों को दुःखित देख उनको जीवदान दिया। इसपर भगवान् शंकरजी क्रोधित हो सूर्य को मारने के लिये दौड़े। तब भागा हुआ सूर्य ब्रह्माजी के शरण में गया। ब्रह्माजी ने भगवान् शंकरजी को रुष्ट देखकर वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति की जिससे प्रसन्न हो शंकरजी ने सूर्य को आवीर्वाद देकर स्वस्थान को प्रस्थान किया।

---

४९ वह्निदर्पभङ्गवर्णनम् ८४३

एक समय अग्निदेव शतताल प्रमाणवाली भयानक शिखा कर भृगुजी के शाप से क्रोधित होकर अपनेको तेजस्वी मान त्रैलोक्य को भस्म करने को उद्यत हुए। भगवान् ने अग्नि की सम्पूर्ण दाहिका शक्ति का संहार कर लिया पुनः शिशु रूप हो अग्नि से बोले—हे भगवन् ! आप क्यों क्रोधित हो इसका कारण कहो ? निरर्थक त्रिलोकी को क्यों भस्म करते हो। भृगु ने आपको शाप दिया है तो भृगु का ही दमन करिये। एक के अपराध से सब का भस्म करना उचित नहीं। इस संसार का कर्ता ब्रह्मा तथा पालक विष्णु एवं संहारकर्ता शंकरजी हैं। इतना कहकर ब्राह्मण वटुक शुष्क इन्धन ले अग्नि को जलाने के लिये कहा किन्तु अग्निदेव उस शुष्क पत्र एवं शिशु के बाल को भी जला न सके एवं लज्जायुक्त हो शिशु के आगे चुपचाप खड़े हो गये। इस तरह अग्नि का दर्पभङ्ग कर भगवान् का अन्तर्धान होना।

५० दुर्वाससो दर्पभङ्गवर्णनम् ८४६

दुर्वासा के दर्पभङ्ग का वर्णन—एक समय अम्बरीष राजा एकादशी का व्रत कर द्वादशी को पारण करनेको तैयारथे। उस समय दुर्वासा आ पहुंचे उन्होंने कहा मैं भूखा हूं मुझे भोजन दो। राजा ने उत्तम अन्न भोजन के रूपमें दिया ऋषि। केशयुक्त पायस को देख राजा को शाप देने को उद्यत हुए ओर जटा से सप्तताल प्रमाण-वाला पुरुष निकला वह राजा को क्रोध से मारने के लिये चला। राजा ने भगवान् का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् ने चक्रकृत्या पुरुष को भेजा और वह ऋषि का पीछा करने लगा। ऋषि सब लोकों में घूमता हुआ ब्रह्मलोक, कैलाश एवं वैकुण्ठ में गये वहां नारायण ने अभय दान देकर कहा कि राजा के पास जाओ भगवान् की आज्ञा से राजा के पास जाकर भोजन किया एवं राजा को

आशीर्वाद दिया तब राजा ने पारण किया। श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके! मेरा भक्त प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। सम्पूर्ण देव मेरे प्राण हैं और भक्तगण मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं।

५१ धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गवर्णनम् ८४७

नारायणांश भगवान् धन्वन्तरि की उत्पत्ति समुद्र से अमृत मथन करते समय बताई गई है। एक समय धन्वन्तरि शिष्यों सहित कैलाश पर्वत पर आरहे थे मार्ग में उन्होंने भयानक तक्षक को भक्षण करने के लिये आते हुए देखा। धन्वन्तरि के शिष्य ने उसे निर्विष कर उसकी मणि निकाल ली। क्रोधित वासुकि द्वारा सम्पूर्ण नागों को धन्वन्तरि के पास भेजना। नागों के श्वास से धन्वन्तरि के सम्पूर्ण शिष्य मृतप्राय हो गये तब धन्वन्तरि ने अमृत वर्षा कर उनको जिलाया तथा सर्पों को निश्चेष्ट बना दिया। वासुकि ने अपनी बहिन मनसा का स्मरण किया और कहा कि नागों की रक्षा करो इससे संसार में तुम्हारी पूजा होगी। मनसा ने कहा हे नागेन्द्र! शुभाशुभ कार्य होगा वह भाग्याधीन है किन्तु मैं यथोचित कार्य करूँगी। इतना कहकर मनसा का धन्वन्तरि के पास जाना। धन्वन्तरि एवं मनसा का परस्पर युद्ध। जब धन्वन्तरि को मनसा ने नागपाश से बाँध दिया तब धन्वन्तरि ने गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ ने नागास्त्र को नष्ट कर दिया। पुनः मनसा ने मन्त्रों से पवित्र भस्ममुष्टि का प्रयोग किया। उसको भी विफल देख शिव से दी हुई अमोघ त्रिशूल का प्रयोग किया तब ब्रह्मा एवं शम्भु का आगमन। ब्रह्मा द्वारा धन्वन्तरि को समझाना कि मनसा के साथ युद्ध उचित नहीं है यह त्रिलोकी को भस्म कर सकती है इसलिये मनसा का पूजन करो। धन्वन्तरि द्वारा मनसा की पूजा एवं स्तुति। देवी द्वारा धन्वन्तरि को वरदान। इस स्तोत्र का पठन करने से नागों से भय नहीं होता है।

---

५२ ## राधावञ्चनम् ८५१

राधामाधवयोः रासवर्णनम् ८५३

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! बड़ों एवं छोटों को दर्पभङ्ग मैंने तुमसे कहा अब वृन्दावन में जाओ मैं भी विरहव्याकुल गोपियों को देखूँगा । कृष्ण का वचन सुन राधा ने कहा मेरे को भी ले चलो मैं जाने में समर्थ नहीं हूं। तब कृष्ण बोले मेरे ऊपर चढ़ो इतना कह कृष्ण अन्तर्धान हो गये। कृष्ण विरह में राधा का विलाप। चन्दन वन में कृष्ण का राधा से मिलन। अन्य गोपियों को कृष्ण का दर्शन। राधा माधव की रासक्रीड़ा का वर्णन। नारद ने नारायण से पूछा कि पहले राधा शब्द का उच्चारण कर पीछे कृष्ण शब्द का उच्चारण करते हैं इसका कारण क्या है ? तब नारायण बोले इसके तीन कारण हैं प्रकृति जगत् की माता है तथा पुरुष संसार का पिता है। त्रिलोकी में पिता से सौगुनी माता को बलवती कहा है । राधाकृष्ण एवं गौरीशङ्कर शब्द ही वेद में सुने गये हैं, कृष्णराधा और शिवगौरी नहीं। सामवेद कौथुम में "प्रसीद रोहिणीकान्त संज्ञया सह भास्कर प्रसीद कमलाकान्त" ऐसे शब्द मिलते हैं। पहले पुरुष शब्द का उच्चारण कर पीछे प्रकृति शब्द का उच्चारण करनेवाला मातृघाती होता है।

५३ ## श्रीकृष्णरासक्रीड़ावर्णनम् ८५४

रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाजल में स्नान कर गोपाङ्गनाओं के साथ जलक्रीड़ा कर राधा के साथ भाण्डीर वन में गये। विरह व्याकुल हुई गोपाङ्गना अपने-अपने घर को गईं। भाण्डीरवन में क्रीड़ा करने के बाद वासन्तीवन, चन्दनवन, चम्पककानन इत्यादि स्थानों में क्रीड़ा करते हुए जब राधा को निद्रा आगई तब श्रीकृष्ण स्वयं उनके मुख के पसीने पोंछ शृंगार करने लगे। पुनः नाना गोपियों का आगमन श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा का वर्णन।

५४ **श्रीकृष्णस्यमथुरागमनम्** ८५७

नारद ने पूछा कि भगवान् श्रीकृष्चन्द्र मथुरा क्यों गये और भगवान् के विना नन्दादिक गोप तथा प्राणेश्वरी राधा ने किस तरह समय विताया ? श्रीकृष्ण ने मथुरा में जाकर कौन-कौन काम किये ? नारायण ने कहा—कंस ने धनुर्मेध यज्ञ किया उसमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को बुलाया। वहांपर कृष्ण ने रजक, चाणूर, मुष्टिक, गज और कंस को मारकर माता पिता को बन्धन से छुड़वा कर कौतुकपूर्वक कुब्जा के साथ शृङ्गार किया। मालाकार का उद्धार तथा उद्धव द्वारा गोपियों को आश्वासन। सान्दीपनि गुरु से विद्याग्रहण। पवनेश्वर तथा जरासन्ध को मारना एवं उग्रसेन को राज्य प्रदान। द्वारकापुरी का निर्माण। रुक्मिणी का हरण। कालिन्दी, लक्ष्मणा, सत्या, जाम्ववती, मित्रविन्दा तथा नाग्नजिती का कृष्ण के साथ विवाह। भौमासुर को मारकर सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह। इन्द्र को जीतकर कल्पवृक्ष का लाना। शङ्करजी को जीतकर बाणासुर की भुजाओं का कृन्तन। तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से वसुदेव का दर्शन। सुदामा की शाप मुक्ति के वाद राधा का मिलन। पुनः चौदह वर्ष तक राधा के साथ रास क्रीड़ा। पुनः पृथ्वी का भार हरण तथा श्रीकृष्ण का स्वधामगमन। यशोदा, नन्द, वृषभानु तथा राधामाता कलावती का सामीप्यमोक्ष।

५५ **श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम्** ८५९

नारायण बोले भगवान् कृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी हैं, दुराराध्य हैं तथा सब सुख देनेवाले हैं। उनका चरित्र अपार है, जिनके भय से वायु चलता है, कूर्म शेष को धारण करते हैं, शेषजी इस पृथ्वी को धारण करते हैं। जिन महाविष्णु ने ब्रह्मा, शेष, शिव, धर्म, यम, साम्ब, चन्द्र, सूर्य, गरुड़, अग्नि, गुरु, दुर्वासा, जय, विजय, देव, दानव, नारद, काम, इन्द्र, लक्ष्मण, अर्जुन, बाणासुर, भृगु, सुमेरु,

समुद्र, वायु, वरुण, सरस्वती, दुर्गा पद्मा, पृथ्वी, सावित्री, गङ्गा और मनसाक दर्पभङ्ग कर प्राणेश्वरी राधा का भी दर्पभङ्ग किया तो अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या। सबका दर्पभङ्ग कर सब पर कृपा भी उन्हींने की। उनकी स्तुति करने को शंकर, ब्रह्मा, शेष, महाविराट् तथा सरस्वती भी समर्थ नहीं हो सकती एवं वेद भी जिनकी महिमा का गुणगान कर पार नहीं पासकते।

५६ महाविष्णोरहंकारभङ्गवर्णनम् ८६१

देवदानवादीनां दर्पभङ्गवर्णनम् ८६३

लक्ष्मीस्तोत्रम् ८६५

महाविष्णु के दर्पभङ्ग का वर्णन। महाविष्णु को अहंकार हुआ कि मेरे रोमों में सम्पूर्ण विश्व है तथा मैं सब का मालिक हूं। तब श्रीकृष्ण ने संहार भैरव का रूप धारण कर सम्पूर्ण शरीर को ग्रस लिया केवल शिर अवशेष रहा। तब श्रीकृष्ण ने उस पर कृपा की। ब्रह्मा को अहंकार हुआ कि मैं त्रिलोकी का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता हूं। तब श्रीकृष्ण ने गोलोक में पञ्चवक्त्र, षडूवक्त्र एवं सौ मुखवाले ब्रह्मा को दिखलाया। फिर समय पर मोहिनी द्वारा अपूज्य बना दिया। स्वकन्या सरस्वती को दिखाकर कामी बनाया। पुनः शङ्कर से दर्पभङ्ग करवाया तथा संसार में पूज्य बनाया। विष्णु को गर्व हुआ कि मैं जगत् का पालक हूं। उसे कृष्ण ने रामजन्म में आत्मविस्मृति करवाई। हनुमन्नाटक में आता है—"के यूयं वदनाथ नाथ किमिदमित्यादि"। शेषजी को गर्व हुआ कि मैं पृथ्वी को धारण करनेवाला हूं। एक समय नागों ने गरुड़ की पूजा की। अनन्त ने गर्व के वशीभूत हो नहीं की तब गरुड़ ने अनन्त को जीत लिया। तब श्रीकृष्ण ने उसकी मुक्ति करवाई। सदाशिव ने अपने दर्प के कारण विवाह नहीं किया तब श्रीकृष्ण ने मोह कराकर सती के साथ विवाह करवाया। फिर सती का देह त्याग उसके

विरह में शंकर का नाना स्थानों में भ्रमण पुनः पार्वती के साथ विवाह। त्रिपुरासुर को मारकर त्रिपुरारि बन गये। वृकासुर को वरदान कि जिसके शिर पर तुम हाथ रक्खोगे वही भस्म हो जायगा। तब उस दैत्य ने शंकरजी के शिरपर ही हाथ रखना चाहा। शंकरजी दौड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने बालक का रूप धारण कर उनको बचाया केदार कन्या द्वारा धर्मराज को शाप जिससे धर्म अत्यन्त कृश हो गये। शापान्त में त्रेतायुग में त्रिपाद तथा द्वापर में द्विपाद और कलि में एक पाद एवं कलि के अन्त में नष्ट होनेपर पुनः सत्ययुग में पूर्ण पाद की प्राप्ति कही। माण्डव्य के शाप से यमराज को शूद्र योनि की प्राप्ति। साम्ब को विमाता के शाप से गलितकुष्ठ की प्राप्ति। चन्द्रमा ने दर्प के वशीभूत हो तारा का अपहरण किया तब चन्द्रमा यक्ष्मा का रोगी हो गया। सूर्य का दर्पभङ्ग शङ्कर से, वह्नि का भृगुजी से, गुरु का अपनी स्त्री के हरण से, दुर्वासा का अम्बरीष से, जय विजय का ब्रह्म शाप से, देवों का दानवों से एवं दानवों का देवों से, नारदजी का ब्रह्माजी से, काम देव का शङ्कर से, लक्ष्मण का रावण प्रेरित शङ्कर की त्रिशूल से, स्वयं विष्णु का ब्रह्मशाप से, कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम से विप्रपुत्र के मरण में एवं कृष्ण का स्त्रियों के हरण समय और युद्ध में कर्ण से पार्थ का दर्पभङ्ग किया गया। वाणासुर का उषाहरण में, भृगुजीका दक्ष यज्ञ के समय, परशुराम का रामविवाह के समय, सुमेरु का वायु द्वारा शृङ्ग भग्न होने से, समुद्रों का अगस्त्यजी के पान करने से, और कलह से गङ्गा एवं सरस्वती का दर्पभङ्ग हुआ। दर्पयुक्त पार्वती का शंकर द्वारा त्याग पुनः कामदेव का भस्म एवं पार्वती का दर्पभङ्ग। दर्पयुक्त महालक्ष्मी को एक समय वैकुण्ठ जाते समय द्वारपालों ने रोक दिया। अपने तिरस्कार को देख अपिमानित हुई लक्ष्मी अपने शरीर को त्याग करने को तैयार हुई तब ब्रह्मादि देवताओं द्वारा लक्ष्मी की स्तुति। यह लक्ष्मी स्तोत्र सम्पूर्ण मङ्गल कामनाओं का देनेवाला है।

---

५७ पत्युर्महत्त्ववर्णनम् ८६६

देवताओं का स्तोत्र सुन लक्ष्मी ने कहा मैं शरीर को क्रोध एवं वैराग्य के कारण नहीं छोड़ती हूं, मैं इसलिये छोड़ती हूं कि जहां तृण और पहाड़ बराबर है जो भ्रूभङ्ग मात्र से एक लाख लक्ष्मी की रचना कर सकते हैं सेवक और स्त्री में जहां समान व्यवहार किया जाता है उनकी सेवा करने से क्या फल है ? जिस स्त्री की पति में भक्ति अथवा प्रेम नहीं है वह अशुचि, धर्महीन एवं सब कार्यों में वर्जित है। स्त्री के लिये सब से बढ़कर पति ही एकमात्र देव है। जो स्त्री अपने पति की निन्दा करती है अथवा द्वेष रखती है वह कुंभीपाक नरक में चौदह इन्द्र के समय बीतने तक रहती है। पति भक्ति से जो रहित है उसका किया हुआ सब धर्म भस्म हो जाता है।

या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम्। कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम्। पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम्॥

लक्ष्मी एवं ब्रह्मा का वार्तालाप। ब्रह्मा के कहने से लक्ष्मी का भगवान् के पास गमन। भगवान् ने लक्ष्मी से कहा मेरी स्त्री, पुत्र एवं भृत्य में सब जगह समता है। इतना कहकर भगवान् ने लक्ष्मी को वक्षःस्थल में स्थान दिया।

५८ पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनम् ८६८

पृथिवी को दर्प हुआ कि सब प्राणियों की आधारभूता मैं ही हूं। तब पृथु द्वारा भगवान् ने उसका अभिमान दूर करवाया। सावित्री को गर्व हुआ कि मैं वेदमाता हूं। तब श्रीकृष्ण ने उसके गर्व को दूर करने के लिये पुत्रों सहित उसको अदर्शित कर दिया। गङ्गा का दर्प जह्नु द्वारा एवं मनसा का दुर्गा से दूर करवाया। सुदामा के शाप से राधा का धरातल में जन्म।

---

५६ विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ८६६

नहुषोपाख्यानम् ८७१

शचीकृत गुरुस्तोत्रम् ८७६

मदोन्मत्त हुए इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति को रत्नसिंहासन से उठ प्रणाम नहीं किया। गुरुदेव रुष्ट हो अपने स्थान को चले गये किन्तु इन्द्र को शाप नहीं दिया। विना शाप ही इन्द्र का दर्पभङ्ग हुआ कि उसको ब्रह्महत्या की प्राप्ति हुई। ब्रह्महत्या से भयभीत हो इन्द्र का पद्मनाल में प्रवेश तदनन्तर नहुष का स्वर्ग में राज्य करना। नहुष ने सुन्दरी इन्द्राणी को देखकर कहा विधाता की गति बड़ी बलवान् है कि ऐसी सुन्दरी स्त्री होते हुए भी इन्द्र परस्त्री में लम्पट है। इसके समान रम्भा और तिलोत्तमा एवं उर्वशी भी नहीं है। हमारी स्त्री तो इसके सामने दासीतुल्य है। हे सुन्दरि ! मेरी सेवा करो जैसे गोलोक में राधा कृष्ण के वक्षःस्थल पर विराजमान है, ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर ब्रह्माणी, एवं वैकुण्ठनाथ के पास लक्ष्मी, उसी तरह तुम मेरे यहां रहो। मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ति कर दूँगा इत्यादि बहुतसे वचन कहने पर इन्द्राणी श्रीगुरुदेव एवं हरि का स्मरण कर बोली, हे वत्स हे महाराज ! राजा सब प्रजा का पालक होता है तथा भय से रक्षा करता है। महेन्द्र आज भ्रष्टश्री हो गये हैं तथा आप स्वर्ग के राजा हैं अतः वही राजा कहा जाता है जो प्रजा का पालन निश्चित रूप से करता है।

भयत्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता।
भ्रष्टश्रीश्च महेन्द्रोऽद्यत्वञ्च स्वर्गे नृपोऽधुना॥
यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम्।
गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः॥

पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली।
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता॥
गर्भधात्रीष्ट देवी च पुंसः षोडश मातरः॥

गुरुपत्नी, राजपत्नी, देवपत्नी, पुत्रवधू, माता-पिता की बहिन, शिष्य की स्त्री, सेवक की स्त्री, मामी, माता, भाई की स्त्री, सास, बहिन, पुत्री, गर्भधात्री एवं इष्टदेवी ये सोलह पुरुष की वेद प्रतिपादित माता हैं। तुम मनुष्य हो मैं देव स्त्री हूं अतः वेद रीति से तुम्हारी माता हूं यदि तुम्हारी रमण करने की इच्छा है तो अदिति के पास जाओ। हे पुत्र! सब कार्यों का छुटकारा हो सकता है किन्तु मातृगामियों का कभी नहीं। वे कुम्भीपाक नरक में दुःख पाते हैं उनके कीड़े पड़ जाते हैं। तुम अच्छे पुण्यों के प्रभाव से चन्द्रवंश में पैदा हुए हो अतः अपना क्षत्रियोचित धर्म पालन करो। जो स्वधर्महीन हैं वे नरक में जाते हैं। ब्राह्मणों का धर्म है कि तीन काल सन्ध्या एवं भगवान् की पूजन तथा व्रतादि करे। पतिव्रताओं का धर्म है पति की सेवा करना। साध्वी स्त्रियों के लिये परपुरुष पुत्र के समान है। क्षत्रियों का धर्म है कि वे दुष्टोंको दण्ड एवं सज्जनों का पालन करें। वैश्यों के लिये स्वधर्म का पालन एवं व्यापार कर्तव्य है। शूद्रों के लिये विप्रों को सेवा करना धर्म बताया है। अन्य भी बहुतसे धर्मों को वर्णन कर इन्द्राणी ने कहा पुत्र! स्वस्थान पर जाओ। नहुष ने कहा हे देवि! तुम्हारा कहना सब विपरीत है मैं तुम्हें यथार्थ धर्म कहता हूं कर्मों का फल भोग स्वर्ग है, पाताल एवं अन्य द्वीप में नहीं कहा है। पुण्यक्षेत्र भारत में शुभाशुभ करने पर अन्यत्र फल भोगना पड़ता है। हे सुन्दरि! यह कर्मस्थल नहीं है, भोगस्थल है अतः भोगस्थल में भोग्य वस्तु छोड़ना उचित नहीं। पुनः नहुष ने इन्द्राणी को धनादि का लोभ भी दिया परन्तु इन्द्राणी अपने सत्यव्रत से न डिगी। तब नहुष उसके चरणों में गिर उसके मार्ग को रोक दिया। राजा की यह अवस्था देख इन्द्राणी ने कहा—

मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः। मृत्युं न गणयेत्कामी कामेन हृतमानसः॥

त्यज मामद्य हेमत्त ! मातृतुल्यां रजस्वलाम।
ऋतोः प्रथमो दिवसोह्यद्य हेनृप ! मे ध्रुवम्॥
प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला।
द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा॥

शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपैत्र्ययोः। असच्छूद्रा समा सा च तद्दिने च परम्प्रति
प्रथमेदिवसे कान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् ।ब्रह्महत्याचतुर्थांशं लभते नात्रसंशयः॥
स पुमान्नहि कर्मार्हो दैवे पैत्र्ये च कर्मणि। अधमः स च सर्वेषां निन्दिताश्चायशस्करः
द्वितीये दिवसे नारीं यो व्रजेच्च रजस्वलाम्। कामतः परिपूर्णश्च गोहत्यां लभते ध्रुवम्॥

मधु, सुरा एवं काल से मतवाला हुआ मृत्यु को नहीं सोचता है। हे मत्त ! मुझको मातृतुल्य रजस्वला जान छोड़ दो। हे नृप ! आज ऋतु का प्रथम दिन है। स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनी, दूसरे दिन रजस्वला म्लेच्छ संज्ञावाली तीसरे दिन धोबिन एवं चौथे दिन शुद्ध होती है किन्तु देवपितृ कार्य के लिये नहीं उस दिन उसकी असत्शूद्रा संज्ञा मानी गई है। जो पुरुष प्रथम दिन रजस्वला के साथ संभोग करता है उसे ब्रह्महत्या का चतुर्थांश फल मिलता है। वह पुरुष देवपितृ कार्य के योग नहीं अपि तु अधम कहा गया है। दूसरे दिन रजस्वला के वास गमन करने से गोहत्या का पाप लगता है।

आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुरार्चने।
अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याङ्गिरसभाषितम्॥

तृतीयेदिवसे जायां यो हि गच्छे रजस्वलाम्। स मूढो भ्रूणहत्याञ्च लभतेनात्रसंशयः
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चार्हः सर्वकर्मसु। ससच्छूद्रा चतुर्थेह्नि न गच्छेत्ताम्बिचक्षण॥
यदि मां मातरं मूढ ! ग्रहिष्यसि बलेन च। ऋतयतीते दिवसे ममनञ्च करिष्वसि॥

तीसरे दिन जाने से भ्रूणहत्या का पाप लगता है। चतुर्थ दिन असत्शूद्रा संज्ञा कही है अतः उस दिन भी स्त्री के पास न जाय। नहुष एवं इन्द्राणी का

परस्पर कथोपकथन। दुःखित इन्द्राणी का अपने गुरु बृहस्पति के घर पर जाना वहांपर गुरु की स्तुति। हे गुरो ! मेरी रक्षा करो गुरु के समान कोई प्रिय एवं धर्म नहीं है। गुरु के रुष्ट होनेपर कोई रक्षा नहीं कर सकता है ।

गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवोमहेश्वरः । गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम्। गुरौ रुष्टेऽभीष्टदेवो नहि शक्तश्च रक्षितुम्

इतना कहकर इन्द्राणी ऊँचे स्वर से रोने लगी। उसका रोदन सुन तारा भी रोने लगी। तब गुरु ने कहा हे तारे ! इन्द्राणी का कल्याण होगा जल्दी ही इन्द्र की प्राप्ति होगी। इन्द्राणी को तारा का उपदेश। शचीकृत गुरु स्तोत्र को पूजा समय पढ़ने से गुरुदेव प्रसन्न होते हैं तथा अन्य सम्पूर्ण मनोवञ्छित फलों की प्राप्ति होती है।

६० शचीम्प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम् ८८१
नहुषोपाख्यानम् ८८१
शक्रमोक्षकथनम् ८८३

शची का स्तोत्र सुन गुरुजी प्रसन्न हो बोले—हे पुत्रि ! जैसे मेरे लिये कच की पत्नी पुत्री समान है वैसे ही तुम हो अतः तुम्हें कोई भी भय नहीं है पुत्र और शिष्य में कोई अन्तर नहीं। पिता, माता, गुरु, स्त्री, शिशु, अनाथ एवं बान्धवों को सदा ही पुष्ट रखना (पालन करना) चाहिये। जो माता, पिता तथा गुरु में अन्य मनुष्यों के समान बुद्धि रखता है उसकी पद-पद पर अपकीर्ति होती है। सम्पत्ति से मदोन्मत्त हुआ पुरुष यदि गुरु का अपमान करता तो उसका जल्दी ही नाश होता है। मैं इन्द्र की मोक्ष एवं तुम्हारी रक्षा करूँगा। कहा है—

शासितुं रक्षितुं शक्तः स एव गुरुरुच्यते।

नहुष के दूत ने इन्द्राणी के पास जाकर कहा देवि! नहुष के पास चलो तब गुरु ने कहा नहुष से जाकर कहो कि इन्द्राणी को यदि भोगना चाहते हो तो सप्तर्षियों से ढोई गई पालकी में बैठकर आओ। दूत ने राजा से सारी बातें कही तब नहुष ने तुरन्त सप्तर्षियों को बुलवाया। सप्तर्षियों ने कायर राजा से कहा हे पुत्र! तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर मांगो। तब नहुष ने कहा यदि आप सब कुछ देसकते तो मुझे इन्द्राणी का दान दो। इन्द्राणी सप्तर्षियों का वाहन चाहती है अतः आप सब मेरी पालकी को वहन करो। राजा का वचन ऋषियों ने स्वीकार किया, वे वाहक हो गये। राजा ने उनको देर करते देखकर डाँटा तब क्रोधित हो दुर्वासा ने कहा कि तुम महान् अजगर होओगे। पुनः धर्मपुत्र के दर्शन से तुम्हारी मोक्ष होगी पश्चात् वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी। राजा का सर्परूप होकर पृथ्वी पर गिरना। गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना। इन्द्राणी को इन्द्र की प्राप्ति। सोमयाग का विधान।

६१ इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ८७४

इन्द्रस्य अहल्याम्प्रतिगमनम् ८८४

नारायण बोले—इन्द्रदर्पभङ्ग का दूसरा वृत्तान्त सुनो। समुद्रमथन के समय दैत्यों को जीतकर इन्द्र बहुत गर्वित हो गया। तब श्रीकृष्ण ने बलि द्वारा इन्द्र का मद नष्ट करवाया। फिर अदिति के व्रत से तथा गुरु की स्तुति से राजा की प्राप्ति। कल्पान्तर में दुर्वासा द्वारा इन्द्र की लक्ष्मी नष्ट होना पुनः कृपालु मुनि द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति। लक्ष्मी के मद से मत्त हुए इन्द्र ने गौतमपत्नी अहल्या का अपहरण किया। पुनः गौतम के शाप से इन्द्र के शरीर में भग के से चिह्न हो गये। उसको देखकर ऋषिमुनि हँसे तथा देवता लज्जित हुए एवं बृहस्पति मृततुल्य हो गये। रवि की सहस्र वर्ष तपस्या करने से इन्द्र को सूर्य के वरदान से सहस्र एक

आँखें हो गई। नारदजी ने नारायण से इस विषय में प्रश्न किया तब नारायण बोले—पुष्कर में तीर्थयात्रा के समय मन्दाकिनी तट पर स्नान करती हुई अहल्या को इन्द्र ने देखा। कामी इन्द्र ने अहल्या के पास जाकर मधुरवाणी से कहा—जितना कामशास्त्र को मैं जानता हूं उतना गौतमजी नहीं जानते। तुम मेरे पास रहो इन्द्राणी को तुम्हारी दासी बना दूँगा। वह इतना कह अहल्या के चरणों में गिर पड़ा। तब अहल्या ने कहा जिन पुरुषों का मन परस्त्री में मग्न है उसका सब काम व्यर्थ है। परस्त्री का सेवन इस लोक में अपकीर्ति करनेवाला एवं परलोक में नरक प्राप्ति का कारण होता है। गौतमस्त्री ने घरपर जाकर अपने पति से सब समाचार कहे। मुनि हँसे और इन्द्र की निन्दा की। इन्द्र का समय पाकर गौतमरूप से अहल्या के पास जाना। इन्द्र एवं अहल्या को गौतम का शाप। इन्द्र को उन्होंने भगाङ्क होने का शाप तथा अहल्या को महावन में पत्थर की मूर्ति होने का शाप दे अहल्या से कहा कि त्रेता में रामचन्द्रजी के पैर की अङ्गुली स्पर्श करने से मुक्ति होकर फिर तुम मुझे प्राप्त करोगी।

६२ संक्षेपेण श्रीरामचरित्रं अहल्यामोक्षणञ्च ८८७

रामलक्ष्मणसमीपे शूर्पणखागमनम् ८८६

हनुमन्तं दृष्ट्वा सीतायाः कथोपकथनम् ८६१

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न कि स्वयम् दाशरथि राम ने किस प्रकार से गौतम की स्त्री अहल्या को मुक्त किया। हे महाभाग! सुख को देनेवाले भगवान् रामावतार को संक्षेप से मुझे कहिये। नारदजी के प्रश्न को सुन भगवान् नारायण ने कहा कि ब्रह्माजी की प्रार्थना से त्रेतायुग में भगवान् विष्णु स्वयं दशरथजी से कौशल्या में पैदा हुए। रामतुल्य गुणों से युक्त भरत का कैकेयी में और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का सुमित्रा में जन्म हुआ। विश्वामित्र से प्रेरित

राम-लक्ष्मण का सीता के पाणिग्रहण निमित्त मिथिला गमन। मार्ग में पाषाणरूप कामिनी को देख रामचन्द्रजी का विश्वामित्रजी से उसका कारण पूछना। विश्वामित्रजी से सम्पूर्ण रहस्य जानकर भगवान् राम का पैर की अङ्गुली का स्पर्श करना जिससे तत्क्षण ही उसका दिव्यरूप हो भगवान् को आशीर्वाद दे पति-मन्दिर में प्रस्थान करना। तदनन्तर राम का मिथिला जाकर धनुष तोड़ना तथा सीता से पाणिग्रहण। विवाहोपरान्त परशुरामजी का दर्पभङ्ग कर अयोध्या में आना। राजा दशरथ द्वारा पुत्र श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का उद्यम, जिसे देख भरत की माता कैकेयी का पहिले मांगे हुए राजा से दो वर लेना पहिले से राम को वनवास, दूसरे से भरत को राज्य मिलना। प्रेम में मोहित पिता को देख श्रीरामचन्द्रजी द्वारा समझाना।

तडागसतदानेन यत्पुण्यंलभतेनरः। ततोऽधिकञ्च लभते वापीदानेन निश्चितम्॥
दशवापीप्रदानेन यत्पुण्यं लभतेनरः। ततोऽधिकञ्च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः॥
दशकन्याप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः। ततोऽधिकञ्च लभते यज्ञैकेन नराधिपः॥
दशयज्ञेन यत्पुण्यं लभते पुण्यकृज्जनः। ततोऽधिकञ्च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च॥
दर्शने शतपुत्राणां यत्पुण्यं लभते नरः। तत्पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालनात्॥

नहि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।
नहि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः॥
नास्तिधर्मात्परोबन्धुर्नास्तिधर्मात् परं धनम्।
धर्मात्प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥

स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम्। यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन्। वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते

श्रीराम का बल्कल वस्त्र धारण कर सीता और लक्ष्मण सहित वन के लिये प्रस्थान। पुत्र विरह में राजा का प्राणत्याग। समय पाकर रावण की बहिन शूर्पणखा का राम के पास आना; भगवान् राम के रूप पर मोहित हुई

शूर्पणखा का विवाह के लिये प्रस्ताव रखना। भगवान् का उसको उत्तर कि हे मातः! मैं सपत्नीक हूं मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अपत्नीक है अतः उसके पास जाओ। राम के वचनों को सुन शूर्पणखा का लक्ष्मण के पास विवाहार्थ जाना एवं मनोरथ कहना। तब लक्ष्मण ने कहा हे मूढ़े! भगवान् श्रीराम को छोड़ मेरे जैसे दास की इच्छा करती हो मेरी पत्नी होने पर तुम्हें सीता की दासी बनना पड़ेगा। इसलिये सीता की ही सपत्नी बनो मैं तो तुम्हारी पुत्ररूप से सेवा करूँगा। तत्पश्चात् निराश हुई राक्षसी का दोनों को शाप। जो तुम काम से पीड़ित हुई स्वयं उपस्थित स्त्री का त्याग करते हो इसलिये दोनों पर विपत्ति आयेगी। जैसे मोहिनी के शाप से ब्रह्मा, रम्भा के शाप से दक्ष, उर्वशी के शाप से अश्विनी-कुमार, मेना के शाप से कुबेर, घृताची के शाप से कामदेव, मदालसा के शाप से बली और मिश्रकेशी के शाप से बृहस्पति की स्त्रियां अपहृता हुईं वैसे ही मेरे शाप से राम की भार्या का अपहरण होगा। शूर्पणखा के वचन सुन लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध एवं चौदह हजार राक्षसों के साथ खरदूषण की मृत्यु। शूर्पणखा का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण को कह पुष्कर में तप करने के लिये जाना। तप से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने उससे कहा कि तुमने जो राम को बिना प्राप्त किये इतना दुष्कर तप किया है अतः जन्मान्तर में उसे पतिरूप में प्राप्त करोगी। ऐसा कहकर ब्रह्माजी का अपने स्थान पर जाना एवं शूर्पणखा का अग्नि में शरीर त्यागकर कुब्जारूप में जन्म। रावण द्वारा सीता का हरण। रामचन्द्रजी द्वारा सीता की खोज एवं बाली का वध कर सुग्रीव के साथ मित्रता करना। सुग्रीव द्वारा सीता की खोज के लिये सर्वत्र दूतों को भेजना एवं राम-लक्ष्मण का सुग्रीव के यहां निवास करना। हनूमान्जी को वरदान देकर एवं रमणीय अंगूठी दे सीता की खोज के लिये भेजना। हनूमान्जी का अशोकवाटिका में शोकाकुल दुर्बल सीता को देखना। निराहार अतिकृश निरन्तर भक्तिपूर्वक राम-राम जपती हुई जटाभार से युक्त

दिन-रात श्रीराम के चरणारविन्दों का ध्यान करती हुई सीता को देख प्रणाम कर वायुनन्दन हनूमान् ने हर्षयुक्त हो भगवान् रामचन्द्रजी की अंगूठी उनको दी। हनूमान् एवं सीता का वार्तालाप। श्रीरामचन्द्र के कुशल वृत्तान्त को सीता से कहकर हनूमान द्वारा लंकादहन। हनूमानजी का रामचन्द्रजी को सब वृत्तान्त कहना। सीता के समाचार को श्रवण कर राम-लक्ष्मण एवं सुग्रीव का शोकाकुल होना। रामचन्द्र द्वारा समुद्र पर सेतु बँधवाकर युद्ध में रावण को मार देना। पुष्पक विमान से राम, लक्ष्मण, सीता का अयोध्या आना। सीता में कुश, लव दो पुत्रों की उत्पत्ति।

६३ कंसयज्ञकथनम् ८६३

एक समय रात्रि के दुःस्वप्नों को देख भयभीत कंस ने सभा में पुत्र, मित्र, बन्धुगण, बान्धव एवं पुरोहित से कहा कि मैंने अर्द्ध रात्रि में एक वृद्धा रक्तपुष्पों की माला धारण किये एवं लालचन्दन, लाल वस्त्र, तीक्ष्ण तलवार एवं खप्पर को लिये मेरे नगर में नाचते देखा। विकृत आकारवाला, रूक्ष केशोंवाला म्लेच्छ, पति-पुत्रवाली दिव्य स्त्री को महारुष्ट, पूर्ण कुम्भ का भङ्ग होना, क्षण में अङ्गारवृष्टि, क्षण में भस्मवृष्टि, क्षण में रक्तवृष्टि, वानर, वायस, कूकर, भालु, शूकर, और खर का भयङ्कर शब्द सुना और पीतवस्त्र एवं शुक्ल चन्दन से पूजित तथा रत्नआभूषणों से भूषित, सिन्दूर विन्दु से शोभित स्त्री मुझे शाप देकर मेरे घर से निकल जाती है। मुक्तकेशोंवाली नग्ननारी, छिन्न नासिकावाली विधवा का देखना। दिगम्बरी महाशूद्री मुझे तैल से अभ्यङ्ग करती है। दिशाओं का भस्मपूर्ण होना, नृत्य-गीत एवं विवाह का देखना, चन्द्र-सूर्य का ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प का होना एवं नतमस्तक हुए बान्धव इत्यादि स्वप्न के महान् उत्पातों का वर्णन।

---

६४ कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः ८६५

कंसयज्ञकथनम् ८६७

सत्यक पुरोहित ने कंस से विचार कर कहा कि भय त्यागकर इन दुःस्वप्नों के निमित्त धनुर्मखनामक यज्ञ जो सब अरिष्टों का नाश करनेवाला एवं शत्रु तथा दुःस्वप्नों का नाशक है करो। याग की समाप्ति में साक्षात् शङ्कर सब सम्पत्ति को देते हैं। इस यज्ञ को वाणासुर, नन्दी, परशुराम एवं बलवान् भल्ल (जाम्बवान्) ने किया था। इस धनुष को शङ्कर ने नन्दीश्वर को दिया था नन्दीश्वर ने यज्ञ कर वाणासुर को दिया। वाणासुर ने धनुर्मख कर परशुराम को पुष्कर में दिया। परशुराम ने तुम्हें दिया। इसको नारायण के बिना कोई भङ्ग नहीं कर सकता। इस विषय में शङ्कर का पूजन कर सबका निमन्त्रण करो। धनुष भङ्ग होने से यजमान का विनाश अवश्यम्भावी है। कंस ने सत्यक का वचन सुनकर सबसे कहा वसुदेव के घर में उत्पन्न हुआ और नन्द के घर में बढ़ता है वह मेरा शत्रु है। उसने मेरी वहिन पूतना को मारा है। गोवर्धन को धारण कर इन्द्र का पराभव किया है उसके सिवा अन्य कोई शत्रु नहीं है। उसे मारकर मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनूंगा। सूर्य, चन्द्र, वरुण, यम, कुवेर, एवं वायु को भी अवश्य पराजित करूँगा। फिर कंस ने सत्यक से कहा कि तुम नन्द, कृष्ण एवं बलराम को व्रज से लाओ। सत्यक ने कंस से नीतियुक्त वचन कहा कि अक्रूर, उद्धव, या वसुदेव को भेजिये। कंस ने वसुदेव को श्रीकृष्ण को लाने के लिये कहा। तब वसुदेव बोले मेरा जाना उचित नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण के यहाँ आने से आपका विरोध होगा। उसमें आपकी अथवा श्रीकृष्ण की मृत्यु होने से संसार मुझे दोषी ठहरायेगा और मृत्यु दोनों में से एक की अवश्य होगी। कंस का वसुदेव पर तलवार चलाना एवं उग्रसेन द्वारा रोकना। कंस के दूतों से धनुष-

यज्ञ की चर्चा सुन अनेक देशों के राजा, देवगण, सनकादि ऋषिगण और शिशुपाल आदि ऋषिओं और शिपाल आदि राज्ञाओं का आना ।

६५ अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम् ८६८

कंस के वचन सुन अक्रूर ने उद्धव से अपने हर्ष का वर्णन किया । आजकी रात्रि वड़ी सुन्दर है । गुरु विप्र एवं देव मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं । कोटि जन्मों का पुण्य आज उपस्थित हुआ है जो मैं व्रजराज श्रीकृष्ण को लाने के लिये जाऊँगा। जिसके चरणारविन्द का ध्यान ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर करते हैं लक्ष्मीजी जिनकी दासी हैं और त्रिभुवनपावनी गङ्गा जिनके चरणों से निकली है दुर्गा जिनके पादपद्मों का ध्यान करती है तथा जिस भगवान् के निमित्त पाद्मकल्प में ब्रह्मा ने हजार मन्वन्तर तक तप किया । फिर भी ब्रह्मा को यह आदेश हुआ कि फिर तपस्या करो पुनः ब्रह्माजी को दर्शन हुआ । जिनके निमित्त शङ्कर ने तपस्या की फिर गोलोक में भगवान् के दर्शन हुए । वड़ी आश्चर्यजनक वार्ता है । अहो यस्य निमिषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यथ तमुद्धव !॥

ऐसे भगवान् के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा । इतना कहकर उद्धव से सप्रेम मिलकर अक्रूर का अपने घर जाना ।

६६ श्रीराधाशोकोपनोदनम् ६०१

रासेश्वरी राधा के साथ श्रीकृष्ण का शयन । राधा ने रात्रि में दुःस्वप्न देखकर भगवान् से कहा—मुझे स्वप्न में ऐसे चिह्न दिखाई देरहे हैं कि रुष्ट हुआ ब्राह्मण मेरे हाथ से रत्नछत्र ले रहा है तथा मैं आपसे रक्षा करनेको कह रही हूं। आकाश से सूर्यमण्डल का गिरकर चार खण्ड होना तथा एक काल में चन्द्र-सूर्य ग्रहण देखना, क्षणभर में दीप्तिमान् ब्राह्मण द्वारा मेरी गोद में से सुधाकुम्भ का भग्न कर कृष्णवर्ण की प्रतिमा का आलिङ्गन होना, प्राणाधिदेवपुरुषों का यों

कहना कि हे राधिके ! मुझे विदा करो। इस तरह के महान् दुःस्वप्नों को देखकर मेरे दहिने अंग स्फुरण करते हैं तथा मेरा मन शोक से व्याकुल हो रहा है। इतना कहकर राधा का भगवान् के चरणों में गिरना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा राधा को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश कर दुःख दूर करना।

६७ आध्यात्मिकयोगकथनम् ६०२

विरहव्याकुल राधा को देख श्रीकृष्ण का राधा सहित क्रीड़ा-सरोवर पर जाना। राधा ने कहा हे नाथ ! मैं आपके रहने से प्रफुल्लित हूं तथा नहीं रहने से मरी हुई तथा म्लान (कुम्हलाई हुई) हूं। जैसे सूर्योदय होने से महौषधि म्लान हो जाती है। हे रासेश ! रास एवं वृन्दावन की शोभा भी आपसे ही है। आपके बिना नन्द एवं यशोदा भी शोकसागर में निमग्न हैं। इतना कहकर राधा का श्रीचरणों में गिरना तथा श्रीकृष्ण द्वारा अध्यात्मयोग का उपदेश करना। नारदजी के पूछने पर नारायण द्वारा आध्यात्मिकयोग का कहना। आध्यात्मिकयोग महायोग है इसे ज्ञानी भी नहीं जानसकते हैं। कुछ अध्यात्मयोग का उपदेश गोलोक में श्रीकृष्ण ने त्रिपुरारि शङ्कर से किया था तथा कुछ-कुछ कपिल, दुर्वासा, भृगु और प्रह्लाद को भी। श्रीकृष्ण बोले हे राधिके ! सम्पूर्ण गोलोक का वृत्तान्त एवं एवं आत्मा का स्मरण करो। सुदामा के शाप से कुछ दिन तुम्हारा मेरे से विच्छेद होगा तथा फिर अपने दोनों का मिलन होगा। हे राधिके ! तुम्हारे में एवं मेरे में कुछ भी भेद नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव सब मेरे अंश हैं तथा महालक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, सावित्री आदि सब प्रकृति रूप तुम्हारी अंशभूता है।

यथा त्वञ्च तथाऽहञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ। नहि सृष्टिर्भवेद्देवि! द्वयोरेकतरं विना॥

इतना कह श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा।

---

६८ श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम् ६०७

श्रीकृष्ण द्वारा निद्रित राधा का वोधन करना। श्रीकृष्ण ने राधा से कहा हे रासेश्वरि ! क्षणभर रासक्रीड़ा में ठहरो। क्योंकि तुम रास की अधिष्ठातृदेवी हो। हे राधिके ! तुम्हारे में मेरा मन दिन-रात लगा हुआ है तुम्हारे से अन्य कोई मुझे प्रिय नहीं है। मेरे प्राण साक्षात् शङ्करजी हैं किन्तु तुम प्राणों से भी बढ़कर हो। इतना कहकर अक्रूर के आगमन को जानकर श्रीकृष्ण का जाने के लिये उद्यत होना। तदनन्तर राधा का श्रीकृष्ण से प्रार्थना करना कि हे भगवन् ! आप मुझे छोड़ कहां जा रहे हैं ? यदि आप जायेंगे तो आपके पुत्र-पौत्र ब्रह्मशाप रूपी अग्नि से नष्ट हो जायेंगे। इतना कहकर राधा का क्रोध से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिरना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा राधा को सान्त्वना देना।

६९ रासक्रीड़ावर्णनम् ६०९

ब्रह्मकृतस्तोत्रम् ६११

श्रीकृष्णस्य गमनम् ६१३

श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा करना। श्रीकृष्ण का शयन करना। ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति। ब्रह्मा ने कहा हे देव ! उठो भक्त सुदामा के शाप का स्मरण कर सौ वर्ष तक राधा का वन्धन छोड़ो। फिर गोलोक में मुझे प्राप्त हो जाओगी, अब घर पर अपने चाचा अक्रूर को देखो, पीछे शङ्कर का धनुष तोड़ना, कंस को मारना इत्यादि वहुतसे काम करने हैं। इतना कहकर देवों सहित ब्रह्मा का अपने स्थान पर जाना। पुनः आकाशवाणी हुई कि कंस को मारकर अपने माता-पिता को वन्धन से छुड़ाओ। इतना सुन सोई हुई राधा को छोड़ श्रीकृष्ण का व्रज में जाना। कृष्ण विरह में राधा का विलाप। रत्नमाला एवं

श्रीकृष्ण का वार्तालाप। रत्नमाला ने कहा हे भगवन्! मेरी सखी आपके विरह में प्राण त्याग कर देगी इसलिये आपका जाना उचित नहीं। श्रीकृष्ण ने नीतियुक्त वचन रत्नमाला से कहा—

ईशोयद्यपिशक्तोऽहं निषेधं खण्डितुं प्रिये। तथापि न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम्॥

ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण मर्यादा मेरी ही बनाई हुई है। उसीके अनुसार देव, मनुष्यादि कर्म करते हैं अतः हम दोनों का फिर मिलन होगा। ऐसा कहकर भगवान् का नन्दजी के घर जाना।

७० अक्रूरस्य कृष्ण समीपेगमनम् ६१५

अक्रूरजी उद्धवजी से बातचीत कर अपने घर में सो गये। उन्हें रात्रि के शेष में सुस्वप्नों का दर्शन हुआ, जिनमें सर्वप्रथम किशोर अवस्थावाले, मुरली धारण करनेवाले, पीताम्बर पहने द्विज शिशु का दर्शन। पतिपुत्रवाली साध्वी स्त्री, शुभाशीर्वाद करता हुआ ब्राह्मण, श्वेतकमल, राजहंस, अश्व, सरोवर एवं आम्र, नीम, नारिकेल और कदली को पुष्पित एवं फलित, काटता हुआ श्वेतसर्प, अपनेको पर्वत, वृक्ष, गज; नौका और घोड़े पर स्थित, दही एवं क्षीर से युक्त अन्न, सवत्सा गौ, पार्वती की प्रतिमा, शिव की प्रतिमा, शिवलिङ्ग का दर्शन, विप्र की लड़की, देवस्थान, सिंह, व्याघ्र, गुरु, देव, मणि, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता माणिक्य, सारस, हंस, ताम्बूल, कृमि एवं विष्ठा सहित अंग और रक्त इत्यादि बहुतसे सुस्वप्न देख उद्धवजी की आज्ञा पाकर अक्रूर की व्रज के लिये यात्रा करना। यात्रा के समय शुभमङ्गलों का दर्शन—बांयेओर शव (मुर्दा), शृगाली, पूर्णकुम्भ, नकुल, चास, पति-पुत्रवाली दिव्य आभूषणों से युक्त स्त्री, शुक्लपुष्प, माल्य, धान्य, खञ्जन पक्षी तथा दाहिने तरफ जलती हुई अग्नि, विप्र, वृषभ, हाथी, बछड़े सहित गौ, सफेद घोड़ा, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, ध्वजा, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चांदी, उसी क्षण का मांस, चन्दन, माध्वीक (मदिरा) घृत, हरिण, फल, चावल, सिद्धान्न,

दर्पण, विचित्रित विमान, देदीप्यमान प्रतिमा, शुक्ल कमल, कमलवन, शङ्खचिह्न (सफेद चील), चकवा, बिलाव, मेघ, पर्वत, मोर, शुक, सारस, शंख, कोयल एवं बाद्यों की ध्वनि और कृष्णनामों से युक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन ऐसे शुभमङ्गलों को देख व्रज में प्रवेश। अक्रूर के आगमन को देख वेश्या, पूर्णकुम्भ, गजेन्द्र एवं शुक्लधान्य को आगे कर बालकों सहित नन्द का अक्रूरजी के पूजनार्थ आगमन। श्रीकृष्ण के अद्भुत रूपों को देखकर अक्रूर का स्तुति करना। पुनः कुशल वृत्तान्त पूछने के बाद मिष्टान्न भोजन कर सब व्रजवासियों का अपने-अपने स्थानों में शयन।

७१ यात्रामङ्गलवर्णनम् ६२०

राधिका एवं अन्य गोपियों के शयन करने के बाद रात्रि के तीसरे प्रहर में शुभ नक्षत्र एवं चन्द्रमा के योग में यशोदा से मङ्गलाशासन करा बन्धुओं को आश्वासन दे श्रीकृष्ण का मथुरा यात्रा करना। उस समय पादप्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र पहनकर चन्दन लगा जाते हुए बांई तरफ पूर्णकुम्भ एवं दक्षिण में अग्नि, विप्र, पतिपुत्रवाली स्त्री इत्यादि शुभशकुनों को देखकर दक्षिण पैर को आगे रख मध्यमा से नासिका के वाम भाग को रोक दक्षिण मार्ग से वायु का त्याग कर और माता-पिता एवं अन्य बान्धवों से मिलकर वह मथुरा को यात्रार्थ चले।

७२ श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ६२१
कुब्जोद्धारवर्णनम् ६२३
कंसदुःस्वप्नकथनम् ६२५
कंसवधवर्णनम् ६२७

श्रीकृष्ण गुरु को प्रणाम कर सुन्दर मथुरापुरी को चले। मार्ग में अत्यन्त

वृद्धा एवं हाथ में लट्ठी ली हुई कुब्जा को देखा। उसने श्रीकृष्ण का चन्दन पुष्प से सत्कार किया जिससे कुब्जा का सुन्दर रूप हो गया। भगवान् ने उसे आश्वासन देकर आगे मालाकार (माली) को देखा। उसने भी श्रीकृष्ण को माला देकर वरदान प्राप्त किया। श्रीकृष्ण की रजक से भेंट। भगवान् ने उससे वस्त्र मांगे। रजक ने कहा हे मूढ़! ये राजोचित वस्त्र है तुम्हारे योग्य नहीं है। इतना सुन श्रीकृष्ण ने उसको थप्पड़ से मार दिया तथा वस्त्र ले लिये। अक्रूर का अपने घर को जाना एवं नन्दादिकों का वैष्णव कुविन्द के यहां रात्रि में वास। श्रीकृष्ण का कुब्जा के साथ प्रेममिलन तथा कुब्जा का उद्धार कंस को मृत्युसूचक दुःस्वप्नों का दर्शन। कंस को स्वप्न में, विधवा, शूद्रपत्नी, गदहा, भैंसा, शूकर, भालू, गीध, हड्डियो का समूह, कपास, श्मशान इत्यादि बहुतसे अशुभसूचक वस्तुओं का दर्शन। श्रीकृष्ण ने धनुष को तोड़कर एवं मल्लों को मारकर कंस को लीला मात्र से ही स्वर्ग-धाम पहुंचा दिया। श्रीकृष्ण का रूप सबको अलग-अलग तरह से दिखाई दिया जैसे राजाओं को राजेन्द्ररूप में, माता-पिता को बालक रूप में, कंस को कालरूप में इत्यादि ऐसे ही श्रीमद्भागवत में आया है "मल्लानामशनिर्नृणांनरवरः" रामायण में भी "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"। कंस का दिव्य रूप धारण कर परमधाम में जाना। कंस की माता एवं भाई बन्धुगण आदि का विलाप। श्रीकृष्ण द्वारा अपने माता-पिता का बन्धन तोड़ना। श्रीकृष्ण बलराम का अपने माता- पिता को प्रणामकर प्रार्थना करना। इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त कर द्रव्य दान किया।

७३ नन्दाय ज्ञानकथनम् ६२८

पुत्र के वियोग में नन्दजी का रुदन। श्रीकृष्ण का नन्दजी को ज्ञान देना कि हे नन्दजी दुःख छोड़िये एवं शान्ति को प्राप्त कीजिये। इस संसार में कोई भी किसी का पुत्र एवं माता-पिता नहीं है। सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार

फल भोगते हैं। मेरी माया से ही सब देवादि अपने-अपने कार्यों में लगे हैं। मेरी प्राणाधिष्ठात्री देवी राधा के साथ सौ वर्ष तक वियोग होगा फिर उसके गोलोक में जाऊँगा तथा आप लोगों को भी गोलोक में भेज दूँगा। जैसे आत्मा और जीव का सम्बन्ध है उसी तरह राधा का और मेरा है। अतः राधा में गोपिका बुद्धि एवं मेरे में पुत्र भावना का त्याग करें। इतना कहकर श्रीकृष्ण का नन्दजी के प्रति विभूतियोग का वर्णन। विभूति योग को सुनने के बाद नन्दजी का सामवेदोक्त स्तोत्र से कृष्ण की स्तुति करना। पुत्र के आगे बारम्बार रुदन करना।

७४ भगवन्नन्दसंवादवर्णनम् ६३३

नन्दजी की स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् बोले—हे नन्दजी ! अब दुःख को छोड़ व्रज में जाइये मैं आपको वही ज्ञान देता हूं जो पहले ब्रह्मा, गणेश तथा शङ्कर को दिया था। कौन किस का पुत्र है कौन किसकी माता है सब इसी तरह संसार में आते हैं तथा जाते हैं। अपने-अपने कर्मों से मनुष्य नाना तरह की योनियों में जन्म लेते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त संसार में जन्म लेते हैं। मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाला इस शरीर को छोड़ गोलोक को जाता है। मेरे भक्तों का कभी भी अशुभ नहीं होता। मेरा भक्त मेरे से बलवान् है। इतना सुन नन्दजी बोले—मुझे सांसारिक ज्ञान का उपदेश करो। पुनः श्रीकृष्ण द्वारा दिनचर्या का वर्णन करना।

७५ आह्निकवर्णनम् ६३५
श्रीकृष्णप्रोक्त आह्निकाचारः ६३७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे नन्दजी ! वेद एवं पुराणों का गोपनीय ज्ञान आप से कहता हूं। स्त्रियों का कभी भी विश्वास न करे। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर

शौचादि से निवृत्त हो निर्मल जल में स्नान कर शालग्राम, मणि, यन्त्र और प्रतिमा का पूजन करे। सर्वप्रथम विघ्न दूर करने के लिये गणेशजी की पूजन करें। विष्ठा, मूत्र, लिङ्ग और योनि को नहीं देखें। स्त्रियों के स्तन, कटाक्ष एवं हास्य को न देखें। अस्तकाल में सूर्य एवं चन्द्र को न देखे। इससे व्याधि की प्राप्ति होती है। जल में सूर्य एवं चन्द्र को देखने से दुःख की प्राप्ति होती है। पर मैथुन देखने से वन्धुओं का विच्छेद होता है। ब्राह्मण, गौ, वैष्णव एवं अन्य किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। किसीका धन हरण न करे यह सर्वनाश का कारण है। शुक्ल यजुर्वेद में आया है "मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"। अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई ब्रह्मवृत्ति का हरण करने से ६० हजार वर्ष तक विष्ठा में कृमि होता है। कोटि वर्ष गीध, सौ जन्म सूकर और सौ जन्म व्याघ्र इत्यादि कष्टप्रद योनियों को प्राप्त होता है। कर्म कराकर दक्षिणा तत्काल नहीं देने से एक रात्रि व्यतीत होने पर दुगुनी होजाती है। एक मास बीतने पर सौगुनी, दो मास बीतने से हजारगुनी तथा एक वर्ष बीतने से दाता नरक को जाता है। देनेवाला अगर नहीं देता है तथा लेनेवाला नहीं मांगता है वे दोनों ही नरक में जाते हैं एवं दाता व्याधियुक्त होता है। जो मूर्ख स्त्री अपने पति को हरि रूप में नहीं देखती है, वह कुम्भीपाक नरक में जाती है। जो मनुष्य शिव, दुर्गा, गणपति, सूर्य, विप्र और विष्णु की निन्दा करता है उसे महारौरव नरक की प्राप्ति होती है। माता, पिता, पुत्र, सती स्त्री, गुरु, अनाथ, भगिनी और कन्या की निन्दा करने से नरक की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों की भक्ति से हीन एवं हरिभक्ति से विहीन नरक को जाता है। एकादशी एवं जन्माष्टमी के व्रत करने से सौ जन्म तक के पाप नष्ट होते हैं। कूष्माण्ड का घात करनेवाली स्त्री एवं दीप को बुझानेवाला पुरुष सात जन्म तक रोगी एवं जन्मजन्मान्तर में दरिद्री होता है। दीप, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, प्रतिमा, यज्ञोपवीत, सुवर्ण, शङ्ख, हीरा, मोती, गोमूत्र, गोमय, घृत एवं भगवान् के पादोदक को भूमि पर रखने से

अधः (नरक) को जाता है। दिन में तथा सन्ध्या के समय निद्रा एवं स्त्री सम्भोग करने से सात जन्म तक दरिद्री एवं सात जन्म तक रोगी होता है। शिवपूजा करने से विप्र जीवन्मुक्त एवं शिवपूजन न करने से नरक को जाता है। ब्राह्मण मुझे सबसे प्रिय हैं तथा ब्राह्मणों से अधिक प्रिय लक्ष्मी, लक्ष्मी से अधिक राधा उससे अधिक भक्त एवं भक्त से अधिक शङ्करजी प्रिय हैं। मैं सदा महादेव के नामोच्चारण करनेवालों के पास ही रहता हूं। नारायणी शक्ति भगवती से ही सब कार्य कराता हूं वह शक्ति सब जगह विराजमान है।

७६ शुभाशुभदर्शनफलम् ६४२

नानाविधदानफलम् ६४५

श्रीनन्दजी ने शुभाशुभ दर्शन के विषय में पूछा तब श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव एवं देवप्रतिमा को देखने से तीर्थस्नान के समान पुण्य होता है। सूर्य, सती स्त्री, सन्यासी, ब्रह्मचारी, गौ, अग्नि, गुरु, हाथी, सिंह, सफेद घोड़ा, शुक, कोयल, हंस, खंजन, मयूर, चातक, सफेद पक्षी, सवत्सा गौ, पीपल, पति पुत्रवाली स्त्री, तीर्थ जानेवाले मनुष्य, दीप, सुवर्ण, मणि मुक्ता, हीरा, माणिक, तुलसी, सफेद पुष्प, सफेद धान्य, घृत, दही, शहद, पूर्णकुम्भ, तण्डुल, सफेदपुष्पों की माला, गोरोचन, कपूर, चांदी, तालाब, पुष्पों से युक्त बगीचा, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, एवं पुराण पुस्तक आदि को देखने से पाप नष्ट होते हैं तथा पुण्य की प्राप्ति होती है। आठ वर्ष की कुमारी को ब्राह्मण को देने से दुर्गा दान के समान फल होता है। अनाथ विप्र का विवाह कराने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भूमिदान, गोदान, गजदान एवं सफेद घोड़े का दान का वर्णन कर अन्नदान की बहुत प्रशंसा गाई है। अन्नदान के समान कोई दान नहीं है। वृद्ध गौतम स्मृति में भी अन्नदान के माहात्म्य का बहुत वर्णन किया है।

सुस्वप्न के दर्शन से गङ्गा स्नान के समान पुण्य एवं धन, पुत्र, स्त्री, भूमि एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

७७ सुस्वप्नदर्शनफलम् ६४६

नन्दजी ने पूछा कि कौनसे स्वप्न से क्या पुण्य होता है तथा कौन-कौनसा स्वप्न अच्छा है ? तब भगवान् बोले कि स्वप्नाध्याय का वर्णन करता हूं। रात्रि के प्रथम प्रहर का स्वप्न एक एक वर्ष में, दूसरे प्रहर का ८ मास में, तीसरे प्रहर का ३ मास में, चतुर्थ प्रहर का १५ दिन में, अरुणोदय के समय १० दिन में एवं प्रातःकाल का स्वप्न यदि उसी क्षण जग जाय तब तत्काल फल देता है। व्याधि-युक्त, नग्न, मूत्र एवं पुरीष से पीड़ित मनुष्य को स्वप्न का फल नहीं होता है। स्वप्न में गौ, हाथी, घोड़ा, महल, वृक्ष, एवं पहाड़ों पर चढ़ने से धन की प्राप्ति होती है। हाथी, राजा, सुवर्ण, कन्या आदि को देखने से विपुल लक्ष्मी आती है। देवता, ब्राह्मण, गौ, पितर एवं सन्यासी को स्वप्न में जैसा देखते हैं वह शीघ्र ही वैसा ही फलीभूत होता है। भस्म, हड्डी एवं रुई को छोड़ अन्य सम्पूर्ण सफेद वस्तु उत्तम है। गौ, हाथी घोड़ा, ब्राह्मण एवं देव को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण कृष्ण वस्तु निन्दनीय है। रत्न के आभूषणों से युक्त दिव्य स्त्री जिसके घर में आती है उसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है। आठ वर्ष की कुमारी कन्या स्वप्न में जिसपर प्रसन्न होती है वह कवि पण्डित होता है तथा जिसको वह पुस्तक देती है वह विश्वविख्यात कवीन्द्र होता है। स्वप्न में ब्राह्मण तथवा ब्राह्मणी किसीको महामन्त्र देवें तो वह विद्वान्, धनवान् एवं गुणवान् होता है। स्वप्न में सरोवर, समुद्र, नदी, नद, सफेद सर्प और सफेद पहाड़ को देखने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। दिव्य स्त्री जिसको स्वप्न में कहती है कि आप मेरे स्वामी हो और वह स्वप्न देखकर यदि जागता है तो निश्चय से राजा होता है।

---

७८ आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम् ६५१

श्रीकृष्ण द्वारा नन्दजी को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश। यह योग वेद एवं शास्त्रों में गुप्त रूप से वताया है जिसके अभ्यास से जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि नहीं होती है। यह संसार जलवुद्वुद की तरह है तथा मोह करनेवाला है। श्रीकृष्ण ने नन्दजी को गूढ़ महामन्त्र का उपदेश कर कहा इसे काशी मणिकर्णिका में जपना चाहिये, दुःस्वप्न, पाप का कारण एवं विघ्न हरनेवाला है। गौ को मारनेवाले, कृतघ्न आदि नीच पुरुषों का देखना पाप है। चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण को देखना निषिद्ध है। भाद्रशुक्ला चतुर्थी को चन्द्र का दर्शन नहीं करना चाहिए। यदि दर्शन हो ज़ाय तो "सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्ववता हतः। सुकुमारक ! मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः॥" इस मन्त्र से जल को पवित्र कर पीने से उत्तम बताया है।

७९ सूर्यग्रहणाख्यानम् ६५५

नन्दजी ने सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रहण के विषय में पूछा तव भगवान् बोले इस आख्यान को श्रवण करने से पाप नष्ट होते हैं। एक समय जमदग्नि रेणुका के साथ नर्मदातट पर विहार कर रहे थे। तव सूर्य ने कहा हे ऋषे! आप ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं, वेदों को जाननेवाले हैं, आपके शास्त्रों से सब मनुष्य कार्य करते हैं आप धर्म का त्याग कर रहे हैं वेद में दिन में मैथुन का दोष कहा है। मैं धर्म का साक्षी हूं इसलिये आप से कहता हूं। सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने मैथुन को त्याग कर क्रोधित हो सूर्य से कहा तुम पण्डितमानी कौन हो मैं सब शास्त्रों का ज्ञाता हूं, हम वैष्णवों पर भगवान् के विना कोई आज्ञा देनेवाला नहीं है। आज तुमने हमारा रास भङ्ग किया अतः राहुग्रस्त होओगे। जो वादल तुम्हारे को देखने आयेंगे वे दूर हो जायेंगे तथा वायु से प्रेरित हुए मेघ तुन्हें आच्छन्न करेंगे तथा

गर्व से हत हो जाओगे। जमदग्नि के वचन सुनकर भास्कर बोले—हे विप्रवर्य! ब्राह्मण हमारे पूजनीय हैं लेकिन वैष्णवों को क्रोधित नहीं होना चाहिये। आपने मुझे शापित किया अतः मैं भी आपको शाप देता हूं नहीं तो मुझे मनुष्य निस्तेज कहेंगे। क्षत्रिय के अस्त्र से आपका मरण होगा। सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने कहा तुम शम्भु से पराजय को प्राप्त होओगे। दोनों का कलह देख ब्रह्माजी का आगमन। ब्रह्मा ने सूर्य से कहा तुम कोई दिन क्षणभर घनाच्छन्न होकर पुनः मुक्त हो जाओगे। न्यून एवं अधिक वर्ष में राहुग्रस्त होओगे वह ग्रहण कहीं दिखाई पड़ेगा कहीं नहीं अन्यथा पूर्ण ही दिखाई दोगे और भार्या के निमित्त श्वसुर एवं साले से तुम्हारा तेज मलिन होगा।म ाली एवं सुमाली के युद्ध में शङ्कर से पराजित होओगे। फिर जमदग्नि से कहा हे विप्र! तुम्हारी मृत्यु कार्तवीर्यार्जुन से होगी। पुनः तुम्हारा पुत्र २१ वार पृथ्वी को विना क्षत्रियों की करेगा। इतना कहकर ब्रह्मा का स्वस्थान गमन। तथा सूर्य एवं जमदग्नि का भी अपने-अपने स्थान पर जाना। अव चन्द्रग्रहण के आख्यान को सुनो।

८० चन्द्रग्रहणाख्यानवर्णनम् ६५६

चन्द्र द्वारा भाद्रशुक्ल चतुर्थी को मन्दाकिनी नदी पर स्नान करती हुई गुरुपत्नी तारा का हरण। तारा ने कहा—पतिव्रता ब्राह्मणी गुरुपत्नी को छोड़ो। गुरुपत्नी गमन से सौ ब्रह्महत्या का पाप होता है। तुम मेरे पुत्र हो तथा मैं तुम्हारी माता हूं अपने धर्म की रक्षा करो। जव तारा के वचनों का अनादर कर उसे भोगने को उद्यत हुआ तो तारा ने शाप दिया कि तुम कलंकी, यक्ष्मा से पीड़ित तथा राहुग्रस्त होओगे। चन्द्रमा ने रोती हुई तारा को गोदी में बिठाकर नाना नदी, नद तथा पहाड़ों में रमण किया। चन्द्रमा ने असुर गुरु शुक्राचार्य को वलि के घर से आते देखा और उसकी शरण ली। शुक्र ने कहा—हे चन्द्र! गुरुपत्नी का त्याग करो इससे हजारों ब्रह्महत्या का पाप होता है।

८१ ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम् ९६२
शुक्रशम्भुसंवादवर्णनम् ९६३
चन्द्रग्रहणाख्यानम् ९६५

श्रीकृष्ण बोले—शुक्र ने चन्द्रमा को समझाते समय ही महती देवसेना को देवताओं के साथ आते देखा। रत्नमाला नदी के किनारे पुण्याश्रम में सुरसैन्य से आये हुए शङ्करजी को देखकर प्रणाम किया तदनन्तर शङ्कर का आशीर्वाद पुनः ब्रह्माजी ने शुक्र से नीतियुक्त वचन कहे। हे शुक्र! चन्द्रमा की यह महती दुर्नीति है जो गुरुपत्नी से बलात्कार कर तुम्हारे शरण आया है। इसको लेने के लिये देव सेना आरही हैं उसीके निमित्त मैं तथा शङ्कर तुम्हारे पास आये हैं। शङ्कर ने कहा—हे विप्र यदि अपना कल्याण चाहते हो तो चन्द्र को लाओ मैं उस पापी का शिर त्रिशूल से नष्ट करूँगा। मेरे क्रोधित होने से दैत्यों का रक्षक कोई नहीं होगा। उतथ्य के शाप से बृहस्पति की स्त्री का हरण हुआ है। शरणागत की रक्षा न करने से चौदह इन्द्र भोगने के समय तक नरक में पड़ता है। पापी जिसकी शरण जाता है तो वह शरण में देनेवाला भी पापी ही माना जाता है। शुक्र की शङ्कर से प्राथना। चन्द्रमा का शङ्कर की शरण में जाना। उसको क्षीरोद में स्नान कराकर पवित्र कर दिया। योगीन्द्र शङ्कर ने उसके दो खण्ड कर आधे को अपने मस्तक पर और आधे को ब्रह्मा के सामने छोड़ दिया। लज्जित चन्द्रमा का क्षीरसमुद्र में देह त्याग। पुत्र वियोग से अत्रि के नेत्रों से समुद्र में जल गिरना। चन्द्रमा का निष्पाप हो समुद्र से प्रगट होना। महादेव ने कहा—हे चन्द्र! अपने स्थान पर जाओ तारा के शाप से तुम्हें यक्ष्मारोग की प्राप्ति होगी क्योंकि पतिव्रता का शाप व्यर्थ नहीं जाता है किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा प्रतिकार हो जायगा। तुमने भाद्रशुक्ल चतुर्थी को गुरुपत्नी को क्षत किया है अतः उस दिन तुम्हें देखने से पापी होगा। शुभाशुभ कर्म बिना भोगने से क्षय नहीं

होता है तारा के अपहरण से चन्द्रमण्डल में कलङ्क एवं मृगाकृति युग-युग में होगी। तारा से कहा हे तारे! किसका गर्भ है सत्य कहो इसे त्यागकर शुद्ध हो पर पुरुष से बलात्कार एवं अकाम से स्त्री दूषित नहीं है और सकाम भाव से जब तक सूर्य चन्द्र है तब तक नरक में रहती है। तारा ने चन्द्रमा का पुत्र है ऐसा कहा। तारा का बृहस्पति के साथ गमन। पुत्र पैदा होने से चन्द्र को पुत्र प्राप्ति। देवताओं का स्वस्थान गमन। इसको सुनने से मनुष्य निष्पाप एवं निष्कलङ्क होता है।

८२ दुःस्वप्नवर्णनम् ९९७

नन्दजी ने दुःस्वप्न के विषय में पूछा तब भगवान् बोले—जो मनुष्य स्वप्न में हँसता है एवं विवाह, नाच, गीत देखता है उसे विपत्ति आती है। तैल से अभ्यङ्गित हो दक्षिण दिशा में जाने से, तथा खर, महिष एवं ऊँट पर चढ़ने से मृत्यु की प्राप्ति होती है। कार्पास, (कपास) कौड़ी एवं रक्तपुष्प को देखने से दुःख होता है। देवता का नाचना तथा हँसना, श्मशान, शुष्क काष्ठ, तृण लौह, अन्धकार, योनि एवं लिङ्ग देखने से विपति आती है। रक्त अङ्गारे एवं भस्मवृष्टि देखने से दुःख की प्राप्ति होती है। स्वप्न में ज्योतिषी, ब्राह्मण, ब्राह्मणी एवं गुरु जिसको शाप देते हैं उसे विपत्ति आती है। विरोधी, काक, मुर्गा, भालू जिसके शरीर पर गिरते हैं उसकी मृत्यु होती है। इनकी शान्ति के लिये लालचन्दन के काष्ठ से एक सहस्र गायत्री का हवन करने से शुद्धि है। अच्युत, केशव आदि नामों के स्मरण करने से तथा धर्म, लक्ष्मी, राधा एवं सरस्वती का स्मरण करने से दुःस्वप्न शुभ हो जाता है।

---

८३ विप्रादीनां धर्मकथनम् ६७०
सन्यासधर्मकथनम् ६७५
पतिव्रताधर्मवर्णनम् ६७७

नन्दजी ने पूछा—हे पुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, सती, सन्यासी, विधवा स्त्री, पतिव्रता स्त्री, गृहस्थ का धर्म तथा शिष्य, पुत्र एवं कन्या का माता-पिता के कर्तव्य, भक्त कितने प्रकार के होते हैं एवं स्त्री जाति कितनी प्रकार की है इनके साथ ब्रह्माण्ड का वर्णन कीजिये। श्रीकृष्ण वोले—मेरी पूजा करनेवाला, सन्ध्या करनेवाला, गुरु सेवा करनेवाला ब्राह्मण सदा पवित्र है। शिष्य को गुरु की तथा पुत्र कोमाता-पिता की सेवा करना कहा है—

सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महान् गुरुः। पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः सुरः मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणाञ्च चतुर्गुणः। नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः॥

गुरु की सेवा सवसे उत्तम है गुरु में सम्पूर्ण देव विराजमान हैं—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः। गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा॥

गुरु के प्रसन्न होने से साक्षात् हरि प्रसन्न होते हैं। यदि गुरु शिष्यों में पुत्र के समान स्नेह नहीं करेगा तो उसे ब्रह्महत्या की प्राप्ति होगी। वृष पर चढ़नेवाला, शूद्रों के यहां रसोई वनानेवाला, देवल, सन्ध्याहीन, दिन में सोनेवाला, शूद्र के श्राद्ध में भोजन करनेवाला, और शूद्रों के मुर्दे जलानेवाला जो ब्राह्मण है वह शूद्र के समान ही कहा गया है। जो नित्य त्रिकाल सन्ध्या, भगवान् का पूजन करने वाला, एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी तथा शिवरात्रि को भोजन न करनेवाला ब्राह्मण है वह जीवन्मुक्त कहा गया है। ब्राह्मण के पैर में सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं। विप्रों के चरणोदक पीने से तीर्थस्नान के समान फल होता है। तेजस्वी गुरु से ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। अवस्था, ज्ञान, विद्या और जातिहीन गुरु से मन्त्र ग्रहण न करे। मूर्ख, आश्रमहीन, पिता, सन्यासी, रोगी, वंशहीन तथा भार्या-

हीन से मन्त्रग्रहण न करे। वयोहीन से मन्त्र लेने से अल्पायु, ज्ञानहीन से अज्ञानी, विद्याहीन से मूढ़ और जातिहीन से लेने पर विनाश होता है। मूर्ख से मूर्ख, आश्रम-हीन से दुःखी, पिता से यश की हानि तथा सन्यासी से मन्त्र लेने से मृत्यु होती है। श्राद्ध के दिन हविष्याशी रहता हुआ संयमपूर्वक यात्रा, युद्ध करना, नदी के तीर पर जाना दुबारा भोजन और मैथुन न करें। कन्या विक्रय करनेवाले को सब से विशेष पातकी कहा है। जो मूल्य ग्रहण कर कन्या देता है वह महारौरव नरक में जाता है तथा कन्या के शरीर में जितने रोम हों उतने वर्षों तक पितरों के साथ कुम्भीपाक में पचता है। क्षत्रियों का धर्म है कि ब्राह्मणों की एवं नारायण की पूजा, राज्य की पालना, रण में निर्भयता, नित्य दान, शरणागत की रक्षा, पुत्रवत् प्रजा की रक्षा, शस्त्रास्त्र में निपुणता, नीतिशास्त्र के जाननेवाले की रक्षा एवं उसको सभा में नियुक्त करना चाहिये। वैश्यों का धर्म है वाणिज्य में चतुर, विप्र एवं देवताओं की पूजा, दान, तप एवं व्रत का सेवन करे। शूद्रों का धर्म है कि विप्रों की सेवा करे। सन्यासी का धर्म है "दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्" दण्डग्रहणमात्र से नर नारायण हो जाता है। अतः उसके पदस्पर्श से पृथ्वी एवं तीर्थ मनुष्यादि सब पवित्र होते हैं। सन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। विधवा का धर्म है कि वह सदा निष्काम रहे व एक समय भोजन हविष्यान्न करे। दिव्य वस्त्र, गन्ध, तैल, पुष्पमाला, चन्दन, सिन्दूर को धारण न करे। परपुरुष को पुत्रवत् देखती हुई नारायण में अनन्य भक्ति करे। एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी और शिवरात्रि आदि व्रतों में उपवास करें। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और सन्यासियों को ताम्बूल भक्षण एवं गोमांस मदिरा के समान बतलाया है। पतिव्रता के धर्म—पति की भक्तिपूर्वक सेवा वन्दना, पति में नारायण का भाव रखना एवं उसकी आज्ञा का पालन करना बताया है। स्त्री परपुरुष के मुख का अवलोकन, यात्रा, महोत्सव, नृत्य, गायन एवं परक्रीड़ा न देखे। पति का संग एक क्षण भी न छोड़े। पति पर पुत्रों से भी सौगुना प्रेम

करे। यथा—"पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्त्ता दैवतं कुलयोषितः" सती स्त्री हजार पुरुषों को उद्धार करती है एवं पतिव्रताओं का पति सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। सती के चरणों में सम्पूर्ण तीर्थ तथा सम्पूर्ण देव मुनियों का तेज विराजमान है। स्वयं भगवान् नारायण, ब्रह्मा, शङ्कर और समस्त देव मुनिगण सती स्त्रियों से निरन्तर भयभीत रहते हैं। सती की चरणरज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है एवं मनुष्य पतिव्रता को नमस्कार कर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। पतिव्रता के तेज से त्रिलोकी क्षणभर में भस्म हो सकती है। सती स्त्री प्रातःकाल उठकर अपने पति को प्रणाम करे पश्चात् सम्पूर्ण गृहकार्य कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पति का षोडशोपचार विधि से पूजन "ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा" इस मन्त्र से करे। पति स्तोत्र का पठन करे। पतिव्रता को पति स्तोत्र का पठन करने से सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

८४	गृहिणां धर्मवर्णनम्	६७८
	त्रिविधभक्तानां लक्षणं फलञ्च	६८१
	कृष्णस्य वामभागाद्भगवत्या उत्पत्तिः	६८३
	ब्रह्माण्डवर्णनम्	६८५

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थ को चाहिये कि द्विज, देवों का पूजन एवं स्वधर्म का आचरण नित्य करे। गृहस्थियों की सम्पूर्ण देवादिक आशा करते हैं। कर्मकाल में पितर एवं तिथिकाल में देवता गृहस्थी के घर आते हैं। अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये। जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है उसके यहां से पितर, देव, अग्नि निराश होकर चले जाते हैं।

अभ्यागतंपरिश्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः॥

(ब्रह्मपुराण अ० १६३ श्लोक २१)

पोष्यवर्गों का भरण पोषण कर गृहस्थी स्वयं भोजन करे। जिस पुरुष के माता नहीं है और पत्नी कुलटा अथवा मर गई हो उसे वन में चला जाना चाहिये। उसके लिये वन से भी अधिक दुःखदायक घर है। गृहिणी पतिभक्ता एवं देव, ब्राह्मणों की पूजन करनेवाली होनी चाहिये। गृहकृत्य से निवृत्त हो स्नान कर पतिदेव और ब्राह्मण की पूजन कर पतिपुत्रादिकों को स्नान करा अतिथि सत्कार कर स्वयं भोजन करे। पुत्र एवं शिष्य, पिता तथा गुरु को आज्ञा न दें तथा उनमें साधारण मनुष्य के समान भाव न रक्खे। पिता, माता, गुरु स्त्री, शिष्य, पुत्र, सदा क्षमा चाहनेवाला, अनाथ भगिनी, कन्या और गुरुपत्नी सदा ही पोष्य कहे हैं। पतिव्रता स्त्री सदा ही शुद्ध है। केदार कन्या के शाप से जब धर्मराज नष्ट हो गये तब क्रोधित ब्रह्मा ने तीन प्रकार की स्त्री जाति का निर्माण किया। जैसे उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। उत्तम स्त्री धर्मयुक्ता एवं पतिभक्ता होती है तथा प्राणान्त (अत्यन्त कष्ट) में भी पर पुरुष की सेवा नहीं करती है। मध्यम स्त्री बड़े पुरुषों से रक्षा की गई तथा डर से अन्य पुरुष की सेवा नहीं करती है। अधम स्त्री अत्यन्त दुष्ट, अधर्म करनेवाली तथा पतिसेवा न करनेवाली एवं कलह करनेवाली होती है। तीन प्रकार के भक्तों का लक्षण एवं फल का वर्णन। ब्रह्माण्ड की रचना को भक्त जानते हैं। मुनि, देव और सन्त कष्ट से जानते हैं सम्पूर्ण संसार के अर्थ को मैं जानता हूं। ब्रह्मा, अनन्त, महेश्वर, धर्म, सनत्कुमार, नर, नारायण, कपिल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता एवं सर्वज्ञ राधा विश्व के अर्थ को जानते हैं अन्य नहीं। गोलोक में भगवान् के वाम अङ्ग से सोलह वर्ष की बालिका की रचना हुई वही वेदमाता सावित्री, गायत्री आदि नामों से विख्यात हुई। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना का वर्णन।

---

८५ चतुर्णां वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम् ६८६
कर्मविपाकवर्णनम् ६८६

नन्दजी द्वारा पूछे गये चारों वण के भक्ष्याभक्ष्य एवं कर्मविपाक के उत्तर में भगवान् ने कहा—ताम्बे और लोहे के वर्तन में दूध, नारियल का जल, लवण-युक्त दूध, जला हुआ अन्न, मधु से मिला हुआ घृत, तैल एवं गुड़ और पीने के बाद बचा हुआ जल अभक्ष्य एवं अपेय कहा है। सन्ध्या समय व दिन में दो बार भोजन निषेध कहा है। जल, दूध, चूर्ण, घृत, लवण, स्वस्तिक, (जलेवी) गुड़, क्षीर (खीर), तक्र (छाछ) और मधु अपने हाथ से दूसरे के हाथ में देना गोमांस के समान बताया है। चाँदी के पात्र में रक्खा हुआ कपूर भी अभक्ष्य है। भोजन के समय परोसनेवाला यदि खानेवाले को स्पर्श कर जाय तो वह अन्न सबके लिये अभक्ष्य है। नेवला, गैंड़ा, महिष, पक्षी, सर्प, शूकर, गर्दभ, विलाव, व्याघ्र, सिंहादि पशु, जलजन्तु मकरादि, गौ, हाथी घोड़े आदि मच्छर मक्षिकादि और वानर आदि को मारना एवं उनका मांस भक्षण करना मनुष्यमात्र के लिये निषिद्ध है। भैंस व अजादि का दूध, दही व घृत का भक्षण नहीं करना चाहिये। विष्णुस्मृति में आया है—"न भक्ष्ये अजामहिषीक्षीरे।" हे नन्दजी! शुभ एवं अशुभ कर्म भोगने से ही क्षय होता है अन्यथा नहीं। अच्छे कर्म करने से स्वर्ग प्राप्ति व दुष्कर्म करने से नरक प्राप्ति होती है। गोहत्या करनेवाला गौ के लोम के जितने वर्ष पर्यन्त विच्छू की योनि को प्राप्त हो पश्चात् अन्यान्य योनि में जाता है! ब्रह्महत्या करनेवाला विष्ठा का कीड़ा होता है व स्त्री हत्या करनेवाला अति पातकी कहा गया है तथा कालसूत्र नरक में जाता है। खजाना, फल व माया से धन हरण करनेवाला यक्ष हो सौ वर्ष तक चाष पक्षी होता है। पुनः भारतवर्ष में कृष्णवर्ण शूद्र बन दूसरे जन्म में अधिक अङ्गवाला ब्राह्मण होता है। तत्पश्चात् ब्राह्मणरूप में पुनः प्रगट हो ब्राह्मणों को भोजन करवाने से मुक्त होता है।

वंशहीन मनुष्य को एक लाख ब्राह्मणभोजन कराने से पुत्र प्राप्ति हो सकती है। क्रोधी मनुष्य सात जन्म पर्यन्त गदहा और कलहकारी सात जन्मतक कौआ होता है। आचारहीन मनुष्य, यवन, हिंसा करनेवाला, गञ्जा, अदीक्षित वञ्चर, दुष्ट दृष्टि से देखनेवाला-काना, अहंकारी-कर्णहीन, वेद का निन्दा करनेवाला-बहरा, वाक्य हरण करनेवाला-गूंगा, हिंसक-केशहीन, मिथ्या बोलनेवाला-मूछ हीन और पुस्तक चोरी करनेवाला मूर्ख होता है। अकेला मिष्टान्न खानेवाला कालसूत्र नरक भोगकर पुनः नाना योनियों में जाता है। मनुष्यों में सुनार, स्वर्णवणिक् (कोई जाति विशेष होती है) कायस्थ ये धूर्त एवं कृपाहीन होते हैं। इनका हृदय छूरे की धार के समान एवं आदरभाव भी इनमें नहीं होता है। सौ में कोई एक कायस्थ सज्जन होता है। उपरोक्त दो नहीं होते अतः बुद्धिमान् मनुष्य इनमें विश्वास कम करे। प्रातःकाल शयन करनेवाला, संध्या व दिन में सोनेवाला, यज्ञोपवीत का हरण करनेवाला, त्रिकाल संध्या से हीन, अशुद्ध संध्या करनेवाला और वेदवेदाङ्ग की निन्दा करनेवाला व्यक्ति तीन जन्म में पतित हो जाता है तथा स्वर्गमार्ग उसे नहीं मिलता है। एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी व जन्माष्टमी को भोजन करने से चाण्डाल योनि में जाता है। उपवास करने में असमर्थ हो तो हविष्यान्न भक्षण करे। जो मनुष्य ब्राह्मण और देवता को नमस्कार नहीं करता है वह जीवनपर्यन्त अशुचि व यवन कहा गया है। जो आये हुए ब्राह्मण को प्रणाम नहीं करता है वह ब्रह्मघाती कहा गया है। शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी लोभ के वशीभूत हो झूठ कहता है वह सात जन्म तक बड़ा वानर होता है। नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, नगरियों में काशी, ज्ञानियों में शङ्कर, शास्त्रों में वेद, वृक्षों में अश्वत्थ, तपस्याओं में भगवान् की पूजा और जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति है। अध्याय का फल तभी है कि वाचक को सुवर्ण, रौप्य, वस्त्र, और ताम्बूल दान किया जाय।

नन्दजी के द्वारा केदार कन्या का विवरण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले—स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के ध्रुव उसके नन्दसावर्णि और उसके केदार नामक पुत्र हुआ। वह राजा पूर्ण दानी व सदाचारी तथा ब्राह्मणों का भक्त था। कमला की कला से उत्पन्न हुई तथा यज्ञकुण्ड से पैदा हुई कन्या की उसे प्राप्ति हुई। कन्या ने कहा मैं तुम्हारी पुत्री हूं। राजा ने उसे भक्तिपूर्वक अपनी पत्नी को अर्पण किया। केदार कन्या कृष्ण के लिये तप करने लगी। ब्रह्मा ने वरदान दिया कि तुम्हें बाद में कृष्ण की प्राप्ति होगी। एक समय नदी तटपर बैठी हुई कन्या की परीक्षा लेने धर्म आया। कन्या ने युवावस्थावाले सुन्दर पुरुष को देखकर पूजन किया और कहा – आप साक्षात् विप्ररूपी भगवान् हैं। धर्म ने कहा—तुम किसकी पुत्री हो ? तुम्हारा क्या नाम है ? किस निमित्त तुमने तप किया है ? जो इच्छा हो सो वर मांगो। वृन्दा ने कहा हे विप्र ! मैं केदार कन्या हूं, वृन्दा मेरा नाम है तथा भगवान् कृष्ण को पतिरूप में पाने के लिये तप करती हूं यदि आप देने में समर्थ हैं तो मुझे यही वर दीजिये। तब धर्मराज ने कहा—श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं उनको लक्ष्मी एवं सरस्वती के सिवा अन्य कौन पासकता है। ब्रह्मस्वरूपा राधा उनकी स्त्री हैं। सम्पूर्ण देव, दानव भगवान् की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विभूति उन्हीं की है। गोलोक में राधा ही भगवान् की सेवा कर सकती है अन्य नहीं। अतः तुम मुझे वरण करो मैं सब राजाओं का स्वामी हूं मेरे पास आने से तुम्हें सम्पूर्ण संसार के भोग प्राप्त होंगे। श्रीवृन्दा ने कहा—हे महाभाग ! ब्राह्मणों के लिये तप, सत्य एवं धर्म वेदव्रत ही उत्तम कहा है। परस्त्री से सम्भोग करना अधर्मियों का कार्य है। अधर्म करने से अमङ्गल कार्य का फल देखता है। उसे साक्षात् यमराज दण्ड देते हैं।

हे विप्र ! मैं तुम्हें भस्म कर सकती हूं किन्तु "अवध्याश्च द्विजातय:" द्विजाति अवध्य कहे हैं। कृष्ण द्वारा स्थापित किया गया धर्म मेरी रक्षा करता है।
येन शुक्लीकृता हंसा: शुकाश्च हरितीकृता:। मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति

तत्पश्चात् धर्म को शाप कि तुम्हारा क्षय होगा। जब यमराज शाप देने लगे तब सूर्य ने रोका। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवों ने धर्मराज के जीवदान के निमित्त स्तुति की। तब वृन्दा ने कहा—मैं विप्ररूपी धर्मराज को नहीं जानसकी अत: क्रोधित हो शाप दिया है। यदि मेरा व्रत, तप, सत्य और विष्णुपूजन सत्य है तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाय। पुन: कलारूप धर्मराज को वृन्दा ने गोद में बैठाया। धर्मपत्नी मूर्ति ने भगवान् से प्रार्थना की हे महाराज ! मेरे पति को जीवदान दो पतिहीन स्त्री संसार में पापिनी कही जाती है। तब भगवान् ने वृन्दा से कहा—हे देवि ! जितनी ब्रह्मा की आयु है वह तुमने तप कर प्राप्त की है अत: वह आयु धर्म को देकर गोलोक में जाओ पीछे वृषभानु की पुत्री होओगी तब मुझे प्राप्त करोगी। वृन्दा ने कहा—हे देवगण ! मेरे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। मेरे मुख से तीन वार क्षय होने का वचन निकला है अत: सत्ययुग में पूर्ण पाद, त्रेता में त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद और कलियुग में एकपाद हो पुन: पूर्ण हो जायगा। इतना कह वृन्दा का गोलोक में गमन।

८७ सनत्कुमारादिभि: सह कृष्णस्य समागम: १००६

आत्मयाथार्थ्यवर्णनम् १०११

दक्षकालनिर्णयवर्णनम् १०१३

नन्दजी ने पूछा कि हे कृष्ण तुम्हें वेद, देव, ब्रह्मा, ईश, शेष और मुनि सिद्धादिक नहीं जान पाते हैं अत: तुम्हारे यथार्थ स्वरूप का वर्णन करो। इसके वाद सनक, सनातन आदि ऋषियों का कृष्ण के पास आगमन। सनत्कुमार का

श्रीकृष्ण का परब्रह्म के विषय में विचार। श्रीकृष्ण बोले—हे सनत्कुमारजी! मैं ही यज्ञ, व्रत और तपस्याओं का दक्षिणा के साथ फल देनेवाला हूं। पुनः ब्रह्मा एवं पार्वती सहित शङ्कर व अन्य देवादिकों का आगमन। सनत्कुमार बोले—मैंने गोलोक में भगवान् को नहीं पाया तब मैं वैकुण्ठ में गया। उसके बाद क्षीरोद के पास वहां मैंने थकावट को दूर करने के लिये स्नान किया पुनः सौ योजन में फैले हुए कच्छप को वालुका में देखा। राघवमत्स्य ने उसका उद्धार किया। तब मैंने कहा—हे भक्त! तुम धन्य हो। उसने कहा—मेरे से धन्य क्षीरसागर है। क्षीरोद ने कहा मेरे से धन्य पृथ्वी है। पृथ्वी ने कहा—मेरे से धन्य शेष है। इस तरह उत्तरोत्तर धन्य कहते हुए दक्षिणा को सबसे अधिक धन्य कहा है। भगवान् दक्षिणा से फल देते हैं बिना दक्षिणा के यज्ञ फल नहीं देता। इतना सुन नन्द आश्चर्य चकित हो गये तथा उन्हें मूर्छा आ गई। पश्चात् भगवान् द्वारा उनको चेतना की प्राप्ति हुई।

८८ कृष्णस्य शक्तिदर्शने नन्दस्य मोहः १०१४
शिवकृतं भगवतीस्तोत्रम् १०१५
दुर्गाया वरप्रदानम् १०१७

श्रीकृष्ण बोले—हे तात! चेतना प्राप्त कर उठो। यह संसार जलबुद्बुद की तरह है। मोह को छोड़ो ब्रह्मस्वरूप पाकर भगवती की स्तुति करो। जिस स्तोत्र को पढ़कर शम्भु ने त्रिपुरासुर को मारा वह तुम्हें कहता हूं। श्रीकृष्ण ने कहा—रण में दुःखित शङ्कर को देखकर ब्रह्मा ने कहा—दुर्गा की स्तुति करो शक्ति की सहायता के बिना कोई भी किसी को नहीं जीत सकता। ब्रह्मा के वचनों को सुनकर रणग्रस्त शङ्कर द्वारा दुर्गा की स्तुति की गई। शङ्कर ने कहा हे महामाये! मेरे ऊपर दया कर शत्रु का संहार करो। तब दुर्गा ने कहा—आप माया शक्ति से असुर का संहार करो। पुनः भगवती ने कहा—वर मांगो।

शङ्कर ने कहा—दैत्य नष्ट हो यही वरदान दीजिये। भगवती ने कहा—हरि का स्मरण करो। शङ्कर का भगवान् का स्मरण करना एवं वृषरूप भगवान् द्वारा वापी पान व शङ्कर द्वारा त्रिपुर का संहार। इस स्तोत्र राज को पढ़ने से महा बन्ध्या भी पुत्र पैदा कर सकती है। यह स्तवराज हरएक व्यक्ति को नहीं देना चाहिये यह परम गोपनीय है। दुर्गा का अपने स्थान को गमन।

८९ नन्दम्प्रति श्रीकृष्णवाक्यम् १०१६

श्रीकृष्ण ने कहा—हे व्रजराज! आपने सब तत्व जान लिया है व्रज में जाइये। मेरे बालभाव के अपराधों को क्षमा कीजिये। यशोदा के साथ यहां के सुख भोग रोहिणी, गोपिका, राधा की माता कलावती एवं राधा के साथ गोलोक में जावेंगे। गोलोक से अमूल्य रत्नों से युक्त एक कोटि रथ आयें तो आप यह शरीर छोड़ दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जावेंगे। नन्दजी ने कहा—हे कृष्ण! चारों युग के धर्म विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। कलिशेष में पृथिवी, धर्म एवं प्राणियों की क्या गति होगी? तत्पश्चात् कृष्ण द्वारा मधुर कथा का कथन।

९० चतुर्युगाणां धर्मादिकथनम् १०२१
कलिधर्मादिकथनम् १०२४

श्रीकृष्ण ने कहा—सत्ययुग में सम्पूर्ण मनुष्य धार्मिक थे तथा धर्म, सत्य व दया पूर्ण रूप से विराजमान थे। वेद, वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, संहिता, पञ्चरात्र और धर्मशास्त्र पूर्ण रूप में थे। ब्राह्मण वेदों के जाननेवाले व भगवान् के परम भक्त थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वैष्णव थे। शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले, राजा लोग धार्मिक, शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त, स्त्रियां पति-भक्ता व पतिव्रता थी। ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था। सब ऋतु-कालाभिगामी थे एवं कोई भी स्त्रीलोभी, लम्पट न थे। वृक्ष पूर्णफल देनेवाले और

गौएँ पूर्ण दूध देनेवालीं तथा मनुष्य सब बलवान् तथा सुन्दर थे उनमें कईएक पुरुष लक्ष वर्षकी आयु प्राप्त करते थे। सब स्त्री-पुरुष पण्डित थे। कोई भी रोगी, धूर्त, पापी और पाखण्डी नहीं थे। त्रेता में धर्म तीन पाद, द्वापर में दो पाद तथा कलियुग में एक चरण से विराजमान है। जबतक पृथ्वी पर देव एवं शास्त्रों की पूजन है तबतक सत्य एवं धम का अंश रहेगा। नन्दजी ने कहा तीर्थ, साधु, ग्राम्यदेव और शास्त्र पृथ्वी पर कबतक रहेंगे ? श्रीकृष्ण बोले—कलियुग में १० हजार वर्ष पर्यन्त भगवान् पृथ्वी पर रहेंगे। देवताओं की प्रतिमा, शास्त्र एवं पुराणों की पूजा भी उतने ही वर्ष तक तथा गङ्गा नदी तीर्थ ५ हजार वर्ष पर्यन्त रहेंगे। पूर्ण अधर्म होने से चारों वर्णों का एक ही वर्ण बन जायगा। मन्त्रयुक्त विवाह, सत्य, क्षमा आदि न रहेंगे। सभी अभक्ष्य भक्षण करकेवाले, लोभी एवं सन्ध्या व शास्त्रों से विहीन हो जायेंगे। नारियों में कोई भी सती न होगी। वे घर-घर में कुलटा और कलहकारिणी होंगी। पुत्र द्वारा पिता का तिरस्कार व शिष्य द्वारा गुरु का तिरस्कार होगा। निर्धन मनुष्य, भूमि धान्यहीन, दूध हीन गौ, शौचसन्ध्याहीन ब्राह्मण सब स्वच्छन्द विचरनेवाले, शिश्नोदर परायण, जातिहीन गुरु, म्लेच्छ राजा लोग, यवन एवं धर्म की निन्दा करनेवाले होंगे। नदी, नद, कन्दरा, तालाब और सरोवर सारे ही जल एवं पद्मों से हीन होंगे। मनुष्य कटु बोलनेवाले व निर्दय होंगे। कलियुग के बाद सत्ययुग की प्रवृत्ति होगी। हे नन्दजी ! काल सम्पूर्ण कार्य करता है। वही सृष्टि की रचना करनेवाला, पालक, संहारकर्ता, विरोध, विच्छेद व प्रीति करता है। नन्दजी ने कहा—हे कृष्ण प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा का स्मरण कैसे नहीं करते हो ? एक बार कुछ दिन के लिये गोकुल चलो। इतना कह नन्द द्वारा नेत्रों के जल से श्रीकृष्ण को सिंचन करना।

---

९१ गोकुले उद्धवस्यप्रेषणम् १०१५

श्रीभगवान् बोले—मेरे आने-जाने का कारण शीघ्र ही उद्धवजी कह देंगे। वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर और उद्धव का आगमन। वसुदेवजी ने कहा—हे नन्द ! आप पूर्ण ज्ञानी हैं तथा मेरे मित्र हैं। महोत्सव में पुत्र का दर्शन अवश्य करेंगे। देवकी ने कहा—जैसे यह हम दोनों का पुत्र है वैसे आपका भी है। पुत्र के साथ मथुरा में कुछ समय ठहरिये। भगवान् ने कहा – हे उद्धव ! व्रज में जाकर व्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान दे नन्दजी की रहने की स्थिति व मेरी विनय माता से कह देना। इतना सुन उद्धवजी का वृन्दावन गमन।

९२ गोकुलं गत्वा तच्छोभादिदर्शनम् १०२६
गोकुलशोभावलोकनम् १०२७
उद्धवकृतं राधास्तोत्रम् १०३१

नारायण बोले—श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धवजी श्रीगणेश को प्रणाम कर नारायण, शंभु, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और महेश का स्मरण कर मङ्गलसूचक पदार्थों को देखते हुए जाना। उद्धवजी का यशोदा व रोहिणी के साथ वार्तालाप। यशोदा का वृन्दारण्य की देवता भवानी का पूजन करना। उद्धव का गोकुल की शोभा का देखना। सुन्दर रासमण्डल का देखना तथा गोकुल व वृन्दावन की शोभा का वर्णन। उद्धव द्वारा राधा की स्तुति। उद्धवकृत स्तोत्र पढ़ने से बन्धुविच्छेद, रोग व शोक नहीं होते हैं।

९३ राधोद्धव संवादकथनम् १०३२

उद्धव की स्तुति को सुन राधा ने काले रंग के मनुष्य को देखकर पूछा आप कौन हैं ? आपका क्या नाम है ? और क्यों आये हैं ? कृष्णाकृति होने से

मैं आपको कृष्ण का पार्षद मानती हूं। कृष्ण और बलराम की कुशल कहिये। नन्द क्या कारण से वहां ठहरे हैं। श्रीकृष्ण जब वृन्दावन को आयेंगे तब मैं उनके साथ रासक्रीड़ा करूँगी। उद्धव ने कहा – हे वराननने ! मैं उद्धव नाम का कृष्ण का पार्षद हूं। श्रीकृष्ण का शुभसंदेश देने आया हूं। नन्द, बलराम और श्रीकृष्ण कुशल से हैं। श्रीराधा ने कहा – यहां सम्पूर्ण शोभाशाली वैभव विराजमान है किन्तु मेरा प्राणनाथ नहीं हैं। हा कृष्ण ! हा रमानाथ !! कहकर राधा का मूर्छित होना। उद्धव का चकित होना एवं राधा की सात सखियों द्वारा सेवा करना। उद्धव ने कहा—हे देवि ! तुम सब देव, सिद्ध योगियों की स्वामिनी हो। कृष्ण, बलराम, व नन्दजी सहित जल्दी ही यहां आयेंगे। तुम शान्ति धारण करो। इतना सुन राधा द्वारा उद्धवजी को रत्नयुक्त अंगूठी का देना। श्रीराधा और उद्धव का परस्पर कथोपकथन। श्रीराधा ने कहा—उद्धवजी नारियों के मन की बात कोई भी विद्वान् नहीं जान सकता। कुछ शास्त्र के अनुसार वर्णन किया जाता है वेद भी जिसको कहने में समर्थ नहीं है शास्त्र क्या कह सकते हैं। मैं आपको सम्पूर्ण कहूंगी और आप कृष्ण को कह दीजियेगा। मैं कुल, लज्जा और भय को त्याग श्रीकृष्ण का चिन्तन करती हूं। इतना कहकर श्रीकृष्ण का ध्यान कर राधा का मूर्छित होना।

९४ मूर्च्छितां राधां दृष्ट्वा उद्धवकृतसान्त्वनम् १०३८
गोपीकृतराधासान्त्वनम् १०४१
उद्धवगोपीसंवादवर्णनम् १०४३

श्रीनारायण बोले – राधा को मूर्च्छित देख उद्धव ने चेतना कराकर कहा हे जगन्मातः ! जागो मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपके चरणकमल की रज से विश्व पवित्र होता है सब आपको ही भजते हैं। माधवी एवं मालती द्वारा राधा को सान्त्वना। मालती ने कहा हे राधिके ! कौन किसका प्रिय है

व कौन अप्रिय है सज्जन लोग समय के अनुसार कार्य करते हैं। पद्मावती ने कहा—अरसिक की नारियों को सुख का अनुभव नहीं होता है।

विद्युज्ज्वाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च। न नीतिर्नातिशस्त्रेषु सुविश्वासः खलेषु च

तुम निरन्तर कृष्ण का ध्यान करती हो। कृष्ण मथुरा में और तुम कदली वन में, यदि तुम प्राणों का त्याग करदोगी तो भी श्रीकृष्ण प्रकट नहीं होंगे। चन्द्रमुखी शशिकला, सुशीला, रत्नमाला, पारिजाता और माधवी की वार्ता सुन उद्धव का मूर्छित होना। पुनः उद्धव ने कहा—यह गोपियों के चरणारविन्दों की रज से पवित्र भारतवर्ष धन्य है। भारतवर्ष की स्त्रियों में गोपियां धन्य हैं। कृष्ण की भक्ति को योगीन्द्र महेश्वर, राधा, गोपियां, व गोलोकवासी जानते हैं कुछ सनत्कुमार, ब्रह्मा और सिद्ध भक्त जानते हैं। मैं भी गोपिकाओं का सेवक बन भगवान् का कीर्तन करूँगा। गोपियों से बढ़कर कोई भक्त नहीं है। कलावती ने कहा—पितरों की मानसी कन्या धन्या, मेना और कलावती विष्णु को देखने क्षीरसागर पर गईं वहां सनत्कुमार को प्रणाम न करने से उसने शाप दिया कि तुम्हारा जन्म भूमि पर होगा। कालिका ने कहा उद्धव सम्पूर्ण नर-नारी, देव, सिद्ध श्रीकृष्ण को जानते हैं। इस समय किसी युक्ति से राधा को प्रबोधित करो। उद्धव ने राधा से कहा—हे जगन्मातः! मैं श्रीकृष्ण भक्तों के सेवक का सेवक हूं उठो मेरे ऊपर कृपा करो मैं फिर मथुरा जाऊँगा।

९५ राधोद्धवसंवादवर्णनम् १०४५

श्रीनारायण बोले—उद्धव के वचनों को सुनकर राधा ने कहा हे वत्स! मथुरा में श्रीकृष्ण के प्रति मेरे सम्पूर्ण वचनों को कहकर श्रीकृष्ण को यहां लेआओ। मेरे समान कौन दुःखिनी होगी जो श्रीकृष्ण जैसे पति के होने पर भी विरहयुक्त रो रही हूं। राधा के समान कोई भी स्त्री दुःखित नहीं है। मैं निर्दयी विधाता से वञ्चित की गई हूँ। उस श्रीकृष्ण को कभी भी भूल

नहीं सकती। काल की गति वलवान् है मेरे को वोधित कराने में सावित्री, सरस्वती, वेद, वेदाङ्ग, सन्त, देवता, अनन्त, शम्भु, गणेश, विधाता या कोई भी समर्थ नहीं हैं।

स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतो गतिः।
कालसाध्यश्च सर्वश्च सुखंदुःखं शुभाशुभम्॥

हे उद्धव मथुरा जाओ और श्रीकृष्ण का मुख देखो। राधा का वचन सुनकर उद्धवजी का रोदन करना।

९६ राधोद्धवसंवादवर्णनम् १०४८
कालवर्णनम् १०५१

श्रीनारायण वोले—राधा के चरणों में नतमस्तक एवं रोते हुए उद्धव को माधवी ने कहा – हे उद्धव! क्षण भर ठहरकर राधा से गुप्त ज्ञान की प्राप्ति करो। उद्धव ने श्री राधा से कहा कि प्राणी अकेला ही पृथ्वी पर आता है और अकेला ही जाता है। कर्मों के अनुसार पैदा होता ओर कर्मों के अनुसार ही जाता है। हे देवि! जो आपने मुझे रत्नादि दिये हैं वे मेरे साथ जायेंगे नहीं उनसे मेरा क्या प्रयोजन है इस लिये मुझे संसार समुद्र से पार होने का उपाय कहिये। उद्धव के वचन सुन हँसकर राधा ने कहा हे उद्धव! माधवी के वचन से तुमने प्रश्न किया है किन्तु मैं स्त्री जाति हूं क्या ज्ञान देसकती हूं। शुद्ध काल की गति भगवान् जानते हैं किन्तु गोलोक के रासमण्डल में कालगति देखी है वह तुम्हें कहती हूं। मनुष्य सम्पूर्ण संसार के स्वामी कालरूपी भगवान् को सेवन करने से पार हो सकता है। वही भगवान् रविरूप से पुण्यात्मा एवं शुद्ध भक्तगण तथा सव की आयु हरण करते हैं। हे उद्धव! विधाता के मानसिक पुत्र सनकादिकों को देखो जो ज्ञानियों को भी गुरु एवं अवस्था में पांच वर्ष के हैं। इनका स्मरण करने से हरि की भक्ति व तीर्थ स्नान का फल मिलता है। मार्कण्डेय को देखो जो

भगवान् की सेवा से चिरायु (लम्वी उम्रवाला) हो गया है। परशुराम, वलि, हनुमान् व्यास, अश्वत्थामा, विभीषण, कृपाचार्य, जाम्ववान् तथा अन्य सिद्धेन्द्र व नरेन्द्रों में,नरों में एवं दैत्यों में प्रह्लाद को भगवान् की सेवा करने से ही दीर्घायु प्राप्त हुई है। जो हरि की सेवा नहीं करते हैं, वे मूर्ख हैं। हे वत्स! मैं तुम्हें कालगति का वर्णन कहती हूं। सम्पूर्ण आधारों का स्थान महान् विराट् है उसके रोमों में असंख्य विश्व विराजमान हैं। सवसे परम सूक्ष्म परमाणु है दो परमाणु से एक अणु, तीन अणु से एकत्रसरेणु, तीन त्रसरेणु से एक त्रुटि, सौ त्रुटियों से एक वेध, तीन वेध से एक लव, तीन लव से एक निमेष तीन निमेष से एक क्षण, पांच क्षण से एक काष्ठा, दश काष्ठा से एक लघु, पन्द्रह लघु से एक दण्ड, दो दण्डों से एक मुहूर्त्त और साठ दण्डों की एक तिथि होती है। साठ दण्डों का आठवां हिस्सा एक प्रहर, चार प्रहर की रात्रि व चार प्रहर का दिन होता है। पन्द्रह तिथि से एक पक्ष तथा दो पक्षों से एक मास, दो मास से एक ऋतु तथा छै ऋतुओं से एक वर्ष होता है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर छः ऋतुएँ होती हैं। वैशाख, ज्येष्ठ आदि वारह मास, छः मास का दक्षिणायन और छः मास का उत्तरायण होता है। प्रतिपदादि तिथि, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, विष्कुम्भ आदि योग और बव, बालव आदि करण कहे गये हैं। सत्यंयुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये युग कहे गये हैं। यही कालसंख्या का निर्णय बताया है।

९७ राधोद्धवसंवादवर्णनम् १०५४

उद्धवाय ज्ञानप्रदानम् २०५५

उद्धवस्य मथुराम्प्रतिगमनम्

श्रीनारायण बोले—जाते हुए उद्धव को देख राधा द्वारा शुभाशीर्वाद एवं मङ्गलसूचक शकुनों का दिखाना।

शुभंभवतुमार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम् । ज्ञानं लभ हरेः स्थानात् कृष्णस्य सुप्रियो भव

राधा ने कहा जो कर्म श्रीकृष्ण के निमित्त किये जाते हैं वे ही उत्तम कहे गये हैं। वेद के कौथुमि शाखा में नन्दनंदन नाम से हजार नाम वताये हैं जो विघ्नों को दूर करनेवाले हैं। उद्धव का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मूर्छित होना पुनः चेतना प्राप्तकर वह वोले भारतवर्ष में वृन्दावन धन्य है और राधा के चरणों से पवित्र पृथ्वी भी धन्य है। सन्तगण राधिका की नित्य सेवा करते हैं। जो पापी राधा की निन्दा करते हैं उन्हें सैकड़ों ब्रह्महत्याओं का पाप लगता है। वह उसी पाप से कुम्भीपाक व रौरव नरक में जाता है। तप्त तैल में चौदह इन्द्रों पर्यन्त सात पितरों के साथ रहता है। राधा के आदेश से उद्धव का मथुरा गमन।

९८ कृष्णोद्धव संवादवर्णनम् १०४८

यशोदा को प्रणाम कर उद्धव का खर्जूर वन के वाम भाग से होकर यमुना-तट गमन। श्रीकृष्ण और उद्धव का परस्पर वार्तालाप। हे उद्धव ! गोकुल में यमुनानदी के किनारे वृन्दावन, क्रीडासरोवर, भाण्डीरवट, गोस्थान देखा होगा तथा राधा व अन्य गोपियों ने क्या कहा है। वलदेव की माता रोहिणी, मेरी माता यशोदा, और प्रेम से विकल हुई राधा मेरा स्मरण करती होगी। उद्धव ने कहा हे कृष्ण ! आपके कथनानुसार सम्पूर्ण वस्तुय मैंने देखी। राधा की आपमें अनन्य भक्ति है उनको छोड़ना उचित नहीं। मैंने राधा से कह दिया है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे पास जल्दी ही आयेंगे। उद्धव के वचन सुन श्रीकृष्ण का हंसना और उद्धव का स्वगृह गमन। श्रीकृष्ण का स्वप्न में गोकुल गमन। व्रजवासियों को प्रसन्न कर पुनः मथुरा आगमन।

---

९९ भगवदुपनयनवर्णनम् १०६१

श्रीनारायण बोले—वसुदेव के घर गर्ग मुनि का आगमन। वसुदेव और देवकी ने गर्गजी की पूजा कर प्रणाम किया। गर्ग ने कहा—हे वसुदेव! बलराम और श्रीकृष्ण यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो गये हैं अतः शुभमुहूर्त्त में यह संस्कार होना चाहिये। श्रीकृष्ण द्वारा इस संस्कार के निमित्त सम्पूर्ण मुनीन्द्र व सिद्धों का स्मरण करना। शुभ दिन में मुनीन्द्र, बान्धव, राजा लोग देव, देवकन्या, नागकन्या, ब्राह्मण, भिक्षुक, सन्यासी, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, युधिष्ठिरादि पांचों भाई, नाना देशों के राजा, अत्रि आदि ऋषि, ब्रह्मा, पार्वती सहित शंकर, नन्दी आदि गण, गणेश, धर्म, चन्द्र और कुबेरादि देवों का वसुदेव के स्थान पर आगमन। सर्व प्रथम गणेश का पूजन कर वसुदेव द्वारा आये हुए समग्र नर-नारियों का सत्कार व पूजा करना। वसुदेव द्वारा पार्वती पुत्र गणेश की प्रार्थना।

१०० भगवदुपनयनवर्णनम् १०६४

श्रीनारायण बोले—देवकी द्वारा सम्पूर्ण नारियों का सत्कार। पार्वती का पूजन कर मुनिकन्या, मुनिपत्नी और बन्धु कन्याओं का पूजन। गायन एवं वाद्ययन्त्रों के साथ मथुरा ग्राम की देवता भैरवी व मङ्गलचण्डी का पूजन, ब्राह्मणों का पूजन तथा उनको भोजन कराया गया। बलराम और श्रीकृष्ण का शुद्ध गङ्गाजल से स्नान कर तथा सुन्दर वस्त्र पहनकर सभा में आगमन। चराचर के मालिक श्रीकृष्ण को देख विधाता, शंकर, शेष, धर्म, सूर्य, देव, मुनि' कार्तिकेय और गणेश द्वारा अलग-अलग स्तुति करना। इस स्तोत्र को पूजाकाल में पढ़नेवाला सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर रत्नयान में बैठकर गोलोक में जाता है।

---

१०१ भगवदुपनयनवर्णनम् १०६७

श्रीनारायण बोले—बलराम और श्रीकृष्ण ने शुभलग्न व शुभमुहूर्त्त में स्वस्तिवाचन कर ब्राह्मणों को सुवर्ण दान दे गणेश, सूर्य, वह्नि, शंकर और पार्वती की षोडशोपचार से पूजन कर नवग्रह व षोडश मातृकाओं का पूजन किया तदनन्तर मुनि गर्ग ने वृद्धि श्राद्ध कराकर बलदेव और श्रीकृष्ण को गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। प्रथम दोनों का पार्वती से भिक्षा लाना फिर यशोदा, रोहिणी आदि सम्पूर्ण स्त्रियों से भिक्षा लाना। सभी ने मणि रत्नादिकों की भिक्षा दी। उन्होंने उस भिक्षा को लेकर कुछ गर्ग के लिये और कुछ अपने गुरु को दिया। वैदिक कर्म समाप्त होनेपर गर्गजी को दक्षिणा दी गई। जो महोत्सव में आये थे वे दोनों को शुभाशीर्वाद देकर अपने-अपने घर चले गये। नन्द-यशोदा का रोदन करना तथा श्रीकृष्ण का उन दोनों को समझाना। वसुदेव द्वारा यज्ञोपवीत के उपलक्ष्य में ब्राह्मणभोजन।

१०२ विद्यापठनार्थ सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णगमनम् १०६९

मुनिपत्नीस्तोत्रम् १०७१

श्रीनारायण बोले—बलराम और श्रीकृष्ण ने गुरु के घर जाकर गुरुपत्नी व गुरुजी को प्रणाम कर उनसे शुभाशीर्वाद ग्रहण कर मणि व रत्नों की भेंट देते हुए कहा—आपसे वाञ्छित विद्या ग्रहण करेंगे। हमें शुभमुहूर्त्त में विद्यारम्भ कराइये। गुरु ने स्वीकार कर मिष्टान्न, वस्त्र चन्दनादि से पूजा एवं स्तुति की। गुरुपत्नी ने कहा -आज मेरा जन्म और पातिव्रत्य सफल हुआ। तुम्हारे चरणरज से मेरा आंगन पवित्र हो गया। इतना कहकर श्रीकृष्ण को गोदी में बैठाकर देवकी के समान प्रेम से अपना स्तन पान करवाया और स्तुति करने लगीं। श्रीकृष्ण ने कहा हे मातः! मैं दूधमुहा बच्चा हूं मेरी क्या स्तुति करती हैं। अपने पति के साथ

गोलोक को जाइये। सान्दीपिनि से चारों वेद एक मास में पढ़कर उन्हें भक्तिपूर्वक उनके मृत पुत्र को अर्पण कर दशकोटि सुवर्ण दिया। इस स्तोत्र को पढ़ने से मूर्ख भी पण्डित होता है।

१०३ द्वारकानिर्माणवर्णनम् १०७२
द्वारकानिर्माणे शुभाशुभवृक्षवर्णनम् १०७४

श्रीनारायण बोले—बलराम सहित श्रीकृष्ण का मथुरा में आना। गोपवेश को छोड़कर नृपवेश को धारण कर गरुड़, चक्र व विश्वकर्मा का स्मरण करना। श्रीकृष्ण ने समुद्र से कहा—हे महाभाग! मुझे नगरनिर्माण के लिये १०० योजन स्थान दो उसे तुम्हें बाद में दे दिया जायगा। विश्वकर्मा को आदेश दिया कि सुन्दर नगर का निर्माण करो। श्रीकृष्ण द्वारा उग्रसेन का राज्याभिषेक। विश्वकर्मा का श्रीकृष्ण से शुभाशुभ वृक्षों के लिये पूछना। श्री भगवान् बोले—गृहस्थों के आश्रम में नारिकेल (नारियल) का वृक्ष धनप्रद होता है शिविर के ईशान में पुत्रप्रद होता है। विल्व, पनस, जम्वीर, और बदरी (बोर) पूर्वभाग में प्रजा देनेवाला और दक्षिण में धन देनेवाले कहे गये हैं। शिविर में वटवृक्ष निषिद्ध है क्योंकि उससे चोर का भय होता है। नगर में प्रसिद्ध वृक्षके दर्शन से पुण्य होता है। इमली का वृक्ष निषिद्ध है। द्वारकापुरी के निर्माण में अन्य बहुतसे शुभाशुभ वृक्षों का वर्णन।

१०४ द्वारकादर्शनार्थं देवादीनामागमनम् १०७७
यादवैः सह श्रीकृष्णस्य द्वारकाप्रवेशः
द्वारकायामुग्रसेनाभिषेकवर्णनम्

श्रीनारायण ने नारद से कहा कि रत्नों से परिष्कृत देदीप्यमान द्वारका को देखने के लिये ब्रह्माजी, भवानी सहित भगवान् शंकर, अनन्त, धर्मराज, भास्कर

हुताशन, कुवेर, वरुण, पवन, यम, महेन्द्र, चन्द्र, एकादश रुद्र, अन्य मुनिगण, देवगण, आठवसु, द्वादश आदित्य, दैत्य, गन्धर्व और किन्नर आये। वहां वटवृक्ष के मूल में भगवान् पुरुषोत्तम को देखकर सम्पूर्ण देवताओं ने स्तुति की। रमणीय मुक्ता माणिक्य हीरे और रत्नों की पंक्ति से सुशोभित उस द्वारकापुरी को देखा। जिसका सौ योजन में विस्तार, गम्भीर सप्त परिखाओं से वेष्टित, नव प्राकार से युक्त, लक्ष क्रीड़ा सरोवर, प्रफुल्लित तीन लाख पुष्पोद्यान, और नाना प्रकार के वृक्ष तथा असंख्य मन्दिरों से युक्त पुरी को देखकर देवगण विस्मय को प्राप्त हुए। तदनन्तर बलदेव के स्मरण करने से उग्रसेनादि सहित सम्पूर्ण यदुवंशी, पुत्रों सहित माता कुन्ती, वालगोपालों सहित नन्द व यशोदा, गन्धर्व, किन्नर, स्त्रियों सहित विद्याधर, नर्तकी, गायक, भिक्षुक, विदूषक (भाण्ड,) भट्ट, ज्योतिषी, नाना देशों के राजा लोग, वैद्य, यति, सन्यासी, अवधूत, ब्रह्मचारी, शिष्यों सहित सम्पूर्ण मुनिगण, सनक, सनन्दन, सनातन, साढ़े तीन कोटि सहित ज्ञानियों के परम गुरु सनत्कुमार, तीन-तीन लाख शिष्यों सहित दुर्वासा व वाल्मीकि, लक्ष-लक्ष शिष्यों सहित कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कोटि शिष्यों सहित बृहस्पति, साढ़े तीन कोटि शिष्यों सहित शुक्र और अङ्गिरा, कोटि-कोटि शिष्यों से युक्त प्रचेता व वशिष्ठ, अन्य असंख्य शिष्यों सहित महर्षिगण, अश्वत्थामा, द्रोण, कृपाचार्य, भीष्म, कर्ण, शकुनि, भाइयों सहित राजा दुर्योधन आदि राजाओं का आगमन।

श्रीकृष्ण और उग्रसेन का वार्तालाप—श्रीकृष्ण ने कहा शुभकर्म होने के बाद शिव, ब्रह्मा, देव. मुनि सब अपने स्थानों में जायेंगे। माहेन्द्रक्षण में आप मेरे माता-पिता के साथ द्वारका में प्रवेश कीजिये। अन्य यादवादि मथुरा में जायेंगे। इन वचनों को सुनकर भयभीत उग्रसेन ने कहा—हे वासुदेव! मैं पैतृकी भूमि को वापिस नहीं जाऊँगा। जन्मभूमि में बोया हुआ बीज और अग्नि में छोड़ी हुई हवि अवश्य फलीभूत होती है।

पितॄणांनिष्फलंश्राद्धं देवानामपिपूजनम्। किञ्चित्फलप्रदञ्चैव सम्पूर्णं पैतृकेस्थले॥
पुत्रपौत्रकलत्रेभ्यः प्राणेभ्यः प्रेयसी सदा। दुर्लभा पैतृकीभूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी॥

म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थपुण्यफलं लभेत्। गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे!॥
तत्र स्नात्वा जले पूते गङ्गास्नानफलं लभेत्। पितॄणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम्॥
पैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तद् द्विगुणं लभेत्।
पैतृकी भूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि॥

श्रीकृष्ण ने कहा - पैतृकी भूमि तीर्थतुल्य है परन्तु द्वारका सब तीर्थों से श्रेष्ठ है जिसमें प्रवेश करने से पुनर्जन्म नहीं होता है तथा दान, श्राद्ध व देवपूजन अन्य तीर्थों से चतुर्गुण फलदायक होता है। द्वारकापुरी में उग्रसेन के राज्याभिषेक का वर्णन। देव, मुनियों का उग्रसेन को शुभाशीर्वाद दे स्वस्थान गमन।

१०५ रुक्मिण्युद्वाहप्रस्ताववर्णनम् १०८२

रुक्मिणीविवाहप्रश्नेभीष्मकं प्रति रुक्मेरुक्तिः १०८५

श्रीनारायण बोले—विदर्भ देश में नारायण के अंश से उत्पन्न हुआ धार्मिक और सब सम्पत्तियों को देनेवाला भीष्मक राजा था। उसके रुक्मिणी नाम की कन्या थी। उस लड़की का स्वरूप इन्द्र. वरुण और चन्द्रादिकों की स्त्रियों को भी मोहित करनेवाला था। राजा ने लड़की को विवाह योग्य देख पुत्र. ब्राह्मण और पुरोहितों से कहा कि मेरी लड़की विवाह योग्य हो गई है इसके लिये मुनिपुत्र, देवपुत्र व राजपुत्र जैसे योग्य वर खोजना चाहिये। तब वेदवेदाङ्ग को जाननेवाले शतानन्द ने कहा—हे राजन्! पृथ्वी के भार को दूर करने के लिये साक्षात् नारायण भगवान् वसुदेव के पुत्ररूप में प्रकट हुए हैं जिनका चारों वेद, सन्त, सिद्ध. मुनि और ब्रह्मादि देव ध्यान करते हैं उन्हें लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी को अर्पण कर जन्म सफल करो। सतानन्द के वचन सुनकर सम्पूर्ण सभासदों के सामने कुपित होकर रुक्मि ने कहा - हे राजन्! भिक्षुक, लोभी क्रोधी, नर्तक वैश्य, भट्ट. याचना करनेवाला कायस्थ घटक

(अगुआ) नट, स्त्री लोभी और कामियों के वचन को छोड़ो। कृष्ण ने भय से कालयवन को मरवाकर उसके धन से जरासन्ध के भय से समुद्र में द्वारकापुरी का निर्माण किया है। मैं अकेला ही कृष्ण को नष्ट कर सकता हूं। मैं दुर्वासा का शिष्य हूं तथा रणशास्त्र को जाननेवाल हूं। मेरे समान परशुराम व शिशुपाल हैं। यदि कृष्ण इस विवाह के निमित्त यहां आयेगा तो उसे यमपुर पहुंचा दूँगा। बड़े आश्चर्य की बात है जो गौ की रक्षा करनेवाले वैश्य नन्दपुत्र गोपालकों के साथ भोजन करनेवाले श्रीकृष्ण को देवयोग्य रुक्मिणी को भिक्षुक के वचन से देना चाहते हो। तुम बुद्धिहीन हो सब में योग्य वर शिशुपाल के लिये कन्यादान करो और नानादेशों के राजाओं को निमन्त्रण दो तथा उनके लिये सामग्री व परिपूर्ण व्यञ्जन तैयार करो। राजा ने रुक्मि के वचन सुनकर पुरोहित के साथ निर्जन स्थान में मन्त्री से सलाह कर योग्य ब्राह्मण को द्वारकापुरी में भेजा। ब्राह्मण ने उग्रसेन को पत्रिका दी। इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन कराकर यात्रा की तैयारी की। सावित्री सहित ब्रह्मा, भवानी सहित शिव, शेष, दिनेश, गणेश, महेन्द्र, चन्द्र, वरुण, पवन, कुबेर, वह्नि, ईशान और अन्यदेवादि, गोपाल, धृतराष्ट्र पुत्र, युधिष्ठिरादि, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि, शल्य, भट्ट, ब्राह्मण, नर्तक और गन्धर्वादिकों का आगमन।

१०६ रेवतीबलयोर्विवाहवर्णनम् १०८७

श्रीनारायण ने नारद से कहा—राजा ककुद्मी ने ब्रह्मलोक से आकर अमूल्य आभूषणों से युक्त रेवती कन्या का विवाह बलराम के साथ किया और यादवों के साथ कुण्डिन नगर को चला गया। देवकी आदि स्त्रियों ने रेवती का मङ्गलाचार किया। सम्पूर्ण यादवों का कुण्डिन नगर में प्रस्थान। श्रीकृष्ण की सेना को देख क्रोधित रुक्मी ने कहा—अहो ! काल के द्वारा कियां गया कर्म

और दैव किसी से भी नहीं रोका जा सकता। क्या कहूं नन्द के पशुओं की रक्षा करनेवाला कृष्ण देवोपमा रुक्मिणी को ग्रहण करने के लिये आता है जिसकी जाति का कुछ निर्णय नहीं है। इसने बचपन में स्त्रीहत्या की है, मथुरा में कंस को मारा है राजेन्द्र के मारने से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है। शाल्व ने कहा रुक्मी का कहना सत्य है। शिशुपाल ने कहा बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य की आज्ञा से देव, मुनीन्द्र और ब्रह्मपुत्र भी आगये। दन्तवक्र ने कहा—ब्राह्मण तो लोभी होते हैं और देवता भक्तवत्सल होते हैं किन्तु ब्रह्मपुत्र कैसे आये। उनका वचन सुनकर देवसङ्घ, मुनि समुदाय, राजेन्द्र और बलराम आदि का क्रोधित होना।

१०७ रुक्मिणीविवाहे युद्धम् १०८९

रुक्मिण्युद्वाहवर्णनम् १०९१

भीष्मककृत कृष्णस्तवः १०९३

श्रीनारायण बोले—क्रोधित बलदेव ने रुक्मि के मान को हल से नष्ट कर कर दिया। पुनः रुक्मी और बलराम का युद्ध। अन्त में बलराम ने उसे निद्रास्त्र से निद्रित कर दिया। निद्रित रुक्मी को देखकर शाल्व ने शैलवृष्टि, शिलावृष्टि जलवृष्टि और जलते हुए अंगारों की वर्षा बलाराम पर की। क्रोधित बलराम ने उसके रथ को चूर्ण कर दिया। क्रोध से बलरामजी उसे मारने दौड़े तब आकाशवाणी हुई कि श्रीकृष्ण इसे मारेंगे! तुम्हारी क्या क्षमता है कि इसको मार सकेंगे। इतना सुनते ही बलराम ने हल से उसके मस्तक को चूर-चूर कर दिया और वह भूमि पर गिर पड़ा। शाल्व को गिरते देख शिशुपाल ने बलराम के साथ युद्ध किया। क्रोधित बलराम उसे मारने चले तब शङ्कर ने कहा इसे श्रीकृष्ण मारेंगे। पुनः बलराम ने दन्तवक्र के दांत हाथ से तोड़ दिये। बल के पराक्रम को देख सब योद्धा भाग गये। तथा वरयात्रियों का कुण्डिन नगर में

प्रवेश। शतानन्द का कोटि मुनियों के साथ आगमन। वर को देखने के लिये देवकन्या, नागकन्या, राजकन्या और मुनिकन्याओं का आगमन। प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने शौचकर्म से निवृत्त हो सन्ध्यादि कर्म कर मातृकाओं का पूजन किया। राजा भीष्मक ने मङ्गल वाद्यों के साथ रुक्मिणी को सुवेशित किया। शुभ नक्षत्र व शुभ लग्न में श्रीकृष्ण का भीष्मक के घर आगमन। भीष्मक द्वारा श्रीकृष्ण के साथ आये हुए देव, मुनि और यादवों का यथाविधि सत्कार। भीष्मक ने प्रार्थना की कि आज मेरा जन्म सफल हुआ जो साक्षात् विधाता सब सम्पत्तियों का देनेवाला और तपस्याओं के फल को देनेवाला मेरे घर में विराजमान है जिसके चरणारविन्दों को स्वप्न में भी देखने के लिये समर्थ नहीं हूं। इस प्रकार सम्पूर्ण देव, मुनि, गुरु और शङ्कर की प्रार्थना कर सामवेदोक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की—

केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम्।
केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिबिम्बकः॥

और भलीभांति पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पित की।

१०८ कृष्णाय रुक्मिणीसम्प्रदानम् १०६५

श्रीनारायण बोले—इसी बीच महालक्ष्मी के समान स्वरूपवाली, मुनि, देवों के साथ सब अलङ्कार एवं वेशभूषाओं के सहित रुक्मिणी राजसभा के बीच आई। रुक्मिणी ने अपने पति की सात प्रदक्षिणा कर शीतलजल एवं चन्दन, पुष्पों से पूजा की। श्रीकृष्ण ने उसको शीतलजल से सेचन किया। दोनों का परस्पर अवलोकन। राजा ने वेदमन्त्रों से रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के लिये प्रदान किया। वसुदेव की आज्ञा से कृष्ण ने "स्वस्ति" ऐसा कहा। जैसे शङ्कर ने पार्वती को ग्रहण किया उसी तरह श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को ग्रहण किया। राजा ने पांच लाख सुवर्ण कृष्ण को इस अवसर पर दिया।

१०९ रुक्मिण्युद्वाहवर्णनम् १०९६

कृष्णेन सह पार्वत्यादीनां हास्यालापः १०९७

श्रीनारायण बोले—पतिपुत्रवाली साध्वी स्त्रियों के साथ रुक्मिणी की माता ने वर और कन्या को मङ्गलपूर्वक वस्त्रभूषणों से सुसज्जित किया। श्रीकृष्ण ने दुर्गा, सरस्वती, रति, रोहिणी, देवपत्नी, राजपत्नी और पतिव्रता मुनिपत्नियों को देखा। रानी ने वर कन्या को भोजन करा कर्पूर सहित ताम्बूल अर्पण किया। दुर्गा ने श्रीकृष्ण को मङ्गल पत्रिका दी। सम्पूर्ण देवियों ने श्रीकृष्ण को पत्रिका पढ़ने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने देवियों की सभा में उसे पढ़ा कि लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधिका, तुलसी, पृथ्वी, गङ्गा, अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा, सीता, देवहूति और मेनका सभी वरवधू का मङ्गल कार्य करें ऐसा पढ़ने से देवियां हंसी पुनः पार्वती, सरस्वती आदि देवियों का श्रीकृष्ण के साथ हास्यालाप करना। प्रातःकाल उग्रसेन व वसुदेव की आज्ञा से श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का प्रस्थान। तब रानी सुभद्रा ने अपनी पुत्री से कहा—हे पुत्रि! मुझे छोड़ कहां जा रही हो मैं तुम्हारे विना कैसे जीऊँगी? इतना कह नेत्रजल से रुक्मिणी का सिंचन करना। माया से श्रीकृष्ण रुक्मिणी का रोदन करना। राजा भीष्मक ने हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, रत्न, सुवर्ण, मणि आदि बहुतसे समान दहेज में दिया। श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का द्वारकापुरी गमन। वहां आये हुए सम्पूर्ण मनुष्यों का सत्कार व ब्राह्मणभोजन और सब का अपने-अपने स्थानों को गमन तथा यशोदा का मङ्गल कार्य करना।

११० राधा यशोदासंवादवर्णनम् १०९९

श्रीनारायण ने कहा—मङ्गलकार्य निवृत्त होने के बाद नन्द और यशोदा का श्रीकृष्ण के पास जाना। यशोदा ने कहा हे माधव! आपने पिताजी को तो

ज्ञान दे दिया है तथा मुझे भी ज्ञान देकर सम्पूण संसार-समुद्र से उद्धार कीजिये। संसार-समुद्र में मायामयी नौका को पार करने के लिये आप ही कर्णधार हैं। यशोदा के वचन सुनकर भगवान् हँसे और बोले—सिद्ध्यात्मक, योगात्मक, विषयात्मक मोक्षात्मक और भक्त्यात्मक महास्थकरण ये पांच तरह के ज्ञान बतलाये हैं। क्षुत्पिपासादिकों का खण्डन, अन्तःकरण की शुद्धि, नाड़ियों का शोधन और शक्तिकुण्डलिनी सहित ईश्वर का ध्यान यह योगात्मक ज्ञान मूर्ख पुरुष और स्त्रियों को प्राप्त नहीं हो सकता। सिद्ध्यात्मक ज्ञान जो ३४ सिद्धों से सिद्ध किया गया और संसार को बोध करानेवाला है। विषयात्मक ज्ञान जो मेरी इच्छा से सबका अपने-अपने विषयों में होता है। मोक्षात्मक ज्ञान निवृत्तिमार्गपरक है उसको भक्त नहीं जानते हैं। भक्त्यात्मक ज्ञान तुम्हें राधा कहेगी जो ज्ञान नन्दजी को उसने दिया था वही तुम्हें दे दिया। इतना सुन श्रीकृष्ण की आज्ञा से दोनों का कदलीवन में राधा के पास जाना। नन्द और यशोदा ने सात दरवाजों से युक्त आंगन में सौ कोटि गोपियों से रक्षा की गई राधा को देखकर आश्चर्य चकित हो प्रणाम किया। चेतना प्राप्त कर राधा ने कहा— तुम कौन हो यहां क्यों आये हो ? मेरे पास विषयज्ञान नहीं है। मैं जल, स्थल, रात्रि, दिन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक में भेद नहीं मानती हूं। यशोदा ने कहा— हे राधे ! चेतन करो शुभ दिन में श्रीकृष्ण का दर्शन करोगी तुम्हारे से सब संसार पवित्र हैं। लोक, वेद, सन्त और पुराण तुम्हारी कीर्ति गायेंगे मैं यशोदा हूं, ये नन्दजी हैं, तुम वृषभानु की पुत्री हो। द्वारकापुरी से तुम्हारे पतिदेव की आज्ञा से यहां आई हूं। शीघ्र ही श्रीकृष्ण तुम्हें मिलेंगे मुझे भक्तिज्ञान का उपदेश करो श्रीदामा के शाप से जल्दी ही छुटोगी। यशोदा के वचनों को सुन राधा द्वारा दोनों को उत्तम भक्ति का उपदेश।

---

१११ रामादिशब्दानां व्युत्पत्तिस्तेषाञ्च प्रशंसा १९०२
राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिवर्णनम् ११०५

राधिका ने कहा हे यशोदे! श्रीकृष्ण ने ज्ञानात्मक ज्ञान तुमको नहीं दिया और मेरे पास भेजा है उसकी वार्ता तो वेद और सन्त भी नहीं जानसकते हैं। मैं अज्ञानयुक्त अवला क्या बोध करूँ तथापि पांच तरह के ज्ञानों में भक्त्यात्मक ज्ञान कहती हूं। श्रीकृष्ण में पुत्रबुद्धि का त्यागकर उन्हें ब्रह्मरूप जानो। तीनों काल यमुनाजल में स्नान कर गर्ग के द्वारा कहे हुए ध्यान से शुद्ध मन हो परमानन्द की पूजन कर आनन्दपूर्वक उसके पद को प्राप्त करो। भक्त-अग्नि की ज्वाला, पिंजरे में रहना, कांटों में रहना और विषभक्षण अच्छा समझता है किन्तु हरि-भक्ति से हीन मनुष्यों का संग अच्छा नहीं मानता। जो राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन इन एकादश(११) नाम को पढ़ें और पढ़ावें वह कोटि जन्मों के पापों से छूट जाता है। 'रा' शब्द विश्व का वाचक है और 'म' शब्द ईश्वरवाचक है। सम्पूर्ण संसार का ईश्वर होने से राम कहा गया है। विष्णुसहस्रनाम स्मरण से जो फल होता है वही फल राम शब्द के उच्चारण से होता है। इसी तरह नारायण आदि शब्दों के अर्थ का वर्णन। हे यशोदे! तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो तब यशोदा ने हरि में निश्चल भक्ति एवं दासत्व का वर मांग राधा शब्द की व्युत्पत्ति पूछी। राधिका ने कहा मेरे वर से तुम्हें निश्चल भक्ति प्राप्त होगी 'रा' शब्द महाविष्णु है जिसके रोम-रोम में विश्व विराजमान है 'धा' शब्द धारण करनेवाली का बोधक है। सम्पूर्ण संसार को धारण करनेवाली को राधा कहा गया है। मुझे सुदामा के शाप से श्रीकृष्ण से सौ वर्ष का विरह हुआ है। तुम अपने स्वामी के साथ व्रज में जाओ मेरा भगवत् ध्यान करने का समय हो गया है। ध्यान भङ्ग होने से महान् दोष होता है।

११२	प्रद्युम्नाख्यानम्	११०६
	कृष्णदुर्वाससोः संवादवर्णनम्	११०९

श्रीनारायण बोले—द्वारका में श्रीकृष्ण के अंश से शुभ समय में शंकर से भस्मीभूत कामदेव का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म। उसने शंवरासुर को मार रति को, जो मायावती नाम से प्रसिद्ध थी प्राप्त किया। नारद ने पूछा—हे भगवन्! शंवर को कामदेव ने कैसे नष्ट किया? नारायण बोले—सूतिकागृह में रुक्मिणी के सात दिन बीतने पर दैत्य ने बालक का अपहरण कर मायावती को दे दिया। दैत्य के सन्तान न होने से वह इसे बहुत प्रेम करता था। सरस्वती ने एकान्त में मायावती से कहा शिव के क्रोध से भस्म हुआ यह तुम्हारा पति है। रुक्मिणी के गर्भ से इसका जन्म हुआ है माया से दैत्य ने इसका अपहरण किया है इसलिये यह तुम्हारा पति है पुत्र नहीं है। पुनः कामदेव से कहा यह माया तुम्हारी स्त्री रति है। तुम्हारी माता तुम्हारे विना रो रही है। इतना कहकर सरस्वती का स्वस्थान गमन। एक समय शंवर का रति और कामदेव का क्रीडा कौतुक देखना। क्रोधित शंबर का प्रद्युम्न के साथ युद्ध। युद्ध में दैत्य ने उसे त्रिशूल से मारा तब पवन ने प्रद्युम्न के कान में कहा दुर्गा का स्मरण करो। दुर्गा का स्मरण करने से वह शूल माल्य हो गया। तत्पश्चात् ब्रह्मास्त्रसे दैत्य की मृत्यु और रति सहित प्रद्युम्न का द्वारकापुरी में गमन। कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, जाम्बवती और लक्ष्मणा का कृष्ण के साथ विवाह एवं भौमासुर को मार १६ हजार स्त्रियों के साथ विवाह। श्रीकृष्ण के प्रत्येक स्त्री के गर्भ से दश पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति। दुर्वासा का त्रिकोटि शिष्यों के साथ द्वारका में आगमन। दुर्वासा का पूजन उन्हें मुक्ता व हीरों के साथ एक कन्या का अर्पण। भगवान् को सब स्त्रियों के साथ रहते देख दुर्वासा चकित हो स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा हे विप्र मत डरो मैं सबकी

आत्मा हूं मेरे बिना सब मृततुल्य है। श्रीदाम के शाप से राधा इस समय मुझे नहीं प्राप्त कर सकती। रुक्मिणी के भवन में मेरा अंश है तथा अन्य स्त्रियों के मन्दिर में कलामात्र है। इतना कहकर श्रीकृष्ण का स्वगृह गमन और दुर्वासा का पत्नी को त्याग तप के लिये गमन।

११३ अकारणात्पत्नीत्यागदोषः ११९०

दुर्वाससो द्वारकाम्प्रतिगमनम् ११११

कुष्ठान्मुक्तिकामेन साम्बेन सूर्यपूजनम् १११५

दुर्वासा का शिष्यों सहित द्वारकापुरी छोड़कर भगवान् शंकरजी के दर्शनार्थ कैलाश गमन। वहां जाकर मुनिका शिष्यों सहित भगवान् शंकरजी तथा पार्वतीजी को नमस्कार कर भक्तिपूर्वक अपना और हरि भगवान् का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना एवं अपने तप का कारण तथा चित्त का वैराग्य भी प्रकट करना। मुनि के वचनों को सुनकर सती पार्वती ने हँसते हुए भगवान् शंकर की सन्निधि में उसके लिये हितकारक एवं सत्यवचन कहे। भगवती पार्वती ने कहा तुम धर्मतत्त्व को नहीं जानते हुए अपने को धर्मिष्ठ मानते हो तथा निःसन्तान स्त्री को त्यागकर तप करने के लिये क्यों जाते हो। देखो शास्त्रकार इस विषय में क्या कहते हैं यथा—

अनपत्याञ्च युवतीं कुलजाञ्च पतिव्रताम्।
त्यक्त्वा भवेयुः सन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्मखण्डितुम्॥७॥
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्।
अभिशापेन भार्याया नरकञ्च परत्र च॥
इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः॥८॥

विना सन्तान की स्त्री, युवती, श्रेष्ठ कुलवाली एवं पतिव्रता स्त्री को त्यागकर सन्यासी, ब्रह्मचारी तथा यति हो जाय या वाणिज्यार्थ अथवा वहुत दिन तक दूर चला जाता है तथा तीर्थ में या तप के लिये अथवा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिये मोक्षार्थ चला जाता है उस पुरुष की मोक्ष नहीं होती है परञ्च निश्चयपूर्वक उसका धर्मस्खलन हो जाता है। भार्या के शाप से नरकों की प्राप्ति एवं इस लोक में यश का नाश होता है। अतः हे विप्र ! पुनः द्वारका को जाओ और अपने धर्म की रक्षा करो। जिसका गुणानुवाद भगवान् शङ्कर एवं सनकादि मुनीश्वर गाते हैं ऐसे उस प्रभु श्रीकृष्ण को छोड़कर कहां जाते हो। हे मुने ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का स्मरण स्वप्न में भी करता है उसके सौ जन्म के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है। अतः तुम तप करने क्यों जाते हो ? तप का फल तो श्रीकृष्ण के स्मरण से ही प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार पार्वती के वचनों को सुनकर प्रेमविह्वल भगवान् शंकरजी ने पार्वती की प्रशंसा की। दुर्वासाजी तदनन्तर शंकरजी एवं पार्वती को नमस्कार कर भगवान् श्रीकृष्ण से चरणों का स्मरण करते हुए पुनः द्वारका को चले गये। वहां जाकर भगवान् को नमस्कार कर पुनः घर चले गये। भगवान् कृष्ण भी युधिष्ठिर के ध्यान से हस्तिनापुर चले गये। वहां जाकर कुन्ती से वार्तालाप किया एवं उपाय से जरासंध और शाल्व को मरा कर राजसूय यज्ञ करवाया जिसमें शिशुपाल तथा दन्तवक्र को मार दिया। उसी यज्ञ सभा में देवता और राजाओं के देखते-देखते शिशुपाल का हरिपद में प्राप्त हो भगवती की स्तुति करना एवं पुनः जय, विजय रूप हो वैकुण्ठ में द्वारपाल होना। पृथ्वी का भार हरण करने के लिये भेद से कौरव-पाण्डव का युद्ध करवा पुनः द्वारका आना। वहां ब्राह्मण के मृत पुत्रों को मृतस्थान से लाकर उनकी माता को वापिस देना। इसको देख माता देवकी का अपने मृत पुत्रों की याचना करना माता के वचनों सुन सहोदर भाइयों की भी मृतस्थान से लाकर

माता को अर्पण करना। सुदामा नामक ब्राह्मण का अपने घर पर आतिथ्य कर निश्चल लक्ष्मी देना एवं चावलों की किणकी (कण) खाकर भक्तवत्सलता दिखा निश्चल हरिभक्ति देकर अपना उत्तम पद दिया। पारिजात वृक्ष को हरण कर इन्द्र के अहङ्कार को चूर्ण किया एवं सत्यभामा को मनइच्छित व्रत करवाया जिसमें ब्राह्मणों को भोजन करवा बहुत से रत्नादि दान में दिये तथा उद्धव को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। रण में अर्जुन को गीताशास्त्र कहकर पृथ्वी को निष्कण्टक किया। युधिष्ठिर को पृथ्वी एवं राज्यलक्ष्मी देकर भगवती वैष्णवी दुर्गा को ग्रामाधिष्ठात्री बना दिया। भगवती पार्वती की प्रीति के लिये रमणीय रैवत पर्वत पर कोटि होमान्वित यज्ञ करवाया एवं ब्राह्मणभोजन करवाया। सुस्वादु लड्डुओं से और तिलों से विघ्ननाशक गणेशजी का पूजन किया तथा साम्ब की कुष्ठक्षय के लिये सूर्य्य की पूजा की एवं प्रसन्न हो स्वयं भगवान् भास्कर ने साम्ब को वर एवं स्तोत्र दिया।

११४ अनिरुद्धोपाख्यानम् १११४

उषास्वप्नदर्शनम् १११७

उषानिरुद्धसंवादकथनम् १११६

श्रीनारायण बोले---कृष्णपुत्र प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नाम बालक ब्रह्माजी के अंश से हुआ। अनिरुद्ध ने स्वप्न में सम्पूर्ण आभूषण व वेशभूषाओं से युक्त स्त्री को देखा और कहा तुम देवी हो अथवा गान्धर्वी, किसकी स्त्री हो या किसकी कन्या हो तथा क्या चाहती हो ? मैं श्रीकृष्णका पौत्र हूं। तुम मेरी सेवा करो तदनन्तर कामिनी ने कहा---आप कामपुत्र हो तथा काम से व्याकुल हो त्रिलोकीनाथ के पौत्र हो तथा स्वयं योग्य होकर विवाह क्यों नहीं करते हो ? विवाहित स्त्री ही सदा सङ्गिनी होती है। असाधु एवं कुवंश में उत्पन्न हुआ भी

परनारी के पास जाता है वह सात पितरों के साथ घोर नरक में जाता है।
असाधुश्च कुवंशश्च परनारी प्रयाति चेत्। स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिः सह॥

मैं शङ्कर के सेवक वाणासुर की लड़की उषा हूं। कामिनी स्वतन्त्र नहीं होती है पराधीन होती है। नीचकुल में पैदा हुई ही स्वतन्त्र होती है। कन्या वर की याचना नहीं करती पिता ही योग्य वर के लिये दान करता है।

पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च।
कन्या वरं न याचेत धर्म एषः सनातनः॥

तुम अगर मेरी इच्छा करते हो तो वाणासुर अथवा शम्भु व पार्वती से प्रार्थना करो। इतना कह सुन्दरी का अन्तर्धान। चेतनावस्था को प्राप्त हो अनिरुद्ध का व्याकुल होना। रुक्मिणी आदि स्त्रियों ने अनिरुद्ध के विषय में कहा—तव भगवान् हँसकर बोले---काम से व्याकुल उषा ने इसे व्याकुल बनाया है मैं भी उषा को प्रमत्त बना दूँगा। इतना कह श्रीकृष्ण ने वाणपुत्री को स्वप्न में सुन्दर पुरुष को दिखाया। उषा ने कहा हे कामुक मेरे साथ गन्धर्व विवाह करो अष्ट प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह सुलभ वताया है। अनुरक्त प्रिया को जो कपटी पुरुष त्याग देता है उसको महालक्ष्मी शाप देकर चली जाती है। पुरुष ने कहा--मैं श्रीकृष्ण का पौत्र एवं कामदेव का पुत्र हूं उनकी अनुमति के विना तुम्हें कैसे ग्रहण करूँ इतना कहकर पुरुष का अन्तर्धान। उषा का सखियों के बीच दुःखित होना। चित्रलेखा ने कहा---तुम क्यों डर रही हो चेतना प्राप्त करो। शिव और शिवा तुम्हारे नगर में विराजमान् हैं, शिव के स्मरणमात्र से ही सम्पूर्ण अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते। शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः॥
ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति।
ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला॥

चित्रलेखा के वचन सुन उषाने वहुत रुदन किया और बाणासुर का भी शङ्कर

के पास मूर्च्छित होना। यह देखकर शंकर, पार्वती, कार्तिकेय और गणेश हंसे। गणेश ने कहा---जो पाषण्ड से मोहित हुआ दूसरे को दुःख देता है उसको सूक्ष्म धर्मविचार से चौगुना दुःख मिलता है। स्वप्न में उषा ने अनिरुद्ध को प्रमत्त बना दिया ऐसा जान श्रीकृष्ण ने भी उषा को सुन्दर पुरुष दर्शन कराकर विह्वल वना दिया। सुन्दर पुरुष को देख स्त्री मोहित हो जाती है इसलिये प्राणों से भी अधिक युवती की रक्षा करनी चाहिये।

तस्मात्प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा। परिरक्षेच्च सततं मायायुक्तां न विश्वसेत्
हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः।
तासां मनो न जानन्ति सर्वे वेदाश्च वैदिकाः॥

महादेव ने कहा---वाणासुर को मालूम न पड़े ऐसा करो। तब गणेश की आज्ञा से चित्रलेखा का योगमाया द्वारा द्वारका से निद्रित अनिरुद्ध को रथ में बैठाकर शोणितपुर में लाना। द्वारकावासियों का अनिरुद्ध के विषय में दुःख प्रगट करना और श्रीकृष्ण का आश्वासन। अनिरुद्ध और उषा का माहेन्द्र क्षण में गान्धर्व विधि से विवाह। रक्षक द्वारा इस समाचार का वाणासुर को मालूम होना।

११५ वाणासुरयुद्धवर्णनम् ११२०
शङ्करवाणासुरसंवादवर्णनम् ११२१
वाणानिरुद्धसंवादवर्णनम् ११२३

श्रीनारायण ने कहा---रक्षकों ने वाणासुर से कहा--अहो! यह समय बड़ा बलवान् है जो स्वतन्त्र वालिका पति की इच्छा करती है। कुसंगति दुःख का कारण है 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' संसर्ग से ही गुण और दोष होते हैं। चित्रलेखा ने रण में शूरवीर सुन्दर और युवाअवस्थावाले पुरुष से उषा का संमिलन करवाया है।

इस समय उषा गर्भवती है इस प्रकार अन्यान्य बातें सुनकर क्रोधित वाणासुर ने शंकर, गणेश, स्कन्द और पार्वती से रोकनेपर भी युद्ध के लिये इच्छा की। श्रीमहादेव ने वाणासुर से कहा---पृथ्वी का भार उतारने के लिये श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है उसी का पौत्र अनिरुद्ध है उसे कोई भी नहीं जीत सकता है। पार्वती ने कहा ब्रह्मा, महेश, शेष और दिनेशादि भी उस परमात्मा का ध्यान करते हैं। गणेश और कार्तिक ने कहा बलि का वड़ा दुर्भाग्य है जो ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है। भाई हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथा का स्मरण करो। उन दोनों को भगवान् ने नष्ट कर दिया। भगवान् जिसका संहार करनेवाला है उसका रक्षक कौन है। उनके वचनों को सुन वाणासुर ने कहा हे भाई गणेश! हे भाई कार्तिक !! शुभाशुभ कर्मों को कौन रोक सकता है वह अवश्यम्भावी है। भरी सभा में रक्षक ने कन्या को सगर्भा कहा है यह वचन मुझे वज्र के समान लगा है। इसलिये अनिरुद्ध को मारकर उषा को मारूँगा अन्यथा जलती अग्नि में शरीर को जलादूँगा। माता कोटरी ने कहा हे पुत्र! दुष्ट सन्तान से पिता को पद-पद पर दुःख होता है। एक से ग्रहण की हुई कन्या को दूसरे को देना उचित नहीं। श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को दहेज सहित उषा को अर्पण करो नहीं तो युद्ध में श्रीकृष्ण तुम्हें मार देंगे। सुदर्शन चक्र से रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। कोटरी के वचन सुनकर क्रोधित वाणासुर का युद्ध के लिये प्रस्थान। शङ्कर की आज्ञा से स्वामी कार्तिक सेनापति के रूप में गये। गणेश, शिव, कोटरी और पार्वती ने वाणासुर को शुभाशीर्वाद दिया। आठ भैरव व एकादश रुद्र भी युद्ध के लिये चले। पार्वती और बाणपत्नी से प्रेरित दूत ने अनिरुद्ध से कहा कि पार्वती का आदेश है कि युद्ध के लिये सुसज्जित हो जाओ। अनिरुद्ध उषा से दिये हुए रथ पर आरूढ़ हो गये। क्रोधित वाणासुर ने घोर संग्राम में अनिरुद्ध से कटु-वचन कहे कि चन्द्रवंश में तुम अङ्गाररूप हो। तुम्हारे पिता ने शंबर को मारकर उसकी स्त्री को ले लिया। तुम्हारे पितामह मथुरा में क्षत्रिय तथा

गोकुल में वैश्य पुत्र से विख्यात हैं। जिसने पूतना को मार दिया वह नारी-घाती अधार्मिक है इसने मथुरा में कुब्जा को मार दिया। दुर्बल नरकासुर को मारकर स्त्रीसमूह को ग्रहण कर लिया। भीष्मक को जीतकर रुक्मिणी को ग्रहण किया, सूर्यसेवक सत्राजित् को अनेक उपाय से मारकर मणि व कन्या को ग्रहण किया। कृष्ण के पिता की वहिन कुन्ती चार पुरुषों की स्त्री तथा द्रौपदी पांच पुरुषों की स्त्री है। वलदेव मदिरा पीता है, अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया इत्यादि वहुत से कटुवचन सुनकर अनिरुद्ध ने कहा मेरे पिता ब्रह्मपुत्र हैं जिनके अस्त्र से तीनों लोक वश में रहते हैं। शिव के क्रोध से भस्म हो श्रीकृष्ण से प्रद्युम्न रूप में पैदा हुआ है। मेरी माता पतिव्रता है जो शंकरजी के घर अपनी धर्म की रक्षा करती रही। वासुदेव को चारों वेद भी नहीं जान सकते तुम क्या जान सकते हो। तुम शंकर के सेवक हो। शंकर से पूछो श्रीकृष्ण के सेवक बलिके तुम पुत्र हो। कुब्जा पूर्वजन्म में रावण की वहिन शूर्पणखा थी उस समय लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटने पर तपस्या की थी उसी पुण्य से कुब्जा रूप में श्रीकृष्ण से मोक्ष प्राप्त की। इस प्रकार वहुतसे वचनों का प्रत्युत्तर कर कहा कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से धर्म, पवन और इन्द्र से पुत्र पैदा किये हैं।

कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम्। अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्॥
देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

कलियुग में अश्वमेध, गोमेध, सन्यास, और पलपैतृक तथा देवर से पुत्रोत्पत्ति निषिद्ध वताई है। द्रौपदी के पांच पति शङ्कर के वरदान से हुए हैं। दाक्षिणात्य परिपाटी से मामा की लड़की सुभद्रा को कृष्ण ने अर्जुन को अर्पण किया अन्य देशों में दोष है ऐसा ब्रह्माजी का आदेश है।

---

११६ वाणानिरुद्धसंवादवर्णनम् ११२७
वाणानिरुद्धयुद्धवर्णनम् ११२९

वाणासुर ने कहा—हे अनिरुद्ध ! तुम बुद्धिमान् हो तुम्हारा वचन सत्य है ऐसा ही शिवजी ने भी कहा था। तुमने शङ्कर के वरदान से द्रौपदी के पांच पति वतलाये उसका विशदरूप से वर्णन करो। तुम्हारी माता रति का शंवर ने कैसे अपहरण किया देवों ने उसे कैसे दिया और शंवर ने देवताओं को कैसे पराजित किया। अनिरुद्ध ने कहा—एक समय रघुनाथजी पञ्चवटी के तटपर सीता और लक्ष्मण के साथ स्नान कर सुन्दर जल, अन्न, व्यञ्जन तथा फलों को इकट्ठा कर सीता को देकर लक्ष्मण को दिया पीछे स्वयं भोजन करने लगे। लक्ष्मण मेघनाद को मारने तथा सीता का उद्धार करने के लिये फल और जल नहीं खाते थे मेघनाद को यह वरदान था कि जो चौदह वर्ष अन्न और निद्रा को छोड़ेगा उसी योगीराज के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी। द्विजरूपी अग्नि का राम के पास आगमन। अग्नि ने कहा--सीता को छिपाओ सात दिन में रावण पूर्वजन्म के कारण इसका अपहरण करेगा विधाता का लेख कोई नहीं मिटा सकता। श्रीराम ने कहा—सीता को लेकर आप चले जाइये और उसकी प्रतिकृति छाया को यहां छोड़ दीजिये। उस छाया का अपहरण रावण ने किया। रामचन्द्र ने रावण को मार छाया का उद्धार किया। वह्नि में परीक्षा के समय अग्निदेव ने छाया की रक्षा कर जानकी को अर्पण कर दिया। उस छाया ने दिव्य सौ वर्षों तक नारायण सरोवर के पास शङ्कर की तपस्या की। शङ्कर ने उसे वरदान मांगने के लिये कहा। पति दुःख से दुःखित छाया ने पांच बार "पतिं देहि" कहा। श्रीमहादेव ने कहा तुमने व्याकुलता से पांच बार पति दीजिये यह कहा है इसलिये पाँच इन्द्र तुम्हारे पति होंगे। वही छाया द्रुपद के यज्ञकुण्ड से द्रौपदी रूप में प्रगट हुई। कृतयुग में वह वेदवती त्रेतायुग में सीता

और द्वापर में द्रौपदी इसलिये कृष्णा को त्रिहायणी कहते हैं। राजा द्रुपद ने उसको अर्जुन के लिये दे दिया। अर्जुन ने माता कुन्ती से कहा मेरे को वस्तु मिली है माता ने आज्ञा दी कि भाइयों के साथ ग्रहण करो। शङ्कर के वरदान से और माता की आज्ञा से पांच इन्द्र पांच पांडवों के रूप में द्रौपदी के स्वामी हुए। रति को शङ्कर का शाप था कि तुम्हारा पति मेरी क्रोधाग्नि से भस्म होगा। शंवरासुर इन्द्रादि देवताओं को जीतकर तुम्हारा हरण करेगा इस समय तुम दैत्य के पास रहो। इतना कहकर फिर उसे वरदान दिया कि तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं होगा जवतक तुम्हारा पति पैदा न हो तवतक छायारूप में उसके घर रहो यह देवताओं का गुप्त चरित्र तुम्हें वतलाया है। वाणासुर के सेनापति कुम्भाण्ड के भाई सुभद्र के साथ अनिरुद्ध का युद्ध। वाणासुर और अनिरुद्ध का युद्ध। युद्ध में वाणासुर को निद्रास्त्र से निद्रित कर जव अनिरुद्ध तलवार से मारने चला तव स्वामी कार्तिकेय ने रोक दिया। स्वामी कार्तिकेय और अनिरुद्ध का युद्ध इस वृत्तान्त को वर्णन करने के लिये शङ्कर के पास गणेशजी का गमन।

११७ शिवलम्बोदरसंवादवर्णनम् ११३०

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी ने शिवस्थान पर सम्पूर्ण युद्ध के वृत्तान्त को पृथक्-पृथक् वर्णन किया। श्रीमहादेव ने हँसकर कहा हे गणेश! नीतियुक्त एवं परिणामों का सुखकर वचन सुनो। सम्पूर्ण विश्व का सङ्ग अनिरुद्ध में है श्रीकृष्ण उन सब का कारण है। ब्रह्मादि तृण पर्यन्त का कारण श्रीकृष्ण ही है। गोलोक में दो भुजा धारण करते हैं यहां शिशुरूप में वृन्दावन में तथा अन्य स्थानों में रास करते हैं। सम्पूर्ण उसी की अंशकलाएँ हैं "सर्वेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" उसी का पौत्र वलशाली अनिरुद्ध है। मैंने युद्ध के लिये स्कन्द, आठ भैरवों व एकादश रुद्रों को भेजा है। मृत बाणासुर की स्कन्द ने रक्षा की है लेकिन अनिरुद्ध को कोई नहीं जीत सकता। अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा है

प्रद्युम्न कामदेव है। बलदेव स्वयं शेष और श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा है। हे गणेश! वाण की रक्षा करो तुम विघ्नों को नाश करनेवाले हो। हरि सुदर्शन चक्र लेकर जल्दी ही आयेंगे।

११८ वाणासुरयुद्धवर्णनम् ११३२
शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ११३३

श्रीनारायण ने कहा – गणेश को समझाकर शंकर का अन्तःपुर में गमन। वहां पर दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली, उग्रचंडा और कोटरी ने शंकर को प्रणाम किया वहींपर गणेश, कार्तिकेय, वाण, वीरभद्र तथा नन्दी आदि गणों का आगमन। मणिभद्र ने कहा "असंख्य यादवों की सेना सहित बलराम, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, उग्रसेन, भीम, अर्जुन, अक्रूर, उद्धव, जयन्त और श्रीकृष्ण अस्त्रशस्त्रों सहित आगये हैं। बलराम ने लाख मल्लों को मारकर तीन लक्ष बगीचों का उत्पाटन कर दिया है। द्वारपाल को मारकर महाद्वार में प्रवेश कर गये हैं"। इतना सुनकर महादेव ने पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, गणेश, आठ भैरव, एकादश रुद्र, वीरभद्र, महाकाल, और नन्दी से कहा श्रीकृष्ण एकक्षण में सम्पूर्ण विश्व को नष्ट कर सकते हैं नगर का तो कहना ही क्या। परन्तु सब उपायों से बाणासुर की रक्षा करो। वाणासुर लम्बोदर का स्मरण कर युद्ध के लिये जाये बाण के दक्षिण में स्कन्द आगे गणेश वाईं तरफ भैरव रुद्र स्वयं नन्दी रहे। पार्वती से कहा हे महामाये! सुदर्शन चक्र से बाणासुर की रक्षा करो मुझे गणेश और कार्तिक से भी कहीं अधिक बाणासुर प्रिय है। वाणासुर के मस्तक पर हाथ रक्खो। शङ्कर के वचन सुनकर दुर्गा ने हँसकर कहा—हे वाण! सब आभूषणों सहित उषा को अनिरुद्ध के लिये दे राज्य करो। मैं शक्ति हूं मन ब्रह्मा है शिव ज्ञानस्वरूप हैं शक्ति को छोड़ने से वह शव के समान होता है। हे शिव! संग्राम में सुदर्शनचक्र के तेज के सामने कौन ठहर सकता है। अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने में पराजय

होती है कृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। मुझे गणेश और कार्तिक प्रिय हैं उनसे भी अधिक आप हैं। किङ्करों में वाण प्रिय है किन्तु कृष्ण से परम प्रिय कोई नहीं है। मैं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, गोलोक में राधिका, शिवलोक में शिवा और ब्रह्मलोक में सरस्वती हूं। मैं दैत्यों को मारकर दक्ष के घर जन्मी थी और वहां आपकी निन्दा से शरीर त्यागकर मेना के घर जन्म लिया है। रक्तवीज के युद्ध में कालीस्वरूप था। वेदमाता सावित्री एवं जनक कन्या सीता मैं ही हूं द्वारका में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा हूं। आप तो सब जानते हैं मैं क्या कहूं क्या करना चाहिये।

११६ शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ११३४
बलिशङ्करसम्वादवर्णनम् ११३५
बलिकृतकृष्णस्तोत्रम् ११३७

श्रीनारायण ने कहा—पार्वती के वचनों की गणेश, शिव, कार्तिकेय और काली ने प्रशंसा की। श्रीमहादेव ने कहा---हे देवि! परमात्मा के साथ युद्ध करना अयुक्त है। वाणासुर कन्या देदे तो बहुत अच्छी बात है परन्तु वह देता नहीं है वह लड़ने के लिये जायगा तो हम उसके पीछे रहेंगे। मैंने कन्या देने को कहा था लेकिन वह देता नहीं। उसने दुर्गा के वचनों को भी नहीं स्वीकार किया। वैष्णव प्रमुख महाधर्मात्मा का सात लक्ष दैत्यों के साथ आगमन। उसने शिव, शिवा, गणेश, और कार्तिक को प्रणाम किया। बलि को देखकर शङ्कर को छोड़ सब खड़े हो गये। श्री महादेव ने कहा आप चतुर हैं, परम वैष्णव हैं, वैष्णव के स्पर्शमात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। सब वर्णों में ब्राह्मण शुद्ध हैं परन्तु उससे भी वैष्णव ब्राह्मण शुद्ध हैं वह अग्नि और पवन से भी पवित्र हैं उनके शरीर में पाप नहीं रहते हैं। बलि ने कहा---हे महादेव! मैं आपका सेवक हूँ मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं मुझे आपने ही सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया है।

आपने वामनरूप धारण कर इन्द्र को ऐश्वर्य प्रदान किया। वाणासुर से कहिये कि परमात्मा के साथ युद्ध करना अतिनिन्दित कार्य है। इतना कहकर शङ्कर को प्रणाम कर सामवेदोक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की। अदिति की प्रार्थना से वामन रूप धारण कर मुझे वञ्चित किया। सम्पद्रूपा महालक्ष्मी भक्त को प्रदान की। इस समय मेरा पुत्र वाणासुर शंकर का सेवक है। पार्वती अपने पुत्र की तरह पालन करती है। उसकी लड़की वलवान् अनिरुद्ध ने ग्रहण की है। अनिरुद्ध वाण को मारने के लिये तैयार हुआ तव स्वामी कार्तिकेय ने रक्षा की है। अव आप पौत्र के विषय में दमन करने आये हो आपके मारने से संसार में रक्षा करनेवाला कौन है। इस तरह वहुत प्रकार से स्तुति की। श्री भगवान् ने कहा हे वत्स! मत डरो मेरे वर से तुम्हारा पुत्र अजर अमर है किन्तु उसका दर्प नष्ट करूँगा। प्रह्लाद को वरदान दे दिया था कि तुम्हारे वंश में होनेवाले को नहीं मारूँगा। तुम्हारे पुत्र को ज्ञान दूँगा। इस स्तोत्र का पठन करने से कोटि जन्मों के पापों से मनुष्य छूट जाता है। यह स्तोत्र विपत्तियों को खण्डन करनेवाला, सम्पत्ति को देनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला, गर्भवास, जरा, मृत्यु, रोग और बन्धन को खण्डन करनेवाला है। एक लक्ष पठन करने से स्तोत्र सिद्ध होता है। सिद्ध स्तोत्र का पठन करने से सर्वसिद्धि मिलती है।

१२० वाणासुरयुद्धवर्णनम्

यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—श्रीकृष्ण ने वलराम और उद्धव के साथ मन्त्रणा कर दूत को जहां गणपति, शङ्कर, दुर्गा, कार्तकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरी थे वहां भेजा। दूतने सबको प्रणाम कर कहा कि श्रीकृष्ण ने वाणासुर को संग्राम करने को बुलाया है अथवा उषा सहित अनिरुद्ध को लेकर उनकी शरण में जाओ। निमन्त्रित किया हुआ यदि भय से लड़ने नहीं जाता है वह सात पितरों के साथ नरक में

जाता है। पार्वती ने दूत के वचन सुनकर शङ्कर के सामने वाणासुर से कहा हे वाण ! दहेज के साथ कन्या को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में चले जाओ। किन्तु क्रोधी वाणासुर योद्धाओं के साथ लेकर लड़ने चला। वाण की रक्षा के लिये भगवान् रुद्र एकादश रुद्रों के साथ तथा आठ नायिका, आठ शक्तियां और स्कन्द चले परन्तु पार्वती और गणेश नहीं गये। वाणासुर और सात्यकि का युद्ध वाण तथा सात्यकि ने नाना अस्त्रों का प्रयोग किया। पुनः वाण ने नारायणास्त्र छोड़ा, जिससे सात्यकि दण्डवत् पृथ्वी पर गिर गये। वाणासुर ने माहेश्वर अस्त्र छोड़ा तब सात्यकि ने वैष्णवास्त्र से उसका संहार करदिया। ब्रह्मास्त्र का प्रतिकार ब्रह्मास्त्र से कर दिया। नागास्त्र को गरुड़ास्त्र से संहार किया। स्वामी कार्तिकेय और प्रद्युम्न का युद्ध। वाणासुर के रथ को हल से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मुषल से सारथि व घोड़ों को मार दिया। जब बलरामजी वाणासुर को मारने चले तब कालाग्नि रुद्र भगवान् ने रोक दिया। बलवान् बलदेव ने कालाग्नि रुद्र भगवान् के रथ को तोड़ सारथि व घोड़ों को मार दिया। क्रोधित रुद्र ने ज्वर का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण को छोड़ सब यादव ज्वर से पीड़ित हो गये। श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर का प्रयोग किया तब दोनों ज्वरों का परस्पर युद्ध। दुःखित हुए शैव ज्वर ने श्रीकृष्ण की शरण में जाकर उनकी स्तुति की। तब श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर संहार किया। जब वाणासुर ने शक्ति का प्रयोग किया तब अर्जुन ने उसे काट दिया। पुनः हजारों भुजाओं में सहस्रों बाण ले अत्यन्त भयङ्कर पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया तब श्रीकृष्ण ने चक्र छोड़ा जिससे उसकी भुजायें कट गईं और पाशुपत शङ्कर के पास आगया और वाणासुर पृथ्वी पर गिर गया। शङ्कर वाणासुर को अपने वक्षःस्थल पर रखकर रोदन करने लगे जिस से एक सरोवर हो गया। पुनः चेतना प्राप्त कर वाणासुर को श्रीकृष्ण के पास ले गये और उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण ने अपना हाथ वाणासुर पर रखकर अजर व अमर बना दिया। वाणासुर ने बलिकृत स्तोत्र से स्तुति की। बाणासुर ने अपनी कन्या उषा को

अनेक दास, दासी, मुक्ता, माणिक, धेनु व सुन्दर रेशमी महीन वस्त्रों के साथ श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अर्पण किया। कृष्ण ने उसे वरदान देकर शंकर की आज्ञा से द्वारका में प्रस्थान कर कन्या को देवकी व रुक्मिणी के लिये दे महोत्सव करवाया पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें बहुतसा धन दिया।

१२१ श्रृगालोपाख्यानम् ११४३

श्रृगालमोक्षणम् ११४५

गणेशपूजावर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—सुधर्मा सभा में रहते हुए कृष्ण के पास ब्रह्मतेजस्वी ब्राह्मण ने आकर विनयपूर्वक कहा—वासुदेव नाम श्रृगाल राजा ने जो कहा है सुनो। मैं वासुदेव नाम से वैकुण्ठ में विख्यात लक्ष्मी का पति हूं। ब्रह्मा ने मुझ से पृथ्वी का भार दूर करने के लिये प्रार्थना की है इसलिये भारतवर्ष में आया हूं। वासुदेवपुत्र श्रीकृष्ण अहंकारी है तथा महाधूर्त है। उसीने दुर्योधन और जरासन्ध को भीमसेन से नष्ट करवाया है। द्रोण, भीष्म, कर्ण और अन्य राजाओं को अर्जुन से मरवा दिया है। शिशुपाल, दन्तवक्र और कंसादि को स्वयं कृष्ण ने मारा है मैं साक्षात् नारायण हूं। लज्जा से अथवा कृपा से मैंने क्षमा की है अब या तो युद्ध करो अथवा मेरी शरण में आओ। श्रीकृष्ण ब्राह्मण से श्रृगाल के वचन सुनकर प्रातःकाल युद्ध करने चले। श्रीकृष्ण के दर्शन कर श्रृगाल ने कहा कि चक्र से मेरा शिर काटकर द्वारका को जाओ। यह पापी एवं नश्वर शरीर नष्ट होना ही उचित है। आप जानते हैं मैं आपका सुभद्र नामक द्वारपाल हूं। लक्ष्मी के शाप से भ्रष्ट हुआ हूं मेरा समय पूरा हो गया है। श्रीकृष्ण ने कहा हे मित्र! पहले मुझे मारो पीछे मैं युद्ध करूँगा। श्रृगाल ने दश बाण मारे वे बाण आकाश में चले गये। पुनः गदा छोड़ी वह भी श्रीकृष्ण के अङ्गस्पर्श से नष्ट हो गई। धनुष और तलवार श्रीकृष्ण के अङ्गस्पर्श से नष्ट हो गये। श्रीकृष्ण ने

कहा मित्र ! सुतीक्ष्ण अस्त्र लाओ तव शृगाल ने कहा परमात्मा के साथ युद्ध करना उचित नहीं आप मेरा उद्धार कीजिये। मित्र के वचन सुनकर श्रीकृष्ण रोने लगे। उनके आंसुओं की बून्दों से सरोवर हो गया जिसका जलस्पर्श करने से सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीभगवान् ने कहा हे मित्र ! दूत के मुख से तो तुमने कैसे कठोर वचन कहलाये। तुम्हारी इतनी निर्मल बुद्धि व निर्मल मन कैसे हुआ ? नारद ने नारायण से कहा गणेशपूजा का आख्यान ब्रह्मा के मुख से सुना था परन्तु विस्तार से सुनना चाहता हूं। सिद्धाश्रम में देवताओं ने पूजन की थी श्रीदाम के शाप से मुक्ति होने पर राधा ने सुरेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नागेन्द्र, राजेन्द्र, गन्धर्व और यक्षों को छोड़कर सर्वप्रथम गणेश का पूजन क्यों किया ? तव नारायण बोले तीनों लोकों में पृथ्वी सवसे मान्य एवं धन्य है। वहां भारतवर्ष सव कर्मों के फल को देनेवाला है सिद्धाश्रम महान् पुण्यक्षेत्र है। जहां स्वयं ब्रह्मा व सनत्कुमारजी सिद्ध बने हैं। गणेश का अधिष्ठान निरन्तर वहीं है वैशाखी पूर्णिमा को देवगण गणेश की प्रतिमा का पूजन करते हैं। वहांपर नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र, सनकादि, पार्वती सहित शङ्कर, कार्तिकेय, शेष और स्वयं ब्रह्मा, द्वारकावासियों के साथ श्रीकृष्ण, गोकुल-वासियों के साथ नन्द और वलराम तथा सखियों के साथ राधा भी वहां आई। राधा ने श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिये सामवेदोक्त ध्यान से गणेश का ध्यान किया और गङ्गाजल से स्नान करवाया। पुनः षोडशोपचार से पूजन की तथा नाना तरह के व्यञ्जन व लड्डू आदि के प्रसाद चढ़ाये। अन्त में पुष्पाञ्जलि दे "ओं गङ्गौ गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा" इस मन्त्र का हजार जप किया फिर स्तुति की।

परंधाम परब्रह्म परेशं परमीश्वरम्। विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्। सुरपद्मं दिनेशञ्च गणेशं मङ्गलायनम्

यह स्तोत्र महान् पुण्य को देनेवाला है एवं प्रातःकाल पढने से सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

१२२ राधाम्प्रति गणेशोक्तिः ११५०

गोपीभिः सह राधायाः समागमः

राधिकास्तोत्रम् १२५५

राधा की पूजा को देखकर गणेशजी ने कहा—हे मातः! तुम्हारी की हुई पूजा लोकशिक्षा के लिये होगी। सृष्टि में सम्पूर्ण विभूतियां तुम्हारी ही हैं। आदि में राधा शब्द का उच्चारण पीछे कृष्ण का उच्चारण करनेवाला मनुष्य योगीलोक में जाता है। व्यतिक्रम करने से ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है। जो मनुष्य राधा की निन्दा करता है उसके वंश की हानि होती है तथा दुःख की प्राप्ति होती है। अन्त में "यावच्चन्द्रदिवाकरौ" नरक में रहता है। तुम दोनों की सेवा करना परम दुर्लभ है। यह स्तुति एवं कवच सब कामों को देनेवाला है। जो गुरु की पूजा वस्त्रालंकार से कवच को धारण करता है वह विष्णुतुल्य कहा गया है। जो वस्तु मुझे अर्पण की है वह मेरी प्रसन्नता के लिये ब्राह्मण को दो तब मैं भोजन करूँगा। जो द्रव्य व दक्षिणा देव को दी जाती है वह सब ब्राह्मण को देने से अनन्त फल होता है। हे मातः! ब्राह्मणों के मुख देवमुख से भी विशिष्ट फल-दायक है। ब्राह्मणों को भोजन कराने से देवता ही भोजन करते हैं ऐसा जानो। तदनन्तर गणेश प्रीत्यर्थ राधा ने ब्राह्मणभोजन करवाया। ब्रह्मा, ईश और शेष का वटवृक्ष के पास आगमन। शिवदूत ने देव, देवी और श्रीकृष्ण को कहा राधा ने सर्वप्रथम गणेश की पूजन की है मुझे शक्तिशालिनी गोपियों ने रोक दिया मैं तुम्हें क्या कहूँ। जो सर्वप्रथम गणेशपूजन करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति, मध्य में मध्यमफल और शेष में स्वल्प फल की प्राप्ति होती है। दूत के वचन सुनकर सब देवता हँसे तथा मुनि और राजा लोग, देवस्त्रियां, रुक्मिणी आदि स्त्रियां, रोहिणी, स्वाहा और मुनि पत्नियां इन सब ने श्रीकृष्ण की शुभक्षण में पूजा की। राधा ने पार्वती को देख यथायोग्य सम्भाषण किया तब पार्वती ने कहा

हे राधिके ! तुम्हारे शाप की मुक्ति हो गई तथा तुम्हारे विरह की ज्वाला भी अब शान्त हो गई। मेरे प्राण एवं मन निरन्तर तुम्हारे में ही रहते हैं। मेरे भक्त तुम्हारी निन्दा और तुम्हारे भक्त मेरी निन्दा करते हैं उन्हें सदा कुम्भीपाक नरक की प्राप्ति होकर अन्यान्य योनियों की प्राप्ति होती है। तुमने सर्वप्रथम मेरे पुत्र का पूजन किया है अतः सदा ही सर्वप्रथम उसकी पूजा होगी। हे राधिके ! मेरे वर से आज श्रीकृष्ण को प्राप्त करोगी। पार्वती के वचनों से गोपियों ने राधा को सब आभूषण व श्रृङ्गारों से सुसज्जित कर श्रीकृष्ण की सामग्री को सुसज्जित किया। सम्पूर्ण आश्रम को सुसज्जित देखकर मुनियों ने श्रीकृष्ण से इसका कारण पूछा तब भगवान् बोले श्रीदामा के शाप से राधा का और मेरा सौ वर्ष का वियोग था वह अवधि बीत गई है। इतना सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर, मन्वादि शीघ्र ही राधा का ध्यान कर उनके दर्शनार्थ चले। वहां पर राधा के स्वरूप को देखकर प्रथम ब्रह्मा ने स्तुति की फिर श्रीमहादेव एवं अनन्त ने स्तुति की। रुक्मिणी आदि स्त्रियां सब लज्जित हो गईं एवं सत्यभामा ने अभिमान को छोड़ दिया।

१२३ वसुदेवम्प्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः ११५६

दक्षिणाकालनिर्णयवर्णनम् ११५६

नारदजी ने कहा कि गणेशपूजन एवं राधास्तोत्र के बाद क्या रहस्य हुआ है वह वर्णन करो। श्रीभगवान् बोले गणेश पूजन के बाद वसुदेव और देवकी ने शंकर, अनन्त, ब्रह्मा एवं मुनियों से पूछा संसार समुद्र में तैरने के लिये उत्तम गति का उपाय वर्णन कीजिये। संसाररूपी नौका को पार करने के लिये आप नाविक हैं। वैष्णवों के रजकणों के स्पर्शमात्र से ही पृथ्वी पवित्र हो जाती है। वासुदेव के वचन सुनकर शङ्कर ने कहा वासुदेव का पिता भी हम से ज्ञान पूछते हैं। अहो महामाया ज्ञानियों को भी मोहित करनेवाली है। हम उसी माया से मोहित

हैं। हे वसुदेव ! सबका मूल कारण श्रीकृष्ण हैं राजसूय यज्ञ में यज्ञ के कारण श्रीकृष्ण को भजो और विधिविधान से दक्षिणा देकर संसार समुद्र को पार करो। शङ्कर के वचन सुनकर वसुदेव ने राजसूय यज्ञ की तैयारी की एवं यज्ञारम्भ करवाया। पूर्णाहुति देते समय वसुदेव से सनत्कुमार ने कहा सर्वस्व दक्षिणा लक्ष्मीपति के निमित्त शीघ्र दो। दक्षिणा तत्काल न देने से मुहूर्त्त में दुगुनी हो जाती है। एक दिन बाद चौगुनी, तीन रात बीतने पर छः गुनी, एक पक्ष बीतने पर सौगुनी, मासान्त में उससे चारगुनी, छः मास के बाद सहस्रगुनी और एकवर्ष में लक्षगुनी हो जाती है। वसुदेव ने सर्वस्व त्यागकर गर्गाचार्य को मणि, सुवर्ण, चांदी और धान्याचलादि दिये। देवों का स्वस्थान गमन और यादवों का द्वारकापुरी में जाना।

१२४ राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम् ११६०

कृष्णम्प्रतिराधोक्तिः ११६३

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ११६५

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी की पूजन कर देव, मुनि, एवं देवी रुक्मिणी आदि के साथ श्रीकृष्ण का द्वारका गमन। श्रीकृष्ण ने नन्द यशोदा से कहा व्रज में जाओ वहां अवशेषकला भोगकर गोकुलवासियों के साथ गोलोक में जाओ। मैं तुम्हें गोकुलवासियों के साथ सालोक्य मुक्ति दूँगा। तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा से श्रीकृष्ण का राधा के पास गमन। राधा ने श्रीकृष्ण को देखकर गोपियों के साथ प्रणाम कर स्तुति की। राधा ने कहा आज आपके मुखकमल के दर्शन करने से मेरा जीवन सफल हो गया। हे नाथ ! स्त्री-पुरुष के वियोग कठोर हैं। परमात्मा के विच्छेद होने से शक्तियों साथ प्राण चले जाते हैं। तददन्तर राधा ने श्रीकृष्ण की पूजन की और कल्पवृक्ष के पुष्प को आगे रखकर राधा ने कहा सब मङ्गलों के देनेवाले को कुशल प्रश्न पूछना तो

निष्फल है परन्तु लौकिक व्यवहार वेदों से भी वलवान् है अतः कुशल प्रश्न पूछती हूं। आपने रुक्मिणी, जाम्बवती आदि स्त्रियों के साथ वहुतसे कार्य किये हैं आपको योगी, मुनि, एवं सिद्ध भी नहीं जान सकते तो स्त्रियां क्या जान सकती है। इतनी विपत्ति श्रीदामा के शाप से मिली है। मैंने भी श्रीदामा को शाप दिया। पुनः राधा अन्यान्य वार्ताओं को कहकर ऊँचे स्वर से रुदन करने से मूर्च्छित हो गई। यह देखकर गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा हे कृष्ण! रक्षा करो रक्षा करो। आपने यह क्या किया। राधा को शीघ्र जीवदान दो। तदनन्तर गोपियों के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने राधा को सुधावृष्टि से जीवित किया और कहा हे राधिके! कार्यकारणरूप मैं हूं। गोलोक, गोकुल व वृन्दावन में दो भुजा धारण कर राधा का पति हूं तथा वैकुण्ठ में चतुर्भुजा धारण कर लक्ष्मी का पति हूं मैं व्यक्ति भेद से नानारूपों को धारण करता हूं। अर्जुन ने मुझे तपस्या से सारथि वनाया। जैसे तुम गोलोक व गोकुल में राधारूप से, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, मिथिला में सीता और तुम्हारी ही छाया द्रौपदी है उसी तरह मैं भी नानारूपों को धारण करता हूं। हे राधे! मेरे अपराधों को क्षमा करो। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर राधा प्रसन्न हुई एवं सन्तुष्ट हो गईं। गोपियों ने परमेश्वर को प्रणाम किया।

१२५ **राधाकृष्णसंवादवर्णनम्** ११६६

श्रीनारायण वोले—श्रीकृष्ण के वचनों से प्रसन्न होकर गोपियां राधा को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान में चली गईं तत्पश्चात् राधा और श्रीकृष्ण के श्रृङ्गार का वर्णन। राधा ने कहा पुण्यस्थान वृन्दावन को चलो वहां जल एवं स्थल में क्रीडा करूँगी फिर मलयाचल आऊँगी। श्रीकृष्ण ने प्रातःकृत्य को समाप्त कर गोपी एवं राधा के साथ वृन्दावन प्रस्थान किया। वहां सम्पूर्ण वन, उपवन, सुपर्वत और पुष्पोद्यानादि में श्रृङ्गार कर जम्बूद्वीप में गमन। राधा को द्वारकापुरी

दिखलाकर पुनः गोकुल गमन। श्रीकृष्ण का यशोदा आदि से मिलन। यशोदा ने मङ्गलाचार कर ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा मुनि एवं गोपियों की पूजा की। इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को मुक्तहस्त से मुक्ता, माणिक, हीरे, गौ, अश्व, आसन, पात्र, आभूषण, वस्त्र एवं धान्यादि दिये। गोपीगणों को मिष्टान्न खिलाया नगारे वजवाये एवं देवताओं को आनन्दपूर्वक भोजन करवाया।

१२६ कलिधर्मवर्णनम् ११६९

श्रीनारायण ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण गोपों को वुलाकर भाण्डीरवट के नीचे निवास किया जहांपर पहिले उनको ब्राह्मणस्त्रियों द्वारा अन्न दिया गया था। उसी जगह भगवान् के वामभाग में राधिका, दक्षिण में यशोदा सहित नन्दादि गोप उनके दक्षिण में वृषभानु तथा वाम भाग में कलावती। इसी प्रकार अन्य गोप-गोपिकायें भाई-वन्धुओं को भगवान् गोविन्द ने समयोचित यथार्थ वचन कहे। श्रीभगवान् ने नन्द से कहा कि परलोक में सुख को देनेवाले, परम पुरुषार्थ को देनेवाले एवं सत्य वचन यशोदा को कदली वन में राधिका ने कहे वे परम सत्य हैं एवं भ्रमरूपी अन्धकार को नष्ट करने में दीपस्वरूप है। अब तुम मिथ्या मायामोह को छोड़कर परम पद का स्मरण करो। जो जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को नष्ट करनेवाले तथा हर्ष को देनेवाले हैं एवं शोक-सन्ताप को नष्ट करनेवाले कर्ममूल को छुड़ानेवाले हैं। मुझे ही परब्रह्म भगवान् सनातन जान ध्यान कर परमपद को प्राप्त करो तथा मेरे में पुत्रवुद्धि का त्याग करो। गोकुलवासियों के साथ शीघ्र गोलोक को जाओ यहां शीघ्र ही कलि का आगमन होनेवाला है। जिस कलि में स्त्री-पुरुषों में नियम नहीं रहेंगे, न जाति-पांति का भेद होगा, विप्र सन्ध्यादिकों से हीन हो जायेंगे। यज्ञोपवीत और तिलक के सिवा सम्पूर्ण चिह्न निश्चय ही मिट जायेंगे। सभी विषयों में लोलुप हो धर्मकर्मों से विरत हो जायेंगे। केदारकन्या के शाप से यज्ञ, व्रत, तथा तप लुप्त

होंगे धर्म का नाश हो जायगा। स्त्रियां स्वच्छन्दगामिनी, पति को प्रतिदिन झिड़कनेवाली होंगी। पति निरन्तर उनका भक्त हो उनसे तिरस्कृत होगा। अतिथि सेवा कहीं नहीं की जायगी, विष्णु-सेवा, पित्रेश्वरों की पूजा और देवपूजा से मनुष्य विमुख हो जायेंगे। चारों वर्ण वाममार्गियों के मन्त्रों की उपासना करने लग जायगे। विप्र माया से मुझे छोड़ कर वेद को निन्दा करते हुए वाम मन्त्रों को जपेंगे। कलियुग में मेरी पूजा दश हजार वर्ष तक रहेगी, उससे आधे समय तक भुवनपावनी गङ्गाजी रहेंगी एवं इतने काल तक ही तुलसी, विष्णुभक्त और कुछ पुराण रहेंगे। सम्पूर्ण मानव एकवर्ण के हो जायेंगे। पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी परन्तु पृथ्वी नष्ट नहीं होगी पुनः सत्य का प्रादुर्भाव हो जायगा। इतने में ही गोलोक से मनोहर रथ अवतीर्ण हुआ जिसपर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे लोग बैठकर उत्तम गोलोक में चले गये। इस प्रकार सम्पूर्ण गोलोकवासी राधिका के साथ नश्वर शरीरों को छोड़ गोलोक में चले गये।

१२७ श्रीकृष्णस्य गोलोकवर्णनम् ११७२

श्रीनारायण ने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार तत्काल गोकुल-वासियों की सालोक्य मोक्ष देखकर गोपियों के साथ भाण्डीर वन के वटमूल में स्थित सम्पूर्ण गोकुल को व्याकुल देखकर एवं वृन्दावन को रक्षकों से हीन देख अमृत वृष्टि से पुनः वृन्दावन को गोप-गोपिकाओं से परिपूर्ण कर दिया। श्रीभगवान् ने गोपगणों से कहा यहां सुखपूर्वक रहो। इतने में ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास शेष, विधाता, भवानी, शङ्कर और सूर्य-चन्द्रादि देवों का आगमन। भगवान् के प्रयाणकाल में ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओं की स्तुति। यादवों का ऐरक (आरा) युद्ध से विनाश एवं यादव स्त्रियों का चिता में प्रवेश। युधिष्ठिरादि के साथ अर्जुन का स्वर्ग गमन। प्रयाण काल में भगवान् क कदम्बमूल में निवास वहां व्याध के अस्त्र से युक्त देखकर ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति एवं उनको भगवान्

का अभय दान। प्रेमविह्वला रोदन करती हुई पृथ्वी को आश्वासन एवं व्याध को स्वपद में भेजना। बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अयोनिसम्भवा रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि देवियां, साम्ब, वसुदेव, देवकी आदि का अपने-अपने अंशों में प्रवेश। रुक्मिणी मन्दिर को छोड़कर सम्पूर्ण द्वारका का समुद्र में विलय। तदनन्तर समुद्र द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति। गङ्गा, सरस्वती, पद्मावती, यमुना, गोदावरी आदि नदियों ने भगवान् को प्रणाम किया तथा रुदन करती हुई गङ्गा ने भगवान् से कहा कि हे नाथ! आप तो गोलोक जारहे हैं हमारी इस कलिकाल में क्या गति होगी? तब भगवान् ने कहा कलि में तुम पांच हजार वर्षों तक भूतल पर रहो। वहां पापी मनुष्य तुमको स्नान से जो पाप देंगे वह मेरे मन्त्रों के उपासकों के स्पर्श से तत्क्षण ही भस्म हो जायेंगे। जहां भी हरि भगवान् का गुणानुवाद एवं पुराण कथा होती हो वहां उनके साथ जाकर सावधान होकर सुनो इनके श्रवणमात्र से सम्पूर्ण ब्रह्महत्यादि पाप भस्म हो जाते हैं। मेरे भक्तों के चरणों की रज से वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है। कलि में मेरे भक्त दस हजार वर्ष तक पृथ्वी पर रहेंगे। मेरे भक्तों के जाने पर पृथ्वी एकवर्णा हो जायगी। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से चतुर्भुज स्वरूप का प्रादुर्भाव हो रथ में आरूढ़ होकर क्षीरसागर को प्रस्थान होना। मूर्तिमती हो सिन्धुकन्या का भी साथ में प्रस्थान। जगत को पालन करनेवाले भगवान् विष्णु के श्वेत द्वीप जाने पर शुद्धसत्वस्वरूप भगवान् के दो रूप हो गये। वैकुण्ठनाथ के चलेजाने पर स्वयं राधेश ने वंशी का शब्द किया जिससे पार्वती को छोड़ सम्पूर्ण देवगण एवं मुनिगण मूर्च्छित हो गये। तब सर्वस्वरूपा भगवती पार्वती ने सनातन भगवान् से कहा कि हे प्रभो! एक मैं ही राधिकारूप हूं अतः रासशून्य गोलोक को परिपूर्ण कीजिये। मुक्ता माणिक्य से भूषित रथ पर आरूढ़ हो शीघ्र चलिये, वहां मैं विरहातुर गोपियों के साथ आपके चारों ओर रहूंगी। इस प्रकार पार्वती के वचन सुनकर रसिकेश्वर उस

रत्नयान में सवार हो उत्तम गोलोक को गये। वहां पर समीप आते हुए भगवान् को देखकर गोप और गोपियों ने प्रसन्न हो प्रणाम किया। हे नारद! गोलोकारोहण के बांद अब क्या सुनना चाहते हो बोलो।

१२८ नारदाख्यानवर्णनम् ११७८

नारद ने कहा मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण सुन लिया अब क्या करूँ आज्ञा दें तो मैं तप करने जाऊँ। नारायण बोले पूर्वजन्म में उपबर्हण गन्धर्व ५० स्त्रियों के पति थे इस समय ब्रह्म पुत्र हो उनमें एक स्त्री ने शङ्कर की तपस्या की और नारद को पतिरूप में मांगा वह सृञ्जय की कन्या है। उसके साथ विवाह करो शङ्कर की आज्ञा झूठी नहीं हो सकती। विधाता के लिखे लेख मिट नहीं सकते। कर्म विना भोगे क्षय नहीं होते। सूतजी बोले नारायण के वचन सुनकर नारद उन्हें प्रणाम कर दुःखित हृदय से सृञ्जय के घर गये। शौनक ने पूछा हे सूत! ब्रह्मपुत्र नारद के विवाह का अपूर्व रहस्य कहिये तब सूतजी बोले मूढ़रूपी नारद ने तपस्विनी सृञ्जयकन्या को देखकर ब्रह्मसभा में जाकर सब वृत्तान्त पिता से कहा। प्रसन्न होकर ब्रह्मा देवताओं के साथ पुत्र को आगे कर सृञ्जय के घर गये। राजा सृञ्जय ने कन्या को सर्वस्व दक्षिणा के साथ नारदजी को समर्पित कर दिया। राजा सृञ्जय हे वत्से! हे वत्से!! कहकर ऊँचे स्वर से रोने लगे हे पुत्रि! मेरे घर को छोड़कर कहां जाती हो मैं भी वन में जाऊँगा। कन्या रोती हुई माता-पिता को प्रणाम कर स्वयं रोती हुई विधाता के रथ में बैठ गई पुत्रवधू के साथ ब्रह्मा का स्वधाम गमन। इस अवसर पर ब्रह्मा द्वारा ब्राह्मण भोजन। नारदजी सृञ्जय कन्या के साथ रहने लगे। सनत्कुमारजी का तीनों भाइयों के साथ नारद के पास आगमन। सनत्कुमार ने नारद से कहा हे भाई! क्या कर रहे हो स्त्री-पुरुष का प्रेम सदा ही भगवान् की भक्ति व मोक्ष मार्ग का अवरोधक एवं चिरकालपर्यन्त बन्धन का कारण है। नीच मनुष्य अमृत बुद्धि से

विष पीता है। ईश्वर को छोड़ सम्पूर्ण देहधारियों में कामभोग व्याप्त है। इस मायामयी स्त्री को छोड़कर तप करने जाओ इतना कहकर "कृष्ण" नाम मन्त्र का उपदेश देना तदनन्तर सनत्कुमारजी का गमन। नारदजी मन्त्र पाकर मायामयी स्त्री को त्यागकर तप करने चले। उन्होंने कृतमाला नदी के किनारे शङ्कर को देख प्रणाम किया तब शङ्कर बोले—मैं तुम्हारे तेज से प्रसन्न हूं भक्तों का दर्शन ही देहधारियों को लाभदायक है। इस मन्त्र को मैंने गणेश और कार्तिकेय को दिया, गोलोक में श्रीकृष्ण ने मुझे तथा ब्रह्मा एवं धर्म को दिया, धर्मराज ने नारायण को एवं ब्रह्मा ने सनत्कुमार को तथा सनत्कुमार ने तुम्हें दिया। इस का मन्त्रग्रहण करने से मनुष्य नारायण हो जाता है। इस मन्त्र का पांच लाख जप करने से एक पुरश्चरण होता है। शङ्कर ने नारदजी को सामवेदोक्त ध्यान बताया। शङ्कर का स्वस्थान गमन एवं नारदजी भी शंकर को प्रणाम कर तप करने चले गये। नारदजी ने योग से शरीरजी को त्यागकर भगवान् के चरणों की प्राप्ति की।

१२६ वह्निसुवर्णयोरुत्पत्तिवर्णनम् ११८२

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी! अत्यन्त सुन्दर एवं अपूर्व आख्यान आपसे सुना। भगवान् की कथा परम दुर्लभ है ऐसा सुदिन कब होगा जहां वैष्णवों का सङ्गम हो। गर्भवास को छेदन करनेवाला हरिभक्ति को देनेवाले गणेश, तुलसी व राधा का आख्यान सुना अब स्वर्ण एवं अग्नि की उत्पत्तिं सुनना चाहता हूं। तब सूतजी बोले—सृष्टि की सामग्री जल एवं अग्नि ही है; जैसे, प्रकृति नित्य एवं महान् है; जैसे, दिशा एवं महाकाश तथा सृष्टि गोल है; जैसे, शब्द तन्मात्र है वैसे ही अग्नि है परन्तु उसकी उत्पत्ति कहता हूं :—एक समय श्वेतद्वीप में विष्णु को देखने ब्रह्मा, अनन्त एवं महेश गये। परस्पर में वार्तालाप होने के बाद सभा में बैठ गये जहां विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुईं कमला की कलाएँ विष्णुगाथा

गाती हुई नाच रहीं थीं। उनके कठिन श्रोणिप्रदेश एवं स्तनों को देखकर ब्रह्माजी का वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने लज्जा से उसको वस्त्र से आच्छादित कर दिया उस वस्त्र को क्षीरोद में छोड़ने से पुरुष उत्पन्न हो ब्रह्मा कीगोद में आ बैठा तदनन्तर वरुण का बालक को लेने के लिये आना। वरुण द्वारा बालक का आकर्षण करने पर ब्रह्मा द्वारा आक्षेप करना। ब्रह्मा की क्रोधदृष्टि से वरुण मृत की तरह गिर गये तब शङ्कर ने चेतनावस्था करवाई। वरुण ने कहा यह बालक जल में उत्पन्न होने के कारण मेरा है ब्रह्मा मुझे क्यों मारते हैं। ब्रह्मा ने कहा यह बालक मेरी शरण में आया है शरणागत की रक्षा करना परम धर्म है।

शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः। पच्यते निरये तावद् यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

दोनों के वचन सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि कामिनी के श्रोणिप्रदेश को देख ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ है पुनः लज्जा से क्षीरोद में छोड़ दिया इसलिये यह ब्रह्मा का बालक है "क्षेत्रजश्च सुतः शास्त्रे वरुणस्यापि गौणतः" श्रीमहादेव ने कहा–

योविद्यायोनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः।
शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः॥

विद्या एवं मन्त्र वरुण प्रदान करें यह बालक ब्रह्मा का पुत्र एवं वरुण का शिष्य रहेगा। उसे विष्णु ने दाहिका शक्ति एवं वरुण ने मन्त्र दिया। तदनन्तर ब्रह्मा एवं शङ्कर का स्वस्थान गमन। स्वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन-- एक समय स्वर्गसभा में सब देव बैठे थे अप्सराएँ नाँच रहीं थीं। रम्भा को देखकर अग्नि का वीर्य गिर गया लज्जा से उसे वस्त्र से आच्छादित कर दिया उसी से स्वर्णपुञ्ज हो गया क्षणभर में वह सुमेरु हो गया उसीको हिरण्यरेता वह्नि कहते हैं।

---

१३० अस्यपुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् ११८५

शौनकजी ने ब्रह्मवैवर्तपुराण की अनुक्रमणिका के विषय में पूछा तब सूतजी बोले—हे शौनक! सावधान होकर सुनो इस अध्याय के सुनने से पुराण श्रवण का फल मिलता है। ब्रह्माण्ड में परब्रह्म का निरूपण, साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, जिनकी जैसी शक्ति एवं ध्यान, गोलोकादि का वर्णन, अन्य प्रासङ्गिक आख्यान, जातियों का निर्णय, वर्णसंकरों का वर्णन, राधामाधव की क्रीड़ा, महाविष्णु की उत्पत्ति, सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, ब्रह्मनारद का संवाद, नारद का विवेक, ब्रह्मा की आज्ञा से नारद का नरनारायण आश्रम में गमन, नारायण का दर्शन और नारद तथा नारायण का परस्पर वार्तालाप बताया है।

प्रकृतिखण्ड में—प्रकृति का लक्षण, प्रकृतियों का वर्णन, उनका उपाख्यान पूजादि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधिका और सावित्री का चरित्र, महालक्ष्मी का उपाख्यान, सरस्वती का आख्यान, सावित्री का आख्यान, सावित्री संवाद एवं सत्यवान् को जीवनदान, कुण्डों का वर्णन एवं लक्षण, देहधारियों के कर्मों का विपाक एवं भोग निर्णय, अन्य पुराणों में गोपनीय राधा का आख्यान, राजा सुयज्ञ का चरित्र, तुलसी की कथा, महेश एवं शङ्खचूड़ का संवाद और युद्ध, तुलसी एवं श्रीकृष्ण का संवाद तथा संभोग, शङ्खचूड़ की मृत्यु, श्रीदामा का शाप से मोक्षण, गङ्गा, मनसा, स्वाहा और स्वधा तथा अन्य भी प्रसङ्ग के अनुसार देवियों का आख्यान बताया है।

गणेशखण्ड में—पार्वती शङ्कर की क्रीड़ा, स्कन्द की उत्पत्ति, शङ्कर पार्वती की क्रीड़ाभङ्ग, पार्वती का तोषण एवं उनका अभिमान भङ्ग, विष्णु का व्रत, देवी का चरित्र एवं भगवान् द्वारा उसे वरदान, अतिथिरूप में हरि का दर्शन, गणेश का आविर्भाव, पार्वती परमेश्वर का पुत्रमुख देखना, शिवजी के घर में उत्सव, देवों द्वारा गणेश के दर्शन, जिनके दर्शन, पूजन एवं प्रणाम से कोटि जन्मों के पाप नष्ट

होते हैं, कार्तिकेय का आख्यान एवं अभिषेक, गणेशपूजन, एवं अभिषेक, जमदग्नि एवं कार्तवीर्यार्जुन का युद्ध, सुरभि का हरण, जमदग्नि की मृत्यु, पतिव्रता रेणुका का चितारोहण, परशुराम की प्रतिज्ञा, परशुराम गणेश संवाद एवं युद्ध, गणेश का दन्तभंग, पार्वती का विलाप एवं परशुराम को शाप, परशुराम के स्मरण करने पर श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव, नारायण द्वारा पार्वती को बोध, शिवलोक वर्णन, शङ्कर द्वारा परशुराम को महास्त्र दान, श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं वरदान, परशुराम का इक्कीस वार राजाओं को नष्ट करना और गणेश को तुलसी दान का निषेध कहा है।

श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में—श्रीदामा एवं राधा का कलह एवं परस्पर शाप, ब्रह्मा की प्रार्थना से श्रीकृष्ण का जन्म, कंस के भय से गोकुल गमन, राधा की बालक्रीड़ा का वर्णन, दैत्यादिकों की मृत्यु, गर्गाचार्य का अभिमान, पूतना एवं शकटासुर को मारना, श्रीकृष्ण का ऊखल में बन्धन एवं यमलार्जुन का मोक्ष, माता को अपने मुख में तीनों लोकों का दर्शन कराना, गोवत्सादिकों का हरण, ब्रह्मस्तुति, नन्द के साथ वृन्दावन गमन, गोपबालकों के साथ क्रीड़ा, ब्राह्मण पत्नियों द्वारा भोजन करना एवं उनको वरदान, यज्ञों का वर्णन, गोपियों के वस्त्रों का हरण, गोपियों को वरदान, कात्यायनी का व्रत, दुर्गा पूजन, पार्वती का वरदान, तालफलों का भक्षण, शक्रयज्ञ का विध्वंस, राधा के साथ श्रीकृष्ण का विरह एवं मिलन, गोपियों की रासक्रीड़ा, सोलह प्रकार के शृङ्गार, राधामाधव का संवाद, गोपियों को ज्ञान, अक्रूर का आगमन, गोपियों का विलाप, श्रीकृष्ण का मथुरा में गमन, गोकुलवासियों को श्रीकृष्ण विरह में शोक, राधा का विरह, अक्रूर को यमुनाजल में श्रीकृष्ण मूर्त्ति का दर्शन, मथुरा प्रवेश, रजक की मृत्यु, कुब्जा की मुक्ति, कुविन्द पर कृपा, माली की मोक्ष, धनुषभंग, कुवलयापीड़ हाथी को मारना, सभा में प्रवेश, कंस को मारना, कंसके बन्धुओं का विलाप, उग्रसेन को राज्य दिलाना, नन्द का विलाप एवं उसे ज्ञानोपदेश, पिता-पुत्र का संवाद, अध्यात्म ज्ञान का उपदेश, धन्या का आख्यान,

उद्धव का आगमन, राधा उद्धव का संवाद, श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु से विद्याग्रहण, गुरु के मृतपुत्र की प्राप्ति, जरासन्ध एवं कालयवन का मारना, द्वारका का निर्माण एवं प्रवेश, उग्रसेन का विलाप, रुक्मिणी हरण, राजाओं का दमन, जाम्ववती आदि स्त्रियों के साथ विवाह, मायावती की मोक्ष एवं शङ्कर की मृत्यु: युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की मुक्ति, दन्तवक्र एवं शाल्व की मृत्यु, मणि का अपहरण, कल्पवृक्ष का स्वर्ग से लाना, कौरव-पाण्डव-युद्ध, उषा का हरण एवं वाणासुर की भुजाओं का काटना, वलिकृत स्तुति, अनिरुद्ध का पराक्रम, राधा यशोदा संवाद, शृगाल की मोक्ष, तीर्थयात्रा प्रसंग से गणेशपूजा का महत्त्व; राधा के साथ रहना एवं तीर्थों में भ्रमण; ब्रह्मशाप से यादवों का संहार; पाण्डवों की मोक्ष; नारद का विवाह और अग्नि एवं सुवर्ण की उत्पत्ति बताई है यह पुराण चारखण्डों में है।

१३१ पुराणपठन श्रवणादि माहात्म्य ११९०

शौनक ने कहा – आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल होगया। ब्रह्मवैवर्त पुराण का श्रवण निर्विघ्न मोक्ष का कारण है। हे वत्स! हे तात! मुझे अभय दान दीजिये तब कुछ निवेदन करूँ। सूतजी बोले—हे महाभाग! भय त्याग जो इच्छा हो सो प्रश्न करें जो-जो गोपनीय विषय हैं वे आपसे कहूंगा। शौनकजी ने कहा कि मैं पुराणों का लक्षण, संख्या, एवं फल सुनना चाहता हूं। सूतजी ने कहा—हे शौनक! पुराण, इतिहास, संहिता, और पञ्चरात्र विस्तार से कहता हूं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित यही पुराण एवं उपपुराण का लक्षण है। महापुराणों में सृष्टि, विसर्ग, स्थिति एवं पालन, कर्मों की वासना, वार्ता, प्रलय वर्णन, मोक्ष निरूपण और हरि एवं देवों का कीर्तन ये दस लक्षण बताये हैं। पुराणों की संख्या में ब्रह्मपुराण के दश हजार श्लोक (कहीं तेरह का पाठ भी मिलता है)। पद्मपुराण में ५५ हजार, विष्णुपुराण में २३ हजार,

शिवपुराण में २४ हजार, श्रीमद्भागवत में १८ हजार, नारदपुराण में २५ हजार, मार्कण्डेयपुराण में ६ हजार, अग्निपुराण में १५ हजार चार सौ, भविष्य में १४ हजार पांच सौ, ब्रह्मवैवर्त में १८ हजार, यह सब पुराणों का सार है। लिङ्गपुराण में ११ हजार, वाराहपुराण में २४ हजार, स्कन्दपुराण में ८१ हजार, एक सौ, वामनपुराण में दश हजार, कूर्मपुराण में सतरह हजार, मात्स्य में १४ हजार, गरुड़पुराण में १६ हजार, और ब्रह्माण्ड में १२ हजार इस तरह पुराणों की श्लोक-संख्या चार लाख होती है। इसी तरह पुराण एवं उपपुराण भी अठारह-अठारह हैं। महाभारत इतिहास है एवं वाल्मिकीय रामायण काव्य है। कृष्णमाहात्म्य से युक्त वाशिष्ठ, नारदीय, कापिल, गौतमीय और सनत्कुमारीय ये पंचरात्र हैं। ब्रह्म, शिव, प्रह्लाद, गौतम और कुमार ये पांच संहितायें हैं। यह शास्त्र बहुत विपुल हैं, मुझे किस तरह प्राप्त हुए हैं सो सुनिये। इस पुराण को गोलोक रासमण्डल में श्रीविष्णु ने अपने भक्त ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने धर्म को, धर्म ने नारायण को, नारायण ने नारद को, नारद ने मुझे और मैंने तुम्हें बतलाया। यह ब्रह्मवैवर्तपुराण सुदुर्लभ है ब्रह्म का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का विवरण होने से ब्रह्मवैवर्त यथार्थ नाम है। यह पुराण पुण्य एवं मङ्गलप्रद, सुगोप्य, हरिभक्ति देनेवाला, सुख एवं ब्रह्म के ज्ञान को देनेवाला है। जैसे नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, पुरियों में काशी, वर्षों में भारत, शैलों में सुमेरु वृक्षों में कल्पवृक्ष, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, व्रतों में एकादशी, देवों में श्रीकृष्ण, ज्ञानियों में महादेव, योगीन्द्रों में गणेश, सिद्धों में कपिल, तेजस्वियों में सूर्य, वैष्णवों में सनत्कुमार, राजाओं में श्रीराम, धनुषधारियों में लक्ष्मण, देवियों में दुर्गा, श्रीकृष्ण की प्रियपत्नियों में राधा, ईश्वरियों में लक्ष्मी और पण्डितों में सरस्वती सद्यः फल देनेवाली हैं उसी तरह यह इस लोक और परलोक में सुख देने वाला, सन्देह दूर करनेवाला और हरिदास्य (भक्ति) को देनेवाला है। क्या कहूं यज्ञ, व्रत, तीर्थ, तप और पृथ्वी की परिक्रमा का भी फल इसके समान नहीं है।

चारों वेदों के पठन से भी श्रेष्ठ फल होता है। हे शौनक! जितेन्द्रिय होकर सुनने से गुणवान्, विद्वान् एवं वैष्णव पुत्र की प्राप्ति होती है। दुर्भागिनी सुने तो स्वामी के सौभाग्य को प्राप्त करती है। जिसके पुत्र नहीं जाते हों या एक ही सन्तान हो या पुत्री की संतान हो, महावन्ध्या एवं पापिनी इस पुराण के सुनने से चिरंजीवी पुत्र को प्राप्तकर सकती है। इसके पठन और श्रवण अपुत्र को पुत्र प्राप्ति, स्त्री रहित को स्त्री, अविख्यात की कीर्ति एवं मूर्ख को पण्डित बनाते हैं। रोगी रोग से, बंधा हुआ (कैदी) बंधन से, डरनेवाला डर से और आपत्ति में गिरा आपत्तियों से छूट जाता है। पाप, कुष्ठ, दरिद्रता, रोग एवं शोक नष्ट हो जाते हैं। इसके सुनने से पुण्यवान् होता है एवं विना पुण्यवाला इसे नहीं जान सकता। जितेन्द्रिय होकर आधा श्लोक अथवा एक चरण के सुनने से लक्ष गोदान के समान फल होता है। जो कोई शुद्ध समय में जितेन्द्रिय हो इस पुराण के चारों खण्डों को संकल्प कर सुनता है तथा भक्तिपूर्वक दक्षिणा देता है उसके बाल्य, कौमार, युवा एवं बुढ़ापे में किये हुए कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं। वह पुरुष रत्नों से युक्त विमान में श्रीकृष्ण का रूप धारण कर नित्य गोलोक में जाकर श्रीकृष्ण की सेवा को प्राप्त करता है। असंख्य ब्रह्मा के गिरने से भी उसका पतन नहीं होता। वह भगवान् के पास पार्षद रूप धारण कर चिरकाल सेवा करता है। शुद्धस्नान कर जितेन्द्रिय हो ब्रह्मखण्ड सुनकर वाचक को पायस, पिष्टक (पूआ) फल और ताम्बूल भोजन देकर सुवर्ण, चन्दन, शुक्ल माला, सूक्ष्म और मनोहर वस्त्र वासुदेव को अर्पण कर देना चाहिये। अमृत के समान प्रकृतिखण्ड को सुनकर दधि एवं अन्न का भोजन कर तथा सुवर्ण एवं सवत्सा गौ को प्रदान करे। जितेन्द्रिय हो विघ्ननाश करने के लिये गणपति-खण्ड का श्रवण कर स्वर्ण यज्ञोपवीत, श्वेताश्व, श्वेत छत्र, श्वेतमाला, तिल के लड्डू, स्वस्तिक (जलेबी) पके हुए फल वाचक को देवें। भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णजन्मखण्ड श्रवण कर वाचक को रत्नों की अंगूठी, सुन्दर वस्त्र, माला, सुवर्ण के कुण्डल, वरदोला (पालकी), पकी हुई खीर और सर्वस्व दक्षिणा देकर स्तुति करे। एक सौ

ब्राह्मणों को भोजन करावे। शास्त्र के जाननेवाले, वैष्णव, पण्डित एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को वाचक वनावे अन्यथा फल नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण की भक्ति के विमुखों को इसका उपदेश न करे। श्रीकृष्ण की भक्तिवाले पुराण को जो सुनता है उसे भक्ति एवं पुण्य की प्राप्ति होती है तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। हे शौनकजी! गुरुमुख से जो सुना वह निवेदन किया अव मुझे जाने की आज्ञा दें जिससे मैं नारायण के आश्रम में जाऊँ। मैं आप विप्र-वृन्द को देख नमस्कार करने आया था। आपकी सेवा में ब्रह्मवैवर्त पुराण सुना दिया पुनः सूतजी ने सब को स्तुति कर प्रणाम किया—

नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यः कृष्णाय परमात्मने।
शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः॥
कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम्।
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्॥
नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः।
सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः॥

हे शौनकजी! अब आपके पुण्यचरणकमलों को नयनकर जहां देवगणेश्वर विराजमान हैं उस सिद्धाश्रम को जाता हूं।

॥ शुभम्भूयात् ॥

वैवर्त्ताख्यपुराणस्य सूचीयं लोकहेतवे। यथामतिकृताऽस्माभिः शोधयन्तु दयालवः॥

विद्वज्जनपादपद्ममधुपाः—

लक्ष्मणगढ़वास्तव्यब्रह्मदत्तत्रिवेदिनवलगढ़वास्तव्यकजोड़ीलालमिश्र-
रामनाथदाधीचाः।

॥ श्रीरस्तु ॥

---

* श्रीगणेशायनमः *

अथ चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

—*—

प्रथमोऽध्यायः

श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम् ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

नारद उवाच ।

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन् ब्रह्मखण्डं मनोहरम् । ब्रह्मणो वदनाम्भोजात् परमाद्भुतमेव च ॥१॥
ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम् । श्रुतं प्रकृतिखण्डञ्च सुधाखण्डात् परं वरम्
ततो गणपतेः खण्डमखण्डजन्मखण्डनम् ।
न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥३॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च जन्मादिखण्डनं नृणाम् । प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मघ्नंहरिभक्तिदम्
सद्यो वैराग्यजनकं भवरागनिकृन्तनम् । कारणं मुक्तिबीजानां भवाब्धितारणं परम् ॥५
कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने च रसायनम् । श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम्
जीवनं वैष्णवानाञ्च जगतां पावनं परम् । वद विस्तरशो भक्तं शिष्यं मां शरणागतम्
केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । सर्वांशैरेक एवेशः परिपूर्णतमः स्वयम्
युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्र वाविर्बभूवह । वसुदेवोऽस्य जनकः कोवा कावा च देवकी
वद कस्य कुले जन्म मायया सुविड़म्बनम् । किञ्चकार समाख्यातं केन रूपेण वाहरिः
जगाम गोकुलं कंसभयेन सूतिकागृहात् । कथं कंसात् कीटतुल्यात् भयेशस्य भयं मुने
हरिर्वा गोपवेषेण गोकुले किञ्चकारह । कुतो गोपाङ्गनासार्द्धं विजहार जगत्पतिः ॥
का का गोपाङ्गनाः के वा गोपाला बालरूपिणः ।

का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यञ्चकारह ॥१३॥

कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी । व्रजे वा व्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः

कथं गोप्यो दुराराध्यं सम्प्रापुरीश्वरं परम् । कथं ताश्च परित्यज्य जगाम मथुरां पुनः

भारावतारणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्त्तनम्

सुदुर्ल्लभां हरिकथां तरणिं भवतारणे । निषेव्य भोगनिगड़क्लेशछेदनकर्त्तनीम् ॥१७ ॥

पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव । पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्बिषनाशिनीम्

मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम् । मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहि कृपानिधे

तपोजपमहादानपृथिवीतीर्थदर्शनात् । श्रुतिपाठादनशनाद् व्रतदेवार्च्चनादपि ॥२०॥

दीक्षया सर्वयज्ञेषु यत् फलं लभते नरः ।

षोड़शीं ज्ञानदानस्य कलां नार्हति तत् फलम् ॥२१॥

पित्राहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव सन्निधिम् ।

सुधासमुद्रं संप्राप्य न को वा पातुमिच्छति ॥२२॥

नारायण उवाच ।

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्त्तिमान् ।

करोषि भ्रमणं लोकान् पावितुं कुलपावन ॥२३॥

जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै ।

शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे बान्धवेऽपि च ॥२४॥

पुत्रे पौत्रेच वचसि प्रतापे यशसि श्रियाम् । बुद्धौवारिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयंनृणाम्

जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तोगदाभृतः । पुनासिपादरजसासर्वाधारां वसुन्धराम्

पुनासि लोकान् सर्वांश्च स्वयं विग्रहदर्शनात् ।

सुमङ्गला हरिकथा तेन तां श्रोतुमिच्छसि ॥२७॥

यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः । ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च

कथाः श्रुत्वा तथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् ।

भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ॥२९॥

वक्ता कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम् । समुद्धृत्यश्रुतवतांपुनातिनिखिलंकुलम्
प्रष्टातु प्रश्नमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः । श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्ववान्धवान्
शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत् । करोति सफलं जन्म श्रुत्वा हरिकथामृतम् ॥
अर्च्चनं वन्दनं मन्त्रजपं सेवनमेवच । स्मरणं कीर्त्तनं शश्वद्गुणश्रवणमीप्सितम् ॥३३
निवेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणम् । करोति जन्म सफलं श्रुत्वैतानि च भारते
न च विघ्नो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति । न याति तत्पुरःकालो वैनतेयमिवोरगः ॥३५
न जहाति समीपञ्च क्षणं तस्य हरिः स्वयम् । उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः
सुदर्शनं भ्रमत्येव तस्य पार्श्वे दिवानिशम् । कृष्णाज्ञया च रक्षार्थंकोवाकिंकर्त्तुमीश्वरः

न यान्ति तत् समीपञ्च स्वप्नेऽपि यमकिङ्कराः ।
ज्वलदग्निं यथा दृष्ट्वा शलभा न व्रजन्ति तम् ॥३८॥
व्याधयो विपदः शोका विघ्नाश्च न प्रयान्ति तम् ।
न याति तत्समीपञ्च मृत्युर्मृत्युभयान् मुने ॥३९॥

ऋषयो मुनयः सिद्धाः सन्तुष्टाः सर्वदेवताः । स च सर्वत्र निःशङ्कःसुखीकृष्णप्रसादतः
तवकृष्णकथायाञ्चरतिरात्यन्तिकीसदा । जनकस्यस्वभावोऽहिजन्मेतिष्ठति निश्चितम्
विप्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म ते ब्रह्ममानसे । यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत्

पिता विधाता जगतां कृष्णपादाब्जसेवया ।
नित्यं करोति यः शश्वन्नवधा भक्तिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

रतिः कृष्णकथायाञ्च यस्याश्रुपुलकोद्गमः । मनो निमग्नं तत्रैवसभक्तः कथितो बुधैः ॥
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति यो हरेरिव । आत्मना मनसावाचासभक्तः कथितो बुधैः ॥
दयास्तिसर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत् । यो जानातिमहाज्ञानी सभक्तो वैष्णवोत्तमः
निर्ज्जने तीर्थसम्पर्केनिःसङ्गा ये मुदान्विताः । ध्यायन्तेचरणाम्भोजंश्रीहरेस्तेचवैष्णवाः
शश्वद्ये नाम गायन्ति गुणंमन्त्रंजपन्तिच । कुर्वन्तिश्रवणंगाथावदन्ति तेऽतिवैष्णवाः
लब्ध्वा मिष्टानि वस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा । तूर्णं यस्य मनो हृष्टंसभक्तो ज्ञानिनां वरः

यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञानं दिवानिशम् ।

पूर्वकर्म्मोपभोगश्च वहिर्भुङ्क्ते स वैष्णवः ॥ ५० ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्यथ । तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

पूर्वान् सप्त परान् सप्त सप्तमातामहादिकान् । सोदरामुद्धरेद्भक्तः स्वप्रसूश्च प्रसूप्रसूम् ॥

कलत्रं कन्यकां वन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मनः ।

किङ्करं किङ्करीं पुत्रमुद्धरेद्वैष्णवः सदा ॥ ५३ ॥

सदा वाञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने ।

पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः ॥ ५४ ॥

गोदोहनक्षणं यावद्यत्र तिष्ठति वैष्णवः । तत्र सर्वाणि तीर्थानिसन्ति तावन्महीतले ॥

भुवन्तत्रमृतः पापी मुक्तो याति हरेः पदम् । यथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मृतौ यथा

तुलसी कानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे । वृन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेष्वन्येषु वा यथा ॥

पापानि पापिनां यान्ति तीर्थस्नानावगाहनात् ।

तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना ॥ ५८ ॥

नहि स्थातुं शक्नुवन्ति पापान्येव कृतानि च ।

ज्वलदग्नौ यथा क्षिप्रं शुष्काणि हि तृणानि च ॥ ५९ ॥

भक्तंवर्त्मनिगच्छन्तं येयेपश्यन्ति मानवाः । सप्तजन्मकृताघानि तेषांनश्यन्ति निश्चितम्

ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम् । शतजन्मार्ज्जितंपुण्यं तेषांनश्यति निश्चितम्

ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके । भक्षिताः कीटसङ्घेन यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम् ।

गङ्गां स्नात्वा रविं दृष्ट्वा तदा विद्वान् विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥

वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । तस्य पापं निहन्त्येव स्वान्तःस्थो मधुसूदनः

इत्येवं कथितो विप्र विष्णुवैष्णवयोर्गुणः । अधुना श्रीहरेर्ज्जन्म निबोध कथयामि ते

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

विष्णुवैष्णवयोर्गुणप्रशंसा नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । यं यं विधाय भूमौ स जगामस्वालयं विभुः
भारावतरणोपायं दुष्टानाञ्च वधोद्यमम् । सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य्य विधानतः
अधुना गोपवेशञ्च गोकुलागमनं हरेः । राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ॥
शङ्खचूड़वधे पूर्वं संक्षेपात् कथितं श्रुतम् । अधुना तत् सुविस्तार्य्य निबोधकथयामिते
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह । श्रीदामा शङ्खचूड़श्च शापात्तस्या बभूवह ॥

राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिञ्च मानवीम् ।
व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व च भूतले ॥ ६ ॥
भीता श्रीदामशापात् सा श्रीकृष्णं समुवाच ह ।
गोपीरूपं भविष्यामि श्रीदामा मां शशापह ।
किमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन ॥ ७ ॥

त्वया विना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् । क्षणेन मे युगशतंकालंनाथ त्वयाविना
चक्षुर्निमेषविरहाद्भवेद्दग्धं मनो मम । शरत्पार्वणचन्द्राभ सुधापूर्णाननं तव ॥ ९ ॥
नाथ चक्षुश्चकोराभ्यां पिबाम्यहमहर्निशम् । त्वमात्मामे मनः प्राणादेहमात्रंवदाम्यहम्

दृष्टिशक्तिश्च चक्षुस्त्वं जीवनं परमं धनम् ॥ ११ ॥
स्वप्ने ज्ञाने त्वयि मनःस्मरामि त्वत्पदाम्बुजम् ।

तव दास्यं विनानाथ न जीवामिक्षणंविभो । कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वाबोधयामाससुन्दरीम्
वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्भयाञ्चताम् । महीतलं गमिष्यामि वाराहे च वरानने॥
मया सार्द्धं भूगमनं जन्मतेऽपि निरूपितम् । व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामिकानने॥
मम प्राणाधिकात्वञ्च भयंकिन्ते मयि स्थिते । तामित्युक्त्वाहरिस्तत्रविरराम जगत्पतिः

अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १६ ॥

किंवा तस्य भयं कस्माद्भयान्तकारकस्य च ।

मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् । विजहार तया सार्द्धं गोपवेषं विधाय सः

सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णःसमागत्यमहीतलम् ॥

भारावतारणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

श्रीदाम्नः कलहश्चैवकथं वा राधया सह । संक्षेपात्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना॥

नारायण उवाच ।

एकदा राधया सार्द्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्येविजने रासमण्डले।

राधिका सुखसम्भोगात् बुबुधे न स्वकं परम् ॥ २१ ॥

कृत्वाविहारंश्रीकृष्णस्तामतृप्तां विहाय च । गोपिकां विरजामन्यांश्शृङ्गारार्थं जगाम ह

वृन्दारण्ये च विरजा सुभगाराधिकासमा । तस्यावयस्याःसुन्दर्यो गोपीनांशतकोटयः

कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योषिताम् ।

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके ॥ २४ ॥

ददर्श श्रीहरिस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् । मनोहरां सस्मिताञ्च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥

सदा षोड़शवर्षीयां प्रोद्भिन्ननवयौवनाम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यां भूषितां सूक्ष्मवाससा

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीं कामवाणप्रपीडिताम् । दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तया सह ॥

पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डले । मूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकौतुकात् ॥

कृत्वा वक्षसि प्राणेशंकोटिकन्दर्पसन्निभम् । तया सक्तं श्रीहरिञ्च रत्नमण्डपसंस्थितम्

दृष्ट्वा च राधिकासख्यः चक्रुस्ताञ्च निवेदनम् ॥ २६ ॥

तासाञ्च वचनं श्रुत्वा सुष्वाप च चुकोप च ॥ ३० ॥

भृशं रुरोद सा देवी रक्तपङ्कजलोचना । ता उवाच महादेवी मा तं दर्शयितुं क्षमाः ॥

यदि सत्यं ब्रूत यूयंमयासार्द्धं प्रगच्छत । करिष्यामिफलंगोप्याः कृष्णस्यचयथोचितम्

को रक्षिताद्य तस्याश्च मयिशास्ति प्रकुर्वति । शीघ्रमानयतान्याश्च तयासार्द्धंहरिप्रियाः

अन्तर्वक्रं सस्मितञ्च विषकुम्भं सुधामुखम् ॥ ३४ ॥

मदाश्रयं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ । तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा काश्चित् गोप्यो भयान्विताः ।

ताः सर्वाः सम्पुटाञ्जल्यो भक्तिनम्रास्यकन्धराः ॥ ३६ ॥

ताम्रूचुः पुरतः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम् ।

वयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं प्रभुम् ॥ ३७ ॥

तासाञ्च वचनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी । जगामसार्द्धं गोपीभिस्त्रिषष्टिशतकोटिभिः ॥

रत्नेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्य्यसमप्रभम् । मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥

राजितं चित्रवाजिभिः वैजयन्तीविराजितम् ॥ ३९ ॥

लक्षचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैःसुशोभितम् ॥

नानाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः । सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः ॥

रत्नकृत्रिमसंघैश्च रथचक्रोद्ध्र्वसंस्थितैः ॥ ४२ ॥

चतुर्लक्षपरिमितैः चित्रघण्टासमन्वितैः । चित्रनूपुरशोभाढ्यै र्विचित्रैश्च विराजितैः ॥

मणिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः । मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रराजिभिः ॥

मणीन्द्रसारकलसैः शेखरोज्ज्वलितैर्युतम् । भोगद्रव्यसमायुक्तं वेशद्रव्यसमन्वितैः ॥

शोभितं रत्नशय्याभी रत्नपात्रपुटान्वितम् । हिरण्मयीनां वेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥

कुङ्कुमाभमणीनाञ्च सोपानकोटिभिर्युतम् । स्यमन्तकैः कौस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा ॥

पद्मकृत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाधारराजितम् ॥

रत्नेन्द्रसारचितं कलसोज्ज्वलशेखरम् । शतयोजनमूद्ध्र्वञ्च दशयोजनविस्तृतम् ॥४९ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम् ।

कुन्दानां करवीराणां यूथिकानान्तथैव च ॥ ५० ॥

सुचारुचम्पकानाञ्च नागेशानांमनोहरैः । मल्लिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम्

कदम्बानाञ्च मालानां कदम्बैश्च विराजितम् । सहस्रदलपद्मानां मालापद्मैर्विभूषितम् ॥

चित्रपुष्पोद्यानसरःकाननैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्यन्दनानाञ्च श्रेष्ठं वायुवहं परम् । ॥

सत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां वरैराच्छादितं वरम् । रत्नदर्पणलक्षाणां शतकैश्च समन्वितम् ॥
श्वेतचामरकोटिभि र्वज्रमुष्टिभिरन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रव्यचर्चितैः ॥५५॥

पारिजातप्रसूनानां कोटितल्पविराजितम् ।
कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥

रत्नशय्याकोटिभिश्च चित्रवस्त्रपरिच्छदैः । चन्दनाह्वैश्चरूपकानां कुंकुमैश्च विचर्चितैः ॥
पुष्पोपधानसंयुक्तश्रृङ्गाराहाभिरन्वितम् । अदृश्यैरश्रुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम् ॥५८॥
एवम्भूताद्रथात्तूर्णमवरुह्य हरिप्रिया । जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मुने ॥ ५९ ॥
द्वारे नियुक्तं ददर्श द्वारपालं मनोहरम् । लक्षगोपपरिवृतं स्मेराननसरोरुहम् ॥ ६० ॥

गोपं श्रीदामनामानं श्रीकृष्णस्य प्रियङ्करम् ।
तमुवाच रुषा देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥ ६१ ॥

दूरं गच्छ गच्छ दूरं रतिलम्पटकिङ्कर । कीदृशीं सुरूपां कान्तां द्रक्ष्यामि त्वत्प्रभोरहम्
राधिकावचनं श्रुत्वा निःशङ्कः पुरतः स्थितः । तामेव न ददौ गन्तुं वेत्रपाणिर्महाबलः
तूर्णञ्च राधिकान्यश्च श्रीदामानं सुकिङ्करम् । बलेन प्रेरयामासुः कोपेण स्फुरिताधरा

श्रुत्वा कोलाहलं शब्दं गोलोकानां हरिः स्वयम् ।
ज्ञात्वा च कोपितां राधामन्तर्द्धानं चकार ह ॥ ६५ ॥
विरजा राधिकाशब्दादन्तर्द्धानं हरेरपि ।
दृष्ट्वा राधाभयार्त्ता सा जहौ प्राणांश्च योगतः ॥ ६६ ॥

सद्यस्तत्र सरिद्रूपं तच्छरीरं बभूवह । व्याप्तञ्च वर्त्तुलाकारं तथा गोलोकमेव च ॥६७॥
कोटियोजनविस्तीर्णं प्रस्थेऽतिनिम्नमेव च । दैर्घ्ये दशगुणं चारु नाना रत्नाकरं परम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे विरजानन्द-प्रस्तावोनाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

सप्तसमुद्रोत्पत्तिः ।

नारायण उवाच ।

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने !। विरजाञ्च सरिद्रूपां दृष्ट्वा गेहं जगाम सा॥१॥
श्रीकृष्णो विरजां दृष्ट्वा सरिद्रूपां प्रियां सतीम्। उच्चैरुरोद विरजातीरे नीरमनोहरे ॥
ममान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे वरे । त्वया विनाहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि ॥
नद्यधिष्ठात्री देवी त्वं भव मूर्त्तिमती सति । ममाशिषा रूपवती सुन्दरी योषितांवरा ।
पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीमधिका भव ॥ ४ ॥
पुरातनं शरीरन्ते सरिद्रूपमभूत् सति । जलादुत्थाय चागच्छ विधाय नूतनां तनुम् ॥
आजगाम हरेरग्रं साक्षाद्राधैव सुन्दरी । पीतवस्त्रपरिधाना स्मेराननसरोरुहा ॥ ६ ॥
पश्यन्तं प्राणनाथञ्च पश्यन्ती वक्रचक्षुषा । नितम्बश्रोणिभारार्त्ता पीनोन्नतपयोधरा ॥
मानिनी मानिनीनाञ्च गजेन्द्रमन्दगामिनी ।
सुन्दरी सुन्दरीणाञ्च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ ८ ॥
चारुचम्पकवर्णाभा पक्वबिम्बाधरा वरा । पक्वदाड़िमबीजाभा दन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥९॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना । कस्तूरीबिन्दुना सार्द्धं सिन्दूरबिन्दुभूषिता ॥
चारुपत्रकशोभाढ्या सुचारुकबरीयुता । रत्नकुण्डलगण्डस्था भूषिता रत्नमालया ॥११॥
गजमौक्तिकनासाग्रा मुक्ताहारविराजिता ॥ १२ ॥
रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खकरोज्ज्वला । किङ्किणीजालशब्दाढ्या रत्नमञ्जीरमण्डिता ॥१३
ताञ्च रूपवतीं दृष्ट्वा प्रेमोद्रेकां जगत्पतिः । चकारालिङ्गनं तूर्णं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१४॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं विभुः । रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः॥१५॥
विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्य्यममोघकम् । सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतञ्च सा । ततः सुषाव तत्रैव पुत्रान् सप्त मनोहरान् ॥

माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया सती ।
तस्थौ तत्र सुखासीना सार्द्धं पुत्रैश्च सप्तभिः ॥ १८

एकदा हरिणा सार्द्धं वृन्दारण्ये सुनिर्जने । विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासक्तमानसा एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोड़ं जगामह । कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च भ्रातृभिः पीड़ितो भिया भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा तत्याजतां कृपानिधिः । क्रोड़े चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं ययौ प्रबोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम् । विललाप भृशं तत्र शृङ्गारातृप्तमानसा

शशाप स्वसुतं कोपाल्लवणोदो भविष्यसि ।
कदापि ते जलं केचित् न खादिष्यन्ति जीविनः ॥ २३ ॥
शशाप सर्वान् वालांश्च यान्तु मूढ़ा महीतलम् ।
गच्छध्वञ्च महीं मूढ़ा जम्बुद्वीपं मनोहरम् ॥ २४ ॥

स्थितिर्नैकत्रयुष्माकंभविष्यतिपृथक् पृथक् । द्वीपेद्वीपेस्थितिंकृत्वातिष्ठन्तुसुखिनःसुताः द्वीपस्थाभिर्नदीभिश्च सह क्रीड़न्तु निर्जने । कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो वभूवह ॥ कनिष्ठः कथयामासमातृशापञ्च वालकान् । आजग्मुर्दुःखिताःसर्वे मातृस्थानञ्चवालकाः श्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणीतलम् । प्रणम्य चरणं मातुर्भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥२८॥ सप्तद्वीपे समुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः । कनिष्ठात् वृद्धपर्य्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने !॥ लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । एतेषाञ्च जलं पृथ्व्यां शस्यार्थञ्च भविष्यति ॥

व्याप्ताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
रुरुदुर्बालकाः सर्वे मातृभ्रातृशुचान्विताः ॥ ३१ ॥

रुरोद च भृशं साध्वी पुत्रविच्छेदकातरा । मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां भर्त्तरेव च ॥ तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः । आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरुहः दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेवच । आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं वभूव ह ॥ चकार श्रीहरिं क्रोड़े विजहार स्मरातुरा । ताञ्च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो वभूव ह॥३५

वरं तस्मै ददौ प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः ।
कान्ते ! नित्यं तव स्थानमागमिष्यामि निश्चितम् ॥ ३६ ॥

यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रियामम। पुत्रान्रक्षसि नित्यंत्वंमद्वरस्य प्रभावतः
इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं वसन्तं विरजान्तिके। दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयामासुरीश्वरीम्
श्रुत्वा रुरोद सा देवी सुष्वाप क्रोधमन्दिरे॥ ३८॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णोजगामराधिकान्तिकम्। स तस्थौराधिकाद्वारेश्रीदाम्ना सह नारद!
रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा रुष्टोवाचाप्रियं तदा॥ ४०॥
मत्तो बहुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे!।
याहि तासां सन्निधानं मया ते किं प्रयोजनम्॥ ४१॥
विरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा बभूवह। देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथापि यासि तां प्रति
तत्तीरे मन्दिरं कृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम्। नदीबभूव सा त्वञ्च नदो भवितुमर्हसि
नदस्यनद्या सार्द्धञ्च सङ्गमो गुणवान्भवेत्। स्वजातौ परमाप्रीति शयने भोजने सुखात्
देवचूड़ामणेः क्रीड़ा नद्या सार्द्धं मयेरितम्। महाजनःस्मेरमुखः श्रुत्वासद्यो भविष्यति
ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति त्वन्मनः।
भगवान् सर्वभूतात्मा नदीं संभ(भो)क्तुमिच्छति॥ ४६॥
इत्युक्त्वाराधिकादेवीविरराम रुषान्विता। नोत्तस्थौ भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता॥
काश्चिच्चामरहस्ताश्च काश्चित् सूक्ष्मांशुकाधराः।
काश्चित् ताम्बूलहस्ता च काश्चिन्मालावराकराः॥ ४८॥
वासितोदकराः काश्चित् काश्चित् पद्मवराकराः।
काश्चित् सिन्दूरहस्ताश्च माल्यहस्ताश्च काश्चन॥ ४९॥
रत्नालङ्कारहस्ताश्च काश्चित् कज्जलवाहिकाः।
वेणुवीणाकराः काश्चित् काश्चित् कङ्कतिकाकराः॥ ५०॥
काश्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काश्चन। सुगन्धितैलहस्ताश्च काश्चन प्रमदोत्तमाः।
करतालकराः काश्चित् गेण्डहस्ताश्च काश्चन॥ ५१॥
काश्चिन् मृदङ्गमुरजमुरलीतालकारिकाः। सङ्गीतनिपुणाः काश्चित् काश्चिन्नर्त्तनतत्पराः
क्रीड़ावस्तुकराः काश्चिन्मधुहस्ताश्चकाश्चन। सुधापात्रकराःकाश्चिदङ्घ्रिपीठकराःपराः

वेशवस्तुकराः काश्चित् काश्चिच्चरणसेविकाः ।

पुटाञ्जलिकराः काश्चित् काश्चित् स्तुतिपरा वराः ॥ ५४ ॥

एवंकतिविधाःसन्तिराधिकापुरतोमुने । वहिर्द्देशस्थिताःकाश्चित्कोटिशः कोटिशःसदा
काश्चित् द्वारनियुक्ताश्चवयस्यावेत्रधारिकाः । कृष्णमभ्यन्तरं गन्तुंनददुः द्वारसंस्थितम्
पुरः स्थितस्तं प्राणेशं राधा पुनरुवाच सा । नानुरूपमत्यकथ्यमयोग्यमतिकर्कशम् ॥

राधिकोवाच ।

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे । कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम् । अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥
हे नदीकान्त देवेश देवानाञ्च गुरोर्गुरो । मया ज्ञातोऽसिभद्रन्ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात्
शश्वत्ते मानुषस्येव व्यवहारश्च लम्पट । लभतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्व्रज भारतम्

हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि ।

निवार्य्यताञ्च धूर्त्तोऽयमस्यात्र किं प्रयोजनम् ॥ ६२ ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम् । हितं तथ्यञ्च विनयंसारं यत् समयोचितम्
काश्चिदूचुरिति हरेगच्छ स्थानान्तरं क्षणम् । राधाकोपापनयने गमयिष्यामहे वयम्
काश्चिदूचुरतिप्रीत्या क्षणंगच्छ गृहान्तरम् । त्वयैव वर्द्धिता राधा त्वां विनाकश्चरक्षति
काश्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकाया हरिं मुने । क्षणं वृन्दावनं गच्छ मानापनयनावधि

काश्चिदित्यूचुरीशञ्च परिहासपरं वचः ।

मानापनयनं भक्त्या कामिन्याः कुरु कामुकः ॥ ६७ ॥

काश्चिन्नोचुरितीशं तं याहि जायान्तरंतव । लोलुपस्यफलंनाथकरिष्यामोयथोचितम्
काश्चिन्नोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतःस्थितम् । गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु

काश्चिन्नोचुरिति प्राणनाथं गोप्यो दुरक्षरम् ।

कः क्षमः साम्प्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपङ्कजम् ॥ ७० ॥

काश्चनोचुरिति विभुं व्रज स्थानान्तरं हरे । कोपापनयने काले पुनरागमनं तव ॥७१॥
काश्चनोचुरितीदं तं प्रगल्भाःप्रमदोत्तमाः । वयंत्वांवाचयिष्यामो नचेद्याहिगृहान्तरम्

काश्चिन्निवारयामासुर्म्माधवंप्रमदोत्तमाः । स्मितवक्त्रञ्चसर्वेशंस्वच्छमक्रोधमीश्वरम्
गोपीभिर्वार्य्यमाणे च जगत्कारणकारणे । सद्यश्चुकोप श्रीदामा हरौ गृहान्तरे गते ॥
कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम् ।
रक्तपद्मेक्षणां रुष्टां रक्तपङ्कजलोचनः ॥ ७५ ॥

श्रीदामोवाच ।

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरम् । विचारणांविनादेविकरोषिभर्त्सनंवृथा ॥
ब्रह्मानन्तेशधर्मेशं जगत्कारणकारणम् । वाणीपद्मालयामायाप्रकृतीशञ्च निर्गुणम् ॥
आत्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं विड़म्बनम् । देवीनां प्रवरात्वञ्च निबोधयस्य सेवया
यस्य पादार्चनेनैव सर्वेषामीश्वरी परा । तं न जानासि कल्याणि किमहं वक्तुमीश्वरः
भ्रूभङ्गलीलया कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च त्वद्विधाः ।
कोटिशः कोटिदेव्यस्त्वं न जानासि च निर्गुणम् ॥ ८० ॥
वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाम्बुजमार्जनम् । करोति केशैः शश्वत् श्रीः सेवनं भक्तिपूर्वकम्
सरस्वती च स्तवनैःकर्णपीयूषसुन्दरैः । सन्ततंस्तौति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम्
भीताचप्रकृतिर्म्मायासर्वेषांजीवरूपिणी । सन्ततंस्तौति यं भक्त्या तं न जानासिमानिनि
स्तुवन्ति सततं वेदा महिम्नः षोड़शीं कलाम् ।
कदापि तं न जानन्ति त्वं न जानासि भामिनि ॥ ८४ ॥
वक्त्रैश्चतुर्भिर्यंब्रह्मावेदानां जनको विभुः । स्तौति नित्यं सेवते च चरणाम्भोजमीश्वरि
शङ्करः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तौति यं योगिनां गुरुः । साश्रुपूर्णःसपुलकःसेवते चरणाम्बुजम्
शेषःसहस्रवदनैः परमात्मानमीश्वरम् । सततं स्तौति भक्त्या च सेवते चरणाम्बुजम् ॥
धर्म्मः पाताच सर्वेषांसाक्षी च जगतांपतिः । भक्त्या च चरणाम्भोजं सेवते सततंमुदा
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः ।
अस्यांशश्च तथा चायं ध्यायतेऽणुक्षणं परम् ॥ ८६ ॥
सुरासुरमुनीन्द्राश्च मनवो मानवाबुधाः । सेवन्ति नहि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाम्बुजम्
क्षिप्रं रोषं परित्यज्य भज पादाम्बुजं हरेः ॥ ९० ॥

भ्रूभङ्गलीलामात्रेण सृष्टिः संहर्त्तुरेव च ॥ ९१ ॥
निमेषमात्राद्स्यैव ब्रह्मणः पतनं हरेः । यस्यैव दिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि ॥
एवमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्विधेः । त्वं वा कान्याश्च वा राधे मदीश्वरवरोऽखिलम्
श्रीदाम्नो वचनं श्रुत्वा केवलं कटुमुल्वणम् । सद्यश्चुकोप सा ब्रह्मन्नुत्थाय तमुवाच ह
रासेश्वरी वहिर्गत्वा तमुवाच ह निष्ठुरम् । स्फुरदोष्ठी मुक्तकेशी रक्ताम्भोरुहलोचना॥

राधिकोवाच ।

रे रे जाल्म महामूढ़ श्रृणु लम्पटकिङ्कर । त्वञ्च जानासि सर्वार्थं न जानामित्वदीश्वरम्
त्वदीश्वरोहिश्रीकृष्णोनह्यस्माकंव्रजाधम । जानामिजनकंस्तौषि सदानिन्दसिमातरम्
यथाऽसुराश्चत्रिदशान्नित्यंनिन्दन्तिसन्ततम् । तथानिन्दसि मां मूढ़ तस्मात्त्वमसुरोभव
गोपव्रजासुरीं योनिं गोलोकाच्चवहिर्भव । मयाद्यशप्तोमूढ़स्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः
रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुष्वाप विरराम च । वयस्याः सेवयामासुश्चामरै रत्नमुष्टिभिः

श्रुत्वा च वचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः ।
शशाप ताञ्च श्रीदामा व्रज योनिञ्च मानुषीम् ॥१०१ ॥

मनुष्यइवकोपस्तेतस्मात् त्वंमानुषी भव । भविष्यसि न सन्देहोमयाशप्ता त्वमम्बिके
छायया कलया चापि परस्वस्ता कलङ्किनी । मूढरायाणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले
रायाणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने । भविष्यति महायोगी राधाशापेन गर्भजः ॥
गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहृत्य वस कानने । भविता ते वर्षशतं विच्छेदो हरिणा सह

पुनः प्राप्य तमीशञ्च गोलोकमागमिष्यसि ।
तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरेः पुरः ॥ १०६ ॥

गत्वा प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाख्यानमुवाच ह । आनुपूर्वन्तुतत्सर्वं रुरोद च भृशं व्रजः
उवाच तं रुदन्तञ्च गच्छ त्वं धरणीतलम् । न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि
काले शङ्करशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम् । आगमिष्यसि पश्चाशद्युगेऽतीतेमदाशिषा
श्रीकृष्णस्य वचःश्रुत्वा तमुवाच शुचान्वितः । त्वद्भक्तिरहितंमाञ्च कदाचिन्न करिष्यसि
इत्युक्त्वा स हरिंनत्वा जगामस्वाश्रमाद्बहिः । पश्चाज्जगाम सा देवी रुरोद च पुनःपुनः

क यासि वत्सेत्युच्चार्य्य विललाप भृशं सती। स एव शङ्खचूड़श्च बभूव तुलसीपतिः

गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसन्निधिम्।
सर्वं निवेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददौ ॥ ११३ ॥

शोकातुराञ्च तां कृष्णो बोधयामास प्रेयसीम्। शङ्खचूड़श्च कालेनसम्प्रापपुनरीश्वरम्
राधा जगाम धरणीं वाराहे हरिणा सह। वृक(ष)भानुगृहे जन्म ललाभ गोकुले मुने!

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम्।
सर्वेषां वाञ्छितं सारं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
सप्तसमुद्रजन्मादिराधाश्रीदाम्नोः शापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

नारीणां रक्षकनिरूपणम्।

नारद उवाच।

केन वा प्रार्थितः कृष्णो महीञ्च केन हेतुना। आजगाम जगन्नाथो वद वेवविदांवरः ॥

नारायण उवाच।

पुरा वराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुन्धरा। भृशं बभूव शोकार्त्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ
सुरैश्चासुरसन्तप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः। सार्द्धं तैस्तां दुर्गमाञ्च जगाम वेधसः सभाम् ॥
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं मुदा।
अप्सरोगणनृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। भक्त्यानन्दाश्रुपूर्णं तं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥६॥
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्द्धं प्रणम्य चतुराननम्। सर्वं निवेदनञ्चक्रे दैत्यभारादिकं मुने!॥

साश्रुपूर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च ॥ ७ ॥

तांमुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि ॥ ८ ॥

कथमागमनं भद्रे वद भद्रं भविष्यति । सुस्थिरा भव कल्याणि भयं किन्ते मयिस्थिते॥

आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान् पप्रच्छ सादरम् । कथमागमनंदेवायुष्माकं ममसन्निधिम्

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम् ।
भाराक्रान्ता च वसुधा दैत्यग्रस्ता वयं प्रभो ॥ ११ ॥
त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु ।
गतिस्त्वमस्या भोब्रह्मन् निर्वृतिं कर्त्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह । वयं तेनैव दुखार्त्तास्तद्भारहरणं कुरु ॥१३ ॥

देवानां वचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः । दूरीकृत्य भयं वत्से सुखंतिष्ठममान्तिके॥

केषां भारमशक्ता त्वं सोढुं पद्मविलोचने ।
अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम् ॥ १५ ॥

तस्य सा वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्वपीड़नम् । पीड़िता येन येनैवं प्रसन्नवदनेक्षणा॥

श्रृणुतातप्रवक्ष्यामिस्वकीयां मानसीं व्यथाम् । विनाबन्धुंसविश्वासं नाहंकथितुमुत्सहे

स्त्रीजातिरबला शश्वद्रक्षणीया स्वबन्धुभिः । जनकस्वामिपुत्रैश्च गर्हितान्यैश्चनिश्चितम्

त्वया सृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम । येषां भारैः पीडिताहं श्रूयतां कथयामिते॥

कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः । तेषां महापातकिनामशक्ताभारवाहने ॥२०

स्वधर्म्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः। श्राद्धहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेणपीडिता॥

पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः । ये न कुर्वन्ति तेषाञ्च न शक्ता भारवाहने॥

ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः । निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीड़िता॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।
विश्वासघ्नः स्थाप्यहारी तेषां भारेण पीड़िता ॥ २४ ॥
कल्याणयुक्तनामानि हरेर्नामैकमङ्गलम् ।
कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीड़िता ॥ २५ ॥

जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः । शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीड़िता

पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च । येये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीड़िता॥

सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिंहरिकथाभक्तिंतेषां भारेण पीड़िता॥
शङ्खचूड़स्य भारेण पीड़िताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेणपरिपीड़िता

इत्येवं कथितं सर्वमनाथाया निवेदनम् ।
त्वया यदि सनाथाहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ॥ ३० ॥
इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।
भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः ॥ ३१ ॥

उपायतोऽपि कार्य्याणि सिध्यन्त्येव वसुन्धरे । कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः
यन्त्रं मङ्गलकुम्भञ्च शिवलिङ्गञ्च कुङ्कुमम् । मधु काष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्
खड्गं गण्डकखड्गञ्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्य्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम् ॥
शालग्रामशिलां शङ्खंतुलसीं प्रतिमाजलम् । शङ्खंप्रदीपमालाञ्चशिलामर्च्याञ्चघण्टिकाम्
निर्माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिन्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥३६॥
गोरोचनाञ्च मुक्ताञ्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा ॥
रजतं काञ्चनञ्चैव प्रवालरत्नमेव च । कुशद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् ॥ ३८ ॥

त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि ।
तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ३९ ॥
ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तया सह ।
जगाम जगतां धाता कैलासं शङ्करालयम् ॥ ४० ॥

गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शङ्करं विधिः । वसन्तमक्षयवटमूले च सरितस्तटे ॥ ४१ ॥
व्याघ्रचर्म्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम् । त्रिशूलपट्टिशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥
नानासिद्धैः परिवृतं योगीन्द्रगणसेवितम् । परितोऽप्सरसांनृत्त्यं पश्यन्तंसस्मितंमुदा

गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतवन्तं कुतूहलात् ।
पश्यन्तीं पार्वतीं प्रीत्या पश्यन्तं वक्रचक्षुषा ॥ ४४ ॥
जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम् ।

मन्दाकिनीपद्मबीजमालया पुलकाङ्कितम् ॥ ४५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थावग्रे स धूर्जटेः । पृथिव्या सुरसंघैश्च सार्द्धं प्रणतकन्धरैः॥४६

उत्तस्थौ शङ्करः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।
ननाम मूर्ध्ना सम्प्रीत्या लब्धवानाशिषं ततः ४७ ॥

प्रणेमुर्देवताः सर्वाः शङ्करं चन्द्रशेखरम् । प्रणनाम धरा भक्त्या चाशिषं युयुजे हरः ॥
वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः । श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥
भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ । बभूवतुस्तौ दुःखार्त्तौ बोधयामास तौ विधिः
ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान् वसुन्धराम् । गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नतः
ततो देवेश्वरौ तूर्णमागत्य धर्म्ममन्दिरम् । सह तेन समालोच्य प्रजग्मुर्भवनं हरेः ५२

वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ।
वायुना धार्य्यमाणञ्च ब्रह्माण्डादूद्र्ध्वमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
कोटियोजनमूद्र्ध्वञ्च ब्रह्मलोकात् सनातनम् ।
न वर्णनीयं कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम् ।
पद्मरागैरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम् ॥ ५४ ॥

ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुस्तं मनोहरम् । हरेरन्तःपुरं गत्वा ददृशुः श्रीहरिं पुरः ॥५५
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभितम् ॥ ५६ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥५७॥
शान्तं सरस्वतीकान्तंलक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम्
सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैरुपसेवितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सरत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥५६ ॥
परमानन्दरूपञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने ॥६०॥
तुष्टुवुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकन्धराः । परमानन्दभारार्त्ताः पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥

ब्रह्मोवाच ।

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् ।
वयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः ॥ ६२ ॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः ।
कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥ ६३ ॥

शङ्कर उवाच ।

त्वामक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥६४॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिज्ञंसिद्धिदंसिद्धिरूपं कःस्तोतुमीश्वरः

धर्म उवाच ।

वेदेऽनिरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुञ्च कः क्षमः॥६६॥
यस्य सम्भावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तञ्च स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम्
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने। पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितञ्च लभेन्नरः
देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिःस्वयम् । गोलोकंयातयूयञ्चयामि पश्चात्प्रियासह
नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ । एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवीसरस्वती

अनन्तो मम माया च कार्त्तिकेयो गणाधिपः ।
सा सावित्री वेदमाता पश्चाद्‌ यास्यति निश्चितम् ॥ ७१ ॥

तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह । तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् । ममैवान्ये कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयःस्मृताः
कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः । गोलोकं यात यूयञ्च कार्य्यसिद्धिर्भविष्यति ॥
वयं पश्चाद्‌गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये । इत्युक्त्वैव सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम्॥
प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम् । विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥७६॥

ऊर्द्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।
वायुना धार्य्यमाणञ्च निर्मितं स्वेच्छया विभोः ॥ ७७ ॥

तमनिर्वचनीयञ्च देवास्ते गमनोन्मुखाः । ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुर्विरजातटम् ७८
दृष्ट्वा देवाः सरित्तीरं विस्मयं परमं ययुः । शुद्धस्फटिकसङ्काशं सुविस्तीर्णं मनोहरम्
मुक्तामाणिक्यपरशमणिरत्नाकरान्वितम् । कृष्णशुभ्रहरिद्रक्तमणिराजिविराजितम्॥८०॥
प्रवालाङ्कुरमुद्भूतं कुत्रचित् सुमनोहरम् । परमामूल्यसद्रत्नाकरराजिविभूषितम् ॥८१ ॥

विधेरदृश्यमाश्चर्य्यं निधिश्रेष्ठाकरान्वितम् । पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुत्रचिन्मुने॥८२॥
कुत्रचिच्च मरकताकरश्रेणीसमन्वितम् । स्यमन्तकाकरं कुत्र कुत्रचिद्रुचकाकरम् ॥८३॥
अमूल्यपीतवर्णैकमणिश्रेण्याकरान्वितम् । रत्नाकरं कुत्रचिच्च कुत्रचित् कौस्तुभाकरम्॥
कुत्रानिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम् । कुत्रचित् कुत्रचिद्रम्यविहारस्थलमुत्तमम् ८५
दृष्ट्वा तु परमाश्चर्य्यं जग्मुस्तत्पारमीश्वराः । ददृशुः पर्वतश्रेष्ठं शतशृङ्गं मनोहरम् ॥
पारिजाततरूणाञ्च वनराजीविराजितम् । कल्पवृक्षैः परिवृतं वेष्टितं कामधेनुभिः ॥८७॥
कोटियोजनमूर्ध्वञ्च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थं परिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्॥
प्राकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम् । दशयोजनविस्तीर्णं वर्त्तुलाकारमुत्तमम् ॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना । संकुलेन मधुभ्राणां समूहेन समन्वितम्॥९०॥
सुरत्नद्रव्यसंयुक्तै राजितं रतिमन्दिरैः । रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम् ॥९१॥
रत्नसोपानयुक्तेन सद्रत्नकलसेन च । हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम् ॥
सिन्दूरवर्णमणिभिः परितः खचितेन च । इन्द्रनीलैर्म्मध्यभागमण्डितेन मनोहरैः॥९३॥
रत्नप्राकारसंयुक्तं मणिभेदैर्विराजितम् । द्वारैः कवाटसंयुक्तैश्चतुर्भिश्च विराजितम्॥९४॥
वज्रग्रन्थिसमायुक्तै रसालपल्लवान्वितैः । परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम् ॥९५॥
शुक्लधान्यपर्णराजफलदूर्वाकरान्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्च्चितम् ॥ ९६ ॥
वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कोटिशो मुने । रत्नालङ्कारसंयुक्तै रत्नमालाविराजितैः ॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः ॥ ९८ ॥
रत्नाङ्गुरीयललितैर्हस्ताङ्गुलिविभूषितैः । रत्नपाशकवृन्दैश्च पदाङ्गुलिविराजितैः ॥ ९९ ॥
भूषितैरत्नभूषाभिः सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलैः । गजेन्द्रमुक्तालङ्कारैर्नासिकामध्यराजितैः॥१००॥
सिन्दूरविन्दूना सार्द्धमलङ्कारस्थलोज्ज्वलैः । चारुचम्पकवर्णाभैश्चन्दनद्रवचर्च्चितैः १०१
पीतवस्त्रपरीधानैर्विम्वाधरमनोहरैः । शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखोज्ज्वलैः॥१०२॥
शरत्प्रफुल्लपद्मानां शोभामोचनलोचनैः । कस्तूरीपत्रिकायुक्तरेखाक्तकज्जलोज्ज्वलैः ॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः कवरीशोभितैः । मधुलुब्धमधुभ्राणां समूहैश्चापि संकुलैः ॥
चारुणा गमनेनैव गजखञ्जनगञ्जनैः । वक्त्रभ्रूभङ्गसंयोगस्वल्पस्मितसमन्वितैः ॥१०५॥

पक्वदाड़िम्बबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजितैः । खगेन्द्रचञ्चुशोभाढ्यनासिकोन्नतभूषितैः॥
गजेन्द्रगण्डयुग्माभस्तनभारनतैरिव । नितम्बकठिनश्रोणिपीनभारभरानतैः ॥ १०७ ॥
कन्दर्पशरचेष्टाभिर्ज्जर्जरीभूतमानसैः । दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्य्यदर्शनोत्सुकैः १०८
राधिकाचरणाम्भोजसेवासक्तमनोरथैः । सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाज्ञया १०९
क्रीड़ासरोवराणाञ्च लक्षैश्च परिवेष्टितम् । श्वेतरक्तलोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः ॥
सुकूजद्भिर्म्मधुभ्राणां समूहसङ्कुलैः सदा ॥ ११० ॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन समन्वितम् । कोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः ॥
भोगद्रव्यसकर्पूरताम्बूलवस्त्रसंयुतैः । रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः ॥ ११२ ॥
विचित्रपुष्पमालाभिः शोभितैः शोभितंमुने । तद्रासमण्डलंदृष्ट्वा जग्मुस्तेपर्वताद्बहिः
ततो विलक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम् । वनं वृन्दावनं नाम राधामाधवयोः प्रियम्॥
क्रीड़ास्थानं तयोरेव कल्पवृक्षचयान्वितम् । विरजातीरनीराक्तैःकलिपतं मन्दवायुभिः ॥
कस्तूरीयुक्तपत्राक्तैः सर्वत्र सुरभीकृतम् । नवपल्लवसंयुक्तं परपुष्टरुतश्रुतम् ॥ ११६ ॥
कुत्र केलिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम् । मन्दराणां चन्दनानां चम्पकानां तथैवच ॥
सुगन्धिकुसुमानाञ्च गन्धेन सुरभीकृतम् ॥ ११८ ॥
आम्राणां नागरङ्गाणां पनसानां तथैवच । तालानां नारिकेलानां वृन्दैर्वृन्दावनं वनम्॥
जम्बूनां वदरीणाञ्च खर्ज्जूराणां विशेषतः । गुवाकाम्रातकानाञ्च जम्बीराणाञ्च नारद ॥
कदलीनां श्रीफलानां दाड़िम्बानां मनोहरैः । सुपक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम्
प्रियालानाञ्च सालानामश्वत्थानां तथैव च ।
निम्बानां शाल्मलीनाञ्च तिन्तिड़ीनाञ्च शोभनैः ॥ १२२ ॥
अन्येषां तरुभेदानां संकुलैः संकुलैः सदा । परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्
मल्लिका मालती कुन्दं केतकी माधवीलता । एतासाञ्च समूहैश्च यूथिकाभिःसमन्वितम्
चारुकुञ्जकुटीरैस्तैः पञ्चाशत्कोटिभिर्मुने । रत्नप्रदीपदीप्तैश्च धूपेन सुरभीकृतैः ॥ १२५ ॥
शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च वासितैर्गन्धवायुभिः । चन्दनाक्तैः पुष्पतल्पैर्म्मालाजालसमन्वितैः ॥
मधुलुब्धमधुभ्राणां कलशब्दैश्च शब्दितम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यै गोंपीवृन्दैश्च वेष्टितम्॥

पञ्चाशत्कोटिगोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया । द्वात्रिंशत् काननं तत्र रम्यंरम्यं मनोहरम्
वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् । सुपक्वमधुरस्वादुफलैर्वृन्दावनं मुने ॥१२६
गोष्ठानाञ्च गवानाञ्च समूहैश्च समन्वितम् । पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना ॥
मधुलुब्धमधुभ्राणां समूहेन समन्वितम् । पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्

श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगठितैर्वरैः ॥ १३१ ॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः ।
परितो वर्त्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ॥ १३२ ॥

रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने । गोपानाञ्च समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम् १३३

आश्रमै रत्नखचितैर्नानाभोगसमन्वितैः ।
गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिभिर्युतम् ॥ १३४ ॥

भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः । ततोऽधिकसुनिर्म्माणैः सद्रत्नगठितैर्युतम्
आश्रमैः पार्षदानाञ्च ततोऽधिकविलक्षणैः । सुमूल्यै रत्नरचितैः संयुक्तं दशकोटिभिः॥
पार्षदप्रवराणाञ्च श्रीकृष्णरूपधारिणाम् । आश्रमैः कोटिभिर्युक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः ॥

राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः ।
सद्रत्नरचितैर्द्रव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्युतम् ॥ १३८ ॥

तासाञ्च किङ्करीणाञ्च भवनैः सुमनोहरैः । मणिरत्नादिरचितैःशोभितं दशकोटिभिः ॥
शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि । हरिभक्तिपरा ये च कर्म्मनिर्वाणकारकाः ॥

स्वप्ने ज्ञाने हरेर्ध्याने निविष्टमानसा मुने ।
राधा कृष्णेति कृष्णेति प्रजपन्तो दिवानिशम् ॥१४१ ॥

तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः । सद्रत्नमणिनिर्म्माणैर्नानाभोगसमन्वितैः
पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः । रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हरिन्मणिसमन्वितैः ॥
अमूल्यरत्नकलससमूहान्वितशेखरैः । सूक्ष्मवस्त्राभ्यन्तरितैःसंयुक्तं शतकोटिभिः॥१४४
देवास्तमद्भुतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मुदा । तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः ॥ १४५ ॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णमूर्द्ध्वे तद्द्विगुणं मुने ॥ १४६ ॥

सहस्रस्कन्धसंयुक्तं शाखासंख्यसमन्वितम् । रत्नपक्वफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः
कृष्णस्वरूपान् तन्मूले ददृशुः प्रबलान् शिशून् ।
पीतवस्त्रपरीधानान् क्रीड़ासक्तान् मनोहरान् ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गान् रत्नभूषणभूषितान् ॥ १४८ ॥
ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान् हरेः । ततो विदूरे ददृशू राजमार्गं मनोहरम् ॥ १४६॥
सिन्दूराकारमणिभिः परितो रचितं मुने । इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रुचकैस्तथा ॥
निर्मितैर्वेदिभिर्युक्तं परितो रत्नमण्डपम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ १५१
दधिपर्णलाजफलपुष्पदूर्वाङ्कितान्वितैः ॥ १५२ ॥
सूक्ष्मसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः । रम्भास्तम्भसमूहैश्च कुङ्कुमाक्तैर्विराजितम् ॥
सद्रत्नमङ्गलघटैःफलशाखासमन्वितैः । सिन्दूरकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥१५४॥
भूषितैः पुष्पमालाभिः परितो भूषितं परम् । गोपिकानां समूहैश्चक्रीड़ासक्तैश्च वेष्टितम्
बहुमूल्येन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितान् । वह्निशुद्धांशुकै रम्यैः श्वेतचामरदर्पणैः ॥१५६॥
रत्नतल्पविचित्रैश्च पुष्पमाल्यैर्विराजितान् । षोड़शद्वारसंयुक्तान् द्वारपालैश्च रक्षितान्
परितः परिखायुक्तान् रक्तप्राकारवेष्टितान् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितान् । एतान्मनोरमान् दृष्ट्वातेदेवा गमनोन्मुखाः॥१५८॥
जग्मुः शीघ्रं कियद्दूरं ददृशुः सुन्दरं ततः । आश्रमं राधिकायाश्च रासेश्वर्य्याश्च नारद
देवादिदेव्या गोपीनां वरयोश्चारुनिर्मितम् । प्राणाधिकायाःकृष्णस्य रम्यंद्रव्यंमनोहरम्
सर्वानिर्वचनीयञ्च पण्डितैर्न निरूपितम् । सुचारुवर्त्तुलाकारं षड्गव्यूतिप्रमाणकम् ॥
शतमन्दिरसंयुक्तं ज्वलितं रत्नतेजसा । अमूल्यरत्नसाराणां वरैर्विरचितं वरम् ॥१६२॥
दुर्लङ्घ्याभिर्गभीराभिः परिखाभिः सुशोभितम् ।
कल्पवृक्षैः परिवृतं पुष्पोद्यानशतान्तरम् ॥ १६३ ॥
सुमूल्यरत्नरचितैः प्राकारैः परिवेष्टितम् ॥ १६४ ॥
सद्रत्नवेदिकायुक्तं युक्तं द्वारैश्च सप्तभिः । संयुक्तं रत्नैश्चित्रैश्च विचित्रैर्बहुलैर्मुने ॥
प्रधानद्वारसप्तभ्यः क्रमशः क्रमशो मुने । सर्वतोऽपि ततस्तत्र षोड़शद्वारसंयुतम् ॥१६६

देवा दृष्ट्वा च प्राकारं सहस्रधनुरुच्छ्रितम् ।
सद्रत्नक्षुद्रकलससमूहैः सुमनोहरैः । सुदीप्तं तेजसा रम्यं परमं विस्मयं ययुः ॥ १६७ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य कियद्दूरं ययुर्मुदा । पुरतो गच्छतां तेषां पश्चाद्भूतस्तदाश्रमः।१६८
गोपानां गोपिकानाञ्च ददृशुराश्रमान् परान् । अमूल्यरत्नखचितान् शतकोटिमितान्मुने
दर्शं दर्शञ्च परितो गोपानां सर्वमाश्रमम् । गोपिकानाञ्चापरं वा रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥
गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा पुलकाङ्गं ययुः सुराः । तदेव वर्त्तुलाकारं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥
ददृशुः शतशृङ्गञ्च तद्बहिर्विरजानदीम् । विरजान्तं ययुर्देवा ददृशुः शून्यमेव च ॥१७२
वाय्वाधारञ्च गोलोकं सद्रत्नमयमद्भुतम् ॥ १७३ ॥
ईश्वरेच्छानिर्मितञ्च राधिकाज्ञानबन्धनात् ।
युक्तं सहस्रैः सरसां केवलं मंगलालयम् ॥ १७४ ॥
नृत्यञ्च ददृशुस्तत्र देवाश्च सुमनोहरम् । सुतालं चारु सङ्गीतं राधाकृष्णगुणान्वितम् ॥
श्रुत्वैव गीतपीयूषं मूर्च्छामापुः सुरा मुने ।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ते देवाः कृष्णमानसाः । ददृशुः परमाश्चर्यं स्थाने स्थाने मनोहरम्
ददृशुःगोपिकाःसर्वानानावेशविधायिकाः। काश्चिन्मृदङ्गहस्ताश्चकाश्चिद्वीणाकरावराः
काश्चिच्चामरहस्ताश्च करतालकराः पराः । काश्चिद् यन्त्रवाद्यहस्ता रत्ननूपुरशब्दिताः ॥
सद्रत्नकिङ्किणीजालशब्देन शब्दिताः पराः । काश्चिन्मस्तककुम्भाश्च नृत्यभेदमनोरथाः
पुंवेशनायिकाः काश्चित् काश्चित्तासाञ्च नायिकाः ।
कृष्णवेशधराः काश्चिद् राधावेशंधराः पराः ॥ १८० ॥
काश्चित्संयोगविरताःकाश्चिदालिङ्गनेरताः । क्रीडासक्ताश्चताद्दृष्ट्वासस्मिताजगदीश्वराः
प्रगच्छन्तः कियद्दूरं ददृशुराश्रमान् बहून् । राधासखीनां गेहांश्च प्रधानानाञ्च नारद ॥
रूपेणैव गुणेनैव वेशेन यौवनेन च । सौभाग्येनैव वयसा सदृशीनाञ्च तत्र वै ॥ १८३॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्य'श्चराधिकायाश्चगोपिकाः । वेशानिर्वचनीयाश्चतासांनामानिचश्रृणु
सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रतिः ॥ १८५ ॥
कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा ।

चन्द्रमुखी पद्ममुखी सावित्री च सुधामुखी ॥ १८६ ॥

शुभा पद्मा पारिजातागौरी चसर्वमङ्गला । कालिका कमला दुर्गा भारतीच सरस्वती ॥
गङ्गाम्बिका मधुमती चस्पापर्णाच सुन्दरी । कृष्णप्रिया सती चैव नन्दनी नन्दनेतिच ॥
एतासां समरूपाणां रत्नधातुविचित्रितान् । नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान् सुमनोहरान्
अमूल्यरत्नकलससमूहैः शिखरोज्ज्वलान् । सद्रत्नरचितान् शुभ्रान् आश्रमानृदद्दशुस्तथा
ब्रह्माण्डाद्वहिरूर्द्ध्वञ्चनास्ति लोकस्तदूर्द्ध्वगः । ऊर्द्ध्वे शून्यमयंसर्वंतदन्तासृष्टिरेव च

रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यधः सृष्टिरेव च ।

तदधश्च जलं ध्वान्तमगन्तव्यमदृश्यकम् । ब्रह्माण्डान्तं तद्बहिश्च सर्वं मत्तोनिशामय

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे गोलोकवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

राधाप्रसादवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः । पुनराजग्मूराधायाः प्रधानद्वारमेवच ॥१॥
सद्रत्नमणिनिर्माणं वेदिकाद्वयसंयुतम् । हरिद्राकारमणिना वज्रसंमिश्रितेन च ।

अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम् ॥ २ ॥

द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वीरभानुमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् । पीतवस्त्रपरीधानं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥४॥
रक्षन्तं द्वारं चित्रञ्च विचित्रीकृतमद्भुतम् । सर्वं निवेदयामासुर्देवा दौवारिकं मुदा ॥५॥

तानुवाच द्वारपालो निःशङ्कस्त्रिदशेश्वरान् ।
नाहं विनाज्ञया गन्तुं दास्यामि साम्प्रतं सुराः ॥ ६ ॥

किङ्करान् प्रेषयित्वाऽसौ श्रीकृष्णस्थानमेव च। हरेरनुज्ञां सम्प्राप्य ददौगन्तुं सुरान्मुने॥
तं सम्भाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽधिकं विचित्रञ्चसुन्दरं सुमनोहरम्॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानुञ्च नारद। किशोरं श्यामलञ्चारु स्वर्णवेत्रधरं वरम्॥ ९॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम्।
गोपानाञ्च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम्॥ १०॥
तं सम्भाष्य ययुर्देवास्तृतीयं द्वारमुत्तमम्। ततोऽतिसुन्दरंचित्रंज्वलितं मणितेजसा॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्य्यभानुञ्च नारद। द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम्॥
मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थेन राजितम्॥ १३॥
रत्नकुण्डलिनं श्रेष्ठं प्रेष्ठं राधेशयोः परम्। नवलक्षेण गोपेन वेष्टितञ्च नृपेन्द्रवत्॥१४॥
तं सम्भाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थं द्वारमेव च। तेभ्यो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा॥
अत्यद्भुतविचित्रेण भूषितं सुमनोहरम्। द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वसुभानुं व्रजेश्वरम्॥ १६॥
किशोरं सुन्दरवरं मणिदण्डकरं परम्। रत्नसिंहासनस्थञ्च रम्यभूषणभूषितम्॥
पक्वबिम्बाधरौष्ठञ्च सस्मितं सुमनोहरम्॥ १७॥
तं सम्भाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं द्वारमेव च। वज्रभित्तिस्थितैश्चित्रविचित्रैर्ज्वलितंपरम्॥
द्वारपालञ्च ददृशुर्देवभानुञ्च तत्र वै। चारुसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम्॥ १९॥
मयूरपुच्छचूड़ञ्च रत्नमालाविभूषितम्॥ २०॥
कदम्बपुष्पसंयुक्तं सद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥२१॥
नृपेन्द्रवरतुल्यञ्च दशलक्षप्रजान्वितम्। तं वेत्रपाणिं सम्भाष्य ययुर्देवा मुदान्विताः॥
विलक्षणं द्वारषट्कं चित्रराजिविराजितम्। वज्रभित्तियुग्मयुक्तं पुष्पमालाविभूषितम्॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः शक्रभानुं व्रजेश्वरम्॥ २३॥
नानालङ्कारशोभाढ्यं दशलक्षप्रजान्वितम्। श्रीखण्डपल्लवासक्तकपोलकुण्डलोज्ज्वलम्॥
सम्भाष्य तं सुरास्तूर्णं ययुर्द्वारञ्च सप्तमम्। नानाप्रकारचित्रञ्चपङ्क्त्याञ्चातिविलक्षणम्॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः रत्नभानुं हरेः प्रियम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पुष्पमालाविभूषितम्॥
भूषितं भूषणैः रम्यैर्मणिरत्नमनोहरैः। गोपैर्द्वादशलक्षैश्च राजेन्द्रमिव राजितम्॥ २७॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च स्मेराननसरोरुहम् । तं वेत्रहस्तं सम्भाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा ॥
विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम् । दौवारिकं ते ददृशुः सुपार्श्वं सुमनोहरम् ॥
सस्मितं सुन्दरवरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम् । बन्धुजीवाधरौष्ठञ्च रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥
सर्वालङ्कारशोभाढ्यं रत्नदण्डधरं वरम् । गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम् ॥
ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमद्वारमीप्सितम् ॥ ३२ ॥
वज्रसद्रत्नरचितचतुर्वेदिसमन्वितम् । अपूर्वचित्रयुक्तञ्च मालाजालैर्विराजितम् ॥३३ ॥
द्वारपालञ्च ददृशुः सुबलं ललिताकृतिम् । नानाभूषणभूषाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम् ॥३४॥
वज्रैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहरम् ।
तं दण्डहस्तं सभाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः ॥ ३५ ॥
विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मिताः सुराः ।
सर्वानिर्वचनीयञ्चाप्यदृष्टमश्रुतं मुने ॥ ३६ ॥
ददृशुर्द्वारपालञ्च सुदामानञ्च सुन्दरम् । अनिर्वचनीयरूपञ्च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥
गोपविंशतिलक्षाणां समूहैः परिवारितम् ॥ ३७ ॥
तं दण्डहस्तं दृष्ट्वैव जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः । द्वारमेकादशाख्यञ्च सुचित्रमद्भुतञ्च तत् ॥
द्वारपालञ्च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम् । राधिकापुत्रतुल्यञ्च पीतवस्त्रेण भूषितम् ॥
अमूल्यरत्नरचितरम्यसिंहासनस्थितम् । अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम् ॥४०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् । गण्डस्थलकपोलार्द्रसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥
सद्रत्नश्रेष्ठरचितविचित्रमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम् ।
कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् ॥ ४३ ॥
तं संभाष्य ययुर्द्वारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा । अमूल्यरत्नरचितवेदिकाभिः समन्वितम् ॥
सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमश्रुतं मुने । वज्रभित्तिस्थितं चित्रसुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥
द्वारे नियुक्ता ददृशुर्देवा गोपाङ्गना वराः । रूपयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिताः ॥४६॥
पीतवस्त्रपरीधानाः कवरीभारशोभिताः ।

सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ॥ ४७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिता । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ॥ ४८ ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिताः । पीनश्रोणिभरा नम्रा नितम्बभारपीड़िताः ॥४६
गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठा श्रेष्ठा हरेरपि । गोपीनां कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्तेविस्मयंययुः
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने । ततश्च क्रमशो विप्र त्रिषु द्वारेषु तत्र वै ॥

गोपाङ्गनानां श्रेष्ठाश्च ददृशुः सुमनोहराः ।
वराणाञ्च वरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ॥ ५२ ॥
सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाः स्मृताः ।
भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्भिन्ननवयौवनाः ॥५३ ॥
एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा सुज्ञानादद्भुताश्रयम् ।
अदृश्यमतिरम्यञ्चाप्यनिरूप्यं विचक्षणैः ॥ ५४ ॥
तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः ।
राधिकाभ्यन्तरं द्वारं षोड़शाख्यं मनोहरम् ॥ ५५ ॥
सर्वासाञ्च विधानानां गोप्यं गोपाङ्गनागणैः ।
त्रयस्त्रिंशद्वयस्यानां वयस्यानिकरैर्मुने ॥ ५६ ॥

वेशानिर्वचनीयैश्च नानागुणसमन्वितैः । रूपयौवनसम्पन्नैः रत्नालङ्कारभूषितैः ॥५७॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः ॥ ५८ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः । प्रफुल्लमालतीजालैर्वक्षोमध्यस्थलोज्ज्वलैः ॥
शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखेन्दुभिः । पारिजातप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः ॥

सुरम्यकवरीभारैर्भूषणैर्भूषितैर्वरैः ॥ ६० ॥

पक्वबिम्बाधरोष्ठैश्च स्मेराननसरोरुहैः । पक्वदाड़िम्बबीजाभैः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः ॥

चारुचम्पकवर्णाभैर्म्मध्यस्थलकृशैर्मुने ॥ ६२ ॥

गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकाभिर्विराजितैः । खगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभाजुष्टाभिरेव च ॥
गजेन्द्रगण्डकठिनस्तनभारभरानतैः । पीनश्रोणिभरार्त्तैश्च मुकुन्दपदमानसैः ॥ ६४ ॥

निमेषरहिता देवा द्वारस्था ददृशुश्च ताः । सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम् ॥
हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ।
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः ॥ ६६ ॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् । तत्सम्पर्कैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥
दृष्ट्वा तत् परमाश्चर्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनोत्सुकमानसाः
ताः संभाष्य ययुः शीघ्रं पुलकाङ्कितविग्रहाः । भक्त्युद्रेकादश्रुपूर्णाः किञ्चिन्नम्रास्यकन्धराः
आरात्ते ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम् ।
मन्दिराणाञ्च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम् ॥ ७० ॥
अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम् । नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम् ॥७१॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् । मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः ॥
अमूल्यरत्नसाराणां कलसैर्भूषितं मुने । पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः ॥ ७३ ॥
मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥ ७४ ॥
शुक्लधान्यशुक्लपुष्पप्रबालफलतण्डुलैः । पूर्णदूर्वाक्षतैर्लाजैर्निर्म्मञ्छनविभूषितम् ॥ ७५ ॥
फलरत्नैरत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः । पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम् ।
प्रसूनाक्तैर्गन्धवहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥ ७६ ॥
सर्वानिर्वचनीयञ्च यद्द्रव्यमनिरूपितम् । ब्रह्माण्डदुर्लभं यद्यद्वस्तुभिस्तैर्विराजितम् ॥७७
रत्नशय्या सुललिता सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदा ।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥ ७८ ॥
कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद । अमूल्यानि च चारूणि तैस्तैरेव विभूषितम्
नानाप्रकारवाद्यानां कलनादनिनादितम् । स्वरयन्त्रैश्च वीणाभिर्गोपीसङ्गीतसुश्रुतम् ॥
मोहितं वाद्यशब्दैश्च मृदङ्गानाञ्च नारद ॥ ८१ ॥
गोपानां कृष्णतुल्यानां समूहैः परिवारितम् । राधासखीनां गोपीनां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्
राधाकृष्णगुणोद्रेकपदसङ्गीतसुश्रुतम् । एवमभ्यन्तरं दृष्ट्वा बभूवुर्विस्मिताः सुराः ॥८३॥
शुश्रुवुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् । तत्र तस्थुः सुराः सर्वे त्वनैकतानमानसाः ॥८४॥

रत्नसिंहासनं रम्यं ददृशुस्त्रिदशेश्वराः ।
धनुःशतप्रमाणञ्च परितो मण्डलाकृतिम् ॥ ८५ ॥
सद्रत्नक्षुद्रकलससमूहैश्च समन्वितम् । चित्रपुत्तलिकापुष्पचित्रकाननभूषितम् ॥ ८६ ॥
तत्र तेजःसमूहञ्च सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । प्रभया ज्वलितं ब्रह्मन्नाश्चर्य्यं महदद्भुतम् ॥८७॥
सप्ततालप्रमाणं तद् व्याप्तमूर्दुर्ध्वं समन्ततः । तेजोमुष्टञ्च सर्वेषां व्याप्ताग्निविराजितम् ॥
सर्वव्यापि सर्ववीजं चक्षूरोधकरं परम् । दृष्ट्वा तेजःस्वरूपञ्चतेदेवाध्यानतत्पराः ॥८६॥
प्रणेमुः परया भक्त्या भक्तिनम्रास्यकन्धराः । परमानन्दसंयोगादश्रुपूर्णविलोचनाः ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः ॥ ६० ॥
नत्वा तेजःस्वरूपञ्च तमीशं त्रिदशेश्वराः । तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ता प्रतस्थुस्तेजसः पुरः
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव सम्पुटाञ्जलिः । दक्षिणेशङ्करं कृत्वावामे धर्म्मञ्च नारद ॥
भक्त्युद्रेकात् प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः । परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानाञ्च कारणम् । कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥६४॥
मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ।
समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ६५ ॥
स्थितंसर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यञ्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ६६॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्मज्योतीरूपं सनातनम् । साकारञ्च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
त्वमनिर्वचनीयञ्च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयंसर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥६८॥
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । कलया ते सुराः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ॥
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्ववीजमवीजकम् ।
सर्वान्तःकरणन्तच्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०० ॥
लक्ष्यं यद्गुणरूपञ्च वर्णनीयं विचक्षणैः । किं वर्णयामि लक्षन्ते तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियवदतीन्द्रियम् । यदसाक्षि सर्वसाक्षितेजोरूपंनमाम्यहम्॥१०२॥
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनंयद्भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०३॥

वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम्।
वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम्॥ १०४॥
सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत्। सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
अहंविधाताजगतांवेदानां जनकःस्वयम्। पाताधर्मोहरोहर्त्तास्तोतुंशक्तोनकोऽपियत्॥
सेवया तव धर्मोऽयं रक्षिताश्च रक्षति। तवाज्ञयाच संहर्त्ता त्वया काले निरूपिते॥
निषेकलिपिकर्त्ताहं त्वत्पादाम्भोजसेवया। कर्मिणां फलदाता च त्वद्भक्तानाञ्च न प्रभुः
ब्रह्माण्डे विम्बसदृशा भूत्वा विषयिणो वयम्।
एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः॥ १०६॥
यथानसंख्या रेणूनांतथा तेषामणीयसाम्। सर्वेपांजनकश्चेशोयस्त्वां स्तोतुञ्चकःक्षमः
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम्। यस्यैव महतो विष्णोः षोड़शांशस्तवैव सः॥
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमोप्सितम्। नभक्ता दास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम्
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम्। मन्त्रध्यानानुरूञ्च दर्शयास्माकमीश्वर॥ ११३॥
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम्॥ ११४॥
मयूरपुच्छचूड़ञ्च मालतीजालमण्डितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्च्चितम्॥ ११५॥
अमूल्यरत्नसाराणांभूषणैश्चविभूषितम्। अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥ ११६॥
शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोष्यास्यचन्द्रकम्। पक्कबिम्बसमानेन ह्यधरौष्ठेन राजितम्।
पक्कदाड़िम्बवीजाभदन्तपङ्क्तिमनोरमम्॥ ११७॥
केलिकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम्।
गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधावक्षःस्थलस्थितम्॥ ११८॥
एवं वाञ्छास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम्॥ ११६॥
इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः। एवं स्तोत्रेणतुष्टाव धर्मोऽपिशङ्करः स्वयम्
ननाम भूयोभूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः॥ १२०॥
तिष्ठन्तोऽपिपुनःस्तोत्रं प्रचक्रुस्त्रिदशेश्वराः। व्याप्तास्तत्रामराःसर्वे श्रीकृष्णतेजसा मुने

स्तवराजमिमं नित्यं धर्मेशब्रह्मभिः कृतम्। पूजाकाले हरेरेव भक्तियुक्तश्च यः पठेत्॥
सुदुर्लभां दृढां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥ १२३
सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च । अणिमादिकसिद्धिश्च सालोक्यादिचतुष्टयम्
इहैवविष्णुतुल्यश्चविख्यातःपूजितोध्रुवम्।वाक्सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्चभवेत्तस्यविनिश्चितम्
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत्। पुत्रश्चविद्या कविता निश्चला कमला तथा
पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः ।
कीर्त्तिश्च चिरकालीनाप्यन्ते कृष्णान्तिकस्थितिः ॥ १२७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
ब्रह्मकृत-कृष्णस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मादिकृत-लक्ष्मीनारायणस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः ।
ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ॥ १ ॥
सजलाम्भोदवर्णाभं सस्मितं सुमनोहरम् । परमाह्लादकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम्॥२॥
गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम् । सद्रत्ननूपुराभ्याञ्च चरणाम्भोजराजितम्
वह्निशुद्धहरिद्राभवस्त्रामूल्यविराजितम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितम् ४
विनोदमुरलीयुक्तविम्बाधरमनोहरम् । शुभेक्षणेन पश्यन्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ५ ॥
सद्रत्नगुटिकायुक्तकवाटोरःस्थलोज्ज्वलम् । कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वलम्
अत्र तेजसि चार्वङ्गीं ददृशू राधिकाभिधाम् ।
पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥ ७ ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥ ८ ॥
शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनोहराम् । वन्धुजीवप्रभामोष्याधरौष्ठरुचिराम्बराम् ॥
रणन्मञ्जीरयुग्मेन पादाम्बुजविराजिताम् । मणीन्द्राणां प्रभामोषिनखराजीविराजिताम्
कुङ्कुमाभासमाच्छाद्य पादाधोरागभूपिताम् ।
अमूल्यरत्नसाराणां पाशकश्रेणिशोभिताम् ॥ ११ ॥
हुताशनविशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम् ।महामणीन्द्रसाराणांकिङ्किणीमध्यसंयुताम्
सद्रत्नहारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम् । रत्नेन्द्ररचितोत्कृष्टकपोलोज्ज्वलकुण्डलाम् ।
कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूषिताम् ॥ १३ ॥
खगेन्द्रचञ्चुनासाग्रे गजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । मालतीमालया वक्रां विभ्रतीं कवरीं तथा
मणीनां कौस्तुभेन्द्राणां वक्षःस्थलसुशोभिताम् ।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलां वराम् ॥१५॥
रत्नाङ्गुरीयनिकरैः कराङ्गुलिविभूषिताम् ॥ १६ ॥
दिव्यशङ्खविकारैश्च चित्ररागविभूषितैः । सूक्ष्मसूत्रकृतै रम्यैर्भूषितां शङ्खभूषणैः ॥ १७ ॥
सद्रत्नसारगुटिकारक्तसूत्राक्तशोभिताम् । प्रतप्तस्वर्णवर्णाभामाच्छाद्य चारुविग्रहाम् ॥
नितम्बश्रोणिललितां स्तनपीनोन्नतां तथा । भूषितां भूषणैः सर्वैस्तत्सौन्दर्य्येण भूषितैः
विस्मितास्त्रिदशाः सर्वे दृष्ट्वेशमीश्वरीं वराम् । तुष्टुवुस्ते सुराः सर्वे पूर्णसर्वमनोरथाः

ब्रह्मोवाच ।

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे ।
भवनमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढ़सुपरिपक्वां देहि भक्तिञ्च दास्यम् ॥ २१ ॥

शङ्कर उवाच ।

भवजलधिनिमग्नं चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे ।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥ २२ ॥

धर्म्म उवाच ।

तव निजजनसार्द्धं सङ्गमो मे सदैव भवतु विषयवन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः ।

तव चरणसरोजस्थानदानैकहेतुर्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥ २३ ॥

नारायण उवाच ।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णैकमानसाः । कामपूरस्य पुरतस्तस्थुस्ते राधिकापतेः २४॥

सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः । हितं तथ्यञ्च वचनं स्मेराननसरोरुहः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्वागतं स्वागतं तुभ्यं मदीये हि पुरेऽधुना । शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तमसाम्प्रतम्

निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते ।

स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ।

युष्माकं यदभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम् ॥ २७ ॥

शुभाशुभञ्च यत् कर्म काले खलु भविष्यति । महत् क्षुद्रञ्चयत् कर्म्मसर्वं कालकृतंसुराः

स्वस्वकाले च तरवः फलिनः पुष्पिणः सदा ।

परिपक्वफलाः काले कालेऽपक्वफलान्विताः ॥ २६ ॥

सुखं दुःखं विपत् सम्पत् शोकश्चिन्ता शुभाशुभम् ।

स्वकर्म्मफलनिष्ठञ्च सर्वं काले ह्युपस्थितम् ॥ ३० ॥

न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये ।

काले कार्य्यवशात् सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः ॥ ३१ ॥

राजानो मनवः पृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै । स्वकर्म्मफलपाकेन सर्वं कालवशङ्गताः

युष्माकमधुनात्रैव गोलोके यत्क्षणं गतम् । पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्तमन्वन्तरं गतम् ॥

इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना । कालचक्रं भ्रमत्येवं मदीयञ्च दिवानिशम्॥

इन्द्राश्च मनवो भूपाः सर्वे कालवशङ्गताः । कीर्त्तिःपृथ्वी पुण्यमघं कथामात्रावशेषितम्

अधुनापि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः । वभूवुर्वहवो भूमौ महावलपराक्रमाः ३६

सर्वे यास्यन्ति कालेन ग्रासं कालान्तकस्य च ॥ ३७ ॥

उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम् । वह्निर्दहति सूर्य्यश्च तपत्येव ममाज्ञया

व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु । वर्षन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाज्ञया३८

ब्रह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः । ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः
ये सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वधर्म्मकर्म्मतत्पराः । मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्म्मनिर्मूलकारकाः

देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च ।
संहारकर्त्तुः संहर्त्ता पातुः पाता परात्परः ॥ ४२ ॥
ममाज्ञयाऽयं संहर्त्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः ।
त्वं विश्वसृक् सृष्टिहेतोः पाता धर्म्मस्य रक्षणात् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः । स्वकर्म्मफलदाताहं कर्म्मनिर्मूलकारकः ॥ ४४ ॥

अहं यान् संहरिष्यामि कस्तेषामपि रक्षिता ।
यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि च ॥ ४५ ॥

सर्वेषामपि संहर्त्ता स्रष्टा पाताहमेव च । नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम् ॥
भक्ता ममानुगा नित्यं मत्पादार्चनतत्पराः । अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे ॥
सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः । न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः

ततो विपश्चितः सर्वे दास्यं वाञ्छन्ति नो वरम् ।
ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च वञ्चिताः ॥ ४६ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिभयञ्च यमताड़ना । अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानाञ्च कर्मिणाम्
भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्म्मणः । अहं धुनोमि तेषाञ्च कर्म्मभोगांश्चनिश्चितम्

अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च ।
ध्यायन्ते ये च मां नित्यं तान् स्मरामि दिवानिशम् ॥ ५२ ॥

चक्रं सुदर्शनं नाम षोड़शारं सुतीक्ष्णकम् । यत्तेजःषोड़शांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु
भक्तान्तिके तु तच्चक्रं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम् । तथापिनप्रतीतिर्मे यामि तेषाञ्चसन्निधिम्

न मे स्वास्थ्यञ्च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके ।
यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम् ॥ ५५ ॥
प्राणेभ्यः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम् ।
यूयं प्राणाधिका लक्ष्मीर्न मे भक्तात् पराः स्मृताः ॥ ५६ ॥

भक्तदत्तञ्च यद्द्रव्यं भक्त्याऽश्नामिसुरेश्वराः । अभक्तदत्तंनाश्नामिध्रुवंभुङ्क्ते बलिःस्वयम्

स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ते मामहर्निशम् ।

युष्मान् विहाय तान्नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम् ॥ ५८ ॥

द्वेष्टारो ये च भक्तानां ब्राह्मणानांगवामपि । क्रतूनांदेवतानाञ्च हिंसां कुर्वन्ति निश्चितम्

तदाऽचिरं तेनश्यन्तियथा वह्नौतृणानि च । न कोऽपि रक्षितातेषां मयि हन्तर्य्युपस्थिते

यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम् ।

यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥ ६१ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाहूय गोपिकाः ।

उवाच मधुरं सत्यं वाक्यं तत्समयोचितम् ॥ ६२ ॥

गोपा गोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम् । वृषभानुगृहं क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ॥

वृषभानुप्रिया साध्वी नाम्ना गोपीकलावती । सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योषिताम् ।

पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या व्रजे गृहे ॥ ६५ ॥

तस्यां लभस्व त्वं जन्म शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज । त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ६६

त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम् ।

न किञ्चिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गः सर्वदैव हि ॥ ६७ ॥

श्रुत्वैवं राधिका तत्र रुरोद प्रेमविह्वला । पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं हरेर्मुने ॥६८॥

जनुर्लेभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले । गोपानामुत्तमानाञ्च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम् । मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥७०॥

श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः । सूक्ष्मकाषायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम् ॥७१॥

सद्रत्नकलसानाञ्च सहस्रेण सुशोभितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥

पार्षद्प्रवरैर्युक्तं शतकुम्भमयं शुभम् । तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥ ७३ ॥

तत्रस्थं पुरुषं श्यामसुन्दरं कमनीयकम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥७४॥

किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥७५॥

चतुर्भुजं स्मेरवक्त्रं भक्तानुग्रहकातरम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां सारभूषणभूषितम् ॥७६॥

देवीं तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम् ।
वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकातराम् ।
विद्याधिष्ठातृदेवीञ्च ज्ञानरूपां सरस्वतीम् ॥ ७७ ॥
अपरां दक्षिणे रम्यां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम् ॥ ७८ ॥

सद्रत्नकुण्डलाभ्याञ्च सुकपोलविराजिताम् । अमूल्यरत्नखचितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम्
अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम् । सद्रत्नसारमञ्जीरकलशब्दसमन्विताम् ॥ ८० ॥

पारिजातप्रसूनानां माल्यैर्वक्षःस्थलोज्ज्वलाम् ।
प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकवरीं शुभाम् ॥ ८१ ॥
शरच्चन्द्रप्रभामोषिमुखचारुविभूषिताम् ॥ ८२ ॥

कस्तूरीविन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम् । सुचारुकज्जलासक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् ॥
सहस्रदलसंयुक्तलीलाकमलसंयुताम् । नारायणञ्च पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥८४॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं सस्त्रीकः सह पार्षदैः । जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम्
देवा गोपाश्च गोप्यश्चोत्तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा । सामवेदोक्तस्तोत्रेणकृतेनचसुरर्षिभिः
गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे । दृष्ट्वा च परमाश्चर्य्यंते सर्वे विस्मयं ययुः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भमयाद्रथात् । अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥

आजगाम चतुर्बाहुः वनमालाविभूषितः ।
पीताम्बरधरः श्रीमान् सस्मितः सुमनोहरः ।
सर्वालङ्कारशोभाढ्यः सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ८६ ॥

उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः प्रणता मुने । स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे ॥९०
ते दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं विस्मयं परमं ययुः । संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥९१॥
एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः । शुद्धस्फटिकसङ्काशो नाम्नासङ्कर्षणः स्मृतः

सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्य्यसमप्रभः ॥ ९२ ॥

आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम्। स चागत्य नतस्कन्धस्तुष्टाव[illegible]परम्

सहस्रमूर्द्धभिर्भक्त्या प्रणनाम च नारद ॥ ९३ ॥

आवाञ्च धर्मपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ ।

लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः ॥ ९४ ॥

ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै ॥ ९५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम् । स्वर्णसारविकारञ्च नानारत्नपरिच्छदम् ॥ ९६ ॥

मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । श्वेचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः ॥ ९७ ॥

सद्रत्नसारकलससमूहेन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥

सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायि मनोरमम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोषकरंपरम् ॥ ९९ ॥

मुक्तामाणिक्यवज्राणां समूहेन समुज्ज्वलम् ।

चित्रपुत्तलिकापुष्पसरःकाननचित्रितम् ॥ १०० ॥

देवानां दानवानाञ्च रथानां प्रवरं मुने ।

यत्नेन शङ्करप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्म्मणा ॥ १०१ ॥

पञ्चाशद्योजनोद्‌र्ध्वञ्च चतुर्योजनविस्तृतम् ।

रतितल्पसमायुक्तैः शोभितं शतमन्दिरैः ॥ १०२ ॥

तत्रस्थां ददृशुर्देवीं रत्नलङ्कारभूषिताम् । प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोषकरद्युतिम् ॥

तेजःस्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ १०३ ॥

सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥

गण्डस्थलकपोलाभ्यां सद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम् ।

रत्नेन्द्रसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ १०५ ॥

मणीन्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभनाम् । सद्रत्नसारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम् ॥ १०६ ॥

मन्दारपुष्पमालाभिरुरःस्थलसमुज्ज्वलाम् । नितम्बकठिनश्रोणिपीनोन्नतकुचानताम् ॥

शरत्सुधाकराभासविनिन्दास्यमनोहराम् । कज्ज्वलोज्ज्वलरेखाक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीचित्रपत्रकभूषिताम् । नवीनबन्धुवीजाभामोष्ठाधरसुशोभिताम् १०६

मुक्तापङ्क्तिप्रभामोषिदन्तराजिविराजिताम् । प्रफुल्लमालतीमालासंसक्तकवरीं वराम् ॥
पक्षीन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् ॥ १११ ॥
वह्निशुद्धांशुकानातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् । सिंहपृष्ठसमारूढ़ां सुताभ्यां सहितां मुदा
अवरुह्य रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च । सुताभ्यां सह सा देवी समुवास वरासने ॥
गणेशः कार्त्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् । ननाम शङ्करं धर्म्ममनन्तं कमलोद्भवम् ॥
उत्तस्थुरारात्ते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ । आशिषञ्च ददुर्देवा वासयामासुः सन्निधौ
ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥ ११५ ॥
तस्थुर्देवाः सभामध्ये देवी च पुरतो हरेः । गोपागोप्यश्च बहुशो बभूवुर्विस्मयाकुलाः ॥
उवाच कमलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः । त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारत्नसमन्वितम् ॥
वैदर्भ्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि ।
तव पाणिं ग्रहीष्यामि गत्वाहं कुण्डिनं सति ॥ ११८ ॥
ता देव्यःपार्वतींदृष्ट्वासमुत्थाप्यत्वरान्विताः । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्
विप्रेन्द्र पार्वती लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवताः । तस्थुरेकासने तत्र सम्भाष्य च यथोचितम्
ताश्च सम्भाषयामासुः सम्प्रीत्या गोपकन्यकाः ।
ऊषुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासाञ्च सन्निधौ ॥ १२१ ॥
श्रीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुवाच जगत्पतिः । देवि त्वमंशरूपेण व्रज नन्दव्रजं शुभे ॥
उदरे च यशोदायाः कल्याणि नन्दरेतसा । लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥
ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले । कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु वनेषु च ॥
तत्राधिष्ठातृदेवीं त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः । द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्चमुदान्विताः
तव भूस्पर्शमात्रेण सूतिकामन्दिरेशिवे । पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति
कंसदर्शनमात्रेणागमिष्यसि शिवान्तिकम् ।
भारावतारणं कृत्वा गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥ १२७ ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च षड़ाननम् । अंशरूपेण वत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम्
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर । अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम् ॥

भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम् ॥ १२९ ॥

इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्थौ सिंहासने वरे। तस्थुर्देवाश्च देव्यश्च गोपागोप्यश्चनारद

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समुत्तस्थौ हरेः पुरः । पुटाञ्जलिर्जगन्नाथमुवाच विनयान्वितः ॥

ब्रह्मोवाच ।

अवधानं कुरु विभो किङ्करस्य निवेदने । आज्ञां कुरु महाभाग कस्य कुत्र स्थलं भुवि

भर्त्ता पातोद्धारकर्त्ता सेवकानां प्रभुः सदा । स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराज्ञां करोति यः

के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया । कुत्र कस्याभिधेयश्च विषयश्च महीतले ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः । यस्य यत्रावकाशश्च कथयामि विधानतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

कामदेवो रौक्मिणेयो रती मायावतीसती । शम्बरस्यगृहे या च छायारूपेणसंस्थिता

त्वं तस्य पुत्रो भविता नाम्नानिरुद्ध एव च । भारती शोणितपुरे वाणपुत्री भविष्यति

अनन्तो देवकीगर्भाद्रोहिणेयो जगत्पतिः। मायया गर्भसङ्कर्षान्नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः॥

कालिन्दी सूर्य्यतनया गङ्गांशेन महीतले । अर्द्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ॥

सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाग्नजिती सती ।

वसुन्धरा सत्यभामा शैव्या देवी सरस्वती ॥ १४० ॥

रोहिणी मित्रविन्दा च भविताराजकन्यका । सूर्य्यपत्नीरत्नमालाकलया च जगद्गुरोः

स्वाहांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव ।

दुर्गार्द्धांशा जाम्बवती महिषीणां दश स्मृताः ॥ १४२ ॥

अर्द्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम् । कैलासे शङ्कराज्ञा च बभूव पार्वतीं प्रति ॥

कैलाशगामिनंविष्णुंश्वेतद्वीपनिवासिनम् । आलिङ्गनंदेहिकान्ते नास्ति दोषोममाज्ञया

ब्रह्मोवाच ।

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते । विष्णोःसम्भाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः

श्रीकृष्ण उवाच ।

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः । श्वेतद्वीपात् स्वयं विष्णुर्जगाम शङ्करस्तवात्

दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवास सुखासने । सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं वरम् । सुन्दरं श्यामरूपञ्च नवयौवनसंयुतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१४९॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च पार्षदैः परिवेष्टितम् ।
वन्दितञ्च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम् ॥ १५० ॥

तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा । मुखमाच्छादयामास वाससा व्रीड़या सती
अतीवसुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः । ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती १५२ ॥
परमाद्भुतवेशञ्च सस्मिता वक्रचक्षुषा । सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता ॥ १५३ ॥
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपरिघधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥१५४
क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्यञ्च द्विलोचनम् । चतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम् ॥
एकं ब्रह्ममूर्त्तिभेदमभेदं वा निरूपितम् । दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया ॥
मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ताभ्यामौत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सत्वगुणात्मकः
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा । मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ।
दुर्गान्तराभिप्रायञ्च बुबुधे शङ्करः स्वयम् । सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः ॥
दुर्गाञ्च निर्ज्जनीभूय तामुवाच हरः स्वयम् । बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम्

शङ्कर उवाच ।

निवेदनं मदीयञ्च निबोध शैलकन्यके । श्रृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥ १६१ ॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकञ्च सनातनम् । देवको भेदरहितो विषयान्मूर्त्तिभेदकः ॥
सर्वेषां प्रकृतिर्ह्येका माता त्वं सर्वरूपिणी । स्वयम्भुवश्च वाणीत्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि
मम वक्षसि दुर्गात्वं निबोधाध्यात्मकं सति । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी

श्रीपार्वत्युवाच ।

दीनबन्धो कृपासिन्धोतव मामकृपा कथम् । सुचिरंतपसालब्धो नाथस्त्वंजगतां मया
मादृशीं किङ्करींनाथ न परित्यक्तुमर्हसि । अयोग्यमीदृशं वाक्यं मां मा वद महेश्वर ॥
तव वाक्यं महादेव पालयिष्यामि सर्वथा । देहान्तरे जन्मलब्ध्वा भजिष्यामिहरिंहर ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः । उच्चैर्जहासाभयदः पार्वत्यै चाभयं ददौ ॥
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्ववद्गृहे । लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्ववती सती

ब्रह्मोवाच ।

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम् । ललाभ भारते जन्मनिन्दितेभाल्लुकेगृहे

श्रीकृष्ण उवाच ।

रामावतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम् । हिमालयांशो भल्लूकोजाम्ववान्रामकिङ्करः
रामस्य वरदानेन चिरजीवी श्रिया युतः । कोटिसिंहवलाधारः क्रियते च महावलः ॥
पितुरंशगृहं गत्वा जगामांशेन भूतलम् । एवं पूर्वस्य वृत्तान्तं कथितं शृणु मन्मुखात् ॥
सर्वेषाञ्च सुराणाञ्चैवांशा गच्छन्तु भूतलम् । नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति रणेविधे
कमलाकलया सर्वा भवन्तु नृपकन्यकाः । मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणाञ्च षोड़श
धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । वायोरंशाद्भीमसेनो वज्र्यंशादर्जुनः स्वयम् ॥
नकुलः सहदेवश्च स्ववैद्यांशसमुद्भवः । सूर्य्यांशः कर्णवीरश्च विदुरः शमनः स्वयम् ॥
दुर्य्योधनः कलेरंशः समुद्रांशश्चशान्तनुः । अश्वत्थामा शङ्करांशो द्रोणोवह्न्यंशसम्भवः
चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्चभीष्मश्चैवस्वयंवसुः । वासुदेवःकश्यपांशोऽप्यदित्यंशाचदेवकी
वस्वंशो नन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी । द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥
हुताशनांशो भगवान् धृष्टद्युम्नो महावलः । सुभद्राशतरूपांशा देवकीगर्भसम्भवा॥१८१॥
देवा गच्छन्तु पृथिवीमंशेन भारहारकाः । कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम् ॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद । सर्वं विवरणं श्रुत्वा तत्रोवास प्रजापतिः ॥

कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया ।
पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद ॥ १८४ ॥

गोप्यो गोपाश्च पुरतो राधा वक्षःस्थलस्थिता । एतस्मिन्नन्तरेसाच तमुवाच व्रजेश्वरी

राधिकोवाच ।

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किङ्करीवचनं प्रभो । प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः ॥

चक्षुर्निमीलनङ्कर्त्तुमशक्ता तव दर्शने ।

त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥ १८७ ॥

कतिकालान्तरं बन्धो मेलनं मे त्वया सह । प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले।
निमेषञ्च युगशतंभवितामे त्वयाविना । कं द्रक्ष्यामि क्वयास्यामि कोवामांपालयिष्यति

मातरं पितरं बन्धुं भ्रातरं भगिनीं सुतम् ।
त्वया विनाहं प्राणेश चिन्तयामि न कं क्षणम् ॥ १९० ॥

करोषि माययाच्छन्नां माञ्चेन्मायेशभूतले । विस्मृतां विभवं दत्त्वा सत्यं मे शपथं कुरु
अणुक्षणं मम मनोमधुपो मधुसूदन । करोतु भ्रमणं नित्यं समाध्वीके पदाम्बुजे॥१९२॥

यत्र तत्र च यस्यां वा योनौ जन्म भवत्विदम् ।
त्वं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि वाञ्छितम् ॥ १९३ ॥

कृष्णस्त्वं राधिकाहञ्च प्रेमसौभाग्यमावयोः । न विस्मरामि भूमौच देहिमह्यं परंवरम्
यथा तन्वा सह प्राणाः शरीरं छायया सह । तथावयोर्जन्म यातु देहि मह्यं वरं विभो
चक्षुर्निमेषविच्छेदो भविता नावयोर्भुवि । तत्रागत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं वरं प्रभो ॥
मम प्राणैस्तव तनुः केन वा वार्य्यते हरेः । आत्मना मुरली पादौ मनसा वापिनिर्मितौ

स्त्रियः कतिविधाः सन्ति पुरुषा वा पुरुष्टुतः ।
नास्ति कुत्रापि कान्ता वा कान्तासक्ता च मादृशी ॥ १९८ ॥

तवदेहार्द्धभागेनकेनवाहं विनिर्मिता । इदमेवावयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः ॥१९९॥
ममात्ममानसःप्राणांस्त्वयिसंस्थाप्यकेनवा । तवात्ममानसःप्राणामयिवासंस्थिताअपि
अतो निमेषविरहादात्मनो विक्लवं मनः । प्रदग्धं सन्ततं प्राणा दहन्ति विरहश्रुतौ ॥२०१

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैव सुरसंसदि ।
भूयोभूयो रुरोदोच्चैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजे ॥ २०२ ॥
क्रोड़े कृत्वा च तां कृष्णो मुखं संमृज्य वाससा ।
बोधयामास विविधं सत्यं तथ्यं हितं वचः ॥ २०३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

आध्यात्मिकंपरंयोगंशोकच्छेदनकर्त्तनम् । शृणुदेविप्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम्

आधाराधेययोःसर्वंब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि । आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधेयस्यसम्भवः
फलाधारश्च पुष्पश्च पुष्पाधारश्चपल्लवम् । स्कन्धश्च पल्लवाधारःस्कन्धाधारस्तरुःस्वयम्
वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च बीजशक्तिसमन्वितः । अङ्कुरेवाङ्कुराधारश्चाण्ड्याधारो वसुन्धरा ॥
शेषोवसुन्धराधारःशेषाधारो हि कच्छपः । वायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेवच

ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि शाश्वतम् ।
त्वञ्च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ २०६ ॥

त्वं शरीरस्वरूपासि त्रिगुणाधाररूपिणी । तवात्माहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह ॥
पुरुषाद्वीर्य्यमुत्पन्नं वीर्य्यात् सन्ततिरेव च । तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला॥
विना देहेन कुत्रात्मा क्व शरीरंविनात्मना । प्राधान्यञ्च द्वयोर्देवि विना द्वाभ्यांकुतोभवः
न कुत्राप्यावयोर्भेदो राधे संसारजीवयोः । यत्रात्मा तत्र देहश्च न भेदो विनयेन किम्

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने ।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः ॥ २१४ ॥

धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोः॥

मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना ।
त्वया विना भवं कर्त्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम् ॥ २१६ ॥

विना मृदा घटं कर्त्तुं यथा नालंकुलालकः । विना स्वर्णंस्वर्णकारोऽलङ्कारंकर्त्तुमक्षमः

स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम् ।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ॥ २१८ ॥

मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला । ब्रह्मेशानन्तधर्माश्च त्वंमे प्राणाधिका प्रिया
समीपस्था इमेसर्वेसुरादेव्यश्चराधिके । एतेभ्योऽप्यधिकानोचेत्कथं वक्षःस्थलस्थिता

त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिञ्च निष्फलां सति ।
विहाय शङ्कां निःशङ्कं वृषभानुगृहं व्रज ॥ २२१ ॥

कलावत्याश्च जठरे मासानां नव सुन्दरि । वायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया ॥
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले । आत्मरूपं परित्यज्य शिशुरूपं विधाय च २२३

वायुनिःसरणे काले कलावत्याः समीपतः। भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषिध्रुवम्
अयोनिसम्भवा त्वञ्च भविता गोकुले सति। अयोनिसम्भवोऽहञ्च नावयोर्गर्भसंस्थितिः
भूमिष्ठमात्रा तातो मां गोकुलं प्रापयिष्यति। तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम्
यशोदामन्दिरे मांञ्च सानन्दं नन्दनन्दनम्। नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि समाश्लेषणपूर्वकम्
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके। स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने
त्रिःसप्तशतकोटिभिर्गोपिभिर्गोकुलं व्रज। त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च॥

संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोलोक एव च।
समाश्वास्य प्रबोधैश्च मितया च सुधागिरा॥ २३०॥
अहमसंख्यान् गोपालान् संस्थाप्यात्रैव राधिके।
वसुदेवाश्रयं पश्चाद् यास्यामि मथुरां पुरीम्॥ २३१॥

व्रजं व्रजन्तु क्रीड़ार्थं मम सङ्गे प्रियात् प्रियाः। वल्लवानां गृहे जन्म लभन्तु गोपकोटयः
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। ऊचुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च तत्र वै॥
ब्रह्मेशधर्मशेषाश्च श्रीकृष्णं तं परात्परम्। शिवापद्मासरस्वत्यस्तुष्टुवुः परया मुदा॥
भक्त्या गोपाश्च गोप्यश्च विरहज्वरकातरा। तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः

प्राणाधिकं प्रियं कान्तं राधा पूर्णमनोरथा।
परितुष्टाव भक्त्या च विरहज्वरकातरा॥ २३६॥

साश्रुपूर्णातिदीनाञ्च दृष्ट्वा राधां भयाकुलाम्। प्रबोधवचनं सत्यमुवाच तां हरिःस्वयम्

श्रीकृष्ण उवाच।

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज।
यथा त्वञ्च तथाहञ्च का चिन्ता ते मयि स्थिते।
किन्तु ते कथयिष्यामि किञ्चिदेवास्त्यमङ्गलम्॥ २३८॥

वर्षाणां शतकं पूर्णं त्वद्विच्छेदो मया सह। श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि!॥
भविष्यत्येव मम च मथुरागमनं ततः॥ २४०॥
तत्र भारावतरणं पित्रोर्वन्धनमोक्षणम्। मालाकारतन्तुवायकुब्जिकानाञ्च मोक्षणम्॥

घातयित्वा च यवनं मुचकुन्दस्य मोक्षणम् । द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम्
उद्वाहं राजकन्यानां सहस्राणाञ्च षोड़श । दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां दमनन्तथा ॥
मित्रोपकरणञ्चैव वाराणस्याश्च दाहनम् । हरस्य जृम्भणं तत्र बाणस्य भुजकर्त्तनम् ॥
पारिजातस्य हरणं यद् यत् कर्मान्यदेव च । गमनं तीर्थयात्रायां मुनिसङ्घप्रदर्शनम् ॥
सम्भाषणञ्च बन्धूनां यज्ञसम्पादनं पितुः । शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्द्धं प्रदर्शनम् ॥

करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानाञ्च दर्शनम् ।
तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह ॥ २४७ ॥

दिवानिशमविच्छेदो मया सार्द्धमतःपरम् । भविष्यति त्वया सार्द्धं पुनरागमनं व्रजे ॥
कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति । नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वयासह

गतस्य द्वारकां त्वत्तो मम नारायणांशस्य(णस्यच) ।
शतवर्षान्तरे साध्यान्येतान्येव सुनिश्चितम् ॥२५० ॥

भविष्यति पुनस्तत्र वने वासस्त्वया सह । पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसम्मार्जनंपरम्
कृत्वा भारावतरणं पुनरागमनं मम । त्वया सहापि गोलोकं गोपैर्गोपीभिरेव च ॥
ममनारायणांशस्य वाण्याच पद्मया सह । वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः॥२५३
श्वेतद्वीपे धर्म्मगेहमंशानाञ्च भविष्यति । देवानाञ्चैव देवीनामंशा यास्यन्ति चाक्षयम् ॥

पुनः संस्थितिरत्रैव गोलोके मे त्वया सह ॥ २५४ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यञ्च शुभाशुभम् । मया निरूपितं यत्तत् कान्ते केन निवार्य्यते

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि ।
तस्थौ तस्थुः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः ॥२५६ ॥
उवाच श्रीहरिर्देवान् देवीश्च समयोचितम् ।
देवा गच्छत कार्य्यार्थं स्वालयं विषयोचितम् ॥ २५७ ॥

गच्छ पार्वति कैलासंसुताभ्यांस्वामिना सह । मयानियोजितंकर्म्मसर्वंकाले भविष्यति
भविता कलया जन्म सर्वेषाञ्च व्रजेश्वरि । क्षुद्राणाञ्चैव महतां देवं लम्बोदरं विना ॥
प्रणम्य श्रीहरिं देवाः स्वालयं प्रययुर्मुदा । लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम्

हरिणा योजितं कर्म्म कर्त्तुं व्यग्रा महीं ययुः ।
भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥ २६१ ॥
उवाच राधिकां कृष्णो वृषभानुगृहं व्रज । गोपगोपीसमूहैश्च सह पूर्वनिरूपितैः २६२
अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालये प्रिये ।
पश्चात् कंसभयव्याजाद् गोकुलं तव सन्निधिम् ॥ २६३ ॥
राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपङ्कजलोचना । भृशं रुरोद पुरतः प्रेमविच्छेदकातरा॥२६४॥
स्थायं स्थायं क्वचित् यान्ती गत्वा गत्वा पुनः पुनः ।
पुनः पुनः समागत्य दर्शं दर्शं हरेर्मुखम् ॥ २६५ ॥
पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां निमेषरहिता सती । शरत्पार्वणचन्द्राभसुधापूर्णं प्रभोर्मुखम् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा परमेश्वरी । प्रणम्य सप्तधा चैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः ॥
आजग्मुर्गोपिकानाञ्च त्रिःसप्तशतकोटयः । आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः
गोपानां गोपिकानाञ्चसमूहैःसह राधिका । पुनः प्रणम्य तं कृष्णं तत्र तस्थौ च नारद!
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिर्गोपीभिः सह सुन्दरी । गोपानाञ्च समूहैस्तु प्रणम्य प्रययौ महीम्
हरिणा योजितं स्थानं प्रजग्मुर्नन्दगोकुलम् । वृषभानुगृहं राधा गोप्यो गोपगृहं ययुः
महीं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः ।
बभूव श्रीहरिः सद्यः पृथिवीगमनोन्मुखः ॥ २७२ ॥
सम्भाष्य गोपान् गोपीश्च नियोज्य स्वीयकर्म्मणि ।
मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः ॥ २७३ ॥
पूर्वं यद्यदपत्यञ्च देवकीवसुदेवयोः । बभूव सद्यस्तत् कंसः पुत्रषट्कं जघान ह २७४
शेषांशं सप्तमं गर्भं माया चाकृष्य गोकुले । निधाय रोहिणीगर्भे जगाम चाज्ञया हरेः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्म-
खण्डे श्रीराधाकृष्णसम्वादवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः

———

सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तस्यातिरिक्तं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम् । वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम् ॥
वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी । कोवा वसुर्देवकी वा विवाहश्च तयोर्वद
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रषट्कं सुदारुणः । कस्मिन् दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तद्वद

नारायण उवाच ।]

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी । पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ॥ ४ ॥
देवमीढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत् । यस्योद्भवे देवसङ्घो वादयामास दुन्दुभिम्॥
आनकश्च महाहृष्टो श्रीहरेर्जनकश्च तम् । सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम्॥६॥
आहुकस्य सुतः श्रीमान् यदुवंशसमुद्भवः । देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी

गर्गो यदुकुलाचार्य्यः सम्बन्धं वसुना सह ।
देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोचितम् ॥ ८ ॥

महासम्भृतसम्भारो वसुदेवाय सुक्षणे । उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥९॥
अश्वानाश्च सहस्राणि स्वर्णपात्राणि नारद । सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च ।मणिश्रेष्ठानि वज्राणि रत्नपात्राणि नारद

सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम् ।
त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठाश्च योषिताम् ॥ १२ ॥

रूपाधारां गुणाधारां सस्मितां वक्रलोचनाम् । नवसङ्गमयोग्याश्च प्रोद्भिन्नवयौवनाम्

तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानमकरोत्तदा ॥ १३ ॥
कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्म्मणि ।
तस्या रथसमीपेचागच्छत्कंसोऽपि तत्क्षणात् ॥ १४ ॥

कंसं संबोध्य गगने वाग् बभूवाशरीरिणी । कथं हृष्टोऽसिराजेन्द्र श्रृणु सत्यवचोहितम्

देवक्या अष्टमो गर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥ १५॥

श्रुत्वैवं देवकींकंसः खड्गहस्तो महाबलः । दैववाक्याद्भयात् कोपात् पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः

तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः । बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥

वसुदेव उवाच ।

राजनीतिं न जानासि श्रृणुमेवचनं हितम् । यशस्करञ्च दोषघ्नं शास्त्रोक्तं समयोचितम्

अस्या एवाष्टमात् गर्भात् मृत्युश्चेत् तव भूमिप ।

इमां हत्वा हि दुष्कीर्त्तिं करोषि नरकं च किम् ॥ १६ ॥

वधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानाञ्च पण्डितः । कार्षापणं समुत्सृज्य मृत्युकालेप्रमुच्यते

अहिंसकानां क्षुद्राणांवधे शतगुणं ध्रुवम् । प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना ॥

वधेविशिष्टजन्तूनां पश्वादीनाञ्च कामतः । ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत् ।

नराणां म्लेच्छजातीनां वधे शतगुणं ततः ॥ २२ ॥

म्लेच्छानाञ्च शतानाञ्च यत् पापंलभते वधे । सच्छूद्रैकस्य च वधेतत् पापंलभतेपुमान्॥

सच्छूद्राणां शतानाञ्च यत् पापं लभते वधे । तत्पापं लभते नूनं गोवधेनैव निश्चितम्

गवां दशगुणंपापं ब्राह्मणस्यवधे भवेत् । विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः ॥२५॥

विशेषतो हि भगिनी पोष्या या शरणागता । स्त्रीहत्याशतपापञ्च भवेत् तस्या वधेनृप

तपोजपञ्च दानञ्च पूजनं तीर्थदर्शनम् । विप्राणां भोजनं होमं स्वर्गार्थं कुरुते नरः॥२७॥

जलबुद्बुदवत् सर्वं स्वप्नवद् भयदं भवम् । पश्यन्ति सततं सन्तो धर्म्मं कुर्वन्ति यत्नतः

भग्नीं(भगिनीं) च त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर ।

बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ तान् नृप ॥ २६ ॥

अस्याश्चैवाष्टमे गर्भे यदपत्यं भवेन्ममम । बन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम्

अथवा यान्यपत्यानिभवन्ति ज्ञानिनांवर । तानिसर्वाणिदास्यामि त्वत्तोनैकोवरःप्रियः

भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव । मिष्टान्नपानदानेन वर्द्धितामनुजां सदा॥

वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः । वसुदेवः प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरम्

क्रमादपत्यषट्कञ्च यद् यद्भूतञ्च नारद ।
दद्‍ौ तस्मै वसुः सत्यात् स जघान क्रमेण तान् ॥ ३४ ॥
देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया। रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च ॥
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्रावो बभूव ह। तस्माद् बभूव भगवन्नाम्ना सङ्कर्षणःप्रभुः॥३६॥
तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह ॥ ३७॥
गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते । दृष्टिं ददौ च गर्भे स भगवान् सर्वदर्शनः ॥३८
स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा । बभूव दर्शनात् सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा
ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च मायामिव दिशोदश॥४०॥
ज्योतिषां संहतिञ्चैव यथा मूर्त्तिमतीमिव । दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ ॥
अस्माद्गर्भादपत्यञ्च मृत्युबीजं ममैव च । इत्येवमुक्त्वा कंसश्च चक्रे रक्षां प्रयत्नतः ।
देवकीं वसुदेवञ्च सप्तद्वारे ररक्ष च ॥ ४२ ॥
पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो बभूवह । बभूव सा चलस्पन्दा जड़रूपा च नारद॥४३॥
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवान् स्वयम् । हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकारह
सा विश्वम्भरगर्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती। उवासजड़रूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह॥४५
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति । क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै॥
दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं वसुदेवो महामनाः ।
प्रसूतिसमयं दृष्ट्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥ ४७ ॥
रत्नप्रदीपसंयुक्तमन्दिरे सुमनोहरे । स्थापयामास खड्गञ्च लौहं तोयं हुताशनम् ॥४८ ॥
मन्त्रज्ञञ्च नरञ्चैव बन्धुपत्नीर्भयाकुलः । विद्वांसं ब्राह्मणञ्चैव ततोबन्धूंश्च सादरम् ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ द्विप्रहरेगते । व्याप्तञ्च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः॥५०॥
ववुश्च वायवश्चेष्टा ययुर्निद्राञ्च रक्षकाः । अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥५१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजग्मुस्त्रिदशेश्वराः । तुष्टुवुर्धर्म्मब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥५२॥

देवा ऊचुः ।

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एवच । ज्योतिःस्वरूपोह्यनघःसगुणोनिर्गुणोमहान्

भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः।
स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥ ५४ ॥

सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च। निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः
निरुपाधिश्च निर्लिप्तोनिरीहो निधनान्तकः।स्वात्मारामः पूर्णकामोनिर्दोषो नित्यएवच
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः। वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। हर्षाश्रुलोचनाः सर्वेववर्षुः कुसुमानि च॥५८॥

द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम्॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्।

नारायण उवाच।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः। बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरा पुरी॥

घोरान्धकारनिविड़ा बभूव यामिनी मुने॥ ६० ॥
गते सप्तमुहूर्त्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते॥ ६१ ॥

वेदातिरिक्ते दुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षणे। शुभग्रहैर्दृष्टलग्नेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहैः॥ ६२ ॥
अर्द्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ। जयन्तीयोगयुक्ते च चार्द्धचन्द्रोदये मुने॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्य्यादयस्तथा।
गमने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मीनं शुभाशुभाः॥ ६४ ॥
सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वे बभूवुस्तत्र संस्थिताः।
एकादशस्थास्ते प्रीत्या मुहूर्त्तं धातुराज्ञया॥ ६५ ॥

ववर्षुश्च जलधरा ववुर्वाताः सुशीतलाः। सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश॥
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नराः। देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥
जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्य्यश्च नारद। सुखेन सुस्रुवुर्नद्यो जज्वलुश्चाग्नयो मुदा॥
नेदुर्दुन्दुभयःस्वर्गे चानकाश्च मनोरमाः। प्रफुल्लपारिजातानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥६९॥
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः। जयशब्दः शंखशब्दो हरिशब्दो बभूव ह॥७०

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती। निःससार च वायुश्च देवकीजठरात्ततः ॥७१॥

तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च।

हृत्पद्मकोषाद् देवक्या हरिराविर्बभूव ह ॥ ७२ ॥

अतीवकमनीयञ्च शरीरं सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥७३॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् ॥

नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ७५ ॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं बिम्बाधरमनोहरम्। मयूरपुच्छचूड़ञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥७६

त्रिभङ्गवक्रमध्यञ्च वनमालाविभूषितम्। श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम् ॥

किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम् ॥ ७७ ॥

ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने। तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ ॥ ७८ ॥

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरः।

अश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥ ७९ ॥

वसुदेव उवाच।

श्रीमन्तमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यञ्च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्

स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम् ॥८१

स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिसूक्ष्ममदर्शनम्। स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥

शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम्। प्रकृतिं प्रकृतीशञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥

सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वान्तकरमव्ययम्।

सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो ॥ ८४ ॥

अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती। यं स्तोतुमसमर्थश्चपञ्चवक्त्रःषड़ाननः ॥

चतुर्मुखो वेदकर्त्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा। गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः। स्वप्ने तेषामदृश्यञ्च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते

श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः।

विहायैवं शरीरञ्च बालो भवितुमर्हसि ॥ ८८ ॥

वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम्। सङ्कटं निस्तरेत् तूर्णं शत्रुभीत्याःप्रमुच्यते ॥
इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते वसुदेवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

नारायण उवाच।

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्। प्रसन्नवदनः श्रीमान् भक्तानुग्रहकातरः ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

तपसाञ्च फलेनैव पुत्रोऽहं तव साम्प्रतम्। वरं वृणुष्व भद्रन्ते भविष्यति न संशयः ॥
पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः। पत्न्यासहतपस्विन्यातपसाराधितस्त्वया
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा माञ्च वृतो वरः। मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः

दत्त्वा तुभ्यं वरं तात मनसालोच्य चिन्तितम्।
मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥ ६५ ॥

तपसाञ्च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम्। सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥ ६६
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम। देवकी देवमातेयमदितेरंशसम्भवा ॥ ६७ ॥

त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेंऽशेन सम्भवः।
अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसः फलात् ॥ ६८ ॥

मांवात्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः। मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञजीवन्मुक्तोभविष्यसि
यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज। संस्थाप्यतत्रमांतात मायामादाय स्थापय॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह। नग्नं भूमौ शयानञ्च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥
दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया। किंवा कृतञ्च तन्द्रायामपूर्वं सूतिकागृहे ॥

इत्युक्त्वा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह।
गृहीत्वा बालकं क्रोड़े जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १०३ ॥
गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं विवेश सूतिकागृहम्।
ददर्श शयने न्यस्तां यशोदां निद्रयान्विताम्।

निद्रान्वितश्च नन्दश्च सर्वं तत्र गृहे स्थितम् ॥ १०४ ॥

ददर्श बालिकां नग्नां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम्

तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥ १०६ ॥

संस्थाप्य तत्र पुत्रञ्च कन्यामादाय सत्वरम्।

जगाम मथुरां त्रस्तः स्वकान्तासूतिकागृहम् ॥ १०७ ॥

स्थापयामास तत्रैव महामायाञ्चबालिकाम्। रोरुद्यमानां तामेव दृष्ट्वा त्रस्ता च देवकी

रोदनेनैवसाबाला बोधयामास रक्षकान्। उत्थाय रक्षकाः शीघ्रंजगृहुर्बालिकां तदा॥

गृहीत्वा बालिकां ते च प्रजग्मुः कंससन्निधिम्।

जगाम देवकी पश्चात् वसुदेवश्च शोकतः ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा च बालिकां कंसो नातिहृष्टो महामुने। रोरुद्यमानां कल्याणीं तद्दया न बभूव ह॥

तां गृहीत्वा च पाषाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम्। ऊचतुर्वसुदेवश्च देवकी परमादरम् ॥

भो भो कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद। निबोध वाक्यं सत्यञ्च नीतियुक्तं मनोहरम्

हत्वावयोः पुत्रषट्कं दया ते नास्ति बान्धव। अधुना चाष्टमे गर्भे बालिकामबलां मम

हत्वा किं ते महैश्वर्य्यं भविष्यति महीतले। स्त्रीमेव हन्तुमबला किं क्षमा रणमूर्द्धनि॥

इत्येवमुक्त्वा तं वसुर्देवकी च सभातले। रुरोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः ११६

कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच सुदारुणः। शृणु वाक्यं मदीयञ्चनि बोधबोधयामि ते

कंस उवाच।

तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः।

कीटेन सिंहशार्दूल मशकेन गजं तथा ॥ ११८ ॥

शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः। मूषिकेण च मार्जारं मण्डूकेन भुजङ्गमम् ॥

एवं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम्। वह्निना च जलं नष्टं वह्निंशुष्कतृणेन च ॥

पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना। धातुर्गतिर्विचित्रा च दुर्ज्ञेया भुवनत्रये ॥

दैवेन बालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति।

बालिकाञ्च वधिष्यामि नात्र कालविचारणा ॥ १२२ ॥

इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा। हन्तुमारब्धवान् कंसस्तमुवाच वसुस्तदा
वृथा हिंसितवान् राजन् देहि बालां कृपानिधे ॥ १२३ ॥
स तच्छ्रुत्वा विचारज्ञःकंसस्तुष्टो महामुने। संबोधयन्ती तत्रैववाग्बभूवाशरीरिणी ॥
हे कंस हंसि कां मूढ़ न विज्ञाय विधेर्गतिम्।
कुत्रचित्ते निहन्तास्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥ १२५ ॥
श्रुत्वैवं दैववाणीञ्च तत्याज बालिकां नृपः ॥ १२६ ॥
वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितः। जग्मतुःस्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि
मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्। सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः
एकानंशेन विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥ १२८ ॥
वसुस्तां द्वारकायान्तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि। ददौ दुर्वाससे भक्त्या शङ्करांशायभक्तितः
एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्त्तनम्। जन्ममृत्युजराविघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे
श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः।

———

अष्टमोऽध्यायः

जन्माष्टमीव्रतमाहात्म्यकथनम्।

नारद उवाच।

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। फलं जयन्तीयोगस्य सामान्येन च साम्प्रतम् ॥
को वा दोषोऽप्यकरणे भोजने वा महामुने। उपवासफलं किंवाजयन्त्याश्चसुसम्मतम्
व्रतपूजाविधानञ्च संयमस्य च साम्प्रतम्। उपवासपारणयोः सुविचार्य्य वद प्रभो ! ॥

नारायण उवाच।

कृत्वा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा। अरुणोदयवेलायां समुत्थाय परेऽहनि ॥

३७—

प्रातःकृत्यं संविधायस्नात्वासङ्कल्पमाचरेत् । व्रतोपवासयोर्ब्रह्मन् श्रीकृष्णप्रीतिहेतुकम्
मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत् फलं स्नानपूजनैः । फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विज

तस्यां तिथौ वारिमात्रं पितॄणां यः प्रयच्छति ।
गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥ ७ ॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम् ।
लौहखड्गं वह्निजालैर्युक्तं रक्षकसङ्घकैः ॥ ८ ॥

तत्र द्रव्यं बहुविधं नाडीच्छेदनकर्त्तनम् । धात्रीस्वरूपां नारीञ्च यत्नतःस्थापयेद्बुधः ॥

पूजाद्रव्याणि चारूणि सोपचाराणि षोड़श ।
फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद ॥ १० ॥

जातीफलञ्च कक्कोलं दाड़िमं श्रीफलन्तथा । नारिकेलञ्च जम्बीरं कूष्माण्डञ्च मनोहरम्
आसनं वसनं पाद्यं मधुपर्कं तथैव च । अर्घ्यमाचमनीयञ्च स्नानीयं शयनन्तथा ॥१२॥
गन्धपुष्पञ्च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम् । धूपदीपौ भूषणञ्च चोपचाराणि षोड़श ॥१३॥

पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ।
आचम्य चासने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १४ ॥

घटस्यारोपणं कृत्वा सम्पूज्य पञ्च देवताः । घटे ह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम्
वसुदेवं देवकीञ्च यशोदां नन्दमेव च । रोहिणीं बलदेवञ्च षष्ठीदेवीं वसुन्धराम् ॥१६॥

रोहिणीं ब्राह्मणीञ्चैव ह्यष्टमीं स्थानदेवताम् ।
अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम् ॥ १७ ॥

कृपं परशुरामञ्च व्यासदेवं मृकण्डकम् । सर्वस्यावाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्य्याद्धरेस्तथा
पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥ १९ ॥
बालं नीलाम्बुदाभमतिशयरुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजाभं
ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कति कति दिवसैः स्तूयमानं परं यत् ।
ध्यानासाध्यमृषीन्द्रैर्मुनिमनुजवरैः सिद्धसङ्घैरसाध्यं

योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमतुलं साक्षिरूपं भजेऽहम् ॥ २० ॥

ध्यात्वा पुष्पञ्चदत्त्वातुतत्सर्वं मन्त्रपूर्वकम्। दत्त्वाव्रतीव्रतंकुर्य्यात्श्रृणुमन्त्रंयथाक्रमम्
आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्रत्नमणिनिर्मितम्। विचित्रितञ्च चित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे॥
वसनं वह्निशुद्धञ्च निर्मितं विश्वकर्म्मणा। प्रतप्तस्वर्णखचितं वसनं गृह्यतां हरे ॥२३ ॥
पादप्रक्षालनार्थञ्च स्वर्णपात्रस्थितं जलम्। पवित्रं निर्म्मलं चारु पुष्पं पाद्यञ्च गृह्यताम्॥
मधु सर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम्। स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥२५
दूर्वाक्षतं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे ॥२६॥

सुस्वादु स्वच्छतोयञ्च वासितं गन्धवस्तुना।
शुद्धमाचमनार्हञ्च गृह्यतां परमेश्वर ॥ २७ ॥

गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णुतैलं सुवासितम्। आमलक्या द्रवञ्चैव स्नानीयं गृह्यतां हरे ॥
सद्रत्नमणिसारेण रचितां सुमनोहराम्। छादितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्याञ्च गृह्यतां हरे ॥

सचूर्णो वृक्षभेदानां मूलानां द्रवसंयुतः।
कस्तूरीरससंयुक्तो गन्धोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३० ॥

पुष्पं सुगन्धिसंयुक्तं वनस्पतिसमुद्भवम्। सुप्रियं सर्वदेवानां गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३१ ॥
शर्करास्वस्तिकाक्तञ्च मिष्टद्रव्यसमन्वितम्। सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥३२
शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम्। लड्डुकं मोदकञ्चैव सर्पिःक्षीरं गुडं मधु

नवोद्भूतं दधि तक्रं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥ ३३ ॥

ताम्बूलं भोगसारञ्च कर्पूरादिसमन्वितम्। मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वर॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। आबीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३५ ॥
तरुभेदरसोत्कर्षो गन्धयुक्ताग्निना सह। सुप्रियः सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां हरे ॥३६
घोरान्धकारनाशैकहेतुरेव शुभावहः। सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे ॥३७॥

पवित्रं निर्म्मलं तोयं कर्पूरादिसुवासितम्।
जीवनं सर्वजीवानां पानार्थं गृह्यतां हरे ॥ ३८ ॥

नानापुष्पसमायुक्तं ग्रथितं सूक्ष्मतन्तुना। शरीरभूषणवरं माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥३६॥

दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च । व्रतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च ॥
फलानि तरुबीजानि स्वादूनि सुन्दराणि च । वंशवृद्धिकराण्येव गृह्यतां परमेश्वर ॥४१
आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकंपूजयेद् व्रती । संपूज्य भक्तिभावेन दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम्

सुनन्दनन्दकुमुदान् गोपान् गोपीश्च राधिकाम् ।
गणेशं कार्त्तिकेयञ्च ब्रह्माणञ्च शिवं शिवाम् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मीं सरस्वतीञ्चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा । शेषं सुदर्शनञ्चैव पार्षदप्रवरांस्तथा
संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद् भुवि । ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम्

कथाञ्च जन्माध्यायोक्तां शृणुयाद्भक्तिभावतः ।
तदा कुशासने स्थित्वा कुर्य्याज्जागरणं व्रती ॥ ४६ ॥
प्रभाते चाह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च कुर्य्यात् श्रीहरिकीर्त्तनम् ॥ ४७ ॥

नारद उवाच ।

व्रतकालव्यवस्थाञ्च वेदोक्तां सर्वसम्मताम् । वेदार्थञ्च समालोच्य संहिताञ्च पुरातनीम्
उपवासे जागरणे व्रते वा किं फलं भवेत् । किं वा पापं तत्र भुक्त्वा वद वेदविदां वर

नारायण उवाच ।

अष्टमीपादमेकन्तु रात्र्यर्द्धे यदि दृश्यते । स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः ॥
जयं पुण्यञ्च कुरुते जयन्ती तेन सास्मृता । तत्रोपोष्यव्रतं कृत्वा कुर्य्याद्जागरणंबुधः
सर्वापवादःकालोऽयं प्रधानः सर्वसम्मतः । इति वेदविदां वाणी चेत्युक्ता वेधसा पुरा

तत्र जागरणं कृत्वा यश्चोपोष्य व्रतं चरेत् ।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताष्टमी । सा सर्क्षापि न कर्त्तव्या सप्तमी सहिताष्टमी ॥
अविद्धायान्तु ऋक्षायां जातो देवकीनन्दनः । वेदवेदाङ्गगुप्ते च विशिष्टे मङ्गले क्षणे ।

व्यतीते रोहिणीऋक्षे व्रती कुर्य्याच्च पारणम् ॥ ५५ ॥

तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवासुरार्चनम् । पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्

उपवासाङ्गभूतश्च फलदं शुद्धिकारणम्। सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवापारणमिष्यते ॥५७॥
अन्यथा फलहानिः स्याद् कृते धारणपारणे ॥ ५८ ॥
न रात्रौ पारणं कुर्य्याद्वते वै रोहणीव्रतात्।
निशायां पारणं कुर्य्याद् वर्जयित्वा महानिशाम् ॥ ५९ ॥
पूर्वाह्णे पारणं शस्तं कृत्वा विप्रसुरार्चनम्। सर्वेषां सम्मतंकुर्य्याद्व्रते वै रोहिणीव्रतम्
बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते। न कुर्य्याद् गर्भवासञ्च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती
उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि। भवेद् बुधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते। व्रती च तद् व्रतं कृत्वा पुंसां कोटीःसमुद्धरेत्
नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसम्पदाम्।
कृतेनैवोपवासेन प्रीतो भवति माधवः ॥ ६४ ॥
भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च।
फलं ददाति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसम्भवम् ॥ ६५ ॥
वित्तशाठ्यमकुर्वाणःसम्यक्फलमवाप्नुयात्। कुर्वाणःवित्तशाठ्यञ्च लभते सद्दशंफलम्
अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्य्यात्पारणंबुधः। हन्यात् पूर्वकृतं पुण्यमुपवासार्जितं फलम्
तिथिरष्टगुणंहन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्। तस्मात्प्रयत्नतः कुर्य्यात् तिथिभान्तेचपारणम्
महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते व्रती ॥
षण्मुहूर्त्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्याञ्च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥७०
गोमांसविण्मूत्रसमं ताम्बूलञ्च फलं जलम्।
पुंसामभक्ष्यं शुद्धायामोदनस्यापि का कथा ॥ ७१ ॥
त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्। दण्डानां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते
जन्माष्टम्याञ्च शुद्धायांकृत्वा जागरणं व्रतम्। शतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्रसंशयः
जन्माष्टम्याञ्च शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः। अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना ॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्द्धके। सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः
श्रीकृष्णजन्मदिवसे यश्च भुङ्क्ते नराधमः। स भवेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याशतं लभेत्

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।
अनर्हश्चाशुचिः शश्वत् दैवे पैत्रे च कर्म्मणि ॥ ७७ ॥
अन्ते वसेत् कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कृमिभिः शूलतुल्यैश्च तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च भक्षितः
पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेल्लभेत् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिर्भवेत् ॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदं शतजन्मानि शृगालः शतजन्मसु
सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥
ततो भवेन्नरोमूको गलत्कुष्ठी सदाऽऽतुरः । ततोभवेत् पशुघ्नश्च व्यालग्राही ततोभवेत्
तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनो नरघ्नकः ॥ ८२ ॥
ततो भवेत् स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत् । ततो भवेद्देवलश्च ब्राह्मणश्च सदाशुचिः ॥
उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रञ्च भोजयेत् । तावद्धनानि वा दद्याद् यद्भुक्तं द्विगुणं भवेत्
सहस्रसम्मितां देवीं जपेद् वा प्राणसंयमम् ।
कुर्य्याद् द्वादशसंख्याकान् यथार्थं तद् व्रते नरः ॥ ८५ ॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रुतं यद्धर्मवक्त्रतः । व्रतोपवासपूजानां विधानमकृते च यत्॥८६॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे जन्माष्टमीव्रत-
पूजोपवासनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम् ।

नारद उवाच ।

संस्थाप्य गोकुलेकृष्णं यशोदामन्दिरेवसुः । जगाम स्वगृहंनन्दःकिं चकारसुतोत्सवम्
किं चकार हरिस्तत्र कतिवर्षस्थितिर्विभोः ।
बालक्रीड़नकं तस्य वर्णय क्रमशः प्रभो ॥ २ ॥

पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह। तत् कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं वने ॥
कीदृग् वृन्दावनं रासमण्डलं किंविधं वद। रासक्रीड़ां जलक्रीड़ां संव्यस्य वर्णय प्रभो
नन्दस्तपः किं चकार यशोदा चाथ रोहिणी। हरेः पूर्वञ्च हलिनः कुत्र जन्म बभूवह ॥
पीयूषखण्डमाख्यानमपूर्वं श्रीहरेः स्मृतम्। विशेषतः कविमुखे काव्यं नूत्नं पदे पदे ॥
स्वरासमण्डलक्रीड़ां वर्णयस्व त्वमेव च। परोक्षवर्णनं काव्यं प्रशस्तं दृश्यवर्णनम् ॥

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
यो यस्यांशः स तु जनस्तस्यैव सुखतः सुखी ॥ ८ ॥
त्वयैव वर्णितौ पादौ विलीनौ तु युवां हरे।
साक्षाद् गोलोकनाथांशस्त्वमेव तत्समो महान् ॥ ९ ॥

नारायण उवाच।

ब्रह्मेशशेषविघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽयमेव च। नरश्च कार्त्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा वयं नव ॥

अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते।
यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं विपश्चितः ॥ ११ ॥

शूकरो वामनः कल्की बौद्धः कपिलमीनकौ। एतेचांशाःकलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधा मुने
पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराड्विभुः। परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम्
वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः। गोलोकेगोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजःस्वयम्
अस्यैव तेजो नित्यञ्च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः। भक्ताःपादाम्बुजंतेजः कुतस्तेजस्विनंविना

शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः।
रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुखम् ॥ १६ ॥

वसूनां प्रवरो नन्दो नाम्ना द्रोणस्तपोधनः। तस्यापत्नीधरासाध्वीयशोदासा तपस्विनी
रोहिणी सर्पमाता च कद्रुश्च सर्पकारिणी। एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते ॥
एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने। पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसन्निधौ ॥१९॥
चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने। कृष्णस्य दर्शनार्थञ्च निर्जने सुप्रभाततटे।

न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी ॥ २० ॥

कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात् प्रवेष्टुं समुपस्थितौ ॥ २१ ॥

तौ मर्त्तुकामौ दृष्ट्वा च वाग् बभूवाशरीरिणी। द्रक्ष्यथः श्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम्
जन्मान्तरे वसुश्रेष्ठ दुर्दर्शं योगिनां विभुम् । ध्यानासाध्यञ्च विदुषां ब्रह्मादीनाञ्च वन्दितम्
श्रुत्वैवं तद्धराद्रोणौ जग्मतुः स्वालयं सुखात् । लब्ध्वा तु भारते जन्म दृष्टं ताभ्यां हरेर्मुखम्
यशोदानन्दयोरेव कथितं चरितं तव । सुगोप्यं देवतानाञ्च रोहिणीचरितं शृणु ॥ २५॥

एकदा देवतामाता पुष्पोत्सवदिने सती ।
विज्ञापनञ्चरद्वारा चकार कश्यपं मुने ॥ २६ ॥

सुस्नाता सुन्दरी देवी रत्नालङ्कारभूषिता । चकार वेशं विविधं ददर्श दर्पणे मुखम् ॥
कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुसंयुतम् । रत्नकुण्डलशोभाढ्यं पत्राभरणभूषितम् ॥
गजमौक्तिकसंयुक्तं नासाग्रं सुमनोहरम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ।

वक्रभ्रूभङ्गिसंयुक्तं विचित्रकज्जलोज्ज्वलम् ॥ २९ ॥
पक्वदाड़िमवीजाभदन्तराजिविराजितम् ।
पक्वविम्बाधरौष्ठञ्च सस्मितं सुन्दरं सदा ॥ ३० ॥
अतीव कमनीयञ्च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् ॥ ३१ ॥

एवम्भूतं मुखं दृष्ट्वा सुन्दरी स्वगृहे स्थिता । पश्यन्ती पतिमार्गञ्च कामवाणप्रपीड़िता

शुश्राव वार्त्तामदितिः कश्यपं कद्रुसंयुतम् ।
रसभावसमारम्भे तस्या वक्षःस्थले स्थितम् ॥ ३३ ॥
श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा हताशा रतिकातरा ।
न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम् ॥ ३४ ॥
न देवालययोग्या सा धर्म्मिष्ठा धर्म्मनाशिनी ।
दूरं गच्छतु स्वर्लोकाद् यातु योनिञ्च मानवीम् ॥ ३५ ॥

श्रुत्वैवं सा चरद्वारा शशाप देवमातरम् । सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्ये जरायुताम्
कश्यपो बोधयामास कद्रुञ्च सर्पमातरम् । काले यास्यसि मर्त्यञ्च मया सह शुचिस्मिते

त्यज्य भीतिं लभ मुदं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखम् ॥ ३७ ॥

एवमुक्त्वा कश्यपश्च प्रजगामादितेर्गृहम् । वाञ्छां पूर्णाञ्च तस्याश्च चकारभगवान्विभुः
ऋतौ तत्र महेन्द्रश्च बभूव ह सुरर्षभः ॥३९॥
अदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी ।
कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान् ॥ ४० ॥
रहस्यं गोपनीयञ्च सर्वं निगदितं मुने । अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥ ४१ ॥
रोहिणी वसुदेवस्य भार्य्यारत्नञ्च प्रेयसी ॥ ४२ ॥
जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने । सङ्कर्षणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥
देवक्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा । रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले
संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह ॥ ४४ ॥
दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥ ४५ ॥
सुषाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरौप्याभमीश्वरम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा
तस्यैव जन्ममात्रेण देवाः प्रमुदिरे तदा । स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ॥
जयशब्दं शङ्खशब्दं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥ ४७ ॥
नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ।
चिच्छेद नाड़ीं धात्री च स्नापयामास बालकम् ॥ ४८ ॥
जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः । परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात् ॥४९॥
ददौ यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणीभ्यो धनं मुदा । नानाविधानि द्रव्याणि सिन्दूरंतैलमेवच
इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः । जन्माख्यानञ्च हलिनो रोहिणीचरितं तथा
अधुना वाञ्छनीयन्ते नन्दपुत्रोत्सवं शृणु । सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम्
मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानाञ्च जीवनम् । सर्वाशुभविनाशञ्च भक्तिदास्यप्रदं हरेः ॥५३
वसुदेवश्च श्रीकृष्णं संस्थाप्यनन्दमन्दिरे । गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम्
कथितं चरितं तस्याः श्रुतं यत् सुखदं मुने । अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम्
वसुदेवे गृहे याते यशोदा नन्द एव च । मङ्गले सूतिकागारे जयागारे जयान्विते॥५६॥

ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रभम् । अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्तं गृहशेखरम् ॥ ५७ ॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम् । रुदन्तञ्च हसन्तञ्च रेणुसंयुक्तविग्रहम् ॥

हस्तद्वयं भुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम् ॥ ५८ ॥
दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्द्धं हरिं हृष्टो बभूव ह ॥ ५९ ॥
धात्री तं स्नापयामास शीततोयेन बालकम् ।
चिच्छेद नाड़ीं बालस्य हर्षाद् गोप्यो जयं जगुः ॥ ६० ॥
आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा वृहत्श्रोण्यश्चलत्कुचाः ।
बालिकाश्च वयःस्थाश्च विप्रपत्न्यश्च सूतिकाम् ॥ ६१ ॥

आशिषं युयुजुः सर्वा ददृशुर्बालकं मुदा । कोड़े चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊषुस्तत्र च काञ्चन
नन्दःसचैलःस्नात्वा च धृत्वा धौते च वाससी । पारम्पर्य्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानसः

ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ।
वाद्यानि वादयामास वन्दिभ्यश्च ददुर्धनम् ॥ ६४ ॥

ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । सद्रत्नानि प्रवालानि हीरकाणि च सादरम्
तिलानां पर्वतान् सप्त सुवर्णशतकं मुने । रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्रं मनोरमम्
दधि दुग्धं शर्कराश्च नवनीतं घृतं मधु । मिष्टान्नं लड्डुकौघश्च स्वादूनि मोदकानि च
भूमिश्च सर्वशस्याढ्यं वायुवेगांस्तुरङ्गमान् । ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो बभूव ह

रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ।
तत्र मन्त्रज्ञमनुजान् स्थविरान् गोपिकागणान् ॥ ६९ ॥

वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् । भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः ॥७०
सस्मिता विप्रपत्न्याश्चवयस्थाःस्थविरावराः । बालिकाबालकयुताआजग्मुर्नन्दमन्दिरम्

तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च ॥ ७१ ॥

गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालङ्कारभूषिताः । सस्मिताःशीघ्रगामिन्य आजग्मुर्नन्दमन्दिरम्

बहुवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥ ७२ ॥
नानाविधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रविशारदाः ।

वाक्सिद्धाः पुस्तककरा आजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥ ७३ ॥
नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा। आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्बालकं परम् ॥
एवं संभृतसम्भारो बभूव व्रजपुङ्गवः। गणकैः कारयामास यद्भविष्यं शुभाशुभम् ॥
एवं ववर्द्ध बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी। नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम्
तदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा। तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताभ्यो ददौ मुने
दत्त्वाशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः। यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गेहेमुदान्विताः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः

पूतनामोक्षवर्णनम्

नारायण उवाच।

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः। शुश्राव वाचं गगने सूनृतामशरीरिणीम् ॥
किं करोषि महामूढ चिन्तां स्वश्रेयसःकुरु। जातःकालो धरण्यांते तिष्ठोपायं नराधिप
नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम्। कन्यामादाय तुभ्यञ्च दत्त्वा संमायथास्थितः
मायांशा कन्यकेयञ्च वासुदेवः स्वयं हरिः। तव हन्ता गोकुले च वर्द्धते नन्दमन्दिरे।
देवकीसप्तमो गर्भो वर्द्धते नन्दमन्दिरे ॥ ४ ॥
देवकीसप्तमो गर्भो न सुस्राव मृतं सुतम्। स्थापयामास माया तं रोहिणीजठरे किल
तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः ॥ ५ ॥
गोकुले तौ च वर्द्धेते कालौ ते नन्दमन्दिरे ॥ ६ ॥
श्रुत्वा तद्वचनं राजा बभूव नतकन्धरः। चिन्तामवाप सहसा तत्याजाहारमुन्मनाः ॥७॥
पूतनाञ्च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम्।

उवाच भगिनीं राजा सभामध्ये च नीतिवित् ॥ ८ ॥

कंस उवाच ।

पूतने गोकुलं गच्छ कार्य्यार्थं नन्दमन्दिरे । विषाक्तञ्च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वरम्
त्वं मनोयायिनी वत्से मायाशास्त्रविशारदा । मायामानुषरूपञ्च विधाय व्रज योगिनी
दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी । सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते
इत्युक्त्वा तां महाराजस्तस्थौ संसदि नारद । जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी
तप्तकाञ्चनवर्णाभा नानालङ्कारभूषिता । बिभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥
कस्तूरीबिन्दुना युक्तं सिन्दूरं बिभ्रती मुदा । मञ्जीररशनाभ्याञ्च कलशब्दं प्रकुर्वती ॥
संप्राप्य गोष्ठं ददर्श नन्दालयं मनोहरम् । परिखाभिर्गभीराभिर्दुर्लंघ्याभिश्च वेष्टितम् ॥
रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्म्मणा । इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम् ॥१६॥
सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः । प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः ॥१७॥

युक्तं लोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः ।
वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम् ॥ १८ ॥

मुक्तामाणिक्यपरशैः पूर्णं रत्नादिभिर्धनैः। स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिभिरन्वितम्
भरणीयैः किङ्करैश्च गोपलक्षैः समन्वितम् । दासीनाञ्च सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम्
प्रविवेशाश्रमंसाध्वी सस्मिता सुमनोहरा । दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यस्तावहुमेनिरे
किंवा पद्मालयादुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता। प्रणेमुर्गोपिका गोपाःपप्रच्छुः कुशलञ्चताम्

ददौ सिंहासनं पाद्यं वासयामास तत्र वै ॥ २२ ॥
पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च ।
उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम् ॥ २३ ॥
तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमीश्वरि साम्प्रतम् ।
वासस्ते कुत्र किन्नाम किं वात्र कर्म्म तद्वद ॥ २४ ॥

तासाञ्च वचनं श्रुत्वा साप्युवाच मनोहरम् । मथुरावासिनीगोपी साम्प्रतं विप्रकामिनी
श्रुतं वाचिकवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम् । बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति ॥

श्रुत्वागताहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्त्तुमीप्सितम् । पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यानि कृत्वा तदाशिषम् ॥
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा । प्रणमय्य सुतं क्रोड़े ददौ ब्राह्मणयोषिते ॥

कृत्वा क्रोड़े शिशुं साध्वी चुचुम्ब च पुनः पुनः ।
स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ॥ २६ ॥

अहोऽद्भुतोऽयं वालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि । गुणैर्नारायणसमो वालोऽयमित्युवाच ह ॥
कृष्णोविषस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः । तस्याःप्राणैःसह पपौ विषक्षीरंसुधामिव ॥
तत्याज वालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह । विकृताकारवदना चोत्तानवदना मुने ॥

स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा ।
आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्म्मितम् ॥ ३३ ॥

पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः । श्वेतचामरलक्षेण वेष्टितं लक्षदर्पणैः ॥ ३४ ॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण शोभितं वरम् । नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलसैर्युतम् ॥
सुन्दरं शतचक्रञ्च ज्वलितं रत्नतेजसा । पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥

दृष्ट्वा तमद्भुतं गोपा गोपिकाश्चापि विस्मिताः ।
कंसः श्रुत्वा च तत् सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ॥ ३७ ॥

यशोदावालकं नीत्वा क्रोड़े कृत्वा स्तनं ददौ । मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने ॥
ददाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम् । चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम् ॥

नारद उवाच ।

सा वा का राक्षसीरूपा कथं पुण्यवती सती ।
केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥ ४० ॥

नारायण उवाच ।

वलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम् । वलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम् ॥
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम । भवेद्‌ यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तञ्च वक्षसि ॥
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौजन्मान्तरे स्तनम् । ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरःकृपानिधिः ॥

दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने ।

भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजामि विना हरिम् ॥ ४४ ॥
इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणवर्णनम् । पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते ॥४५॥
इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
पूतनामोक्षणं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा गोकुले साध्वी यशोदानन्दगेहिनी । गृहकर्म्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्ववक्षसि
वात्यारूपं तृणावर्त्तमागच्छन्तश्च गोकुले । श्रीहरिर्म्मनसा ज्ञात्वा भारयुक्तो बभूव ह ॥
भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा । शयनं कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वात्यारूपधरोऽसुरः । आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम्
बभञ्ज वृक्षशाखाश्च ह्यन्धीभूतश्च गोकुलम् । चकार सद्यो मायावी पुनस्तत्र पपात ह ॥
असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमन्दिरम् । सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्म्मक्षयं स्वकम्
पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद् दुर्वाससोऽसुरः ।
श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद् गोकुलं स जगाम ह ॥ ७ ॥
वात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः । न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ॥
सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुलाभयात् ।
केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदुश्चापि केचन ॥ ६ ॥
अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे । धूलिधूसरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ॥ १०
बाह्यैकदेशे सरसस्तीरे नीरसमन्विते । पश्यन्तं गगनं शश्वद् वदन्तं भयकातरम् ॥११॥
गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा वक्षसि सत्वरम् ।

दर्शं दर्शं मुखं तस्य रुरोद च शुचान्वितः ॥ १२ ॥

यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं रुरोद च। कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम् । स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥

नारद उवाच ।

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्ड्यदेशोद्भवं नृपम् । सुविचार्य्य वदब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम्

नारायण उवाच ।

पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान् ।

स्त्रीसहस्रं समादाय कामबाणप्रपीडितः ॥ १६ ॥

मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने । विजहार नदीतीरे पुष्पोद्याने मनोरमे ॥ १७ ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः । नखदन्तक्षताङ्गञ्च कामिनीनां चकार सः ॥१८॥

कृत्वा मूर्त्तिसहस्रञ्च योगीन्द्रो नृपतीश्वरः। कृत्वा स्थले विहारञ्च जलक्रीड़ां चकार सः

नार्य्यो विवसनाः सर्वा नग्नाश्च नृपयोषितः । विजह्रुश्च पुष्पभद्रानदीतीरे मनोरमे ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो महामुनिः । शिष्यलक्षैः परिवृतः गच्छन् वै शङ्करं प्रति॥

दृष्ट्वा मुनिं महामत्तो नोत्तस्थौ न ननाम च ।

वाचा हस्तेन राजा तु सम्भाषां न चकार ह ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः ।

असुरो भव पापिष्ठ योगाद् भ्रष्टो भुवं व्रज ॥ २३ ॥

भारते लक्षवर्षञ्च स्थातव्यं ते नराधम । ततो हरिपदस्पर्शाद् गोलोकं यास्यसि ध्रुवम्॥

स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते । राजेन्द्रगेहे राजेन्द्रात् भविष्यथ मनोहराः॥

इत्युक्त्वा तु मुनीन्द्रश्च जगाम शङ्करालयम् । हाहाशब्दं विचक्रुश्च शिष्यसङ्घाः कृपालवः

गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो रुरोद च सरित्तटे। रुरुदू रमणीयाश्चर मण्यो विरहातुराः ॥२७॥

हे नाथ रमणश्रेष्ठेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः ।

त्वां विना वा क्व यास्यामो वयं त्वं वा क्व यास्यसि ॥ २८ ॥

वयं न विहरिष्यामस्त्वया सार्द्धं सुनिर्जने ।

न करिष्यसि राज्यं त्वं न यास्यामो गृहं वयम् ॥ २६ ॥
शरच्चन्द्रप्रभामुष्टं न द्रक्ष्यामो मुखं तव ।
प्रसारिताभ्यां वाहुभ्यां नानयिष्याम इत्यतः ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वाः पुरस्कृत्य नराधिपम् । मूर्च्छामवापुश्चरणं धृत्वाराज्ञःसरित्तटे॥
राजाग्निकुण्डं निर्माय नारीभिः सह नारद। स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं ज्वलदग्निंविवेशह॥
हाहाकारं सुराः सर्वे प्रचक्रुर्गगनस्थिताः । इत्यूचुर्मुनयश्चैव दैवञ्च वलवत्तरम् ॥३३॥
स च राजा तृणावर्त्तो जगाम हरिमन्दिरम् । महिष्योभारतेवर्षेलेभिरे जन्मवाञ्छितम्
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । मोक्षणं नृपतेश्चैव मुनीन्द्रशापहेतुकम् ॥३५

इति श्रीं ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
तृणावर्त्तवधो नामैकादशोऽध्यायः ।





द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबाललीलावर्णनम्

नारायण उवाच ।

एकदा मन्दिरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम् । कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितञ्चस्तनं ददौ ॥
एतस्मिन्नन्तरेगोप्यआजग्मुर्नन्दमन्दिरम् । स्थविराश्चवयस्याश्चबालिकाबालकान्विताः
अतृप्तं बालकं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती । प्रणनाम समुत्थाय कर्म्मण्यौत्थानिके मुदा

तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताभ्यो मुदान्विता ।
मिष्टवस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका ॥४॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा । प्रेरयित्वा तु चरणं मायेशो मायया विभुः ॥
पपात चरणं तस्य प्रवीणे शकटे मुने । विश्वम्भरपदाघाताच्च चूर्णं बभूव ह ॥ ६ ॥
बभञ्ज शकटं पेतुर्भग्नकाष्ठानि तत्र वै । पपात दधि दुग्धञ्च नवनीतं घृतं मधु ॥ ७ ॥
दृष्ट्वाश्चर्य्यं गोपिकाश्च दुद्रुवुर्बालकं भयात् । ददृशुर्भग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम् ॥८
भग्नभाण्डसमूहञ्च पतितं बहुगोरसम् । प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जग्राह बालकं भिया ॥
मायारक्षितसर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा । स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा ॥

पप्रच्छुर्बालकान् गोपा बभञ्ज शकटं कथम् ।
किञ्चिद्धेतुं न पश्यामि सहसेति किमद्भुतम् ॥ ११ ॥

इत्यूचुर्बालकाः सर्वे गोपाः शृणुत तद्वचः । श्रीकृष्णस्यप दाघाताद्बभञ्जशकटं ध्रुवम् ॥
श्रुत्वा तद्वचनं गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा । न हि जग्मुः प्रतीतिञ्च मिथ्येत्यूचुर्व्रजे प्रजाः

शिशोः स्वस्त्ययनं तूर्णं चक्रुर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ १३ ॥

हस्तं दत्त्वा शिशोर्गात्रे पपाठ कवचं द्विजः । वदामि तत्ते विप्रेन्द्र कवचं सर्वलक्षणम् ॥

यद्दत्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ १५ ॥

निद्रिते जगतींनाथे जले च जलशायिनि । भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुकैटभयोर्भयात् ॥

योगनिद्रोवाच ।

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किन्ते हरौ स्थिते । स्थितायां मयि च ब्रह्मन्सुखंतिष्ठजगत्पते॥
श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः । श्रीकृष्णश्चक्षुषीपातु नासिकां राधिकापतिः
कर्णयुग्मञ्च कण्ठञ्च कपालं पातु माधवः । कपोलंपातु गोविन्दःकेशांश्चकेशवःस्वयम्
अधरौष्ठं हृषीकेशो दन्तपंक्तिं गदाग्रजः । रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः ॥
वक्षः पातु मुकुन्दस्ते जठरं पातु दैत्यहा । जनार्दनःपातुनाभिं पातु विष्णुश्च ते हनुम् ॥
नितम्बयुग्मं गुह्यञ्च पातु ते पुरुषोत्तमः । जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र सङ्कटे । पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भवः ॥२३ ॥

ऊर्द्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात् कमलापतिः ।
पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा ॥ २४ ॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋतौ ।
वारुण्यां वासुदेवश्च सतोरक्षाकरः स्वयम् ॥ २५ ॥

पातु ते सन्ततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः । उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः ॥
ऐशान्यामीश्वरः पातु सर्वत्र पातु शत्रुजित् । जले स्थले चान्तरीक्षेनिद्रायांपातुराघवः
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् । कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया ॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे । गगनेस्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण सो जितः॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः । पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम् ॥
मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः । माल्यञ्च कवचं दत्त्वा गोलोकं सजगामह
कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने । अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः ॥

कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः ।
अहञ्च हरिणा सार्द्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा ॥ ३३ ॥
इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्द्धानं चकार ह ।
निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः ॥ ३४ ॥
सुवर्णगुटिकायान्तु कृत्वेदं कवचं परम् ।

कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ वध्नीयाद् यः सुधीः सदा ॥ ३५ ॥
विषाग्निसर्पशत्रुभ्यो भयं तस्य न विद्यते । जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः॥
संग्रामे वज्रपाते च विपत्तौ प्राणसङ्कटे । कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत्॥३७
यद्धृत्वेदं कवचं कण्ठे शङ्करस्त्रिपुरं पुरा । जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम् ॥३८॥
यद्धृत्वेदं कवचं काली रक्तवीजं चखाद सा । सहस्रशीर्षा धृत्वेदं विश्वं धत्ते तिलं यथा
आवां सनत्कुमारश्च धर्म्मसाक्षी च कर्म्मणाम् । कवचस्य प्रसादेनसर्वत्र जयिनोवयम्
तस्य नन्दशिशोः कण्ठे चकारकवचं द्विजः । आत्मनःकवचंकण्ठे दधार च स्वयं हरिः
प्रभावः कथितः सर्वः कवचस्य हरेस्तथा । अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभावमतुलं मुने ॥४२

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
शकटभञ्जनकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

—०—

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्णमाहात्म्ये वालचरित्रकथनम्

नारायण उवाच ।

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किञ्चिन्महामुने । विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥१॥
एकदा नन्दपत्नी सा कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि । स्वर्णसिंहासनस्थाचक्षुधितंतंस्तनंददौ
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रैकः समागतः । वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ३
प्रजपन् परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया । दण्डी छत्री शुक्लवासा दन्तपङ्क्तिविराजितः।
ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्त्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४ ॥
परिविभ्रज्जटाभारं तप्तकाञ्चनसन्निभम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः ५
योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः ।
व्याख्यामुद्राकरः श्रीमान् शिष्यानध्यापयन् मुदा ॥ ६ ॥

वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्नवलीलया । एकीभूय चतुर्वेदतेजसा मूर्त्तिमानिव ॥७॥
साक्षात् सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः ।
ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम् ॥ ८ ॥
जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च
पाद्यं गां मधुपर्कञ्च स्वर्णसिंहासनं ददौ । बालकं वन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा ॥
मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम् । आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम्
प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम् ।
शिष्यान् पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥
सशिष्योऽङ्घ्री च प्रक्षाल्य समुवाससुखासने । समुद्यता गतिं प्रष्टुं पुटाञ्जलियुता सती
स्वक्रोडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरा । स्वात्मारामं मङ्गलञ्च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा
तथापि भवतो नाम शिवं पृच्छामि साम्प्रतम् ।
अबला बुद्धिहीना या दोषं क्षन्तुं सदार्हसि ॥ १५ ॥
मूढस्य सततं दोषक्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥ १६ ॥
अङ्गिरा वाथवात्रिर्वा मरीचिर्गोतमोऽथवा । क्रतुःकिं वा प्रचेतावापुलस्त्यःपुलहोऽथवा
दुर्वासाः कर्दमस्त्वं वा वशिष्ठो गर्ग एव वा ।
जैगीषव्यो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः ॥ १८ ॥
सनत्कुमारः सनकःसनन्दो वा सनातनः । वोढुःपञ्चशिखोवात्वमासुरिःसौभरिःकिमु
विश्वामित्रोऽथ वाल्मीको वामदेवोऽथ कश्यपः ।
संवर्त्तः किमुतथ्यो वा किं कचो वा वृहस्पतिः ॥ २० ॥
भृगुः शुक्रश्चच्यवनोनरनारायणोऽथवा । शक्तिः पराशरोव्यासःशुकदेवोऽथ जैमिनिः
मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।
आस्तीको वा जरत्कारु ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २२ ॥
पौलस्त्यस्त्वमगस्त्यो वा शरद्वान् गिरिरेव च ।
शमीकाऽरिष्टनेमिश्च माण्डव्यः पैल एव च ॥ २३ ॥

पाणिनिर्वा कणादोवाशाकल्यः शाकटायनः । अष्टावक्रो भागुरिर्वासुमन्तुर्वत्सएववा
जावालिर्याज्ञवल्क्यश्च वैशम्पायन एव वा । यतिर्हंसो पिप्पलादो मैत्रेयः करुषस्तथा॥
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणिरौर्वोऽथ कश्चिवान् । भरद्वाजो वेदशिराःशङ्कुकर्णोऽथ शौनकः
एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान् वद मे प्रभो । प्रत्युत्तरार्हा नाहं चेत्तथापि वक्तुमर्हसि
किङ्करःकिङ्करी वापि समर्था प्रष्टुमीश्वरम् । यो यस्य सेवानिरतःस कं पृच्छति तं विना
धन्याहं कृतकृत्याहं सफलं जीवनं मम । त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जन्मकोट्यंहसां क्षयः
त्वत्पादोदकसंस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । तवागमनमात्रेण तीर्थीभूतो ममाश्रमः ॥
येये श्रुताः श्रुतौ ब्रह्मन् श्रुतिसारा महाजनाः । तेषामेकोमया दृष्टः पूर्वपुण्यफलोदयात्

शिष्या वेदा मूर्त्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः ।
गोकुलं भक्तकुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना ॥ ३२ ॥

आशिषं कर्त्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम् । पूर्णं स्वस्त्ययनं सद्यो विप्राशीर्वचनं ध्रुवम्
इत्येवमुक्त्वा नन्दस्त्री भक्त्या तस्थौ मुनेः पुरः । चरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश ॥
हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्प्रीतकरं परम् । तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः ॥

श्रीगर्गउवाच ।

सुधामयं ते वचनं लौकिकं समयोचितम् । यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत्

सर्वेषां गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः ।
पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥ ३८ ॥
तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्द्धनकारिणी ॥ ३९ ॥

नन्दो यस्त्वच्छ्याभद्रे बालोऽयं येन वागतः। जानामिनिर्जनेसर्वंवक्ष्यामि नन्दसन्निधिम्
गर्गोऽहं यदुवंशानां चिरकालंपुरोहितः । प्रस्थापितोऽहं वसुना नान्यसाध्येच कर्म्मणि
एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगामह । ननाम दण्डवद् भूमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुङ्गवम् ।

शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं ययुजुराशिषम् ॥४२ ॥

समुत्थायासनात् पूर्णं यशोदां नन्दमेव च । गृहीत्वाभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः

गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा समुदान्विता । गर्ग उवाच तौ वाक्यं निगूढं निर्जनेमुने

श्रीगर्ग उवाच ।

अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते शुभावहम् । प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रूयतामिति
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणीकृतः । पुत्रोऽयं वसुदेवस्य ज्येष्ठश्च तस्य च ध्रुवम्

कन्या ते तेन नीता च मथुरां कंसभीरुणा ॥ ४६ ॥

अस्यान्नप्राशनायाहं नामानुकरणाय च । गूढेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु व्रजे ॥४७॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् । आगत्य भारहरणं कर्त्ता धात्राच सेवितः
गोलोकनाथोभगवान्श्रीकृष्णो राधिकापतिः। नारायणो यो वैकुण्ठेकमलाकान्तएवच
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाताविष्णुश्च सोऽप्यजः । कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्त्तिमानागतः किमु । स वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूव ह ॥

साम्प्रतं सूतिकागारादाजगाम तवालयम् ।

अयोनिसम्भवश्चायमाविर्भूतो महीतले ॥ ५२ ॥

वायुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः । आविर्भूय वसुं मूर्त्तिं दर्शयित्वा जगाम ह
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य वल्लव । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रस्तेजसावृतः । त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः ॥
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमान् तेजसां राशिरेव च । परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः
ब्रह्मणो वाचकः कोऽयमृकारोऽनन्तवाचकः । शिवस्यवाचकःषश्च णकारो धर्मवाचकः

अकारो विष्णोर्वचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।

नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः ॥ ५८ ॥

सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्त्तिस्वरूपकः । सर्वाधारः सर्ववीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः
कृषिर्निर्वाणवचनो णकारो मोक्ष एव च । अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥

कृषिर्निश्चेष्टवचनो णकारो भक्तिवाचकः ।

अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६१ ॥

कर्म्मनिर्मूलवचनः कृषिर्णो दास्यवाचकः । अकारो प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥

नाम्नाभगवतोनन्द कोटीनां स्मरणे च यत् । तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः

यद्विधं स्मरणे पुण्यं वचनाच्छ्रवणात्तथा ।
कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद्ध यत्स्मरणादिकात् ॥ ६४ ॥

विष्णोर्नाम्नाञ्च सर्वेषां सर्वात्सारं परात्परम् । कृष्णेतिमङ्गलंनाम सुन्दरंभक्तिदायकम्

ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं जन्ममृत्युहम् ।
ऋकाराद्ध दास्यमतुलं षकाराद्भक्तिमीप्सिताम् ॥ ६६ ॥

णकारात् सहवासञ्च तत्समं कालमेव च । तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभतेनात्र संशयः
ककारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिङ्कराः । ऋकारोक्तेन तिष्ठन्ति षकारात्पातकानि च
णकारोच्चारणाद्रोगा अकारान्मृत्युरेव च । ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः

स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात् कृष्णनाम्नो व्रजेश्वर ।
रथं गृहीत्वा धावन्ति गोलोकात् कृष्णकिङ्कराः ॥७० ॥
पृथिव्या रजसः संख्यां कर्त्तुं शक्ता विपश्चितः ।
नाम्नः प्रभावसंख्यानं सन्तो वक्तुं न च क्षमाः ॥ ७१ ॥

पुराशङ्करवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः । गुणनामप्रभावञ्च किञ्चिज्जानातिमद्गुरुः

ब्रह्मानन्तश्च धर्म्मश्च सुरर्षिर्मनुमानवाः ।
वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोड़शीं कलाम् ॥ ७३ ॥

इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च । यथामति यथाज्ञानं गुरुवक्त्रान्मया श्रुतम्
कृष्णःपीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः । देवकीनन्दनः श्रीशोयशोदानन्दनो हरिः
सनातनोऽच्युतो विष्णुः सर्वेशः सर्वरूपधृक् । सर्वाधारः सर्वगतिःसर्वकारणकारणम्
राधावन्धूराधिकात्माराधिकाजीवनःस्वयम् । राधिकासहचारी च राधामानसपूरकः ॥

राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः ।
राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम् ॥ ७८ ॥

राधिकाचित्तचोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः । परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुड़ध्वजः
नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि साम्प्रतं व्रज । जन्ममृत्युहराण्येव रक्ष नन्द शुभक्षणे

कृतं निरूपितं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम् ।
ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नः सङ्केतं श्रुणु मे मुखात् ॥ ८१ ॥
गर्भसङ्कर्षणादेव नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ ८२ ॥
नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषु तेनानन्तइतिस्मृतः । वलदेवो वलोद्रेकाद्धली च हलधारणात्
शितिवासा नीलवासान्मुषली मुषलायुधात् । रैवत्यासह सम्भोगाद्रेवतीरमणःस्वयम्
रोहिणीगर्भवासाच्च रोहिणेयो महामतिः ॥ ८४ ॥
इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम् ।
यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे ॥ ८५ ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो वभूव ह ।
निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम् ॥ ८६ ॥
प्रणम्योवाच नन्दस्तं वाक्यं विनयपूर्वकम् ।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ८७ ॥

नन्द उवाच ।

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म्म करिष्यत्येव को महान् । स्वयं शुभेक्षणंकृत्वा कुरुनामान्नप्राशनम्
यन्नामौघश्च कथितोराधाप्राणादिकोदश । तस्यापिकावाराधेतिकन्यकाकस्यच ध्रुवम्॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते ॥९०

श्रीगर्ग उवाच ।

श्रृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । पुरा गोलोकवृत्तान्तं श्रुतं शङ्करवक्त्रतः ॥
श्रीदाम्नो राधया सार्द्धं वभूव कलहो महान् । श्रीदामशापाद् दैवेनगोपीराधाचगोकुले
वृषभानुसुता सा च मातातस्याःकलावती । कृष्णस्यार्द्धाङ्गसम्भूतानाथस्यसदृशीसती
गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाज्ञयाधुना । अयोनिसम्भवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
मातुर्गर्भं वायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती । वायुनिःसरणे काले धृत्वाच शिशुविग्रहम्
आविर्वभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः । वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला यथा
श्रीकृष्णतेजसोऽर्द्धेन सा च मूर्त्तिमती सती । एका मूर्त्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदेनिरूपितः

इयं स्त्रीसा पुमान् किंवा सा वा कान्ता पुमानयम् ।
द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च ।
पराक्रमेण बुद्ध्या वा ज्ञानेन सम्पदापि च ॥ ९८ ॥

पुरतो गमनेनैव किन्तु सा वयसाधिका । ध्यायते तामयं शश्वदिमंसास्मरतिप्रियम् ॥
रचिता सास्य प्राणैश्च तत्प्राणैर्मूर्त्तिमानयम् । अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम्
स्वीकारं सार्थकं कर्त्तुं गोलोके यत् कृतं पुरा । कंसभीतिच्छलेनैव गोकुलागमनं हरेः
प्रतिज्ञापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः । राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजे । ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोकेच शङ्करम् ॥
पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः । देवानां दुर्लभां नन्द निशामय वदामि ते ॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां वाञ्छितांमुक्तिदां पराम् । रैफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगंशुभाशुभम्
आकारा गर्भवासञ्च मृत्युञ्चरोगमुत्सृजेत् । धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्

श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः ।
रैफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे ॥ १०७ ॥

सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम् । धकारः सहवासञ्च तत्तुल्यकालमेव च ॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेःसमम् । आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिःहरौ यथा
योगशक्तिंयोगमतिंसर्वकालंहरिस्मृतिम् । श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालञ्चकिल्बिषम्
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्तेनात्रसंशयः । राधामाधवयोः किञ्चिद्व्याख्यानञ्चयतःश्रुतम्
तदुक्तञ्च यथाज्ञानं साकल्यं वक्तुमक्षमः । आराद् वृन्दावने नन्द विवाहो भवितानयोः

पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाग्निं साक्षिणं मुदा ।
कुवेरपुत्रमोक्षञ्च गव्यस्याहृत्य भक्षणम् ॥ ११३ ॥

हिंसनं धेनुकस्यैव कानने तालभोजनम् । बककेशिप्रलम्बानां हिंसनञ्चाथ लीलया ॥
मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टान्नपानभोजनम् । भञ्जनं शक्रयागस्य शक्राद्गोकुलरक्षणम् ॥
गोपीनां वस्त्रहरणं व्रतसम्पादनन्तथा । ताभ्यः पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेप्सितम् ११६।

चेतसां हरणं तासामयं वश्याः करिष्यति ।

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥
पूर्णचन्द्रोदये नक्तं वसन्ते रासमण्डले । गोपीनां नवसम्भोगात् कृत्वा पूर्णं मनोरथम्
ताभिः सह जलक्रीड़ां करिष्यति कुतूहलात् । विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदामाशापहेतुकम्
गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह । मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्द्धनम् ॥
पुनः प्रबोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च ।
स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति ॥ १२१ ॥
रथस्यारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुनः । पितृभ्रातृव्रजैः सार्द्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे॥१२२
अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले । कौतुकेन च सायाह्ने नगरात्सर्वदर्शनम् ॥
मालाकारतन्तुवायकुब्जानां बन्धमोक्षणम् । धनुर्भङ्गं शङ्करस्य यागस्थानप्रदर्शनम् ॥
हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपतेः पुरः ।
कंसस्य हिंसनं सद्यः पित्रोर्निगड़मोक्षणम् ॥ १२५ ॥
प्रबोधनञ्च युष्माकमुग्रसेनाभिषेचनम् । तस्य तस्य वधूनाञ्च ज्ञानाच्छोकापनोदनम् ॥
भ्रातुः स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात् । गुरुपुत्रप्रदानञ्च पुनरागमनं गृहे ॥१२७॥
छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मनः । निर्माणं द्वारकायाञ्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् ।
द्वारकागमनञ्चैव यादवैः सह कौतुकात् । स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्द्धञ्चक्रीड़नम्
सौभाग्यवर्धनन्तासांपुत्रपौत्रादिकस्य च । मणिसम्बन्धिनोमिथ्याकलङ्कस्यचमोक्षणम्
साहाय्यं पाण्डवानाञ्च भारावतरणादिकम् । निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया
पारिजातस्य हरणं शक्राहङ्कारमर्दनम् ।
व्रतपूर्णञ्च सत्याया वाणस्य भुजकृन्तनम् ॥ १३२ ॥
मर्दनं शिवसैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम् । हरणं वाणपुत्र्याश्चैवानिरुद्धस्य मोक्षणम् ।
वाराणस्याञ्च दहनं विप्रदारिद्र्यभञ्जनम् । विप्रपुत्रप्रदानञ्च दुष्टानां दमनादिकम् ।१३४।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम् । कृत्वा च राधया सार्द्धं व्रजमागमिता पुनः
प्रस्थापयित्वा द्वाराञ्च परं नारायणांशकम् । सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधयासह
गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगताम्पतिः ।

नारायणश्च वैकुण्ठं गमिता स्म त्वया सह ॥ १३७ ॥

धर्म्मगृहमृषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेव च । इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम्
श्रूयतां साम्प्रतं कर्म यदर्थं गमनं मम । माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म्म शुभे क्षणे ॥१३६॥
गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्रतारके । चन्द्रस्थे मीनलग्ने च लग्नेशपूर्णदर्शने ॥१४०॥
वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे । सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके ॥१४१॥
आलोच्य पण्डितैः सार्द्धं कुरुकर्ममुदान्वितः । इत्युक्त्वा वहिरागत्यसमुवासमुनीश्वरः
हृष्टो नन्दो यशोदा च कर्मोद्योगं चकार ह । एतस्मिन्नन्तरे द्रष्टुं गर्गं गोपाश्चगोपिकाः
बालका बालिकाश्चैव आजग्मुर्नन्दमन्दिरम् । ददृशुस्ते मुनिश्रेष्ठं ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्
शिष्यसङ्घैः परिवृतं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । गूढयोगं प्रवोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा ॥
पश्यन्तं सस्मितं नन्दभवनानां परिच्छदम् । स्वर्णसिंहासनस्थञ्च योगमुद्राधरं वरम्
भूतं भव्यं भविष्यञ्च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा । हृदीश्वरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभावतः ॥

वहिर्यशोदाक्रोड़स्थं तादृशं सस्मितं शिशुम् ।
महेशदत्तध्यानेन यद्रूपञ्च निरूपितम् ॥ १४८ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम् । साश्रुनेत्रं पुलकितं निमग्नं भक्तिसागरे ॥१४६॥
हृदि पूजां प्रणामञ्च कुर्वन्तं योगचर्य्यया । मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते तञ्च स च तानाशिषं ददौ

आसनस्थो मुनिस्तस्थौ ते जग्मुः स्वालयं मुदा ।
नन्दः सानन्दयुक्तश्च वन्धून् मङ्गलपत्रिकाः ॥ १५१ ॥
प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद् दूरस्थितान् मुदा ।
दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम् ॥ १५२ ॥

गुड़कुल्यांतैलकुल्यांमधुकुल्याञ्चविस्तृताम् । नवनीतकुल्यां पूर्णाञ्च तक्रकुल्यांयदृच्छया
शर्करोदककुल्याञ्च परिपूर्णाञ्च लीलया । तण्डुलानाञ्च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान् ॥
पृथुकानां शैलशतं लवणानाञ्च सप्त च । सप्त शैलान् शर्कराणां लड्डुकानाञ्च सप्त च ।
परिपक्वफलानाञ्च तत्र षोड़श पर्वतान् । यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान् ॥
मोदकानाञ्च शैलञ्च स्वस्तिकानाञ्च पर्वतान् । कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद

कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानाञ्च मन्दिरम् । विस्तृतं द्वारहीनञ्च वासितोदकसंयुतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम् । नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदान्वितः ।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च ॥ १६० ॥
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात् । संस्कारयुक्तं रुचिरं चन्दनद्रवचर्चितम् ॥
प्राङ्गणं कदलीस्तम्भै रसालनवपल्लवैः । ग्रथितैः सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टयामास कौतुकात् ॥
युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पमालाविराजितैः ॥१६३ ॥
माल्यानां वरवस्त्राणां राशिभिश्च विराजितम् ।
गवाञ्च मधुपर्काणामासनानाञ्च नारद ॥ १६४ ॥
फलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्वितम् । नानाप्रकारैर्वाद्यैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः ॥
ढक्कानां दुन्दुभीनाञ्च पटहानां तथैव च । मृदङ्गमुरजादीनामानकानां समूहकैः ॥१६६॥
वंशीसन्नहनीकांस्यसरयन्त्रैश्च शब्दितम् ।
विद्याधरीणां नृत्येन भङ्गिमाभ्रमणेन च ॥१६७ ॥
गन्धर्वनायकानाञ्च सङ्गीतैर्मूर्च्छनायुतैः । स्वर्णसिंहासनानाञ्च रथानां निःस्वनैर्युतम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे नन्दमुवाच वाचको मुदा । आजग्मुर्वल्लवेन्द्राश्च बान्धवा वल्लवास्तथा ॥
अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चेति सत्वरम् । आजग्मूराजपुत्राश्च रत्नालङ्कारभूषिताः
आगतो गिरिभानुश्च सस्त्रीकश्च सकिङ्करः । रथानाञ्च चतुर्लक्षं गजानाञ्च तथैव च ॥
तुरङ्गमाणां कोटिश्च शिविकानां तथैव च ।
ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणाञ्च विपश्चिताम् ॥ १७२ ॥
वन्दिनांभिक्षुकाणाञ्च समूहैश्च समीपतः । गोपानांगोपिकानाञ्च संख्यांकर्त्तुञ्चकःक्षमः
पश्यागत्य वहिर्भूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः । श्रुत्वैवं तानुपव्रज्य समानीय व्रजेश्वरः ॥
प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम् । ऋष्यादिकसमूहश्च प्रणम्य शिरसा भुवि ।
पाद्यादिकञ्च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः ॥ १७५ ॥
वस्तुभिर्बन्धुभिः पूर्णं बभूव नन्दगोकुलम् ।

न कोऽपि कस्य शब्दं च श्रोतुं शक्तश्च तत्र वै ॥ १७६ ॥
त्रिमुहूर्त्तं कुवेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा । चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णञ्च गोकुलम् ॥
कौतुकापह्नवञ्चक्रुर्वन्धुवर्गाश्च व्रीडया । आनम्रकन्धराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य सम्पदम् ॥
नन्दः कृताह्निकः पूतो धृत्वा धौते च वाससी । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूषितः ॥
उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे ।
गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाज्ञां व्रजेश्वरः ॥ १८०॥
संस्मृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कृत्वाकर्मच वेदोक्तंभोजयामासबालकम्
गर्गवाक्यानुसारेण बालकस्य मुदान्वितः । कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे ॥
सघृतं भोजयित्वाच्च कृत्वानाम जगत्पतेः । वाद्यानि वादयामास कारयामासमङ्गलम्
नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च ।
भक्ष्यद्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ १८४ ॥
वन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ । भाराक्रान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेवच
ब्राह्मणान् वन्धुवर्गांश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः । मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम्
दीयतां दीयताञ्चैव खाद्यतां खाद्यतामिति । वभूव शब्दोऽत्युच्चैश्च सततं नन्दगोकुले ॥
रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानिच । प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानिच
चारूणि स्वर्णपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा ।
गत्वा गर्गाय विनयं चकार व्रजपुङ्गवः ॥ १८६ ॥
शिष्येभ्यःस्वर्णभारांश्च प्रददौविनियान्वितः । द्विजेभ्योऽप्यवशिष्टेभ्यःपरिपूर्णानि नारद

श्रीनारायण उवाच ।

गृहीत्वा श्रीहरिं गर्गो जगाम निभृतं मुदा । तुष्टाव परया भक्त्या प्रणम्य च तमीश्वरम्
साश्रुनेत्रः सपुलको भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वोवाच कृष्णपदाम्वुजे ॥

गर्ग उवाच ।

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन । प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्वुजे ॥
त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम् । देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद

अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो। ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किञ्चिन्नास्ति स्पृहा मम
इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम्। नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम्।
नाहं गृह्णामि ते ब्रह्मन् त्वत्पादसेवनं विना ॥ १९७ ॥
गोलोके वापि पाताले वासे नास्ति मनोरथः। किन्तु ते चरणाम्भोजे सन्ततं स्मृतिरस्तु मे
त्वन्मन्त्रं शङ्करात् प्राप्य कतिजन्मफलोदयात्। सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे
कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो पदाम्बुजे। रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति
सर्वेषामीश्वरः शर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया। मृत्युञ्जयोऽन्तकारश्च बभूव योगिनां गुरुः
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया। यस्यैकदिवसे ब्रह्मन् पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम्।
पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम् ॥ २०३ ॥
सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया। धत्ते सिद्धार्थवद्विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा ॥
सर्वसम्पद्विधात्री या देवीनाञ्च परात्परा। करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम्
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी। स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा
पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी। त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम्
विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती।
पूज्या बभूव सर्वेषां संपूज्य त्वत्पदाम्बुजम् ॥ २०८ ॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम्। ब्रह्मणो ब्राह्मणानाञ्च मतिस्त्वत्पादसेवया ॥
क्षमा जगद्विभर्तुश्च रत्नगर्भा वसुन्धरा। प्रसूतिः सर्वशस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ॥
राधा ममांशसम्भूता तव तुल्या च तेजसा। स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा। सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा ॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव। कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम्
इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः। रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः ॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः।

उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥२१५ ॥

इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिञ्च लभते ध्रुवम्
जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसङ्कटात् । तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥
कृष्णस्य सह कालञ्च कृष्णसार्द्धञ्च मोदते । कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह

श्रीनारायण उवाच ।

हरिं मुनिः स्तवं कृत्वा ददौ नन्दाय तं मुदा । उवाच तं गृहं यामि कुर्वाज्ञामिति वल्लभ
अहो विचित्रं संसारो मोहजालेन वेष्टितः । सम्मीलनञ्च विरहो नराणां सिन्धुफेनवत्
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा रुरोद नन्द एव च । सद्विच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥
सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम् । सर्वे नन्दादयो गोपा रुदन्तो गोपिकास्तदा
प्रणेमुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं विनयं मुने । दत्त्वाशिषं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा ॥
ऋषयो मुनयश्चैव बन्धुवर्गाश्च वल्लभाः । सर्वे जग्मुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं हृष्टमानसाः ॥

प्रजग्मुर्वन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ।
मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुरगस्वर्णभूषणैः ॥ २२५ ॥
आकण्ठपूर्णा भुक्त्या च भिक्षुका गन्तुमक्षमाः ।
स्वर्णवस्त्रभरोद्रेकपरिश्रान्ता मुदान्विताः ॥ २२६ ॥

सुमन्दगामिनः केचित् केचिद्भूमौ च शेरते । केचिद्वर्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन
केचिदूषुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन । कपर्दकानां वस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान् बहून् ॥
केचित्तानादुदुः स्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन । केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन
केचिद्बहुविधा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः । मरुतश्वेतसगरमान्धातॄणाञ्च भूभृताम् ॥
उत्तानपादनहुषनलादीनाञ्च याः कथाः । श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिदेवस्य कर्मणाम् ॥

येषां येषां नृपाणाञ्च श्रुत्वा वृद्धमुखात् कथाः ।
कथयन्तश्च ताः केचित् श्रुतवन्तश्च केचन ॥ २३२ ॥
स्थायं स्थायं गताः केचित् स्वापं स्वापञ्च केचन ।
एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजग्मुः स्वालयं मुदा ॥ २३३ ॥

हृष्टो नन्दो यशोदा च बालङ्कृत्वा च वक्षसि । तस्थौ स्वमन्दिरे रम्ये कुवेरभवनोपमे
एवं प्रवर्द्धतौ बालौ शुक्लचन्द्रकलोपमौ । गवां पुच्छञ्च भित्तिञ्च धृत्वा चोत्तस्थतुर्मुदा
शब्दार्द्धं वा तदर्द्धं वा क्षमौ यक्तुं दिने दिने । पित्रोर्हर्षञ्च वर्द्धन्तौ गच्छन्तौ प्राङ्गणे मुने

वालो द्विपादं पादं वा गन्तुं शक्तो वभूव ह ।
गन्तुं शक्तो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरिः ॥ २३७ ॥
वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्सङ्कर्षणः स्वयम् ।
ततो मुदं वर्द्धयन्तौ वर्द्धितौ च दिने दिने ॥ २३८ ॥

व्रजन्तौ गोकुले बालौ प्रकृष्टगमने क्षमौ । उक्तवन्तौ स्फुटं वाक्यं मायाबालकविग्रहौ
गर्गो जगाम मथुरां वसुदेवाश्रमं मुने । स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः ॥
मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम् । आनन्दाश्रुनिमग्नश्च श्रुतमात्राद् वभूव ह ॥
देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः । आनन्दाश्रुनिमग्ना सा रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥
गर्गस्तावाशिषं दत्त्वा जगाम स्वालयं मुदा । स्वगृहे तस्थतुस्तौ च कुवेरभवनोपमे ॥
यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपवर्हणः । पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च पतिर्गन्धर्वपुङ्गवः ॥
तासां प्राणाधिकस्त्वञ्चश्रृङ्गारनिपुणोयुवा । ततोऽभूर्ब्रह्मणःशापाद्दासीपुत्रोद्विजस्यच

ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् ।
सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिसेवया ॥ २४६ ॥

कथितं कृष्णचरितं नामान्नप्राशनादिकम् । जन्ममृत्युजरानिघ्नमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे कृष्णान्नप्राशनं नामकरणप्रस्तावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

———

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ । गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१॥
दधिदुग्धाज्यतक्रञ्च नवनीतं मनोरमम् । गृहस्थितञ्च यत्किञ्चिच्चखाद मधुसूदनः ॥२॥
मधु हैयङ्गवीनंयत्स्वस्तिकंशकटस्थितम् । भुक्त्वा पीत्वांशुकैर्वक्त्रसंस्कारंकर्त्तमुद्यतम्

दर्दर्श बालकं गोपी स्नात्वागत्य स्वमन्दिरम् ।
गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तभाजनम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च अहो कर्मेदमद्भुतम् ।
यूयं वदत सत्यञ्च कृतं केन सुदारुणम् ॥ ५ ॥

यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूचुश्च बालकाः । चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेव च
बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगेहिनी । वेत्रं गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना ७ ॥
पलायमानं गोविन्दं गृहीतुंन शशाक ह । ध्यानासाध्यं शिवादीनांदुरापमपियोगिनाम्
यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता घर्मसंयुता । तस्थौ कोपपरीतात्माशुष्ककण्ठौष्ठतालुका
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः । सन्तस्थौ पुरतो मातुःसस्मितोजगदीश्वरः
करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम् । बध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड़ मधुसूदनम्
बध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति । हरिस्तस्थौ वृक्षमूलेजगतां पतिरीश्वरः
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद । पपात वृक्षः शैलाभः शब्दंकृत्वा भयानकम् ॥
सुवेशः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्बभूव ह । दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः ॥
प्रणम्य जगतीनाथं शातकुम्भपरिच्छदम् । किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालङ्कारभूषितः
सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी । क्रोड़े चकार बालंतं रुदन्तं श्यामसुन्दरम्

आजग्मुर्गोकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम् ।

यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा ॥ १७ ॥
अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह ।
धनं धान्यञ्च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥ १८ ॥
सुमतिर्नास्ति ते सत्यं ज्ञातं नन्दव्रजेश्वरि ।
न भक्षितं यत्पुत्रेण तत् सर्वं निष्फलं भुवि ॥ १९ ॥
पुत्रं बद्ध्वा गव्यहेतोर्वृक्षमूले च निष्ठुरे ।
गृहकर्मणि व्यग्रायां दैवाद् वृक्षः पपात ह ॥ २० ॥
वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद् बालोऽपि जीवितः ।
प्रनष्टे बालके मूढ़े वस्तूनां किं प्रयोजनम् ॥ २१ ॥
आशिषं युयुजुर्विप्रा वन्दिनश्च शुभावहाम् ।
द्विजेन कारयामासुर्नामसङ्कीर्त्तनं हरेः ॥२२ ॥
एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम् ।
उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः ॥ २३ ॥

नन्द उवाच ।

यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम् ।
अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ॥ २४ ॥

शतकूपाधिका वापी शतवापीसमं सरः । सरःशताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः ॥
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इहैव च परत्र च ॥
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वा स्वभार्य्याञ्च तस्थौ नन्दः स्वमन्दिरे । यशोदा रोहिणीचैव नियुक्ते गृहकर्मणि

नारद उवाच ।

सुवेशःपुरुषः को वा वृक्षरूपी च गोकुले । भगवन् हेतुना केन वृक्षत्वं समवाप ह ॥

नारायण उवाच ।

कुवेरतनयः श्रीमान्नाम्ना यो नलकूवरः । जगाम नन्दनवनं क्रीड़ार्थंसह रम्भया ॥२९॥

निर्जने सरस्वतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे। वटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना ॥ ३० ॥
विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥ ३१ ॥

परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षौमवस्त्रैश्च वेष्टितम्।
तत्र रम्भां समानीय विजहार यथेच्छया ॥ ३२ ॥

शृङ्गाराष्टप्रकारञ्च विपरीतादिकं सुखम्। चुम्बनं षट्प्रकारञ्च यथास्थानं निरूपितम् ॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगन्त्रिविधाश्लेषणं मुदा। नखदन्तकरक्रीडां चकार रसिकेश्वरः ॥ ३४ ॥
जलात् स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः। रतिभोगंप्रकुर्वन्तंददर्शदेवलो मुनिः॥
नग्नां रम्भां मुक्तकेशीं पीनश्रोणिपयोधराम्। नखदन्तक्षताङ्गीञ्च पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥
पश्यन्तीं प्राणनाथञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। वक्रभ्रूभङ्गयुक्ताञ्च कामुकीञ्च ददर्श ताम्
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूपिताम्

किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरविन्दुसंयुताम्।
तया युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं स्मरान्वितम् ॥ ३६ ॥

वृक्षत्वं याहि पापिष्ठेत्युवाच मुनिपुङ्गवः। शशाप रम्भां कामार्त्तां मानुषीत्वं भवेतिच
जनमेजयस्य सुभोग्या भविता कामिनीति च। त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेतिच
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम्। रम्भेत्वमिन्द्रसंयोगात्पुनरायास्यसिध्रुवम्
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम निजमन्दिरम्। कुवेरतनयः श्रीमान् स जगाम निजालयम्॥
इत्येवं कथितं विप्र रम्भाख्यानं वदामि ते। सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते

कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च बभूव सुन्दरी वरा।
ताञ्च सालङ्कृतां कृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः ॥ ४५ ॥

नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च। जन्मेजयस्य सुभगा बभूव महिषी वरा ॥
स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रेमे तया सह। एकदा नृपतिश्रेष्ठ अश्वमेधेन दीक्षितः ॥
अश्वसङ्गोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे। यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी

द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा।
शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम् ॥ ४६ ॥

तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह। मूर्च्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम् ५०

सा च सम्भोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः।
नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गं जगाम ह॥ ५१॥
राजा श्रुत्वा मृतां दृष्ट्वा विललाप भृशं मुहुः।
यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो ददौ पूर्णाञ्च दक्षिणाम्॥ ५२॥

रम्भा च मानवं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह। इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविभञ्जनम्

नलकूवरमोक्षञ्च रम्भायाश्च महामुने॥ ५३॥

पुण्यदं कृष्णचरितं जन्ममृत्युजरापहम्। इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते॥५४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे वृक्षार्जुनभञ्जनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदशोऽध्यायः

राधास्वरूपवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ। तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम्॥

सरःसुस्वादुतोयञ्च पाययामास तत् पपौ। उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः। चकार मायया कस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने

मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम्। झञ्झावातं महाशब्दं वज्रशब्दञ्च दारुणम्

वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पमानांश्च पादपान्।
दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान्नन्दो भयमवाप ह॥ ५॥
कथं यास्यामि गोवत्सान् विहाय स्वाश्रमं बत।
गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम्॥ ६॥

एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा। पयोभिया हरिश्चैव पितुः कण्ठं दधार सः ॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्णसन्निधिम्। गमनं कुर्वती राजहंसखञ्जनगञ्जनम् ॥८॥
शरत्पार्वणचन्द्राभासुष्टवक्त्रा मनोहरा। शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥९॥
परितस्तारकापक्ष्मविचित्रकज्जलोज्ज्वला। खगेन्द्रचञ्चुचारुश्रीशंसानाशकनासिका ॥
तन्मध्यस्थलशोभार्हस्थूलमुक्ताफलोज्ज्वला। कवरीवेशसंयुक्ता मालतीमाल्यवेष्टिता ॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टककुण्डला। पक्वबिम्बफलानाञ्च श्रीमुष्टाधरयुग्मका १२

मुक्तापङ्क्तिप्रभान्तैकदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वला।
ईषत्प्रफुल्लकुन्दानां सुप्रभानाशकस्मिता॥ १३॥

कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरबिन्दुभूषिता। कपालं मल्लिकायुक्तं बिभ्रती श्रीयुतं सती ॥
सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विता। मणिरत्नेन्द्रसाराणां हारोरःस्थलभूषिता ॥१५॥
सुचारुश्रीफलयुगकठिनस्तनसङ्गता। पत्रावलीश्रिया युक्ता दीप्ता सद्रत्नतेजसा ॥१६॥
सुचारु वर्तुलाकारमुदरं सुमनोहरम्। विचित्रत्रिवलीयुक्तं निम्ननाभिञ्च बिभ्रती ॥१७॥
सद्रत्नसाररचितमेखलाजालभूषिता। कामास्त्रसारभ्रूभङ्ग्योगीन्द्रचित्तमोहिनी ॥१८॥
कठिनश्रोणियुगलं धरणीधरनिन्दितम्। स्थलपद्मप्रभामुष्टचरणं दधती मुदा ॥१९॥
रत्नभूषणसंयुक्तं यावकद्रवसंयुतम्। मणीन्द्रशोभासंमुष्टसालक्तकपुनर्भवम् ॥ २० ॥
सद्रत्नसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खविभूषिता ॥ २१ ॥
रत्नांगुलीयनिकरवह्निशुद्धांशुकोमला। चारुचम्पकपुष्पाणां प्रभामुष्टकलेवरा ॥ २२ ॥
सहस्रदलसंयुक्तक्रीड़ाकमलमुज्ज्वलम्। श्रीमुखश्रीदर्शनार्थं बिभ्रती रत्नदर्पणम् ॥२३॥

दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ।
चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्तीं दिशो दश ॥ २४ ॥
ननाम तां साश्रुनेत्रो भक्तिनम्रात्मकन्धरः।
जानामि त्वां गर्गमुखात् पद्माधिकप्रियां हरेः ॥ २५ ॥

जानामीमंमहाविष्णोःपरंनिर्गुणमच्युतम्। तथापि मोहितोऽहञ्च मानवो विष्णुमायया
गृहाण प्राणनाथञ्च गच्छ भद्रे यथासुखम्। पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वापूर्णमनोरथम्

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया ।
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ॥ २८ ॥
उवाच नन्दं सा यत्नान्नप्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्टा त्वयानन्दकतिजन्मफलोदयात्
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् । अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरित्रं गोकुले व्रज
वरं वृणु व्रजेश त्वं यत्ते मनसि वाञ्छितम् । ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपिदुर्लभम्
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः । युवयोश्चरणेभक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥
युवयोः सन्निधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।
आवाभ्यां देहि जगतामम्बिके परमेश्वरि ॥ ३३ ॥
श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी । दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम् । प्रफुल्लहृदये शश्वत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा
मायायुवाञ्च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मद्वरात् ।
गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥ ३६ ॥
एवमुक्त्वा तु सानन्दंकृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि । दूरंनिनायश्रीकृष्णंबाहुभ्याञ्चयथेप्सितम्
कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥ ३८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम् । ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥
नानाविचित्रचित्राढ्यैः चित्रकाननशोभितम् ।
सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥ ४० ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवयुक्तया । संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया ॥ ४१ ॥
नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यमालाजालैर्विभूषितम् ॥
मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम् । भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः ॥
कुङ्कुमाकारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् ॥ ४३ ॥
युक्तं षट्पदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानञ्च पुष्पितैः । सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा
ददर्श तत्र ताम्बूलं कर्पूरादिसमन्वितम् । जलञ्च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम्

सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद । पुरुषं कमनीयञ्च किशोरश्यामसुन्दरम् ॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् । शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम् ॥
पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् । मणीन्द्रसारनिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम् ॥ ४८ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरवलयान्वितम् । मणीन्द्रकुण्डलाभ्याञ्च गण्डस्थलविराजितम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम् ॥ ५० ॥

शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् । मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छशुशोभितम् ॥
त्रिवङ्कचूड़ां विभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम् । क्रोड़ं बालकशून्यञ्च दृष्ट्वा तं नवयौवनम् ॥
सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ । रूपंरासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् ॥
कामाच्चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपौ मुदा । निमेषरहिता राधा नवसङ्गमलालसा ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा । तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम् ॥५५

नवसङ्गमयोग्याञ्च पश्यतीं वक्रचक्षुषा ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि ॥ ५६ ॥

अद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये । त्वंमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसी च वरानने॥
यथा त्वञ्च तथाऽहञ्चभेदोहिनावयोर्ध्रुवम् । यथाक्षीरेचधावल्यंयथाग्नौदाहिकासती ॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहंत्वयिसन्ततम् । विनामृदाघटंकर्तुं विनास्वर्णेनकुण्डलम् ॥
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन । तथा त्वया विना सृष्टिमहङ्कर्तुं नचक्षमः ॥
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः । आगच्छ शयने साध्वीकुरुवक्षःस्थलेहिमाम्॥
त्वं मे शोभास्वरूपासि देहस्य भूषणं यथा । कृष्णंवदन्तिमांलोकास्त्वयैवरहितंयदा ॥
श्रीकृष्णञ्च तदातेऽपित्वयैव सहितंपरम् । त्वञ्चश्रीस्त्वञ्चसम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी
सर्वशक्तिस्वरूपासिसर्वरूपोऽहमक्षरः । यदा तेजःस्वरूपोऽहंतेजोरूपासि त्वं तदा ॥६४
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी । सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥

त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।

ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ६६ ॥
शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने । आवयोर्भेदबुद्धिश्च यः करोति नराधमः
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । पूर्वान् सप्त परान् सप्तपुरुषान् पातयत्यधः
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।
अज्ञानादावयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥ ६९ ॥
पच्यन्ते नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । राशब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्
धा शब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः । ये सेवन्ते च दत्त्वा मामुपचारांश्च षोड़श
यावज्जीवनपर्य्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम ॥ ७१ ॥
सा प्रीतिर्मम जायते राधाशब्दात्ततोऽधिका ।
प्रिया न मे तथा राधे राधा वक्ता ततोऽधिकः ॥ ७२ ॥
ब्रह्मानन्तः शिवो धर्मो नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च कार्त्तिकेयश्च मत्प्रियः
लक्ष्मीः सरस्वतीदुर्गा सावित्रीप्रकृतिस्तथा । ममप्रियाश्चदेवाश्चतास्तथापिन तत्समाः
ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सति ।
भिन्नस्थानस्थितास्ते च त्वञ्च वक्षःस्थले स्थिता ॥ ७५ ॥
या मे चतुर्भुजा मूर्त्तिर्बिभर्त्ति वक्षसि प्रियाम् ।
सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयं सदा ॥ ७६ ॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णस्तथौ तल्पे मनोरमे । उवाच राधिकानाथं भक्तिनम्रात्मकन्धरा

राधिकोवाच ।

स्मरामिसर्वंजानामि विस्मरामि कथंविभो । यत्त्वं वदसि सर्वाहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः
ईश्वरस्याप्रियाःकेचित् प्रियाश्च कुत्र केचन ।
ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥ ७९ ॥
तृणञ्च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम् । तथापि योग्यायोग्ये च सम्पत्तौ च समाकृपा
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्य्यत्क्षणं गतम् । तत्क्षणञ्च युगसमं नाहं गणयितुं क्षमा
वक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम् ।

दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयविरहानलात् ॥ ८२ ॥

पुरः पपात मे दृष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे। नीता मया न हि क्लेशाद् द्रष्टुमन्यत् कलेवरम्
प्रत्येकमङ्गं दृष्ट्वैव दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे। दृष्ट्वा मुखारविन्दञ्च नान्यङ्गन्तुं न सा क्षमा
राधिकावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः। तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम्॥

श्रीकृष्ण उवाच।

न खण्डनीयं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम्।
तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥ ८६ ॥

त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयङ्कालः समागतः। यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम्॥

तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहञ्च को विधिः।
विधातुश्च विधाताहं येषां यल्लेखनं कृतम् ॥ ८८ ॥

ब्रह्मादीनाञ्च क्षुद्राणां न तत् खण्ड्यं कदाचन। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा जगाम पुरतो हरेः
मालाकमण्डलुकर ईषत्स्मेरचतुर्मुखः। गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम् ।९०
साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकन्धरः। स्तुत्वानत्वा जगद्धाता जगाम हरिसन्निधिम्

पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम्।
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे ॥ ९२ ॥

चकार सम्भ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम्। कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा ॥९३

यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः।

ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं दृष्टं कृष्णप्रसादतः ॥ ९४ ॥

सुदुर्लभञ्च सर्वेषां भारते च विशेषतः। षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया ॥ ९५ ॥
भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः। आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम्
वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टञ्च वृतं मुदा। राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम्
हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय। मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् ॥९८॥

दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च।

न हीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम् ॥ ९९ ॥
सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना ।
सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् ॥ १०० ॥
त्वंकृष्णाङ्गार्धसम्भूतातुल्याकृष्णेनसर्वतः । श्रीकृष्णस्त्वमयंराधात्वंराधावाहरिःस्वयम्
न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् ।
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वंञ्च गोलोकोऽस्ति यथाम्बिके ॥ १०२ ॥
वैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्चत्वमजन्यातथाम्बिके । यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः
तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता ।
पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः ॥ १०४ ॥
आत्मना देहरूपात्वमस्याधारस्त्वमेव हि । अस्यानुप्राणैस्त्वंमातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा ।
नित्योऽयञ्च तथा कृष्णस्त्वञ्च नित्या तथाम्बिके ॥ १०६ ॥
अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केननिरूपितः । अहं विधाताजगतां वेदानांजनकःस्वयम्
तं पठित्वा गुरुमुखाद्भवन्त्येव बुधा जनाः । गुणानां वा स्तवानां ते शतांशं वक्तुमक्षमः
वेदो वा पण्डितो वान्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ।
स्तवानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्बिका सदा ॥ १०९ ॥
त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वात्वांस्तोतुमीश्वरः । यद्वस्तु दृष्टं सर्वेषांतद्विवक्तुंबुधः क्षमः
यददृष्टाश्रुतं वस्तु तन्निर्वक्तुञ्चकःक्षमः । अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः
सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरि । यथागमं यथोक्तञ्च न मां निन्दितुमर्हसि
ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा । जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणेदोषःक्षणेगुणः
जननी जनको यो वा सर्वं क्षमतिस्नेहतः । इत्युक्त्वा जगतां धातातस्थौ च पुरतस्तयोः
प्रणम्य चरणाम्भोजं सर्वेषां वन्द्यमीप्सितम् ।
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
राधामाधवयोः पादे भक्तिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ ११५ ॥

कर्म्मनिर्मूलनं कृत्वामृत्युंजित्वासुदुर्जयम् । विलङ्घ्यसर्वलोकांश्चयाति गोलोकमुत्तमम्

श्रीनारायण उवाच ।

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका ॥ ११७ ॥

वरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते । राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः॥

वरञ्च युवयोः पादपद्मभक्तिञ्च देहि मे । इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह ॥

पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतांपतिः । तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्यच हुताशनम्

हरिं संस्मृत्य हवनं चकारविधिना विधिः । उत्थायशयनात्कृष्ण उवास वह्निसन्निधौ

ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम् । प्रणमय्यपुनःकृष्णं राधां तां जनकःस्वयम्

कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणम् । पुनः प्रदक्षिणं राधां कारयित्वा हुताशनम्

प्रणमय्य ततः कृष्णंवासयामास तं विधिः । तस्या हस्तञ्चश्रीकृष्णंग्राहयामासतंविधिः

वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् । संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित्

श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।

स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ॥ १२६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालां जानुविलम्बिताम् ।

श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा ॥ १२७ ॥

प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधाञ्च कमलोद्भवः । राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम्॥

पुनश्च वासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः ॥ १२८ ॥

तद्वामपार्श्वे राधाञ्च सस्मितांकृष्णचेतसम् । पुटाञ्जलिंकारयित्वामाधवंराधिकांविधिः

पाठयामास वेदोक्तान् पञ्चमन्त्रांश्च नारद । प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकांविधिः

कन्यकाञ्च यथा तातो भक्त्या तस्थौहरेःपुरः । एतस्मिन्नन्तरे देवा सानन्दपुलकोद्गमाः

दुन्दुभिं वादयामासुश्चानकं मुरजादिकम् । पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥१३२

जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः॥१३३

युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ॥ १३४ ॥

मदीयचरणाम्भोजे सुदृढ़ा भक्तिरस्तु ते । स्वस्थानं गच्छ भद्रन्ते भविता नात्र संशयः
मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाज्ञया । श्रीकृष्णस्यवचःश्रुत्वा विधाता जगतां मुने
प्रणम्य राधां कृष्णञ्च जगाम स्वालयं मुदा । गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मितावक्रचक्षुषा
सा ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद ब्रीड़या मुखम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कामवाणप्रपीड़िता ॥
प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः । चन्दनागुरुपङ्कञ्च कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥
ललाटे तिलकं कृत्वा ददौ कृष्णस्य वक्षसि । सुधापूर्णं रत्नपात्रं मधुपूर्णं मनोहरम् ॥
प्रददौ हरये भक्त्या बुभुजे जगतीपतिः । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ।१४१

ददौ कृष्णाय सा राधा सादरं बुभुजे हरिः ।
चखाद सस्मिता राधा हरिदत्तं सुधारसम् ॥ १४२ ॥

ताम्बूलं तेन दत्तञ्च बुभुजे पुरतो हरेः । कृष्णश्चर्विततांम्बूलं राधिकायै मुदा ददौ॥१४३
चखाद परया भक्त्या पपौ तन्मुखपङ्कजम् । राधाचर्विततांम्बूलं ययाचे मधुसूदनः॥१४४

जहास न ददौ राधा क्षमेत्युक्तं तया मुदा ।

चन्दनागुरुकस्तूरीकङ्कुमद्रवमुत्तमम् । राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम् ॥
यः कामोध्यायते नित्यं यस्यैकचरणाम्बुजम् । बभूवतस्यसवशो राधासन्तोषकारणात्
यद्भृत्यभृत्यैर्मदनो जितः सर्वक्षणं मुने । स्वेच्छामयो हि भगवान् जितस्तेनकुतूहलात्
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि । चकारशिथिलंवस्त्रंचुम्बनञ्चचतुर्विधम्
बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका । चुम्बनेनौष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥
शृङ्गारेणैव कवरी सिन्दूरतिलकं मुने । जगामालक्तकाङ्कञ्च विपरीतादिकेन च ॥ १५०॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी बभूव नवसङ्गमात् । मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम्॥
प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत् । शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित्

पुनस्ताञ्च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् ।
क्षतविक्षतसर्वाङ्गीं नखदन्तैश्चकार ह ॥ १५३ ॥

कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जीराणांमनोहरः। बभूव शब्दस्तत्रैव शृङ्गारसमरोद्भवः ।१५४
पुनस्ताञ्च समाकृष्य शय्यायाञ्च निवेश्य च । चकार रहितां राधां कवरीबन्धवाससा

निर्जने कौतुकात् कृष्णः कामशास्त्रविशारदः। चूडावेशांशुकैर्हीनश्चकार तञ्च राधिका

न कस्य कस्माद्धानिश्च तौ द्वौ कार्य्यविशारदौ।

जग्राह राधा हस्तात्तु माधवो रत्नदर्पणम् ॥ १५७ ॥

मुरलीं माधवकराज्जग्राह राधिका बलात्। चित्तापहारं राधायाश्चकार माधवो बलात् जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम्। निवृत्ते कामयुद्धेच सस्मितावक्रलोचना प्रददौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने। प्रददौ दर्पणं कृष्णः क्रीड़ाकमलमुज्ज्वलम् चकार कबरीं रम्यां सिन्दूरतिलकं ददौ। विचित्रपत्रकं वेशञ्चकारैवं विधं हरिः ।१६१

विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा।

वेशं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ॥ १६२ ॥

बभूव शिशुरूपश्च कैशोरं च विहाय च। ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीड़ितं क्षुधा ॥१६३ यादृशं प्रददौ नन्दो भीतं तादृशमच्युतम्। विनिश्वस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहातुरा। उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूक्तिमिति कातरा मायां करोषि मायेश किङ्करीं कथमीदृशीम्। इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपातचरुरोद च रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग् बभूवाशरीरिणी। कथं रोदिषि राधेत्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम्

आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्रागमिष्यति।

करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्द्धमीप्सिताम् ॥ १६८ ॥

छायां विधाय स्वगृहेस्वयमागत्य मा रुद। कृत्वा क्रोड़े च प्राणेशं मायेशं बालरूपिणम् त्यज शोकं गृह गच्छ सुन्दरीत्थंप्रबोधिता। श्रुत्वैवं वचनं राधाकृत्वा क्रोड़ेचबालकम् ददर्श पुष्पोद्यानञ्च वनं सद्रत्नमण्डपम्। तूर्णं वृन्दावनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम् ॥ सा मनोयायिनी देवी निमिषार्द्धेन नारद। संसिक्तस्निग्धमधुररसजा रक्तलोचना॥१७२

यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह।

गृहीत्वैवं शिशुं स्थूलं रुदन्तञ्च क्षुधातुरम् ॥ १७३ ॥

गोष्ठे त्वत्स्वामिना दत्तं प्राप्नोति यातनां पथि।

संसिक्तं वसनं वत्से मेघाच्छन्नेऽतिदुर्दिने ॥ १७४ ॥

पिच्छले कर्दमोद्रेके यशोदा वोढुमक्षमा । गृहाण वालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ॥ गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति । इत्युक्त्वा वालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहंप्रति यशोदा वालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ । वहिर्निविष्टासा राधास्वगृहे गृहकर्मणि नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह । इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम् ।

सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृष्णविवाह-नवसङ्गमप्रस्तावना नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोड़शोऽध्यायः

वकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

माधवो वालकैः सार्द्धमेकदा हलिना सह । भुक्त्वा पीत्वाच क्रीड़ार्थं जगाम श्रीवनंमुने तत्र नानाविधां क्रीड़ांचकार मधुसूदनः । कृत्वातां शिशुभिःसार्द्धं चालयामासगोधनम् ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह । तत्र स्वादु जलं पीत्वा वनेचस महावलः तत्रैकदैत्यो वलवान् श्वेतवर्णो भयङ्करः । विकृताकारवदनो वकाकारश्च शैलवत् ॥

दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्वलकेशवौ ।
यथा ह्यगस्त्यो वातापिं सर्वं जग्रास लीलया ॥ ५ ॥

वकग्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः । चक्रुर्हाहेति सन्त्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः शक्रश्चिक्षेप वज्रञ्च मुनेरस्थिविनिर्मितम् । न ममार वकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥७॥ नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः । यमदण्डं सूर्य्यपुत्रस्तेन कुण्ठो वभूव ह ॥८॥ वायव्यास्त्रञ्च वायुश्च तेन स्थानान्तरं ययौ । वरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीड़ितः हुताशनश्चं वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः । कुवेरस्यार्धचन्द्रेण छिन्नपादो वभूव ह ॥ १०॥

ईशानस्य च शूलेन बभूव मूर्च्छितोऽसुरः ।
ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णश्चक्रुर्भियाशिषम् ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ददाह दैत्यसर्वाङ्गं वाह्याभ्यन्तरमीश्वरः
तत्सर्वं वमनं कृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः । वकं निहत्य वलवान् शिशुभिर्गोधनैः सह
ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोसुरः ॥ १४ ॥

नाम्ना प्रलम्बो वलवान् महाधूर्त्तश्च शैलवत् ।
शृङ्गाभ्याञ्च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै ॥ १५ ॥

दुद्रुवुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः । वलो जहास वलवान् ज्ञात्वा भ्रातरमीश्वरम् ॥
वालकान् बोधयामास भयं किमित्युवाच ह । तद्विषाणं गृहीत्वाच स्वयं श्रीमधुसूदनः
भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले । प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्यच महीतलम्
जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा । हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो वलेन सह सत्वरम् ॥
गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः । गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो वली

वेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम् ।
मूर्ध्नि कृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम् ॥ २१ ॥

उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले । जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः ॥
स भग्नदन्तो दैत्यश्च वज्राङ्गचर्वणादहो । श्रीकृष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले
स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्बभूवह॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः ॥२४॥
तत्राजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजाः पीतवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो वनमालाविभूषिताः
विनोदमुरलीहस्ताः क्वणन्मञ्जीररञ्जिताः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेशधरा वराः ॥२६॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातराः ।
प्रदीप्तं रथमास्थाय रत्नसारविनिर्मितम् ॥ २७ ॥

भाण्डीरवनमाजग्मुर्यत्र सन्निहितो हरिः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः॥२८॥
प्रणम्यच हरिंस्तुत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् । मुक्त्वादेहं परित्यज्य वैष्णवाःपुरुषास्त्रयः

सम्प्राप्य दानवीं योनिं बभूवुः कृष्णपार्षदाः ।

नारद उवाच ।

के ते च दिव्यपुरुषा वैष्णवा दैत्यरूपिणः ॥ ३० ॥

कथयस्व महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् ।

नारायण उवाच ।

शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ ३१ ॥

श्रुतं महेशवदनात् सूर्य्यपर्वणि पुष्करे । हरेर्गुणप्रसङ्गेन कथयामास शङ्करः ॥ ३२ ॥
संपृष्टो मुनिसङ्घैश्चमया धर्मेण ब्रह्मणा । ब्रह्मपुत्र महाभाग कथाम्भुवनपावनीम् ॥३३॥
कथयामास विस्तार्य सावधानं निशामय । गन्धर्वेशो गन्धवाहः पर्वते गन्धमादने ॥
महांस्तपस्वी प्रवरो हरिसेवनतत्परः । बभूवुश्चतुरः पुत्रा गन्धर्वप्रवरा मुने ॥ ३५ ॥

सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् ।

ते च दुर्वाससः शिष्याः श्रीकृष्णार्चनतत्पराः ॥ ३६ ॥

नित्यं दत्त्वा च कमलं सम्पूज्य तं पपुर्जलम् ।

वसुदेवः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपार्श्वकौ ॥ ३७ ॥

चत्वारो वैष्णवश्रेष्ठास्तेपुस्ते पुष्करे तपः । चिरकालं तपस्तप्त्वा बभूवुः सिद्धमन्त्रिणः
ज्येष्ठो दुर्वासोयोगंसम्प्राप्ययोगिनांवरः । सिद्धश्चाकृतदारश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥
सद्यो देहं परित्यज्य बभूव कृष्णपार्षदः । एकदा भ्रातरस्ते च जग्मुश्चित्रसरोवरम् ॥४०
पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः । पद्मानाञ्चयनं कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने ॥४१।
दृष्ट्वा निबध्य संजग्मुः सर्वे शङ्करकिङ्कराः । बलिष्ठादुर्बलान्धृत्वाजग्मुः शङ्करसन्निधिम्
ते सर्वे शङ्करं दृष्ट्वा प्रणेमुः शिरसा भुवि । तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याशिषमुत्तमाम्

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ।

शिव उवाच ।

के यूयं पद्महर्त्तारः पार्वत्याश्च सरोवरे ॥ ४४ ॥

लक्षयक्षै रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे । नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती ॥ ४५ ॥
व्रते त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्द्धने । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा भिया

पुटाञ्जलियुताः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ।

गन्धर्वा ऊचुः ।

वयं गन्धर्वप्रवरा गन्धवाहसुता विभो ॥ ४७ ॥

हरये कमलं दत्त्वा पिवामो जलमीश्वर । वयं न विघ्नो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं सरः ॥
गृहाण कमलं सर्वं युष्माकञ्च फलङ्कुरु । न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्यजलं हर ॥

किं वा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च ।

नित्यं ध्यात्वा यत्पदाब्जं पद्मेन पूजयामहे ॥ ५० ॥

साक्षात् तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता वयं प्रभो । एकंब्रह्म ह्यद्वितीयं क देहःक्वचरूपवान् ॥
भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया । किन्तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो ॥
यतो नो मानसस्पूर्णं तद्रूपं दर्शयाच्युत । द्विभुजं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥
विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम् । एकवक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम् ॥ ५४ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥
मयूरपिच्छचूड़ञ्च मालतीमाल्यभूषितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाराजिविभूषितम् ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । गोपीसङ्घैर्दृश्यमानं सस्मितैर्वक्रलोचनैः ॥
नवयौवनसम्पन्नं राधावक्षःस्थलस्थितम् । ब्रह्मादिभिःस्तूयमानंवन्द्यन्ध्येयमभीप्सितम्
स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम् । इत्युक्त्वा पुरतःशम्भोस्तस्थुर्गन्धर्वपुङ्गवाः ॥
श्रीकृष्णरूपश्रवणात् पुलकाङ्कितविग्रहः । गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ह
श्रीकृष्णरूपश्रवणात् साश्रुपूर्णविलोचनः । मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रवरा महीम् ॥
पूतां कर्तुञ्च भ्रमथ चरणाम्भोजरेणुना । अहं वाञ्छां करोम्येव श्रीकृष्णभक्तदर्शनम् ॥
समागमो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः । पार्वत्याश्च सुराणाञ्च सदायूयंममप्रियाः

आत्मनश्चात्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः ।

किन्तु मोघञ्च न भवेन्मया यत् स्वीकृतं पुरा ॥ ६४ ॥

तच्छ्रूयतां महाभागाः पार्वतीव्रतकर्मणि । सरसश्चैव पद्मानि यैर्हृतानि व्रतान्तरे ॥६५
ते तूर्णमासुरीं योनिं गमिष्यन्ति न संशयः । नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यतेकचित्

सम्प्राप्य मानवीं योनिं गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ।
यूयं श्रीकृष्णरूपञ्च प्रत्यक्षं द्रष्टुमुत्सुकाः ॥ ६७ ॥
ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो वत्सा वृन्दारण्ये च भारते ।
दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं सम्प्राप्य वैष्णवोत्तमाः ॥ ६८ ॥

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य गमिष्यथ हरेर्गृहम् । अधुना वाञ्छनीयञ्च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः ॥ तत्सर्वं पश्यथेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिवः । रूपं दृष्ट्वा साश्रुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम् आजग्मुर्दानवीं योनिमिति ते दानवेश्वराः । वसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च वकासुरः ॥ सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः । हरस्य वरदानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् ॥७२

मृत्युं सम्प्राप्य श्रीकृष्णाज्जग्मुस्ते कृष्णमन्दिरम् ।
इत्येवं कथितं विप्र हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ ७३ ॥
वककेशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग त्वत्प्रसादाद्यदद्भुतम् ॥ ७४ ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पार्वत्या किं कृतं व्रतम् ।
को वाराध्योव्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च कः ॥ ७५ ॥
कानि द्रव्याणि भगवन् व्रतोपयोगिकानि च ।
कति कालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम् ॥ ७६ ॥
सुविचार्य्य वद विभो श्रोतुं कौतूहलं मम ।

श्रीनारायण उवाच ।

व्रतं त्रैमासिकं नाम पतिसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

आराध्योभगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने । विषुवेच समारम्भः समाप्तिर्दक्षिणायने संयम्य पूर्वदिवसेकृत्वावश्यंहविष्यकम् । स्नात्वा वैशाखसंक्रान्त्यांसङ्कल्प्यजाह्नवीतटे घटे मणौ शालग्रामे जले वा पूजयेद् व्रती । ध्यायेद्भक्त्याच राधेशं संपूज्य पञ्च देवताः॥ ध्यानञ्च सामवेदोक्तं निबोध कथयामि ते । नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् । शरत्प्रफुल्लपद्माक्षं मञ्जुलाञ्छनरञ्जितम् ॥
मानसं गोपिकानाञ्च मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ।
राधया दृश्यमानञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ ८३ ॥
ब्रह्मानन्तेशधर्माद्यैः स्तूयमानमहं भजे । ध्यात्वा कृष्णञ्च ध्यानेन तमावाह्यव्रती मुदा ॥
ध्यायेत् तदा राधिकाञ्च ध्यानं मध्यन्दिने रतम् ।
राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम् ॥८५ ॥
रासमण्डलमध्यस्थांराधाधिष्ठातृदेवताम् । रासेश्वरोरःस्थलस्थांरसिकांरसिकप्रियाम्
रसिकप्रवरां रम्यां रमाञ्च रमणोत्सुकाम् । शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम् ॥
चक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तां मञ्जीरेणैव रञ्जिताम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीषद्धास्यमनोहराम् ॥
चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम् । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुनायुताम्
चारुपत्रावलीयुक्तां वह्निशुद्धांशुकोज्ज्वलाम् ।
सद्रत्नकुण्डलाभ्याञ्च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् ॥ ९० ॥
रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविराजिताम् । रत्नकङ्कणकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम् ॥९१॥
सद्रत्नसाररचिताक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् । ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम् ॥
सर्वेशेन स्तूयमानां सर्वबीजाम्भजाम्यहम् ।
इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां ताञ्च पूजयेत् ॥ ९३ ॥
भक्त्या दत्त्वा प्रतिदिनमुपचारांश्च षोड़श । प्रत्येकञ्च पृथक् कृत्वा सर्वं दद्याद्व्रतीमुदा
सहस्रकमलं दिव्यं शतमष्टोत्तरं मुने । होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः ॥९५॥
दद्याद् भक्त्या च कृष्णाय स्वाहेत्युच्चार्य यत्नतः ।
रसालस्य कदल्याश्च ह्यामं वा पक्वमेव च ॥ ९६ ॥
नित्यमष्टोत्तरशतं दद्याद्भक्त्या क्षतैः फलम् । नित्यञ्च भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणानां शतं मुने
होमं कुर्य्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः । दद्याद्भक्त्या च कृष्णायराधिकासहिताय च
तिलेन हवनं कुर्यादाज्यमिश्रेण नारद । वाद्यञ्च वादयेन्नित्यं कारयेद्धरिकीर्त्तनम् ॥९९
एवं मासत्रयं कृत्वा प्रतिष्ठां तदनन्तरम् । प्रतिष्ठादिवसे तत्र विधानंश्रृणु नारद ॥१००

कमलानाञ्च नवतिसहस्राण्यक्षतानि च । ब्राह्मणानां सहस्राणि नव विप्रेन्द्र यत्नतः ॥
भोजयेत्परमान्नानि स्वादूनि मिष्टकानि च । फलं विंशाधिकं सप्तशतं नवसहस्रकम् ॥
दद्यान्नानाविधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम् ।
संस्कृताग्निञ्च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ १०३ ॥
नवतिञ्च सहस्राणि हुत्वाऽऽज्येन तिलेन च । सवस्त्रञ्च सभोज्यञ्च यज्ञसूत्रफलान्वितम्
गन्धपुष्पार्चितान् भक्त्या दद्यान्नतिललड्डुकान् ।
दद्यान्नवतिकुम्भांश्च शीततोयप्रपूरितान् ॥ १०५ ॥
एवंविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निरूपितम्
वृषेन्द्राणां सहस्रञ्च स्वर्णशृङ्गसमन्वितम् । इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम् ॥
विशिष्टसन्ततिकरं पतिसौभाग्यवर्द्धनम् । व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि ॥
सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम् । कदापि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः
दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्त्ता च स्ववचस्करः । अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णभक्तियुता सती
भवेद्व्रतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः । व्रतञ्च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमथावयोः ॥ १११
सर्वेषाञ्च व्रतानाञ्च श्रेष्ठं शृणु वदामि ते । स्वायम्भुवस्य च मनोः शतरूपाभिधा सती ॥
तया कृतं प्रथमतः कृत्वागस्त्यं पुरोहितम् । तदाकृतं देवहूत्या चाकूत्या च कृतं तदा ॥
पुरोहितं पुलस्त्यञ्च कृत्वा श्रुत्युक्तयामुने । चकार रोहिणी तत्तु क्रतुं कृत्वा पुरोहितम्
रतिश्चकार तद्भक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः । अकारिदतद्व्रतंभक्त्या तारया गुरुकान्तया॥
महासंभृतसम्भारो वशिष्ठस्तत्पुरोहितः । तद्दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्रशच्या कृतं व्रतम्
महासंभृतसम्भारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः । व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम्
अतिसंभृतसम्भारो मरीचिस्तत्पुरोहितः । तद्दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मन्नुवाच शङ्करं मुदा ॥
पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिनम्रात्मकन्धरा ।

पार्वत्युवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् ॥ ११६ ॥
आवयोरिष्टदेवस्य व्रतानाञ्च परं व्रतम् । हरेराराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् ॥ १२०॥

इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम्।
हरेराराधनस्यापि कलांनार्हन्ति षोड़शीम् ॥ १२१ ॥
बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम्। जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् ॥
तस्य पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा। तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वञ्च गणेश्वरः।
ध्यायं ध्यायं यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान् ॥ १२४ ॥
यश्च यं सन्ततं ध्यायेत् स तमाप्नोति निश्चितम्।
गुणेन तेजसा बुद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत् ॥ १२५ ॥
कृष्णस्य स्मरणाद् ध्यानात्तपसा तस्य सेवया।
मया प्राप्तो हि भगवान् स्वामी वा पुत्र एव च ॥ १२६ ॥
अलभ्यं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा। स्वामी मे त्वादृशःपुत्रौकार्तिकेयगणेश्वरौ
पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो।
पार्वती वचनं श्रुत्वा सुप्रीतःशङ्करः स्वयम् ॥ १२८ ॥
प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः।

श्रीमहादेव उवाच।

महालक्ष्मीस्वरूपासि किमसाध्यं तवेश्वरि ॥ १२९ ॥
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी।
त्वञ्च यस्य गृहे देवि सर्वैश्वर्यस्य भाजनम् ॥ १३० ॥
न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवनान्मरणं वरम्। अहं ब्रह्माच विष्णुश्च त्वयिभक्त्या शुभप्रदे
संसारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः।
को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरौ ॥ १३२ ॥
त्वद्विहीना ह्यशक्ताश्च त्वयाच वयमीश्वराः। युक्ता पतिव्रतायाश्च या पुराज्ञाश्रुतौ श्रुता
गृहीत्वाज्ञामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते। व्रतमेतत् कृतं याभिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणम्
सनत्कुमारो भगवान् व्रते तेऽस्तु पुरोहितः।

कमलानां ब्राह्मणानां द्रव्याणां दायकोऽप्यहम् ॥ १३५ ॥
कुवेरं द्रव्यकोशे च रक्षकं कुरु सुन्दरि ।
व्रते च दानाध्यक्षोऽहं धनदात्री च श्रीः स्वयम् ॥ १३६ ॥
पाठको वह्निदेवश्च वरुणो जलदायकः । वस्तूनां वाहका यक्षास्तदध्यक्षः षडाननः ॥
स्थानसंस्कारकर्ता च व्रतेऽत्र पवनः स्वयम् । परिवेष्टास्वयं शक्रश्चन्द्रोऽधिष्ठापकोव्रते
सूर्य्यश्च दाननिर्वक्ता योग्यायोग्यं यथोचितम् ।
व्रतोपयुक्तं यद्द्रव्यं दत्त्वा नियमितं प्रिये ॥ १३९ ॥
ततोऽधिकं फलं पुष्पं हरये देहि सुन्दरि ।
व्रते नियमितान् विप्रान् भोजयित्वा ततोऽधिकान् ॥ १४० ॥
असंख्यब्राह्मणानाञ्च भक्त्या कुरु निमन्त्रणम् ।
समाप्तिदिवसे स्वर्णं रत्नं मुक्तां प्रवालकम् ॥ १४१ ॥
व्रतोक्तां दक्षिणां दत्त्वा सर्वं देहि द्विजातये ।
इत्युक्त्वा शङ्करस्ताञ्च कारयामास तद् व्रतम् ॥ १४२ ॥
व्रतञ्चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च विलक्षणम् ।
इत्येवं कथितं विप्र पार्वत्या यद् व्रतं कृतम् ॥ १४३ ॥
रत्नं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणाः पार्वतीव्रते । इतिहासः श्रुतः सर्वः प्राकृतं शृणु नारद ॥
श्रीकृष्णबालचरितं नूत्नं नूत्नं पदे पदे । हत्वा तान् दानवेन्द्रांश्च शिशुभिः सह गोकुले
जगाम स्वगृहं कृष्णः कुवेरभवनोपमम् । सर्वेभ्यो वनवार्ता च प्रोक्ता च शिशुभिर्मुदा
श्रुत्वैवं विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमवाप ह ।
आनीय वृद्धान् गोपांश्च गोपिकाः स्थविरास्तथा ॥ १४७ ॥
युक्तिञ्चकारतैःसार्द्धमालोच्यसमयोचिताम् । कृत्वायुक्तिञ्चगोपेशस्तत्स्थानंत्यक्तुमुद्यतः
गन्तुंवृन्दावनं सर्वानुवाच तत्क्षणे मुने । नन्दाज्ञाञ्च समाकर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः ॥
गोपाश्च गोपिकाश्चैव बालका बालिकास्तथा ।
कृष्णेन हलिना सार्द्धं प्रययुर्बालका मुदा ॥ १५० ॥

सङ्गीतञ्च प्रगायन्तो नानावेशसमन्विताः । वेणुप्रवादकाः केचित् केचिच्छृङ्गप्रवादकाः
करतालकराः केचिद्वीणाहस्ताश्च केचन । शरयन्त्रकराः केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन ॥
नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्गोपालबालकाः । केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन ॥
नवमाल्यकराः केचित् केचिदाजानुमालिनः । केचित्पल्लवचूड़ाश्च पुष्पचूड़ाश्च केचन ॥

गोपालबालकाः सर्वे विप्रेन्द्रनवकोटयः ।
जग्मुर्गोप्यो वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा ॥ १५५ ॥
वृद्धाश्च कोटिशस्तत्र वृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ।
राधिकासहचारिण्यो बाला गोपालिका मुने ॥ १५६ ॥

ताः सुशीलादयो भव्या नानालङ्कारभूषिताः । दिव्यवस्त्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा
काश्चिदारुह्य शिविकां रथमारुह्य काश्चन । राधा स्यन्दनमारुह्य शातकुम्भपरिच्छदम् ॥
ताभिर्युक्ता ययौ देवी रत्नालङ्कारभूषिता । यशोदा रोहिणी चैव रत्नालंकारभूषिता ॥
ययौ स्यन्दनमारुह्य शातकुम्भपरिच्छदम् । नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्विभाकरः
वीरभानुश्चन्द्रभानुर्गजस्थाः प्रययुर्मुदा । श्रीकृष्णबलदेवौ तौ रत्नालंकारभूषितौ ॥१६१
स्वर्णस्यन्दनमास्थायजग्मतुःपरयामुदा। कोटिशःकोटिशोगोपावृद्धाश्च यौवनान्विताः

अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चैव केचन ।
गोपा ययुर्मुदायुक्ताश्चोद्धता नन्दकिङ्कराः ॥ १६३ ॥
वृषस्था गर्दभस्थाश्च सङ्गीततानतत्पराः ।
अपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्त शतकोटयः ॥ १६४ ॥
मुदान्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालंकारभूषिताः ।
काश्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित् कज्जलवाहिकाः ॥ १६५ ॥
काश्चित् कन्दुकहस्ताश्च काश्चित् पुत्तलिकाकराः ।
भोगद्रव्यकराः काश्चित् क्रीड़ाद्रव्यकरा वराः ॥ १६६ ॥
वेशद्रव्यकराः काश्चित् काश्चिन् मालाकरा वरा ।
काश्चिद्वाद्यकहस्ताश्च प्रययुर्गोपिका मुदा ॥ १६७ ॥

वह्निशुद्धांशुकानाञ्च वाहिकाश्चैव काञ्चन । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रववाहिकाः ॥१६८॥
काश्चित्सङ्गीतनिरताः काश्चिच्चित्रकथारताः ।
कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिविकान्विताः ॥ १६९ ॥
कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः कोटिशो रथाः ।
कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः ॥ १७० ॥
कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः ।
कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षाणि हस्तिनाम् ॥ १७१ ॥
हस्तिपाङ्कुशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं वनम् । सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यं गृहं मुने ॥
वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम् ।
उवाच गोपान् श्रीकृष्णो गृहांश्चेष्टतमान् व्रजाः ॥१७३ ॥
अद्य सन्तिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णभाषितम् । कुत्रसन्तिगृहाःकृष्णेत्येवमूचुस्तुगोपकाः
इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो वाक्यमब्रवीत् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः ॥ १७५ ॥
देवप्रीतिं विना शक्ता नहि द्रष्टुञ्च केचन । अद्य तिष्ठत गोपालाः संपूज्य वनदेवताः ॥
प्रातर्यूयं गृहान् रम्यान् द्रक्ष्यथाद्य ध्रुवं मुदा । धूपदीपादिनैवेद्यैर्बलिभिः पुष्पचन्दनैः ॥
देवीञ्च वटमूलस्थां पूजांकुरुतचण्डिकाम् । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वागोपाःसंपूज्यदेवताम्
भुक्त्वा भोगान् दिने रात्रौ तत्रैव सुषुपुर्मुदा ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे बकप्रलम्बकेशी(नामुद्धारो)वृन्दावनगमनं (च) नाम षोड़शोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

नगरनिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

सुप्तेषु व्रजनन्देषु नक्तं वृन्दावने वने । सुनिद्रिते च निद्रेशे मातृवक्षःस्थलस्थिते ॥ १ ॥
निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च । यूनांश्च सुखसंयोगानुपक्तमानसासु च ॥
कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित् ।
कासुचिच्छकटस्थासु स्यन्दनस्थासु कासुचित् ॥ ३ ॥
पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे । नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते ॥ ४ ॥
सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्त्ते पञ्चमे गते । तत्राजगाम भगवान् शिल्पिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥
बिभ्रद्दिव्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम् । रत्नालंकारमतुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम् ॥६॥
ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत् । अतीव सुन्दरः श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥
विशिष्टशिल्पनिपुणैः सार्द्धं शिल्पित्रिकोटिभिः ।
मणिरत्नैर्हेमरत्नैर्लोहास्त्रयुतहस्तकैः ॥ ८ ॥
आजग्मुर्यक्षनिकराः कुवेरवनकिंकराः । स्फाटिका रत्नवेशाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ॥
पद्मरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा वराः । केचित्स्यमन्तककराश्चन्द्रकान्तकरास्तथा ॥
सूर्य्यकान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा वराः । केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा वराः ॥
केचिच्च गन्धसाराणां मणीन्द्राणाञ्च वाहकाः । केचिच्चामरहस्ताश्च केचिद्दर्पणवाहकाः
स्वर्णपात्रघटादीनां वाहकाश्चैव केचन । विश्वकर्मा च सामग्रीं दृष्ट्वा तु सुमनोहराम्
नगरं कर्तुमारेभे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते श्रेष्ठमुत्तमम् ॥
पुण्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः । तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम् ॥१५॥
गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम् ।
चतुष्कोटि चतुःशालं तत्रैवातिमनोहरम् ॥ १६ ॥

कपाटस्तम्भसोपानसहितं प्रस्तरैर्वरैः । चित्रपुत्तलिकापुष्पकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥१७॥
शैलजाश्मविनिर्माणवेदिप्राङ्गणसंयुतम् । शिलाप्राकारसंयुक्तं प्रचकाराथ लीलया॥१८॥
यथोचितबृहत्क्षुद्रद्वारद्वयसमन्वितम् । स्फाटिकाकारमणिभिर्मुदायुक्तो विनिर्ममे ॥१९
सोपानैर्गन्धसाराणां स्तम्भैः शंकुविनिर्मितैः ।
कपाटैर्लौहसाराणां राजतैः कलशोज्ज्वलैः ॥ २० ॥
वज्रसारविनिर्माणप्राकारैः परिशोभितम् । कृत्वाश्रमं वल्लवानां यथास्थानं यथोचितम्
वृषभानोर्गृहं रम्यं कर्तुमारब्धवान् पुनः ॥ २१ ॥
प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारान्वितं परम् । चारुविंशच्चतुःशालं महामणिविनिर्मितम् ॥
रत्नसारविकारैश्च तूलिकानिकरैर्वरैः । सुवर्णाकारमणिभिरारोहैरतिसुन्दरैः ॥ २३ ॥
लोहसारकपाटैश्च शोभितं चित्रकृत्रिमैः । मन्दिरे मन्दिरे रम्ये सुवर्णकलशोज्ज्वलम् ॥
तदाऽऽश्रमैकदेशे च निर्जनेऽतिमनोहरे । चारुचम्पकवृक्षाणामुद्यानाभ्यन्तरे मुने ॥२५॥
सम्भोगार्थं कलावत्याः स्वामिना सह कौतुकात् ।
विशिष्टेन मणीन्द्रेण चकाराट्टालिकालयम् ॥ २६ ॥
युक्तं नवभिरारोहैरिन्द्रनीलविनिर्मितैः । स्थूणाकपाटनिकरैर्गन्धसारविकारजैः ॥
अत्युच्छ्रितं मनोरम्यं सर्वतोऽपि विलक्षणम् ॥ २७ ॥

नारद उवाच ।

कलावती का भगवन् कस्य पत्नी मनोहरा । यत्नतो यद्गृहं रम्यं निर्ममे सुरकारुणा

नारायण उवाच ।

पितॄणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती । सुन्दरी वृषभानोश्च पतिव्रतपरायणा।
यस्याश्च तनया राधा कृष्णप्राणाधिका प्रिया ॥ २९ ॥
श्रीकृष्णार्द्धांशसम्भूता तेनतुल्या च तेजसा । यस्याश्च चरणाम्भोजरजःपूता वसुन्धरा
यस्याश्च सुदृढां भक्तिं सन्तो वाञ्छन्ति सन्ततम् ॥ ३० ॥

नारद उवाच ।

पितॄणां मानसीं कन्यां व्रजे तिष्ठन् कथं मुने । मानवःकेन पुण्येन कथमाप सुदुर्लभाम्

वृषभानुर्व्रजपतिः पुराऽऽसीत् को महानहो । कस्य वा केन तपसाराधाकन्या बभूव ह

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां वरः । प्रहस्योवाच प्रीत्या तमितिहासं पुरातनम्

नारायण उवाच ।

बभूवुः कन्यकास्तिस्रः पितॄणां मानसात्पुरा ॥ ३४ ॥

कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः । रत्नमाला च जनकं वरयामास कामुकी ॥३५

शैलाधिपं हरेरंशं मेनका सा हिमालयम् । दुहिता रत्नमाला या अयोनिसम्भवा सती॥

श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपरायणा ।

कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती ॥ ३७ ॥

अयोनिसम्भवा सा च हरेर्माया सनातनी ।

सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम् ॥ ३८ ॥

कलावती सुचन्द्रश्च मनुवंशसमुद्भवम् । स च राजा हरेरंशस्तां संप्राप्य कलावतीम्

मन्ये गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम् । अहो रूपमहो वेशमहो अस्या नवं वयः ॥

सुकोमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम् । गमनं दुर्लभमहो गजखञ्जनगञ्जनम् ॥

कटाक्षैर्मोहितुंशक्तामुनीन्द्राणाञ्चमानसम् ।श्रोणीयुग्मंसुललितंरम्भास्तम्भविनिर्मितम्॥

स्तनद्वयं सुकठिनमतिपीनोन्नतं मुने । नितम्बयुगलं चारु रथचक्रविनिर्मितम् ॥ ४३

हस्तौ पादौ च रक्तौ च पक्वबिम्बफलाधरम् । पक्वदाड़िमबीजाभं दन्तपङ्क्तिमनोहरम्॥

शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम् । भूषणैर्भूषितं रूपं कृतं सद्रत्नभूषणम् ॥ ४५

इतीव मत्वा दृष्ट्वा च कामबाणप्रपीड़ितः । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुक्या सह कामुकः

क्रीड़াञ्चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे । रम्यायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुरुवायुना ॥

चारुचम्पकपुष्पाणां तल्पे रतिसुखावहे । मालतीमल्लिकानाञ्च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते ॥

पुष्पभद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने । पश्चिमाब्धितटान्तस्थकानने जन्तुवर्जिते ॥ ४६॥

नन्दने मन्दरद्रोण्यां कावेरीतीरजे वने ।

शैले शैले सुरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे ॥५० ॥

द्वीपेद्वीपे तु रहसि स रेमे वामया सह । नवसङ्गमसंयोगाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥५१
एवं वर्षसहस्रं तद् गतमेव मुहूर्त्तवत् । कृत्वा विहारं सुचिरं स विरक्तो बभूव ह ॥
जगाम तपसे विन्ध्यशैलं तीर्थं तया सह । भारतेऽतिप्रशस्यञ्च पुलहाश्रममुत्तमम् ॥
तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यवर्षसहस्रकम् । मोक्षाकाङ्क्षी निस्पृहश्च निराहारः कृशोदरः ॥
मूर्च्छामाप मुनिश्रेठो ध्यात्वाकृष्णपदाम्बुजम् । तद्गात्रव्याप्तवल्मीकंसाध्वीदूरञ्चकार सा
निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणैश्च पञ्चभिः । मांसशोणितरिक्तन्तमस्थिसंसक्तविग्रहम्
उच्चैरुरोद शोकार्ता निर्जने तु कलावती । हे नाथ नाथेत्युच्चार्य कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम्
विललाप महादीना पतिव्रतपरायणा । दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम् ॥
श्रुत्वा च रोदनं तस्याः कृपया च कृपानिधिः । आविर्बभूव जगतां विधाता कमलोद्भवः
क्रोड़े कृत्वा च तन्तूर्णं रुरोद भगवान् विभुः । ब्रह्मा कमण्डलुजलेनासिच्य नृपविग्रहम्
जीवं सञ्चारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् । नृपेन्द्रश्चेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम्

प्रणनाम च तं दृष्ट्वा तञ्च कामसमप्रभम ।
तमुवाचेति सन्तुष्टो वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ६२ ॥

स विधेर्वचनं श्रुत्वा वव्रे निर्वाणमीप्सितम् । दयानिधे त्वं दयया वरं दातुं समुद्यतः
प्रसन्नवदनः श्रीमान स्मेराननसरोरुहः । कृत्वानुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥

तमुवाच सती त्रस्ता वरं दातुं समुद्यतम् ।

कलावत्युवाच ।

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भवः ॥ ६५ ॥
अतोऽवलाया हे ब्रह्मन् का गतिर्भविता वद ।
विना कान्तञ्च कान्तानां का शोभा चतुरानन ॥ ६६ ॥

व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुतौ श्रुतम् । गुरुश्चाभीष्टदेवश्च तपोधर्म्ममयः पतिः ॥६७
सर्वेषाञ्च प्रियतरो न बन्धुः स्वामिनः परः । सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन् पतिसेवा सुदुर्लभा
स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलंभवेत् । व्रतं दानं तपःपूजा जपहोमादिकञ्चयत्
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम् । दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि च॥

पठनं सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च । वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम् ॥
एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
स्वामिसेवाविहीना या वदन्ति स्वामिने कटुम् ॥ ७२ ॥
पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम्
सन्ततं विपरीतश्च कुर्वन्ति शब्दमुल्वणम् । मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा ॥
मुखे तासां ददत्येवमुल्कां च यमकिङ्कराः । भुक्त्वा भोगश्च नरके कृमियोनिं प्रयान्ति ताः
भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरीषकम् । श्रुत्वाऽहं विदुषां वक्त्राद्वेदवाक्येषु निश्चितम्
जानामि किञ्चिदबला त्वं वेदजनको विभुः ।
गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा ॥ ७७ ॥
सर्वज्ञमेवंभूतं त्वां बोधयामि किमच्युत ।
प्राणाधिकोऽयं कान्तो मे यदि मुक्तो बभूव ह ॥ ७८ ॥
मम को रक्षिता ब्रह्मन् धर्मस्य यौवनस्य च । कौमारे रक्षिता तातो दत्त्वा पात्राय सत्कृती
सर्वदा रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः । त्रिष्ववस्थासु नारीणां त्रातारश्च त्रयः स्मृताः
याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मबहिष्कृताः । असत्कुलप्रसूतास्ता कुलटा दुष्टमानसाः
शतजन्मकृतं पुण्यं तासां नश्यति पद्मज । पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा न यूनि वार्द्धके
पतिव्रतानां कान्ते च सर्वकाले समास्पृहा । सुते स्तनन्धये स्नेहो मातॄणां चातिशोभिते
पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ।
स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ने भोजनावधि ॥ ८४ ॥
कान्ते चित्ते सतीनाञ्च स्वप्ने ज्ञाने च सन्ततम् ।
दुःखान्तो बन्धुविच्छेदः पुत्राणाञ्च ततोऽधिकः ॥ ८५ ॥
सुदारुणः स्वामिनश्च दुःखं नातः परं स्त्रियः ।
अविदग्धा यथा दग्धा जलदग्नौ विषादने ॥ ८६ ॥
तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धविरहानले ।
नान्ने तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं विना ॥ ८७ ॥

विरहाग्नौ मनौ दग्धं वह्नौ शुष्कतृणं यथा ।
नहि कान्तात् परो वन्धुर्नहि कान्तात् परः प्रियः ॥ ८८ ॥
नहि कान्तात् परो देवो नहि कान्तात् परो गुरुः ।
नहि कान्तात् परो धर्मो नहि कान्तात् परं धनम् ॥ ८९ ॥
नहि कान्तात् पराः प्राणा न कः कान्तात् परः स्त्रियः ।
निमग्नं कृष्णपादाब्जे वैष्णवाणां यथा मनः ॥ ९० ॥
यथैकपुत्रे मातुश्च यथा स्त्रीषु च कामिनाम् ।
धेनुषु कृपणानाञ्च चिरकालार्जितेषु च ॥ ९१ ॥
यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा ।
स्तनादाने शिशूनाञ्च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा ॥ ९२ ॥
यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनाञ्च तथा प्रिये ।
तं विना जीवितुं ब्रह्मन् क्षणमेकं न च क्षमम् ॥ ९३ ॥
मरणं जीवनं तासाञ्जीवनं मरणाधिकम् । सद्भर्तृ रहितानाञ्च शोकेन हृतचेतसाम् ॥
अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात् ॥ ९४ ॥
विपरीतः कान्तशोको वर्द्धते भक्षणादहो । कर्मच्छाया सतीनाञ्च सङ्गिनीनां सती वरा
इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि । करोषि चेज्जगद्धातरिमंमुक्तं मया विना ॥
त्वां शप्त्वाहं त्वयि विभो पश्य दास्यामि स्त्रीवधम् ।
श्रुत्वा कलावतीवाक्यमुवाच विस्मितो विधिः ॥ ९७ ॥
हितं पीयूषसदृशं भयसंविग्नमानसः ।

ब्रह्मोवाच ।

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिने च त्वया विना ॥ ९८ ॥
मुक्तं कर्तुं त्वया सार्द्धं साम्प्रतं नाहमीश्वरः ।
मातर्मुक्तिर्विना भोगाद् दुर्लभा सर्वसम्मता ॥ ९९ ॥
निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगनिकृन्तने ।

कतिवर्षं स्वर्गभोगं कुरुष्व स्वामिना सह ॥ १०० ॥
ततस्तु युवयोर्जन्म भविता भारते सति ।
यदा भविष्यसि सती कन्या ते राधिका स्वयम् ॥ १०१ ॥
जीवन्मुक्तौ तथा सार्द्धं गोलोकञ्च गमिष्यथ ।
कति कालं नृपश्रेष्ठ भुङ्क्ष्व भोगं स्त्रिया सह ॥ १०२ ॥
साध्वी वै सत्वयुक्ता च मा मां शप्तुं त्वमर्हसि ।
जीवन्मुक्ताः समाः सन्तः कृष्णपादाब्जमानसाः ॥ १०३ ॥
वाञ्छन्ति हरिदास्यञ्च दुर्लभं न च निर्वृतिम् ।
इत्युक्त्वा तौ वरौ दत्त्वा सन्तस्थौ पुरतस्तयोः ॥ १०४ ॥
ययतुस्तौ तं प्रणम्य जगाम स्वालयं विधिः ।
आजग्मतुस्तौ कालेन भुक्त्वा भोगञ्च भारतम् ॥ १०५ ॥

परं पुण्यप्रदं दिव्यं ब्रह्मादीनाञ्च वाञ्छितम् । सुचन्द्रो वृषभानुश्चलल्लाभजन्म गोकुले ॥
पद्मावत्याश्च जठरे सूरभानोश्च रेतसा । जातिस्मरो हरेरंशः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥१०७
ववर्द्धानुदिनं तत्र व्रजगेहे व्रजाधिपः । सर्वज्ञश्च महायोगो हरिपादाब्जमानसः ॥१०८॥
नन्दबन्धुर्वदान्यश्च रूपवान् गुणवान्सुधीः । कलावती कान्यकुब्जे बभूवायोनिसम्भवा
जातिस्मरा महासाध्वी सुन्दरी कमलाकला । कान्यकुब्जे नृपश्रेष्ठो भनन्दन उरुक्रमः ॥

स तां संप्राप्य योगान्ते यज्ञकुण्डसमुत्थिताम् ।
नग्नां हसन्तीं रूपाढ्यां स्तनान्धामिव बालिकाम् ॥ १११ ॥

तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च प्रतप्तकनकप्रभाम् । कृत्वा वक्षसि राजेन्द्रः स्वकान्तायै ददौमुदा
मालावती स्तनं दत्त्वा तां पुपोष प्रहर्षिता । तदन्नप्राशनदिने सतां मध्ये शुभे क्षणे ११३
नामरक्षणकाले च वाग्बभूवाशरीरिणी । कलावतीति कन्याया नाम रक्ष नृपेति च ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तच्चकार महीपतिः । विप्रेभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च धनं ददौ ॥

सर्वेभ्यो भोजयामास चकार सुमहोत्सवम् ।
कालेन सा रूपवती यौवनस्था बभूव ह ॥ ११६ ॥

अतीवसुन्दरश्यामा मुनिमानसमोहिनी। चारुचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रनिभानना ११७
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या प्रफुल्लपद्मलोचना। नितम्बश्रोणिभारार्त्ता स्तनभारनता सती ११८
गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी। ददर्श नन्दःपथि तां गच्छन्तीञ्च मुदान्वितः॥

जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च मूर्च्छामाप तथापि च।
त्रस्तो लोकान् पथि गतान् तूर्णं पप्रच्छ सादरम् ॥ १२० ॥
गच्छन्ती कस्य कन्येयमिति ह्योवाच तं जनः।
भनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती ॥ १२१ ॥

कमलाकलया धन्या सम्भूता नृपमन्दिरे। कौतुकेन च गच्छन्तीक्रीड़ार्थं सखिमन्दिरम्
व्रजं व्रज व्रजश्रेष्ठेत्युक्त्वा लोको जगाम ह। प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम्॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं विवेश नृपतेः सभाम्। उत्थाय राजा सम्भाष्य स्वर्णसिंहासनं ददौ
इष्टालापं बहुतरञ्चकार च परस्परम्। विनयावनतो नन्दः सम्बन्धोक्तिं चकार ह ॥१२५

नन्द उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम्।
सम्बन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

सुरभानुसुतः श्रीमान् वृषभानुर्व्रजाधिपः। नारायणांशो गुणवान् सुन्दरश्च सुपण्डितः
स्थिरयौवनयुक्तश्च योगीजातिस्मरोयुवा। कन्या तेऽयोनिसम्भूता यज्ञकुण्डसमुद्भवा॥

त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती।
स च योग्यस्त्वद्दुहितुस्तद्योग्या ते च कन्यका ॥ १२९ ॥

विदग्धाया विदग्धेन सम्बन्धो गुणवान्नृप। इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु विरराम च संसदि॥

उवाच तं नृपश्रेष्ठो विनयावनतो मुने।

भनन्दन उवाच।

सम्बन्धो हि विधिवशो न मे साध्यो व्रजाधिप ॥ १३१ ॥

प्रजापतिर्योगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च। का कस्य पत्नी कन्या वावरःकोवास्वसाधनः
कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः। भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं श्रुतौ श्रुतम् ॥

अन्यथा निष्फलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा । वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिताचेत्सुताभम
पुरा भूतैव को वाहं केनान्येन निवार्य्यते । इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकन्धरः ॥
मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नारद । नृपानुज्ञामुपादाय व्रजराजो व्रजं गतः ॥१३६
गत्वा स कथयामास सुरभानोश्च संसदि । सुरभानुश्च यत्नेन नन्देन च समादरम् ॥१३७
सम्बन्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम् । विवाहकाले राजेन्द्रो विपुलंयौतुकं ददौ
गजरत्नमश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम् । वृषभानुर्मुदायुक्तः प्राप्य ताञ्च कलावतीम् ॥१३९
रैमे सुनिर्जने रम्ये बुबुधे न दिवानिशम् । चक्षुर्निमेषविरहाद्व्याकुला स्वामिना विना

व्याकुलो वृषभानुश्च क्षणेन च तया विना ।
जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी ॥ १४१ ॥

जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानुर्मुदान्वितः । ववर्द्ध च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नवम् ॥
सदा सकामा सा प्रौढ़ा सच कामसमोयुवा । तयोःकन्याच कालेनराधिकासावभूवह

दैवात्सुदामशापेन श्रीकृष्णस्याज्ञया पुरा ॥ १४३ ॥
अयोनिसम्भवा सा च कृष्णप्राणाधिका सती ।
यस्या दर्शनमात्रेण तौ विमुक्तौ वभूवतुः ॥ १४४ ॥

इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु साम्प्रतम् । पापेन्धनानां दाहे च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
वृषभान्वाश्रमं गत्वा शिल्पिनां प्रवरो मुदा । स्थानान्तरं विश्वकर्मा जगामस्वगणैःसह
क्रोशमात्रं स्थलं चारु मनसालोच्य तत्त्ववित् । आश्रमं कर्तुमारेभे नन्दस्य सुमहात्मनः

कृत्वानुमानं वुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम् ।
परिखाभिर्गभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं वरम् ॥ १४८ ॥

दुर्लङ्घ्याभिर्वैरिभिश्च खचिताभिश्च प्रस्तरैः । पुष्पोद्यानैःपुष्पिताभिःपारावारेषुपुष्पितैः
चारुचम्पकवृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरैः । परितो वासिताभिश्च सुगन्धिवायुना मुने ॥
आम्रैर्गुवाकैः पनसैः खर्जूरैर्नारिकेलकैः । दाडिमैः श्रीफलैर्भृङ्गैर्जम्बीरैर्नागरङ्गकैः ।१५१
तुङ्गैराम्रातकैर्जम्बुसमूहैश्च फलान्वितैः । कदलीनां केतकीनां कदम्बानां कदम्बकैः ॥

सर्वतः शोभिताभिश्च फलैस्तैः पुष्पितैरहो ।

क्रीड़ार्हाभिर्निगूढ़ाभिर्वाञ्छिताभिश्च सर्वदा ॥ १५३ ॥
परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम् । दुर्गमं परवर्गाणां स्वानाञ्च सुगमं सदा ॥
सङ्केतेन मणिस्तम्भैश्छादितैःस्वल्पपाथसा । स्तम्भसीमाकृतमहो न सङ्कीर्णनविस्तृतम्
परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम् । धनुःशतप्रमाणञ्च चकारातिसमुच्छ्रितम् ॥
प्रस्तरस्य प्रमाणञ्च पञ्चविंशतिहस्तकम् । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितञ्चातिसुन्दरम् ॥
वाह्ये द्वाभ्याञ्च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा । द्वार्भिश्च सन्निरुद्धाभिर्मणिसारकपाटकैः॥
हरिन्मणीनां कलशैश्चित्रयुक्तैर्विराजितम् ।
मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम् ॥ १५६ ॥
स्वर्णसारविनिर्माणकलसोज्ज्वलशेखरम् । नन्दालयं विनिर्माय वभ्राम नगरं पुनः ॥
राजमार्गांश्च विविधान् स च चारूंश्चकार ह ।
रक्तभानुविकारैश्च वेदीभिश्च सुपत्तनैः ॥ १६१ ॥
पारावारे च परितो निवद्धांश्च मनोहरान् । वाणिज्यार्हैश्च वणिजां परितो मणिमण्डपैः
सर्वतो दक्षिणे वामे ज्वलद्भिश्च विराजितान् । ततो वृन्दावनं गत्वा निर्ममेरासमण्डलम्
सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम् । परितो योजनायामं मणिवेदिभिरन्वितम् ॥
मणिसारविकारैश्च मण्डपैर्नवकोटिभिः । शृङ्गारार्हैश्च चित्राढ्यैः रतितल्पसमन्वितैः ॥
नानाजातिप्रसूनानां वायुना सुरभीकृतैः । रत्नप्रदीपसंयुक्तैः सुवर्णकलसोज्ज्वलैः॥१६६
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च सरोभिश्च सुशोभितम् ।
रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यत् स्थलम्पुरः ॥१६७॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह । वृन्दावनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिर्जने ॥
कृत्वा परिमितं बुद्ध्या मनसाऽऽलोच्य यत्नतः ।
विलक्षणानि रम्याणि तत्र त्रिंशद्वनानि च ॥१६९॥
राधामाधवयोरेव क्रीड़ार्थञ्च विनिर्ममे । ततो मधुवनाभ्यासे निर्जनेऽतिमनोहरे ॥१७०
वटमूलसमीपे च सरसः पश्चिमे तटे । चम्पकोद्यानपूर्वायां केतकीवनमध्यतः ॥१७१॥
पुनस्तयोश्च क्रीड़ार्थञ्चकार रत्नमण्डलम् । चतुर्भिर्वेदिकाभिश्च परीतमतिसुन्दरम् १७२

सद्रत्नसाररचितै राजितं तूलिकाशतैः । अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः ॥१७३॥
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारैर्मनोहरैः । रत्नेन्द्रचित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः ॥१७४॥
परितः परितो भित्त्यामूर्ध्वेञ्च परिशोभितम् ।
महामणीन्द्रविकृतैरारोहैर्नवभिर्युतम् ॥१७५॥
सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
सर्वतः पुरतो दीप्तममूल्यरत्नदर्पणैः । धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम् ॥ १७७ ॥
शतहस्तप्रमाणञ्च प्रस्तारं वर्तुलाकृतम् । शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्तमम् ॥१७८॥
वह्निशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मालाजालविचित्रितैः । पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः॥१७६
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम् । नवशृङ्गारयोग्यैश्च कामवर्द्धनकारिभिः ॥१८०।
मालतीचम्पकानाञ्च पुष्पराजिभिरन्वितम् । सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः ॥
वज्रसारेण खचितैर्मुक्ताजालविलम्बिभिः । रत्नसारघटाकीर्णं रत्नपीठैः सुसंयुतम्॥१८२
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः । क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलबिन्दुभिः ॥
शीतवासिततोयेन संयुक्तं भोग्यवस्तुभिः । कृत्वा रतिगृहं रम्यं नगरञ्च पुनर्ययौ ॥१८४
यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेख सः ।
मुदायुक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्यक्षगणैः सह ॥१८५॥
निद्रेशं निद्रितं नत्वा प्रययौ स्वालयं मुने । सर्वत्रैवं सुकृतिनां समस्तं भगवत्कृपा ॥
नेहाश्चर्यञ्च नगरं बभूवेशेच्छया भुवि । इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् ॥१८७॥
सुखदं पातकहरं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

कथं वृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते ॥ १८८ ॥
व्युत्पत्तिरस्य संज्ञा वा तत्त्वं वद सुतत्त्ववित् ।

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणो मुदा ॥१८६॥
प्रहस्योवाच निखिलं तत्त्वमेव पुरातनम् ।

नारायण उवाच ।

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम् ॥१६०॥

आसीत्सत्ययुगे ब्रह्मन् सत्यधर्मरतः सदा । स रेमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह ॥

पुत्रानिव प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः ।

कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥१६२॥

कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलाकाङ्क्षी न च स्वयम् ।

नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ॥१६३॥

केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः ।

पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥१६४॥

जैगीषव्योपदेशेन जगाम तपसे वनम् । हरैरैकान्तिको भक्तो ध्यायते सन्ततं हरिम् ॥

शश्वत् सुदर्शनञ्चक्रमस्तियत्सन्निधौ मुने । चिरंतप्त्वा मुनिश्रेष्ठो गोलोकञ्जगामसः

केदारं नाम तीर्थञ्च तन्नाम्ना च बभूव ह ।

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥१६७॥

कमलांशातस्य कन्या नाम्ना वृन्दा तपस्विनी । न वव्रेसावरं कञ्चिद्योगशास्त्रविशारदा

दत्तो दुर्वाससा तस्यै हरेर्मन्त्रः सुदुर्लभः । सा विरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम्

षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे सुनिर्जने । आविर्बभूव श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तवत्सलः ।२००

प्रसन्नवदनः श्रीमान्वरं वृणिवत्युवाच सः ।

दृष्ट्वा सा राधिकाकान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ॥२०१॥

मूर्च्छां सम्प्राप सा सद्यः कामवाणप्रपीड़िता । साच शीघ्रं वरं वव्रे पतिस्त्वंमेभवेतिच

ओमित्युक्त्वा च रहसि चिरं रेमे तया सह । सा जगामचगोलोकं कृष्णेनसहकौतुकात्

राधासमा सा सौभाग्याद्गोपीश्रेष्ठा बभूवह । वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम्

वृन्दयात्र कृता क्रीड़ा तेन वा मुनिपुङ्गव । अथान्यञ्चेतिहासञ्च श्रृणुष्व वत्स पुण्यदम्

येन वृन्दावनं नाम निबोध कथयामि ते । कुशध्वजस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदे ॥

तुलसीवेदवत्यौच विरक्ते भवकर्मणि । तपस्तप्त्वा वेदवती प्राप नारायणं परम्॥२०७॥

सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्त्तिता ।
तुलसी च तपस्तप्त्वा वाञ्छां कृत्वा हरिं पतिम् ॥ २०८ ॥
दैवाद् दुर्वाससः शापात् प्राप्य शङ्खासुरं प्रति ।
पश्चात्सम्प्राप कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम् ॥ २०९ ॥
सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी । तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह ॥
तथा तस्थौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी । विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितञ्च ते॥
तथापि च प्रसङ्गेन किञ्चिदुक्तं मुने पुनः ॥ २११ ॥
तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदञ्च तपोधन । तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
अथवा ते प्रवक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु । येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रेच भारते॥२१३॥
राधा षोड़शनाम्नाञ्च वृन्दानाम श्रुतौश्रुतम् । तस्याः क्रीड़ावनं रम्यंतेन वृन्दावनं स्मृतम्
गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा ।
क्रीड़ार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम् ॥ २१५ ॥

नारद उवाच ।

कानि षोड़श नामानि राधिकाया जगद्गुरो । तानिमे वद शिष्याय श्रोतुंकौतूहलंमम
श्रुतं नाम्नां सहस्रञ्च सामवेदे निरूपितम् ।
तथापि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोड़श ॥ २१७ ॥
अभ्यन्तराणितेषांवा तदन्यान्येवमेविभो । अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानांवाञ्छितानिच
नामानि तेषां व्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च । पावनानि जगन्मातुर्जगतामादिकारणम्

श्रीनारायण उवाच ।

राधारासेश्वरी रासवासिनीरसिकेश्वरी । कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रियाकृष्णस्वरूपिणी
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी । कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी ॥
चन्द्रावती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानना । नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणिच
राधेत्येवञ्च संसिद्धा राकारोदानवाचकः । स्वयंनिर्माणदात्रीया सा राधापरिकीर्त्तिता
रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता ।

रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥ २२४ ॥

सर्वासां रसिकानाञ्च देवीनामीश्वरी परा । प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्
प्राणाधिकाप्रेयसीसा कृष्णस्यपरमात्मनः । कृष्णप्राणाधिकासाच कृष्णेनपरिकीर्त्तिता

कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा ।
सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥ २२७ ॥

कृष्णरूपं सन्निधातुं या शक्ता चावलीलया। सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी
वामाङ्गार्द्धेन कृष्णस्य या सम्भूतापरासती । कृष्णवामाङ्गसम्भूतातेन कृष्णेन कीर्त्तिता
परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती । श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्त्तिता
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेनवृन्दावनी स्मृता । वृन्दावनस्याधिदेवीतेन वाथ प्रकीर्तिता

सङ्गः सखीनां वृन्दस्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः ।
सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्त्तिता ॥ २३३ ॥

वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्तिच तत्रवै । वेदा वदन्तितां तेंनवृन्दावनविनोदिनीम्
नखचन्द्रावलीवक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्रसन्ततम् । तेन चन्द्रावलीसाच कृष्णेन परिकीर्त्तिता

कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम् ।
सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्त्तिता ॥ २३६ ॥

शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाननेऽस्ति दिवानिशम् । मुनिना कीर्त्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना
इदं षोड़शनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ।

ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे ॥ २३८ ॥

धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि । पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि ।

राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २३९ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ॥
यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह ॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरोभवेत् । अणिमादिकसिद्धिञ्च संप्राप्य नित्यविग्रहम्

व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः। चतुर्णाञ्चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः॥२४३॥
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिवोधितैः। प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा॥
शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः। देवानां वैष्णवानाञ्च दर्शनेनापि यत् फलम्॥

तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोड़शीम्।
स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तोभवेन्नरः॥ २४६॥

नारद उवाच।

सम्प्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम्। कवचञ्चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो॥
कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्तंतदपि दुर्लभम्। श्रुत्वाकृष्णकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः
अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्रहस्यञ्च तद्वद। प्रातश्च नगरं दृष्ट्वा किमूचुर्वल्लभा मुने॥२४९॥

श्रीनारायण उवाच।

गतायां तत्र यामिन्यां गते च विश्वकर्मणि। अरुणोदयवेलायां जनाः सर्वे जजागरुः
उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम्। किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्व्रजवासिनः
कांश्चिद्गोपान् केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम्। न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति
वुवुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन्। श्रीहरेरिच्छया सर्वंजगदेतच्चराचरम्॥२५३॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूभङ्गलीलया।
आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यञ्च किं कुतः॥ २५४॥

विवरेष्वेवयल्लोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानिच। ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यंहरेरहो
ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्वुजम्। किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः
भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम्। पाठं पाठञ्च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ॥
कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषभानुश्च कौतुकी। चकार सगणैः सार्द्धं मुदाश्रमनिवेशनम्
सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः। मुदा प्रवेशनञ्चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम्॥२५९

सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे।
बालका बालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः॥ २६०॥

श्रीकृष्णो वलदेवश्चशिशुभिः सहकौतुकात्। क्रीड़ाञ्चकारतत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे

इत्येवं कथितं सर्वं निर्माणं नगरस्यच । अवलानां वने रासमण्डलस्यच नारद ॥२६२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीवृन्दावन-नगरवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

———

अष्टादशोऽध्यायः

विप्रपत्नीनां मोक्षणम् ।

शौनक उवाच ।

अहो किमद्भुतं सूत रहस्यं सुमनोहरम् । श्रुतं कृष्णस्य चरितं सुखदं मोक्षदं परम् ॥१॥

सूत उवाच ।

श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम् ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषिसत्तम । ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यञ्च शरणागतम्

नारदस्य वचः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम् । उवाच परमीशस्य चरितं परमाद्भुतम्॥

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः सार्द्धं बलेन सह माधवः । जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीरजम् ॥५॥

विचेरुर्गोसहस्रैश्च चिक्रीडुर्वालकास्तदा । विश्रान्तास्तृट्परीताश्च क्षुधा च परिपीड़िताः

तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परया मुदा ।

क्षुदस्मान् बाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किङ्करान् ॥ ७ ॥

शिशूनां वचनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः । हितं तथ्यञ्च वचनं प्रसन्नवदनेक्षणः ॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

बालागच्छतविप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम् । अन्नंयाचततान्शीघ्रंब्राह्मणांश्चक्रतून्मुखान्

विप्रा आङ्गिरसाः सर्वेस्वाश्रमे श्रीवनान्तिके । यज्ञंकुर्वन्तिविप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारदाः

निष्पृहा वैष्णवाः सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः ।
मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम् ॥ ११ ॥

न चेद्ददतियुष्मभ्यमन्नं विप्राःक्रतून्मुखाः । तत्कान्तायाचत क्षिप्रंदयायुक्ताःशिशून्प्रति
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ययुर्बालकपुङ्गवाः । पुरतो ब्रह्मणानाञ्च तस्थुरानम्रकन्धराः ॥

इत्यूचुर्बालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः ।
न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित् केचिच्छ्रुत्वा स्थिताः स्थिताः ॥ १४ ॥

ते ययू रन्धनागारं ब्राह्मण्यो यत्रपाचिकाः । गत्वाबाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकन्धराः
नत्वोचुर्बालकाःसर्वेविप्रभार्याःपतिव्रताः । अन्नंदत्तमातरोऽस्मान्क्षुधार्तान्बालकानपि
बालानां वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वातांश्चमनोहरान् । पप्रच्छुः सादरं साध्व्यः स्मेराननसरोरुहाः

विप्रपत्न्य ऊचुः ।

के यूयं प्रेषिताः केन कानि नामानि कोविदाः ।
दास्यामोऽन्नं बहुविधं व्यञ्जनैः सहितं वरम् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणीनां वचः श्रुत्वा ता ऊचुस्ते मुदान्विताः ।
स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः ॥ १९ ॥

बाला ऊचुः ।

प्रेषितारामकृष्णाभ्यांवयंक्षुत्पीडिताभृशम् । दत्तान्नंमातरोऽस्मभ्यंक्षिप्रंयामस्तदान्तिकम्
इतोऽविदूरे भाण्डीरे वनाभ्यन्तरमेव च । वटमूले मधुवने वसन्तौ रामकेशवौ ॥ २१ ॥
विश्रान्तौ क्षुधितौ तौ च याचेतेऽन्नञ्चमातरः । किमु देयमदेयं वा शीघ्रं वदत नोऽधुना
गोपानाञ्च वचः श्रुत्वा हृष्टानन्दाश्रुलोचनाः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गास्तत्पादाब्जमनोरथाः
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम् । पायसं पिष्टकं स्वादु दधि क्षीरं घृतं मधु ॥

रौप्ये कांस्ये राजते च पात्रे कृत्वा मुदान्विताः ।
ताः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रययुः कृष्णसन्निधिम् ॥ २५ ॥

नानामनोरथं कृत्वामनसा गमनोत्सुकाः । पतिव्रतास्ता धन्याश्चश्रीकृष्णदर्शनोत्सुकाः
श्रीकृष्णं ददृशुर्गत्वा रामञ्च सहबालकम् । वटमूले वसन्तन्तमुडुमध्ये यथोडुपम्॥२७॥

श्यामं किशोरंवयसा पीतकौशेयवाससम्। सुन्दरंसस्मितं शान्तंराधाकान्तंमनोहरम्
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालङ्कारभूषितम्। रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डस्थलविराजितम्॥
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम्। आजानुलम्वतां शुभ्रां विभ्रतं रत्नमालिकाम्॥ ३०॥

मालतीमालया कण्ठवक्षःस्थलविराजितम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम् ॥ ३१॥

सुनखं सुकपोलञ्च पक्वविम्बाधरं वरम्। पक्वदाड़िमवीजाभं विभ्रतं दन्तमुत्तमम्॥३२॥
शिखिपिच्छसमायुक्तं वद्धचूड़ं परात्परम्। कदम्वपुष्पयुग्माभ्यां कर्णमूले विराजितम्
ध्यानासाध्यं योगिनाञ्च भक्तानुग्रहकातरम्। ब्रह्मेशधर्मशेषेन्द्रैः स्तूयमानं मुनीश्वरैः॥
दृष्ट्वैवमीश्वरं भक्त्या प्रणेमुर्द्विजयोषितः। स्वानां ज्ञानानुरूपञ्च तुष्टुवुर्मधुसूदनम्॥३५॥

विप्रपत्न्य ऊचुः।

त्वं ब्रह्म परमंधाम निरीहोनिरहङ्कृतिः। निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणःस्वयम्
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः। प्रकृतिः पुरुषस्त्वञ्च कारणञ्च तयोः परम्
सृष्टिस्थित्यन्तविषये येच देवास्त्रयः स्मृताः। तेत्वदंशाः सर्ववीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
यस्यलोम्नाञ्च विवरेचाखिलंविश्वमीश्वर। महाविराट्महाविष्णुस्त्वं तस्यजनकोविभो

तेजस्त्वञ्चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः।
वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥ ४०॥

महदादि सृष्टिसूत्रं पञ्च तन्मात्रमेव च। वीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा। त्वमनीहःस्वयं ज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि। सर्वेन्द्रियाणां विषयंजानासि नेन्द्रियीभवान्
सरस्वती जड़ीभूतायत्स्तोत्रे यन्निरूपणे। जड़ीभूतो महेशश्च शेषोधर्मो विधिःस्वयम्
पार्वती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि। वेदश्च जड़तां याति के वा शक्ता विपश्चितः
वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर। प्रसन्नो भव नो देव दीनवन्धो कृपां कुरु

इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्वुजे।
अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः॥ ४७॥

विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् ।
स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः ॥ ४८ ॥

नारायण उवाच ।

ताः पदाम्भोजपतिता दृष्ट्वा श्रीमधुसूदनः । वरं वृणुत कल्याणं भविता चेत्युवाच ह ॥
श्रीकृष्णस्य वचःश्रुत्वाविप्रपत्न्योमुदान्विताः । तमूचुर्वचनं भक्त्याभक्तिनम्रात्मकन्धराः

द्विजपत्न्य ऊचुः ।

वरं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा त्वत्पदाम्बुजे ।
देहि त्वं दास्यमस्मभ्यं दृढां भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥५१॥
पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव । अनुग्रहं कुरु विभो न यास्यामो गृहं पुनः ॥
द्विजपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः ।
ओमित्युक्त्वा त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि ॥५३॥
प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोपमम् । बालकान् भोजयित्वा तु स्वयञ्च बुभुजे विभुः
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भं रथं परम् । ददृशुर्विप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनादहो ॥५५॥
रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नस्तम्भैर्निबद्धञ्च सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ॥५६॥
श्वेतचामरसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥
शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् ।
वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ॥५८॥
पीतवस्त्रपरीधानै रत्नालङ्कारभूषितैः । नवयौवनसम्पन्नैः श्यामलैः सुमनोहरैः ॥५९॥
द्विभुजैर्मुरलीहस्तैर्गोपवेशधरैर्वरैः । शिखिपिच्छगुञ्जमालाबद्धवक्रिमचूड़कैः ॥ ६० ॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम् । रथस्यारोहणं कर्तुमूचुर्ब्राह्मणकामिनीः ॥६१॥
विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमीप्सितम् ।
बभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान् ॥६२॥
हरिश्छायां विनिर्माय तासाञ्च विष्णुमायया ।
प्रस्थापयामास गृहान् ब्राह्मणानां स्वयं विभुः ॥६३॥

विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्विग्नमानसाः । अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः
दृष्ट्वोचुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च विनयान्विताः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥

ब्राह्मणा ऊचुः ।

अहोऽतिधन्या यूयञ्च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थंवेदपाठोऽप्यनर्थकः
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तिताः । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ॥
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ॥६८॥
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः ।
प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना ॥६९॥
श्रीकृष्णो हृदये यस्यतस्य किं कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने ॥
इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनी वराः ।
आजग्मुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धञ्च रेमिरे ॥७१॥
तासां ततोऽधिकं प्रेम क्रीड़ासु सर्वकर्मसु । दाक्षिण्यंमाययाशक्त्याब्राह्मणानामतर्कितम्
अथ नारायणः सोऽयं बलेन शिशुभिः सह । जगाम स्वालयं तूर्णं पूर्णब्रह्मसनातनः ॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् किंभूयःश्रोतुमिच्छसि

नारद उवाच ।

ऋषीन्द्र केन पुण्येन बभूव विप्रयोषिताम् । मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीदृशी ॥
इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तस्थुर्महीतलम् ।
आजग्मुः केन दोषेण वद सन्देहभञ्जनम् ॥७६॥

श्रीनारायण उवाच ।

सप्तर्षीणां रमण्यश्च रूपेणाप्रतिमाः पराः । गुणवत्यः सुशीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥
नवीनयौवनाः सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभाः स्मेराननसरोरुहाः । मुनीनां मोहितुं शक्ता मानसं वक्रचक्षुषा ॥७६
दृष्ट्वा तासां स्तनश्रोणिमुखानि सुन्दराणि च । अनलश्चकमे ताश्च मदनानलपीड़ितः ॥
अग्निस्थानस्थितानाञ्च शिखया सुरतोन्मुखः ।

स्पृष्ट्वा चाङ्गानि तासाञ्च बभूव हतचेतनः ॥८१॥

पतिव्रता न जानन्ति पतिपादाब्जमानसाः । अग्निरङ्गानि तासाञ्च दर्शं दर्शं मुमोह च ॥

वह्नेश्च मानसं ज्ञात्वा भगवानङ्गिरा मुनिः । शशाप तं चेत्युवाच सर्वभक्षो बभूव ह ॥

वह्निः सचेतनो भूत्वा तुष्टाव मुनिपुङ्गवम् । व्रीड़या नम्रवदनश्चकम्पे ब्रह्मतेजसा ॥८४॥

क्रुद्धो मुनिः परस्पृष्टाः कामिनीश्च शशाप ह । यात यूयं पापयुक्ता मानुषीं योनिमेव च

भारते ब्राह्मणानाञ्च गृहे लभत जन्म वै । करिष्यन्ति विवाहञ्च युष्माकंकुलजा द्विजाः

श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्ताश्च रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा ऊचुस्तं विदुषांवरम्

मुनिपत्न्य ऊचुः ।

न त्यजास्मान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च पतिव्रताः ।

अजानन्त्यः परस्पृष्टा न च नस्त्यक्तुमर्हसि ॥८८॥

भक्तानां किङ्करीणाञ्च न दण्डं कर्तुमर्हसि । युष्माकं चरणाम्भोजं कदा द्रक्ष्यामहेवयम्

खड्गच्छेदाद्वज्रपातात्सर्वप्रहरणान्मुने । दारुणः कान्तविच्छेदःसाध्वीनां दुःसहः सदा ॥

ब्रह्मिष्ठानां गुणवतां परान् कान्तान्महामुनीन् ।

एवम्भूतान् कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम् ॥६१॥

यास्यामो यदि विप्रेश कदात्रागमनं वद । अज्ञानस्पर्शदोषश्च न स्यान्नो विधिबोधितः

अहल्यया पुनः प्राप्तः स्वामीन्द्रस्य प्रधर्षणात् ।

सा सम्भोगात् पुनः शुद्धा स्पर्शनाद् वर्जिता वयम् ॥६३॥

विचारं कुरु धर्मिष्ठ वेदवेदाङ्गपारग । विश्वकर्तुश्च पुत्रस्त्वं सर्ववेदविदां वर ॥ ६४ ॥

अन्येषाञ्च भयात्कान्ता व्रजन्ति शरणम्पतिम् ।

स्वकान्तभयसंविग्नाः शरणं कं व्रजन्ति ताः ॥६५॥

अभयं देहि धर्मिष्ठ भययुक्ताभ्य एव च । पुत्रे शिष्ये कलत्रे च को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥

दुर्बलः सबलो वापि स्ववस्तूनामपीश्वरः । स्वद्रव्यविक्रयं कर्तुं न चान्यो रक्षितुं क्षमः

कामिनीनां वचः श्रुत्वा दयालुर्मुनिपुङ्गवः ।

प्रेम्णा रुरोद तासाञ्च निरीक्ष्य मुखपङ्कजम् ॥६८॥

वेदवेदाङ्गपारज्ञो ज्ञानिनां योगिनां वरः। पत्नीविच्छेदविषये मूर्च्छां प्राप तथापि सः॥

सर्वे बभूवुः शोकार्ता विरहोद्विग्नमानसाः।

निरीक्ष्य तासां वक्त्राणि तस्थुः पुत्तलिका यथा ॥१००॥

कृत्वा विलापं सुचिरं सर्ववेदविदां वरः। भ्रातृभिश्च सहालोच्य ता उवाच शुचातुरः

अङ्गिरा उवाच।

यूयं शृणुत वक्ष्यामि वचनं सत्यमेव च।

स्वकर्मभोगिनाम्भोगमाकर्माच्च श्रुतौ श्रुतम् ॥१०२॥

गतो भोगश्च युष्माकमस्माभिः सह निश्चितम्। गते भोगे पुनर्भोगो नहि वेदेनिरूपितः

शुभाशुभश्च यत्कर्म्म भारते कृतिभिः सह। नाभुक्तं क्षीयते कर्म्म जन्मकोटिशतैरपि॥

परभुक्ताश्च कान्ताश्च यो भुङ्क्ते स नराधमः।

स पच्यते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१०५॥

न सा दैवे न सा पैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता।

तस्या आलिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः ॥१०६॥

देवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे। सुखिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः॥

तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः। अन्यथा पापभाग्भर्ता निश्चितं नरकं व्रजेत्

पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षति पण्डितः।

न व्रती न स्थली योषा दोषाणाञ्च करण्डिका ॥१०९॥

कलत्रं पाकपात्रञ्च सदा रक्षितुमर्हति। परस्पर्शादशुद्धाञ्च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा ॥११०॥

स्वकान्तञ्च परित्यज्य परंगच्छति याऽधमा। कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ

तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे। उत्तिष्ठति विदूराच्चेत् कुर्वन्ति दण्डताड़नम्॥

सर्पप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः। दशन्ति पुंश्चलींतत्रसततञ्च दिवानिशम्

विकृताकारशब्दञ्च करोति शाश्वतम्भिया। न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी॥११४

मुहूर्त्तार्द्धं सुखं भुक्त्वा लोकेऽत्र यशसा हता। पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत्

परस्पृष्टा च या नारी या स्पृहां कुरुते परम्।

सापि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः ॥११६॥

तस्मान्नारी परैर्यत्नाददुष्टा कृतिभिः कृता। असूर्य्यम्पश्या यादाराःशुद्धास्ताश्च पतिव्रताः
स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा। अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितंपरगामिनी

स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता।
कान्तेन सार्द्धं सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम् ॥११९॥
यात यूयञ्च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम्।
कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥१२०॥
हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया।
ता विप्रमन्दिरे स्थित्वा चागमिष्यन्ति नो ध्रुवम् ॥१२१॥

पुनरंशेन नो पत्न्यो भविष्यथ न संशयः। युष्माकं मम शापश्च बभूव च वराधिकः ॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम शुचान्वितः। ता आगत्य महीं शापाद् बभूवुर्विप्रयोषितः
दत्त्वान्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम्। बभूव निश्चितं तासां शापश्च सम्पदोऽधिकः
निन्द्या नीचाच्च सम्पत्तिर्विपत्तिर्महतो वरा। अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते
विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि। भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमुत्तमम्। अहो पुण्यवतीनाञ्च मोक्षाख्यानं मनोहरम् ॥

श्रीकृष्णाख्यानं विप्रेन्द्र नूतं नूतं पदे पदे।
न हि तृप्तिः श्रुतवतां केन श्रेयसि तृप्यते ॥१२८॥

यावद्रम्यं तत् कथितं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः। वद मां वाञ्छितंयत्तेकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

नारद उवाच।

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरुवक्त्रात् कृपानिधे। मङ्गलं कृष्णचरितं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो!

सूत उवाच।

श्रुत्वा देवर्षिवचनमृषिर्नारायणः स्वयम्। अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१३१

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो नामाष्टादशोऽध्यायः।

ऊनविंशोऽध्यायः

कालीयदमनाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं विना हरिः । जगाम यमुनातीरं यत्र कालीयमन्दिरम् ॥१
परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे वने । स्वेच्छामयस्तृट्परीतः पपौ च निर्मलं जलम् ॥

गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने ।
विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम् ॥३॥
क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदान्विताः ।
भुक्त्वा नवतृणं गावो विषतोयं पपुर्मुने ॥ ४ ॥
विषाक्तश्च जलं पीत्वा दारुणान्तकचेष्टया ।
ज्वालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्यजुः ॥५॥

दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गोपाश्चिन्ताकुला भिया । विषण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम् ॥६॥

ज्ञात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम् ।
उत्तस्थुस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरेर्मुखम् ॥७॥

कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम् । पपात सर्पभवने नागमध्ये नराकृतिः ॥ ८ ॥
शतहस्तप्रमाणश्च जलोत्थानं बभूव ह । बाला हर्षं विषादञ्च मेनिरे तत्र नारद ॥ ९ ॥
सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालियः क्रोधविह्वलः । जग्राह श्रीहरिं तूर्णं तप्तलोहं यथा नरः ॥
दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा । प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकारोद्गमनंपुनः
भग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गचर्वणात् । रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थौ मस्तकोपरि॥
नागो विश्वम्भराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः । चकार रक्तोद्गमनं पपात मूर्च्छितोमुने

दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः ।
केचित्पलायिता भीताः केचित् प्रविविशुर्बिलम् ॥ १४ ॥

मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती।
नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः ॥१५॥
पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया। धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाकुला॥

सुरसोवाच।

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानञ्च मानद।
पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः ॥१७॥
अयि सुरवरनाथ! प्राणनाथं मदीयं! न कुरु वधमनन्तप्रेमसिन्धो! सुबन्धो!।
अखिलभुवनबन्धो! राधिकाप्रेमसिन्धो! पतिमिह कुरु दानं मे विधातुर्विधातः ॥१८॥
त्रिनयनविधिशेषाः षण्मुखश्चास्यसङ्घैः स्तवनविषयजाड्याः स्तोतुमीशा न वाणी।
न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव॥
कुमतिरहमविज्ञा योषितां क्वाधमा वा क्व भुवनगतिरीशश्चक्षुषो गोचरोऽपि।
विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम् ॥२०॥
स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न यं त्वाम्।
कलिकलुषनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रश्रवणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम् ॥२१
शयानो रत्नपर्य्यङ्के रत्नभूषणभूषितः।
रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि संस्थितः ॥ २२ ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः।
प्रोद्यत्प्रेमरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात् ॥ २३ ॥
मल्लिकामालतीमालाजालैः शोभितशेखरः।
पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः ॥ २४ ॥
पुंस्कोकिलकलध्वानैर्भ्रमरध्वनिसंयुतैः। कुसुमेषु विकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः ॥२५॥
प्रियाप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवान् यः सदामुदा। वेदा अशक्ता यं स्तोतुं जड़ीभूताविचक्षणाः
तमनिर्वचनीयञ्च किं स्तौमि नागवल्लभा। वन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम्॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्नवीवेदमातृभिः। सेवितं सिद्धसङ्घैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा॥

निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय ।
स्वयं प्रकाशाय परावराय परावराणामधिपाय ते नमः ॥ २९ ॥
हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।
मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश गुणेश पाहि ॥ ३० ॥
धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्वनिरूपितश्च ।
सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥ ३१ ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । सर्वपापात् प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेःपदम्
इहलोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम् । लभते पार्षदो भूत्वा सालोक्यादिचतुष्टयम्

नारद उवाच ।

नागपत्नीवचः श्रुत्वा भगवान् सर्वनन्दनः ।
प्रहृष्टोत्फुल्लनयनः किमुवाच हरिः स्वयम् ॥ ३५ ॥
कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ३६ ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान् सर्वदर्शनः । उवाच परमाख्यानं मधुवृन्दं पदे पदे ॥३७

नारायण उवाच ।

नागपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तामुवाच ह । पुटाञ्जलियुतां पादे पतितां भयविह्वलाम्

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ नागेशि वरं वृणु भयं त्यज । गृहाण कान्तं हे मातर्मद्वरादजरामरम् ॥
कालिन्दीह्रदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज ॥ ३९ ॥
भर्त्रा स्वगोष्ठ्या सार्द्धञ्च गच्छ वत्से त्वमीप्सितम् ।
अद्य प्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम ॥ ४० ॥
त्वत् प्राणाधिक एवायं जामाता च न संशयः ।
मत्पादपद्मचिह्नेन गरुड़स्त्वत्पतिं शुभे ॥ ४१ ॥

कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम्।
त्यज त्वं गरुडाद्भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज।
ह्रदान्निर्गच्छ वत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। उवाच साश्रुनेत्रा सा भक्तिनम्रात्मकन्धरा

सुरसोवाच।

वरं दास्यसिचेन्मह्यं वरदेश्वर हे पितः। त्वत्पादाब्जे दृढ़ांभक्तिं निश्चलांदातुमर्हसि॥
मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा। तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदापि न भविष्यति

स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं ज्ञानिनां वरः।
इत्येवं प्रार्थनीयञ्च परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥ ४६ ॥

इत्येवमुक्त्वा सर्पत्नी प्रतस्थौ पुरतो हरेः। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं ददर्श श्रीहरेर्मुखम्॥
लोचनाभ्यां पपौ वक्त्रं निमेषरहितं सती। सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सानन्दाश्रुपरिप्लुता॥
सुन्दरं बालकं दृष्ट्वा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती। उवाच पुनरेवेदं भक्त्युद्रेकपरिप्लुता॥ ४६ ॥
न यास्यामि रमणकंतत्र नास्ति प्रयोजनम्। सर्पःकरोतु संसारंकुरु मां निजकिंकरीम्

न वाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यादिचतुष्टये।
त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हति षोड़शीम् ॥ ५१ ॥
विना त्वत्पादसेवाञ्च यो वाञ्छति वरान्तरम्।
भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम् ॥५२॥

नागपत्नीवचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः। प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ह ॥५३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सद्रत्नसारनिर्मितः। आजगाम रथस्तूर्णमुद्दीप्तस्तेजसा मुने ॥५४
पार्षदप्रवरैर्युक्तो वस्त्रमालापरिच्छदः। शतचक्रो वायुवेगो मनोयायी मनोहरः ॥५५॥

अवरुह्य रथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिङ्कराः।
प्रणम्य कृष्णं तां नीत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

हरिश्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा। स च किञ्चिन्न बुबुधे मोहितो विष्णुमायया
अवरुह्य सर्पमूर्ध्नः श्रीकृष्णः करुणानिधिः। ददौ हस्तञ्च कृपया शीघ्रं कालीयमस्तके॥

सम्प्राप्य चेतनां सद्यो ददर्श पुरतो हरिम् । पुटाञ्जलियुतां साश्रुपूर्णाञ्च सुरसांसतीम्
प्रणनाम हरिं सद्यो रुरोद प्रेमविह्वलः । भक्त्युद्रेकात्साश्रुनेत्रां पुलकाङ्कितविग्रहाम् ॥६०॥
तूष्णीम्भूताञ्चतां दृष्ट्वा समुवाच कृपानिधिम् । मदीश्वरस्य सततं योग्यायोग्येसमाकृपा

श्रीकृष्ण उवाच ।

वरं वृणु त्वं कालीय यस्ते मनसि वर्तते । त्वं मे प्राणाधिको वत्स सुखं तिष्ठ भयंत्यज
तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिभक्तो ममांशजः । किञ्चित्त्वद्दमनं कृत्वा प्रसादं हि करोम्यहम्
त्वदंशजातान् सर्पांश्च हन्तियो मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमंपापं भवितातस्यनिश्चितम्
मत्पादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताड़नम् । द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्विषम्
लक्ष्मीर्यास्यति तद्गेहाच्छापंदत्त्वा सुदारुणम् । वंशायुर्यशसांहानिर्भवितातस्यनिश्चितम्

ध्रुवं वर्षशतं कालसूत्रे यास्यति मद्गिरा ॥ ६६ ॥
त्वत्प्रमाणाः कीटसङ्घा दंशिष्यन्ति च सन्ततम् ।
भोगान्ते जन्म लब्ध्वा च तन्मृत्युर्वै हि दंशनात् ॥ ६७ ॥

तस्य वंशोद्भवानाञ्च त्वद्वंशाद्भविता भयम् । ये च त्वद्वंशजान् दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीयकम्
प्रणमिष्यन्ति भक्त्याते मुच्यतेसर्वपातकात् । गच्छशीघ्रंरमणकंत्यज भीतिंखगाधिपात्
मत्पदाङ्कं मूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रणमिष्यति । तव त्वद्वंशजानाञ्च गरुडान्नभयं क्वचित्
सर्वेषां ज्ञातिसर्पाणां वरोऽद्य भव मद्वरात् । वरं किं परमं वत्स वाञ्छितं वरयाधुना
भयं त्यक्त्वा कथय मां त्वदीयं दुःखभञ्जनम् । श्रीकृष्णवचनंश्रुत्वाकालीयःकम्पितोभिया

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजङ्गमः ।

कालीय उवाच ।

वरेऽन्यस्मिन् मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद !॥ ७३ ॥

भक्तिस्मृतिं त्वत्पदाब्जेदेहिजन्मनि जन्मनि । जन्मब्रह्मकुले वापितिर्य्यग्योनिषुवासमम

तद्भवेत् सफलं यत्र स्मृतिस्त्वच्चरणाम्बुजे ।
तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत् त्वत्पदस्मृतिः ॥ ७५ ॥

त्वत्पादध्यानयुक्तस्ययत्तत्स्थानञ्चतत्परम् । क्षणं वाकोटिकल्पंवापुरुषायुःक्षयोऽस्तु वा

यदि त्वत् सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा ।
तेषाञ्चायुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः ॥ ७७ ॥
न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्त्तिभीतयः । इन्द्रत्वे वामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे ॥
वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना । सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च
पश्यन्ति भक्ताः किञ्चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
संप्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्ननन्ताद् यावदेव हि ॥ ८० ॥
तावत् त्वद्भावनेनैव त्वद्वर्णोऽहमनुग्रहात् । मां च भक्तमपक्कं वा विज्ञाय गरुड़ः स्वयम्
देशाद् दूरञ्च न्यक्कारं चकार दृढ़भक्तिमान् । भवता च दृढ़ाभक्तिर्दत्ता मे वरदेश्वर ॥८२
स च भक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना ।
त्वत्पादपद्मचिह्नाक्तं दृष्ट्वा श्रीमस्तकं मम ॥ ८३ ॥
सदोषंगुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमर्हति । ममाराध्याश्चनागेन्द्रा न तद्वध्योऽहमीश्वर
भयं न केभ्यः सर्वत्र तमनन्तं गुरुं विना । यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः ॥
स्वप्ने ध्यानेन पश्यन्ति चक्षुषोर्गोचरः स मे ।
भक्तानुरोधात् साकारः कुतस्ते विग्रहो विभो ॥ ८६ ॥
सगुणस्त्वञ्च साकारो निराकारश्च निर्गुणः । स्वेच्छामयः सर्वधामसर्वबीजं सनातनम्
सर्वेषामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक् । ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥८८
स्तोतुं यमीशं ते जाड्याः सर्पस्तोष्यति तं विभुम् ।
हे नाथ ! करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! क्षमाधमम् ॥८६ ॥
खलस्वभावादज्ञानात् कृष्ण ! त्वञ्चर्वितो मया ।
नात्मलक्ष्यो यथाकाशो न दृश्यान्तो न लंघ्यकः ॥ ६० ॥
न स्पृश्यो हि न चावर्य्यस्तथा तेजस्वमेव च । इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रःपपात चरणाम्बुजे
ओमित्युक्त्वा हरिस्तुष्टः सर्वं तस्मै वरं ददौ । नागराजकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यःपठेत्
तद्वंश्यानाञ्चतस्यैव नागेभ्यो न भयंभवेत् । स नागशय्यां कृत्वैव स्वप्तुं शक्तःसदा भुवि
विषपीयूषयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे । नागग्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विषभोजनात्

स्तोत्रश्रवणमात्रेण सुस्थो भवति मानवः। भूर्जे कृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणेकरे

विभर्त्ति यो भक्तियुक्तो नागेभ्योऽपि न तद्भयम्।

यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति॥ ९६॥

विषाग्निवज्रभीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम्। इहलोके हरेर्भक्तिं स्मृतिश्च सततं लभेत्॥

अन्ते च स्वकुलं पूत्वा दास्यञ्च लभते ध्रुवम्।

श्रीनारायण उवाच।

नागेन्द्राय वरं दत्त्वा पुनस्तं जगदीश्वरः॥ ९८॥

उवाच मधुरं वाक्यं परिणामसुखावहम्।

श्रीकृष्ण उवाच।

गच्छ त्वञ्च रमणकं यथेन्द्रनगरं परम्॥९९॥

सार्द्धं स्वगोष्ठ्या नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना। श्रुत्वानागो हरेराज्ञां रुरोद प्रेमविह्वलः

कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेत्युवाच ह। प्रणम्यशतकृत्वश्चस्त्रियागोष्ठ्यामहेश्वरम्

जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः। यमुनाह्रदतोयञ्च बभूवामृतकल्पकम्॥१०२॥

प्रसन्ना जन्तवः सर्वे बभूवुस्तेन नारद। गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम्॥ १०३॥

आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा।

तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह॥ १०४॥

निःशङ्कोहर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः। इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमद्भुतम्॥ १०५॥

सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि।

सूत उवाच।

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः। ऋषिं पप्रच्छ सन्देहं सर्वसन्देहभञ्जनम्॥ १०६॥

नारद उवाच।

कथं विहाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम्। जगाम यमुनातीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो॥

श्रीनारायण उवाच।

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्॥ १०८॥

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रान्मे मलये सूर्य्यपर्वणि । कृष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रभापश्चिमे तटे ॥
पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि । इदमाख्यानमाश्चर्य्यमुवाच तं कृपानिधिः ॥
तत्र श्रुतं मयाविप्र निबोध कथयामि ते । शेषाज्ञया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायान्तु कुर्वन्ति गरुड़ार्चनम् । पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्वलिभिर्मुदा ॥
पुष्करे च महातीर्थे सुस्नातो भक्तिसंयुतः । तस्य पूजाञ्च कालीयो न चकारात्यहंकृतः॥
नागपूजोपकरणं बलाद्भक्षितुमुद्यतः । चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूचुर्मदोद्धतम् ॥११४॥
न शक्ता वारणे ते चेत्याविर्भूतः खगेश्वरः । दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया ॥
प्राणशक्त्या च युयुधुर्यावत्सूर्य्योदयं मुने। पक्षीन्द्रतेजसा सर्वे समुद्विग्नाः पलायिताः ॥
अनन्तं शरणं जग्मुः सर्वेषामभयप्रदम् । पलायनपरान् दृष्ट्वा नागांश्च करुणानिधिः ॥
तत्र तस्थौ च निःशङ्कः कालीयस्तं ददर्शह । स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं कालीयो युयुधेमुने
मुहूर्तञ्च तयोर्युद्धं बभूवातीवदारुणम् । पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुड़स्य च ॥११६
भिया पलायनं कृत्वा जगाम यमुनाह्रदम् । न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुमीश्वरः॥
तत्र तस्थौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तद्गणाः ॥ १२० ॥

नारद उवाच ।

कथं तु सौभरेः शापो बभूव गरुडाय वै । कथं न शक्तो गन्तुं तं ह्रदयमीश्वरवाहनः ॥

श्रीनारायण उवाच ।

दिव्यं वर्षसहस्रञ्च वर्षाणां तत्र सौभरिः। तपस्तप्त्वा महासिद्धो दध्यौकृष्णपदाम्बुजम्
समीपे ध्यायमानस्य कूले च यमुनाजले । गणेन सार्द्धं निःशङ्कः करोति भ्रमणं मुदा ॥
पुच्छमुत्फाल्य बहुधा परितः परमेच्छया । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदान्वितः
शकुलं सुमहात्मानं दर्शं दर्शं खगाधिपः । जग्राह चञ्चुना तूर्णं मुनीन्द्रस्य समीपतः ॥
गच्छन्तं तं मीनमुखं ददर्श कोपचक्षुषा । प्रकोपतो मुनेर्दृष्ट्वा मीनस्तोये पपात ह ॥
तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादातुमुद्यतम् । मीनश्च गरुड़त्रासात्तस्थौ मुनिसमीपतः ॥

सौभरिरुवाच ।

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मत्समीपतः । का योग्यता मत्पुरस्ते ग्रहीतुं जीवमुल्वणम्

श्रीकृष्णवाहनंज्ञात्वाचात्मानंबहुमन्यसे। त्वद्विधान्कोटिशःकृष्णःस्रष्टुंशक्तश्चवाहकान्
करोमि भस्मसात्तूर्णं त्वाञ्च भ्रूभङ्गलीलया। वाहनञ्च त्वमीशस्य न वयं तव किङ्कराः
अद्यप्रभृति पक्षीन्द्र यद्यागच्छति मे ह्रदम्। मदीयशापात्तूर्णञ्च भस्मसाद्भविता ध्रुवम्॥
मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रचचाल खगेश्वर। स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगामह
अद्यप्रभृति विप्रेन्द्र पतगेन्द्रस्य सन्ततम्। ह्रदस्यश्रुतिमात्रेण कम्पो भवति निश्चितम्॥
इतिहासश्च कथितो यः श्रुतो धर्मवक्त्रतः। सरहस्यं श्रुतिसुखं प्रकृतं श्रृणु मङ्गलम्॥
विज्ञाय सुचिरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्धरिः। चक्रुर्विषादं मोहाच्च रुरुदुर्यमुनातटे॥

स्ववक्षो घातनञ्चक्रुः केचिद्बालाः शुचाकुलाः।
केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना॥ १३६॥

ह्रदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समुद्यताः। केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम्॥
कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः। तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षाञ्चक्रुःप्रयत्नतः
केचिदूचुश्च हाहेति कृष्ण कृष्णेति केचन। केचिद्वक्तुं प्रवृत्तिञ्च प्रययुर्नन्दसन्निधिम्॥

केचित्सम्मीलितास्तत्र शोकमोहभयातुराः।
इत्यूचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः॥ १४०॥
हे नन्दसूनो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय।
हे बन्धो दर्शनं देहीत्यूचुः प्राणाः प्रयान्ति हि॥ १४१॥

एतस्मिन्नन्तरे केचिद् बालका नन्दसन्निधिम्। संप्रापुरतिलोलाश्च रुदन्तःशोकविह्वलाः
प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम्। गोपान्गोपालिकाश्चैवरक्तपंकजलोचनाः
श्रुत्वावार्त्ताञ्च ते सर्वेशीघ्रं जग्मुः शुचान्विताः। कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुदुर्बालकैर्युताः
गत्वासम्मीलिताःसर्वेरुरुदुः शोकमूर्च्छिताः। ह्रदं विशन्तीमम्बांतां केचिच्चक्रुर्निवारणम्
गोपा गोपालिकाश्चैव जघ्नुरङ्गानि शोकतः। केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां प्रापुश्च केचन
ह्रदं विशन्तीं तां राधां वारयामास काञ्चन। मूर्च्छाञ्च प्रापसाशोकान्मृतेवच सरित्तटे

विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः।
भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह॥ १४८॥

विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्शिताम् ।
गोपांश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥ १४९ ॥
रुदतो बालकान् सर्वान् बालिकाश्च शुचान्विताः ।
सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां वरः ॥ १५० ॥

श्रीबलदेव उवाच ।

गोपा गोपालिका बालाःसर्वेश्रृणुतमद्वचः । हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठगर्गवाक्यस्मृतिंकुरु ॥
जगद्भिर्तुः शेषस्य संहर्तुः शङ्करस्य च । विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः
परमाणुः परो व्यूहः स्थूलात् स्थूलः परात्परः ।
विद्यमानोऽप्यविद्दृश्यः संयोगो योगिनामपि ॥ १५३ ॥
दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्योनाकाश एव च ।
अपि सर्वेश्वरो वाध्य इत्यूचुः श्रुतयः स्फुटम् ॥ १५४ ॥
नात्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न वध्यो न हि दृश्यकः ।
नाग्निग्रस्तो न हिंस्यश्चापीदमाध्यात्मिका विदुः ॥ १५५ ॥
विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य भक्तध्यानार्थमेव च ।
ज्योतिःस्वरूपस्य विभोर्नाद्यन्तमध्यमात्मनः ॥ १५६ ॥

जलप्लुते च ब्रह्माण्डे जलशायी जनार्दनः । यन्नाभिपद्मजो ब्रह्मा तस्येशस्य ह्रदे विपत्
मशकश्चेत् क्षमो ग्रस्तुं ब्रह्माण्डमखिलंपितः । न तथापि तदीशं तं ग्रस्तं सर्पः क्षमोभवेत्
इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम् । निगूढं योगिनां सारं संशयच्छेदकारणम्
बलदेववचः श्रुत्वा गर्गवाक्यमनुस्मरन् । तत्याज शोकं नन्दश्च व्रजाश्च व्रजयोषितः
प्रबोधं मेनिरे सर्वे न यशोदा न राधिका । बन्धुविच्छेदविषये प्रबोधेन स्थितं मनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पतन्तं जलान्मुने । ददृशुस्तं सुप्रसन्ना व्रजाश्च व्रजयोषितः॥१६२
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् । अक्लिग्धवस्त्रमस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम् ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । मयूरपिच्छचूडञ्च वंशीवदनमच्युतम् ॥१६४ ॥
यशोदा बालकं दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि संस्मृता । चुचुम्ब वदनाम्भोजं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥

क्रोड़े चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा। निमेषरहिताः सर्वे ददृशुः श्रीमुखं हरेः
प्रेमान्धा बालका सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः। पपुश्चक्षुश्चकोरैश्च मुखचन्द्रञ्च गोपिका॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम्। दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सहगोकुलम्॥
दृष्ट्वा शैलप्रमाणाग्निं परितः काननान्तरे। प्रणाशं मेनिरे सर्वे भयमापुश्च सङ्कटे॥
श्रीकृष्णंतुष्टुवुःसर्वे सम्पुटाञ्जलयो व्रजाः। बालागोप्यश्चसन्त्रस्ताभक्तिनम्रात्मकन्धराः

बाला ऊचुः।

यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम्। तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन॥
त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता। स्रष्टा पाता च संहर्त्ता जगताञ्च जगत्पते॥
वह्निर्वा वरुणो वापि चन्द्रो वा सूर्य्य एव वा। यमःकुवेरःपवन ईशानाद्याश्च देवताः॥
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः। मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिन्नराः
ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषाञ्च तवेच्छया॥
अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु। वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान्॥
इत्येवमुक्त्वाते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वापदाम्बुजम्। दूरीभूतस्तुदावाग्निःश्रीकृष्णामृतदृष्टितः
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः। सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि
शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे। स्तोत्रमेतत् पठित्वा तु मुच्यतेनात्रसंशयः
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत्। इह लोके हरेर्भक्तिमन्तेदास्यं लभेद्ध्रुवम्

श्रीनारायण उवाच।

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सार्द्धं शृणु नारद। जगाम श्रीहरिर्गेहं कुवेरभवनोपमम्॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णंददौ मुदा। भोजनं कारयामास ज्ञातिवर्गांश्चबान्धवान्
नानाविधं मङ्गलञ्च हरेर्नामानुकीर्त्तनम्। वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदान्वितः॥
एवं मुमुदिरे सर्वे वृन्दारण्ये गृहे गृहे। श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्। कलिकिल्विषकाष्ठानां दहने दहनोपमम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे
श्रीकृष्णजन्मखण्डे कालीयदमनदावाग्निमोक्षणं नामैकोनविंशोऽध्यायः।

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः ।
भुक्त्वा पीत्वानुलिप्तश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ॥ १ ॥
क्रीडाञ्चकार भगवान् कौतुकेन च तैः सह ।
क्रीडानिमग्नचित्तानां दूरं तद् गोकुलं ययौ ॥ २ ॥
तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगताम्पतिः ।
जहार गाश्च सर्वाश्च वत्सांश्च बालकानपि ॥ ३ ॥

विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः । पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया ॥४॥
जगाम श्रीहरिर्गेहं चारयित्वा च गोकुलम् । बलेन बालकैः सार्धं क्रीडाकौतुकमानसः
एवं चकार भगवान् वर्षमेकञ्च प्रत्यहम् । यमुनागमनं गोभिर्बलेन सह बालकैः ॥ ६ ॥
ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जानम्रात्मकन्धरः । आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके ॥
ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम् । यथा पार्वणचन्द्रञ्च विभान्तं भगणैः सह ॥८॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च हसन्तं सस्मितं मुदा । पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥९॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोज्ज्वलम् ॥१०॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम् ॥११

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् ।
नवीननीरदश्यामं प्रोद्भिन्ननवयौवनम् ॥ १२ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तं मयूरपिच्छचूड़कम् । स्वाङ्गसौन्दर्य्यदीप्त्या च कृतभूषणभूषितम् ॥
शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठञ्च खगेन्द्रचञ्चुनासिकम् ॥
शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।
शान्तञ्च राधिकाकान्तं परिपूर्णतमं परम् ॥ १६ ॥

एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः । दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥ १७॥
यद् दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं वहिरेव च । या मूर्त्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्ततः ॥
तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने । ध्यायं ध्यायञ्च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः ॥
गावो वत्साश्च वालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः । सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह
दृष्ट्वैवं परमाश्चर्य्यं पुनर्ध्यानञ्चकार ह । ददर्श त्रिजगद् ब्रह्मा नान्यत् कृष्णंविना मुने

क्व च वृक्षः क्व वा शैलः क्व मही क्व च सागराः ।
क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः ॥ २२ ॥
क्व चात्मा क्व जगद्बीजं क्व स्वर्गाः गाव एव च ।
सर्वञ्च स्वदृशा ब्रह्मा ददर्श मायया हरेः ॥ २३ ॥
क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः ।
सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥ २४ ॥
किं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च ।
तत्र स्थित्वा जगद्धाता जपं कर्तुं समुद्यतः ॥ २५ ॥

सुखं योगासनं कृत्वा वभूव सम्पुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिदीनवत्
इड़ां सुषुम्नां मध्याञ्च पिङ्गलां नलिनीन्धुराम् । नाड़ीषट्कञ्च योगेन निवध्यचप्रयत्नतः
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धं परमाज्ञाख्यं षट्चक्रञ्च निवध्य च ॥
लङ्घनं कारयित्वा च तं षट्चक्रं क्रमाद्विधिः । ब्रह्मरन्ध्रं समानीय वायुपूर्णञ्चकार ह ॥

निवध्य वायुं मध्यान्तामानीय हृदयाम्वुजम् ।
तं वायुं भ्रमयित्वा च योजयामास मध्यया ॥ ३० ॥

एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा । जजाप परमं मन्त्रं तस्यैवच दशाक्षरम्
मुहूर्त्तञ्च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्वुजम् । ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने ॥
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा ॥३३॥

श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्वलन्मकरकुण्डलम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥३४
यद् दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्वहिरेव च । दृष्ट्वा च परमाश्चर्य्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥
यत् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने । तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकन्धरः

ब्रह्मोवाच ।

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ।
सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥ ३७ ॥

नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम् । स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम् । सर्वस्वरूपं सर्वेषां वीजरूपं सनातनम्
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम् । सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥४० ॥
सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च सर्वसम्पत्करं वरम् । शक्तियुक्तमयुक्तञ्च स्तौमिस्वेच्छामयं विभुम् ॥
शक्तीशं शक्तिवीजञ्च शक्तिरूपधरं वरम् । संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥

कृपालुं कर्णधारञ्च नमामि भक्तवत्सलम् ।
आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च ॥ ४३ ॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम् ।
सर्वेन्द्रियाधिदेवं तमिन्द्रियालयमेव च ॥ ४४ ॥

सर्वेन्द्रियस्वरूपञ्च विराड्रूपं नमाम्यहम् । वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम् ॥४५॥
सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च नमामि परमेश्वरम् । सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम् ॥ ४६ ॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च यशोदानन्दनं भजे । शान्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम् ॥ ४७ ॥

ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे ।
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥ ४८ ॥

गोपीभिः सेव्यमानञ्च तं राधेशं नमाम्यहम् । सतां सदैव सन्तन्तमसन्तमसतामपि ॥
योगीशं योगसाध्यञ्च नमामि शिवसेवितम् । मन्त्रवीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्
मन्त्रसिद्धिस्वरूपं तं नमामि च परात्परम् । सुखं दुःखञ्च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च ॥
पुण्यप्रदञ्च शुभदं शुभवीजं नमाम्यहम् । इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च सबालकान्

निपत्य दण्डवद्भूमौ रुरोद प्रणनाम च। ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने ॥

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ५४ ॥

लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसन्निधौ। लब्ध्वा च कृष्णसान्निध्यं पार्षदप्रवरोभवेत्

श्रीनारायण उवाच।

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि। श्रीकृष्णो बालकैः सार्धंजगामस्वालयंविभुः

गावो वत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तरे गृहम्। श्रीकृष्णमायया सर्वे मेनिरे ते दिनान्तरम्

गोपा गोपालिकाः किञ्चित् तर्कितुं न क्षमास्तदा।

योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूतं वा पुरातनम् ॥ ५८ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णचरितं शुभम्। सुखदं मोक्षदं पुण्यं सर्वकालसुखावहम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोवत्सबालकहरणप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः।

एकविंशोऽध्यायः

इन्द्रयागवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

एकदानन्दयुक्तश्च नन्दगोपो व्रजे मुने। दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागकृतोद्यमः ॥ १ ॥

दधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु। एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्विति ब्रुवन् ॥

ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः।

बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥ ३ ॥

इत्येवं श्रावयित्वा च स्वयमेव मुदान्वितः। यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते॥

ददौ तत्र क्षौमवस्त्रं मालाजालं मनोहरम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च ॥ ५ ॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्वा धौते च वाससी ।
उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥ ६ ॥

नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालाभिः सह बालकैः
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजग्मुर्नगरवासिनः । महासम्भृतसम्भारा नानोपायनसंयुताः ॥ ८॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । शान्ताः शिष्यगणैः सार्द्धं वेदवेदाङ्गपारगाः
गर्गश्च गालवश्चैव शाकल्यःशाकटायनः । गौतमःकश्यःकण्वो वात्स्यःकात्यायनस्तथा
सौभरिर्वामदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः । ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च वामनः॥
कृष्णद्वैपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः । पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च॥

ब्राह्मणाश्च कतिविधा भिक्षुका वन्दिनस्तथा ।
भूपा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रान् नन्दश्च ब्राह्मणान् भूमिपांस्तथा ।
स्वर्णपीठात् समुत्तस्थौ व्रजाश्चोत्तस्थुरेव च ॥ १४ ॥
प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान् विप्रभूमिपान् ।
तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा ॥ १५ ॥

पाकञ्च यष्टिनिकटे कर्त्तुमाज्ञाञ्चकार ह । पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥१६
तत्र रत्नप्रदीपाश्च जज्वलुः परितस्तथा । अन्धीभूतञ्च धूपेन स्थानं तत् सुरभीकृतम् ॥
नानाविधानि पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च । नैवेद्यञ्च बहुविधमपूर्वं सुमनोहरम्
तिललड्डुकपूर्णञ्च मण्डकानां सहस्रकम् । स्वस्तिकैः परिपूर्णञ्च यष्टिस्थानञ्च नारद ॥
कलशानां सहस्रञ्च पूर्णं शर्करया मुने !। यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरैः ॥ २० ॥
घृतपक्वैर्विप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च । वृक्षपक्वानि रम्याणि चारुरम्भाफलानि च
फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । क्षीराणां कुम्भलक्षाणिदध्नां तावन्तिनारद
मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्रकम् । कलशानां त्रिलक्षाणि तक्रपूर्णानि निश्चितम्

घटानां पञ्चलक्षाणि गुड़पूर्णानि निश्चितम् ।
विष्णुतैलेन पूर्णञ्च कलशानां सहस्रकम् ॥ २४ ॥

वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यवाहकाः। नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च

स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाजग्मुर्यष्टिसन्निधिम्।
वस्त्राणि वरणार्हाणि चारूणि भूषणानि च ॥ २६ ॥
नानाविधानि वाद्यानि चारूणि मधुराणि च।
वादकाः स्वरयन्त्राणि वादयामासुरुत्सवे ॥ २७ ॥

छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च। मेषकाणाञ्च लक्षाणि ह्यानयामासतत्रवै

शतान्येव गण्डकानामाजग्मुर्यष्टिसन्निधिम्।
प्रोक्षितानि च सर्वाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥ २६ ॥
वालकानां वालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोषिताम्।
युवानां युवतीनाञ्च संख्यां कर्त्तुञ्च कः क्षमः ॥ ३० ॥

गायकानाञ्च सङ्गीतं नर्त्तकानाञ्च नर्त्तनम्। श्रुत्वा दृष्ट्वा जनाः सर्वे मुमुहुः सुमहोत्सवे

रम्भोर्वशी मेनका च घृताची मोहिनी रती। प्रभावती भानुमती विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा

चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मदालसा। रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता आजग्मुरुत्सवे ॥

तासां नृत्येनगीतेन स्तनास्यश्रोणिदर्शनात्। रूपेणचक्रदृष्ट्याच मूर्च्छां प्रापुश्चमानवाः

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम्। गोपालवालकैः सार्धं वलेन वलशालिना

दृष्ट्वा तञ्च जनाः सर्वे सम्भ्रान्ता हर्षविह्वलाः। उत्तस्थुराराङ्गीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः

क्रीड़ास्थानात् समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्।
विनोदमुरलीवेणुश्रृङ्गशब्दसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

सद्रत्नसारभूषाभिर्भूषितं कौस्तुभेन च। चन्दनागुरुपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रहम् ॥३८॥

शरन्मध्याह्नपद्मास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे। चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीविन्दुना सह ॥३६॥

शशाङ्केनयथाकाशंभालमध्यविराजितम्। मालतीमालयाश्यामकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम्

वकपङ्क्त्या यथाकाशंशारदीयं सुनिर्मलम्। चारुणापीतवस्त्रेणशोभितं श्यामविग्रहम्

विभान्तं विद्युता शश्वन्नवीनं नीरदं यथा।
कुन्दप्रसूनैर्गुञ्जाभिर्वद्धवक्रिमचूड़कम् ॥ ४२ ॥

यथेन्द्रधनुषा भाति विभान्तं भगणैर्नभः। रत्नकुण्डलदीप्त्याचस्मितवक्त्रं सुशोभितम्
शरत्प्रफुल्लपद्मञ्च द्युमणेः किरणैर्यथा ॥ ४३ ॥
विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो वल्लवा मुने। प्रणम्य वासयामासू रत्नसिंहासने शुभे॥४४॥
उवास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः। यथा बभौ शरच्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे
श्रुत्वा तमुचूस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम् ॥ ४५ ॥
स्वेच्छामयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम्। दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरिः
सर्वेषां दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रविशारदः ॥ ४६ ॥
श्रीकृष्ण उवाच।
भो भो वल्लवराजेन्द्र किं करोषीह सुव्रत। आराध्यः कश्च का पूजा किं फलं पूजनेभवेत्
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च।
देवे रुष्टे भवेत् किं वा पूजायाः प्रतिवन्धके ॥ ४८ ॥
तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्र किम्। काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रे नेह काचन ॥
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन। अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका ॥
पूजेयमधुना वा ते किमु वा पुरुषक्रमात्। दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी
साक्षात् खादति देवस्ते वा साक्षात् किं न खादति।
साक्षाद् भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्चनम् ॥ ५२ ॥
साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः। ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥
किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने। पूजिता ब्राह्मणायेन पूजिताः सर्वदेवताः
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति। भस्मीभूतञ्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ॥
विप्राय देवनैवेद्यं दानात् ध्रुवमनन्तकम्। तुष्टो देवो वरं दत्त्वा प्रयाति च स्वमन्दिरम्
दत्त्वा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङ्क्ते स्वयं यदि।
दत्तापहारी देवस्वं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५७ ॥
देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यञ्च विना हरेः। प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यभोजनम् ॥५८॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। सर्वेषाञ्च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः

न दत्त्वा वस्तु देवायदत्तंविप्राय चेत्सुधीः। भुक्त्वा विप्रमुखेदेवास्तुष्टाः स्वर्गंप्रयान्तिच
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विप्राणामर्चनं कुरु। प्रशस्तफलदातॄणामिह लोके परत्र च ॥६१॥

जपस्तपश्च पूजा वा यज्ञदानं महोत्सवम्।
सर्वेषां कर्मणां सारं विप्रतुष्टिश्च दक्षिणा ॥ ६२ ॥

ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः। पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पादधूलिषु ॥
पादोदके च विप्राणांतीर्थतोयानि सन्तिच। तत्स्पर्शात् सर्वतीर्थेषुस्नानजन्यफलंलभेत्
नश्यन्ति भक्षणाद्रोगा भक्तिभावेन वल्लव। सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः
पापं पञ्चविधं कृत्वायो विप्रंप्रणमेद् द्विजः। स स्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वपापात् प्रमुच्यते
ब्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी। दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम्

अप्राज्ञो वाथ प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः।
प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरिसेविनः ॥ ६८ ॥

द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ। येषां पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा
तेषाञ्च पादचिह्नं यत्तीर्थं तत् परिकीर्त्तितम्। तेषाञ्च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति
आलिङ्गनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात्। दर्शनात्स्पर्शनाच्चैवसर्वपापात्प्रमुच्यते
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतोभवेत्। हरिदासस्य विप्रस्यतत् पुण्यंदर्शनाल्लभेत्
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नञ्च भुञ्जते। उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः ॥

न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद् भ्रमादपि।
पुरीषसदृशं वस्तु जलं मूत्रसमं भवेत् ॥ ७४ ॥

शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः। आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलार्चने। अधिकारो न शूद्राणां हरेरप्यर्चने तथा॥७६॥
द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्रविप्रेभ्यश्चेन्नदास्यति। भस्मीभूतानिसर्वाणि भविष्यन्तिनसंशयः
अन्नञ्च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थंदातुमर्हति। दत्त्वा विशिष्टजीवेभ्यो विशिष्टंफलमाप्नुयात्

अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम्।
शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं वैश्येभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥ ७९ ॥

दत्त्वान्नंक्षत्रियेभ्योऽपिवैश्यानांद्विगुणंभवेत् । क्षत्रियाणां शतगुणंविप्रेभ्योऽन्नंप्रदायच
विप्राणाञ्च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणेफलम् । शास्त्रज्ञानां शतगुणं भक्तेविप्रे लभेद्ध्रुवम्
सचान्नंहरये दत्त्वाभुङ्क्तेभक्त्याचसादरम् । विष्णवेविप्रभक्ताय दत्त्वादातुश्चयत्फलम्
तत् फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने । भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टेच देवताः॥८३॥

भवन्ति सिद्धाः शाखाश्च यथा मूलनिषेचनात् ।
द्रव्याण्येतानि देवाय यद्येकस्मै प्रयच्छति ॥ ८४ ॥

सर्वे देवाश्च रुष्टाश्चेद्देवैकः किं करिष्यति । अथवार्द्धञ्च वस्तूनां देहि गोवर्धनाय च ॥
गा वर्धयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः । गोवर्धनसमस्तातपुण्यवान्न महीतले ॥

नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि च ।
तीर्थस्नानेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं विप्रभोजने ॥ ८७ ॥

सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च । यत् पुण्यञ्च महादाने यत् पुण्यं हरिसेवने॥८८
भुवः पर्यटने यत्तु सर्ववाक्येषु यद्भवेत् । यत् पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायाञ्च लभेन्नरः ॥

तत् पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ॥ ८९ ॥

भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्विशुध्यति॥
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च । तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः । तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे

गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्त्तितम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ॥

नारायणांशान् विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः ।
कालसूत्रञ्च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ९५ ॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । आनन्दयुक्तो नन्दश्च तमुवाच स्मिताननः ॥

नन्द उवाच ।

पौर्वापरीयं पूजेति महेन्द्रस्य महात्मनः । सुवृष्टिसाधनीसाध्यं सर्वशस्यमनोहरम् ॥९७

शस्यानि प्राणिनां प्राणाः शस्याज्जीवन्ति जीविनः ।
पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषक्रमात् ॥ ९८ ॥
महोत्सवो वत्सरान्ते निर्विघ्नाय शिवाय च । इत्येवं वचनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः
उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ॥ ९९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अहो श्रुतं विचित्रं ते वचनं परमाद्भुतम् । उपहास्यं लोकशास्त्रं वेदेष्वेव विगर्हितम् ॥
निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद् वृष्टिः प्रजायते । अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुखात्तव ॥
शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदे । वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ॥
प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च विविधानपि संसदि । ब्रुवन्तु परमार्थञ्च किमिन्द्राद् वृष्टिरेव च
सूर्य्याद्धि जायते तोयं तोयात् शस्यानि शाखिनः ।
तेभ्योऽन्नानि फलान्येव तेभ्यो जीवन्ति जीविनः ॥ १०४ ॥
सूर्य्यग्रस्तञ्च नीरञ्च काले तस्मात्समुद्भवः । सूर्य्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः
यत्राब्दे यो जलधरो गजश्चसागरो मतः । शस्याधिपोनृपो मन्त्रीविधात्रातेनिरूपिताः
जलाढ़कानां शस्यानां तृणानाञ्च निरूपितम् ।
अब्देऽब्देस्त्येव तत् सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥ १०७ ॥
हस्ती समुद्राद‌ादाय करेण जलमीप्सितम् । दद्याद् घनाय तद् दद्याद्वातेन प्रेरितोघनः ॥
स्थाने स्थाने पृथिव्याञ्च काले काले यथोचितम् ।
ईशेच्छयाविर्भूतञ्च न भवेत् प्रतिबन्धकम् ॥ १०९ ॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च महत् क्षुद्रञ्च मध्यमम् । धात्रा निरूपितं कर्म केन तात निवार्यते
जगच्चराचरं सर्वं कृतं तेनेश्वराज्ञया । आदौ विनिर्मितं भक्ष्यं पश्चाज्जीव इति स्मृतः ॥
अभ्यासात् स स्वभावो हि स्वभावात्कर्म एव च ।
जायते कर्मणाम्भोगो जीविनां सुखदुःखयोः ॥ ११२ ॥
यातनाजन्ममरणरोगशोकभयानि च । समुत्पत्तिविपद्व्रिया कविता वा यशोऽयशः ॥
पुण्यञ्च स्वर्गवासश्च पापं नरकसंस्थितिः । भुक्तिर्मुक्तिर्हरेर्दास्यं कर्मणा घटते नणाम् ॥

सर्वेषां जनको हीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम् ।
धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत् ॥ ११५ ॥
विनिर्मितो विराटेन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् । कूर्मश्च शेषो धरणी चाब्रह्मस्तम्भ एव च
यस्याज्ञया मरुत् कूर्मं धत्तेशेषं बिभर्त्तिसः । शेषो वसुन्धरां मूर्ध्नासाच सर्वञ्चराचरम्
यस्याज्ञया सदा वाति जगत्प्राणो जगत्त्रये । तपतिभ्रमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः
दहत्यग्निः सञ्चरते मृत्युश्च सर्वजन्तुषु । बिभर्त्ति शाखिनः काले पुष्पाणिच फलानिच
स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना ।
तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः ॥ १२० ॥
ब्रह्माण्डञ्च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम् । विधयश्च कतिविधा यस्य भ्रूभङ्गलीलया
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः । भज तं शरणं तातसतेरक्षां करिष्यति
अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम् । विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः ॥
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गुणस्यात्मनः प्रभोः । एवंभूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विडम्बनम् ॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । प्रशशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः ॥
नन्दः सपुलको हृष्टः सभायां साश्रुलोचनः । आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः
श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम् ।
क्रमेण वरणं तत्र सर्वेषाञ्च चकार ह ॥ १२७ ॥
पर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा । बुधानां ब्राह्मणानाञ्च गवां वह्नेश्च सादरम्
तत्र पूजासमाप्तौ च क्रतौ च सुमहोत्सवे । नानाप्रकारवाद्यानां बभूव शब्द उल्वणः ॥
जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह । वेदमङ्गलकाण्डञ्च पपाठ मुनिपुङ्गवः ॥१३०॥
वन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः ।
उच्चैः पपाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम् ॥ १३१ ॥
कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्त्तिं विधाय च ।
वस्तु खादामि शैलोऽस्मि वरं वृण्वित्युवाच ह ॥ १३२ ॥
उवाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः । वरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्युवाच ह

हरेर्दास्यं हरेर्भक्तिं वरं वव्रे स वल्लवः । द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानञ्चकार ह

मुनीन्द्रान् ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपः ।

वन्दिभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ ॥ १३५ ॥

मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदान्वितः ।

रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ १३६ ॥

रौप्यं वस्त्रं सुवर्णञ्च वरमश्वं मणिं तथा । भक्ष्यद्रव्यं बहुविधं वन्दिने डिण्डिने ददौ

स्तुत्या नत्वा रामकृष्णौ मुनयो ब्राह्मणा ययुः ॥ १३७ ॥

ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । राजानो वल्लवाःसर्वे चागता ये महोत्सवे

सर्वे प्रणम्य श्रीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम् ॥ १३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः । मखभङ्गे बहुविधां निन्दां श्रुत्वा सुरेश्वरः

मरुद्भिर्वारिदैः सार्द्धं रथमारुह्य सत्वरम् ॥ १३९ ॥

जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम् । सर्वे देवा ययुः पश्चाद् युद्धशास्त्रविशारदाः ॥

शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद । वाद्यशब्दैर्मेघशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः ॥१४१

चकम्पे नगरं सर्वं नन्दो भयमवाप ह । भार्य्यां सम्बोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः

रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥ १४२ ॥

नन्द उवाच ।

हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि ।

रामकृष्णौ समादाय व्रज दूरं व्रजात् प्रिये ॥ १४३ ॥

बालका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः । बलवन्तश्चगोपालास्तिष्ठन्तुमत्समीपतः

पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयञ्च प्राणसङ्कटात् । इत्युक्त्वा वल्लवश्रेष्ठःसस्मार श्रीहरिंभिया

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।

काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव श्रीशचीपतिम् ॥ १४६ ॥

नन्द उवाच ।

इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः । सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपात्मज एव च ।

विड़ौजाश्च शुनासीरोमरुत्वान् पाकशासनः। जयन्तजनकः श्रीमान् शचीशो दैत्यसूदनः
वज्रहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः। वृत्रहा वासवश्चैव दधीचिदेहभिक्षुकः॥
जिष्णुश्च वामनभ्राता पुरुहूतः पुरन्दरः। दिवस्पतिः शतमखः सुत्रामा गोत्रभिद्विभुः॥
लेखर्षभो कलारातिर्जम्भभेदी सुराश्रयः। संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः॥
आखण्डलो हरिहयो नमुचिप्राणनाशनः। वृद्धश्रवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिषूदनः॥१५२॥
षट्चत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम्॥ १५३॥
स्तोत्रमेतत् कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः। महाविपत्तौ शक्रस्तं वज्रहस्तश्च रक्षति॥
अतिवृष्टिशिलावृष्टि वज्रपाताच्चदारुणात्। कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिता वासवःस्वयम्
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं यश्चजानाति पुण्यवान्। न तत्र वज्रपतनं शिलावृष्टिश्च नारद॥

श्रीनारायण उवाच।

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुकोप मधुसूदनः। उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा
कं स्तौषि भीरो को वेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके।
क्षणार्द्धे भस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमवलीलया॥ १५८॥
गाश्चवत्सांश्च बालांश्च योषितो या भयातुराः। गोवर्द्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम्
बालस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार मुदान्वितः। हरिर्दधार शैलन्तं वामहस्तेन दण्डवत्॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा। अन्धीभूतश्च सहसा बभूव रजसावृतम्॥
सवातो मेघनिकरश्चच्छादगगनं मुने। वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम्॥ १६२॥
शिलावृष्टिर्वज्रवृष्टिरुल्कापातः सुदारुणः। समस्तं पर्वतस्पर्शात् पतितं दूरतस्ततः॥
विफलस्तत्समारम्भो यथानीशोद्यमो मुने। दृष्ट्वा मोघञ्च तत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ह
जग्राहामोघकुलिशं दधीच्यस्थिविनिर्मितम्। दृष्ट्वा तं वज्रहस्तञ्च जहास मधुसूदनः॥
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम्। सहामरगणैर्मेघश्चकार स्तम्भनं विभुः॥
सर्वे तस्थुर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा।
हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह॥ १६७॥
ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत्। द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नालङ्कारभूषितम्॥

पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥१६९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गमेतत् सर्वं चराचरम् । दृष्ट्वाद्भुततमं तत्र सद्यो मूर्च्छामवाप ह ॥१७०
जजाप मन्त्रं तत्रैव प्रदत्तं गुरुणा पुरा । सहस्रदलपद्मास्थं ददर्श ज्योतिरुल्बणम् ॥१७१
तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीवसुमनोहरम् । नवीनजलदोत्कर्षश्यामसुन्दरविग्रहम् ॥ १७२ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणं ज्वलन्मकरकुण्डलम् । ज्वलन्मणीन्द्रमकरकिरीटोज्ज्वलशेखरम् ॥

ज्वलता कौस्तुभेन्द्रेण कण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ।
मणिकेयूरवलयमणिमञ्जीररञ्जितम् ॥ १७४ ॥
अन्तर्वहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १७५ ॥

इन्द्र उवाच ।

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम् ॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम् । शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमेण(णेन)च॥१७७॥
शुक्लतेजः स्वरूपञ्च सत्ये सत्यस्वरूपिणम् । त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
द्वापरे पीतवर्णञ्च शोभितं पीतवाससा । कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम् । नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम्॥१८०॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् । कन्दर्पकोटिसौन्दर्य्यं विभ्रन्तं शान्तमीश्वरम् ॥

क्रीड़न्तं राधयासार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।
कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ १८३ ॥

जलक्रीड़ां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् । राधिकाकवरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने ॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम् । राधाचर्विततताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥
पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । दत्तवन्तञ्च राधायै कृत्वा मालाञ्च कुत्रचित्
कुत्रचिद्राधयासार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम् । राधादत्तां गले मालां धृतवन्तञ्च कुत्रचित्

सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तञ्च कुत्रचित् ।
राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय ताञ्च कुत्रचित् ॥ १८८ ॥

विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तञ्च कुत्रचित्। भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥
वस्त्रं गोपालिकानाञ्च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा। गवाङ्गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह
कालीयमूर्ध्निपादाब्जं दत्तवन्तञ्च कुत्रचित्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह। स्तुत्वा शक्रःस्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१९३॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥

कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुरवेऽङ्गिरसा मुने।
इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ॥ १९५ ॥

इहप्राप्य दृढां भक्तिमन्तेदास्यं लभेद् ध्रुवम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्योमुच्यतेनरः

न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥ १९६ ॥

नारायण उवाच।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीनिकेतनः। प्रीत्या तस्मै वरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम्

प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणैः सह ॥ १९७ ॥

गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुर्गह्वराद् गृहम्। ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम् ॥

पुरस्कृत्य व्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः ॥ १९८ ॥

तुष्टाव नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम्। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाश्रुलोचनः ॥

नन्द उवाच।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तुते। नमो मत्स्यादिरूपाणां जीवरूपायसाक्षिणे

निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः ॥ २०१ ॥

अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात्स्थूलतमाय च। सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूपाय ते नमः

अतिसूक्ष्मस्वरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां वन्द्याय नित्यरूपिणे ॥ २०३

धाम्ने चतुर्णां वर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च। शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने॥
योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि। सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः॥
यं स्तोतुमक्षमो ब्रह्मा विष्णुर्यंस्तोतुमक्षमः। यंस्तोतुमक्षमो रुद्रःशेषो यं स्तोतुमक्षमः॥
यं स्तोस्तुमक्षमो धर्मो यंस्तोतुमक्षमोरविः। यंस्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि षड़ाननः
यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे मुनयः सनकादयः। कपिलो न क्षमःस्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः
न शक्तौ स्तवनं कर्त्तुं नरनारायणावृषी। अन्ये जड़धियः केवास्तोतुंशक्ताःपरात्परम्
वेदा न शक्ता नोवाणी नच लक्ष्मीःसरस्वती। नराधास्तवने शक्ता किंस्तुवन्तिविपश्चितः
क्षमस्व निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे। रक्ष मां करुणासिन्धो दीनबन्धो भवार्णवे॥
पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः। स्वकीयचरणाम्भोजे भक्ति दास्यञ्चदेहिमे

ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्यादिकमेव वा।
त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्॥ २१३॥
इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा संप्राप्ति सिद्धिस्वर्गयोः।
राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम्॥ २१४॥

एतद्यत् कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वर। भक्तसङ्गक्षणार्द्धस्य नोपमा ते किमर्हति॥
त्वद्भक्तोयस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः। क्षणार्द्धालापमात्रेण पारंकर्त्तुं सचेश्वरः
भक्तसङ्गाद्भवत्येव भक्ति कर्त्तुमनेकधा। त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन वर्द्धते॥ २१७॥

अभक्तालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम्।
तद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्द्धते तत्क्षणे स्फुटम्॥ २१८॥

त्वद्भक्त्यङ्कुरमुद्भूतं स्फीतं मानसजं परम्। न नश्यं वर्द्धनीयञ्च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे
ततः सम्प्राप्य ब्रह्मत्वं भक्तस्य जीवनाय च। ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम्
संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह। सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम्॥
इत्येवमुक्त्वा भक्त्याच नन्दस्तस्थौहरेः पुरः। प्रसन्नवदनः कृष्णोददौ तस्मैतदीप्सितम्

एवं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्।
सुदृढ़ां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेद्धरेः॥ २२३॥

तपस्तप्त्वा यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह।
स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तत् सुदुर्लभम् ॥ २२४ ॥
हरेः षडक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम्। इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे ॥
तदेव कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः। ब्रह्मणोंऽशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते ॥
मन्त्रः स्तोत्रञ्च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा।
या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम् ॥ २२७ ॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमद्भुतम्। सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम्

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
इन्द्रयागभञ्जनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः।

द्वाविंशोऽध्यायः

धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

एकदा राधिकानाथो बलेन सह बालकैः। जगाम तत्तालवनं परिपक्वफलान्वितम् ॥१॥
वृक्षाणां रक्षिता दैत्यः खररूपी च धेनुकः। कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः ॥
शरीरं पर्वतसमं कूपतुल्ये च लोचने। ईषापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥ ३ ॥
शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका। कासारसदृशा नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः
दृष्ट्वा तालवनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः। कौतुकात् कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः ॥

बाला ऊचुः।

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते। महाबलबलभ्रातः समस्तबलिनां वर ॥
अवधानं कुरु विभो क्षणार्द्धं नो निवेदने। क्षुधितानां शिशूनाञ्च भक्तानां भक्तवत्सल
स्वादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च।

भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान् पातितुञ्च फलानि च ॥ ८ ॥
नानावर्णानि पुष्पाणि पक्वानि दुर्लभानि च ।
आज्ञां करोषि चेत् कृष्ण चेष्टां कर्त्तुं वयं क्षमाः ॥ ९ ॥

किन्त्वत्र दैत्यो बलवान् खररूपी च धेनुकः । अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ॥
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान् । हिंसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता
सुविचार्य्य जगत्कान्त वद नो वदतां वर । युक्तं कार्य्यमयुक्तं वा कर्त्तव्यमथवा न वा
बालकस्य वचः श्रुत्वा भगवान् मधुसूदनः । उवाच मधुरं बालान् वचनंतत्सुखावहम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

किं वो दैत्याद्भयं बाला यूयं मत्सहचारिणः ।
वृक्षान् भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादताभयम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः । उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधिताश्च फलार्थिनः
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च । फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद ॥
केचिद् बभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव । केचित् कोलाहलञ्चक्रुर्ननृतुस्तत्र केचन ॥१७
अवरुह्य तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः । फलान्यादाय गच्छन्तो ददृशुर्दैत्यपुङ्गवम् ।१८
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम् । आगच्छन्तं महावेगात् कुर्वन्तं शब्दमुल्बणम्
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया । कृष्ण कृष्णेति शब्दञ्च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम् ॥

अस्मान् रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे ।
हे सङ्कर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥ २१ ॥
हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो ।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥ २२ ॥
भयेऽभये वाथ शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ ।
त्वया विनान्यं शरणं भवार्णवे न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥ २३ ॥

जय जय गुणसिन्धो कृष्णभक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान् बालकान् रक्ष रक्ष ।
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदर्पं वर्धयेमं निहत्य ॥२४ ॥

बालानां विक्लवं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः। आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः ॥
भयंनास्तिभयंनास्तीत्युक्त्वादुद्रावसत्वरम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्योनिर्भयं दत्तवान्शिशून्
दृष्ट्वा कृष्णं बलं बाला ननृतुर्विजहुर्भयम्। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका॥२७॥
श्रीकृष्णो दानवं दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः शिशून्। बलं सम्बोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः

श्रीकृष्ण उवाच।

दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली। गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा
पापिष्ठो मम बध्योऽयं महाबलपराक्रमः। अहमेनं वधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान् बल ॥
आदाय बालकान् सर्वान् दूरं गच्छेत्युवाच ह।
तान् गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाज्ञया ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः। जग्रास लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम्॥
बभूवातिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा। उज्जग्रास पुनर्दैत्यो विभुं तेजस्विनं भिया ॥
उज्झितं सन्ततमीशञ्च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह। अतीवसुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा
कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरा स्मृतिः। आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम्
तेजःस्वरूपमीशन्तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः। यथागमं यथा जन्म गुणातीतं श्रुतेः परम् ॥

दानव उवाच।

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः। राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायकः ॥
बलिभक्तिवशो वीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः।
शीघ्रं त्वं हिंस मां पापं शापाद्गर्दभरूपिणम् ॥ ३८ ॥
मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम्। मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते
षोड़शारेण चक्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा। जहि मां जगतां नाथ सद्भक्तिं कुरु मोक्षद ॥
त्वमंशेन वराहश्च समुद्धर्त्तुं वसुन्धराम्। वेदानां रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिषूदनः ॥
त्वं नृसिंहः स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्वधे। प्रह्लादानुग्रहार्थाय देवानां रक्षणाय च ॥
त्वञ्च वेदोद्धारकर्त्ता मीनांशेन दयानिधे।
नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षायै सुरविप्रयोः ॥ ४२ ॥

शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे । विश्वाधारश्च शेषस्त्वमंशेनापि सहस्रदृक् ॥
रामो दाशरथिस्त्वञ्च जानक्युद्धारहेतवे । दशकन्धनिहन्ता च सिन्धौ सेतुविधायकः
कलया पर्शुरामश्च जमदग्निसुतो महान् । त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निहन्ता जगतीपते ॥
अंशेन कपिलस्त्वञ्च सिद्धानाञ्च गुरोर्गुरुः । मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः
अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठौ नरनारायणावृषी । त्वञ्च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः ॥
अधुना कृष्णरूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम् । सर्वेषामवताराणां जीवरूपः सनातनः ॥

यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः ।
प्राणाधिदेवो गोपिनां राधाप्राणाधिकः प्रियः ॥ ५० ॥

वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः । अयोनिसम्भवः श्रीमान् पृथिवीभारहारकः ॥
पूतनायै मातृगतिं प्रदाता च कृपानिधिः । वलकेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः ॥
स्वेच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन । प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम्
हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात् । मूर्खस्त्वद्भक्तपुत्रोऽहं मामुद्धर्त्तुं त्वमर्हसि

वेदा ब्रह्मादयो यञ्च मुनीन्द्रास्स्तोतुमक्षमाः ।
किं स्तौमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः ॥ ५५ ॥

एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे न भवेज्जनुः । दृष्ट्वा पादारविन्दं ते कः पुनर्भवनं व्रजेत् ॥
ब्रह्मास्तोताखरःस्तोता नोपहासितुमर्हसि । सदीश्वरस्य विज्ञस्य योग्यायोग्येसमाकृपा
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्थौ च पुरतो हरेः । प्रसन्नवदनः श्रीमानतितुष्टो बभूव ह ॥५८॥

इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरेः ॥ ५९ ॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम् ।
विद्यां श्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान् यशो लभेत् ॥ ६० ॥

श्रीनारायण उवाच ।

श्रुत्वानुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः । कथं करोमि संहारमीदृशं भक्तमित्यहो ॥
अनुमन्य स्मृतिं तस्यसंजहारहरिः स्वयम् । नहि युक्तोवधस्तोतुर्दुर्वेकुर्विधिरीश्वरात

दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम् । दुरुक्ति कण्ठदेशे तदधिष्ठानं चकार ह
उवाच श्रीहरिं दैत्यः कोपात् प्रस्फुरिताधरः । मुनेसद्यो मर्त्तुकामो दैवग्रस्तो विचेतनः

दैत्य उवाच ।

ध्रुवं त्वं मर्त्तुकामोऽसि दुर्बुद्धे मानवार्भक । अद्य प्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम्

आयासि जीवनाकाङ्क्षी मम तालवनं शिशो ।
न यास्यसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि ॥ ६६ ॥
न कंसो न जरासन्धो नरको न समो मम ।
देवाः कम्पन्ति मे नित्यं के चान्ये मत्समा भुवि ॥ ६७ ॥
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्त्तुं क्षमः शिवः ।
न च ब्रह्मा न विष्णुश्च न मृत्युः काल एव च ॥ ६८ ॥
मम तालतरून् भङ्क्त्वा पातयित्वा फलानि च ।
अहङ्कारोऽति सहसा किमहो कस्य तेजसा ॥ ६९ ॥

कस्त्वं वद वटो सत्यं कमनीयोऽतिसुन्दरः । दुर्लभं जीवनं दातुं मह्यं कथमिहागतः ॥
इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा तु तं बली । दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः
पातयित्वाच तं भूमौ विषाणाभ्यां जघानसः । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेणतद्विषाणौ बभञ्जतुः
दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपतो मुने । जग्रास चर्वणं कर्त्तुं भग्नदन्तो बभूव ह ॥
तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे । जज्वाल व्यथितः कोपाद्ददार खुरतोमहीम्
घूर्णयित्वातु लांगूलं शब्दं कृत्वा भयानकम् । स जगाम शिशुस्थानंदुद्रुवुर्बालकाभिया
बलश्च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली । बलो मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः ॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसन्निधिम् । वज्रमुष्ट्याच व्यथितःपुनर्मूर्च्छामवापसः
पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ व्यथाकुलः । उत्ससर्ज वृहल्लेडं(ण्ड) मूत्रञ्च भयमाप ह
क्षणात् सन्धिक्षणंप्राप्य महाबलपराक्रमः । कृत्वा शिरसिगोविन्दं घूर्णयामासदानवः
पातयामास भूमौ तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः । उत्पाट्य तालवृक्षंतं ताड़यामास माधवः॥
यथा केशापहारेण मानवस्य भवेद् व्यथा । तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताड़नात्

गोवर्धनं समुत्पाट्य घातयामास तं विभुः। पपात वेगाच्छैलेन्द्रस्तस्योपरि महामुने ॥
पर्वतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाप महाबलः। बभूव पलिताङ्गश्च रुधिरञ्च समुद्वहन् ॥८३
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ रुषासुरः। गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं प्रेरयामास माधवम् ॥
दृष्ट्वा शैलमुत्पतन्तं वेगेन मधुसूदनः। जग्राह दक्षिणकरे यथेक्षुदण्डवत्प्रभुः ॥ ८५ ॥
पूर्वस्थाने पर्वतं तं स्थापयामास कौतुकात्। गृहीत्वा दैत्यकर्णाग्रं पातयामास दूरतः ॥
उत्पत्य च महावेगाच्चकार वेष्टनं हरेः। पृथिवीं घर्षयामास तीक्ष्णाग्रेण खुरेण च ॥
प्रगृह्य श्रीहरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः। उत्पपात मनोयायी लीलया लक्षयोजनम्
प्रहरञ्च तयोर्युद्धं निर्लक्षे च बभूव ह। ततो गृहीत्वा श्रीकृष्णं पपात धरणीतले ॥८९॥
पुनर्मुहूर्त्तं युद्धञ्च बभूव भूतले तयोः। मुदा हरिः प्रशशंस प्रहस्य दानवेश्वरम् ॥ ९० ॥
मद्भक्तस्य बलेः पुत्र धन्यंत्वज्जीवनं परम्। स्वस्त्यस्तुते दानवेन्द्र वत्सनिर्वाणतां व्रज
मद्दर्शनं स्वस्ति बीजं परं निर्वाणकारणम्। सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं मनोहरम् ॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम्।
सूर्य्यकोटिसमं दीप्त्या जग्राह तत् सुदर्शनम् ॥ ९३ ॥
चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोड़शारमनुत्तमम्।
चिच्छेद लीलया वध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ९४ ॥
पपात मस्तकं भूमौ दानवस्य महात्मनः।
तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्य्यसमप्रभः ॥ ९५ ॥
विलोक्य हरिर्लोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाम्बुजे।
सम्प्राप्य परमं मोक्षमहो दानवपुङ्गवः ॥ ९६ ॥

गगनस्थाः सुराः सर्वे मुनयश्च भृशं मुदा। पारिजातप्रसूनानाञ्चक्रुस्ते पुष्पवर्षणम् ॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे ननृतुश्चाप्सरोगणाः। जगुर्गन्धर्वनिकरास्तुष्टुवुर्मुनयो मुदा ॥९८॥
स्तुत्वा जग्मुः सुराः सर्वे मुनयो हर्षविह्वलाः। धेनुकस्य वधं दृष्ट्वा तत्राजग्मुश्चबालकाः
बलश्च बलिनां श्रेष्ठस्तुष्टाव पुरुषोत्तमम्। तुष्टुवुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च मुदान्विताः ॥
दत्त्वा कृष्णबलाभ्याञ्च प्रपक्वानि फलानि च। सर्वाणिभक्षयामासुर्बालाःप्रहृष्टमानसाः

भुक्त्वा पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह। जगाम स्वालयं ब्रह्मन्निहत्य दानवेश्वरम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

धेनुकवधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः।

त्रयोविंशोऽध्यायः

दुर्वाससःशापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम्।

नारद उवाच।

केन पापेन बलिजो गर्दभत्वमवाप ह। दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम् ॥१॥

केन पुण्येन वा नाथ बलिनः श्रीहरेः पदम्। सहसैकत्वमुक्तिञ्च संप्राप दानवाधिपः॥

मुने सर्वं सुविस्तार्य्य वद सन्देहभञ्जन। अहो कविमुखे काव्यं नूत्नं नूत्नं पदे पदे॥

श्रीनारायण उवाच।

शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने॥

पाद्मकल्पे च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम्। नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥

यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपवर्हणः। आकल्पजीवी सश्रीकः सुन्दरः स्थिरयौवनः॥

पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च पतिः शृङ्गारतत्परः। वरेण ब्रह्मणस्त्वञ्च सुकण्ठो गायनेश्वरः॥

अनुक्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुखपङ्कजम्। निमेषरहिताः सर्वाः कामबाणप्रपीड़िताः॥

तासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिव श्रुतम्।

दिवानिशं सहचरा न जीवन्ति त्वया विना॥ ९॥

पुष्पोद्याने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे। गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च॥

काननेषु च रम्येषु श्मशाने जन्तुवर्जिते। यथामनोरथं ताश्च क्रीडाञ्चक्रुस्त्वया सह॥

तदा दैवाद्विधेः शापाद् भूत्वा दासीसुतो भवान्।

अधुना ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्॥ १२॥

असंख्यकल्पजीवी च वैष्णवप्रवरो महान्। ज्ञानदृष्ट्या सर्वदर्शी प्रियशिष्यश्च धूर्जटेः
तस्य कल्पस्य वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय। विस्तार्य्यदैत्यवृत्तान्तंकथयामिसुधोपमम्

एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली।
स्वतेजसा सुरान् जित्वा प्रतस्थौ गन्धमादनम् ॥ १५ ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः। रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति तिलोत्तमा। रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेशविधायिनी ॥
चारुचम्पकवर्णाभा रत्नाभरणभूषिता। नवयौवनसम्पन्ना कामबाणप्रपीड़िता ॥ १८ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्रं सुबिभ्रती। वक्रभ्रूभङ्गयुक्ता सा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥
स्तनमूरुं मुखेन्दुञ्च दृष्ट्वा साहसिको युवा। वायुना मुक्तवस्त्रायास्तस्यामूर्च्छामवापह
सा ददर्श बलेः पुत्रमतीवसुमनोहरम्। प्रफुल्लमालतीमालां बिभ्रतं नवयौवनम् ॥२१॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम्।
दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात् कटाक्षञ्च चकार सा ॥२२॥

क्रीड़ायै चन्द्रलोकञ्च गच्छन्ती चन्द्रकामुकी। तस्थौ केन छलेनैव मत्ता शृङ्गारलालसा
दर्शं दर्शञ्च तस्यास्यं प्रहस्य वक्रचक्षुषा। मुखस्याच्छादनं चक्रे वाससा सा पुनः पुनः
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं धर्मकर्मसमन्वितम्। बभूव काममत्ताया योनौ कण्डूयनं जलम् ॥
विसस्मार शशधरं बलिपुत्रमनोरथा। अहो को वेद भुवने दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीमनः ॥२६॥

पुंश्चल्यां यो हि विश्वस्तो विधिना स विड़म्बितः।
बहिष्कृतश्च यशसा धर्मेण स्वकुलेन च ॥ २७ ॥
वाञ्छितं नूतनं प्राप्य विनश्यति पुरातनम्।
सदा स्वकर्मसाध्या सा को वा तस्याः प्रियोऽप्रियः ॥ २८ ॥
दैवे कर्मणि पैत्र्ये च पुत्रे बन्धौ न भर्त्तरि।
दारुणं पुंश्चलीचित्तं सदा शृङ्गारकर्मणि ॥ २९ ॥

प्राणाधिकं रतिज्ञं सामृतदृष्ट्या च पुंश्चली। रत्नप्रदं रत्नविज्ञं विषदृष्ट्या हि पश्यति ॥
सर्वेषां स्थलमस्त्येव पुंश्चलीनां न कुत्रचित्। दारुणा पुंश्चलीजातिर्नरघातिन्य एवच ॥

निष्कृतिः सर्वभोगान्ते सर्वेषामस्ति निश्चितम् ।
न पुंश्चलीनां विप्रेन्द्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३२ ॥
अन्यासां कामिनीनाञ्च कीटं हन्तुश्च या दया ।
सा नास्ति पुंश्चलीनान्तु कान्तं हन्ति पुरातनम् ॥ ३३ ॥

कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येव सोपायेनावलीलया। रतिज्ञं नूतनं प्राप्य विषतुल्यं पुरातनम् ३४
पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीष्वेवभारते । तिष्ठन्ति ताभ्यो नपरः पापिष्ठाःसन्तियेचन
पुंश्चलीपरिपक्वान्नं सर्वपातकनिश्चितम् । दैवे कर्मणि पैत्र्ये च न देयञ्च तथा जलम्॥

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पुंश्चलीनाञ्च निश्चितम् ।
दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥

शतवर्षं कालसूत्रे पचत्येव सुदारुणे। घोरान्धकारे कृमयस्तं दशन्ति दिवानिशम् ॥३८
पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते दैवाद्यदि नराधमः । सप्तजन्मकृतं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्
आयुः श्री यशसां हानिरिह लोके परत्र च। तस्माद्यत्नाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कलत्रकम्॥

पुंश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
स्पर्शने च महापापं तीर्थस्नानाद्विशुध्यति ॥ ४१ ॥

स्नानं दानं व्रतञ्चैव जपश्च देवपूजनम् । निष्फलं पुंश्चलीनाञ्च भारते जीवनं वृथा ॥४२
कथितं कुलटाख्यानं दुर्ज्ञेयञ्च यथागमम् । संवादञ्च तयोस्तत्र प्रकृतं शृणु नारद ॥४३॥
स पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बले सुतः । कामातुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटान्तिकम्
उवाच कुटिलापाङ्गीं पीनश्रोणिपयोधराम् । व्रीडया वाससावक्त्रमाच्छन्नंकुर्वतींमुदा

साहसिक उवाच ।

कासि त्वं कस्य कन्यासि कस्य कान्तासि कामिनि ।
स्वयं क्व यासि कं सुभ्रू पुण्यवन्तं मनोहरम् ॥ ४६ ॥

कल्पान्ते तपसा पूतं भोक्तुं त्वामेवसुन्दरि । यंतं यासि याहिसात्वं भृत्यंमांकर्तुमर्हसि
क्रीणीहि रतिपुण्येन मां भृत्यं रतिलोलुपम् । शृङ्गारलोलुपा त्वञ्च शृङ्गारंदेहि कामुकि

त्वया सह ममाश्लेषो विधिना च विनिर्मितः ।

निरूपितं यत्तेनैव वार्यते केन तत् प्रिये ॥ ४९ ॥

वाक्यं पीयूषसदृशं सस्मितं वद सुन्दरि। शीघ्रं भुजलतापाशैर्बन्धनं कुरु निर्जने ॥५०॥

आसनं देहि कल्याणि स्वोरुं कनकसन्निभम्।

स्तनमण्डलकुम्भञ्च यात्रायोग्यं प्रदर्शय ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णास्त्रेण कटाक्षेण जर्जरं कुरु भामिनि। कामसर्पक्षतं पादस्पर्शेन नीरुजं कुरु ॥५२॥

अधरौष्ठामृतं स्वादु देहि मे क्षुधिताय च। पक्वदाडिमबीजाभं दन्तं दर्शय सुन्दरम् ॥

गम्भीरनाभिं त्रिवलीं द्रष्टुमिच्छामि सुन्दरि।

नीवीप्रमोक्षणं कर्त्तुमिच्छा मे वर्त्तते सदा ॥ ५४ ॥

श्रोणिं पश्यामि ललितां मुनिमानसमोहिनीम्।

शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम् ॥ ५५ ॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं प्रसन्नञ्च प्रदर्शय। सा च तद्वचनं श्रुत्वा··तमुवाच स्मरातुरा।

दृष्ट्वातं कामबाणेन मानसं यक्षकामिनी ॥ ५६ ॥

तिलोत्तमोवाच।

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीनां मनोवितः।

बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान् गुणवान् युवा ॥ ५७ ॥

शृङ्गारनिपुणः कान्तः कामशास्त्रविशारदः। सदा मनोज्ञःस्त्रीणां त्वं सुवेशश्चस्वभावतः

सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम्। शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानंरसिकंशुचिम्

स्त्रीमनोज्ञं दयालुञ्च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम्। दातारमनुरक्तञ्च कान्तमिच्छति कामिनी

एते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम्।

त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिताः ॥ ६१ ॥

सन्तोषं ते करिष्यामि समागम्य विधोर्गृहात्।

वेशं कृत्वा तु चन्द्रार्थं यात्राद्य तस्य कामिनी ॥ ६२ ॥

अन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना। याश्च धर्मान्न रक्षन्ति तासाञ्च जीवनं वृथा ॥

चन्द्राश्लेषं न जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्त्तिताः।

ता एव मातृगर्भस्था न प्राज्ञाः पौरुषैरसैः ॥ ६४ ॥

स्ववक्षौ मदनश्चन्द्रो मरुत्वान्नलकूबरः । एभिर्नालिङ्गिता यास्ता वञ्चिता रतिकर्मभिः

दिवानिशं मानसं मे तेषां क्रीड़ाश्च चिन्तयेत् । विशेषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि

चन्द्रशृङ्गारमाश्लेषमालापममृताधिकम् । अद्य तस्य रतिर्दिनं तेन तं चिन्तयेन्मनः ॥६७

तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः ।

सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले ॥ ६८ ॥

साहसिक उवाच ।

ब्रह्मणा निर्मिता त्वञ्च कौतुकेन तिलोत्तमे ।

अतो वरा चाप्सरसां विदग्धरसिकेश्वरी ॥ ६९ ॥

सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तेन प्रयत्नतः । सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा ॥७०

सर्वं जानासि सर्वज्ञे विज्ञे सुरतकर्मणि । हर्षेण श्रोतुमिच्छामि वद वो मानसं वचः ॥

अतिप्रियश्च को वा च कःस्वभावोवरानने । अवश्यंगोपनीयञ्च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि

गन्धर्वाणां सुराणाञ्च राज्ञां पुण्यवतामपि । सर्वेषां प्राणतुल्या त्वमेषु ते कः परःप्रियः

असुरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य सा तिलोत्तमा ।

मुखमाच्छादयामास विलोक्य वक्रचक्षुषा ॥ ७४ ॥

सत्यं सारमन्तरस्थमव्यक्तमतिगोपनम् । उवाच मानसं वाक्यमज्ञातं विदुषामपि ॥७५

तिलोत्तमोवाच ।

कथनीयं साहसिक पुंश्चलीनां मनोवचः । स्त्रीजातीनाञ्च सर्वासामुपहासकरं परम् ॥

सर्वेषामपि दुर्ज्ञेयं चरितं योषितामपि । विशेषतोऽपि दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीनां मनोवचः ॥७७

वेदवेदाङ्गशास्त्रान्तं सर्वं जानाति पण्डितः ।

कान्त नान्तं विजानाति दिशामाकाशयोषिताम् ॥ ७८ ॥

विषादप्यप्रियो वृद्धो रत्नादपि च योषिताम् ।

युवा सर्वस्वहर्त्ता चेत्प्राणेभ्योऽपि परः प्रियः ॥ ७९ ॥

युवानं सुन्दरं दृष्ट्वा ह्यार्त्ता भवति पुंश्चली । विशेषतः सुवेशञ्च दृष्ट्वैव हतचेतना ।

निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पपौ मुखम् ॥ ८० ॥
योनौ जलं क्षरेत्तस्याः सद्यः कण्डूयनं भवेत् ।
मनोऽतिलोलमस्थैर्य्यं सर्वाङ्गानि चकम्पिरे ।
जड़ीभूतं शरीरञ्च प्रदग्धं मदनानलात् ॥ ८१ ॥

संप्राप्य तं चेद्रहसि सालापं कुरुते स्फुटम् । सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः
तथा यदि वशं कर्त्तुं न शशाक जितेन्द्रियम् । स्वमङ्गं दर्शयित्वातमन्तर्वाक्यंस्फुटंवदेत्
दुःसाध्ये नायके दुःखं भवेदाजन्म जन्मनि । तत्तुल्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली

पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले ।
योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥ ८५ ॥

पूर्वजारं पतिं पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया॥८६
न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिंविना
शयने भोजने चापिस्वप्नेज्ञानेदिवानिशम् । नित्यं सत्पुरुषाश्लेषंस्मरन्तिकुलटाः स्त्रियः
शृङ्गारनिपुणानाञ्च ध्यानसाध्या चिरं परम् । दारुणापुंश्चली जातिः प्रार्थयन्ती नवं नवम्
सर्वासां कुलटानाञ्च चरित्रं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयञ्च मम हृद्वचनं शृणु ॥९०
मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वेषूरगेषु च । युवानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः ॥९१
विशेषतः शशधरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम

प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति ।
स्मरस्य स्मरणात् तूर्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥ ९३ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योषितामपि । आज्ञां कुरुमहाराज यास्यामिचन्द्रसन्निधिम्
चन्द्रस्थानात्तव स्थानं समागत्य सुनिश्चितम् । सन्तोषं तव दैत्येन्द्रकरिष्यामिनसंशयः
श्रुत्वैवं बलिपुत्रश्च जहासोच्चैः पुनः पुनः । सा वक्रचक्षुषालोक्य तं जहास स्मरातुरा ॥
छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम् । चारुचम्पकवर्णाभं वर्त्तुलं पीनमुच्छ्रितम् ९७

श्रोणीं सुकठिनां रम्यां रम्भास्तम्भविनिन्दिताम् ।
सकटाक्षं स्मेरमुखं कपोलं पुलकाञ्चितम् ॥ ९८ ॥

रहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतसा ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपौ मुखम् ॥ ९९ ॥

तस्य रूपञ्च वेशञ्च दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखस्याच्छादनं भावात् कुर्वन्तीसूक्ष्मवाससा
अतिकामातुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः । पप्रच्छकामिनीं कामी भावं विज्ञातुमुत्सुकः

साहसिक उवाच ।

किं करिष्यति मां सत्यं वद पङ्कजलोचने । कार्य्यान्तरं करिष्यामि सुचिरंस्थातुमक्षमः

कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये ।
विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः ॥ १०३ ॥

शृङ्गारं देहि वागच्छ रतिं कर्त्तुं सुरान्तिके । कःक्षमोवा वशीकर्तुं पुंश्चलींबहुगामिनीम्
दानवस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । आत्मानमधमंमन्या भिद्यमानास्मरास्त्रतः

तिलोत्तमोवाच ।

कथमेवं ब्रूहि त्वं मे कान्त प्राणाधिकः प्रियः ।
कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु कार्य्यं मनीषितम् ॥ १०६ ॥
त्वामेवं विमुखं कृत्वा यामि चन्द्रान्तिकं यदि ।
तवाभिशापात्तत्रैव सद्यो विघ्नो भविष्यति ॥ १०७ ॥

विहारं कुरु भद्रं ते करिष्यति हरिः स्वयम् । पदे पदे शुभं तस्य यः स्त्रीमानञ्च रक्षति
अवमन्य स्त्रियं मूढो यो याति पुरुषाधमः । पदे पदे तदशुभं करोति पार्वती सती ॥
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्भावं बुबुधे सुधीः
भावं विहाय भावज्ञः कामशास्त्रविशारदः । करे धृत्वा समाश्लिष्य चुचुम्बमुखपङ्कजम्
जगाम च तया सार्द्धं गन्धमादनगह्वरम् । ददर्श तत्र गत्वा च स्थानं जन्तुविवर्जितम् ॥
संस्थाप्य रत्नदीपांश्च धूपञ्च सुमनोहरम् । शय्यां रतिकरीं कृत्वा सुष्वाप च तया सह
नानाप्रकारशृङ्गारञ्चकार काममोहितः । तिलोत्तमा तं बुबुधे सुरादपि विचक्षणम् ॥
विपरीतरतौ तुष्टा बभूव रसिकेश्वरी । दिवानिशं न बुबुधे नवसङ्गममूर्च्छिता ॥११५॥
तिलोत्तमा कामभावाद्‌ बलिपुत्रमुवाच ह । कृत्वा वक्षसि प्राणेशं स्तनयोरन्तरे मुदा

तिलोत्तमोवाच ।

कदा द्रक्ष्याम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम् । एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः ॥
अयि किं रूपमाश्चर्य्यं गुणो वा तव दानव । ध्रुवंश्शृङ्गारनिपुणस्त्वत्परो नास्तिकश्चन
मां विस्मरसि कालेन पुरुषः षट्पदो यथा ।
स्त्रीणां सत्पुरुषाश्लेष आजीवं मनसि स्थितः ॥ ११६ ॥
सत्सङ्गमः शुभदिने पुण्यात् पुण्यवतां भवेत् । सद्विच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते
पीयूषभोजनात्स्वर्गवासादपिचदुर्लभः । सत्सङ्गमः सुखमयोऽप्यसत्सङ्गो विषाधिकः
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु । त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह
इत्येवमुक्त्वा कुलटा कृत्वा वक्षसि सादरम् । पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुखेन च
कुलटालिङ्गनालापात् सोऽतिकामी बभूव ह ।
यथा दीप्तः कृष्णवर्त्मा वर्धते हविषाधिकम् ॥ १२४ ॥
पुनश्चकार शृङ्गारमसुरोऽष्टविधं मुने । चुम्बनञ्च नवविधं यथास्थाने यथोचितम् ॥
नखदन्तकरैः क्रीड़ां चकार विविधां पुनः । किङ्किणीनां कङ्कणानां बभूव शब्द उल्वणः
मुनेर्दुर्वाससस्तेन ध्यानभङ्गो बभूव ह । अदृष्टस्य तयोस्तत्र वल्मीकाच्छादितस्य च ॥
योगासनं कुर्वतश्च गन्धमादनगह्वरे । ध्यायतश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनौ ।
कामात्मनोर्न हि ज्ञानं कामेन हतचेतसोः ॥ १२६ ॥
सहसा चेतनां प्राप्य प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ददर्श पुरतस्तौ तु मुनिरुन्मील्य लोचने ॥
दिवानिशं न जानन्तौ संयुक्तौ काममोहितौ ॥ १३० ॥
दृष्ट्वा चुकोप तेजस्वी रुद्रांशो भगवान् विभुः । उवाचतौ विहारान्ते रक्तपङ्कजलोचनः
ध्यानप्राप्तपदाम्भोजविच्छेदोद्विग्नमानसः ॥ १३१ ॥

दुर्वासा उवाच ।

उत्तिष्ठ गर्दभाकार निर्लज्ज पुरुषाधम । भक्तप्रधानस्य बलेः पुत्रः पशुसमप्रभः ॥१३२॥
देवो वा मानवो वापि दैत्यगन्धर्वराक्षसाः ।

लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजातौ च पशून् विना ॥ १३३ ॥
ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः। तस्मात्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं व्रजाधुना ॥
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीनाच पुंश्चली। एतादृशीस्पृहा दैत्ये व्रज योनिञ्च दानवीम्
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तस्थौ तत्ररुषा ज्वलन्। तौच तुष्टुवतुर्भीतावुत्थाय व्रीड़ितौ मुनिम्

साहसिक उवाच।

त्वंब्रह्मात्वञ्च विष्णुश्चत्वञ्चसाक्षान्महेश्वरः। हुताशनस्त्वंसूर्य्यश्चसृष्टिस्थित्यन्तकारकः
क्षमापराधं भगवन् कृपां कुरु कृपानिधे। मूढ़ापराधं सततं यः क्षमेत् स सदीश्वरः ॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रो रुरोदोच्चैः पुरो मुनेः। कृत्वा तृणानि दशने पपात चरणाम्बुजे ॥

तिलोत्तमोवाच।

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपांकुरु। विधिसृष्टौच सर्वेषां मूढ़ा स्त्रीजातिरेवच
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामातुरा परा।
लज्जाभीतिचेतनाश्च न सन्ति कामुके विभो ॥ १४१ ॥
इत्युक्त्वा रोदनं कृत्वा जगाम शरणं मुने। विना विपत्तौ केषाञ्चिज्ज्ञानं भवति भूतले
तयोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं बभूव करुणा मुनेः। उवाच ताभ्यामभयं दत्त्वा मुनिवरो मुने ॥

दुर्वासा उवाच।

अतिशापः प्रसादो वा भवेद्दैवेन दानव। सत्कीर्त्तिरपकीर्त्तिर्वा प्राक्तनप्रभवा ध्रुवम् ॥
विष्णुभक्तबलेः पुत्रः सद्वंशप्रभवो जनः।
जनकाद्विष्णुभक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम् ॥ १४५ ॥
जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिप्रतिनिश्चितम्। यथाश्रीकृष्णपादाङ्कः कालीयवंशमस्तके
संप्राप्य गार्दभीं योनिं वत्स निर्वाणतांव्रज। पूर्वकृष्णार्चनफलंन हि लुप्तंसतां चिरात्
वृन्दारण्यं तालवनं व्रज शीघ्रं व्रजान्तिकम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चक्रान्मुक्तिं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥ १४८ ॥
तिलोत्तमे भारते त्वं बाणपुत्री भविष्यसि। श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूताभविष्यसि
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम महामुने। तौ जग्मतुर्यथास्थानं प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥

इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः । तिलोत्तमा बाणपुत्री ह्युषानिरुद्धकामिनी ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तिलोत्तमाबलि-
पुत्रयोर्ब्रह्मशापप्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः ।

श्रीनारायण उवाच ।

निगूढं श्रृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने । अहोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः॥१॥
दृष्ट्वातयोश्च श्रृङ्गारंमुनिः कामीवभूवह । जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाद्दोषः सांसर्गिकोभवेत्
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा । तपस्तप्त्वा तत्र दध्यौ कामिनीं मदनातुरः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति मुनीश्वरः । प्रार्थयन्त्या पतिं सन्तमौर्वश्च सुतया सह ॥
ऊरूद्भवो ब्रह्मणश्च पुराकल्पे तपस्यतः । ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र और्वस्तेन इति स्मृतः ॥

तस्य जानूद्भवा कन्या कन्दली नाम विश्रुता ।
दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते ॥ ६ ॥

ससुतो हि मुनिश्रेष्ठो मुनेर्दुर्वाससः पुरः । तस्थौ महाप्रसन्नश्च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससम्भ्रमः । प्रजवेन समुत्तस्थौ ननाम च मुदान्वितः
और्वो दुर्वाससं तत्र समाश्लिष्य मुदान्वितः । उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम्

औौर्व उवाच ।

विख्याताकन्दलीनाम मम कन्यामनोहरा । प्रौढ़ात्वामेवध्यायन्तीश्रुत्वावाचिकवक्त्रतः
अयोनिसम्भवा कन्या त्रैलोक्यं मोहितुं क्षमा । सर्वरूपगुणाधारा दोषेणैकेन संयुता
अतीवकलहाविष्टा कोपेन कटुभाषिणी । नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः ॥१२॥
और्वस्य वचनं श्रुत्वा हर्षशोकान्वितो मुनिः । ददर्श कन्यां पुरतो गुणरूपसमन्विताम्

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां पीनश्रोणिपयोधराम्
नवयौवनसंयुक्तां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । रत्नालङ्कारशोभाढ्यां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥
मुनिर्मुमोह तां दृष्ट्वा कामवाणप्रपीडितः । उवाच तं मुनिश्रेष्ठं हृदयेन विदूयता ॥ १६ ॥

दुर्वासा उवाच ।

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधनम् । व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम् ॥
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगड़ं परम् । अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शङ्करादिभिः ॥
सङ्गिच्छायातिरिक्तश्च कर्मभोगात् परात्परम् ।
इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मतेरपि ॥ १६ ॥
आदेहंसङ्गिनी छाया भोगान्तंभोग एवच । देहेन्द्रियाणि जीवान्तं विद्याचैवायशीलनम्
मतिश्चैवावशीलान्तासुस्त्रीजन्मनिजन्मनि । यावज्जीवीचसुस्त्रीकोन तावज्जन्मखण्डनम्
यावच्च जीविनो जन्म तावद्भोगः सुखावहः । परं मुनीन्द्र सर्वस्माद्धरिपादाब्जसेवनम्
ध्यायतः कृष्णपादाब्जं मम विघ्नो वभूव ह । न जाने कर्मदोषेण केन वा पूर्वजन्मनः ॥
पुंश्चल्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा दैत्यस्य मन्मनः । वभूव कामसंयुक्तंदत्तं धात्रा च तत्फलम्
किन्त्वहं तव कन्यायाः कटूक्तिशतकं मुने ।
ध्रुवं क्षमां करिष्यामि दास्यामि च ततः फलम् ॥ २५ ॥
सर्वतोऽपिपरा निन्दा स्त्रीकटूक्तिसहिष्णुता । अतीवनिन्दितः सत्सु स्त्रीजितोभुवनत्रये
तवाज्ञां मस्तके कृत्वा ग्रहीष्यामि सुतांतव । उपेतां कामिनीं त्यक्त्वा कालसूत्रंव्रजेन्नरः
रहस्युपस्थितां कामात् पुंश्चलीं चेज्जितेन्द्रियः ।
परित्यजेद्धर्मभयादधर्मान्नरकं व्रजेत् ॥ २८ ॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा विरराम हरेः पुरः । मुनिर्वेदोक्तविधिना ददौ तस्मै सुतां मुने ॥
स्वस्तीत्युवाच दुर्वासा मुनिश्च कौतुकं ददौ । कन्यासमर्पणं कृत्वा मोहाच्चैव रुरोद ह
मूर्च्छामवाप स मुनिः स्वकन्याविरहातुरः । अपत्यभेदशोकौघःस्वात्मारामं न मुञ्चति
क्षणेन चेतनां प्राप्य वोधयामास कन्यकाम् ।
मूर्च्छितां तातविच्छेदाद्रुदन्तीं शोकसंयुताम् ॥ ३२ ॥

औौर्व उवाच ।

श्रृणु वत्से प्रवक्ष्यामि नीतिसारं सुदुर्लभम् । हितं सत्यञ्च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्

स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च ।

न हि कान्तात् परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां परो गुरुः ॥ ३४ ॥

देवपूजाव्रतं दानं तपश्चानशनं जपः । स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमखेषु च ॥ ३५ ॥

प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम् ।

सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ३६ ॥

किमेतैः पतिभक्ताया अभक्तायाश्चभारते । यदादुःखी सुखारम्भे साकाङ्क्षःप्रथमोभवेत्

पतिसेवा परो धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते । स्वप्रज्ञानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम् ।

दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजं सेवां नित्यं करिष्यति ॥ ३८ ॥

परिहासेन कोपेन भ्रमेणावज्ञयामुने । कटूक्तिं स्वामिनः साक्षात् परोक्षान्न करिष्यसि

स्त्रियो वाग्योनिदुष्टायाःकामतोभारतेभुवि । प्रायश्चित्तंश्रुतौनास्तिनरकं ब्रह्मणः शतम्

सर्वधर्मपरीता या कटूक्तिं कुरुते पतिम् । शतजन्मकृतं पुण्यं तस्या नश्यति निश्चितम्

दत्त्वाकन्यांबोधयित्वाजगाममुनिपुङ्गवः । स्वात्मारामंस्वाश्रमेच तस्थौस्त्रीसहितोमुदा

सम्भोगेच्छावृते चित्ते कामी संप्राप कामिनीम् ।

अहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति ॥ ४३ ॥

शय्यां रतिकरीं कृत्वा मुनिश्रेष्ठोमहामुने । शुभे क्षणेतां गृहीत्वा सुष्वाप निर्जनेप्रियाम्

नारीरसानभिज्ञः स्यादाजन्म मुनिपुङ्गवः । तथापि सुरतो विज्ञः कामशास्त्रविशारदः

नानाप्रकारश्रृङ्गारञ्चकार विधिपूर्वकम् । नवसङ्गममात्रेण मूर्च्छां संप्राप कन्दली ॥४६॥

मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम् । एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरतिं मुने ॥

विदग्धाया विदग्धेन बभूव सङ्गमः समः । संबभूव गृहासक्तस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः ॥

करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ।

मुनीन्द्रो बोधयामास नीतिवाक्येन कामिनीम् ॥ ४९

सा तन्न बुबुधे किञ्चित् करोति कलहे स्पृहाम् ।

तातप्रदत्तज्ञानेन सा न शान्ता बभूव ह ॥ ५० ॥
न जहाति प्रबोधेन स्वभावो दुरतिक्रमः । नित्यं कटूक्तिं कान्तंसा करोति हेतुनाविना
जगत् प्रकम्पितं येनतया कोपात् स कम्पितः । तयाकृतां कटूक्तिञ्च क्षमसंस्थाचकारह
बोधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्दयानिधिः । कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन बभूव ह
क्षमां चकार कृपया कटूक्तिञ्च शताधिकाम् । पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुनेः
तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं बभूव ह ।
स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न सक्षमः ॥ ५५ ॥
शशाप कामिनीं मोहाद्भस्मराशिर्भवेति च । मुनेरिङ्गितमात्रेण भस्मसात् सा बभूव ह
एवमत्युच्छ्रितानाञ्च न कल्याणं जगत्त्रये । शरीरेभस्मसाद्भूते प्रतिविम्बः स चात्मनः
जीवस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्युवाच विनयात् प्रभुम् ॥ ५८ ॥

जीव उवाच ।

हे नाथ सर्वदर्शी त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा । सर्वं जानासि सर्वज्ञ किमहं बोधयामि ते ॥
सदुक्तिर्वा कटूक्तिर्वा कोपः सन्ताप एव च ।
लोभो मोहश्च कामश्च क्षुत्पिपासादिकञ्च यत् ॥ ६० ॥
स्थौल्यंकार्श्यञ्च नाशश्च दृश्यादृश्यं समुद्भवम् । सर्वंशरीरधर्मञ्च न जीवस्य न चात्मनः
सत्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम् । तच्च नानाप्रकारञ्च निबोध कथयामि ते
किञ्चित्सत्वातिरिक्तञ्चकिञ्चिद्देवरजोधिकम् । तमोऽतिरिक्तंकिञ्चिच्चनसमंकुत्रचिन्मुने
सत्वोदयाच्च मुक्तीच्छाकर्मेच्छाचरजोगुणात् । तमोगुणाज्जीवहिंसाकोपोऽहङ्कारएवच
कोपात्कटूक्तिर्नियतं कटूक्त्यां शत्रुताभवेत् । तयाचाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्यभूतले
को वा प्रियोऽप्रियः कः किं मित्रं को रिपुर्भवेत् ।
इन्द्रियाणि च बीजानि सर्वत्र शत्रु मित्रयोः ॥ ६६ ॥
प्राणाधिकः प्रियः स्त्रीणां भर्त्तुः प्राणाधिका प्रिया ।
बभूव शत्रुता सद्यो दुरुक्त्या च क्षणाद्द्वयोः ॥ ६७ ॥
यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो । क्षमापराधं निखिलं किं कर्तव्यं वदाधुना॥६८॥

किं करोमि क्व यामीतिभविता कुत्र जन्म मे। तवनान्यस्य जायाहंभविष्यामि जगत्त्रये
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च मौनीभूतो बभूव ह। मूर्च्छामवाप स मुनिः शोकेन हतचेतनः ॥
स्वात्मारामो महाज्ञानीजहारचेतनामहो। स्त्रीविच्छेदो विदग्धानांसर्वशोकात्परात्परः
क्षणेन चेतनां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। तत्र योगासनं कृत्वा चकार वायुधारणम्

एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम ब्राह्मणोऽर्भकः।
दण्डी चक्री रक्तवासा विभ्रत्तिलकमुत्तमम् ॥७३ ॥

सस्मितः श्यामवर्णश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा। वयसातिशिशुः शान्तोज्ञानी वेदविदांवरः
दृष्ट्वा तं सम्भ्रमेणैव दुर्वासाः प्रणनाम ह। वासयामास तत्रैव पूजयामास भक्तितः ॥
उवाच ब्राह्मणवटुर्दत्त्वा तस्मै सदाशिषम्। तद्दर्शनादाशिषा च सर्वं दुःखं गतं मुने ॥
शिशुरूपं क्षणं स्थित्वा तमुवाचविचक्षणः। पीयूषतुल्यं नित्योऽयं नीतिशास्त्रविशारदः

शिशुरुवाच ।

सर्वं जानासिसर्वज्ञ गुरोर्मन्त्रप्रसादतः। किं तत्त्वं त्वामहं विप्र पृच्छामिशोककातरम्

ब्राह्मणानां तपो धर्मस्तपः साध्यं जगत्त्रयम्।
स्वधर्मं वै परित्यज्य किमिदानीं करोषि भो ॥ ७९ ॥
का कस्य पत्नी कः कान्तः कस्या वा भुवनत्रये।
मूर्खाणां वञ्चनां कर्त्तुं करोति मायया हरिः ॥ ८० ॥

मिथ्यापत्नी तवेयञ्च क्षणात्तेनगताधुना। न हि सत्यमदृश्यञ्च मिथ्या यत्राचिरस्थितिः
एकानंशा च भगिनी वसुदेवसुता हरेः। पार्वत्यंशसमुद्भूता सुशीला चिरजीविनी ॥
कल्पे कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति। मनोदेहि तपस्यायां मुदा कतिपयंदिनम्
कन्दली कन्दलीजातिर्भविष्यति महीतले। शुभदा फलदा कान्ता सकृत्सूता सुदुर्लभा

कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति।
अत्युक्तिस्तस्य दमनमुचितञ्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ८५ ॥

इत्येवमुक्त्वा शीघ्रञ्च विप्ररूपी जनार्दनः। दत्त्वा ज्ञानञ्च विप्राय सोऽन्तर्धानञ्चकार ह
मुनिः सर्वं भ्रमं त्यक्त्वा तपस्यायां मनो दधे। कन्दली कन्दलीजातिर्बभूव धरणीतले

दैत्यस्तालवनं गत्वा बभूव गर्दभाकृतिः । तिलोत्तमा वाणपुत्री बभूव समये मुने ॥८८॥
दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम् ।
संप्राप चरणाम्भोजं मुनेरपि सुदुर्लभम् ॥ ८९ ॥
काले तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्वालयं पुनः । कृष्णपौत्रालिङ्गनेन परिपूर्णमनोरथा ॥
इत्येवं कथितं श्रुत्वा श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम् ।
पदे पदे सुन्दरञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तालभक्षणप्रसङ्गे वलिपुत्र-मोक्षणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

दुर्वाससं प्रति औौर्वशापः ।

नारद उवाच ।

श्रुतं किमद्भुतं ब्रह्मन् हरेश्चरितमङ्गलम् । विशेषतस्तव मुखे ह्यतीव सुमनोहरम् ॥ १
मृतायां मुनिकन्यायां शापाद् दुर्वाससो मुने ।
समागत्य किं चकार तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः । पपात धौतमूर्ध्वाच्च धार्यमाणञ्च वायुना ॥३॥
पृथिव्यां पतितंवस्त्रे तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः । ध्यानेन बुबुधे सर्वं कन्यासम्बन्धिसङ्कटम्
जगाम शोकाविष्टोऽपि तूर्णं जामातुराश्रमम् । सिषेचपृथिवीरेणून् शश्वन्नयनबिन्दुना
गत्वालयसमीपञ्च विप्रः कातरमानसः । हे वत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः ॥
श्वशुरस्य स्वरं ज्ञात्वा दुर्वासा भयविह्वलः । वहिर्बभूव शीघ्रञ्च पपात चरणाम्बुजे ॥७॥
प्रणम्य श्वशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः । संप्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरस्थितम् ॥

जामातरं शोकयुक्तं भीतं प्रणतकन्धरम् । महाशोकादश्रुपूर्णरक्तपङ्कजलोचनः ।
कोपात् कम्पितवान् शश्वत् संत्रस्तः स्फुरिताधरः ॥ ६ ॥

और्व उवाच ।

अत्र ब्रह्मन्नत्रिवंश्य पौत्रस्त्वं जगतीपतेः । स्वल्पदोषे बहुतरः कृतो दण्डस्त्वया कथम्
त्वज्जन्म शङ्करांशेन शिष्यस्तस्य जगद्गुरोः ।
वेदवेदाङ्गविज्ञश्च सर्वज्ञो गुणवान् स्वयम् ॥ ११ ॥
अनुसूया महासाध्वी कमलांशा तव प्रसूः । न जाने केन दोषेण तव चैतादृशी मतिः ॥
गुणवान् जनको यस्य माता गुणवती सती।
तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेरहो ॥ १३ ॥
मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता ।
महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता ॥ १४ ॥
वाग्दुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः ।
त्वया यदि परित्यक्ता पित्रा यत्नेन पालिता ॥ १५ ॥
मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया । पराभवस्तव महान् भविष्यति न संशयः
महतां क्षुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा ।
स्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान् करुणानिधिः ॥ १७ ॥
इत्युक्त्वाच मुनिश्रेष्ठो विलप्यच पुनःपुनः । हेवत्से वत्स इत्युक्त्वा जगामस्वालयंरुषा
गते मुनीन्द्रे दुर्वासा विललाप भृशं पुनः । ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुणःपुनः॥
शोकानलो हि कालेन संच्छन्नो ज्ञानभस्मना । बन्धुदर्शनशुष्केन्धदानेन वर्द्धतां पुनः ॥
स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः ।
बोधयित्वा भ्रमं सर्वं तपस्यायां मनो ददौ ॥ २१ ॥
इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम् । बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च पराभवः ॥

नारद उवाच ।

दुर्वासाः शङ्करस्यांशः शिवतुल्यश्च तेजसा । तेजस्वी को महानेव चकार तत्पराभवम्

नारायण उवाच ।

अम्बरीषो हि राजेन्द्रः सूर्य्यवंशसमुद्भवः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तन्मनः सन्ततं मुने ॥
न राज्येषु न भार्य्यासु न पुत्रेषु प्रजासु च । न संसत्सु क्षणं चित्तं पूर्वकर्मार्जितासु च
ध्यायतेऽहर्निशं धर्मी स्वप्नेज्ञाने हरिंमुदा । महान् जितेन्द्रियःशान्तो विष्णुव्रतपरायणः
एकादशीव्रतरतः कृष्णपूजासु तत्परः । सर्वकर्मसु लिप्तश्च कर्त्ता कृष्णार्पितेषु च ॥
सुतीक्ष्णं षोड़शारं तच्चक्रं नाम सुदर्शनम् । तेजसा हरितुल्यञ्च सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितञ्च सुरासुरैः । प्रभुणा रचितं शश्वद्रक्षायै नृपसन्निधौ ॥
एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति । स्नात्वा विधायपूजाञ्च कालेन विधिपूर्वकम्

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु भोजनार्थमुवास ह ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने । दण्डीछत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्
जटिलोऽतिकृशस्त्रस्तः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । तत्राजगामभगवान् दुर्वासा नृपतेःपुरः
स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च तमुत्थाय प्रणम्य च । दत्त्वापाद्यञ्च संप्रीत्या स्वर्णसिंहासनं ददौ

तस्मै दत्त्वाशिषं विप्रः समुवास सुखासने ।

पप्रच्छ राजा तं भीतः काज्ञा ते वद मामिति ॥ ३४ ॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । मां भोजय नृपश्रेष्ठ क्षुधार्त्तोऽहमुपागतः ॥

किन्त्वघमर्षणमन्त्रन्तु जप्त्वा याम्यचिरेण हि ।

क्षणं प्रतीक्ष्यतां राजन्नित्युवाच गतो मुनिः ॥ ३६ ॥

गते विप्रे तु राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् । विलोक्य विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुरुं मुदा । नत्वा निवेद्य सर्वन्तु नृपतिः समुवाच ह ॥
नायातिमुनिशार्दूलःप्रयातिद्वादशीतिथिः । सङ्कटेऽस्मिन्विधेयञ्चविविच्यविधिपूर्वकम्

शीघ्रं वद मुनिश्रेष्ठ भद्राभद्रञ्च मामिति ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा नृपोक्तिं त्वरितमुवाच मुनिपुङ्गवः । हितं तथ्यञ्च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥

वशिष्ठ उवाच ।

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।

उपवासफलं हत्वा व्रतिनं हन्ति निश्चितम् ॥ ४१ ॥
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतौ श्रुतम् । भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः ॥
न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम् ।
स त्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरश्चाण्डालतां व्रजेत् । व्याधियुक्तो दरिद्रश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
अतोऽतिसूक्ष्मं किं ब्रूमोऽधुना परमसंकटे । रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोच्य वदामि ते ॥
उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम् । भुक्त्वा शीघ्रमपो राजन्तद्रक्षणमभक्षणम् ॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने ।
बुभुजे तज्जलं किञ्चित् कृष्णपादाम्बुजं स्मरन् ॥ ४७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नाजगाम मुनीश्वरः । चिच्छेद कोपात्सर्वज्ञः स्वजटां नृपतेः पुरः ॥
ततः समुत्थितः शीघ्रं पुरुषोऽग्निशिखोपमः । खड्गहस्तो महाभीमोराजेन्द्रं हन्तुमुद्यतः
हरेश्चक्रञ्च तं दृष्ट्वा सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । चिच्छेद कृत्यापुरुषं ब्राह्मणं छेत्तुमुद्यतम् ॥५०
दृष्ट्वा सुदर्शनं विप्रो दुद्राव भयविह्वलः । द्विजः पश्चात्तं ददर्श ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
ब्रह्माण्डक्रमणं कृत्वा निर्विण्णोऽतिभयाकुलः । तञ्च मत्वा जगन्नाथंब्रह्माणंशरणं ययौ
त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा विवेश ब्रह्मणः सभाम् । उत्थाय ब्रह्मा विप्रेन्द्रं पप्रच्छकुशलंमुने
सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतोऽधिकम् ।
श्रुत्वा ब्रह्मा निशश्वास तमुवाच भयाकुलः ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

हरिदासं वत्स शप्तुं गतोऽसि कस्य तेजसा । रक्षिता यस्य भगवान्तत्कोहन्ताजगत्त्रये
क्षुद्राणां महताञ्चैव भक्तानां रक्षणाय च । ररक्ष सन्ततञ्चक्रं श्रीहरिर्भक्तवत्सलः ॥५६
यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुप्राणसमं द्विज । तस्य संहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो हरिः ॥
शीघ्रं स्थानान्तरं गच्छ वत्स-त्राणं न वाधुना ।
अन्यथा त्वां मया सार्धं हनिष्यति सुदर्शनम् ॥ ५८ ॥
किं ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दग्धुं शक्तं क्षणेन यत् ।

तेजसा विष्णुतुल्यं यत् केनान्येन निवार्यते ॥ ५९ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः । त्रस्तो जगाम कैलासं शङ्करं शरणं भिया
कृपानिधान मां रक्षेत्युवाच शङ्करं भिया । न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वज्ञो ब्राह्मणं शिवः
उवाच दीनदीनेशः संहर्ता जगतां क्षणात् । स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ मदीयं वचनं शृणु ॥

शङ्कर उवाच ।

पौत्रस्त्वं जगतां धातुरत्रेश्च तनयो मुने । वेदज्ञातासि सर्वज्ञ मूर्खतुल्यन्तु कर्म ते ॥
वेदेषु च पुराणेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितो यः सर्वेशस्तं न जानासि मूढवत् ॥

अहं ब्रह्मा च रुद्रश्च आदित्या वसवस्तथा ।
धर्मेन्द्रौ च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनवस्तथा ॥ ६५ ॥
आविर्भूतास्तिरोभूता यस्य भ्रूभङ्गलीलया ।
तस्य प्राणाधिकं भक्तं हंसि त्वं कस्य तेजसा ॥ ६६ ॥
अहं ब्रह्मा च कमला दुर्गा वाणी च राधिका ।
न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः ॥ ६७ ॥

क्षुद्रांश्च महतो भक्तान् शश्वद्रक्षति यत्नतः । सर्वान्तरात्मा भगवान् चक्रेण दुःसहेन च
नियुज्य चक्रंदुर्वार्य्यं स्वात्मतुल्यञ्चतेजसा । तथापि न प्रतीतिश्चस्वयंगच्छतिरक्षितुम्
स्वकीयगुणनाम्नाञ्च श्रवणादतिसंभ्रमः । भक्तसङ्गे भ्रमत्येव छायेव सन्ततं हरिः ॥

कान्ता प्राणाधिका शश्वन्नहि कोऽपि ततोधिकः ।
भक्तान् द्वेष्टि स्वयं सा चेत्तूर्णं त्यज्यति तां प्रभुः ॥ ७१ ॥

सर्वेषाञ्च प्रिया विप्राः स्वशरीरादपि द्विज । ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ताःप्राणेभ्यश्चहरेरपि॥

ईश्वरस्य प्रियः को वाप्रियः को वा जगत्त्रये ।
यः शिष्टस्तं भजेच्छश्वद् ध्यायते सततं सदा ॥ ७३ ॥

महति प्रलये ब्रह्मन् ब्रह्माण्डौघे जलप्लुते । न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषाञ्च भविष्यति
भज ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पदाम्बुजम् । सर्वापदोविनश्यन्ति श्रीहरेः स्मरणादपि
व्रज शीघ्रञ्च वैकुण्ठं वैकुण्ठः शरणं तव । दास्यत्येवाभयं तुभ्यं करुणासागरो विभुः ॥

एतस्मिन्नन्तरे व्याप्तं कैलासं चक्रतेजसा । यथा च सूर्य्यकिरणैः सुप्रदीप्तं महीतलम् ॥
दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे कैलासवासिनः । त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शङ्करं शरणंययुः
दृष्ट्वा चक्रं दुर्विषहं शङ्करः करुणानिधिः । पार्वत्या सह संप्रीत्या ब्राह्मणायाशिषं ददौ

तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेच्चिरसञ्चितम् ।
कृतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ८० ॥

पार्वत्युवाच ।

यत् प्रभोर्मम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणागतः ।
ममाशिषा महाभीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः ॥ ८१ ॥

इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिवः । मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥
गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः । दृष्ट्वा सुदर्शनं पश्चाद्विवेशान्तःपुरं हरेः ॥
ददर्श श्रीहरिं विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥ ८४॥

श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ।
रत्नालङ्कारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ॥ ८५ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । सद्रत्नसाररचितं किरीटोज्ज्वलशेखरम् ॥८६
पार्षदप्रवरेन्द्रैश्च सेवितं श्वेतचामरैः । पद्मासेवितपादाब्जं सरस्वत्या स्तुतं पुरः ॥
सुनन्दनन्दकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम् । गुणानुवादं गायन्तं तन्त्रैः पश्यन्तमीप्सितम् ॥
एवम्भूतं प्रभुं दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणनाम च । तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥८९॥

दुर्वासा उवाच ।

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे ।
दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥ ९० ॥

वेदवेदाङ्गसंस्रष्टुर्विधातुश्च स्वयं विधे । मृत्योर्मृत्युः कालकाल त्राहिमां सङ्कटार्णवे
संहारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारण । महाविष्णुतरोर्बीज रक्ष मां भवसागरे ॥ ९२॥
शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण । भगवन्नव मां भीतं नारायण नमोस्तु ते ॥ ९३॥

वेदेष्वाद्यश्च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः ।

सरस्वती जड़ीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥ ६४ ॥

शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जड़तां व्रजेत्। पञ्चवक्त्रो जड़ीभूतो जडीभूतश्चतुर्मुखः

श्रुतयः स्मृतिकर्तारो वाणी चेत् स्तोतुमक्षमा।

कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद ॥ ६६ ॥

मनूनाञ्च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते। दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥ ६७॥

तस्यपातो भवेद्यस्य चक्षुरुन्मीलनेन च। तमनिर्वचनीयञ्च किं स्तौमि पाहिमांप्रभो ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे। नयनाम्बुजनीरेण सिषेच भयविह्वलः ॥ ६६॥

दुर्वाससा कृतंस्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः। पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलननामकम् ॥

यः पठेत्संकटग्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयुतः। नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥

राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले। शत्रुग्रस्ते दस्युभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ॥

वेष्टितेराजसैन्येन मग्नपोते महार्णवे। स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे दुर्वाससाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम्

नारायण उवाच।

मुनेश्च स्तवनं श्रुत्वा भगवान् भक्तवत्सलः। प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिवन्मुदा ॥

श्रीभगवानुवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते भविष्यति वरेण मे। किन्तु मे वचनं नित्यं श्रृणुसत्यंसुखावहम्

अन्येषाञ्च भवेज्ज्ञानं श्रुत्वा शास्त्रं सतां मुखात्।

स्वमूर्त्तिमन्ति शास्त्राणि भवेत् सन्तश्चरन्ति हि ॥ १०६ ॥

कर्मवेदविरुद्धञ्च सर्वेषामतिगर्हितम्। करोति विद्वांश्चेत् ज्ञात्वा सच जीवन्मृताधिकः

पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण। वैष्णवानाञ्च महिमा श्रुतः सर्वैश्च सर्वतः ॥

अहं प्राणा वैष्णवानां ममप्राणाश्च वैष्णवाः। तानेव द्वेष्टियो मूढो ममासूनाञ्च हिंसकः

पुत्रान् पौत्रान् कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च।

ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः ॥११०॥

परा भक्ता न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शङ्करः। न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः

न ब्राह्मणो न वेदाश्च न वेदजननी परा । न गोपी नच गोपाला न राधा प्राणतः प्रिया
इत्येवं कथितं सर्वंसत्यं सारञ्च वास्तवम् । न प्रशंसापरं तेषां तेच प्राणाधिकाःप्रियाः
मांद्विषन्तिच ये मूढाज्ञानहीनाश्च वञ्चिताः । आत्मानंयेन जानन्ति तेयान्तिनिरयञ्चिरम्
ये द्विषन्तिच मद्भक्तान् प्राणानामधिकंप्रियान् । तेषां शास्तात्वहं तूर्णंपरत्र निरयञ्चिरम्
प्रभावोऽहञ्च सर्वेषामीश्वरःपरिपालकः । नचव्यापीस्वतन्त्रोऽहं भक्ताधीनोदिवानिशम्
गोलोके वाथ वैकुण्ठे द्विभुजञ्च चतुर्भुजम् । रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसन्निधौ
यदुक्तं भक्तदत्तञ्च भक्षणीयञ्च तन्मम । अभक्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तञ्चेदमृतोपमम् ॥११८॥
अम्बरीषं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमहिंसकम् । कथं हंसि दयाशीलं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥
दयां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु । तान् द्विषन्तिच ये मूढास्तेषां हन्ताहमेवच ।
भक्तानां हिंसकं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः । अम्बरीषालयं गच्छ स त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥

नारायण उवाच ।

इदं वाक्यञ्च तच्छ्रुत्वाब्राह्मणोभयविह्वलः । विषण्णमानसस्तस्थौस्मरन्कृष्णपदाम्बुजम्
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या सह शङ्करः । धर्मश्चेन्द्रादयो देवा आजग्मुर्मुनिपुङ्गवाः ॥
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्वात्मस्वरूप निर्लिप्त भक्तानुग्रहकातर । भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥१२५॥

महादेव उवाच ।

दीनबन्धो जगन्नाथ नायंविप्रो जगद्बहिः । कृतापराधं दीनञ्च पाहीमंशरणागतम् ॥१२६

पार्वत्युवाच ।

भक्त एवाम्बरीषस्ते न द्विजा न सुरा वयम् । सर्वेषामीश्वरस्त्वञ्च रक्ष विप्रं कृतागसम्

धर्म उवाच ।

सर्वेषां जनकस्त्वञ्च पाता दण्डकृदीश्वरः । शिशुहेतोः शिशुं हन्ति पितेत्येवं कुतःप्रभो

इन्द्र उवाच ।

कृपया समता शश्वत्सर्वेषु जीविषु प्रभो । अपराधफलं भूतमधुना पातुमर्हसि ॥१२६॥

रुद्र उवाच ।

शान्तिं कर्तुं समुचितमुचितं साम्प्रतं कुरु । कृतकुण्ठस्य मूलस्य पालनं कर्तुमर्हसि ॥

दिक्पाल उवाच

कृतापराधं विप्रञ्च छेत्तुमर्हसि न श्रुतौ । अपराधशमं कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः ॥

ग्रहा ऊचुः ।

यो द्वेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः । पीडां कुर्मो वयं शश्वत्पश्चात्त्वं पातुमर्हसि

मुनय ऊचुः ।

नाथ विप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता वयम् । दण्डं विधातुमेकस्य भवेल्लज्जा स्वजातिषु॥

अत्रिरुवाच ।

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा ।
न कं बिभेति त्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव ॥ १३४ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

क्षमापराधं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम् । स्तुवन्ति देवा विप्राश्च न विप्रं हन्तुमर्हसि ॥

सरस्वत्युवाच ।

बोधयिष्यामि देवानां जनकं कामहंश्रुतिम् । भगवान्स्वामी सर्वेषां सर्वांश्चपातुमर्हसि

पार्षदा ऊचुः ।

भवतः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम् । भवेत्सर्वापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम्॥

नर्त्तका ऊचुः ।

दारिद्र्यभञ्जन वयं भिक्षुकास्तव सन्ततम् । भिक्षां नो साम्प्रतं देहिपरित्राणं द्विजस्यच
एतेषां स्तवनं श्रुत्वा प्रभुः शरणवत्सलः । प्रहस्योवाच वचनं सर्वसन्तोषकारणम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम् । विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाज्ञयाध्रुवम्
किं त्वयं यातु वैकुण्ठादम्बरीषालयं पुनः । करोतु पारणं तत्र राज्ञः सुप्रीतये मुनिः ॥
विप्रस्तस्यातिथिर्भूत्वा निर्दोषं शप्तुमुद्यतः । सुदर्शनन्तु तं रक्ष्यं ब्राह्मणं हन्तुमुद्यतम् ॥

पूर्णं वर्षमयं भीतो भ्रमत्येव भुवं मुदा । उपवासी स राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुचान्वितः॥
ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात् । स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न भुङ्क्ते जननीयथा
ममाशिषा मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विज्वरः । पथि तत्रास्य हिंसाञ्च मच्चक्रं न करिष्यति

अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम् ।
भक्तदत्तञ्च यद्वस्तु प्रीत्या कृत्वा सुधोपमम् ॥ १४६ ॥

लक्ष्मीदत्तञ्च यद्द्रव्यं न चाहं भोक्तुमीश्वरः । विना भक्तप्रदानेन न तृप्तिं दातुमीश्वरः ॥
हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ वत्स नृपालयम् । सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो गृहम्
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णं ययौ स्वान्तःपुरंमुदा । ययुःसर्वे मुदा युक्ताःप्रणम्य जगदीश्वरम्
ब्राह्मणश्च मनोयायी जगाम हरिमन्दिरम् । सुदर्शनञ्च तच्चक्रं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥
उपोष्य वत्सरं राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । सिंहासनस्थो ददर्श पुरतो मुनिपुङ्गवम् ॥

उत्थाय सम्भ्रमात् सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा ।
भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं बुभुजे स्वयम् ॥ १५२ ॥

भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशिषम् । जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुनःपुनः ॥

उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः ॥ १५३ ॥
महात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥ १५४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
मुनिमोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः

एकादशीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

द्वादशीलङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुखतो मुने । पराभवो मुनेश्चैव नृप त्राणं हरेरहो ॥ १ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि सर्वेषामीप्सितञ्च मे । एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वद निश्चितम्

अहो श्रुतौ श्रुतं किञ्चिन्मतभेदान्न निश्चितम् ।

श्रुतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥

नारायण उवाच ।

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि दुर्लभम् । श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपः श्रेष्ठं तपस्विनाम् ॥

देवानाञ्च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा । आश्रमाणां यथा विप्रो वैष्णवानां यथा शिवः

यथा गणेशः पूज्यानां यथा वाणी विपश्चिताम् ।

शास्त्राणाञ्च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥ ६ ॥

तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा ।

धनानाञ्च यथा विद्या सङ्गिनाञ्च यथा प्रिया ॥ ७ ॥

प्रमथानां यथा रुद्रः श्रेयसाञ्च यथा मतिः। आत्मा यथेन्द्रियाणाञ्च चञ्चलानां यथा मनः

गुरुस्त्रीणां यथा माता बन्धूनाञ्च यथा पतिः। बलिष्ठानां यथा दैवं कालः कलयतां यथा

सुशीलश्चैव मित्राणां शत्रूणां रुग्यथा मुने ।

यथा कीर्तिः कीर्तिमतां गृहिणाञ्च यथा गृहम् ॥ १० ॥

यथा खलो हिंसकानां दुष्टानाञ्चैव पुंश्चली । तेजस्विनां ग्रहेशश्च सहिष्णुनां यथा क्षितिः

यथाऽमृतं भक्षणानां दाहकानां यथानलः । यथा श्रीर्धनदातॄणां सतीनाञ्च यथा सती॥

प्रजेशानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा । यथा साम श्रुतीनाञ्च गायत्रीछन्दसां यथा

वृक्षाणाञ्च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा ।

यथा मार्गो हि मासानामृतूनाञ्च यथा मधुः ॥ १४ ॥

आदित्यानां यथा सूर्यो रुद्राणां शङ्करो यथा । यथा भीष्मो वसूनाञ्च वर्षाणां भारतं यथा

देवर्षीणां यथा त्वञ्च ब्रह्मर्षीणां यथा भृगुः । नृपाणाञ्च यथा रामः सिद्धानां कपिलो यथा

यथा सनत्कुमारश्च योगिनां ज्ञानि नां वरः । ऐरावतो गजेन्द्राणां पशूनां शरभो यथा

यथा हिमाद्रिः शैलानां मणीनां कौस्तुभो यथा ।

सरस्वती नदीनाञ्च यथा पुण्यस्वरूपिणी ॥ १८ ॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद। यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षसां यथा
यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा वरा परा। मनूनाञ्च तथा श्रेष्ठः स्वयं स्वायम्भुवोमनुः
सुन्दरीणां यथा रम्भा यथा माया च मायिनाम्।
एकादशीव्रतमिदं व्रतानाञ्च वरं तथा॥ २१॥
कर्त्तव्यञ्च चतुर्णाञ्च वर्णानां नित्यमेव च। यतीनां वैष्णवानाञ्च ब्राह्मणानां विशेषतः
सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। सत्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे॥
भुक्त्वैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः।
इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम्॥ २४॥
एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च।
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत्॥ २५॥
गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु। पश्चान्मुक्तो भवेत्पापादित्याह कमलोद्भवः॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् यो दोषस्तत्र भोजने। द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च श्रुतः पुरा॥
दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते। पुराश्रुतो धर्मवक्त्राद्वेदसारोद्धृतोऽपि च॥२८
दशमीं यः कलामात्रां मूढो ज्ञानेन लङ्घयेत्।
याति श्रीस्तद्गृहात्तूर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम्॥ २६॥
इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्भवेद् ध्रुवम्। अन्ते मन्वन्तरशतमन्धकूपे वसेद् द्विज॥
दशम्येकादशी वापि द्वादशी यत्र वासरे। तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत्॥
द्वादश्याञ्च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्याञ्च पारणम्। द्वादशीलंघने दोषो व्रतिनां तन्न विद्यते
सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते किञ्चिदेव सा। तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि वर्धते
षष्टिदण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथित्रयम्। कुर्वन्तिगृहिणः पूर्वञ्चैव यत्यादयस्तथा
परत्रानशनं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत्। व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाचरेद् बुधः॥३५॥
तत्पूर्वदिवसे नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि। एकादश्यां व्यतीतायां पारणन्तु समाचरेत्
वैष्णवानां यतीनाञ्च विधवानां तथैव च।
सर्वाः समा उपोष्यास्ता भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम्॥ ३७॥

शुक्लामेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः । न कृष्णालङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद ॥

शयनी बोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ ३६ ॥

इत्येवं कथितो ब्रह्मन्निर्णयो यः श्रुतौ श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानञ्च निबोध कथयामि ते

कृत्वा हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशय्यायां नक्तंशयनमाचरेत्

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च ।
नित्यकृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ ४२ ॥

व्रतोपवासं सङ्कल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ।
कृत्वा सन्ध्यातर्पणञ्च विधायाह्निकमाचरेत् ॥ ४३ ॥

नित्यपूजादिने कृत्वा व्रतद्रव्यं समाहरेत् । कृत्वा षोड़शोपचारं प्रहृष्टं विधिबोधितः

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं यज्ञसूत्रञ्च भूषणम् ॥४५॥

गन्धस्नानीयताम्बूलं मधुपर्कं पुनर्जलम् । एतान्याहृत्य दिवसे व्रतं नक्तं समाचरेत् ॥

उपविश्यासने पूतो धृत्वा धौतेयवाससी ।
आचम्य श्रीहरिं नत्वा स्वस्तिवाचनमाचरेत् ॥ ४७ ॥

आरोप्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे । फलशाखाचन्दनाक्तं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा ॥

वेदषट्कं समावाह्य पृथक् धान्यैः समाचरेत् । पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रकृष्टैश्च विचक्षणः

गणेश्वरं दिनकरं वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ।
सम्पूज्यैतान् प्रणम्याथ व्रतं कुर्य्याद्धरिं स्मरन् ॥ ५० ॥

नाराध्य वेदषट्कञ्च यदि कर्म समाचरेत् ।
नित्यं नैमित्तिकञ्चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५१ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूतमेव च । कण्वशाखोक्तमिष्टञ्च व्रतं शृणु महामुने ॥५२॥

सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् ।
पुष्पञ्च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

ध्यानं शृणु निगूढञ्च सर्वेषामपि वाञ्छितम् । न प्रकाश्यमभक्ताय भक्तप्राणाधिकंपरम्

नवीननीरदो यद्वत् श्यामसुन्दरविग्रहम् । शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनुत्तमम् ॥
शरत्सूर्य्योदयाब्जानां प्रभामोचनलोचनम् । स्वाङ्गसौन्दर्यशोभाभी रत्नभूषणभूषितम्
गोपीलोचनकोणैश्च प्रसन्नैरतिसूचकैः । शश्वन्निरीक्ष्यमाणं तत्प्राणैरिव विनिर्मितम्
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् । राधावक्त्रशरच्चन्द्रसुधापानचकोरकम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥ ५६ ॥

सद्रत्नसारनिर्माणं किरीटोज्वलशेखरम् । विनोदमुरलीहस्तन्यस्तं पूज्यं सुरासुरैः ॥६०
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मादीनाञ्च वन्दितम् । कारणं कारणानां यं तमीश्वरमहं भजे॥
ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपहाराणि षोड़श । दत्त्वा संपूजयेद्भक्त्या मन्त्रैरेभिश्च नारद॥
आसनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छदम् । नानाचित्रविचित्राढ्यं गृह्यतां परमेश्वर ॥
वह्निप्रक्षालितं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा । मूल्यानिर्वचनीयञ्च गृह्यतां राधिकापते ॥
पादप्रक्षालनार्हञ्च सुवर्णपात्रसंस्थितम् । सुवासितं शीतलञ्च गृह्यतां करुणानिधे ॥६५
इदमर्घ्यं पवित्रञ्च शङ्खतोयसमन्वितम् । पुष्पं दूर्वाचन्दनाक्तं गृह्यतां भक्तवत्सल ॥
सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम् । सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण ॥६७॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम् । सर्वेप्सितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम् ॥ ६८ ॥
रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः । सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्
दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः । पुनर्ध्वान्तनाशबीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च ।
चोष्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम् ॥ ७१ ॥

सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम् । गृह्यतां देवदेवेश रचितं चारुकारुणा ॥
अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम् । त्विषा जाज्वल्यमानञ्च गृह्यतां नन्दनन्दन ॥७३॥
प्रधानो वर्णनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ॥७४॥
धात्रीश्रीफलपत्रोत्थं विष्णुतैलंमनोहरम् । वाञ्छितं सर्वलोकानांभगवन् प्रतिगृह्यताम्
वाञ्छनीयञ्च सर्वेषां कर्पूरादिसुवासितम् । मया निवेदितं नाथ ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्

सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु। सद्रत्नसारपात्रस्थं गोपीकान्त प्रगृह्यताम्॥
निर्मलं जाह्नवीतोयं सुपवित्रं सुवासितम्। पुनराचमनीयञ्च गृह्यतां मधुसूदन॥ ७८॥
इति षोड़शोपचारान् दत्त्वा भक्तो मुदान्वितः।
मन्त्रेणानेन पुष्पाणि माल्यं दत्त्वा प्रयत्नतः॥ ७९॥
नानाप्रकारपुष्पैश्च ग्रथितं शुक्लतन्तुना। प्रवरं भूषणानाञ्च माल्यञ्च गृह्यतां प्रभो॥८०॥
इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च व्रती। कुर्य्यात्ततस्तवनंभक्त्यापुटाञ्जलियुतः सुधीः

भक्त उवाच।

हे कृष्ण राधिकानाथ करुणासागर प्रभो। संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके॥
शतजन्मकृतायासादुद्विग्नस्य मम प्रभो। स्वकर्मपाशनिगड़ैर्बद्धस्य मोक्षणं कुरु॥ ८३॥
प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम्। भवपाशभयाद्भीतं पाहि त्वं शरणागतम्॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च वेदतः। वस्तु मन्त्रविहीनं यत्तत् सम्पूर्णं कुरु प्रभो
वेदोक्तविहिताज्ज्ञानात् स्वाङ्गहीने च कर्मणि। त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरे
इति स्तुत्वा तं प्रणम्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्।
महोत्सवं विधायाथ कुर्य्याज्जागरणं व्रती॥ ८७॥
कृत्वा व्रतोपवासञ्च यदि निद्रां निषेवते। पुनरेव जलं भुङ्क्ते व्रतार्धफलभाग्भवेत्॥
यत्नेन च हविष्यान्नं सकृदेव समाचरेत्। मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रीकृष्णचरणं स्मरन्॥
अन्नं हि प्राणिनां प्राणा ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
देहि मे विष्णुरूप त्वं व्रतोपवासयोः फलम्॥ ९०॥
एवं यः कुरुते भक्त्या भारते व्रतमुत्तमम्। पूर्वान् सप्तपरान् सप्तस्वात्मानमुद्धरेद्ध्रुवम्
मातरं भ्रातरञ्चैव श्वश्रूञ्च श्वशुरं सुताम्। जामातरं तथा भृत्यमुद्धरेन्निश्चितं नरः॥
इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णचरितव्रतम्। सुखदं मोक्षदं सारमपरं कथयामि ते॥९३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे एकादशीव्रत-निरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः।

सप्तविंशोऽध्यायः

गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः । गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनीषितम् ॥१॥

हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः ।
कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः ॥ २ ॥
स्नात्वा सूर्य्यसुतातीरे पार्वतीं वालुकामयीम् ।
कृत्वावाह्य च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ ३ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः । नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्बहुविधैरपि ॥ ४ ॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने । मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥ ५ ॥
हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते
मन्त्रणानेन देवेशीपरिहारं विधाय च । ततः कृत्वा तु संकल्पं पूजयेन्मूलमन्त्रतः ॥७॥

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः ।
ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति ॥ ८ ॥
पुष्पं माल्यञ्च नैवेद्यं धूपं दीपं तथांशुकम् ।
मन्त्रेणानेन तां भक्त्या ददुः सर्वा मुदान्विताः ॥ ६ ॥

प्रवालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा । जपं कृत्वाच स्तुत्वाच प्रणेमुः शिरसाभुवि
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे । देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥११॥

इत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् ।
नैवेद्यानि च सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यो ययुर्गृहम् ॥ १२ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्तवराजं शृणु मुने तुष्टुवुर्येन पार्वतीम् ।

अस्या गोपाङ्गनाः सर्वाः सर्वाभीष्टफलप्रदाम् ॥ १३ ॥

जगत्येकार्णवे घोरे चन्द्रसूर्य्यविवर्जिते । अञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे ॥१४॥

दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना । तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां भेजे जगत्पतिः

नाभिपद्मे जगत्स्रष्टा मधुना कैटभेन च । पीड़ितः परितुष्टाव मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१६

ओं नमो जयदुर्गायै ।

ब्रह्मोवाच ।

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७

दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसम्मतः ॥

रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः । भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः ॥१९॥

स्मृत्युक्तिस्मरणाद्यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम् ।

अतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥ २० ॥

विपत्तिवाचको दुर्गश्चाकारो नाशवाचकः ।

दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥ २१ ॥

दुर्गो दैत्येन्द्रवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः । तं ननाश पुरा तेन बुधैर्दुर्गा प्रकीर्तिता॥

शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः । समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः ॥

श्रेयःसंघोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता । शिवराशिर्मूर्त्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥

शिवो हि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचकः ।

स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता ॥ २५ ॥

अभयो भयनाशोक्तश्चाकारो दातृवाचकः । प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता॥

राजश्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः । तां प्रापयति या सद्यःसा मायापरिकीर्तिता

माश्च मोक्षार्थवचनो याश्च प्रापणवाचकः । तं प्रापयतिया नित्यं सा माया परिकीर्तिता

नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा । तदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता

निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः ।

सदा नित्या निर्गुणा या कीर्त्तिता सा सनातनी ॥ ३० ॥

जयः कल्याणवचनो यकारो दातृवाचकः ।
जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥
सर्वमङ्गलशब्दश्च संपूर्णैश्वर्य्यवाचकः । आकारो दातृवचनस्तद्दात्री सर्वमङ्गला ॥३२॥
नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम् । नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ ३३ ॥
तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः । मधुकैटभौ दुर्गान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ॥
स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह ।
साक्षात् स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कवचं ददौ ॥ ३५ ॥
श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम् । दत्त्वा तस्मै महामाया सान्तर्धानं चकार ह
स्तोत्रं कुर्वन्ति निद्राश्च संरक्ष्य कवचेन वै । निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रभावतः ॥
तत्राजगाम भगवान् वृषरूपी जनार्दनः । शक्त्या च दुर्गया सार्धं शङ्करस्य जयाय च ॥
सरथं शङ्करं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्भयं ददौ । अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ ॥
स्तोत्रस्यैव प्रभावेण संप्राप्य कवचं विधिः । वरञ्च कवचं प्राप्य निर्भयं प्राप निश्चितम्
ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रञ्च कवचं वरम् । त्रिपुरस्य च संग्रामे सरथे पतिते हरौ ॥
ब्रह्मास्त्रञ्च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन् ।
स्तोत्रञ्च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः ॥ ४२ ॥
स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम् ।
लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ॥ ४३ ॥
गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम् । वाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम् ॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तियुक्तश्च मानवः ।
शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो दुर्गात् प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥
राजद्वारे श्मशाने च दावाग्नौ प्राणसङ्कटे । हिंस्रजन्तुभयग्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे ॥
शत्रुग्रस्ते च संग्रामे कारागारे विपद्गते । गुरुशापे ब्रह्मशापे बन्धुभेदे च दुस्तरे ॥४७॥
स्थानभ्रष्टे धनभ्रष्टे जातिभ्रष्टे शुचान्विते । पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविषान्विते ॥४८॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण सद्यो मुच्येत निर्भयः । वाञ्छितं लभते सद्यः सर्वैश्वर्य्यमनुत्तमम्

इहलोके हरेर्भक्तिं दृढाञ्च सततं स्मृतिम् । अन्ते दास्यञ्च लभते पार्वत्याश्च प्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
गोपकन्याकृतं सर्वमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ।

अनेन स्तवराजेन तुष्टुवुर्नित्यमीश्वरीम् । प्रणेमुः परया भक्त्या यावन्मासं व्रजाङ्गनाः
एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिवसे तथा । स्नातुं प्रजग्मुर्गोप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद ।
पीतलोहितशुक्लानि चारूणि मिश्रितानि च ॥५३॥

तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् । चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ॥
नैवेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः । धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ॥

जले क्रीड़ोन्मुखा गोप्यो बभूवुः कौतुकेन च ।
नग्नाः क्रीड़ाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥५६॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च ।
वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह ॥५७॥
गत्वा दूरञ्च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदान्विताः ।
वस्त्राणि पुञ्जीकृत्यादौ ऊचुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥५८॥

श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च । सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा
चन्द्रभानुर्वीरभानुः सूर्य्यभानुस्तथैव च । वसुभानू रत्नभानु गोपालाद्वादश स्मृताः ॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश । गोपा हरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ॥
वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः । शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः॥

किञ्चिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा ।
समारुह्य कदम्बाग्रमुवाच गोपिकां हरिः ॥६३॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि ।
कृत्वा विधानं मद्वाक्यं श्रुत्वा क्रीड़त मन्मथात् ॥६४॥

सङ्कल्पिते व्रतार्हे च मासे मङ्गलकर्मणि । यूयं नग्नाः कथं तोये व्रताङ्गहानिकारिकाः ॥

परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च ।
व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि वोऽधुना ॥६६॥

व्रते तु नग्ना यास्नातितां रुष्टोवरुणःस्वयम् । वरुणानुचरा वासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्हृतिम्

कथं यास्यथ नग्नाश्च व्रतस्य किं भविष्यति ।
व्रताराध्या कथं सा च वस्तूनि किं न रक्षति ॥६८॥

चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टाव बलिरीश्वरीम् । युष्माकमीदृशीदेवीनशक्तावस्तुरक्षणे ॥

कथं व्रतफलं सावो दातुं शक्तासुरेश्वरी । फलं प्रदातुं या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुर्व्रजस्त्रियः । ददृशुर्यमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम्

चक्रुर्विषादं तोये च नग्नास्ता रुरुदुर्भृशम् ।
क्व गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्यूचुरत्र नः ॥७२॥

कृत्वा विषादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्वकम् ॥

गोपालिका ऊचुः ।

परिधेयानि वस्त्राणि किंकरीणां सदीश्वरः । निबोधयात्मानमेव स्पर्शं कर्त्तुं त्वमर्हसि

व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च साम्प्रतम् । अदत्तानि नोचितानि गृहीतुं वेदविद्वद

देहि धौतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम् ।
वस्तुनान्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु ॥७६॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम् । दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्रावतत्पुरः

दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरीपरा । सर्वावयस्याश्चोवाच कोपयुक्ताजलप्लुता

श्रीराधिकोवाच ।

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि । कदम्बमाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले॥७८

हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि। सुधामुखि शुभे पद्मे हे गौरि हे स्वयंप्रभे

कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति। अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि

कृष्णप्रिये मधुमति चम्पे चन्दननन्दिनि । यूयं सर्वाः समुत्थाय वद्ध्वानयत वल्लभम् ॥

सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलात् क्रुधा ।
प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥८३॥
एतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः। प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः॥
वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानञ्च वालिकाः । वेगेन च प्रधावन्तं विभ्रन्तं वस्त्रपुञ्जिकाम्
जगामशीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः । जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः॥
वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासुराशु ताः ।
भिया प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥ ८७ ॥
श्रीकृष्णसहितान् वालान् वरयामासुराशु च ।
गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम् ॥ ८८ ॥
माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा । कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रैर्नानाविधैरपि
वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च ।
उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः ॥ ९० ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भोभो गोपालिकानग्नाइदानीं किं करिष्यथ । वस्त्रयाञ्चांप्रकर्तुञ्चकुरुताशु पुटाञ्जलिम्
गत्वा वदत युष्माकमीश्वरीमथ राधिकाम् ।
करोतु शीघ्रं वस्त्राणि याञ्चां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥ ९२ ॥
अन्यथाहं न दास्यामियुष्मभ्यमंशुकानि च । युष्माकमीश्वरीराधाकिंकरिष्यतिमेऽधुना
व्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति ।
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयञ्च राधिकाम् ॥ ९४ ॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः ।
वीक्ष्य लोचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम् ॥ ९५ ॥
चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिःस्वयम् । श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव कामपीड़िता
श्रुत्वा तासाञ्च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा । न जगाम हरेः स्थानं व्रीड़या सस्मितासती
जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ।

ब्रह्मेशानन्तु धर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥ ९८ ॥

स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसम्पूर्णलोचना । भावातिरेकात्प्राणेशन्तुष्टाव निर्गुणंपरम्

राधिकोवाच ।

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तुते ॥

गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥

शतमन्योर्मन्युमग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तुते॥१०२॥

शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तुते ॥१०३

चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणबीज गुणाधार गुणीश्वर नमोऽस्तु ते ॥

अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेसिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विन्तपसां बीजरूप नमोऽस्तुते ॥

यदनिर्वचनीयञ्च वस्तुनिर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते ॥

अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः ।
यस्य पादार्चनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः ॥ १०७ ॥
स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम् ।
पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः ॥ १०८ ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् ।
मनःप्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती ॥ १०९ ॥

राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। हरिभक्तिञ्च दास्यञ्च लभेद्राधागतिंध्रुवम्

विपत्तौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः सम्पत्तिमाप्नुयात् । चिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टञ्च लभ्यते

बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम् । चिन्ताग्रस्तः पठेद्भक्त्या परां निर्वृतिमाप्नुयात्

पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च सङ्कटे । मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः स दर्शनं लभेत् ॥

भक्त्या कुमारी स्तोत्रञ्च शृणुयाद्वत्सरं यदि ।
श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद् ध्रुवम् ॥ ११४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ।

जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।

स्तुत्वैवञ्चक्षुरुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥ ११५ ॥

ददर्श यमुनातीरं वस्त्रद्रव्यमयंमुने । दृष्ट्वा तन्द्राथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका ॥११६

यत्र स्थाने यदाधारे यद् द्रव्यं संस्थितं पुरा । वस्त्रैश्च सहितं सर्वं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः

जलादुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम् ।

संप्राप्य च वरं देव्यस्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः ॥ ११८ ॥

नारद उवाच ।

व्रतस्य किं विधानञ्च किं नाम किं फलं प्रभो ।

कानि द्रव्याणि देयानि का देया तत्र दक्षिणा ॥ ११९ ॥

व्रतान्ते किं रहस्यञ्च बभूव सुमनोहरम् ।

व्यासं कृत्वा महाभाग वद नारायणीं कथाम् ॥ १२० ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारेभे कवीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

नारायण उवाच ।

सर्वं व्रतविधानञ्च मत्तो वत्स निशामय । ख्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गमासि कृतंस्त्रिया

पुंसाञ्च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम् । देशभेदे प्रसिद्धञ्च व्रतं पौर्वापरं स्मृतम् ॥

कामदं कामुकानाञ्च फलं कान्तनिमित्तकम् । उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं प्रक्षाल्यसंयता

प्रातश्च मार्गसंक्रान्त्यां भक्त्या गत्वा सरित्तटम् ।

धृत्वा धौते च स्नात्वा च नानाद्रव्येण कन्यका ॥ १२५ ॥

देवषट्कञ्च सम्पूज्य कृत्वा चावाहनं घटे । गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं नारायणं शिवम् ॥

दुर्गां पञ्चोपचारैश्च सम्पूज्य व्रतमारभेत् । घटाधःपिण्डिकांकृत्वाचतुरस्रां सुविस्तृताम्

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृताम् ॥ १२७ ॥

निर्माय बालुकानाञ्च दुर्गां दशभुजां पराम् । धृत्वा कपाले सिन्दूरं तदधश्चन्दनेन्दुकम्

तां ध्यात्वाऽऽवाहयेद्देवीं ततो भूत्वा पुटाञ्जलिः। इमं मन्त्रंपठित्वादौततःपूजांसमारभेत

हे गौरि शङ्करार्धाङ्गि यथा त्वं शङ्करप्रिया ।

तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम् ॥ १३० ॥

इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रसूम् । ध्यानं तत्सामवेदोक्तं निगूढं सर्वकामदम्

श्रृणु नारद वक्ष्यामि मुनीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् ।

ध्यायन्त्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ १३२ ॥

शिवांशिवप्रियांशैवां शिववक्षःस्थलस्थिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांसुप्रतिष्ठांसुलोचनाम्

नवयौवनसम्पन्नां रत्नाभरणभूषिताम् । रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम् ॥ १३४ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । मालतीमाल्यसंसक्तकबरीं भ्रमरान्विताम् ॥

सिन्दूरतिलकं चारु,कस्तूरीविन्दुना सह । वह्निशुद्धांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहराम् ॥

मणीन्द्रसारसंसक्तरत्नमालासमुज्ज्वलाम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम् ॥ १३७ ॥

सुपीनकठिनश्रोणीं बिभ्रतीञ्च स्तनानताम् ।

नवयौवनभारौघादीषन्नम्रां मनोहराम् ॥ १३८ ॥

ब्रह्मादिभिस्स्तूयमानां सूर्य्यकोटिसमप्रभाम् । पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्च चारुचम्पकसन्निभाम्

मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तराजिविराजिताम् । मुक्तिकामप्रदां देवीं शरच्चन्द्रमुखीं भजे ॥

ध्यात्वैवं मस्तके पुष्पं विन्यस्य च व्रती मुदा ।

पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥ १४१ ॥

दत्त्वा षोड़शोपचारान् प्रहृष्टं तत्र नित्यशः । पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या व्रते व्रती

पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्वा च प्रणमेत्तदा ।

कृत्वा प्रणामं भक्या च संयतः श्रृणुयात्कथाम् ॥ १४३ ॥

नारद उवाच ।

व्रतं व्रतविधानञ्च फलञ्च स्तोत्रमद्भुतम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम् ॥ १४४ ॥

व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम् ।

एतत्सर्वं सुविस्तार्य्य व्रतसन्देहभञ्जन ॥ १४५ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

कुशध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदवती सती । तया कृतं व्रतमिदं महातीर्थे च पुष्करे ॥
समाप्तिदिवसे साक्षाद्बभूव जगदम्बिका । योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्य्यकोटिसमप्रभा ॥
शातकुम्भविनिर्माणरथस्था परमेश्वरी । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम् ॥

पार्वत्युवाच ।

हे वेदवति भद्रन्ते वरं वृणु यथेप्सितम् । तव व्रतेन तुष्टाहन्तुभ्यं दास्यामि वाञ्छितम्
पार्वतीवचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तां हृष्टमानसाम् । पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद॥

वेदवत्युवाच ।

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनीषितम् ।
वरेऽन्यस्मिन् स्पृहा नास्ति दृढ़ां भक्तिञ्च तत्पदे ॥ १५१ ॥

श्रुत्वा वेदवतीवाक्यं प्रहस्य जगदम्बिका । अवरुह्य रथात्तूर्णं तामुवाच हरिप्रियाम् ॥

पार्वत्युवाच ।

ज्ञातं सर्वं जगन्मातस्त्वञ्च लक्ष्मीः स्वयं सती । भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता
त्वत्पादरजसा साध्वी सद्यः पूता वसुन्धरा । निखिलानिच तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि
व्रतन्ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि । नारायणस्य कान्तात्वं प्रिया जन्मनि जन्मनि
भारावतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति । रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दस्युविनिग्रहम् ॥
ब्रह्मशापाच्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः । अयोध्यायाञ्च त्रेतायामाविर्भावो हरेरपि॥

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविग्रहम् ।
त्वामिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसम्भवां सुताम् ॥ १५८ ॥
पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वञ्च भविष्यसि ।
गत्वा रामोऽपि मिथिलां त्वां विवाहं करिष्यति ॥ १५९ ॥
नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि ।
इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती स्वालयं ययौ ॥ १६० ॥
गत्वा सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च ।

लाङ्गलस्य च रेखायां सुखात्तस्थौ च मायया ॥ १६१ ॥
विलोक्य जनकस्ताञ्चनग्नां मुद्रितलोचनाम् । तप्तकाञ्चनवर्णाञ्च रुदन्तीं तेजसान्विताम्
दृष्ट्वा ताञ्च गृहीत्वा च कृत्वा वक्षसि नारद । गच्छन्तंप्रतितत्रैवचाग्बभूवाशरीरिणी ॥
अयोनिसम्भवां कन्यां कमलां ग्रहणं कुरु । नारायणस्ते जामाता भवितेत्येवमेव च ॥
श्रुत्वातदा देववाणीं गृहीत्वा कन्यकामृषिः । गत्वाददौ स्वकान्तायै पालनाय मुदान्वितः
सा लब्धयौवना प्राप रामं दाशरथिं सती । व्रतस्यास्य प्रभावेण कान्तं त्रिजगतांपतिम्
प्रकाशितं वशिष्ठेन पृथिव्यां भक्तिभावतः । राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णप्राणवल्लभम् ॥
गोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतस्य च
भारतेच व्रतमिदं या करोति कुमारिका । स्वामिनं कृष्णतुल्यञ्च सा प्राप्नोति न संशयः

इति गौरीव्रतकथा समाप्ता ।

श्रीनारायण उवाच ।

एवं व्रतञ्च चक्रुस्ता यावन्मासञ्च गोपिकाः । पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुश्च दिने दिने
समाप्तिदिवसे गोप्योव्रतंकृत्वामुदान्विताः । कण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टुवुः परमेश्वरीम्
येन स्तोत्रेणतां स्तुत्वासीता सत्यपरायणा । सद्यःसंप्राप कान्तञ्च रामं राजीवलोचनम्

जानक्युवाच ।

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शङ्करयुक्ते च पतिं देहि नमोस्तु ते ॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि ।
सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७४ ॥
हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १७५॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७६ ॥
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १७७॥
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥
क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा ।
एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७९ ॥

लज्जामेधातुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते
दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्बीजफलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥१८१
शिवे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिंकान्तञ्च सौभाग्यं देहिदेवि नमोऽस्तुते

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम् ।
नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥ १८३ ॥
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् ।
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यात्यन्ते कृष्णसन्निधिम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

समाप्तिदिवसे राधा गोपीभिः सह संयुता ।
देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च व्रतं पूर्णञ्चकार ह ॥ १८५ ॥

गोसहस्रं ब्राह्मणाय सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता ॥
ब्राह्मणानां सहस्रञ्च भोजयामास सादरम् । वाद्यानि वादयामास भिक्षुकाय धनं ददौ
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । आविर्बभूव गगनाज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता । सिंहस्था च दशभुजा रत्नालङ्कारभूषिता ॥
शातकुम्भमयाद्दिव्याद्रत्नसारपरिच्छदात् । अवरुह्य रथात्तूर्णमालिङ्ग्योरसि राधिकाम्

दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुश्च मुदान्विताः ।
आशिषं युयुजे दुर्गा वाञ्छासिद्धिर्भविष्यति ॥ १९१ ॥
गोपिकाभ्यो वरं दत्त्वा ताः सम्भाष्य च सादरम् ।
उवाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरुहा ॥ १९२ ॥

पार्वत्युवाच ।

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके । व्रतन्ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणी ॥
गोलोकनाथं गोलोकं श्रीशैलं गिरिजातटम् । श्रीरासमण्डलं दिव्यं वृन्दावनमनोहरम्

चरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् ।
विदुषः कामशास्त्राणां किञ्चित् स्मरसि सुन्दरि ॥ १९५ ॥

श्रीकृष्णार्धाङ्गसम्भूता कृष्णतुल्याच तेजसा । तवांशकलया देव्यःकथं त्वंमानुषी सती
भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हरिःस्वयम् । वेदेनास्ति द्वयोर्भेदः कथंत्वं मानुषीसती
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मा तप्त्वा तपः पुरा । न ते ददर्श पादाब्जं कथं त्वं मानुषीसती ॥

कृष्णाज्ञया च त्वं देवी गोपीरूपं विधाय च ।
आगतासि महीं शान्ते कथं त्वं मानुषी सती ॥ १९९ ॥

सुयज्ञो हि नृपश्रेष्ठो मनुवंशसमुद्भवः । त्वत्तो जगाम गोलोकं कथं त्वं मानुषी सती
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां चकार पृथिवीं भृगुः । तव मन्त्रेणकवचात्कथं त्वं मानुषी सती
शङ्करात्प्राप्य त्वन्मन्त्रं सिद्धंकृत्वा च पुष्करे । जघानकार्तवीर्य्यञ्च कथंत्वं मानुषीसती
बभञ्ज दर्पाद्दन्तञ्च गणेशस्य महात्मनः । त्वत्तो नाम भयं चक्रे कथं त्वं मानुषी सती ॥
मय्युद्धतायां कोपेन भस्मसात्कर्तुमीश्वरः । ररक्षागत्यमत्प्रीत्या कथं त्वं मानुषी सती

कल्पे कल्पे तव पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि ।
व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥ २०५ ॥

अहो श्रीदामशापेन भारावतरणेन च । भूमौ तवाधिष्ठानञ्च कथं त्वं मानुषी सती ॥
अयोनिसम्भवा त्वञ्च जन्ममृत्युजरापहा । कलावतीसुता पुण्या कथं त्वं मानुषी सती
त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे । निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले ॥
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दावनेवने । हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीड़ा ते भविता सति
विधात्रा लिखिता क्रीड़ा कल्पे कल्पे महीतले । तव श्रीहरिणा सार्धं केनराधेनिवार्य्यते
यथा सौभाग्ययुक्ताहं हरस्य श्रीहरिप्रिये । तथासौभाग्ययुक्तात्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि

यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वह्नौ च दाहिका ।
भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव ॥ २१२ ॥

दैवी वा मानुषीवापिगान्धर्वीराक्षसीतथा । त्वत्तःपरा च सौभाग्या न भूतानभविष्यति
परात्परो गुणातीतो ब्रह्मादीनाञ्च वन्दितः । स्वयं कृष्णस्तवाधीनो मद्वरेण भविष्यति

ब्रह्मानन्तशिवाराध्यो भविता त्वद्वशः सति ।
ध्यानासाध्यो दुराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम् ॥ २१५ ॥

त्वञ्चभाग्यवतीराधेस्त्रीजातिषु न ते परा । कृष्णेनसार्द्धंपश्चात् त्वंगोलोकञ्चगमिष्यसि
इत्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने । सार्धं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकापुरः । राधा ददर्श श्रीकृष्णंकिशोरं श्यामसुन्दरम्
पीतवस्त्रपरीधानंनानालङ्कारभूषितम् । आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम्॥२१९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम्॥२२०॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । पक्कदाड़िमबीजाभदशनं सुमनोहरम् ॥
विनोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥

गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशिवादिभिः ।
ब्रह्मस्वरूपं ब्राह्मण्यं श्रुतिभिश्च निरूपितम् ॥ २२३ ॥

अव्यक्तमक्षरं व्यक्तं ज्योतीरूपं सनातनम् । मङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं संभ्रमात् प्रणनाम तम् । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता राधा कामबाणप्रपीड़िता
दर्शं दर्शं मुखाम्भोजं सस्मिता वक्रलोचना । मुखमाच्छादयामास व्रीड़या च पुनः पुनः
दृष्ट्वा हरिस्तामुवाच प्रसन्नवदनेक्षणः । गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिकेराधिके त्वंवरंवृणुमनीषितम् । भो भो गोपालिकाःसर्वा वरंवृणुतवाञ्छितम्

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे च राधिका ।
गोपालिकाश्च प्रहृष्टाः सर्वशः कल्पपादपम् ॥ २२६ ॥

राधिकोवाच ।

त्वत्पादाब्जे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो !। पातु भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु
मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि । त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम्
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञानेदिवानिशम् । भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम् ॥

गोपालिका ऊचुः ।

यथाराधां तथा नश्च प्राणबन्धोदिवानिशम् । भविष्यसिप्राणनाथोरक्ष्यसि प्रतिजन्मनि
आसाञ्च वचनं श्रुत्वा तथास्त्वेवमुवाच ह । प्रसन्नवदनः श्रीमान् यशोदानन्दवर्धनः ॥

क्रीड़ापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम् । ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः
मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकापतिः ।
प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददावित्युवाच ह ॥ २३६ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीड़ां मया सह । रासमण्डलरम्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ ॥
यथाऽहञ्च तथा यूयं न हि भेदः श्रुतौ श्रुतः ।
प्राणा अहञ्च युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो ॥ २३८ ॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः । सहागताश्च गोलोकाद्गमनञ्च मया सह
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि ।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः ॥ २४० ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तस्थौ सूर्य्यसुतातटे । तस्थुर्गोपालिकाःसर्वा वीक्ष्यकृष्णंपुनःपुनः
सर्वाः प्रहृष्टवदनाः सस्मिता वक्रलोचनाः । प्रीत्या चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपुर्हरेः
ताः शीघ्रं प्रययुर्गेहं जयं दत्त्वा पुनः पुनः । हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नः स्वालयं ययौ
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् । गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखावहम्॥२४४॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
गोपीकावस्त्रहरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

रासक्रीड़ाप्रस्तावर्णनम् ।

नारद उवाच ।
त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासाञ्च हरिणा सह । वद केन प्रकारेण बभूव तनुसङ्गमः ॥ १ ॥
वृन्दावनं किंप्रकारं किंविधं रासमण्डलम् । हरिरेकस्ताश्च बह्वयः केन क्रीड़ा बभूव ह ॥

कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम् । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्त्तन ॥ ३ ॥

कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरेरहो ।
हरिलीलाः पृथिव्यान्तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम् । प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा श्रीहरिर्नक्तं घनं वृन्दावनं ययौ । शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥ ६ ॥
यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना । वासितं कलनादेन मधुभ्राणां मनोहरम् ॥७॥
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥ ८ ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुवासितम् । कर्पूरान्विततांम्बूलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥ ९ ॥

प्रसूनैश्चम्पकानाञ्च कस्तूरीचन्दनान्वितैः ।
रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥ १० ॥

दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतम् । नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥११॥
परितो वर्त्तुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्कृतम् ॥१२॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीड़ासरोवरैः । हंसकारण्डवाकीर्णैर्जलकुक्कुटकूजितैः ॥
क्रीड़नीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः । शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥१४॥

दधिपूर्णशुक्लधान्यजलैर्निर्मञ्छनीकृतम् ।
रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥ १५ ॥

आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा । भूषितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥ १६ ॥
मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः । स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१७॥
चकार तत्र कुतुकाद्विनोदमुरलीरवम् । गोपीनां कामुकीनाञ्च कामवर्धनकारणम् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा । बभूव स्थाणुवद्देहा ध्यानैकतानमानसा ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुश्राव सा ध्वनिम् ।
उवास सा समुत्तस्थौ समुद्विग्ना पुनः पुनः ॥ २० ॥

त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म निःससाराद्भुतं गृहात्। ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम्
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः। तेजसाच द्योतयन्ती सद्रत्नसारभूषणैः

वहिर्बभूवुस्तास्त्रस्ता वरेण हृतचेतनाः।
कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः॥ २३॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः।
राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः॥ २४॥

तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे। समावेशेन वयसा रूपेण च गुणेन च
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोड़श। ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च षोड़श॥
एकादशसहस्राणि माधव्यालयश्च निर्ययुः। जग्मुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश

ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः।
चतुर्दशसहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः॥ २८॥
जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव।
ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च॥ २९॥
सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात्।
पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश॥ ३०॥
स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात्।
ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश॥ ३१॥

शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश। पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश॥
गौरी पद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश। ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोड़श
कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोड़श। निर्ययुःकमलाल्यश्चसहस्राणित्रयोदश
दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोड़श। ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश॥
प्रजग्मुर्भारतीपश्चात्सहस्राणि दश व्रजात्। अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश॥
रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश। गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश॥३७

प्रजग्मुरम्बिका पश्चात्सहस्राणि च षोड़श।

सतीपश्चाद्ययुर्गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३८ ॥
नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश । प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश॥३९
ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्राणि च षोड़श । ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्राणि च षोड़श ॥
ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ।
चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्राणि च षोड़श ॥ ४१ ॥
सर्वा बभूवुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा । तत्रराययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥४२
चारुचन्दनहस्ताश्च काश्चित्तत्राययुर्व्रजात् । श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्तत्राययुर्मुदा॥४३
तत्राययुर्गोपकन्याः काश्चित् कुङ्कुमवाहिकाः ॥ ४४ ॥
काश्चित् तत्राययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रवाहिकाः ।
यावत्काञ्चनवस्त्राणां वाहिका गोपकन्यकाः ॥ ४५ ॥
काश्चित्तत्राययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा ।
सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदान्विताः ॥ ४६ ॥
विधाय राधिकावेशं स्थानाच्च प्रययुर्मुदा । चक्रुः पुनःपुनस्ताश्च हरिशब्दं जयं पथि ॥
प्रापुर्वृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम् । स्वर्गेभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥
सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पवायुना । नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥४९
शुश्रुवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम् ।
अतिसूक्ष्मकलञ्चापि भ्रमराणां मनोहरम् ॥ ५० ॥
प्रसूनमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्गसङ्गिनाम् । शुभे क्षणे प्रविवेश राधिका रासमण्डलम् ॥५१
सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।
राधामारात्तु संवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ५२ ॥
जगामानुव्रजं प्रीत्या सस्मितोमदनातुरः । मध्यस्थां सखिसङ्घानां रत्नालङ्कारभूषिताम्
दिव्यवस्त्रपरीधानां सस्मितां वक्रलोचनाम् । गजेन्द्रगामिनीं रम्यांमुनिमानसमोहिनीम्
नवीनवेशवयसा रूपेणातिमनोहराम् । तलश्रोणिनितम्बानां भारशेषान्वितां पराम् ॥५५
चारुचम्पकवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम् । बिभ्रन्तीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् ॥

राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् । नवयौवनसम्पन्नं रत्नाभरणभूषितम् ॥५७॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाममनोहरम् । प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा
परमाद्भुतरूपञ्च सर्वत्रानुपमं परम् । विचित्रवेशं चूड़ाञ्च बिभ्रन्तं सस्मितं मुदा ॥ ५९ ॥
वक्रलोचनकोणेन दृशं दृशं पुनः पुनः । मुखमाच्छादयामास व्रीड़या सस्मिता सती ॥
मूर्च्छामवाप सा सद्यःकामवाणप्रपीड़िता । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी वभूव हतचेतना ॥६१॥

कटाक्षकामवाणैश्च विद्धः क्रीड़ारसोन्मुखः ।
मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः ॥ ६२ ॥

पपात मुरली तस्य क्रीड़ाकमलमुज्ज्वलम् । द्वितीयं पीतवस्त्रञ्च शिखिपिच्छं शरीरतः ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा ।
कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती । प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्यचुचुम्बह

मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने ।
जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥ ६६ ॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् । चारुचम्पकशय्याभिश्चन्दनाक्ताभा राजितम् ॥६७॥

कर्पूरान्विततास्बूलैर्भोगद्रव्यैः समन्वितम् ।
उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ६८ ॥

राधाप्रदत्तताम्बूलं चखाद मधुसूदनः । रासेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्बूलं बुभुजे मुदा ॥६९॥
दत्तं चर्विततास्बूलं राधायै प्रभुणा मुदा । चखाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनातुरा ॥
राधाचर्वितताम्बूलं ययाचे माधवो मुदा । न ददौ राधिका भीता पपात चरणाम्बुजे ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः । सुष्वाप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे ॥७२
शृङ्गाराष्टप्रकारञ्च विपरीतादिकं विभुः । नखदन्तकराणाञ्च प्रहारञ्च यथोचितम् ॥७३॥
कामशास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम् । कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः । चकाराश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम् ॥
शृङ्गारकुशलौ तौ तु कामशास्त्रसुपण्डितौ । रतियुद्धविरामश्च न बभूव द्वयोरपि ॥७६॥

एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्त्तिं विधाय च। रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रासमण्डले॥७७
गोपीनां नवलक्षाणि गोपानाञ्च तथैव च। लक्षाण्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले॥

मुक्तकेशानि मग्नानि विच्छिन्नभूषणानि च।
वेशोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च॥ ७६॥

कङ्कणानां किङ्किणीनां वलयानाञ्च नारद। सद्रत्ननूपुराणाञ्च शब्दयुक्तानि सन्ततम्॥

एवं कृत्वा स्थलक्रीड़ां ययुस्तानि जलं मुदा।
कृत्वा तत्र जलक्रीड़ां परिश्रान्तानि साम्प्रतम्॥ ८१॥

तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च। ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च॥८२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः।मुदा परिदधुस्तानि सम्प्रापुश्चेतनानि च॥
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं भुक्त्वा सर्वाणि कौतुकात्। ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्ने दर्पणेऽमले॥८४
काचित्कामातुरा कृष्णं बलादाकृष्य कौतुकात्। हस्ताद्वंशीं निजग्राह वसनञ्च चकर्ष ह

काचित्कामप्रमत्ता च नग्नं कृत्वा तु माधवम्।
निजग्राह पीतवस्त्रं परिहास्यं पुनर्ददौ॥ ८६॥
युक्तिं शृण्वित्येवमुक्त्वा काचित्संगृह्य स्वामिनम्।
चुचुम्ब गण्डे बिम्बोष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः॥ ८७॥

सस्मितं सकटाक्षञ्च मुखचन्द्रंस्तनोन्नतम्। काचिच्छ्रोणिंसुललितां दर्शयामासकामतः

काचित्कान्तं करे कृत्वा संस्थाप्य श्रोणिदेशतः।
चकार चूड़ानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम्॥ ८६॥

काचिच्चूड़ां समाकृष्य मयूरपिच्छकं ददौ। गुञ्जां माल्यञ्च चूड़ायां वेष्टयामास कावन
प्रददौ स्वामिने कामात् प्रेमवर्धनहेतवे। काचित्काञ्चित्समाकृष्य नग्नांकृत्वातु कामतः
प्रेषयामास कृष्णस्य क्रोड़े चन्दनचर्चिते। ननृतुश्च जगुः काश्चित् कान्तंकृत्वातुकामतः
नर्तनं कारयामास तञ्च काचिद्बलेन च। कृष्णश्च वस्त्रं कस्याश्च विचकर्ष कुतूहलात्

काञ्चित् कृत्वा तु नग्नाञ्च कस्यैचिदंशुकं ददौ।
कृष्णो राधां समाकृष्य वासयामास वक्षसि॥ ६४॥

तस्याश्च कवरीं रम्यां सुनिर्माणञ्चकार ह । सिन्दूरञ्च ददौ भाले कस्तूरीबिन्दुभिःसह
अतिसूक्ष्मं चन्दनेन्दुं कौतुकात्तदधो ददौ । पत्रावलीं सुललितां सुकपोले चकार ह ॥
वह्निशुद्धांशुकं चारु परिधाप्यैप्रयत्नतः । ददौ सद्रत्नमञ्जीरे गृहीत्वा चरणाम्बुजे ॥ ९७ ॥
नखनिर्माजनं कृत्वा सुन्दरं यावकं ददौ । भूषणैर्भूषितां कृत्वा सम्प्रलिप्यानुलेपनैः ॥९८
दत्त्वा च मालतीमालां चुचुम्ब च पुनः पुनः । चारुलोचनपद्मे च चकाराञ्जनसंयुते ॥९९
प्रददौ नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम् । श्रोणिदेशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह
चकार दन्तदलनं पक्वबिम्बाधरे वरे । सरसश्च तटे रम्ये पुण्योद्याने सुनिर्जने ॥ १०१ ॥
वह्निश्चन्द्रोदये रम्ये पुष्पचन्दनचर्चिते । अगुरुचन्दनाक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥ १०२ ॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । बहुमूर्त्तीः संविधाय योगिनां परमो गुरुः ॥१०३
पुनश्चकार भृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः । किङ्किणीनां कङ्कणानां नूपुराणाञ्च नारद ॥
भृङ्गारोद्रेकतस्तत्र बभूव सुन्दरो वरः । मूर्च्छामवापुस्ताः सर्वा नवसङ्गममात्रतः ॥१०५
बभूवुरचलास्पन्दाः पुलकाञ्चितविग्रहाः । भृङ्गारविरते भूते संप्रापुश्चेतनां पुनः ॥१०६॥
नखदन्तप्रहारञ्च प्रचकार परस्परम् । कृष्णः कररुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि ॥१०७॥

श्रोणीदेशे सुकठिने नखचित्रं चकार ह ।
नीवीविस्रंसिता तासां कबरी क्षुद्रघण्टिका ॥ १०८ ॥

दूरीभूतं सुवसनं सुवेशं सुमनोहरम् । आलिङ्गनं नवविधं चुम्बनाष्टविधं मुदा ॥१०९॥
भृङ्गारं षोड़शविधं चकार रसिकेश्वरः । अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम्॥

चकारालिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनाञ्च कामुकः ।
नारीणां षोड़श कलाः भृङ्गारस्तत्प्रमाणकः ॥ १११ ॥

कलाभेदेन तद्भेदं कामशास्त्रविदो विदुः । प्रकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः ॥११२

निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम् ।
क्रीड़ारम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम् ॥११३॥
प्रीत्यर्थमपि कर्त्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम् ।
गोपीकङ्कणरेखाभिः पादालक्तकचिह्नितः ॥ ११४ ॥

शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाद्रिर्गैरिकेण च। एवम्भूते पूर्णरासंभूते रासमण्डले ॥ ११५ ॥
समाजग्मुः सुराःसर्वेसकलत्राश्चसानुगाः। सुवर्णस्यन्दनस्थाश्चकौतुकात्स्वगणावृताः
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामबाणप्रपीड़िताः।
ऋषयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥ ११७ ॥
विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः। सस्त्रीकाश्च समाजग्मुर्ददृशुश्च मुदान्विताः ॥
दिव्यस्यन्दनमारुह्य शातकुम्भविनिर्मितम्।
सुशोभितञ्च मणिना रत्नसारपरिच्छदम् ॥ ११९ ॥
वह्निशुद्धांशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम्। श्वेतचामरयुक्तञ्च सद्रत्नदर्पणाम्बुजम् ॥ १२० ॥
शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायिम नोहरम्। सद्रत्नसारनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम्॥१२१
समाजगाम भगवान् पार्वत्या सह शङ्करः।
वामपार्श्वे महाकालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः ॥ १२२ ॥
पुरतः कार्तिकेयश्च स्वयं देवो गणेश्वरः। पिङ्गलाक्षादयः सर्वे पार्षदाः परितस्तयोः ॥
क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाष्टौ भैरवेश्वराः।
वक्षःस्थलस्थिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना ॥ १२४ ॥
भारत्या सह ब्रह्मा च शातकुम्भरथस्थितः। वामे सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणे सनकादयः ॥
सुवर्णस्यन्दनस्थाश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम्।
वक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेराननना सती ॥ १२६ ॥
पश्यन्ती पूर्णरासञ्च सकामा वक्रलोचना। परितः पार्षदाः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा॥
शच्या सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः।
स्वाहासार्धं स्वयं वह्निः सूर्य्यश्च संज्ञया सह ॥ १२८ ॥
समाजगाम कामश्च रतिं कृत्वाच वक्षसि। सर्वे ग्रहाश्चदिक्पाला आजग्मुःसकलत्रकाः
आकाशस्थाश्च ददृशुः सरासं रासमण्डलम्। केचिच्च मुमुहुस्तत्र मूर्च्छामापुश्च केचन ॥
मुहूर्त्तञ्च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदान्विताः। चन्दनद्रववृष्टिश्च पुष्पवृष्टिश्च चिक्षिपुः ॥
कस्तूरीयुक्तमाल्यानां वृष्टिश्चक्रुर्मुनीश्वराः। रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामबाणप्रपीड़िताः ॥

स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुनाजलम् । राधया सह कृष्णश्च पूर्णब्रह्मसनातनः ॥

गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः ।
प्रपीड़िताः कामवाणैः क्रीड़ाश्चक्रुर्जले मुदा ॥ १३४ ॥
जलं ददौ राधिकायै सकामो माधवः स्वयम् ।
ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्जलित्रयम् ॥ १३५ ॥

वस्त्रं जग्राह तस्याश्च साच नग्ना वभूव ह । मालाञ्चिच्छेद कवरीं चकार शिथिलांहरिः
सिन्दूरपत्रकं लुप्तं वेशश्च जलताडनैः । भ्रूचिचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कज्जललोचनम् ॥१३७॥
ताञ्च नग्नां समाश्लिष्य निममज्ज जलेहरिः । प्रकृत्याभ्यन्तरे क्रीड़ां सुतस्थौ च तयासह
ताञ्च नग्नां दर्शयित्वा गोपिकां व्रीड़या नताम् । सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले
सा वेगेन समुत्थाय वलाज्जग्राह माधवम् । गृहीत्वा मुरलीं कोपात् प्रेरयामास दूरतः
गृहीत्वा पीतवसनश्चकार तं दिगम्वरम् । वनमालाञ्च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ॥
हरिं पुनः समाकृष्ण प्रेषयामास पाथसि । गम्भीरे स्रोतसि मुने निममज्ज जगत्पतिः ॥
उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च । कृत्वावक्षसि नग्नाञ्च चुचुम्वच पुनःपुनः
एवन्ता मूर्त्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात् । क्रीड़ां विचक्रुर्यमुनातीरनीरे मनोहरे ॥
तीरं गत्वा तया सार्धं हरिर्नग्नश्च नग्नया । सातं ययाचे वसनं सच तां सस्मितां सतीम्
राधिकायै ददौ वस्त्रं रम्यां मालाञ्च माधवः । प्रददौ हरये वस्त्रं वंशीं रासेश्वरी तथा

चन्दनागुरुकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम् ।
कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ श्रोणिस्थितस्य च ॥ १४७ ॥

निर्माय चूड़ां ललितां कामिनीचित्तमोहिनीम् । शोभनैर्मालतीलयैश्चकार वेष्टनं पुनः ॥
श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कवरीं सुमनोहराम् । कृत्वाकुन्तलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलीम्
ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीविन्दुभिः सह । तदधश्चन्दनेन्दुश्च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥
नखाङ्कं स्तनयोरूर्वोरुरस्येव घनं मुदा । दत्वातां वासयामास वह्निशुद्धांशुकेन वै ॥१५१
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः । कृत्वा वक्षसि संलिप्य चुचुम्वच मुहुर्मुहुः ॥
पुनराश्लेषणं कृत्वा ददौ मालां गले पुनः । भूषणैर्भूषितां कृत्वा मञ्जीरञ्चरणे ददौ॥१५२

अलक्तकञ्चरणयोर्नखेषु च ददौ पुनः । एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक् पृथक् ॥
पुनः प्रजग्मुस्ता मत्ताः सुन्दरं रासमण्डलम् । पूर्णेन्दुचन्द्रिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम्
माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः । चम्पयूथीमल्लिकानां पुष्पैश्च सुरभीकृतम् ॥१५६
दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पञ्चयनं कर्त्तुमीश्वरी । गोपीर्नियोजयामास कौतुकेनच राधिका ॥
काश्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि । काश्चित् ताम्बूलसंञ्जेपुकाश्चिचन्दनघर्षणे
मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तञ्च सुन्दरी । ददौ कृष्णाय संप्रीत्या सस्मिता वक्रलोचना
काश्चिन्नियोजयामासुः कृष्णसङ्गीतकर्मणि । मृदङ्गमुरजादीनां वादनेषु च काश्चन ॥
एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह । विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम् ॥
पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसाञ्च तटेषु च । कन्दरे कुन्दरे रम्ये नदेषु च नदीषु च ॥१६२॥
अतीवनिर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे । वाञ्छितेपुच नारीणां त्रयस्त्रिशद्वनेषु च ॥१६३
भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्बकानने तथा । तुलसीकानने कुन्दवने चम्पककानने ॥१६४॥
निम्बारण्ये मधुवने जम्बीरकानने तथा । नारिकेलवने पूगवने च कदलीवने ॥ १६५ ॥
वदरीकानने विल्ववने नारिङ्गकानने । अश्वत्थकानने वंशवने दाड़िमकानने ॥ १६६ ॥
मन्दारकानने तालवने चूतवने तथा । केतकीकाननेऽशोकवने खर्जूरकानने ॥ १६७ ॥
आम्रातकवने जम्बूगहने शालकानने । कटकीकानने पद्मवने जातिवने मुने ॥ १६८ ॥
न्यग्रोधगहने घोरे श्रीखण्डकानने तथा । प्रह्वष्टकेसरवने सर्वतोऽपि विलक्षणे ॥१६९॥
एवं रेमे कौतुकेन कामार्त्तिस्त्रशद्दिवानिशम् । तथापि मानसम्पूर्णं न च किञ्चिद्बभूव ह॥
न कामिनीनां कामश्च श्रृङ्गारेण निवर्त्तते । अधिकं वर्द्धते शश्वद्यथाग्निर्घृतधारया॥१७१
जग्मुर्देवाः स्वगेहञ्च देव्यश्च मुनयस्तथा । ते सर्वे प्रशशंसुश्च विस्मयञ्च ययुर्मुदा ॥
गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते । दग्धाः कामाग्निनांशेन देव्यः श्रृङ्गारलालसाः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे रास-
क्रीड़ाप्रस्तावो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।

———

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

रासक्रीड़ावर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने । अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम्
काश्चिदूचुरहो कृष्णं सस्मिता वक्रलोचना । मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति

काश्चिदूचुरये कृष्ण स्वक्रोड़ेऽस्मांश्च कुर्विति ।
गृहीत्वा श्रीहरेः स्कन्धमारुरोह च काचन ॥ ३ ॥

उवाच काचिद्दर्पेण प्रमत्ता प्राणवल्लभम् । स्वकीयपीतवसनं परिधारय मामिति ॥ ४ ॥

उवाच काचिदीशन्तं सिन्दूरं देहि मामिति ।
उवाच काचित् प्राणेशं शीघ्रमागत्य साम्प्रतम् ॥ ५ ॥

कृत्वा कुन्तलसंस्कारं कुरु मे कवरीमिति । काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं वल्लवाय च
स्वाङ्गवेशविधायिन्यो भूपार्थं श्रुतिमूलतोः । उवाच काचित् कामेन परं सङ्केतपूर्वकम्

पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं सस्मिता मैथुनाय च ।
काचिज्जग्राह मुरलीं बलादाकृष्य माधवम् ॥ ८ ॥

जहार पीतवसनं कृत्वा नग्नञ्च कामिनी। कामिन्यः काश्चिदित्यूचुर्मानिन्यो मधुसूदनम्
अलक्तकद्रवं देहि पादयोर्नखरेषु च । उवाच काचित्प्रेम्णा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं कुरु पत्रावलीमिति । कृत्वानुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम्
माधवो राधया सार्द्धमन्तर्धानं चकार ह । अतीवनिर्जने स्थाने मुदा स्वेच्छामयोविभुः
कलामानप्रकारञ्च शृङ्गारञ्च चकार ह । पर्वते पर्वते रम्ये द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने ॥ १३ ॥
तटे तटे नदीनाञ्च सर्वजन्तुविवर्जिते । श्रीगोष्ठे रत्नशैले च वेलागङ्गातटेऽपि च ॥ १४ ॥
कालिन्दे च पुलिन्दे च मन्दिरे गन्धमादने । मनोहरे कुन्दवने कावेरीतीरनीरजे ॥१५॥
पुष्पभद्रापुलिनजे पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सर्वत्र रमणं कृत्वा राधावेशं विधाय च ॥

जगाम मलयद्रोणीं रम्याञ्चन्दनवायुना। शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तया सह॥

अतीवसुखुसम्भोगान्मूर्च्छां संप्राप्य राधिका।
कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा॥ १८॥
दृष्ट्वा तां मूर्च्छितां कृष्णो घनश्रोणिपयोधराम्।
विलुप्तवेशां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम्॥ १९॥

चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम्। वासयामासवसनं राधाया मेखलाम्बरम्
कवरीं रचयामास किञ्चिद्वामेनवङ्किमाम्। मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वेष्टिताम्

तस्याः कपाले सिन्दूरतिलकं सुन्दरं ददौ।
गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा॥ २२॥

सालक्तकांश्च नखरान् चित्रितान् पदपद्मयोः। नखैःकृत्रिमपद्मानि निर्ममे श्रोणिवक्षसोः
उत्थायाथ तया सार्द्धं जगाम ह सरोवरम्। नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम्
निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम्। हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुक्कुटकूजितम्॥२५॥
मधुलुब्धमधुभ्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम्। चारुणा कलशब्देन शब्दितं शश्वदेव हि॥

तत्र स्नात्वा जलक्रीड़ाञ्चकार ह तया सह।
जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च॥ २७॥

सहस्रदलपद्मे च गृहीत्वा माधवः स्वयम्। एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्थमेककम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवमीप्सितम्। स्वाङ्गं दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वरः
ततो गच्छन्तया सार्द्धं ददर्श पुरतो वटम्। अतीवोत्तुङ्गशाखाग्रमतिविस्तृतमेव च॥३०॥
मूले योजनपर्य्यन्तं छायया परिवेष्टितम्। उवास तत्र गोविन्दः केतकीवनसन्निधौ॥
पुष्पाक्तेन सुशीतेन वायुना सुरभीकृते। चित्रं रहस्यं सुचिरं पुराणञ्च पुरातनम्॥३२॥

प्रहर्षितश्च श्रीकृष्णः कथयामास राधिकाम्।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुङ्गवम्॥ ३३॥

आगच्छन्तञ्च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। न दृष्ट्वा हृदये रूपमीशस्य परमात्मनः॥ ३४॥
ध्यानाद्विरतमग्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत्। सर्वावयववक्रञ्च कृष्णं खर्वं दिगम्बरम॥३५

नाम्नाऽष्टवक्रं जटिलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तं तपोराशिमिवोत्थितम्
अहो किं वा ब्रह्मतेजो मूर्त्तिमन्तमिव स्वयम् । नखश्मश्रुसुदीर्घञ्च शान्तं तेजस्विनं परम

पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकन्धरम् ।
दृष्ट्वा हसन्तीं राधां तां वारयामास माधवः ॥ ३८ ॥

प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः । अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥
यत् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं शङ्करेण महात्मना ॥ ३९ ॥

अष्टावक्र उवाच ।

गुणातीत गुणाधार गुणवीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां वीज गुणायन नमोऽस्तु ते
सिद्धिस्वरूप सिद्ध्यंश सिद्धिवीज परात्पर । सिद्धिसिद्धगुणाधीशसिद्धानां गुरवे नमः
हे वेदवीज वेदज्ञ वेदिन् वेदविदां वर । वेदाज्ञातोऽसि रूपेश वेदज्ञेश नमोस्तु ते ॥४२
ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्र धर्मादीनामधीश्वर । सर्वं सर्वेश सर्वेश वीजरूप नमोऽस्तु ते ॥४३
प्रकृते प्राकृत प्राज्ञ प्रकृतीश परात्पर । संसारवृक्ष तद्वीज फलरूप नमोऽस्तु ते ॥

सृष्टिस्थित्यन्तवीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण ।
महाविराट् तरोर्वीज राधिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥
अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
शाखा प्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च ॥ ४६ ॥

संसारविफला एव प्रकृत्यंकुरमेव च । तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते ॥
तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च । सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय नमोऽस्तु ते ॥
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपत्यचरणाम्बुजे । प्राणांस्तत्याज योगेन तयोःप्रत्यक्ष एव च
पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः । तत्तेजश्च समुत्तस्थौ ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥५०॥
सप्ततालप्रमाणन्तु चोत्थाय च पपात ह । भ्रामं भ्रामञ्च परितो लीनं कृत्वा पदाम्बुजे ॥
अष्टावक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । परं निर्वाणमोक्षञ्च समाप्नोति न संशयः ॥
प्राणाधिको मुमुक्षूणां स्तोत्रराजश्च नारद । हरिणाहो पुरा दत्तो वैकुण्ठे शङ्कराय च

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
मुनिमोक्षणं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

राधाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

महामुने रहस्यञ्च श्रुतं ब्रह्मन् किमद्भुतम् । मृते मुनौ किञ्चकार श्रीकृष्णो भक्तवत्सलः॥

श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्त्तमुद्यतः । कृत्वा वक्षसि तद्देहं रुरोदोच्चैर्यथा नरः ॥

बाहुभ्याञ्च समाश्लिष्य पिपेषोद्रिक्तमोहतः। निर्गतं भस्मनिकरं शवाद्गात्राङ्गघर्षणात् ॥

रक्तमांसास्थिहीनं तच्छरीरञ्च महात्मनः । षष्टिर्वर्षसहस्राणि निराहारः कृतो मुने ॥

दग्धं लोहितमांसास्थि ज्वलता जठराग्निना । बाह्यज्ञानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः ॥

चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः ।

कृत्वाऽग्निकार्य्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः ॥ ६ ॥

ददौ चितायामग्निञ्च काष्ठं दत्त्वा शवोपरि ।

ज्वलितायां चितायाञ्च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः ॥ ७ ॥

तेद्देहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुभयो दिवि । बभूव पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गगनादहो ॥८॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम् । स्यन्दनञ्च मनोयायि वस्त्रमाल्यपरिच्छदम् ॥

पार्षदप्रवरैर्युक्तं श्रीकृष्णसदृशैर्वरैः । आविर्बभूव गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरेः ॥ १० ॥

अवरुह्य रथात्तूर्णं पार्षदप्रवरा हरेः । सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरौ ॥ ११ ॥

धृतवन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम् । रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥१२

गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी । बभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगदीश्वरम्

श्रीराधिका उवाच ।

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वावयववङ्क्रिमः । अतिखर्वोऽञ्जनाकारस्तेजीयानतिकुत्सितः ॥

कथं वा निर्गतं भस्म देहादस्य किमद्भुतम् ।

साक्षाद्विलीनं यत्तेजस्त्वत्पादाब्जेऽनलोपमम् ॥ १५ ॥
रथस्थः पुण्यवान् सद्यो गोलोकञ्च जगाम ह । स्वात्मारामस्य यद्धेतो रोदनं ते बभूव ह
त्वया कृतञ्च सत्कारमश्रुपूर्णेन चक्षुषा । सर्वं विवरणं तूर्णं संव्यस्य कथय प्रभो ॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे युगान्तरगतामपि ॥१८॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
रहस्यमष्टावक्रीयं विख्यातं सर्वतः प्रिये । पश्चाच्छ्रोष्यसि कालेन प्रसङ्गे विदुषांमुखात्
अष्टावक्रो मुनीन्द्रोऽपि विख्यातो भुवनत्रये । परिपूर्णं यद्यशसा जन्मना तज्जगत्त्रयम्
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा विमनस्का हरिप्रिया । उवाच मधुरं यत्नाच्छुष्ककण्ठौष्ठतालुका
राधिकोवाच ।
यत्तृषालोर्मनः पूर्णं न बभूव सुराम्बुधौ । स वितृप्तो भवति किं गोष्पदोदकपानतः ॥
वेदानां वेदवक्तॄणां विधातुर्जनकस्य च ।
महाविष्णोरीश्वरस्त्वं कोऽन्यो वक्तास्ति त्वत्परः ॥२३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तुष्टः कृष्णो बभूव ह । उवाच गोपनीयञ्च रहस्यं परमाद्भुतम् ॥
श्रीकृष्ण उवाच
शृणु कान्ते प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । श्रवणात् कथनाद्यस्य सर्वं पापं प्रणश्यति
महाविष्णोर्नाभिपद्माद्बभूव जगतां विधिः । ममांशस्य मत्कलया जलाकीर्णे जगत्त्रये
पुत्रा बभूवुश्चत्वारो ब्रह्मणो मानसात्पुरा । नारायणपराः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥
शिशवः पञ्चवर्षीया नग्ना अज्ञानिनो यथा । बाह्यज्ञानविहीनाश्च ब्रह्मतत्त्वविशारदाः ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवानेते चत्वार एव च ॥ २९॥
तानुवाच जगद्धाता सृष्टिं कुरुत पुत्रकाः। तेन तस्थुः पितुर्वाक्ये प्रययुस्तपसे मम॥३०
विधाता विमनस्कश्च तनयेषु गतेषु च। पितुर्दुःखाय प्रभवेत् पुत्रश्चेदवचस्करः ॥३१॥
ज्ञानेन निर्ममे पुत्रान् स्वाङ्गेषु च तपोधनान्।
वेदवेदाङ्गविज्ञांश्च ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो मरीचिर्भृगुरङ्गिराः । क्रतुर्वशिष्ठो वोढुश्च कपिलश्चासुरिःकविः

शङ्कः शङ्खः पञ्चशिखः प्रचेतास्ते तपोधनाः। बहुकालं तपस्तप्त्वा चक्रुःसृष्टिं तदाज्ञया
कलत्रवन्तस्ते सर्वे संसारं कर्त्तुमुन्मुखाः। बभूवुः पुत्रपौत्राश्च सर्वेषाञ्च तपस्विनाम् ॥
तदस्तु च कथा बह्वी मुनिवंशानुकीर्त्तनी। चार्वी पुष्पस्वरूपा च प्रकृतं शृणु सुन्दरि ॥
प्रचेतसः सुतः श्रीमानसितो मुनिपुङ्गवः। सकलत्रस्तपस्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३७॥
न बभूव सुतस्तस्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। तं सम्बोद्धुं बभूवाथ सत्या वागशरीरिणी

कथं त्यजसि प्राणांस्त्वं गच्छ शङ्करसन्निधिम्।
सिद्धं कुरु गृहीत्वा च मन्त्रं शङ्करवक्त्रतः ॥ ३९॥

मन्त्राधिष्ठातृदेवी ते सद्यः साक्षाद्भविष्यति। वरेणाभीष्टदेव्याश्च पुत्रस्ते भविता ध्रुवम्
श्रुत्वैतच्चरितं विप्रो जगाम शिवसन्निधिम्। योगिनामप्यगम्यञ्च शिवलोकं निरामयम्

सकलत्रो यथा योगी तुष्टाव योगिनां गुरुम्।
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ४२ ॥

असित उवाच।

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च। योगीन्द्राणाञ्च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन। मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते
कालरूपं कलयतां कालकालेशकारण। कालादतीत कालस्य कालकाल नमोस्तु ते ॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावनतत्पर। ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोस्तु ते ॥ ४७ ॥
इति श्रुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः। दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। वर्षमेकं हविष्याशी शङ्करस्य महात्मनः।
स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्। भवेद्धनाढ्यो दुःखीच मूको भवति पण्डितः

अभार्य्यो लभते भार्य्यां सुशीलाञ्च पतिव्रताम्।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधम् ॥ ५१ ॥

इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे। प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥५२

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे शिवस्तोत्रं समाप्तम्।

श्रीकृष्ण उवाच ।

समाकर्ण्य मुनेः स्तोत्रं भगवान् शङ्करः स्वयम् ।
उवाच ब्रह्मणः पुत्रं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ५३ ॥

शङ्कर उवाच ।

स्थिरो भव मुनिश्रेष्ठ जानामि तव वाञ्छितम् ।
पुत्रस्ते भविता सत्यं मदंशेन च मत्समः ॥ ५४ ॥

दास्यामि मन्त्रमतुलं सर्वेषाञ्च सुदुर्लभम् । इत्युक्त्वा च ददौ मन्त्रं तवैव षोड़शाक्षरम्
स्तोत्रं पूजाविधानञ्च कवचं परमाद्भुतम् । संसारविजयं नाम पुरश्चरणपूर्वकम् ॥५६॥
वरं दातुमिष्टदेवी प्रत्यक्षा भवितेति च। इत्युक्त्वा विरतो रुद्रः स तं नत्वा जगाम ह॥
जजाप परमं मन्त्रं सोऽसितः शतवत्सरम् । साक्षाद्भूत्वा वरस्तमै त्वयादत्तःपुरासति
पुत्रस्ते भविता सत्यं महाज्ञानोमुनेतित्र । वरं दत्त्वा त्वमगमो गोलोकं मम सन्निधिम्
कालेन च सुतस्तस्य शिवांशेन बभूव ह । ब्रह्मिष्ठो देवलो नाम्ना कन्दर्पसमसुन्दरः ॥
सुयज्ञनृपतेः कन्यां रत्नमालावतीं मुदा । तां सुन्दरीं विवाहेन जग्राह सर्वमोहिनीम् ॥
स्थाने स्थाने च रहसि शतवर्षं तया सह। स रेमे निपुणश्रेष्ठः स्त्रीणां रमणकर्मणि ॥
कालान्तरे स विरतो बभूव मुनिपुङ्गवः । सुखं सर्वं परित्यज्य धर्मिष्ठः श्रीहरिं स्मरन् ॥
उत्थाय रात्रौ शयनाद्विरक्तश्च तपोधनः । स ययौ तपसे कान्ते गन्धमादनपर्वते ॥६४

निद्रां त्यक्त्वा च तत्कान्ता न दृष्ट्वा स्वामिनं सती ।
विललाप भृशं शोकात् प्रदग्धा विरहाग्निना ॥ ६५ ॥

उत्तिष्ठन्ती निर्विशन्ती रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । तप्तपात्रे यथा धान्यं बभूव तन्मनस्तदा॥६६॥
आहारञ्च परित्यज्य प्राणांस्तत्याजसुन्दरी । चकार तत्सुतस्तस्याःकर्मनिर्हरणादिकम्
तपश्चकार स मुनिर्गन्धमादनगह्वरे । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च मम भक्तो जितेन्द्रियः ॥६८॥
तं ददर्श ह दैवेन रम्भा श्रृङ्गारलोलुपा । अतीव सुन्दरं शान्तं कन्दर्पमिव सुन्दरम् ॥

सा च तं कथयामास निर्जने समुपस्थिता ।
विधाय वेशं यत्नेन त्रैलोक्यचित्तमोहिनी ॥ ७० ॥

रम्भोवाच ।

निबोध साधो मद्वाक्यं कामिनीनां मनोहरम् ।
त्यक्त्वा कठोरं रहसि भज मां सुखदायिकाम् ॥ ७१ ॥

त्वं वरेषु वरः पृथ्व्यां वरारोहा स्वयं वरा । विदग्धाया विदग्धस्य दुर्लभो नवसङ्गमः
यज्ञं कुर्वन्ति भूपाला भारते स्वर्गहेतुकम् । स्वर्गभोगनिमित्तञ्च भोगसारा वयं मुने ॥
स्तनयोर्युग्मसूर्वोर्मे सुन्दरं मुखपङ्कजम् । हास्यभ्रूभङ्गसहितं दृष्ट्वा को न भवेत्सुखी ॥
स्त्रीरसः सुखसारश्च मुनीनामभिवाञ्छितः । रसिकासुखसम्भोगो निर्जने चातिदुर्लभः

देवो वा दानवो वापि गन्धर्वो वाथ राक्षसः ।
स्त्रीसुखेष्वप्यविज्ञेयो रम्भाया रतिवञ्चितः ॥ ७६ ॥
रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः ।
गात्रलोमप्रमाणाब्दं कुम्भीपाके वसेद् ध्रुवम् ॥ ७७ ॥

सत्यं तस्याश्च वधभाक् तच्छापेन प्रणश्यति । विधाता मोहिनीशापादपूज्यो भुवनत्रये
येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली । स्वामिपुत्रस्ववन्धूनां न तथाघातकं रुपा
परं प्रियञ्च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली । यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा
पुंश्चली हिंस्रजन्तुभ्यो नरघातिभ्य एव च । दुष्टा शश्वद्दयाहीना दुरन्ता प्रतिजन्मनि ॥
त्यज ध्यानं मुनिश्रेष्ठ भुंक्ष्वेदं तपसः फलम् । रहस्युपस्थितांमाञ्च गृहीत्वासुचिरंसुखम्
स रम्भावचनं श्रुत्वा तामुवाच भयाकुलः । हितं तस्य नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥

देवल उवाच ।

शृणु रम्भे प्रवक्ष्यामि वेदसारपरं वचः । कुलधर्मोचितं सत्यं ब्राह्मणानां तपस्विनाम्
धर्मोऽयं युक्तकाले च स्वयोषिति रतो द्विजः । सर्वत्र पूजितः शश्वदिहलोके परत्र च
ब्राह्मणःक्षत्रियो वैश्यो योरतःपरयोषिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि
इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥

ग्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना ।
त्यागे दोषः कामिनीनां शापभाक् पापभाग्गृही ॥ ८८ ॥

ब्रह्माजगद्विधातापि न विरक्तःकलत्रवान् । त्यागेदोषस्तत्कदाचिन्नास्माकंत्यक्तयोषिताम्
स्वभार्याञ्च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम् । यशोधनायुषांहानिर्भवेज्जीवन्मृतस्य च

भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम् ।
सुसम्पदा किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः ॥ ९१ ॥

निष्कामेन च वृद्धेन मया किन्ते प्रयोजनम् । सुवेशं सुन्दरं मातर्युवानं पश्य सुन्दरि ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसांवरा । उवाच भूयोवाक्यं तं त्रस्ता प्रस्फुरिताधरा

रम्भोवाच ।

चारुचम्पकवर्णाभः कन्दर्पसमसुन्दरः । तपःप्रभावात्सश्रीकः सुवेशः सम्मतः स्त्रियाः

त्वया विनान्यं कं यामि को वास्ति त्वत्परः पुमान् ।
पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति स्मरातुरा ॥ ९५ ॥
शीघ्रं मां भज विप्रेन्द्र दग्धां कामाग्निना सदा ।
कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतङ्गजः ॥ ९६ ॥

न चेच्छापं प्रदास्यामि वद वेदविदां वर । मां वा दारुणशापं वा सत्वरं स्वीकुरु प्रभो
दग्धाः प्राणामनो दग्धं स्वात्मा वा इतिसन्ततम् । नवश्रृङ्गारपीयूषपाननिर्वाणतांव्रजेत्

स्वान्तदुःखेन दुःखार्त्तो योऽयं शपति निश्चितम् ।
तं शापं खण्डितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः ॥ ९९ ॥

द्विजोरम्भावचःश्रुत्वा बभूवध्यानतत्परः । नोवाचकिञ्चिन्मौनस्थःसातं कोपाच्छशापह
हे वक्रचित्त ते विप्र सर्वावयववक्रिमम् । शरीरमञ्जनाकारं रूपयौवनवर्जितम् ॥ १०१॥
अतीवविकृताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम् । पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवतु निश्चितम् ॥
इत्युक्त्वा पुंश्चली कामात्कामलोकं जगाम सा । अचिरेण मुनीन्द्रश्च न ददर्श हरेः पदम्
पदारविन्दविरहात्समुद्विग्नो बभूव ह । स्वाङ्गञ्च दृष्ट्वा विकृतं पूर्वपुण्यविवर्जितम् ॥

कृत्वाऽग्निकुण्डं शोकेन प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ।
मया दृष्टो वरो दत्तो दिव्यज्ञानेन बोधितः ॥ १०५ ॥

आश्वासश्चकृतः प्रीत्या ततः शान्तो बभूव ह । अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्ट्वातूर्णं महामुनेः

अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम् ॥ १०६ ॥

मद्वाक्यात् मलयद्रोणीमिमामागम्य सत्वरः । षष्टिर्वर्षसहस्राणि चकार परमन्तपः ॥
तपोऽवसाने मद्भक्तो मया युक्तः कृतः प्रिये । सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥
सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जठराग्निना । त्यक्त्वाहारस्यान्तरञ्च भस्मपूर्णं तपो मुनेः ॥
आगतं मलयद्रोणिं मुनिर्हेतोर्मम प्रिये । अष्टावक्राच्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति ॥

एवम्भूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः ।
निष्कलः पुंश्चलीशापाद् ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा ॥ १११ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यञ्च महात्मनः । सुखदं पुण्यदं गूढं किं भूयः श्रोतुमर्हसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधाप्रश्ने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणः शापकारणकथनम् ।

श्रीराधिकोवाच ।

किमाश्चर्य्यं श्रुतं नाथ चरितं सुमनोहरम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम्
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः । स कथं कुलटाशापादपूज्यश्च बभूव ह॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मन्वन्तरे रैवतश्च सुचन्द्रो नृपपुंगवः ॥ तपस्वी वैष्णवश्रेष्ठो ज्ञानी परमधार्मिकः ॥ ३ ॥
स च पूर्वं तपः कुर्वन्नाजगाम मम प्रिये । इमाश्च मलयद्रोणीं भारतेषु मनोहराम् ॥४॥
तपश्चकार राजेन्द्रो वर्षाणाञ्च सहस्रकम् । जीर्णं तस्य शरीरञ्च कठोरेण तपस्विनः ॥५

वल्मीकाच्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता कृपानिधिः ।
आजगाम वरं दातुं तपःस्थानं सुनिर्जनम् ॥ ६ ॥

कमण्डलुजलेनैव मम देहोद्भवेन च। सिषेच तञ्च मन्त्रेण मया दत्तेन योगवित् ॥७॥

कमण्डलुजलस्पर्शादुत्थाय नृपतिः स्वयम्।

ननाम भक्त्या जगतां स्रष्टारञ्च पुरः स्थितम् ॥ ८ ॥

स तं नमन्तं राजानमुवाच कमलोद्भवः। वरं वृणिवति राजेन्द्र यत्ते मनसि वाञ्छितम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे परात्परम्। ममैव चरणे भक्तिं मदीयं दास्यमेव च ॥१०॥

कृपया च वरं ब्रह्मा दत्तवानभिवाञ्छितम्।

स च तत् पुरतस्तस्थौ कामदेवसमप्रभः ॥११॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रथमुत्तमम्। आकाशान्निपतन्तं वै शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥१२॥

तेजसाच्छादितं सर्वं सुप्रदीप्तं दिशो दश।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शतचक्रसमन्वितम् ॥ १३ ॥

अमूल्यरत्नरचितं विचित्रकलशोज्ज्वलम्।

मुक्तामाणिक्यहीराणां मालाजालैश्च राजितम् ॥१४॥

सद्रत्नदर्पणैर्दीप्तैरतीव सुमनोहरम्। भूषितं दिव्यवस्त्रैश्च श्वेतचामरकोटिभिः ॥१५॥

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम्।

मनोयायि महाश्चर्य्यं नानाचित्रेण चित्रितम् ॥१६॥

वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यै रत्नभूषणभूषितैः। चतुर्भुजैः श्यामलैश्च ज्वलद्भिः स्थिरयौवनैः ॥१७

पीतवस्त्रपरीधानैश्चन्दनागुरुचर्चितैः। दृष्ट्वा रथस्थान् देवांश्च ननाम नृपतिर्मुदा ॥१८॥

सहसा तस्य शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे चानकाश्च मनोहरम् ॥१९

ऋषयो मुनयः सिद्धाः प्रकुर्वन्तो मुदाशिषम्। प्रशशंसुः सुराः सर्वे राजानं हर्षनिर्भराः

राजा च पार्षदान्ध्यात्वा तद्रूपश्च बभूव ह।

पार्षदास्तं रथे कृत्वा नीत्वा जग्मुर्ममालयम् ॥२१॥

मदीयं पार्षदो भूत्वा स च तस्थौ ममान्तिके।

ततः स्वमन्दिरं यान्तं ददर्श मोहिनी विधिम् ॥२२॥

पुष्पोद्याने च रम्ये च पुष्पचन्दनवायुना। सद्यो मुमोह तं दृष्ट्वा प्रदग्धा मदनानलैः॥२३

विलोक्य वक्रनयना जुगोप सस्मितं मुखम् । सिन्दूरबिन्दुं दधती कस्तूरीबिन्दुना सह चारुचम्पकवर्णाभा सततं स्थिरयौवना । बृहन्नितम्बयुगला पीनश्रोणिपयोधरा ॥२५॥ शरत्पार्वणशुभ्रांशुप्रभामुष्टकरानना । सूक्ष्मवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ २६ ॥

त्रैलोक्यं मोहितुं शक्ता कटाक्षैरेव लीलया ।
अतीव कामिनी शश्वद्गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥२७॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी मूर्च्छां संप्राप वर्त्मनि ।
सन्निरीक्ष्य च तां ब्रह्मा जगाम श्रीहरिं स्मरन् ॥२८॥
सविकारं न हि प्राप ह्यात्मारामो जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकञ्च संप्राप ब्रह्मा च जगतां पतिः ॥२९॥

सकामा सा च कुलटा बभूव हतचेतना । दिवानिशञ्चिन्तयन्ती स्वप्ने ज्ञाने चतुर्मुखम् ॥ सर्वं जारं विसस्मार तत्याजाहारमीश्वरी । उत्तिष्ठन्ती निवसती शयनं कुर्वती क्षणम् ॥ तप्तपात्रे यथा शस्यं भ्रमत्येव यथा पथि । एतस्मिन्नन्तरे रम्भा विदग्धाप्सरसां वरा ॥

गच्छन्ती कामलोकं सा सकामा तेन वर्त्मना ।

दृष्ट्वा सहचरीं तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम् । अभिप्रायेण बुबुधे पप्रच्छ सस्मिता तदा ॥

रम्भोवाच ।

कथमेवंविधा त्वं हि त्रैलोक्यचित्तमोहिनी । वद शीघ्रं महाभागे रम्भाऽहं चेतनं कुरु ॥

समुद्दिश्य सकामा त्वं गच्छ त्वं कान्तमीप्सितम् ।
कुलटा सर्वसौभाग्या न वयं कुलपालिकाः ॥३५॥
सर्वे व्यग्रा इन्द्रियाणां सुखाय भुवनत्रये ।
यान्ति प्राणा यतः काले का लज्जा तत्र जीविनाम् ॥३६॥
न चात्मनः पुरः कश्चित् प्रियोऽस्ति भुवनत्रये ।
कान्ते पत्यौ स्वबन्धौ च स्नेहो यः स्वात्महेतुकः ॥३७॥
सम्बन्धः स्वात्मनो यावत्तावत् स्नेहोऽस्ति तत्र वै ।
येषु यन्मानसं शश्वत्तेषां प्राणास्त एव हि ॥३८॥

गच्छन्तीं कामलोकञ्च सकामां पश्य मां प्रिये ।
सह सख्या समालोच्य मनसा गच्छ तं प्रियम् ॥३९॥

निबद्ध्य नीवीं केशांश्च कृत्वा वेशमभीप्सितम् । मुनिमोहनबीजञ्च तन्मोहं कुरु मोहिनि
कथयस्व महाभागे वचनं हृदयङ्गमम् । रक्षात्मानं प्रभावञ्च स्त्रीजातीनां जगत्त्रये॥४१॥
स्वाभिप्रायश्च सुरतौ न प्रकाश्यः कदाचन । स्वान्तं कान्तंस्वानुरक्तम्पृथ्वीं सहचरीं विना
तस्माद्यत्नेन हृद्वाक्यं प्रकाश्यञ्च प्रिये प्रिये । अन्यथा चोपहासाय मरणायैव कल्पते ॥
तस्याश्च वचनं श्रुत्वासस्मिता सा सुलज्जिता । हृयञ्च कथयामास यद्धेतोस्तादृशीगतिः

मोहिन्युवाच ।

यावद् दृष्टो मया रम्भे निर्जने चतुराननः । तावन्मनो मेऽतिदग्धं शश्वन्मनसिजानलैः
न दत्तमात्मने भक्ष्यमन्तरे न हि रोचते । जानामि नाहमुदयं यामिनीशदिनेशयोः ॥४६
अधुना न हि भेदो मे सततं स्वप्नज्ञानयोः । मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्यालिङ्गनमेव च

क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्यन्ती नान्यथा प्रिये ।
कामज्वालाकलापैश्च स्वर्णाकारं कलेवरम् ॥४८॥

अनाहारेण चेदानीं बभूव दग्धशैलवत् । गन्तुं स्थातुं न शक्ताहं शयनं कर्तुमुद्यता ॥४९॥
धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः । कमुपायं करिष्यामि वद रम्भेति साम्प्रतम्

लज्जां वापि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयोः ॥५०॥

मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां वरा । तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम् ॥

रम्भोवाच ।

एवमेतदहो भद्रे भद्रस्य कारणं तव । सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणूपायं भयं त्यज ॥५२॥
कृत्वा वेशमपूर्वञ्च पूर्वमाराध्य मन्मथम् । तेन सार्धं स्वयं गत्वा मोहं कुरु च भामिनि
जितेन्द्रियाणां प्रवरं साक्षान्नारायणात्मकम् । विना कामसहायेन काशक्ताजेतुमीश्वरम्
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करे व्रज मोहिनि । सद्यःसाक्षात् स भवितादयालुर्योषितांप्रभुः

इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रवरा काममन्तिकम् ।
जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम् ॥५६॥

पुष्करे च तपः कृत्वा कामं सम्प्राप्य मोहिनी । जगाम तेन सार्धञ्च ब्रह्मलोकमनामयम्
ददर्श निर्जनस्थञ्च मोहिनी कमलोद्भवम् । तमेव मुग्धं कर्त्तुञ्च समारेभे पुरःस्थिता ॥
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ । सङ्गीतं मम सम्बन्धि भक्तानां चित्तमोहनम् ॥

विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा सङ्गीतमीप्सितम् ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो मुमोह साश्रुलोचनः ॥६०॥

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनी हृष्टमानसा । कलाप्रमाणं भावञ्च चकार तत्र लीलया ॥
स्वाङ्गं सन्दर्शयामास स्मेरभ्रूभङ्गपूर्वकम् । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः ॥
विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह । प्रदाय तस्य दानञ्च विरतः श्रीहरिं स्मरन् ॥
विज्ञाय ब्रह्मणो भावं शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । हतोद्यमा सा तुष्टाव कामं कामप्रदं वरम्

मोहिन्युवाच ।

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशञ्च मानसम् । तदेव कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥

स्वयमात्मा हि भगवान् ज्ञानरूपो महेश्वरः ।
नमो ब्रह्मन् जगत्स्रष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥ ६६ ॥

स्रष्टिः सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि । जगत्साध्य दुराराध्य दुर्निवार नमोऽस्तु ते
सर्वाजित जगज्जेता जीवजीव मनोहर । रतिवीज रतिस्वामिन् रतिप्रिय नमोऽस्तु ते

शश्वद्योषिदधिष्ठान योषित्प्राणाधिक प्रिय ।
योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्बन्धो नमोऽस्तु ते ॥६९॥

पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय । सुगन्धिवातसचिव मधुमित्र नमोऽस्तु ते ॥
शश्वद्योनिकृताधार स्त्री सन्दर्शनवर्धन । विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते

अकृपा येषु ते नाथं तेषां ज्ञानविनाशनम् ।
अनूहरूपभक्तेषु कृपासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥७२॥

तपस्विनाञ्च तपसां विघ्नबीजावलीलया ।
मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्त नमोऽस्तु ते ॥७३॥

तपः साध्याश्च राध्याश्च सदैवं पाञ्चभौतिकाः । पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चवाण नमोऽस्तते

मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः। विरराम नम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा॥

उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम्।
पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥७६॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत्।
अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद् ध्रुवम् ॥७७॥

चेष्टां न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम्। भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः।

वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥७८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधाप्रश्ने मोहिनीकृतस्तोत्रप्रसङ्गो नामैकत्रिंशोऽध्यायः।

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्ममोहिन्योः संवादः।

श्रीकृष्ण उवाच।

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह। चकार शरसन्धानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम्॥

मन्त्रपूतं महास्त्रञ्च चिक्षेप पितरं मुदा। बभूव चञ्चलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः॥

क्षणं निरीक्षणं चक्रे मोहिन्यास्ये पुनः पुनः।
ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन् ॥३॥

बुबुधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च। शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधविह्वलः ॥४॥

हे काम यौवनोन्मत्त मूढैश्वर्य्येण गर्वितः। भविता दर्पभङ्गस्ते गुरोर्मे हेलनादिति ॥५॥

हतोद्यमो जगामाशु मन्मथो मधुना सह। ब्रह्मणः शापभीतश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः॥

इत्युवाच जगद्धाता मोहिनीं मदनातुराम्।
चतुर्वक्त्रञ्च पश्यन्तीं सस्मितं वक्रचक्षुषा ॥७॥

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्फलं कर्म चात्र ते ।
ज्ञातस्तवाभिप्रायश्च नाहं योग्योऽस्य कर्मणः ॥८॥
वेदे जुगुप्सितं कर्म तदेव कर्त्तुमक्षमः । वेदकर्त्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे ॥९॥
अकीर्त्तिर्वेदवक्तुश्च निन्द्यश्च किमतः परम् ।
उपस्थिता च या योषिदत्याज्या रागिणामपि ॥ १० ॥
श्रुतौ श्रुतमितित्याज्या सर्वदेवतपस्विनाम् । अहोसर्वैः परित्याज्या पुंश्चलीच विशेषतः धनायुःप्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी । स्वकार्य्यतत्परा शश्वत्परकार्य्यविनाशिनी निष्ठुरानवद्यातिभ्यः सर्वापद्बीजरूपिणी । विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथाभवेत् परद्रोहाद्यथा सम्पत्कुलटाप्रेम तत्समम् । सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विपद्बीजासदैव हि यो विश्वसेत्तां संमूढो विपत्तस्य पदेपदे । त्वञ्च रूपवतीधन्या वञ्चिता कामुकैःसदाः
यूनां सम्पत्स्वरूपा च विषतुल्या तपस्विनाम् ।
त्वमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्थिरयौवना ॥ १६ ॥
तवैव कर्मयोग्यश्च युवानं पश्य सुन्दरि । त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुरु विदग्धाया विदग्धेनसङ्गमो गुणवान्भवेत् । जरातुरोऽहंवृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिःपुंश्चलीषु मे । अये वत्सेगच्छ शीघ्रं विहाय पितरञ्चमाम् नाम्नाऽहञ्च जगत्स्रष्टा तस्मात्तव पिता सदा । मन्मथञ्चन्द्रमित्रञ्च जयन्तं नलकूवरम् ॥
स्वर्वैद्यौ चन्द्रतनयं दितिपुत्रांश्च सुन्दरान् ।
कामशास्त्रेषु निष्णातान् रतिकर्मविशारदान् ॥ २१ ॥
या मां यासि हि तांस्त्यक्त्वा सा विदग्धा च कामुकी ।
सदा सम्भोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान् ॥ २२ ॥
स्त्री चेत् प्रयाति पुरुषं विपरीतं विडम्बनम् । सर्वेषाञ्चैव रत्नानां स्त्रीरत्नं दुर्लभं परम् स्वयंप्रार्थयतेस्वामी न तुस्वामिनमेव च । योषिज्जातिषुधिक्ताश्चस्वयंयाःसमुपस्थिताः
भवेद्द दूरं स्वल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम् ।
नित्यं पुमान् स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम् ॥ २५ ॥

लोकाचारेषुवेदेषुन स्त्रीयातिपरप्रियम् । स्ववस्तुभुङ्क्तेयः कालेशास्त्रोक्तविधिपूर्वकम् स पूज्यो न भवेत् पूज्यो यद्गतिः परवस्तुषु । कः कस्य शत्रुरखले निशामय जगत्त्रये स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः । वेदोक्ताचरणे सर्वं मित्रञ्च जगतां जगत् कृते वेदविरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद् ध्रुवम् । वेदोक्तं कृतवन्तञ्च हरिस्तुष्टो दिवानिशम् ॥

हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन् रुष्टे भवो रिपुः ।

कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा ॥ ३० ॥

स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः । स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायणविनिर्मिता ॥ दुःशीलापुंश्चली निन्द्यासुशीला च पतिव्रता। पतिव्रतास्तु त्रिविधाःपुंश्चलीषुच योषितः तासामेवंविधानास्ति स्वयंयातिपरप्रियम् । स्त्रीजातीनाञ्चमध्ये च कास्त्येवंकुलकज्जला भवे रत्यैस्वयं दृष्ट्वावेशं कृत्वाप्रयातितम् । क्षोभितायदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम् वैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम् । इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता विरराम च

वक्तुं समुद्यता सा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥ ३५ ॥

मोहिन्युवाच ।

ज्ञातं सर्वं जगद्धातश्चरितं तव साम्प्रतम् । त्वया निबोधितानीतिर्मनो मे न स्थिरंभवेत्

भूतं त्वयि विशिष्टञ्च यावद् दृष्टः क्षणे भवान् ।

त्वद्वक्त्रदृष्टिमात्रेण सर्वे जाराश्च विस्मृताः ॥ ३७ ॥

देहं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता । निसिषेच च मां रम्भाप्रददौ मन्त्रमीदृशम् तदा कामसहायेन त्वत्समीपं समागता । स मधुस्तव शापेन स जगाम हतोद्यमः ॥ अहो गन्तुमशक्ताहं त्वया यद्यपिभर्त्सिता । सर्वाङ्गेष्वेव मे जाड्यंबभूव साम्प्रतंविभो

कृपां कुरु कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि ।

तवाश्लेषणमात्रेण विज्वराहं सुनिश्चितम् ॥ ४१ ॥

त्वमेवजगतां धाता कुलटाऽहञ्च कर्मणा । सन्तो गर्वं न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीविनः कश्चित् प्रयाति यानेन वहन्ति तञ्च केचन । करं गृह्णाति नृपतिः कर्मणा ददति प्रजाः ॥ कश्चित् सिंहासनस्थश्च नृपपात्रश्च कश्चन । कर्मणा वाहकाः केचित् केचिद्वाहनपालकाः

शूकरीजठरं कश्चित् संप्रयाति स्वकर्मणा। कश्चिच्छच्याश्च जठरं तव पुत्राश्च केचन
केचित् कृत्वा हरेर्भक्तिं कर्मणा तस्य पार्षदाः।
केचिद्भवन्ति कृमयो विष्ठायां दैवदोषतः ॥ ४६ ॥
स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिच्चस्वस्वकर्मणा। केचित्प्रयान्तिनरकं विण्मूत्रे तत्रपच्यते
कर्मणाकश्चिदिन्द्रेन्द्रःसुराणां प्रवरःस्वयम्। केचित्सुरानराःकेचित् केचिच्चक्षुद्रजन्तवः
केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णश्रेष्ठा महीतले। केचिद्भूपा वैश्यशूद्राः केचिच्चम्लेच्छजातयः
केचित्स्वकर्मणा प्राज्ञा ज्ञानेनसर्वदर्शिनः। केचिन्मूर्खाःकेचिदन्धाः स्वाङ्गहीनाश्चकेचन
केचिच्छास्त्रं वोधयन्ति शिष्यवर्गान् स्वकर्मणा।
केचित् पठन्ति सर्वार्थं जानन्ति गुरुवक्त्रतः ॥ ५१ ॥
भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्थावरजङ्गमे। तपस्वी नवघाती च त्वञ्च ब्रह्मा च कर्मणा
काचित्स्वकर्मणासाध्वीपूज्येह च परत्र च। काचिद्वेश्यातदाहारंभुंक्ते कृत्वाङ्गविक्रयम्
स्वर्वेश्याहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता। येषामालिङ्गनेनैव कर्मणां खण्डनं भवेत् ॥
मनः स्वभाववीजञ्च स्वभावः कर्मवीजकः। तत्कर्म फलवीजञ्च सर्वेषां जनको हरिः
फलं ददाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम्। सर्वेभ्यो वलवान्नित्यं कर्मरूपी जनार्दनः
कुतो हेतोर्निन्दिताऽ त्वयैव भर्त्सिता कथम्।
जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य पादाब्जं द्रष्टुमागता ॥ ५७ ॥
स्वप्ने यस्य पदद्वन्द्वं न हि पश्यन्तियोगिनः। तमीश्वरंपतिं कर्त्तुमिच्छया स्वयमागता
गत्वा हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येहपरत्र च। कस्यचित्पादरजसायशसाभान्तियोषितः
इत्युक्त्वा मोहिनीशीघ्रं गत्वोवास हरेःपुरः। स्वयं विधाता जगताञ्चकम्पेकुलटाभयात्
सस्मिता वक्रनयना कामभावं चकार ह। स्वाङ्गञ्च दर्शयामास कामबाणप्रपीड़िता ॥
एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगवित्। आविर्भूय पञ्चवाणान्निचिक्षेप च ब्रह्मणि
संमोहनं समुद्वेगं वीजस्तम्भितकारणम्। उन्मत्तवीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम् ॥
एतान् प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम्।
किङ्करान् प्रेषयामास संमोहाय पितुर्मुदा ॥ ६४ ॥

वसन्तं कोकिलालीश्च गन्धवातं मनोहरम् । नियुज्याभ्यन्तरं गत्वा तद्विकारं चकारह
पुंस्कोकिलः कलं रावमुवाच तत्समीपतः । षट्पदः सुन्दरं सूक्ष्मं जुगुञ्जे पुरतः स्थितः
शश्वद्ववौ गन्धवहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये । सन्ततं मुदितस्तत्र बभ्राम च मधु स्वयम्
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो बभूव जगतां विधिः । ददर्श मोहिनीभावं प्रहस्य च पुनः पुनः ॥
अतीववक्रनयना कामास्त्रहतचेतना । विधाता बुबुधे सर्वं सर्वबन्धनिबन्धनम् ॥ ६९ ॥

नियन्तुं न मनः शक्तः सस्मार श्रीहरिं भिया ।
तुष्टाव मनसा कृष्णं शान्तं हृत्पङ्कजस्थितम् ॥७०॥

द्विभुजं मुरलीहस्तं हरिं पीताम्बरं परम् । अतीवकमनीयञ्च किशोरं स्थिरयौवनम् ।
रत्नालङ्कारभूषाढ्यं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥७१॥

ब्रह्मोवाच ।

रक्ष रक्ष हरे माञ्च निमग्नं कामसागरे । दुष्कीर्तिजलपूर्णे च दुष्पारे बहुसङ्कटे ॥ ७२ ॥
भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे । अतीवनिर्मलज्ञानचक्षुःप्रच्छन्नकारणे ॥७३॥
जन्मोर्मिसङ्गसहिते योषिन्नक्रौघसङ्कुले । रतिस्रोतःसमायुक्ते गम्भीरे घोर एव च ॥
प्रथमामृतरूपे च परिणामविषालये । यमालयप्रदेशाय मुक्तिद्वारातिविस्मृते ॥ ७५ ॥

बुद्ध्या तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयम् ।
स्वयञ्च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥ ७६ ॥
मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि ।
सन्ति विश्वेश विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥ ७७ ॥

न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः । तथापि नः स्पृहा कामे तद्भक्तिव्यवधायके ॥
हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु । त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय

इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः ।
ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत्सस्मार मामिति ॥८०॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
स चैवाकर्णविषये न निमग्नो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८१ ॥

मम मायां विनिर्जित्य स ज्ञानं लभते ध्रुवम् । इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
ब्रह्ममोहिनीसंवादो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

————

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति मोहिन्याः शापः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

कृत्वा ब्रह्मा हरेः स्तोत्रं तस्थौ तस्याः समीपतः ।
मनोमत्तगजेन्द्रञ्च कामासक्तं निवारयन् ॥ १ ॥

दिव्यज्ञानाङ्कुशेनैव मया दत्तेन राधिके । उवाच मोहिनी तञ्च परिहासपरं वचः ॥ २ ॥

मोहिन्युवाच ।

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तंभवेन्मनः । करोत्याकृष्यसम्भोगं यः स एवोत्तमो विभो

ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्य्या संप्रेषितो हि यः ।
पश्चात् करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः ॥ ४ ॥
पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्त्तया च यः ।
तया न लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमानहो ॥५॥

गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत् स्त्रियमुपस्थिताम् । व्रजेत् परत्र नरकमपूज्यश्च भवेदिह
नष्टश्रीर्भ्रष्टरूपश्च भ्रष्टबुद्धिर्भवेद् ध्रुवम् । स सद्यः क्लीवतां याति ब्रह्मशापेन योषितः ॥
उत्तिष्ठ जगतीनाथ पारं कुरु स्मरार्णवे । निमग्नां दुस्तरे घोरे कर्णधारभयानके ॥ ८ ॥
अतीवनिर्जनस्थाने सर्वजन्तुविवर्जिते । सुगन्धिवायुना रम्ये पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥ ६ ॥

सततं त्वन्मनस्कामां दासीं जन्मनि जन्मनि ।
क्रीणीहि रतिपुण्येनामूल्यरत्नेन सत्वरम् ॥१०॥

इत्युक्त्वा मोहिनी सद्यो जगत्स्रष्टुश्च ब्रह्मणः ।
विचकर्ष वरं वस्त्रं सस्मिता कामह्विला ॥ ११ ॥
विज्ञाय समयं धाता तामुवाच भयातुरः । पियूषतुल्यं वचनं वरं विनयपूर्वकम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं सत्यं सारं हितं स्फुटम् ।
न कुरु त्वञ्च त्रैलोक्ये स्त्रीजातीनामपत्रपाम् ॥१३॥
त्यज मामम्बिके पुत्रं वृद्धं निष्काममेव च । त्वत्कर्मयोग्यरसिकं युवानं पश्य सुस्मिते
निषेकाल्लभते पत्नी गुरुभर्त्तुः शुभाशुभम् । मन्त्रशिल्पमपत्यञ्च सर्वमेतन्न यत्नतः ॥१५॥
त्वया सह मम रते निबन्धो नास्ति सुव्रते । क्षुद्रं महद्वा यत् कर्म सर्वं दैवनिबन्धकम्
इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं स्मरन्तं मत्पदाम्बुजम् । विचकर्ष पुनर्वेश्या कामेन हतचेतना ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं स्थानं तत् सुमनोहरम् । आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो वशिष्ठः क्रतुरङ्गिराः । भृगुर्मरीचिःकपिलो वोढुःपञ्चशिखोरुचिः
आसुरिश्च प्रचेताश्च स्वयं शुक्रो वृहस्पतिः । उतथ्यःकरकःकण्वःकश्यपो गौतमस्तथाः
सनकश्च सनन्दश्च कर्दमश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् योगिनां परमो गुरुः ॥
शातातपः पिप्पलश्च शङ्कुः शङ्खः पराशरः । मार्कण्डेयो लोमशश्च मृकण्डुश्च्यवनस्तथा
दुर्वासाश्च जरत्कारुरास्तीकश्च विभाण्डकः । ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजोवामदेवश्चकौशिकः
दृष्ट्वैतांश्च तपोनिष्ठानागतांश्च मुनीश्वरान् । तत्याज मोहिनी शीघ्रं व्रीड़याकमलोद्भवम्
तत्रोवास जगद्धाता तद्धामपार्श्वतश्च सा । प्रणेमुर्मुनयस्तञ्च भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥२५
आशिषं युयुजे ब्रह्मा वासयामास तान् विभुः । तेषु मध्ये प्रजज्वालयथातारासु चन्द्रमा
पप्रच्छुर्मुनयो देवं कथमेषा तवान्तिके । स्ववेश्यानाञ्च प्रवरा मोहिनीत्येवमेव च ॥२७॥
श्रुत्वा मुनीनां वचनमुवाच तान् प्रजापतिः । स्त्रीजातीनाञ्च वचनं लज्जाच्छादनमेव च

ब्रह्मोवाच ।

अपूर्वं नृत्यगातञ्च चिरं कृत्वा शुभावहा । उवासेयं परिश्रान्ता यथा कन्या पितुः पुरः
इत्युक्त्वा जगतां धाता जहास मुनिसंसदि । जहसुर्मुनयः सर्वे सर्वज्ञास्तत्र राधिके ॥

सर्वं रहस्यं विज्ञाय जगत्स्रष्टुश्च मानसम्। सद्यश्चुकोप कुलटा हास्यव्याजेन संसदि
सर्वाङ्गकम्पमाना सा कुलटा कुटिलानना। रक्तपङ्कजनेत्रा च कोपप्रस्फुरिताधरा॥३२॥

उत्थाय च सभामध्ये तेषाञ्च पुरतः स्थिता।
संबोध्योवाच ब्रह्माणं मृत्युकन्या यथा रुषा॥ ३३॥

मोहिन्युवाच।

अये ब्रह्मन् जगन्नाथ वेदकर्ता त्वमेव च। किं वा वेदप्रणिहितं कर्म किं तद्विपर्य्ययम्॥

विचारं मनसा स्वेन कुरु वेदविदां गुरो!।
स्वकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम्॥ ३५॥

निर्मिताहमीश्वरेण स्ववेश्या सर्वगामिनी। सतां कर्मविरुद्धं यत्तदत्यन्तविडम्बनम्॥

दासीतुल्यां विनीताञ्च दैवेन शरणागताम्।
यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम्॥ ३७॥

अचिराद्दर्पभङ्गं ते करिष्यति हरिः स्वयम्। निबोध वचनं ब्रह्मन्वेश्यायाश्च तु साम्प्रतम्

तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा।
भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम्॥ ३९॥
भविता वार्षिकी पूजा देवतानां युगे युगे।
तव माघ्याञ्च संक्रान्त्यां न भविष्यति सा पुनः॥ ४०॥

कल्पान्तरेऽत्र कल्पे वा देहे देहान्तरेऽत्र वा। पुनः पूजा न भविता या गतासा गतैवच
इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं जगाम मदनालयम्। तेन सार्द्धं रतिं कृत्वा बभूव विज्वरा पुनः
पश्चात् सा चेतनां प्राप्य विललाप भृशं पुनः। अयं कथं मया शप्तो जगद्विधिरतिप्रियः
स्ववेश्यायां गतायाञ्च मुनयोदुःखिता भृशम्। स्वयंविधाता जगताञ्चकम्पे नतकन्धरः
उपायं मुनयस्तस्मै ददुः कल्याणकारिणः। शरणं व्रज वैकुण्ठमित्युक्त्वा ते गृहान् ययुः
ब्रह्मा जगाम शरणंमम मूर्त्यन्तरं परम्। शान्तं तं कमलाकान्तं श्यामं नारायणाभिधम्
गत्वा विषण्णवदनः प्रणम्य च चतुर्भुजम्। तत्रोवास जगत्कर्त्ता नातिदूरे समीपतः॥
रहस्यं कथयामास शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। दीनबन्धुं दयासिन्धुं विपत्तारणकारणम्॥

श्रुत्वा रहस्यं तत्सर्वं प्रहस्योवाच तं विभुः ।
सत्यं सारं हितं वाक्यं जगताञ्च सुखावहम् ॥ ४६ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्वयं त्वं वेदविदसि विदुषाञ्च गुरोर्गुरुः । त्वया कृतञ्च यत् कर्म इह केन न तत् कृतम्
स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीजरूपिणी । स्त्रीणां विड़म्बनेनैव प्रकृतेश्च विड़म्बनम् ॥
न तद्भारतवर्षञ्च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् । क्रीड़ाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्तवेन्द्रियनिग्रहः ॥ ५२ ॥

यदि तद्भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ।
स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः ॥ ५३ ॥

त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदिति विड़म्बतः । भवेदेव हि दुःखार्ता शापं दद्याच्च तं ध्रुवम् ।

विहाय स्वकलत्रञ्च यो गृह्णाति परस्त्रियम् ।
लोभात् कामसुखाद्वापि सोऽधमो नात्र संशयः ॥ ५५ ॥
पातयित्वा सच पतेद्दश पूर्वान् दशापरान् ।
त्यक्त्वा स्वस्वामिनं या च परं गच्छति कामतः ॥ ५६ ॥

न पुमान्न च वेश्याच कुलस्त्री तत्र दुष्यति । उपायेनच या साध्यं करोति परपूरुषम् ॥
सा तिष्ठत्येवान्धकूपे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । स्ववेश्या च दिवं याति सततं कुलधर्मतः ॥
ध्रुवंभवेत् सोऽपराधी तस्या अप्यवमानतः । तमुपायं करिष्यामि शप्तो यत्र विशुध्यति
क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनश्च भवार्णवे । एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदाजगाम हरेः पुरः ।

द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकन्धरः ॥ ६० ॥

द्वारपाल उवाच ।

अन्यब्रह्माण्डाधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम् । द्वारे तिष्ठन्महाभक्तस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः
द्वारपालवचः श्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ । द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टावागत्य भक्तितः ॥
स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राश्रुतैरहो । स्तुत्वोवासाज्ञया विष्णोःकृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम्
नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान् । आगन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम् ॥
एतस्मिन्नतरे तत्र वृन्दावनविनोदिनि । आजगामातिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखः स्वयम् ॥

दिव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाव निगूढमतिसुन्दरैः। स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो॥
तदनन्तरयोरग्रे भक्त्या शतमुखः स्वयम्। जगद्विधौ सभायाञ्च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे॥
आजगामातिब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरेःपुरः। सहस्रवदनःश्रीमान् भक्त्या नम्रात्मकन्धरः
स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो। तञ्च पप्रच्छसर्वेषां ब्रह्माण्डानाञ्च ब्रह्मणाम्

वार्तां विषयिणाञ्चैव सुराणाञ्च क्रमेण च॥ ६६॥

चतुर्मुखस्य तान् दृष्ट्वा दर्पभङ्गो बभूव ह। आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः॥

अन्यान् स दर्शयामास ब्रह्माण्डस्थान् विधीन् हरिः।
दृष्ट्वा च कृपया तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम्॥ ७१॥
यावन्ति गात्रलोमानि सन्ति नारायणस्य मे।
तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्मणः सन्ति सन्ततम्॥ ७२॥

नारायणं प्रणम्याशु जग्मुस्ते स्वालयं प्रति। स मेने विधिरात्मानमत्यल्पं विषयाधिपम्
पप्रच्छ प्रणतं विष्णुर्लज्जानम्रंचतुर्मुखम्। वद तत् किमिदं दृष्टं स्वप्नवद्भवताधुना॥ ७४
नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्तवांस्तदा। भूतं भव्यं भविष्यञ्च तव मायासमुद्भवम्

इत्येवमुक्त्वा स विधिस्तस्थौ संसदि लज्जया।
सर्वान्तर्यामी भगवान् तस्योपायं विनिर्ममे॥ ७६॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
मोहिनीशापब्रह्मदर्पभङ्गो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जाह्नव्या जन्मवृत्तान्तः।

श्रीकृष्ण उवाच।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः। सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम्
व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः। स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रञ्च संदधत्॥ २॥

त्रिशूलपट्टिशकरो बिभ्रत् खट्वाङ्गमुत्तमम्। सद्रत्नसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा ॥ ३॥
वाहनादवरुह्याशु भक्तिनम्रात्मकन्धरः। प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास भक्तितः ॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्च नम्रकन्धराः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सङ्गीतं शङ्करो जगौ। कृत्वाऽतीव सुतालञ्च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥

आवयोश्च गुणाख्यानं राससम्बन्धि सुन्दरम्।
समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥ ८ ॥

यत्र कण्ठैकतानेन चैकमानेन चारुणा। पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥ ९ ॥
गमकेनातिदीर्घेण मदेन मधुरेण च। भवेति दुर्लभं सृष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥१०
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः पुनः पुनः। तदेव श्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्राप्य विचेतनाः।
बभूव रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये। रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधातृहरिपार्षदाः ॥ १२ ॥
नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवःस्वयम्। जलपूर्णञ्च वैकुण्ठं दृष्ट्वा त्रस्तोऽहमीश्वरि
गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वांश्च तादृशीरिति। तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्ववाहनभूषणा
तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः। स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्यचतुर्दिशि
तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम्। शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा।

मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥ १६ ॥

कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो। यस्याश्च स्पर्शवायोश्चसम्पर्केणविनश्यति
किं वा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोःफलम्। किमुतस्नानजन्यञ्चकथयामि निरूपणम्
सर्वतीर्थात्परं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्त्तितम्। वेदोक्तञ्चतदेवास्याःकलांनार्हतिषोडशीम्
भगीरथेन चानीता तेन भागीरथीस्मृता। गामागता स्रोतसोंऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्त्तिता
जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुना तोयकोपतः। तस्यकन्यास्वरूपा सा जाह्नवीतेनकीर्त्तिता

भीष्मः स्वयं वसुर्जातस्तस्यां सा तेन भीष्मसूः ॥ २२ ॥

धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा। ममाज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी
प्रधानराधया स्वर्गेसाच मन्दाकिनीस्मृता। योजनायुतविस्तीर्णाप्रस्थेचयोजनास्मृता

क्षीरतुल्यजला शश्वदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी। वैकुण्ठाद् ब्रह्मलोकञ्च ततः स्वर्गं समागता ॥
स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा। सा धारालकनन्दाख्या लवणोदेनमिश्रिता
शुद्धस्फटिकसङ्काशा बहुवेगवती सती। पापिनां पापशुष्केन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥
अतो सागरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी। वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा

अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम्।
आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥ २६ ॥

गङ्गासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम्। आब्रह्मलोकं संलंघ्य रथस्थाश्चनिरापदः
दैवात्पुरा प्राक्तनेन मग्ने चेत् कृतपातकैः। लोमप्रमाणवर्षञ्च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥३१॥
ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः। अति स्वल्पेन कालेन कालव्यूहश्च विभ्रताम्
ततःपुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते। संप्राप्य निश्चलांभक्तिं भवन्ति हरिरूपिणः
मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत्। पदप्रमाणवर्षञ्च तेषाञ्च नरके स्थितिः ॥
ततस्तेषाञ्च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी। ददाति मुक्तिं तेभ्योऽपि क्रमेण च कृपामयी

जन्मपुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते।
स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः ॥ ३६ ॥
यात्रां कृत्वा तु यः शुद्धौ स्नातुं याति सुरेश्वरीम्।
पद्मप्रमाणवर्षञ्च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

गङ्गां प्राप्यानुषङ्गेण स्नातिचेत् समलो नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते
कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते। तस्याञ्च विद्यमानायांकःप्रभावःकलेरहो
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम। तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः

अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता।
पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा ॥ ४१ ॥

आकरामूल्यरत्नानां मणीन्द्राणाञ्च सन्ततम्। नागकन्याश्चतत्तीरैःक्रीडन्ति स्थिरयौवनाः
स्वयं देवी च वैकुण्ठे वेष्टयित्वा च सन्ततम्। सहस्रयोजनाप्रस्थे दैर्घ्ये च लक्षयोजना
अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम। नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम् ॥

इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्मपुण्यदम् । ब्रह्मणश्च प्रतीकारो माहिनीशापतः शृणु ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
जाह्नवीजन्मप्रस्तावो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणो गोलोकगमनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः । दृष्ट्वा गङ्गाञ्च सर्वेषां मम मायाञ्च मेनिरे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रन्ते भविष्यति चतुर्मुख । अत्र स्नात्वाभिशप्तस्त्वंपूतो भव ममाज्ञया

त्वं चेत् सत्यं स्वयं पूतः स्पर्शं वाञ्छन्ति तानि च ।
वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्वाणि सततं मुने ॥ ३ ॥

तथापि शापमुक्तस्त्वमत्र प्रकृतिहेलनात् । अहङ्कारश्च सर्वेषां पापबीजममङ्गलम् ॥ ४ ॥

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममालयपरात्परम् ।
प्रकृत्यंशां मङ्गलदां तत्र प्राप्स्यसि भारतीम् ॥ ५ ॥

प्रकृतिं भज कल्याणसृष्टिबीजस्वरूपिणीम् । अहो कल्पान्तपर्य्यन्तं तपस्तप्तं त्वयाधुना
तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्याभिशापतः । यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति ॥
त्वमेव जगतां धाता स्वात्मारामश्च योषितः । सर्वरूपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः ॥
तदा ममाज्ञया ब्रह्मन् स्नात्वा च जाह्नवीजले । शीघ्रं जगाम गोलोकंमांप्रणम्यजगद्गुरुः
ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः स्वालयं मुदा । सुनिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः ।
विधिरागत्यगोलोकंसंप्राप्यभारतींसतीम् । सर्वविद्याधिदेवींतां मद्वक्त्राब्जविनिर्मिताम्
वागीश्वरीञ्च संप्राप्य ब्रह्मा प्रमुदितः स्वयम् । कामास्त्राणाञ्चव्यापारमनुमेनेस्वयंविभुः

तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
क्रीडां चकार भगवान् स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने ॥ १३ ॥
रतिं चिरतरं कृत्वा विरराम स्वयं विधिः । वागीश्वरीमुवाचेदं त्वं वै ब्रह्मा च कर्मणा
काचित् स्वकर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौवना ।
तवैव कर्मयोगश्च युवानं पश्य सुन्दरि ॥ १५ ॥
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् । जरातुरोऽहंवृद्धश्चतपस्वीवैष्णवो द्विजः
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे । आजगाम ब्रह्मलोकं पुनरेव निजालयम् ॥
ददृशुर्ब्रह्मलोकस्थस्तां देवीं कौतुकान्विताम् । अतीवसुन्दरींरम्यांशुभ्रवर्णाञ्चसस्मिताम्
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पक्वबिम्बप्रभामुष्ट दीप्तौष्ठाधरपल्लवाम् ॥ १६ ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभिताम् ॥ २०॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन कर्णमूलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥२१
वह्निशुद्धांशुकं सूक्ष्मं बिभ्रतीं नवयौवनाम् । अतीव कमनीयाञ्च पीनश्रोणिपयोधराम् ॥
वीणापुस्तकहस्ताञ्च व्याख्यामुद्राकरां वराम् । ते च निर्मञ्छनंकृत्वाचक्रुः परममङ्गलम्
पुरीं प्रवेशयामासुर्ब्रह्माणं भारतीं मुदा । ब्रह्मा तया सह क्रीड़ां चकार स दिवानिशम्
अतीव सुखसम्भोगे निमग्नः सततं मुदा । गूढ़ं सर्वपुराणेषु किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

प्राणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी । भूयोऽपि परिपप्रच्छ कौतुकान्मानसं पुरा ॥२६

श्रीराधिकोवाच ।

ब्रह्मा कथं न जग्राह वेश्यां स्वयमुपस्थिताम् ।
न कर्मक्षेत्रे रहसि फलदाता च कर्मणाम् ॥ २७ ॥
उपस्थितायास्त्यागे च महान् दोषो हि योषितः ।
ज्ञात्वा देव विधाता स कथं तत्याज मोहिनीम् ॥ २८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । पाद्मकल्पस्य वृत्तान्तमुवाच परमेश्वरीम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तान्तमीप्सितम् । अकथ्यंगोपनीयञ्च महतामभिनिन्दितम्
एकदा च प्रजाःस्रष्टुं विधाता प्रेरितो मया । ससर्ज मनसा पुत्रान्ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
सनकञ्च सनन्दञ्च सनातनमनुत्तमम् । सनत्कुमारं वोढुञ्च कविं पञ्चशिखं विभुम् ॥३२

अमितं कपिलं सिद्धं सिद्धान्ममकलोद्भवान् ।
तान् नग्नान् पञ्चवर्षायान् पिता स्रष्टुं जगाद ह ॥ ३३ ॥

प्रजाः स्रष्टुं प्रेरकञ्च जनकं तेऽवमन्य च । प्रजग्मुस्तपसे तूर्णं ममार्चनपरायणाः ॥३४
तदा रुष्टो जगद्धाता पुनः पुत्रान् विनिर्ममे । रुद्रानेकादश वरान् रुदतो भीमविग्रहान् ॥

तस्मिन् प्रयुज्य तरसा पुनः पुत्रान् विनिर्ममे ।
योगी योगेन मां ध्यात्वा स्वात्मारामः स्वविग्रहे ॥ ३६ ॥

वशिष्ठं पुलहञ्चैव क्रतुमाङ्गिरसं तथा । भृगुमत्रिं पुलस्त्यञ्च दक्षं कर्दममेव च ॥३७॥
मरीचिञ्च विनिर्माय प्रजाः स्रष्टुं नियुज्य च । प्रहृष्टमानसः पुत्रं कन्यैकाञ्च ससर्ज ह॥
कृष्णस्य कामिनः पुत्रः कामदेवो बभूव ह । कन्या षोड़शवर्षीया रत्नभूषणभूषिता ॥

उवाच पुत्रं स विधिः सुदीप्तं पुरतः स्थितम् ।
दुर्निवार्य्यं मत्कलांशं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्त्रीपुंसोः क्रीड़नार्थाय मुदा त्वञ्च विनिर्मितः ।
हृदि योगेन सर्वेषामधिष्ठानं करिष्यसि ॥ ४१ ॥

संमोहनं समुद्वेगं वीजस्तम्भितकारणम् । उन्मत्तवीजं जलदं शश्वच्चेतनहारकम् ॥४२
प्रगृह्यैतान्मया दत्तान् सर्वसंमोहनं कुरु । दुर्निवार्य्यो मम वराद्भव वत्स भवेषु च ॥
वाणान् दत्त्वैवमुक्त्वा च प्रहृष्टश्च जगद्विधिः । दृष्टोवाच दुहितरं वरं दातुं समुद्यत ॥

एतस्मिन्नन्तरे कामो मनसालोच्य मन्त्रणाम् ।
कर्त्तुं शस्त्रपरीक्षाञ्च वाणांश्चिक्षेप ब्रह्मणि ॥ ४५ ॥

मन्त्रपूतैश्च वाणैश्च दुर्वार्य्यैः स्मरणेन च । अतिवृद्धो महायोगी मूर्च्छितो हतचेतनः ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शाग्रे च कन्यकाम् ।
तां संभोक्तुं मनश्चक्रे सा दुद्राव भिया सती ॥ ४७ ॥
दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हृतचेतनम् ।
जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातॄणाञ्च तपस्विनाम् ॥ ४८ ॥
तेषां समीपे संस्थाप्य तमूचुः पितरं क्रुधा । हितं तथ्यञ्च वेदोक्तं नीतिसारं परंवचः ॥

ऋषय ऊचुः ।

अहो किमेतज्जनककर्मतेति विगर्हितम् । नीचानां चरितं यत्तत्करोषि त्वं जगद्विधे ॥
पश्यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिव परस्त्रियम् । ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परत्रेह जितेन्द्रियाः ॥
त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि ।
कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुतौ श्रुता ॥ ५२ ॥
गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नीच या सती । पत्नीच भ्रातृसुतयोर्मित्र पत्नीच तत्प्रसूः
प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नी श्वश्रूः स्वकन्यकाः ।
जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा ॥ ५४ ॥
स्वाभीष्टसुरपत्नीच धात्रिकान्नप्रदायिका । गर्भधात्री स्वनाम्नाच भयात्त्रातुश्च कामिनी
एता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः । एतास्वपिचसर्वासु न्यूनता नास्ति कासु च
कन्यादातान्नदाता च ज्ञानदाताभयप्रदः ।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः ॥ ५७ ॥
एता वहन्ति ये मूढा य एतान् जनकानपि ।
पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ५८ ॥
तानन्धकूपे संस्थाप्य दूरतो यमकिङ्कराः । कुर्वन्ति ताड़नं शश्वत्पुरीषं पाययन्ति च ॥
त्वमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च ।
स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम् ॥ ६० ॥
अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस । न कुर्मो भस्मसात्कर्तुं शक्ताश्चजनकं वयम्
गुरादोर्षसहस्राणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः । सर्वघ्नं तं विनिघ्नन्ति नीतिज्ञाःस्वगुरुंविना

घ्नन्तं यदि सर्वस्वं शपन्तं निष्ठुरं गुरुम् । साधवस्तंन निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वभक्तितः

ये द्विषन्ति च निन्दन्ति गुरुमिष्टं सुरात्परम् ।

पच्यन्ते तेऽन्धकूपे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ६४ ॥

पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताड़नैः । सर्पप्रमाणकीटैश्च दंशिताश्च दिवानिशम् ॥६५

इत्येवमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम् । सर्वं भवति दैवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम् ॥

उन्मुखा मुनयः सर्वे बभूवुश्च स्वकर्मणि । ब्रह्मा शरीरं सन्त्यक्तुं क्रीड़या च समुद्यतः ॥

योगेन भित्वा षट्चक्रं सर्वान् प्राणान्निरुध्य च ।

ब्रह्मरन्ध्रं समानीय तत्याज स्वेन वर्त्मना ॥ ६८ ॥

मनसा श्रीहरिं स्मृत्वा नमस्कारं चकार ह । न मे मनः परद्रव्ये भविता लोलमीश्वर ॥

प्राणत्यागात् परं दुःखमयशश्च यशस्विनाम् ।

बभूव हृदि कृत्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥ ७० ॥

कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः । योगेन देहन्तत्याज सा प्रलीनाचब्रह्मणि ॥

मृतं तातञ्च भगिनीं दृष्ट्वाच मुनिपुङ्गवाः । सस्मरुः श्रीहरिंकोपात् स्वात्मारामंविलप्यच

नारायणो मदंशश्च कृपयागत्य सत्वरम् । ब्रह्माणं जीवयामासब्रह्मज्ञानात् सुताञ्च ताम्

ब्रह्मा पुरो हरिं दृष्ट्वा वरं वव्रे स्ववाञ्छितम् ।

भक्तिं त्वच्चरणे शश्वन्निश्चलामनपायिनीम् ॥ ७४ ॥

ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिः । प्रबोधवचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम् ॥७५

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्येऽहं मुखमुत्तोल्य साम्प्रतम् ।

त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयज्वररूपिणीम् ॥ ७६ ॥

सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाप्युपद्रवः । क्षुद्राणाञ्चैव महतां भवन्त्येव स्वकर्मणा ॥

सर्वेषामपि सर्वेभ्यः स्वकर्म बलवत्तरम् । तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्मसंततम्

केचित् कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम् । कृतं कर्म परं भुक्त्वाहरिपादाब्जचेतसः ॥

कुकर्मणश्चापकीर्तिस्ततो लज्जा भवेद् ध्रुवम् । सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्रनिर्मलं यशः ॥

कालेन रजसा देहो बलरूपं शुभाशुभम्। कीर्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहश्चापयशो विधे॥
ऋणव्रणापवादाश्च जन्तूनां यान्ति कालतः। महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन॥

सदापकीर्तिर्वसति परस्त्रीषु च वस्तुषु।
तस्मात्तेनैव गृह्णन्ति सन्तः स्वक्लेशकारणे॥ ८३॥

स्मर मामन्तरे ब्राह्मे मदीयं विषयं कुरु। अतस्तेन मनो लोलं भविता परवस्तुषु॥८४
योषिद्रूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी। लीलया कुरुतेमोहं स्वात्मारामस्य सन्ततम्
नानामुद्राश्रये देशे रागिणं सन्ततं रतिः। स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालये शुचौ॥
श्रोणिवक्त्रस्तनं तासां कामदेवालयं सदा। तस्मात्तेनहि पश्यन्ति सन्तोहि धर्मभीरवः

को धर्मः किं यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च किं तपः।
किं बुद्धिर्विद्या दानञ्च परस्त्रीषु च यन्मनः॥ ८८॥

इहाप्यपयशो दुःखं नरकेषु परत्र च। वासः प्रहारस्तेषाञ्च ताड़नैः कृमिभक्षणैः॥८९॥
दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः। परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति सन्ततं मुदा॥
उत्तमा मत्पदाम्भोजं सत् कर्म मध्यमा सदा। स्मरन्ति शश्वदधमाः परस्त्रीसेवनंमुदा
विपत्तिः सन्ततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः। विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु॥९२
दैवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हरिं स्मरन्। दृष्ट्वा परसुवर्णञ्च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः॥
सततं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः। यक्ष्मव्याधिज्ञानहानिलोकनिन्दाभयेनच

तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः।
योगिनो योगचिन्तासु वेदार्थेषु च वैदिकाः॥ ९५॥

साध्व्यश्च पतिसेवासु गृहस्था गृहकर्मसु। विषयेषु विषयिणो मद्भक्ता मम सेवने॥९६
एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः। वेदोक्ताचरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः॥९७

सर्वे नित्यं प्रशंसन्ति शश्वत्सन्मार्गगामिनम्।
हालिका अपि निन्दन्ति कुवर्त्मगामिनं विधे॥ ९८॥

भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः। अद्य प्रभृति जीवन्तं निविष्टं मद्वरेण च॥९९॥
मदीयविषये बाह्ये मयादत्तं कुरु प्रियम्। अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्तां विघ्नविनाशिनीम्

कन्या भवतु मे ब्रह्मन् कामदेवस्य कामिनी। रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः। जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनविनोदनः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृष्णसंवादो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

हरदर्पभङ्गवर्णनम्

श्रीराधिकोवाच।

एतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम्। कथं स कुलटाशापादपूज्यः संबभूव ह ॥१॥
कथं तस्य दर्पभङ्गश्चकार कमलापतिः। कथयस्व सर्ववीजं सर्वेषामीश्वरः स्वयम् ॥२॥

श्रीनारायण उवाच।

रासेश्वरीवचः श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः। निगूढमितिहासञ्च तां वक्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा वरं वरम्।
सृष्टिं नानाविधां कृत्वा विधाता स बभूव ह ॥ ४ ॥

तपसां फलदाता च सर्वेषां शास्तिकृत् प्रभुः। आत्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्वो बभूव ह
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्वपर्य्यन्तमुन्नतिः। इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया ॥६॥
येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः। विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताहमेव च॥७
प्रथमे ब्रह्मणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः। शङ्करस्य च पार्वत्याश्चन्द्रस्यच रवेस्तथा॥
वह्नेर्दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरेः प्रिये। क्रमेण दर्पभङ्गञ्च कथयामि निशामय ॥९॥
क्षुद्राणां महताञ्चैव येषाङ्गर्वो भवेत् प्रिये। एवंविधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च॥

श्रीनारायण उवाच।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।

पप्रच्छ राधा यत्नेन सन्त्रस्ता भयविह्वला ॥ ११ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह । त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा ॥१२

कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन । दर्पहाभयद प्राणदानैककारणेश्वर ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

येन भूतं गर्वचूर्णं श्रुतं त्रिजगतां विधेः । अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते ॥

स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्त्ता जगताञ्च यः । तेजसा मत्समः पूर्णा ज्ञानेन च गुणेन च

ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं श्रृणु प्रिये ॥ १६ ॥

युगषष्टिसहस्राणि तपस्तप्त्वा दिवानिशम् । भूत्वाच मत्कलापूर्णा बभूव मत्समोविभुः

तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह । सूर्य्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः ॥१८

ध्यायं ध्यायञ्च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमतिसुन्दरम्

शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥२०

जपन्तं स्वात्मनात्मानं श्वेताब्जवीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूड़ं परात्परम्

स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकातरम् ॥

अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसम्पदाम् । ददाति सर्वं सर्वेभ्योवाञ्छितंकल्पपादपः

यो यं वाञ्छतितं तस्मै वरंदत्त्वा वरेश्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्वलीलया

एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च । केदारे च कठोरेण वर्षमेकं दिवानिशम् ॥

नित्यं याति तत्समीपं कृपया च कृपानिधिः । वरं दातुं यथाभीष्टं न जग्राहासुरो वरम्

वर्षान्ते शङ्करः शश्वत्तस्थौ तत् पुरतः स्वयम् । वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं नस क्षमः

सर्वैश्वर्य्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम् ।

दैत्यः किञ्चिन्न गृह्णाति परितः शूलपाणिनः ॥ २८ ॥

ध्यायमानं तत्पदाब्जं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः । अयाचितारं निश्चेष्टं रुरोद प्रेमविह्वलः ॥

अतीव रोदनात्तस्य ध्यानभङ्गो बभूव । ददर्श पुरतः साक्षाद्दातारं सर्वसम्पदाम् ॥३०॥

यन्मायया वरं वव्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम् । हस्तं दध्रेच यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च

ओमित्युक्त्वा प्रयातन्तं दुद्राव दैत्यपुङ्गवः ।

मृत्युञ्जयो मृत्युभयाद् दुद्राव त्रासविह्वलः ॥ ३२ ॥

पपात डमरुस्तस्य व्याघ्रचर्म मनोहरम् । दिगम्बरो दश दिशो भेजे दानवभीतये ॥३३॥

न हन्ति तञ्च कृपया भक्तञ्च भक्तवत्सलः । दुष्टानुसारं साधुश्च न करोति कदाचन ॥

साधवोघ्नन्तिघ्नन्तञ्च भृत्यंपुत्रं प्रियांविना । प्रबोधितुं न शक्तश्चस्वात्मानं कृपयासमम्

शिवः स्वमृत्युंमत्वा च भीतश्चनिरहङ्कृतः । समारं स्मारञ्च मां भद्रेमामेव शरणंययौ

दृष्ट्वा स्वाश्रममायान्तं शुष्कण्ठोष्ठतालुकम् ।

हे हरे रक्ष रक्षेति जपन्तं भयविह्वलम् ॥ ३७ ॥

संस्थाप्यतत्समीपे च स दैत्यो बोधितोमया । पृष्टश्च सर्ववृत्तान्तमुवाच मां क्रमेणच

तदा ममाज्ञया तूर्णं वञ्चितो माययासुरः । दत्त्वा स्वमूर्ध्नि हस्तञ्च सद्यो भस्म बभूवह

तदासिद्धाः सुरेन्द्राश्चमुनीन्द्रा मनवोमुदा । तुष्टुवुर्मां सुभक्त्या च लज्जयालज्जितःशिवः

बभूवः चूर्णस्तद्गर्वौ जगाम बोधितो मया । वरं ददाति वरदस्ततो वध्यो ह्यहं शिवः ॥

अथ गर्वान्वितो रुद्रो हन्तुं त्रिपुरमुल्वणम् । मत्वा मनसि संहर्त्ता सर्वेषां जगतामिति

कोऽयं पतङ्गवद्दैत्य इति मत्वा ययौ रणम् । विहाय शूलं मद्दत्तं मदीयकवचं परम् ॥

चिरं बभूव समरं वर्षमेकं दिवानिशम् । न कोऽपि जेतुं कं शक्तो द्वौ समौ समरे तदा

पृथिव्याञ्च रणं कृत्वा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये ।

अत्यूर्ध्वञ्च समुत्तस्थौ पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥ ४५ ॥

उत्तस्थौ शङ्करस्तूर्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः । बभूव तत्र युद्धञ्च मासमेकं निराश्रये॥४६॥

अस्त्राणि चापं चिच्छेद शङ्करस्यासुरो बली । रथं बभञ्ज दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शङ्करात्

जघान मुष्टिना रुद्रो दानवेन्द्रं प्रकोपतः । वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवापसः॥४८॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपाद्दानवपुङ्गवः । शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास भूतले॥४९॥

सरथे पातिते रुद्रे देवा देवर्षयो भिया । तुष्टुवुर्मां परित्राहि कृष्णेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥

हरः सस्मार मामेव निर्भयो भयकारणम् । तुष्टाव भक्त्या स्तोत्रेण मया दत्तेन सङ्कटे

तदाहं कलया शीघ्रं वृषरूपं विधाय च ।
शयानं शङ्करं धृत्वा विषाणाभ्यामुरुक्रमम् ॥ ५२ ॥

ददौ तस्मै स्वकवचं स्वशूलमरिमर्दनम् । प्राप्य तद्दानवस्थानमत्यूर्ध्वञ्च निराश्रयम् ॥
मया दत्तेन शूलेन जघान त्रिपुरं हरः । मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाव व्रीड़ितः पुनः ॥ ५४ ॥
सद्यः पपात दैत्येन्द्रश्चूर्णीभूतश्च भूतले । देवता मुनयः सर्वे तुष्टुवुः शङ्करं मुदा॥५५॥
तत्याज शङ्करो दर्पं विघ्नवीजन्ततो विभुः । ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु ॥

ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम् ।
मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः ॥ ५७ ॥

मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः । बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५८॥
निद्रादयःशक्तयो यास्ताःसर्वाः प्रकृतेःकलाः । वागधिष्ठातृदेवी या सा स्वयंचसरस्वती
मम कल्याणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः । परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः ॥
सर्वैश्वर्य्याधिदेवी मे सर्वगोलोकवासिनः । प्राणाधिष्ठातृदेवीत्वं सदा प्राणाधिकामम

गोपाङ्गनास्तव कला अतएव मम प्रियाः ।
मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६२ ॥

तेजःस्वरूपः सूर्य्यश्च प्राणा मे वायवःस्मृताः। जलाधिदेवो वरुणः पृथिवीमे मलोद्भवा
मम शून्यो महाकाशो मदनो मानसोद्भवः । इन्द्रादयः सुराःसर्वे मत्कलांशांशसम्भवाः
एतानि सृष्टिवीजानि महदादीनि चैव हि । सर्वेषां वीजरूपोऽहं स्वयमात्मा निराश्रयः
जीवो मे प्रतिविम्बश्च कर्मभोगाधिकारकः । अहंसाक्षी निरीहश्च न भोगी सर्वकर्मसु
भक्तध्यानार्थदेहोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च । प्रकृतिः पुरुषोऽहञ्च एक एव परात्परः
इत्येवं कथितंर ाधे शिवदर्पविमोचनम् । सृष्टिवीजञ्च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम्॥६८॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । पप्रच्छ राधिकादेवी निगूढमभिवाञ्छितम्

श्रीराधिकोवाच ।

भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ सर्ववीज सनातन । वद मे वाञ्छितं प्रश्नं सर्वसन्देहभञ्जनम् ॥७०॥

सर्वज्ञानाधिदेवश्च शङ्करः सर्वतत्त्ववित् ।
मृत्युञ्जयः कालकालो भगवान् तत्समो महान् ॥ ७१

कथं विभूतिगात्रश्च पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः । दिगम्बरो जटाधारी नागसङ्घातभूषणः ॥
वृषेणाटति देवेन्द्रो विहाय वरवाहनम् । न बिभर्ति कथं रत्नं सारनिर्माणभूषणम् ॥७३॥
वह्निशुद्धांशुकं त्यक्त्वा धत्ते शार्दूलचर्मकम् । धत्ते धत्तूरकुसुमं पारिजातं विहाय च ॥
नास्तिरत्नकिरीटेच्छा जटायांप्रीतिरुत्तमा । दिव्यलोकं परित्यज्य श्मशानेषुस्पृहाविभोः

चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमानि च ।
त्यक्त्वा स्पृहा विल्वपत्रे विल्वकाष्ठानुलेपने ॥ ७६ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामि व्यासेन कथय प्रभो । श्रोतुं कौतूहलं नाथ वर्द्धते मे मनःस्पृहा ॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे कृत्वा राधां स्ववक्षसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

युगषष्टिसहस्राणि तपः कृत्वा महेश्वरः । विरराम पूर्णतमो ध्यात्वा मां मनसा मुदा
एतस्मिन्नन्तरे माञ्च ददर्श पुरतः स्थितम् । अतीव कमनीयाङ्गं किशोरं श्यामसुन्दरम्
अहोऽनिर्वचनीयञ्च दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् । न बभूव वितृष्णश्च लोचनाभ्यां त्रिलोचनः ॥
पश्यन्निमेषरहित इति मत्वा स्वमानसे । भक्त्युद्रेकान् महाभक्तो रुरोद प्रेमविह्वलः ॥
सहस्रवदनोऽनन्तो भाग्यवांश्च चतुर्मुखः । बहुभिर्लोचनैर्दृष्ट्वा तुष्टाव बहुभिर्मुखैः ॥८३॥

पश्यामि किं वा किं स्तौमि संप्राप्य नाथमीदृशम् ।
आस्यैकेन लोचनाभ्यां चतुर्द्धा स पुनः पुनः ॥ ८४ ॥

स्वमानसे कुर्वतीदं शङ्करे च तपस्विनि । तद् बभूव चतुर्वक्त्रं पूर्वेण सह पञ्चमम् ॥८५
एकैकवक्त्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिभिः । बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥
स्तवनादधिकप्रीतिः शिवस्य दर्शने मम । तेनाधिकानि तस्यैव बभूवुर्लोचनानि च॥८७
चक्षूंषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्वरूपिणः । सत्वं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय ॥

सत्वांशेन दृशा शम्भुः पश्यन् पाति च सात्विकान् ।
राजसेन राजसिकान् तामसेन च तामसान् ॥ ८९ ॥

चक्षुषस्तामसात् पश्चाल्ललाटस्थाद्धरस्य च ।
संहारकाले संहर्त्तुरग्निराविर्भवेत् क्रुधा ॥ ६० ॥
कोटितालप्रमाणश्च सूर्य्यकोटिसमप्रभः । लेलिहानो दीर्घशिखस्त्रैलोक्यं दग्धुमीश्वरः
विभूतिगात्रः स विभुः सतीसंस्कारभस्मना । धत्ते तस्या अस्थिमालांप्रेमभावेनभस्मच
स्वात्मारामो यद्यपीशस्तथापि पूर्णमब्दकम् । सतीशवंगृहीत्वा च भ्रामं भ्रामं रुरोद ह
प्रत्यङ्गं चापि तस्याश्च पपात यत्र यत्र ह । सिद्धपीठस्तत्र तत्र बभूव मन्त्रसिद्धिकृत् ॥
तदा शवावशेषञ्च कृत्वा वक्षसि शङ्करः । पपात मूर्च्छितो भूत्वा सिद्धिक्षेत्रे च राधिके
तदा गत्वा महेशं तं कृत्वा क्रोड़े प्रबोध्य च ।
अददद्दिव्यतत्त्वञ्च तस्मै शोकहरं परम् ॥ ६६ ॥
तदा शिवश्च सन्तुष्टः स्वं लोकञ्च जगाम ह । मूर्त्यन्तरेण कालेन तांसंप्रापप्रियांसतीम्
दिग्वस्त्रधारी योगेननेच्छानित्येपरैविभोः । जटास्तपस्याकालीनाधत्तेऽद्यापिविवेकतः
न चेच्छा केशसंस्कारे स्वाङ्गवेशेन योगिनः । समता चन्दने पङ्के लोष्ट्रे रत्ने मणीश्वरे
गरुड़द्वेषिणो नागाः शङ्करं शरणं ययुः । विभर्ति कृपया स्वाङ्गे तानेव शरणागतान् ॥
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः । त्रिपुरस्य वधे पूर्णं मत्कलांशसमुद्भवः ॥१०१॥
पारिजातादिकं पुष्पं सुगन्धि चन्दनादिकम् । मयिसंन्यस्यतेष्वेवंप्रीतिर्नास्ति कदाचन
धत्तूरे तत्सदा प्रीतिर्विल्वपत्रानुलेपने । गन्धहीने प्रसूने च योगीष्टे व्याघ्रचर्मणि ॥
दिव्यलोके दिव्यतल्पे जनतायां न तन्मनः ।
श्मशानेऽतीव रहसि ध्यायते मामहर्निशम् ॥ १०४ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं समञ्च मन्यते शिवः । ममानिर्वचनीयेऽत्र रूपे तन्मग्नमानसम् ॥
ब्रह्मणः पतने नापि शूलपाणेः क्षयो भवेत् । तस्यायुषः प्रमाणञ्चनाहंजानामि का श्रुतिः
ज्ञानं मृत्युञ्जयः शूलं धत्ते मत्तेजसा समम् । विना मया न कश्चित्तं शङ्करं जेतुमीश्वरः
शङ्करः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः । त्र्यम्बके मन्मनःशश्वन्नप्रियोमेभवात्परः
ब्रह्माण्डनिकरं छन्नं मया मन्मायया सदा । स कम्पति हरं शश्वन्न च तं मोहितुं क्षमः
न संवसामि गोलोके वैकुण्ठे तव वक्षसि । सदाशिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः ॥

स्वरसिद्धं सुतानेन पञ्चवक्त्रेण शङ्करः । शश्वद्गायति मद्गाथां तेनाहं तत्समीपतः ॥१११
स्रष्टुं शक्तोहि नष्टुञ्च भ्रूभङ्गलीलयापि यः । ब्रह्माण्डनिकरंयोगान्नयोगी शङ्करात् परः
दिव्यज्ञानेनं यःस्रष्टुं नष्टं भ्रूभङ्गलीलया । मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शङ्करात् परः
मम भक्तिञ्च दास्यञ्च मुक्तिञ्च सर्वसम्पदः । सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शङ्करात्परः
पञ्चवक्त्रेण मन्नाम यशो गायत्यहर्निशम् । मद्रूपं ध्यायते शश्वन्न भक्तः शङ्करात् परः॥

अहं सुदर्शनं शम्भुस्तेजसा च वयं समाः ।
ब्रह्मा स्रष्टा च योगेन नास्माभिस्तेजसा समः ॥ ११६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शङ्करस्य यशोऽमलम् । तथाप्यस्य दर्पभङ्गंकिं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
शङ्करप्रशंसावर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हरनिर्माल्यशापप्रसंगवर्णनम् ।

राधिकोवाच ।

एवम्भूतस्यचविभोः सर्वेशस्य महात्मनः । न शस्तं कथमुच्छिष्टं ब्रूहि सन्देहभञ्जन ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
सनत्कुमारो वैकुण्ठमेकदा च जगाम ह । ददर्श भुक्तवन्तञ्च नाथं नारायणं द्विजः ॥३॥

तुष्टाव गूढैः स्तोत्रैश्च प्रणम्य भक्तितो मुदा ।
अवशेषं ददौ तस्मै सन्तुष्टो भक्तवत्सलः ॥ ४ ॥

प्राप्तमात्रेण तत्रैव भुक्तं तेनैव किञ्चन । किञ्चिद्ररक्ष बन्धूनां भक्षणाय च दुर्लभम् ॥ ५॥
सिद्धाश्रमे च यद्दत्तं गुरवे शूलपाणिने । भक्त्युद्रेकाच्च तत्सर्वं भुक्तञ्च प्राप्तिमात्रतः ॥६॥

भुक्त्वा सुदुर्लभं वस्तु ननर्त प्रेमविह्वलः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो मुदान्वितः ॥७

गायन्मम गुणान् भक्त्या सुकण्ठःपञ्चवक्त्रतः।

रागभेदैकतानेन तालमानेन सुन्दरम् ॥ ८ ॥

पपात डमरुर्हस्तात् शृङ्गञ्च व्याघ्रचर्म च। स्वयं निपत्य पश्चाच्च रुदन् मूर्च्छामवाप ह॥

अतीव कमनीयं तद्रूपं ध्यात्वैकमानसः। सहस्रदलमध्यस्थं मां पश्यन् हृत्सरोरुहे॥१०

एतस्मिन्नन्तरे देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। मुदाजगाम शीघ्रं तत्प्रसन्नवदनेक्षणा ॥११॥

रुदन्तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा निपतन्तश्च भक्तितः। प्रहस्य वार्तां पप्रच्छ कुमारं शूलपाणिनः

सर्वं तां कथयामास कुमारः संपुटाञ्जलिः। श्रुत्वा चुकोपसा देवीशिवं प्रस्फुरिताधरा

तां शप्तुमुद्यतां देवीमुत्थाय च त्रिलोचनः। बोधयामास विविधं तुष्टाव संपुटाञ्जलिः।

श्रुत्वा मनोहरं स्तोत्रं न शशाप शिवं शिवा। दुष्टं चक्रे तदुच्छिष्टमभक्ष्यं विदुषामपि

न लोकानां प्रभावश्च तपःसौभाग्यतेजसाम्। ब्रह्माण्डे सर्वसंहर्ता चकम्पे पार्वतीभये॥

उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परं वचः। गणप्रसूः सकोपा च रक्तपङ्कजलोचना ॥१७

अहो तपःप्रभावश्च तेजसश्च न जीविनाम्। स ब्रह्माण्डस्य संहर्ता चकम्पे शैलकन्यका

पार्वत्युवाच।

त्वं पोष्टा जगतां पाता ममैव च विशेषतः। वक्ता चतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयंविभुः

मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसम्पदाम्।

त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मञ्च पाति वै ॥ २० ॥

सदा ते परिपाल्याहं पोष्या भक्ता च किङ्करी। वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे॥

किञ्चिच्छुद्धं हिरण्येन किञ्चिद्वस्तु च वायुना।

किञ्चित् प्रक्षालनेनैव सर्वं विष्णोर्निवेदनात् ॥ २२ ॥

विष्णोर्निवेद्रितान्नेन यष्टव्याः सर्वदेवताः। पितरोऽतिथयश्चैवमिति वेदेषु निश्चितम् ॥

अनिवेद्यमभक्ष्यञ्च नैवेद्यमुदरे हरेः। त्वत्तथा करोति यो भक्त्या पार्षदप्रवरो भवेत् ॥

अमृतं सर्ववस्तूनां मिष्टसारं सुदुर्लभम्। विष्णोर्निवेदितान्नस्य कलां नार्हतिषोड़शीम्.

हन्त्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढ़रञ्जनम्। नैवेद्यञ्च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो ॥ २६ ॥

यदृच्छया तन्नैवेद्यं यो भुङ्क्त साधुसङ्गतः । षष्टिवर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसःफलम्
योनिवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः ।
किंवा तपस्यां कर्ता च स हरेस्तेजसा समः ॥ २८ ॥
श्रुतं पुरा त्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि । अहं वेदविधाता न किमहं वक्तुमीश्वरी ॥
सुचिरञ्च तपस्तप्त्वामया लब्धस्त्वमीश्वरः । त्वया विष्णोःप्रसादेनवञ्चिताहं कथंप्रभो
यतो न दत्तं नैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाधुना ।
अतो मत्तो गृहाणैतत् फलमेव महेश्वर ॥ ३१ ॥
अद्य प्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥
इत्युक्त्वा पार्वती माता रुरोद पुरतो विभोः । दृष्टिःपपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो वभूवसः
तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम् ।
तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनयेन चकार ह ॥ ३४ ॥
करेण चक्षुषो नीरं संमृज्य च पुनः पुनः । वोधयामास विविधैर्नीतिवाक्यैर्मनोहरैः ॥
परितुष्टा च सा देवी भर्तारं समुवाच ह । कलेवरञ्च त्यक्ष्यामि नैवेद्येन विना हरेः ॥३६
विभर्ति देहं सततं तव सौभाग्यवर्द्धनम् । कथं वहामि सौभाग्यरहितञ्च कलेवरम् ॥३७
अपूर्वं तव नैवेद्यं जन्ममृत्यजराहरम् । कृत दुष्टञ्च यत्तस्मात् पश्य देहं त्यजामि च ॥
लिङ्गोपरि च यद्दत्तं तदेवाग्राह्यमीश्वर । सुपवित्रं भवेत्तच्च विष्णोर्नैवेद्य मिश्रितम् ॥३९
इत्येवमुक्त्वा सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता । त्रस्तो हरस्तत्पुरतः स्तुत्वाच स्वीचकारह

शङ्कर उवाच ।

स्थिरा भव महादेवि चण्डिके जगदम्बिके । ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि ॥
मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुरु ममोपरि । ब्रह्मविष्णुमहेशानां वीजभूते सनातनि ॥
अहो गोलोकनाथस्य गुणातीतस्य निर्गुणे । सर्वशक्तिस्वरूपे च सदैव सहचारिणि ॥
साकार च निराकारे नित्ये स्वेच्छामये प्रिये ।
कृपया तद्विभोरेव मम वक्षसि साम्प्रतम् ॥ ४४ ॥
सर्ववीजस्वरूपे च महामायि मनोहरे । सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे कृष्णभक्तिदे ॥४५॥

इच्छैवं श्रीहरेः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः । तदा देहं परित्यज्य निर्गुणं व्रज निर्गुणे ॥
इत्येवमुक्त्वा पुरतस्तस्थौ च चन्द्रशेखरः। बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम् ॥४७॥
इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शङ्करेण कृतं पुरा । यः पठेद्विपदा ग्रस्तः स भयादेव मुच्यते ॥४८
मित्रभेदो भवेद्दूरं तत्सम्प्रीतिर्भवेत् पुरा । पार्वती परितुष्टा च नात्यजत्तस्य मन्दिरम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा । जगाम स्वर्णदीन्तूर्णंस्नानार्थं शङ्कराज्ञया ॥

स्नात्वा सम्पूज्य भक्त्या च सुरमिष्टञ्च निर्गुणम् ।
चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं व्यञ्जनानि च ॥ ५१ ॥
शिवः स्नात्वा च सम्पूज्य ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
तुष्टाव परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम् ॥ ५२ ॥

गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दत्त्वाभिवाञ्छितम् । नैवेद्यं पार्वती लेभे तवमूलं समागता
भुक्त्वावशेषं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता । तुष्टाव शङ्करं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥
इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं सुरेश्वरि । अभिशप्तं शङ्करस्य निर्माल्यं येन हेतुना ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे हरनि-
र्माल्यशापप्रसङ्गो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दुर्गादर्पविमोचनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्पभङ्गः श्रुतो देवि शङ्करस्य जगद्गुरोः । अधुना श्रूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम् ॥१
तेजसा सर्वदेवानामाविर्भूय जगत्प्रसूः । दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम् ॥ २ ॥

निहत्य दानवेन्द्रांश्च ररक्ष देवताकुलम् । लेभे जन्म ततो देवी जठरे दक्षयोपितः ॥ ३॥

पिनाकपाणिं जग्राह सा देवी सुरसाधनम् ।
शश्वत् परमभक्त्या च सिषेवे स्वामिनं सती ॥ ४ ॥

दक्षेण सार्द्धं दैवेन बभूव शिवशत्रुता । निरर्थकं दैवयोगात् पुरा वै सुरसंसदि ॥ ५ ॥
दक्षश्चकार यज्ञञ्च तत आगत्य कोपतः । सर्वान् विज्ञापयामास तत्रैव शङ्करं विना ॥६
सस्त्रीका देवताः सर्वा आजग्मुर्दक्षमन्दिरम् । सगणः शङ्करः कोपान्नाजगामाभिमानतः
सती पतिञ्च मोहेन बोधयामास यत्नतः । न तञ्चालयितुं शक्ता बभूव चञ्चला स्वयम्
आजगाम पितुर्गेहं दर्पात्तस्य विनाज्ञया । तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो बभूव ह ॥९॥

न हि सम्भाषणञ्चक्रे वाङ्मात्रेण पिता च ताम् ।
श्रुत्वा च निन्दां भर्तुश्च देहं तत्याज मानतः ॥ १० ॥

एवं प्रिये निगदितं सतीदर्पविमोचनम् । तस्य जन्मान्तरं नित्यं दर्पभङ्गश्च श्रूयताम् ॥११
लेभे जन्म सतीशीघ्रं जठरे शैलयोपितः । शिवस्तस्याश्चिताभस्म चास्थि जग्राह भक्तितः
चकार मालास्थ्नाञ्च भस्मना तनुलेपनम् । स्मारंस्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्रामं पुनःपुनः
सुषाव मेना तां देवीमतीव सुमनोहराम् । सृष्टौ विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्रच

गुणप्रसूर्गुणान् सर्वान् सर्वरूपान् विभर्त्ति सा ।
सर्वाश्च देपपत्न्यस्तत्कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ १५ ॥

बभूव वर्द्धमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा । अतीव यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने ॥
बभूवाकाशवाणी च तां सम्बोध्य जगत्प्रसूम् । शिवे शिवञ्च तपसा कठोरेण लभेतिच
विनेश्वरं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसम्भवम् । प्रहस्य तस्थौ श्रुत्वेति सा च यौवनगर्विता

मम जन्मान्तरीणञ्च भस्मास्थि च विभर्त्ति यः ।
स मां प्रौढ़ां कथं दृष्ट्वा न गृह्णात्यत्र जन्मनि ॥ १९ ॥

यो विदग्धश्च ब्रह्माण्डं बभ्राम मम शोकतः । स कथं मां न गृह्णाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम्
दक्षयज्ञं यो बभञ्ज मम हेतोःकृपानिधिः । स कथं मां न गृह्णातिपत्नीं जन्मनि जन्मनि
यायस्यपत्नी यो यस्या भर्ताप्राक्तनतःपुरा । कुतोविश्वे तयोर्भेदो निषेकोनान्यथाभवेत्

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा स्वमतिमानतः। न चकार तपः साध्वी न विज्ञाय तमीश्वरम् ॥
सुन्दरीषु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी। इतीति मत्वा गर्वेण न चकार तपःशिवा

रूपयौवनवेशानां पुमान् ग्राही स्वयोषिताम्।
शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति विना तपः ॥ २५ ॥

इतीतिमत्वा गिरिजा तस्थौहिमगिरेर्गृहे। शश्वत्सहचरीमध्ये क्रीडोन्मत्तादिवानिशम्
एतस्मिन्नन्तरे तूर्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि। उवाचागत्य मधुरं तत्पुरः संपुटाञ्जलिः ॥

दूत उवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम्। आजगाम महादेवः सगणो वृषवाहनः ॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः। पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रन्तमतीन्द्रियम् ॥

सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्।
मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३० ॥

परमात्मस्वरूपञ्च सगुणं निर्गुणं विभुम्। भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम्॥३१॥
शैलो दूतवचःश्रुत्वा समुत्तस्थौ मुदान्वितः। मधुपर्कादिकं नीत्वाजगाम शङ्करान्तिकम्
देवी दूतवचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। इतीति मेने मद्धेतोराजगाम महेश्वरः ॥ ३३ ॥
चकार वेशमतुलं दधार वस्त्रमुत्तमम्। रत्नेन्द्रसारालङ्कारान् रत्नमालां मनोहराम्॥३४॥
पारिजातप्रसूनानां मालां चन्दनसंयुताम्। चकार शङ्करार्थञ्च मत्वा मालां मनोहराम्
रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम्। कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुभूषितम्
आरक्तनेत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम्। शरन्मध्याह्नममलं यथा लिप्तं त्रिवेष्टितम् ॥ ३७ ॥

सुकोमलौष्ठयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम्।
अतीव सुन्दरं रम्यं पक्वविम्वफलं यथा ॥ ३८ ॥

रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलविराजितम्। सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा ॥
अत्यनिर्वचनीयञ्च दन्तपंक्तिमनोहरम्। यथा मुक्तासमूहश्च सजलं जलदागमे ॥ ४० ॥
गजमुक्तासमायुक्तं सुचारुनासिकोत्तमम्। सुशोभितं यथा मेरुं स्वर्णदीजलधारया ॥
मालतीमाल्यसंयुक्तकवरीभारसंयुतम्। वक्रपंक्तिसुशोभाढ्यं नवीनं जलदं यथा ॥४२॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभं चारुवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ।
रत्नेन्द्रसारहाराक्तं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥ ४३ ॥
चारुचम्पकवर्णाभं स्तनयुग्मं मनोहरम् । बदरीफलतुल्यञ्च चारुपत्रकशोभितम् ॥४४॥
मध्यं मनोहरं क्षीणं निम्ननाभिस्थलोज्ज्वलम् । अतीव सुन्दरं रम्यं सुन्दरं वर्तुलाकृति
रम्भास्तम्भविनिन्द्यैकमूरुयुग्मं मनोहरम् ।
कामालयं सुकठिनं निगूढमंशुकेन च ॥ ४६ ॥
स्थलपद्मप्रभामुष्टपदयुग्मं मनोहरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं सिद्धालक्तकभूषितम् ॥ ४७ ॥
दधतं रत्नमञ्जीरं राजहंसानुकारि च । रत्नेन्द्रसाराभरणं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४८ ॥
करं सुकोमलतरं सुन्दरं कनकप्रभम् । रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषितम् ॥ ४९ ॥
बिभ्रत्सद्रत्नमुकुरं लीलाकमलमुज्ज्वलम् । रत्नाङ्गुलीयमतुलं दधत्तत्सुमनोहरम् ॥ ५० ॥
दृष्ट्वा स्वरूपमतुलं दध्यौ शङ्करमीश्वरम् । विशिष्य मनसा शश्वद्दत्तुंश्चरणपङ्कजम्॥५१॥
पितरं मातरं बन्धुं साध्वीवर्गं सहोदरम् ।
अन्तरे सा न सस्मार किञ्चिदेव शिवं विना ॥ ५२ ॥
अथ शैलेश्वरस्तत्र ददर्श चन्द्रशेखरम् । स्वर्णदीपुलिनाद्रम्यादुत्पतन्तञ्च सस्मितम् ॥
दधतं संस्कृतां मालां जपतं मम नामकम् । तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाराशिविराजितम् ॥
वृषभस्थं शूलपाणिं सर्वभूषणराजितम् । नागयज्ञोपवीतञ्च सर्पभूषणभूषितम् ॥ ५५ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं व्याघ्रचर्म्मधरं परम् ।
विभूतिभूषिताङ्गन्तमस्थिमालं दिगम्बरम् ॥ ५६ ॥
पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । ददर्श रुद्रान् परितोज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥५७॥
शिवं वामे महाकालं दक्षिणे नन्दिकेश्वरम् ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च कुष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ॥ ५८ ॥
वेतालान् क्षेत्रपालांश्च भैरवान् भीमविक्रमान् । सनकञ्च सनन्दञ्च कुमारञ्च सनातनम् ॥
जैगीषव्यं देवलञ्च काणादञ्चौतमं तथा । पिप्पलादं कणखनं वोढुं पञ्चशिखं कचम् ॥
जाबालिं करथं कण्वं लोमशं सूर्य्यवर्चसम् । कात्यायनं पाणिनिञ्च शङ्खं दुर्वाससं ततः

शातातपं पारिभद्रमष्टावक्रं मरुद्भवम् । एतान् पुरोगमान्नत्वा प्रणनाम शिवं गिरिः ।
मूर्ध्ना निपत्य भूमौ स दण्डवत्संपुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

अथोऽनलपया भक्त्या धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् । ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितविग्रहः
धर्मदत्तेन स्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । तुष्टे ब्राह्मे दिनेऽतीते पुष्करे सूर्य्यपर्वणि ॥६४॥

हिमालय उवाच ।

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥ ६५ ॥

त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः । प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे । येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥
सूर्य्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् । सोमस्त्वंश स्यपाता च सततंशीतरश्मिना
वायुस्त्वं वरुणस्त्वञ्च त्वमग्निः सर्वदाहकः । इन्द्रस्त्वं देवराजश्च काले मृत्युर्यमस्तथा
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः । वेदस्त्वं वेदकर्त्ता च वेदवेदाङ्गपारगः

विदुषां जनकस्त्वञ्च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।
मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥ ७१ ॥
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्त्ता तद्गुरुः स्वयम् ।
अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ७२ ॥

इत्येवमुक्त्वाशैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वापदाम्बुजम् । तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्यवृषाच्छिवः
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि । भार्य्याहीनो लभेद्भार्य्यां सुशीलां सुमनोहराम्
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् । राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं. शङ्करस्य प्रसादतः ॥
कारागारे श्मशाने च शत्रु ग्रस्तेऽतिसङ्कटे । गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते । सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
दुर्गादर्पविमोचनं नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

इति स्तुत्वा हिमगिरिर्विसतः शङ्करस्य च । उवास पुरतो दूरे लब्धाज्ञः सर्वसम्मतः ॥
मधुपर्कादिकं तस्मै प्रददौ भक्तिपूर्वकम् । मुनीन् सम्पूजयामास ततः शङ्करपार्षदान् ॥
तदा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह । ददर्श वटमूलस्थं शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥ ३ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वसन्तं व्याघ्रचर्मणि । मध्ये मुनिगणानाञ्च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
यथाकाशे तारकाणां द्विजराजं विराजितम् ।
परमाह्लादकं रूपं कन्दर्पकोटिसन्निभम् ॥ ५ ॥
विहाय वार्द्धकावस्थां दधतं नवयौवनम् । अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचौरञ्च योषिताम्
कामंकामातुराणाञ्च सतीनाञ्च सुतंयथा । वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानाञ्चसदाशिवम्
शक्तिस्वरूपं शाक्तानां सौराणांसूर्य्यरूपिणम् । कालस्वरूपंदुष्टानां शिष्टानांपरिपालकम्
कालकालसमं मृत्योर्मृत्युं मृत्युंभयानकम् । व्याघ्रचर्म चारुवस्त्रं वभूव भस्मचन्दनम्
सर्पाः सुन्दरमाल्यानि कस्तूरी या विषप्रभा । जटा सुललिता चूड़ा चन्द्रमेलकचन्दनम्
सुचार्व्वी मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा ।
अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारु चम्पकम् ॥ ११ ॥
एकीभूतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम् । शरत्पार्वणचन्द्राभं प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम् ॥
वन्धुजीवविनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम् । श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या नर्तका इव ॥१३॥
सद्यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरी । दृष्ट्वैवं शिवरूपञ्च मेना तुष्टा वभूव ह ॥१४॥
काश्चिन्निमेषरहिताः कामेनपुलकाञ्चिताः । अतिकामातुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छाञ्च काश्चन
काश्चिद्विनिन्द्य कान्तांश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम् ।
मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन ॥ १६ ॥

काश्चिन्मानसिकं कामात् कुर्वन्ति चुम्बनं मुदा।
ध्रुवं कामं करिष्यामो वयञ्च कामसागरे ॥ १७ ॥
अस्माकमेवं भर्त्ता च परत्रैव यतो भवेत्। इहैवैकं करिष्यामो वयं कान्तं रतौ रतम्॥
दृष्ट्वातपस्या सुचिरमितिजल्पन्तिकाश्चन। काश्चिद्दृष्ट्वा शिवं किञ्चिन्मुखमाच्छाद्यवाससा
सस्मिता वक्रनयनाः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः।
वयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसन्निधिम् ॥ २० ॥
शरत्सुधांशुवदनं द्रक्ष्यामोऽहर्निशं मुदा। संसारं न करिष्यामः प्रविशामो हुताशनम्
भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन।
अहो पुण्यवती दुर्गा श्लाघ्यते जन्म भारते ॥ २२ ॥
यस्या ह्ययं शिवः स्वामोत्येवं जल्पन्तिकाश्चन। मुदामेना शिवं दृष्ट्वा गृहन्ताभिर्जगामह
शिवं सम्पूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ। कृत्वानुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह
दुर्गांप्रस्थापयामास शिवायशिवसन्निधिम्। पार्वतीसखिभिः सार्द्धंवेशं कृत्वामनोहरम्
भावानुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसन्निधिम्। दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम्
सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा। अनन्यभाजं गुणिनममरं ज्ञानिनां वरम् ॥
सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिषं ददौ।
भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि सन्ततम् ॥ २८ ॥
पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमोगुणैः। भविता ते परा पूजा त्रैलोक्येजगदम्बिके
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषाञ्च परा भव। सप्तप्रदक्षिणीकृत्य यतो भक्त्या त्वया नतम्
सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तत्फलं लभ सुन्दरि। तीर्थे कान्तेऽभीष्टदेवे गुरोर्मन्त्रे तथौषधे
आस्था च यादृशी यासां सिद्धिस्तासाञ्च तादृशी।
इत्युक्त्वा शङ्करस्तूर्णं ब्रह्मज्योतिः परञ्च माम् ॥ ३२ ॥
दध्यौ योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रचर्मणि।
प्रक्षाल्य चरणौ देवी पपौ तच्चरणोदकम् ॥ ३३ ॥
चकार मार्जनं भक्त्या वह्निशौचेन वाससा। रत्नसिंहासनं रम्यं विश्वकर्मादिनिर्मितम्

अपूर्वं कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल। अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तञ्चरणे ददौ ॥ ॥
सुगन्धिचन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्। प्रददौ मालतीमालां गले गरलसुन्दरी॥३६॥
भक्त्या पूजाञ्चकाराथ पुष्पवृष्टिञ्च तुष्टये। पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु॥
रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्धूपमुत्तमम्। त्रैलोक्यदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम् ॥३८॥
सुगन्धि शीततोयञ्च पानार्थं पार्वती ददौ। अतीव सुन्दरं रम्यं रत्नसारेन्द्रभूषणम॥३९॥
दुर्लभां कामधेनुञ्च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम्। स्नानीयन्तीर्थतोयञ्च ताम्बूलञ्च मनोहरम् ॥

दत्त्वा षोड़शोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः।
संपूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥ ४१ ॥

शुश्रावाप्सरसां वक्त्राद्देवीमिन्द्रो महेश्वरः। श्रुत्वा वार्तां शुनाशीरो ननर्त्त हर्षसंयुतः
दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः। इन्द्राज्ञया कामदेवः प्रजगामामरावतीम्॥४३॥
तूर्णं प्रस्थापयामास तञ्च यत्र शिवः शिवा। पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः॥
प्रसन्नवदनं श्रीमान् यत्र शक्तियुतः शिवः। गत्वा ददर्श मदनः शिवायुक्तं शिवं विभुम्

शान्तं त्रैलोक्यकान्तञ्च प्रसन्नवदनेक्षणम्।
कामः स्थितोऽन्तरीक्षे च धृत्वा च सशरं धनुः ॥ ४६ ॥

चिक्षेपास्त्रं दुर्निवार्य्यममोघं शङ्करे मुदा। बभूवामोघमस्त्रञ्च मोघन्तत्परमात्मनि॥
आकाश इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि। मोघीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मन्मथः॥
चकम्पेपुरतःस्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युञ्जयंविभुम्। सस्मारत्रिदशान् कामःशक्रादीन्भयविह्वलः
आययुर्देवताः सर्वाः शम्भुकोपेन वेपिताः। चक्रुः स्तुतिञ्च स्तोत्रेण शङ्करं त्रिदशेश्वरम्
कोपाग्निमुद्गिरन्तं तं कपाललोचनाद्दहो। स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु स वह्निः शम्भुसम्भवः॥
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निशिखोपमः। उत्पत्य गगने घूर्णन् निपत्य धरणीतले

भ्रामं भ्रामञ्च परितः पपात मदनोपरि ॥ ५२ ॥

बभूव भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः। विषण्णा देवताः सर्वा नतवक्त्रा च पार्वती ॥
विललाप बहुतरं हरस्य पुरतो रतिः। तुष्टुवुर्देवताः सर्वाः कम्पिताश्चन्द्रशेखरम् ॥५४॥
रतिमूचुः सुराः सर्वे रुरुदुश्च मुहुर्मुहुः। किञ्चिद्भस्म गृहीत्वा च रक्ष मातर्भयं त्यज ॥

वयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः । हरकोपापनयने सुप्रसन्ने दिने तथा ॥

दृष्ट्वा रतेर्विलापञ्च मूर्च्छां संप्राप पार्वती ।
अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाव चन्द्रशेखरम् ॥ ५७ ॥
रुदन्तीं पार्वतीं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः ।
सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम् ॥ ५८ ॥

रूपयौवनयोर्गर्वं तत्याज शैलकन्यका । मुखं दर्शयितुं लज्जा तद्बभूव सखीगणे ॥५६॥
सुराश्च रतिमाश्वास्य सर्वे जग्मुः स्वमन्दिरम् । प्रणम्य दण्डवद्रुद्रं शोकादुद्विग्नमानसाः
स्तुत्वा रुदित्वा शोकेन भयेन कामकामिनो । कोपरक्तेक्षणं रुद्रं राधिके स्वालयं ययौ

न जगाम पितुर्गेहे पार्वती सा तु लज्जया ।
स्वालिभिर्वार्य्यमाणापि जगाम तपसे वनम् ॥ ६२ ॥
प्रजग्मुः सहचारिण्यस्तत्पश्चाच्छोकविह्वलाः ।
मातृभिर्वार्य्यमाणा सा स्वर्णदीतीरजं वनम् ॥ ६३ ॥

सुचिरञ्च तपस्तप्त्वा सा संप्राप त्रिलोचनम् । रतिः संप्राप मदनं शङ्करस्य वरेण च ॥
इत्येवं कथितं सर्वं पार्वतीदर्पमोक्षणम् । निगूढचरितं राधे किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णराधिकासंवादे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

राधिकाकृष्णसंवादवर्णनम्

श्रीराधिका उवाच ।

अहो विचित्रं चरितमपूर्वं किं श्रुतं विभो । सुन्दरं श्रुतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम् ॥१॥

न विशेषं समासञ्च श्रुतं न व्यासमीप्सितम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि विस्तीर्णं कथय प्रभो ॥ २ ॥

किं किं तपः कठोरञ्च चकार पार्वती स्वयम् ।
कं कं वरं वा संप्राप्य कथमाप महेश्वरम् ॥ ३ ॥

रतिः केन प्रकारेण जीवयामास मन्मथम् । पार्वतीशिवयोः कृष्ण विवाहं वर्णय प्रभो॥

तयो रहसि सम्भोगं पापिनीपापमोचनम् ।
कथ्यतां करुणासिन्धो दुःखिनीदुःखमोचनम् ॥ ५ ॥

दम्पतीविरहोक्तिश्च कर्णज्वाला च योषितः । श्रोतुं कौतूहलं कृष्ण पुनःसम्मीलनं तयोः

अग्निज्वाला विषज्वाला क्षमाः सोढुञ्च योषितः ।
दम्पतीविरहज्वाला न श्रोतुञ्च क्षणं क्षमा ॥ ७ ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा विस्मितश्चकिताननः । विस्तीर्णं वक्तुमारेभे हृदयेन विदूयता ॥८॥
दम्पतीविरहोक्तिश्च या राधा श्रोतुमक्षमा । विच्छेदे शतवर्षीये किमस्या भविता मम
इत्येवं मानसे कृत्वा मायेशो माययान्वितः । कृपासिन्धुश्च कृपया कथां कथितुमुद्यतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे । प्राणाधिदेवि प्राणेशि प्राणाधारे मनोहरे॥
वटमूलाद्गते रुद्रे पार्वती तपसे ययौ । पुनः पुनः स्वमात्रा च पित्रा च विनिवारिता ॥
गत्वा सा स्वर्णदीतीरं स्नात्वा त्रिषवणं मुदा । सन्देशे च मया दत्तं जजापतं मनुंमुदा
वर्षमेकञ्च सम्पूर्णमनाहारा स्वभक्तितः । तप्त्वा तपः कठोरञ्च चकार जगदम्बिका ॥१४

ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम् ।
कृत्वा प्रतस्थौ तन्मध्ये सन्ततं जपती मनुम् ॥ १५ ॥

शश्वत् श्मशाने वर्षासु कृत्वा योगासनंशिवा । शिलां दृष्ट्वा च संसिक्ताबभूव जलधारया
शीते जलान्तरे शश्वत् प्रतस्थौ भक्तिपूर्वकम् । अनाहारा शरद्रौद्रनीहारासु निशासु च
एवं कृत्वा परं वर्षमप्राप्य शङ्करं सती । शुचा कृत्वाग्निकुण्डञ्च प्रवेष्टुं सा समुद्यता ॥

तामग्निकुण्डं विशतीं तपसातिकृशां सतीम् ।
दृष्ट्वा शिवः कृपासिन्धुः कृपया तां जगाम ह ॥ १६ ॥

अतीव वामनो बालो विप्ररूपी स्वतेजसा । प्रज्वलन् मनसा हृष्टो दण्डी छत्रीजटाधरः

[शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लवासाश्च सस्मितः । श्वेताब्जबीजमालाञ्च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्

निर्जने बालकं दृष्ट्वा स्निग्धा साति जगाद ह ।
तत्तेजसातिप्रच्छन्ना तत्याज च तपः स्वयम् ॥ २२ ॥

को भवानिति पप्रच्छ तं शिशुं पुरतः स्थितम् ।
मनसालिङ्गनं कर्त्तुमिच्छन्ती परमादरम् ॥ २३ ॥

श्रुत्वा शैलसुताप्रश्नं प्रहस्य परमेश्वरः । उवाचातीव मधुरं कर्णपीयूषमीश्वरीम् ॥२४॥

शङ्कर उवाच ।

इच्छागामी बटुरहं तपस्वी विप्रबालकः । का त्वं कान्तातिकान्तारे तपश्चरसि सुन्दरि

वद कस्य कुले जाता कस्य कन्या च काभिधा ।
तपसः फलदात्री त्वं कस्माद्धेतोस्तपस्तव ॥ २६ ॥

अहो वा तपसां राशिः स्वयं मूर्तिमती सती ।
तपो वा लोकशिक्षार्थं करोषि कमलेक्षणे ॥ २७ ॥

स्वयं तेजःस्वरूपा वा मूलप्रकृतिरीश्वरी । विधाय भक्तध्यानार्थं विग्रहं भारते जनुः ॥

किं वा त्रिलोकलक्ष्मीस्त्वं सम्पद्रूपा सनातनी ।
रक्षां विधातुं जगतामागता धातुरन्तिके ॥ २९ ॥

किंवाम्बिका त्वं देवानां स्वयं मूर्तिमती सती ।
सावित्री भारते जन्म स्वेच्छया लब्धुमागता ॥ ३० ॥

रागाधिष्ठातृदेवी वास्वयंसाक्षात् सरस्वती । सर्वविद्याः प्रकटितुं स्वेच्छया जन्मभारते

एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमीश्वरः ।
या सा भवति कल्याणि परितुष्टा च मां भव ॥ ३२ ॥

सति त्वयि प्रसन्नायां प्रसन्नः परमेश्वरः । पतिव्रतायां तुष्टायां तुष्टो नारायणः स्वयम्

तुष्टे नारायणे देवे शश्वत्तुष्टं जगत्त्रयम् । तरुमूलेषु सिक्तेषु शाखाः सिक्ता यथा प्रिये

शिशोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ।
उवाच वचनञ्चारु कर्णपीयूषमीश्वरी ॥ ३५॥

पार्वत्युवाच ।

नाहं वेदप्रसूर्लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता । जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं शैलकन्यका ॥३६॥
पूर्वं जन्म दक्षगेहे सती शङ्करकामिनी । योगेन त्यक्तदेहाहं तातभर्तृविनिन्दया॥ ३७॥
अत्र जन्मनि पुण्येन संप्राप्ते शङ्करे द्विज। मां त्यक्त्वा भस्मसात् कृत्वा मन्मथं स जगामह
प्रयाते शङ्करे तापाद् व्रीड़याहं पितुर्गृहात् । अगमत्तपसे चित्तं ममेदं स्वर्णदीतटे॥
तपः कृत्वा कठोरञ्च सुचिरं प्राणवल्लभम्। अप्राप्याग्निं प्रवेष्टुञ्च त्वांचद्दृष्ट्वाक्षणं स्थिता

गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ प्रलयाग्निशिखोपमे ।
कृत्वा स्वकामनां विप्र हरप्राप्तिमनीषितम्॥ ४१ ॥
यत्र यत्र जनुर्लब्ध्वा लभिष्यामि शिवं परम्।
प्राणाधिकं प्रियं कान्तं विभुं जन्मनि जन्मनि ॥ ४२ ॥
सर्वा हि स्वप्रियं लब्धुं लभन्ति जन्म वाञ्छितम् ।
तज्जन्म पतिलाभार्थं सर्वासाञ्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४३ ॥
प्राक्तनीयो हि यो भर्ता स तासां प्रतिजन्मनि ।
या स्त्री येषां सुनियता सा तेषां जन्मजन्मनि ॥ ४४ ॥

तदहमिह न प्राप्य कृत्वा घोरतरं तपः । कृत्वाग्निकुण्डे काम्यञ्च लभिष्यामि परत्रतम्
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र तत्पुरः प्रविवेश ह। निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः॥
वह्निप्रवेशं कुर्वन्त्याः पार्वत्याः परमेश्वरि। वभूव तपसा सद्यो वह्निश्चन्दनवद् ध्रुवम् ॥
क्षणं तदन्तरे स्थित्वाचोत्पतन्तीं शिवां शिवः । पुनः पप्रच्छसहसा वृन्दावनविनोदिनि

श्रीमहादेव उवाच ।

अहो तपस्ते किं भद्रे न वृद्धं किञ्चिदेव हि ।
न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तो मनीषितः ॥ ४६ ॥

शिवं कल्याणरूपञ्च भर्त्तारं कर्तुमिच्छसि । अविग्रहं पतिं कृत्वा किंवातेवाञ्छितंभवेत्
संहर्तारञ्च भर्तारं यदिच्छसि शुचिस्मिते । कान्तमिच्छति कावास्त्रीसर्वसंहारकारणम्
मोक्षं वाञ्छसि चेद्देवि कृत्वाकान्तस्वरूपिणम् । सर्वमुक्तिप्रदा त्वञ्चतपस्याविफलातव

शिवश्च मङ्गले मोक्षे संहर्ता न च दृश्यते। शिवशब्दस्य चान्यार्थो न हि वेदे निरूपितः
तञ्च संहारकर्तारं यदि वाञ्छसि सुन्दरि। लभिष्यसे रतं रुद्रं सर्वलोकभयङ्करम् ।५४।
न भविष्यति मोक्षस्ते स्वाभीष्टं देवसेवनम् । हरिस्मृतिरमोघा च सर्वमङ्गलदा सदा॥
शीघ्रं पितुर्गृहं गच्छ तत्र द्रक्ष्यसि शङ्करम् । ममाशिषा स्वतपसां फलेन च सुदुर्लभम्
इत्युक्त्वा पार्वतीं विप्रस्तत्रैवान्तरधीयत । दुर्गा ययौ पितुर्गेहं महादेवेति वादिनी ।५७।
पार्वतीगमनं श्रुत्वा मेनका च हिमालयः । दिव्यं यानं पुरस्कृत्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥
संस्थाप्य मङ्गलघटान् राजवर्त्मनि राधिके । चन्दनागुरुकस्तूरीफलशाखासमन्वितान्॥
पट्टसूत्रसन्निबद्धरसालपल्लवान्वितैः । परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्विते ॥ ६० ॥
पतिपुत्रवती योषित्समूहैर्दीपहस्तकैः। पूर्णैर्लाजाधान्यदूर्वाफलपुष्पसमन्वितैः ॥ ६१ ॥
सुपुण्यैर्ब्राह्मणैश्चापि मुनिभिर्ब्रह्मचारिभिः । नटीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रैः परिशोभिते ॥
पुरोहितैश्च संयुक्तैः कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् । सुचारुमालतीमालाहस्तैः शस्तैः प्रशंसितैः ॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च शङ्खध्वनिसुनादितैः । सिन्दूररेणुभिश्चारुचन्दनद्रवपङ्किलम् ॥ ६४ ॥
प्रविश्य नगरं दुर्गा ददर्श पितरौ पुरः । सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षाश्रुपुलकान्वितौ ।६५।
प्रसन्नवदना देवी चालिभिः प्रणनाम तौ । संयुज्याथाशिषन्तौ च चक्रतुस्ताञ्चवक्षसि
हे वत्से वत्सेत्युच्चार्य्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ । तदा ताञ्च रथे कृत्वा जग्मतुर्निजमन्दिरम्
स्त्रियो निर्मञ्छनञ्चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषम् । ब्राह्मणेभ्यश्च वन्दिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनंददौ

मङ्गलं कारयामास पाठयामास छान्दसम् ।
एवं स्वकन्यया सार्द्धं तस्थतुस्तौ स्वमन्दिरे ॥ ६६ ॥
सुखेन वसतौ तौ हि हर्षनिर्भरमानसौ ।
एकदा च तपः कर्तुं जगाम स्वर्णदीं गिरिः ॥ ७० ॥

मेनका कन्यया सार्द्धमुवास प्राङ्गणे मुदा । एतस्मिन्नन्तरे भिक्षुर्नर्तकश्च सुगायनः ॥
सहसैक आजगाम मेनकासन्निधिं मुदा । शृङ्गवाद्यं वामहस्ते डमरुं दक्षिणे तथा ॥

कृत्वा विभूतिगात्रोऽतिवृद्धोऽतीवजरातुरः ।
पृष्ठकन्थो रक्तवासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः ॥ ७३ ॥

जगौ मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम् ।
वादयामास भृङ्गञ्च क्षणं डमरुकं तथा ॥ ७४ ॥
आजग्मुर्नागरा बाला बालिका हर्षविह्वलाः ।
वृद्धा युवानो युवतीसमूहा वृद्धयोषितः ॥ ७५ ॥

श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानस्वरसंयुतम् । सहसा मुमुहुः सर्वे तेन मूर्च्छामवाप्नुवम् मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शङ्करम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम् ॥ विभूतिभूषणं रम्यमस्थिमालां सुनिर्मलाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम् मालाहस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम् । वरं वृष्णित्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम् ॥ हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा तं ननाम सा । वरं वव्रे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च ॥ एवं दत्त्वा शिवस्तस्यै चान्तर्धानञ्चकार सः । न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गा संप्राप्य चेतनां पुनः ददर्श चक्षुरुन्मील्य भिक्षुकं गायकं पुरः । नृत्यसंगीततः सा तु भिक्षुकस्य च मेनका ॥

दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ।
भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तां दुर्गां नान्यां गृहीतवान् ॥ ८३ ॥

पुनश्च नर्त्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च । मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ ॥ भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिःकर्तुमुवाच तम् । पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्यपरमात्मनः

याच्ञामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु सुभाषिणम् ।
एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरिः स्वालयमाययौ ॥ ८६ ॥

ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम् । कृत्वा नारायणार्चाञ्च गङ्गातीरे मनोहरे ॥ तन्मूर्त्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः । श्रुत्वा मेनामुखाद्वार्तां जहासच चुकोप सः आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुञ्च भिक्षुकम् । आकाशमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा न शशाक बहिः कर्तुं समीपं गन्तुमक्षमः । ददर्श भिक्षुकं शैलः क्षणञ्चारुचतुर्भुजम् ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम् । सुवेशं सुन्दरश्याममीषद्धास्यं मनोहरम् ॥ चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकातरम् । यद्यत् पुष्पं प्रदत्तञ्च पूजाकाले गदाभृते ॥९२॥ गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह । धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम्

ददर्श शैलस्तत्सर्वं भिक्षुकस्य पुरःस्थितम् । क्षणं ददर्श द्विभुजं विनोदमुरलीकरम् ॥
गोपवेशं किशोरञ्च सस्मितं श्यामसुन्दरम् । मयूरपिच्छचूडञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम् । क्षणं ददर्श स्वच्छञ्च शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥
त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम् । विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम् ॥ ६७॥
नागयज्ञोपवीतञ्च तप्तस्वर्णजटाधरम् । डमरुश्रृङ्गहस्तञ्च सुप्रशस्तं मनोहरम् ॥ ६८ ॥
प्रजपन्तं हरेर्नाम श्वेताब्जवीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ६६॥

स्वतेजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
क्षणं ददर्श जगतां स्रष्टारञ्च चतुर्मुखम् ॥ १०० ॥
जपन्तं श्रीहरेर्नामस्वच्छ स्फटिकमालया ।
क्षणं सूर्य्यस्वरूपञ्च ददर्श त्रिगुणात्मकम् ॥ १०१ ॥

ददर्शातीवतीव्रं तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । क्षणमग्निस्वरूपञ्च ज्वलन्तमतितेजसा ॥१०२॥
क्षणमाह्लादजनकं चन्द्ररूपं ददर्श ह । क्षणं तेजःस्वरूपञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥१०३॥
निर्लिप्तञ्च निरीहञ्च परमात्मस्वरूपिणम् । एवं स्वेच्छामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम् ॥
हर्षाश्रुपुलकः शैलो दण्डवत् प्रणनाम तम् । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः
समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम् । वास्तवं भिक्षुकं दृष्ट्वा शैलेन्द्रोविष्णुमायया

विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं परम् ।
भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तं भिक्षास्थालीस्वपार्श्वकम् ॥ १०७ ॥
रक्ताम्बरः श्रृङ्गवाद्यविचित्रडमरुः करे ।
आदातुमुत्सुको दुर्गां नान्यां भिक्षुः कदाचन ॥ १०८ ॥
न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया ।
भिक्षुः किञ्चिन्न जग्राह तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०६ ॥

तदा वभूव ज्ञानञ्च मेनकाशैलयोः प्रिये । अहो दृष्टो जगन्नाथ आवाभ्यां स्वप्नवद्दिने ॥

आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान् विभुः ।
तयोर्भक्तिं शिवे दृष्ट्वा सर्वे देवाश्च चिन्तिताः ॥ १११ ॥

चक्रुः शक्रादयो युक्तिं सुमेरो रक्षणे भरात्।
एकान्तभक्त्या शैलश्चेत् कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥ ११२ ॥
ध्रुवं निर्वाणतांसद्यः संप्राप्नोत्येव भारते। अनन्तरत्नाधारश्चेत् पृथ्वींत्यक्त्वाप्रयास्यति रत्नगर्भाभिधा भूमेर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम्। स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधायसः कन्यां शूलभृतेदत्त्वा विष्णुलोकं गमिष्यति। नारायणस्यसारूप्यं भविष्यत्येव लीलया
संप्राप्य पार्षदत्वञ्च हरिदासो भविष्यति।
दशवापीसमा कन्या दीयते ब्राह्मणाय ताम् ॥ ११६ ॥
वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने। सन्ध्यायज्ञवेदपाठकारिणे सत्यवादिने ॥११७॥ अस्मै प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा। त्रिसन्ध्याकारिणे सत्यवादिने गृहशालिने॥ वेदज्ञाय सुविप्राय दत्त्वा सुफलदायिनी। परदारगृहीताय याजकाय द्विजाय च॥ शठाय सन्ध्याहीनाय वाप्यैकफलदा सुता। सर्वसन्ध्यास्वगायत्रीविहीनाय शठाय च॥ वैश्योद्भवाय दत्ता या वाप्यर्द्धफलदा स्मृता। पापिने शूद्रजाताय विप्रक्षत्रोद्भवाय च॥
दत्ता चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा।
विष्णुभक्ताय विदुषे विप्राय सत्यवादिने ॥ १२२ ॥
जितेन्द्रियाय दत्ता या विंशद्वापीफलप्रदा। षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यरूपं विधाय च ॥१२३ एवम्भूताय दत्ता चेन् मोदते विष्णुमन्दिरे। दत्त्वा कन्यां सुशीलाञ्च हराय हरयेऽथवा नारायणस्वरूपञ्च भवेदेव श्रुतौ श्रुतम्। विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये॥ स लभेद्धरिदास्यञ्च ध्रुवं विप्रोद्भवाय च। इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वाच मन्त्रणांप्रिये गुरुं प्रस्थापितुं जग्मुर्हिमालयगृहं प्रति। गत्वा प्रणम्यच गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम्॥ हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्दाञ्च शूलिनः। पिनाकिनं विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूर्णं लभिष्यति। कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवितिष्ठतु अनन्तरत्नाधारञ्च त्वमेव रक्ष भारते। देवानां वचनं श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करौ॥ न स्वीचकार स्व गुरुः स्मरन्नारायणेति च। उवाच देववर्गांश्च संभर्त्स्यं च पुनः पुनः
वेदवेदान्तविज्ञाता महाभक्तो हरौ हरे ॥ १३१ ॥

वृहस्पतिरुवाच ।

श्रूयतां मद्वचः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः ।
नीतिसारञ्च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥ १३२ ॥

हरकेशवयोर्भक्तं ये च निन्दन्ति पापिनः । भूदेवान् ब्राह्मणांश्चैव स्वगुरुं च पतिव्रता ॥

पतिभिक्षुब्रह्मचारीसृष्टिवीजान् सुरांस्तथा ।
पच्यन्ते कालसूत्रे ते यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ १३४ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषेषु शेरते ते दिवानिशम् । भक्षिता कीटनिकरैः शब्दं कुर्वन्ति कातराः ॥

ये निन्दन्ति च ब्रह्माणं स्रष्टारं जगतां गुरुम् ।
शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ १३६ ॥

गीताश्च तुलसीं गङ्गां वेदांश्च वेदमातरम् । व्रतं तपस्यां पूजाञ्च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम् ॥
ते पच्यन्तेऽन्धकूपे वै चायुषोऽर्द्धं विधेरहो । भक्षिताःसर्वसङ्घैश्च शब्दं कुर्वन्तिसन्ततम्
ये निन्दन्ति हृषीकेशं देवसाम्यं विधाय च । विष्णुभक्तिप्रदश्चैव पुराणञ्च श्रुतेः परम् ॥
राधान्तदङ्गजां गोपीर्ब्राह्मणांश्च सदार्चितान् । ते पच्यन्ते वटे देवा विधातुरायुषा समम्
अधोमुखा ऊर्द्ध्वजंघाः सर्पसङ्घैश्च वेष्टिताः । भक्षिता विकृताकारैः कीटैः सर्पसमाकृतैः
अतीवकातराभीताःशब्दं कुर्वन्ति सन्ततम् । श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि ध्रुवं भक्षन्तिक्षोभिताः

उल्कां ददति रुष्टाश्च सन्मुखे यमकिङ्कराः ।
त्रिसन्ध्यन्तर्जनं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताड़नम् ॥ १४३ ॥

कुर्वन्ति मूत्रपानञ्च प्रहारैस्तृषितान् भिया । तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिञ्च प्रथमे पुनः ॥

तेषां भवेत् प्रतीकार इत्याह कमलोद्भव ॥ १४५ ॥

कृत्वा हि शिवनिन्दाञ्च यास्यन्ति नरकं सुराः ।
इममेवोपकारञ्च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः ॥ १४६ ॥

ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो दत्त्वा शूलभृते सुताम् । न पापं परमैश्वर्य्यं संप्राप हरनिन्दकः ॥
अनिच्छया सुतांदत्त्वा तुर्य्यपुण्यं ललाभ सः। अहो विहायसारूप्यं तुच्छंसर्गंललाभसः
कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गत्वा शैलगृहं सुराः । सम्पादयत स्वमतं शैलेन्द्रस्य प्रयत्नतः॥

अनिच्छया सुतांदत्त्वा सुखंतिष्ठतु भारते। तस्मैभक्त्यासुतांदत्त्वामोक्षंप्राप्स्यतिनिश्चितम्
पश्चात्सप्तर्षयःसर्वे गृहीत्वा तामरुन्धतीम्। ध्रुवं तस्य गृहंगत्वा बोधयिष्यन्तिपर्वतम्॥
विना पिनाकिनं दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति। अनिच्छया सुतां तस्मै प्रदास्यति सुताज्ञया

इत्येवं कथितं सर्वं देवा गच्छन्तु मन्दिरम्।
इत्युक्त्वा वाक्पतिः शीघ्रं तपसे स्वर्णदीङ्गतः॥ १५३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधिकाकृष्णसंवादे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

देवब्रह्मसंवादवर्णनम्।

श्रीकृष्ण उवाच।

तदा देवाःसमालोच्य जग्मुस्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम्। सर्वेनिवेदयामासुर्ब्रह्माणं जगतांपतिम्

देवा ऊचुः।

ततः सृष्टौ जगत्स्रष्टा रत्नाधारो हिमालयः। स चेत्प्राप्स्यतिमोक्षञ्च रत्नगर्भा कुतो मही
सुतां शूलभृते दत्त्वा भक्त्या शैलेश्वरःस्वयम्। नारायणस्यसारूप्यंसम्प्राप्स्यतिनसंशयः
त्वं तस्य निन्दनं कृत्वा विमतिं प्रतिपादय। त्वयाविना क्षमो नान्यो गच्छशैलगृहंप्रभो
देवानां वचनं श्रुत्वा तानुवाच विधिः स्वयम्। वचनं नीतिसारञ्च कर्णपीयूषमुत्तमम्॥

ब्रह्मोवाच।

नाहं कर्त्तुं क्षमो वत्साःशिवनिन्दां सुदुष्कराम्। सम्पद्विनाशरूपाञ्च विपदोबीजरूपिणीम्
भूतेशं प्रस्थापयत स्वात्मनिन्दां करोतु सः। परनिन्दाविनाशाय स्वनिन्दा यशसेपरम्

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तं प्रणम्य सुराः प्रिये।
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं गत्वा च तुष्टुवुः शिवम्॥ ८॥

मलये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते । स्यन्दने चन्दनवने पश्चिमोदधिसन्निधौ ॥ २३ ॥
त्रिकूटे वटमूले च तत्र चन्द्रसरोवरे । सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनचर्चिते ॥ २४ ॥
सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते । क्षीरोदकाञ्चनीभूमौ क्रौञ्चकाञ्चनपर्वते ॥२५॥
रत्नशैले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे । माणिक्यमुक्तासारेण हीरहारेण शोभिते ॥२६॥
सुचारुवस्त्रचित्राढ्ये श्वेतचामरदर्पणैः । भूषिते रत्नदीपैश्च देवक्रीडे प्रियस्थले ॥२७॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा वरुणानीसमन्वितः । वरुणो रमते यत्र तत्र रेमे तया सह॥२८॥
पावने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च । सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले ॥२९॥
ऋक्षशैले कल्पवृक्षवने वह्निप्रियाश्रमे । पपौ च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं वह्निस्तस्मै ददौ मुदा । वरुणो रत्नमालाञ्च रत्नच्छत्रं समीरणः ॥
तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं वलिगेहात् समागतम् । प्रणम्य सर्वमुक्त्वा च चन्द्रस्तं शरणं ययौ
शुक्रस्तं बोधयामास वचनं नीतियुक्तितः । निरपेक्षो मुनिश्रेष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३३॥

शुक्र उवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि गुरवे देहि तारकाम् ।
शम्भोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै ॥ ३४ ॥
पूजिताय सुराणाञ्च देया तस्मै निशापते ।
प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज ॥ ३५ ॥

गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्वचनाद्विधो । कुरु पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला ॥
सतीनां गुरुपत्नीनां ग्रहणे च वलेन च । ब्रह्महत्यासहस्राणां पातकं लभते जनः ॥३७॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम् । साम्यं नारायणस्थाने तृणपर्वतयोः सुर

कस्त्वं वत्स हरेः स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः ।
नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिविधा भवे ॥ ३९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे ताराहरणे चाशीतितमोऽध्यायः ।

———

एकाशीतितमोऽध्यायः

ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः सुरश्रेणीं ददर्श सः । अकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीम्

पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथम् ।

शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम् ॥ २ ॥

अश्वानां तच्छतगुणं समूहश्च सुदारुणम् । पदातीनां समूहश्च तुरगेभ्यश्च षड्गुणम् ॥

दुन्दुभीवाद्यभाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च ।

पटहानां त्रिलक्षञ्च डिण्डिमानां त्रिलक्षकम् ॥ ३ ॥

ऐरावते महेन्द्रञ्च श्वेताश्वे धर्ममेव च । कुवेरं वरुणं वह्निं रथस्थं पवनं तथा ॥ ५ ॥

महिषस्थं यमञ्चैव स्यन्दनस्थं दिवाकरम् । ईशानञ्च गजेन्द्रस्थमनन्तं नागवाहनम् ॥

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् सिद्धगन्धर्वकिन्नरान् ।

जीवन्मुक्तमुनीनाञ्च समूहं सूर्यवर्चसम् ॥ ७ ॥

तान् दृष्ट्वा निर्भयः शुक्रः समाश्वास्य निशाकरम् ।

सुराणां द्विगुणं सैन्यमाजुहाव व्रजेश्वर ॥ ८ ॥

रत्नमालानदीतीरे हुताशनप्रियाश्रमे । तत्र तस्थौ दैत्यसैन्यं पुण्यक्षीरोदधेस्तटे ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे । पुण्याश्रमेऽक्षयवटे सुरसैन्यात् समागतम् ॥

ददर्श वृषभस्थञ्च शङ्करं सर्वशङ्करम् । त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥ ११ ॥

तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रविग्रहम् । सर्वसम्पत्प्रदातारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ १२ ॥

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वरूपं सनातनम् । शरणागतदिनार्त्तपरित्राणपरायणम् ॥ १३ ॥

सस्मितं परमात्मानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।

सन्त्रस्तः सहसोत्थाय प्रणनाम पदाम्बुजे ॥ १४ ॥

ददौ शुभाशिषं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः। रत्नसिंहासने तञ्च वासयामास सादरम् ॥
अथ तत्रान्तरे विप्र पुरतस्तं ददर्श सः। शान्तं स्वयं विधातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नमालाविभूषितम्। प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामीश्वरं परम् ॥

कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम्।
वेदानां जनकं वेदप्रसूकान्तं मनोहरम् ॥ १८ ॥
पुटाञ्जलिस्तदा त्रस्तः प्रणनाम सुरेश्वरम्।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास भक्तितः ॥ १९ ॥

पूजां चकार भक्त्या च तयोश्चरणपङ्कजे। नोचितं कुशलप्रश्नं तयोः कल्याणमेव च ॥

विधाता जगतां शुक्रमाचार्यं पुरतः स्थितम्।
सुनीतिं कथयामास यत्नतः शम्भुसम्मतः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच।

शृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि दुर्नीतिं शशिनः सुत। लज्जाकरं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम् ॥

स्नात्वा गृहोन्मुखीं तारां गुरुपत्नीं पतिव्रताम्।
गृहीत्वा शरणापन्नस्त्वयि पापश्च साम्प्रतम् ॥ २३ ॥
प्रस्तुतं देवसैन्यञ्च पश्य वत्स रणोद्यतम्।
अहं शम्भुस्त्वत्समीपं तदर्थञ्च समागतौ ॥ २४ ।

शम्भुरुवाच।

चन्द्रमानय हे विप्र यद्यात्मशिवमिच्छसि। संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः ॥

अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदैत्यान् क्षणेन च।
मयि रुष्टे रक्षिता को दैत्यानाञ्च भवेद् द्विज ॥ २६ ॥

सद्यः पाशुपतेनैव वाय्वास्त्रेण च साम्प्रतम्। सुराणां रिपुवर्गञ्च हरिष्यामिच लीलया
दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः। परस्पराच्च सम्बन्धाद् गुरुपुत्रो गुरुर्मम ॥
बृहस्पतिश्च तेजस्वी तं भस्मीकर्तुमीश्वरः। न चकार कृपालुश्चेत् प्रियशिष्येण हेतुना
उतथ्यपत्नीं दृष्ट्वा स पुरा रेमे स्वकामतः। तत्पतेः शापतोऽस्यैव परग्रस्ता प्रियासती

पत्नीं मद्गुरुपुत्रस्य देहि तारां मनोहराम् । मद्वैरिणञ्च चन्द्रञ्च भ्रातृभार्य्यापहारिणम्॥
शरणागतदीनार्तं न हि रक्षेद्यदीश्वरः । पच्यते निरये तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३२॥
अत्र नास्ति विचारो मे पापिष्ठे शरणागते । पापी यं शरणं याति स पापीच न संशयः
देहि तं विप्रशार्दूल पापिनं मातृगामिनम् ।बहिष्कृत्य स्वाश्रमाच्च तारासाध्वीसमन्वितम्

शुक्र उवाच ।

सुराणामसुराणाञ्च सर्वेषां जगतामपि । त्वमेवशास्ता भगवात् कोवाशास्ति सुरेऽसुरे
कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान् हनिष्यसि ।
संहर्तुः सर्वजगतां दैत्यौघे किञ्च पौरुषम् ॥ ३६ ॥
त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।
गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ३७ ॥
बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान् प्रभो । स्वयं प्रदत्ता शुक्राय तस्मै श्रीरपि लीलया
क्षमस्व भगवन् शम्भो हर क्रोधञ्च संहर । किं पौरुषञ्च भवतो ब्राह्मणस्यापि हिंसया
अहं जीवन् शरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम्॥
अहञ्च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शङ्कर । यथोचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तथैव च ॥
शुक्रस्य वचनंश्रुत्वा प्रसन्नो भगवान् शिवः । इत्युक्त्वाच निशानाथं समानय शुभंभवेत्
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयित्वा कविं विभुः । समानीय निशानाथं तारकासहितं व्रज
शम्भोश्च चरणाम्भोजे चकारच समर्पणम् । शम्भुस्तं प्रीतियुक्तश्च वासयामास वक्षसि
दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापञ्च चकार सः । दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ॥
क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शङ्करः। चकारचन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितःशुचिम्
योगेन चन्द्रं योगीन्द्रो द्विखण्डं तं चकार सः । ग्रक्षार्धं ललाटेच सोऽप्यर्द्धं ब्रह्मणःपुरः
एवमेव महोदेवो बभूव चन्द्रशेखरः । मृगाङ्को लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि ॥ ४८॥
लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः । तच्छरीरञ्च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम्
रुरोदात्रिश्च कृपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे ॥ ४९ ॥
अत्रेश्चक्षुर्जलं तस्य पपात च जले व्रज । तस्माद्बभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि ॥५०

ब्रह्मा च भगवान् शम्भुरभिषेकं चकार तम् । उवाच तं महादेवो निर्भयं देवसंसदि ॥

महादेव उवाच ।

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा ।

पश्चात्तस्याश्च शापेन यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि ॥ ५२ ॥

व्यर्थं पतिव्रताशापं कर्तुमीशश्च को भुवि । मदाशिषा यक्ष्मणश्च प्रतीकारो भविष्यति

यस्माद्भाद्रचतुर्थ्यान्तु गुरुपत्नीक्षतिःकृता । तस्मात्तस्मिन् दिने वत्स पापदृश्यो युगे युगे

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥५५॥

देहत्यागेन हे वत्स कर्मभोगो न नश्यति । प्रायश्चित्तान्न सन्देहो ह्रस्तमेव भविष्यति

तारापहरणाद्वत्स कलङ्कश्चन्द्रमण्डले । मृगाकृतिविलग्नश्च भविष्यति युगे युगे ॥ ५७ ॥

शृणु वाक्यमिहागच्छ तारके च पतिव्रते । सत्यंब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये

अकामतो बलात् साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति ।

कामतो नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५६ ॥

उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम् ।जहसुर्देवताः सर्वाः शम्भुश्च मुनिसङ्घकाः

ददौ ताराञ्च गुरवे लज्जिताय व्रजेश्वरः । वृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम् ॥

तया प्रसूतं पुत्रञ्च सुन्दरं कनकप्रभम् । गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य विधिं शिवम्

ययुर्देवाश्च मुनयः शम्भुश्च कमलोद्भवः । प्रययौ स्वगृहं शुक्रो दैत्ययुक्तो मुदान्वितः ॥

एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानं पुण्यदं शुभम् ।

एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत ॥ ६४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसम्पत्करं परम् । शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम् ॥६५॥

त्यज शोकं सदा नन्द गृहं व्रज व्रजेश्वर । ब्रूहि सर्वं यशोदाञ्च मत्प्रसूं गोपिकागणम्

बोधयिष्यसि सर्वां तां स्त्रीजातिं शोकसंयुताम् । मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तःसदा भव ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

ताराहरणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

———

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दुःस्वप्नवर्णनम् ।

नन्द उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो ।
उवाच तं वै भगवान् श्रूयतामिति तद्वचः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति । नर्तनं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तञ्च पश्यति । धनहानिर्भवेत्तस्य पीड़ा चापि शरीरजा
अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम् । खरोष्ट्रमहिषारूढ़ो मृत्युस्तस्य न संशयः
स्वप्ने कर्णे जपापुष्पमशोकं करवीरकम् । विपत्तिस्तस्य तैलञ्च लवणं यदि पश्यति ॥

नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा ।
कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणञ्च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम् ।
विपत्तिश्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥

वनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशञ्च सुपुष्पितम् । कार्पासं शुक्लवस्त्रञ्च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्

गायन्तीञ्च हसन्तीञ्च कृष्णाम्बरधरां स्त्रियम् ।
दृष्ट्वा कृष्णाञ्च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च । आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति
वान्तं मूत्रं पुरीषञ्च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम् । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमासिकम् ॥
कृष्णाम्बरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम् । उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति

मृतवत्सञ्च मुण्डञ्च मृगस्य च नरस्य च ।
यः प्राप्नोत्यस्थिमालाञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ १३ ॥

रथं खरोष्ट्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत् । तत्रस्थोऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनापि च । तक्रेणापि गुड़ेनैव पीड़ा तस्य विनिश्चितम्

रक्ताम्बरधरां नारीं रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम् ॥ १६ ॥

पतितान्नखकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च । भस्मपूर्णाश्चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च ॥

श्मशानं शुष्ककाष्ठञ्च तृणानि लौहमेव च ।
शमीञ्च किञ्चित्कृष्णाश्वं दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम् । माषं मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वासद्योव्रणं लभेत्
कटकं सरठं काकं भल्लूकं वानरं गवम् । पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम्
भग्नभाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठञ्च रोगिणम् । रक्ताम्बरञ्च जटिलं शूकरं महिषं खरम् ॥

अन्धकारं महाघोरमृतं जीवं भयङ्करम् ।
दृष्ट्वा स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

कुवेशरूपं म्लेच्छञ्च यमदूतं भयङ्करम् । पाशहस्तं पाशशस्त्रं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालको वा सुतः सुता ।
विलापं कुरुते कोपाद् दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

कृष्णं पुष्पञ्च तन्माल्यं सैन्यं शस्त्रास्त्रधारिणम् ।
म्लेच्छाञ्च विकृताकारां दृष्ट्वा मृत्युं लभेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥

वाद्यञ्च नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम् । मृदङ्गं वाद्यमानं तं दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥

त्यक्तप्राणं मृतं दृष्ट्वा मृत्युञ्च लभते ध्रुवम् ।
मत्स्यादि धारयेद्यो हि तद्भ्रातुर्मरणं ध्रुवम् ॥ २७ ॥

छिन्नं वापि कवन्धं वा विकृतं मुक्तकेशिनम् । क्षिप्रं नृत्यञ्च कुर्वन्तं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः

मृतो वापि मृता वापि कृष्णम्लेच्छा भयानका ।
उपगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥ २६ ॥

येषां दन्ताश्च भग्नाश्च केशाश्चापि पतन्ति हि । धनहानिर्भवेत्तस्य पीड़ा वा तच्छरीरजा ॥

उपद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणोदंष्ट्रिणोऽपि वा। बालका मानवाश्चैव तस्य राजकुलाद्भयम्
छिन्नवृक्षं पतन्तञ्च शिलावृष्टिं तुषं क्षुरम्। रक्ताङ्गारं भस्मवृष्टिं दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्॥
ग्रहं पतन्तं शैलं वा धूमकेतुं भयानकम्। भग्नस्कन्धं नरं वापि दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्
रथगेहशैलवृक्षगोहस्तितुरगाम्बरात्। भूमौ पतति यः स्वप्ने विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥
उच्चैः पतन्ति गर्तेषु भस्माङ्गारयुतेषु च। क्षारकुण्डेषु चूर्णेषु मृत्युस्तेषां न संशयः॥

बलाद् गृह्णाति दुष्टश्च छत्रञ्च यस्य मस्तकात्।
पितुर्नाशो भवेत्तस्य गुरोर्वापि नृपस्य वा॥ ३६ ॥

सुरभी यस्य गेहाच्च याति त्रस्ता सवत्सिका। प्रयाति पापिनस्तस्य लक्ष्मीरपिवसुन्धरा
पाशेन कृत्वाबद्धश्चयं गृहीत्वाप्रयान्तिच। यमदूताश्च ये म्लेच्छास्तस्य मृत्युर्विनिश्चितम्

गणको ब्राह्मणो वापि ब्राह्मणी वा गुरुस्तथा।
परिरुष्टः शपति यं विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥ ३९ ॥
विरोधिनश्च काकाश्च कुक्कुटा भल्लुकास्तथा।
पतन्त्यागत्य यद्गात्रे तस्य मृत्युर्न संशयः॥ ४० ॥

महिषाभल्लुकाउष्ट्राशूकरा गर्दभास्तथा। रुष्टा धावन्तियंस्वप्ने सरोगी निश्चतं भवेत्
रक्तचन्दनकाष्ठानि घृताक्तानि जुहोति यः। गायत्र्याचसहस्रेण तेन शान्तिर्विधीयते॥

सहस्रधा जपेद्यो हि भक्त्यैनं मधुसूदनम्।
निष्पापो हि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत्॥ ४३ ॥
अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्।
हंसं नारायणञ्चैव ह्येतन्नमाष्टकं शुभम्॥ ४४ ॥
शुचि पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत्।
निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥ ४५ ॥

विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम्। हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम्॥

भक्त्या चेमानि नामानि दश भद्राणि यो जपेत्।
शतकृत्वो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत्॥ ४७ ॥

लक्षधा हि जपेद्यो हि बन्धनान्मुच्यतेध्रुवम् । जप्त्वा च दशलक्षञ्च महावन्ध्या प्रसूयते
हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥ ४८ ॥
शतलक्षञ्च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । शुद्धो नारायणक्षेत्रे सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥
ओं नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम् ।
धर्मं गङ्गाञ्च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ५० ॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत् ।
वाञ्छितञ्च लभेत्सोपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत् ॥ ५१ ॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा ।
कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।
शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत् ॥ ५२ ॥
शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । सिद्धमन्त्रस्तु लभते सर्वसिद्धिञ्च वाञ्छिताम्
ओं नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधाजपेत् । दृष्ट्वाच मरणं स्वप्ने शतायुश्चभवेन्नरः
पूर्वोत्तरमुखो भूत्वा स्वप्नं प्राज्ञे प्रकाशयेत् ॥ ५४ ॥
काश्यपे दुर्गते नीचे देवब्राह्मणनिन्दके । मूर्खे चैवानभिज्ञे च न च स्वप्नं प्रकाशयेत् ॥
अश्वत्थे गणके विप्रे पितृदेवासनेषु च । आर्ये च वैष्णवे मित्रे दिवास्वप्नं प्रकाशयेत् ॥
इति ते पुण्यमाख्यानं कथितं पापनाशनम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५७ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीभगवन्नन्दसंवादे दुःस्वप्नवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

—— ——

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

विप्रादीनां धर्मकथनम्

नन्द उवाच ।

वेदानां कारणं त्वञ्च ब्रह्मादीनाञ्च पुत्रक । सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना

विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम् ।
सन्यासिनाञ्च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥

विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानांसतामपि । पतिव्रतानां स्त्रीणाञ्च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि

गृहिणां गृहिणीनाञ्च शिष्याणाञ्च विशेषतः ।
पुत्राणाञ्चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति ॥ ४ ॥
स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो ।
ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं वद नश्च किमात्मकम् ।
किं नित्यं कृत्रिमं किञ्च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सन्ध्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम् । नित्यं भुंक्ते मत्प्रसादमनिवेद्य कदाचन ॥
अन्नंविष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्मणः

नित्यं तपस्यानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित् ।
व्रततीर्थाश्रितो धर्मी नानाध्यापनसंयुतः ॥ ८ ॥
विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम् ।
गृहीत्वा तदनुज्ञाञ्च पश्चाद्भवति संगृही ॥ ९ ॥

दक्षिणां नित्यपूजानां गुरवे च निवेदयेत् । गुरूणां पोषणं नित्यं कर्तव्यं नात्र संशयः
सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः सुरः
मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणाञ्च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः ॥

उद्देशो दीयते तस्मै सुरायेति श्रुतौ श्रुतम् ।
प्रत्यक्षभोक्ता स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः ॥ १३ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः । गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥१४॥
गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिंस्तुष्टे च देवताः । गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न करिष्यति

लभते ब्रह्महत्याञ्च भुंक्ते कृत्वा च नाशिषम् ॥ १४ ॥

स्वधर्मनिरतोविप्रो ब्राह्मणश्चसदा शुचिः । विष्णुसेवीसदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिःसदा
ब्राह्मणो वृषवाहश्च शूद्राणां सूपकारकः । ब्राह्मणो देवलश्चैव सन्ध्याहीनश्च दुर्बलः ॥

ब्राह्मणश्च दिवाशायी शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ।
शूद्राणां शवदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः ॥ १८ ॥

शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः । भुंक्ते नैवेद्यशेषञ्च तत्पादोदकमेव च ॥१६॥
हरेःपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ॥

गङ्गाजलाद्दशगुणं शालग्रामजलं व्रज ।
नित्यं भुंक्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः ॥ २२ ॥

विप्राणां नित्यकृत्यञ्च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् । यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम् ॥

नित्यं त्रिसन्ध्यं कुरुते भक्त्या च मम पूजनम् ।
एकादश्यां न भुंक्ते च मम वै जन्मवासरे ॥ २४ ॥
शिवरात्रौ च हे तात श्रीरामनवमीदिने ।
न च भुंक्ते व्रती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २५ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे नतानि च ।
विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ २६ ॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रं कुरुते महीम् ।
तीर्थानि च नरांश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २८ ॥

सर्वतीर्थेषु स स्नातो व्रतानाञ्च फलं लभेत्। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्
वह्निवायुसमः पूतस्तेजसा भास्करोपमः। यमदूतं यमं चैव स च स्वप्ने न पश्यन्ति॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि पार्षदो हरिणा सह। न भवेत्तस्य पातो हि विप्रस्य हरिसेविनः

विष्णुमन्त्रोपासकश्च स एव वैष्णवो द्विजः।
ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न हि तस्मात्परः पुमान्॥ ३२॥
वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तन्त्रोक्तो वा मनुः शुचिः।
विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः॥ ३३॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम्। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। भित्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येव हरेः पदम्

पूर्वान् सप्त परान् सप्त सप्त मातामहादिकान्।
सोदरानुद्धरेद्भक्तस्तत्प्रसूं तत्प्रसूं तथा॥ ३६॥

जपेन्नारायणं क्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम्। पुरुषाणां सहस्रञ्च लीलयात्मानमुद्धरेत्॥ ३७॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण फलमेतद् व्रजेश्वर। पुरश्चरणसम्पर्कात् पुरुषाणां शतं शतम्॥३८॥

ऐकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षं समुद्धरेत्।
क्रिया विष्णुपदे यस्य सङ्कल्पाश्च बहिष्कृताः॥ ३९॥
द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणात् परः प्रियः।
विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तात् परः प्रियः॥ ४०॥

तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम्। करोति मन्त्रग्रहणं तस्माद् भूयाद्विचक्षणः
वयोहीनाज्ज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च। जातिहीनाद् गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन॥

शास्त्रार्थश्चाक्षतं मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन।
मूर्खादाश्रमहीनाच्च पितुः सन्न्यासिनस्तथा॥ ४३॥

रोगिणो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च। मन्त्रक्षिप्तात्तथा मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन

विष्णुमन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः।
न च शैवान्न शाक्ताच्च गृह्णीयाद्वैष्णवात् द्विजात्॥ ४५॥

वयोहीनात्तथाल्पायुर्ज्ञानहीनादपण्डितः ।
विद्याहीनाद्भवेन्मूढ़ो जातिहीनात् क्षयो भवेत् ॥ ४६ ॥
मूर्खान् मूर्खो भवेत् सद्यो दुःखी स्वाश्रमहीनतः ।
यशोहानिः पितुश्चैव मृत्युः सन्न्यासिनस्तथा ॥ ४७ ॥
रोगिणोव्याधियुक्तश्च निर्वंशोवंशहीनतः । भार्याहीनोऽपिस्त्रीहीनान्मन्त्रक्षिप्ताचुतत्समः
विष्णुभक्तिविहीनाच्च भक्तिहीनोभवेन्नरः । शैवाच्छाक्ताद् गृहीत्वा च हरौ भक्तिर्नवर्द्धते
ब्राह्मणो वैष्णवः शुद्धः पक्वान्नं-दातुमीश्वरः । पक्वान्नं हरये दातुमक्षमश्चेतरो जनः ॥
ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् ।
मह्यं पक्वान्नदानाच्च विप्रादन्यो व्रजेदधः ॥ ५१ ॥
उदासीनाद् दुराचारान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः ।
दैवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥
ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यञ्च निरामिषम् ।
आमिषस्य परित्यागात् सूर्य्यवत्तेजसा भवेत् ॥ ५३ ॥
नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च । अथवा पक्षपर्य्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः
स्थानंसुसंस्कृतं कृत्वापाकं निर्वृत्यपूजकः । स्थानेपरिष्कृते विप्रोदत्त्वा मह्यञ्चभक्तितः
तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्त्वा विप्राय सादरम् ।
अनिवेद्य च भुक्त्वा च सुरापीति भवेद् द्विजः ॥ ५६ ॥
चन्द्रसूर्य्योपरागे वै वाशौचे मृतजातयोः । स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत्
भ्रष्टद्रव्यं तथान्नञ्च धृत्वा धौते च वाससी । पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थानेपरिष्कृते
द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्य्ये द्विजातिभिः ।
निष्फलं तद्भवेत् कर्म भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५९ ॥
यात्रां युद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैथुने । वर्जयेत् श्राद्धदिवसे हविष्याशी च-संयमी॥६०॥
द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद् बुधाय च । वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने ॥
सन्ध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यत्नतः । शुक्रविक्रयिणे चैव देवलाय कदाचन ॥६२॥

प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्। पात्रं भुक्त्वा तद्दिवसे मैथुनान्नरकं व्रजेत्॥

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याविक्रयकारकः।

मूल्यं गृहीत्वा यो दद्यात्स महारौरवं व्रजेत्॥ ६४॥

कन्यालोमप्रमाणान्तं वर्षञ्च पितृभिः सह। कुम्भीपाके पच्यते च पुत्रश्चापि पुरोहितः

तस्मात्कन्यां सुपुत्राय प्रदद्याच विचक्षणः। शूद्रवद् ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च॥

विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर। यदुक्तञ्च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा॥

द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम्।

राज्यानां पालनञ्चैव रणे निर्भयता तथा॥ ६८॥

नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतरक्षणम्। पुत्रतुल्यं प्रजानाञ्च दुःखिनां परिपालनम्॥

शस्त्रास्त्राणाञ्च नैपुण्यं रणे सौन्दर्य्यमेव च। तपश्च धर्मकृत्यञ्च यत्नतः कुरुते सदा॥

पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यञ्च परिपालयेत्।

नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते॥ ७१॥

हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गञ्च चतुष्टयम्। पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान्॥

रणे निमन्त्रितश्चैव दानेन विमुखो भवेत्।

रणे वा यस्त्यजेत् प्राणान् तस्य स्वर्गो यशस्करः॥ ७३॥

वैश्यानामपि वाणिज्यमीश्वरः कृषिपालने। विप्रदेवार्चनं दानं तपस्या व्रतसेवनम्॥

विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते। तत्कृषी तद्धनग्राही शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥

गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः। श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापहः॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी च पातकी।

कुम्भीपाके पच्यते स यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥ ७७॥

कुम्भीपाके तप्ततैले भुक्तः सर्पैरहर्निशम्। शब्दञ्च विकृताकारं कुरुते यमताड़नात्॥

ततश्चाण्डालयोनिः स्यात् सप्तजन्मसु पातकी।

सप्तजन्मसु सर्पश्च जलौकाः सप्तजन्मसु॥ ७६॥

जन्मकोटिसहस्रञ्च विष्ठायां जायते कृमिः। पुंश्चलीनां योनिकृमिःस भवेत् सप्तजन्मसु

गवां व्रणकृमिः स्याच्च पातकी सप्तजन्मसु । योनौ योनौ भ्रमत्येव न पुनर्जायते नरः
सन्न्यासिनाञ्च यो धर्मो मन्मुखाच्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणो भवेत्
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिकृन्तनम् । कुरुते चिन्तयेन्माञ्च ह्यायाति मम मन्दिरम्

सन्न्यासिनः पदः स्पर्शात् सद्यःपूता वसुन्धरा ।
सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज ॥ ८४ ॥
सन्न्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः ।
सन्न्यासिनं भोजयित्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८५ ॥
नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् ।
फलं सन्न्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८६ ॥

सन्न्यासीयाति सायाह्ने क्षुधितोगृहिणांगृहम् । सदन्नं वा कदन्नं वा तद्दत्तंनैव वर्जयेत्
न याचते च मिष्टान्नं न कुर्य्यात्कोपमेव च । न धनग्रहणं कुर्य्यादेकवासा निरीहितः॥
शीतग्रीष्मे समानश्च लोभमोहविवर्जितः । तत्र स्थित्वैकरात्रञ्च प्रातरन्यत्स्थलंव्रजेत् ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम् ।
गृहं कृत्वा गृही स्यात् स्वधर्मात् पतितो भवेत् ॥ ९० ॥
कृत्वा च कृषिवाणिज्यं कुवृत्तिं कुरुते च यः ।
स सन्न्यासी हृताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥ ९१ ॥

अशुभञ्च शुभं वापि स्वकर्म कुरुते यदि । बहिष्कृतः स्वधर्मो वाप्युपहास्यश्च वै भवेत्

ब्राह्मणी पतिहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा ।
एकभुक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा ॥ ९३ ॥

न धत्ते दिव्यवस्त्रञ्च गन्धद्रव्यं सुतैलकम् । स्रजञ्च चन्दनञ्चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम् ॥९४
त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणंस्मरेत् । नारायणस्य सेवाञ्चकुरुते नित्यमेव च
तन्नामोच्चारणं शश्वत् कुरुतेऽनन्यभक्तितः । पुत्रतुल्यञ्च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः ॥
मिष्टान्नं न च भुंक्ते सा न कुर्य्याद्विभवंव्रज । एकादश्यां न भोक्तव्यंकृष्णजन्माष्टमीदिने
श्रीरामस्य नवम्यान्तु शिवरात्रौ पवित्रया । अघोरायाञ्च प्रेतायां चन्द्रसूर्य्योपरागयोः॥

भ्रष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च। ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्
सन्न्यासिनाञ्च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्। रक्तशाकं मसूरञ्च जम्बीरं पर्णमेव च॥

अलावु वर्तुलाकारं वर्जनीयं च तैरपि।
पर्य्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम्॥ १०१॥
यानस्यारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत्।
न कुर्य्यात् केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च॥ १०२॥

केशवेणीजटारूप तत्क्षौरं तीर्थकं विना। तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत न हि पश्यति दर्पणम्॥
मुखञ्च परपुंसाञ्च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्। नर्तनं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम्॥
शृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम्। परमार्थं परञ्चैव निबोध कथयामि ते॥
अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम्। गुरूणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा॥

सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम्।
व्याख्यानं परिशुद्धञ्च ग्रन्थाभ्यस्तञ्च सन्ततम्॥ १०७॥

व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसम्मतः। शास्त्रार्थाचरणञ्चैव कर्तव्यं स्वयमेव च॥
देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीप्सितम्। वेदोक्तभक्षणञ्चैव पवित्राचरणं सदा॥१०६
पतिव्रतानां यं धर्मं तन्निबोध व्रजेश्वर। नित्यन्तु भर्तर्य्यौत्सुक्यात्तत्पादोदकमीप्सितम्
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया। व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः॥
कुर्य्याच्चरणसेवाञ्च स्तवनं परितोषणम्। तदाज्ञारहितं कर्म न कुर्य्याद्वैरतःसती॥११२
नारायणात् परं कान्तं ध्यायते सततं सती। परपुंसां मुखञ्चैव सुवेशं पुरुषं परम्॥
यात्रां महोत्सवं नृत्यं नर्तकं गायनं व्रज। परक्रीड़ाञ्च सततं न हि पश्यति सुव्रता॥

यद्भक्ष्यं स्वामिनां नित्यं तदेवमपि योषिताम्।
न हि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता॥ ११५॥

उत्तरे नोत्तरं दद्यात् स्वामिनश्च-पतिव्रता। न कोपं कुरुते शुद्धा ताड़िता चापि कोपक

क्षुधितं भोजयेत् कान्तं दद्यात् पानञ्च भोजनम्।
न बोधयेत्तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु॥ ११७॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु शङ्कर वक्ष्यामि ज्ञानानन्द सनातन । ज्ञानं ज्ञाननिधे शोकाद्विस्मृतोऽसि परात्पर ॥
सुदिनं दुर्दिनं शश्वत् भ्रमत्येवं भवे भवे । सर्वेषां प्राकृतानाञ्च ते बीजे सुखदुःखयोः ॥
सुखाद्भवति हर्षश्च दर्पः शौर्य्यं प्रमत्तता । राग ऐश्वर्य्यकामश्च विद्वेषश्च निरन्तरम् ॥
दुःखाच्छोकात् समुद्वेगाद्भयं नित्यं प्रवर्तते । हतान्येतानि सर्वाणि हते बीजे महेश्वर ॥
सुदिनं दुर्दिनञ्चैव सर्वकर्मोद्भवं भव । तत्कर्म तपसां साध्यं कर्मणाञ्च शुभाशुभम् ॥

तपः स्वभावसाध्यञ्च स्वभावोऽभ्यासतो भवेत् ।
संसर्गसाध्योऽभ्यासश्च संसर्गः पुण्यतो भवेत् ॥ ५४ ॥

पुण्यबीजं मनश्चैव पापबीजञ्च चञ्चलम् । मनः शम्भो ममांशश्च सर्वेन्द्रियपुरःसरम् ॥
सर्वेषां जनकोऽहञ्च चित्त्वं ब्रह्मा पतिस्त्वयम् । ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन सन्ततम्
तद्ब्रह्म विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणंशिव । मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्चनिर्गुणः
स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च । इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिर्नित्या सर्वप्रसूःसदा
केचिदेकं वदन्त्येवं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् । केचिद्वदन्ति द्विविधं ब्रह्म प्रकृतिपूर्वकम् ॥
शृणु ये च वदन्त्येकं मायापुरुषयोः परम् । तस्माद्भवति तौ द्वौ च तद्ब्रह्म सर्वकारणम्
अथ चैकं परं ब्रह्म द्विविधं भवतीच्छया । इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिः सर्वशक्तिप्रसूः सदा ॥
तत्रासक्तश्च सगुणः सर्वाधारः सनातनः । सर्वेश्वरः सर्वसाक्षी सर्वत्रास्ति फलप्रदः ।
शरीरं द्विविधं शम्भो नित्यं प्राकृतमेव च । नित्यं विनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा ॥
अहं त्वञ्चापि भगवन्नावयोर्नित्यविग्रहः । आवयोरंशभूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः ॥६४॥
रुद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः । ममाप्येवं द्विधारूपं द्विभुजञ्च चतुर्भुजम् ॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह । गोलोके द्विभुजोऽहञ्च गोपीभिः सह राधया

द्विविधं ये वदन्त्येवं द्वौ प्रधानौ तु तन्मते ।
पुरुषश्च सदा नित्यो नित्या प्रकृतिरीश्वरी ॥ ६७ ॥
सदा तौ द्वौ च संश्लिष्टौ सर्वेषां पितरौ शिव ।
सशरीरौ निःशरीरौ स्वेच्छया सर्वरूपिणौ ॥ ६८ ॥

प्राधान्यञ्च यथा पुंसः प्रकृतेश्च सदा तथा। सतोमिच्छसि चेच्छम्भो प्रकृतेःस्तवनंकुरु

यत् स्तोत्रञ्च त्वया दत्तं पुरा दुर्वाससे मुदा।
तद्दिव्यं कण्वशाखोक्तं भज तेन जगत्प्रसूम्॥ ७० ॥
शोकनाशो भवतु ते शिवं शिव ममाशिषा।
दूरं विप्लवहेतुश्च यातु स्त्रीविरहज्वरः॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्त्वा लक्ष्मीशो विरराम गिरीश्वर। स्तवनं कर्तुमारेभे प्रकृतेश्च महेश्वरः॥७२॥
स्नात्वा नत्वाच श्रीकृष्णं ब्रह्माणं भक्तिसंयुतः। पुटाञ्जलियुतो भूत्वापुलकाञ्चितविग्रहः

महेश्वर उवाच।

ओं नमः प्रकृत्यै मन्त्रः।

ब्राह्मि ब्राह्मस्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि। परमात्मस्वरूपेच परमानन्दरूपिणि॥७४॥
भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि। पोतस्वरूपेऽजीर्णे त्वं मां प्रसीद भवार्णवे॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वबीजस्वरूपिणि। सर्वाधारे सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे॥७६॥
सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि। समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले॥ ७७॥
निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रद्धे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणि। लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले॥
वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि। सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे॥ ७९॥
दये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके। क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि
लक्ष्मीर्नारायणक्रोडे स्रष्टुर्वक्षसि भारति। मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे॥
कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि। परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनवत्सले॥
कारणे सर्वशक्तीनां कृष्णस्योरसि राधिके। कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते
यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे। सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि॥८४॥
समस्तकामिनीरूपे कलांशेन प्रसीद मे। सर्वसम्पत्स्वरूपे च सर्वसम्पत्प्रदे शुभे॥८५
प्रसीदपरमानन्दे कारणे सर्वसम्पदाम्। यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे॥
आधारे सर्वजगतां रत्नाधारे वसुन्धरे। चराचरस्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम्॥
योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे। योगाधिष्ठात्रि देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि

सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि। कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे॥
व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि। ज्ञाने यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि॥
केचिद्वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च। केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः॥

महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम्।
मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ॥ ९२॥

दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्रह्माणं रक्षितुं पुरा। बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः।

नारायणस्त्वया भक्त्या जघान तौ महासुरौ।
सर्वेश्वरस्त्वया सार्द्धमनीशोऽयं त्वया विना॥ ९४॥

पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि। त्वया च विष्णुना सार्द्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि॥
अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना। स्वात्मदर्शनपुण्येन क्रीणीहि परमेश्वरि॥९६॥

इत्युक्त्वा विरतः शम्भुर्ददर्श गगनस्थिताम्।
रत्नसाररथस्थां तां देवीं शतभुजां मुदा॥ ९७॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां रत्नाभरणभूषिताम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम्॥
दृष्ट्वा तां विरहासक्तः पुनस्तुष्टाव सत्वरम्। दुःखं निवेदयामास प्ररुदन्विरहोद्भवम्॥

दर्शयामासास्थिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम्।
कृत्वा बहुपरीहारं तोषयामास सुन्दरीम्॥ १००॥

नारायणश्च ब्रह्मा च धर्मः शेषः सुरर्षयः। शिवं रक्षेश्वरीत्युक्त्वा तुष्टुवुस्ते सनातनम्
बभूव परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम्। उवाच कृपया शम्भुं प्राणेशं प्राणवल्लभा

प्रकृतिरुवाच।

स्थिरो भव महादेव प्राणाधिक मम प्रभो।
भवानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि॥ १०३॥

अहं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्ममहेश्वर। तव पत्नी भविष्यामि मुञ्चत्वं विरहज्वरम्

इत्युक्त्वा शिवमाश्वास्य चान्तर्धानं चकार सा।
सुरा जग्मुस्तमाश्वास्य लज्जानम्रात्मकन्धरम्॥ १०५॥

हर्षान्तरात्मा गिरिशः कैलाशं तं जगामह । ननर्त सगणस्तूर्णं सन्त्यज्य विरहज्वरम् ॥
इदं शिवकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः । न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जन्मनि जन्मनि ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा स याति शिवमन्दिरम् ।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः ॥ १०८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे शङ्करशोकापनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीपरिणयवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

वशिष्ठस्यवचःश्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितोभार्य्ययासार्द्धंजहासपार्वतीस्वयम्
अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कातराम् । निराहारां रुदन्तीं तां जहौ शोकंमुदा च सा
अरुन्धतीं भोजयित्वा बुभुजे भोगमुत्तमम् । सर्वं प्रहृष्टमनसा मङ्गलञ्च चकार ह ॥३॥
ततः संभृतसंभारो वशिष्ठस्याज्ञया प्रिये । पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरान्वितः
ततः प्रस्थापयामास शिवं मङ्गलपत्रिकाम् । नानाप्रकारद्रव्याणि वाद्यानि च चकार ह
तण्डुलानाञ्च शैलान् वै पृथुकानाञ्च सुन्दरि । तैलानाञ्च घृतानाञ्च दध्नां वापीश्चकारह
गुड़ानामासवानाञ्च क्षीराणाञ्च तथैव च । अथो हैयङ्गवीनानां लवणानां परं मुने ॥
लड्डुकानां शर्कराणां स्वस्तिकानां तथैव च ।
यवचूर्णादिपिष्टानां घृतपक्वानि तानि च ॥ ८ ॥
नानाप्रकारवस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च । महारत्नप्रवालानि सुवर्णरजतानि च ॥९॥
द्रव्याण्येतानि शैलेन्द्रः कृत्वा तु विधिपूर्वकम् । मङ्गलं कर्तुमारेभे तत्रैव मङ्गले दिने ॥
संस्कारं कारयामासुः पार्वतीं पर्वतस्त्रियः । स्नापयित्वा वस्त्रयुग्मं धारयामासुराशु ताः

कारयित्वा सुवेशाञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम्॥१२॥

ददुश्चालक्तकं चारु पादाङ्गुलिषु पादयोः ।

गण्डे पत्रावलीं रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

कवरीं कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम् । पट्टसूत्रपिनद्धां तां वामवक्त्रां मनोहराम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः । नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्थमीश्वरम् ॥

शैलः संभृतसंभारान् सम्भाषयितुमीश्वरान् ।

शैलान् प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान् ॥ १६ ॥

प्राङ्गणं कारयामास रम्भास्तम्भैः समन्वितम् । पट्टसूत्रसन्निबद्धरसालपल्लवान्वितैः ॥

फलपल्लवसंयुक्तैः कलसैर्जलसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः ॥ १८ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम् । देवेश्वरान् पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥

रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किङ्करान् ।

नारायणो हि भगवानुवास पार्षदैः सह ॥ २० ॥

विनतानन्दनात्तूर्णमवरुह्य चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्षदैश्च रत्नभूषणभूषितैः ॥ २१ ॥

रत्नमुष्टिनिबद्धैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । ऋषिश्रेष्ठैः सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानश्च संसदि ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः । उवास च तदभ्यासे ब्रह्मा देवगणैः सह॥२३॥

ऋषयो मुनयश्चैव समूषुर्मङ्गले स्थले । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुरवरुह्य रथाद्धो ॥ २४ ॥

रत्नासने समुत्तिष्ठन् ददर्श पर्वतालयम् । समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्द्रनगरस्त्रियः ॥

वृद्धाबाला युवत्यश्च वस्त्राभरणभूषिताः । काश्चित्कज्जलहस्ताश्च वस्त्रहस्ताश्च काश्चन

काश्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित् कङ्कतिकाकराः ।

वेशार्धभूषिताः काश्चित् काश्चिन्नैवार्धभूषिताः ॥ २७ ॥

काश्चिन्निर्भूषिताः काश्चित् सर्वाभरणभूषिताः ।

सर्वा आगत्य सन्तस्थुः सस्मिताः पर्वतालये ॥ २८ ॥

ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । गन्धर्वशैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः

सर्वा अप्सरसो दिव्या रम्भाद्याःसमुपस्थिताः । मेनकन्यागणैः सार्द्धं ददर्श शङ्करंवरम्

चारुचम्पकवर्णाभमेकवक्त्रं त्रिलोचनम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम् ॥३१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम् । मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥३२॥

वह्निशौचेनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा ।
अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिभूषितम् ॥ ३३ ॥

रत्नदर्पणहस्तञ्च कज्जलोज्ज्वललोचनम् । सर्वया प्रभयाच्छन्नमतीवसुमनोहरम् ॥३४॥
अतीवतरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम् । विभ्रन्तं रूपमतुलं परं नारायणाज्ञया ॥ ३५ ॥

योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ।
स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३६ ॥

गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम् । तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम् । साक्षिरूपं निरीहञ्च परमानन्दमक्षरम् ॥ ३८ ॥

आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यं सर्वरूपकम् ।
दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदान्विता ॥ ३९ ॥

प्रशशंसुर्युवत्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः । दुर्गा भाग्यवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः
कामेनकाश्चित्कामिन्यो मौनीभूताश्चकाश्चन । न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्ज्ञानगोचरे

काश्चिन्निमेषरहिता मूर्च्छामापुश्च काश्चन ।
निनिन्दुः स्वपतिं काश्चित् स्वेच्छाश्चक्रुश्च काश्चन ॥ ४२ ॥

काश्चिद्भावेन रुरुदुः पुलकाञ्चितविग्रहाः ।
कामेन काश्चित् कामिन्यो मौनीभूताश्च स्तम्भिताः ॥ ४३ ॥

जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । दृष्ट्वा शङ्कररूपञ्च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः ॥ ४४ ॥
नानाप्रकारवाद्यानि चारूणि मधुराणि च । वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र वै ॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरचारिकाः । वह्निश्चक्रुश्च सद्रत्नासनस्थां रत्नवेदिकाम्

कस्तूरीविन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरविन्दुभूषिताम् ।
चारुचन्दनचन्द्राभां नम्रभालस्थलोज्ज्वलाम् ।
रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविभूषिताम् ॥ ४७ ॥

त्रिनेत्रदत्तनेत्रान्तामन्यवारितलोचनाम् । अतीषद्धास्ययुक्तास्यां सकटाक्षां मनोहराम् ॥
रत्नकेयूरवलयरत्नकङ्कणमण्डिताम् । रत्नपाशकसंसक्तां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ ४९ ॥
अमूल्यातुल्यचित्राढ्यवस्त्रयुग्मसुशोभिताम् ।
सद्रत्नकुण्डलास्याञ्च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ॥ ५० ॥
मणिसारप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम् । रत्नदर्पणहस्ताञ्च क्रीड़ापद्मं विघूर्णतीम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनाङ्गचर्चिताम् । मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम्॥५२॥
त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदान्वितः । सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम्
शिवः सर्वं विसस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुयुक्तलोचनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।
तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ॥ ५५ ॥
भक्त्या पाद्यादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः । ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः सम्प्रदानञ्चकार ताम्
यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च । चारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च
गवां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके । रत्नकम्बलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदान्वितः
त्रिशल्लक्षं हयानाञ्च सज्जितानामकातरः । दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रत्नभूषितम् ॥५९॥
शतं द्विजवटूनाञ्च पार्वतीभ्रातृकल्पकम् । रथानाञ्च शतं रम्यं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥६०
पार्वतीं वस्तुसहितां स्वस्तीत्युच्चार्य्य शङ्करः । जग्राहानन्दमनसा यत्नाच्छैलसमर्पिताम्
हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारञ्चकार तम् ।
माध्यन्दिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव सम्पुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

हिमालय उवाच ।

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक । सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह ॥६३॥
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त गणेश्वर । गुणबीज महाभाग प्रसीद गुणिनां वर ॥६४॥
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण । योगेश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो ॥
प्रलय प्रलयाद्यैक भव प्रलयकारण । प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक ॥ ६६ ॥
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण । दुर्निवार्य्य दुराराध्य चाशुतोष प्रसीद मे ॥

कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक । कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक ॥
शिवस्वरूप शिवद शिवबीज शिवाश्रय । शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय ॥६१॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा विरराम हिमालयः । प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम् ॥
हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः । प्रददाति शिवस्तस्मै वाञ्छितं राधिके ध्रुवम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
पार्वतीसम्प्रदाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

———

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अथ वेदविधानेन संस्थाप्य वह्निमीश्वरः । यज्ञं चकार तत्रैव वामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥
निवृत्ते विधिवद् यज्ञे विप्राय दक्षिणां ददौ । शिवः शतसुवर्णानि वृन्दावनविनोदिनि॥
अथ प्रदीपमानीय शैलेन्द्रनगरस्त्रियः । निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं संप्राप्य दम्पती ॥ ३ ॥
कृत्वा जयध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मञ्छनादिकम् ।
सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ ४ ॥
वासगेहं संप्रविश्य ददृशुः कामिनीगणाः । शङ्करं रूपवेशाढ्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम् ॥६॥
अपूर्वसूक्ष्मवेशाढ्यं सिन्दूरविन्दुभूषितम् । चारुचम्पकवर्णाभं सर्वावयवसुन्दरम् ॥७॥
नवीनयौवनस्थञ्च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् । सरस्वतीञ्च लक्ष्मीञ्च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम्
अदितिञ्च शचीञ्चैव लोपामुद्रामरुन्धतीम् ।
अहल्यां तुलसीं स्वाहां रोहिणीञ्च वसुन्धराम् ॥ ९ ॥
शतरूपाञ्च संज्ञाञ्च सतीस्त्रीणाञ्च षोडश । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥

या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुञ्च कः क्षमः ।
ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा ।
सम्बभुः क्रमशो देव्यो मधुरोक्ति सुधामिव ॥ ११ ॥

सरस्वत्युवाच ।

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा ।
दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं सन्तापं त्यज कामुक ॥ १२ ॥
कालं गमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम् ।
विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाशिषा ॥ १३ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

लज्जां विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि ।
तिष्ठ सम्प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥ १४ ॥

सावित्र्युवाच ।

भोजयित्वा सतीं शम्भो शीघ्रं भोजय मा खिद ।
तदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि भक्तितः ॥ १५ ॥

जाह्नव्युवाच ।

स्वर्णकङ्कतिकां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः ।
कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं सुखं नातः परं भवेत् ॥ १६ ॥

रतिरुवाच ।

गृहीत्वा पार्वतीं देव सुभगामतिदुर्लभाम् ।
कथं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः ॥१७॥
जीवयसि विभो कामं कामव्यापारमात्मनि । कुरु दूरञ्च सन्तापं मम विश्लेषहेतुकम् ॥
दम्पतीविरहक्लेशं सर्वं ज्ञात्वा दयानिधे । तथापि मम कान्तश्च कोपेन भस्मसात्कृतः ॥
इत्युक्त्वा कामभस्माथ ददौ सा ग्रंथिबन्धितम् ।
रुरोद पुरतः शम्भोर्नाथ नाथेत्युदीर्य्य च ॥ २० ॥

हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः । ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम् ॥२१
दृष्ट्वा नारायणं धर्मं ब्रह्माणञ्च सुरानपि । जयेन पीठादुत्थाय स्वाज्ञां कुर्वित्युवाच ह

शंकरस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ।
कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्रं जगाम सः ॥ २३ ॥

ऊचुर्देव्यो वहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम् । क्रुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः
दृष्ट्वा कामं रतिस्तञ्च प्रणनाम महेश्वरम् । तद्रूपञ्च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम् ॥
प्रणम्य शङ्करं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान् प्रणम्य समुवाच ह
कामं सम्भाष्य देवाश्च युयुजुश्च तमाशिषम् । काले रक्षा विनाशश्च निषेधः केन वार्यते
अथ शैलः सुरान् सर्वान्नारायणपुरोगमान् । भोजयामास भक्त्या च शाययामास यत्नतः

अथ शम्भुर्वासगृहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम् ।
मिष्टान्नं भोजयामास तया सह मुदान्वितः ॥ २९ ॥

भुक्तवन्तं शिवं तत्र देवमातादितिः स्वयम् । उवाच सस्मितं राधे सम्प्रीत्या सरसं वचः

अदित्युवाच ।

भोजनान्ते शचि शम्भोःशौचार्थं जलमर्पय । देहि शीघ्रं मम प्रीत्या दम्पत्योःप्रीतिपूर्वकम्

शच्युवाच ।

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शवं कृत्वा स्ववक्षसि ।
यो बभ्राम भवं मोहात् कालेन प्राप तां सतीम् ॥ ३२ ॥

अरुन्धत्युवाच ।

मया दत्ता सती तुभ्यं मेना दातुमनीप्सिता । विविधं बोधयित्वेमां रतिञ्च कर्तुमर्हसि

अहल्योवाच ।

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणोऽधुना । तेन मेना तु मेने त्वां सुतामर्पितुमीश्वर

तुलस्युवाच ।

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः ।
कथं तदा वशिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ॥ ३५ ॥

स्वाहोवाच

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम् । विवाहेव्यवहारोऽस्तिपुरस्त्रीणांप्रगल्भता

रोहिण्युवाच ।

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद । कुरुपारं स्वयंकामी कामिनां कामसागरम्

वसुन्धरोवाच ।

भोगद्रव्यं विना भोगी न हि तुष्टः क्षुधातुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छम्भो तत्कर्तुमुचितंस्त्रिया

संज्ञोवाच ।

जानासि भावं सर्वज्ञ कामार्तानाञ्च योषिताम् ।
न च स्वस्वामिनं शम्भो सती जानाति सङ्गतम् ॥ ३६ ॥

शतरूपोवाच ।

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवःस्वयम् ।
निर्विकारी च भगवान् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥

शङ्कर उवाच ।

देव्यो मा वदतोक्तिञ्च ह्येवम्भूतां ममान्तिके । जगतां मातरःसाध्व्यः पुत्रे चपलताकथम्
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः । बभूवुःसम्भ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥
भुक्त्वा मिष्टानि भगवानाचम्य च मुदान्वितः । सकर्पूरञ्च ताम्बूलं बुभुजे भार्य्यया सह
रत्नसिंहासने शम्भुर्मेनादत्ते मनोहरे । सन्निधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम् ॥४५॥
रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया । रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामाणिक्यभूषितम् ॥४६॥
रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः । चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । रत्नसारेण खचितं रचितं हीरकैर्वरैः ॥
कुत्रचित् सुरनिर्माणवैकुण्ठसुमनोहरम् । वृन्दावनं कुत्र वनं कुत्रचिद्रासमण्डलम् ॥४९
कैलासञ्च कुत्रचन कुत्रचिदिन्द्रमन्दिरम् । दृष्ट्वाऽऽश्चर्य्यं महादेवः परितुष्टो बभूव ह ॥५०

अथ प्रभातकालश्च बभूव प्राणवल्लभे । नानाप्रकारवाद्यश्च वाद्याञ्चक्रिरे जनाः ॥ ५१ ॥

सर्वे सुराः समुत्तस्थुः सज्जीभूताः ससम्भ्रमाः ।
स्ववाहनान् समारुह्य कैलाशं गन्तुमुद्यताः ॥ ५२ ॥

वासगेहं समागत्य धर्मो नारायणाज्ञया । उवाच शङ्करं योगी योगीशं समयोचितम् ॥

धर्म उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भवतु प्रमथाधिपः ।
पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुरु हरिं स्मरन् ॥ ५४ ॥

इत्थं धर्मवचः श्रुत्वा पार्वत्या सह शङ्करः । यात्रां चकार माहेन्द्रे वृन्दावनविनोदिनि
यात्रां कुर्वति देवेशे पार्वत्या सह शङ्करे । उच्चैरुदित्वा सा मेना तमुवाच कृपानिधिम्

मेनोवाच ।

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्वत्सां पालयिष्यसि । सहस्रदोषं भगवानाशुतोषः क्षमिष्यति
त्वत्पदाम्बुजभक्तैश मद्वत्सा जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेव प्रभुं विना
त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युञ्जय मृता इव ॥
इत्युक्त्वा मेनका शीघ्रं तत्रागत्य हिमालयः । उच्चैरुरोद च तदा वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि

क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य्य शून्यं कृत्वा हिमालयम् ।
स्मारं स्मारं तद्गुणौघं विदार्य्य मन्मनः स्फुटम् ॥ ६१ ॥

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्य च शिवां शिवे । सशैलः सहपुत्रश्च रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥
नारायणश्च भगवानध्यात्मविद्यया स्वयम् । सर्वान् प्रबोधयामास कृपया स कृपानिधिः
ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुरुम् । मायया च महामाया रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६४
पार्वतीरोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः । मुनयश्च सुराः सर्वे सस्त्रीकाः सगणा ध्रुवम् ॥६५
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसशायिनः । मुहूर्तार्द्धेन मुदिताः संप्रापुः शङ्करालयम् ॥
दृष्ट्वा गता देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्वरम् । आययुर्दीपमानीय मुदा मङ्गलकर्मणि ॥
वायुपत्नी कुवेरस्य कामिनी शुक्रकामिनी । तारा सुरगुरोः पत्नी पत्नी दुर्वाससस्तथा ॥
अत्रिभार्य्याऽनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैव च । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रशः

असंख्यकामिनीसङ्घः संख्यां कर्त्तुञ्च कः क्षमः ।
ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पती वासमन्दिरम् ॥ ७० ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरम् । सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वालयं मुदा ॥
सति स्मरस्यतो गेहाद्यद्गता तातमन्दिरम् ॥ ७१ ॥
अधुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा । जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती ।
सर्वं स्मरामि प्राणेश मौनीभूतो भवेति तम् ॥ ७३ ॥
शिवः संभृतसंभारो नानावस्तु मनोहरम् । भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान् ॥
भुक्त्वा देवाः प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः । सस्त्रीकाःसगणाः सर्वे प्रणम्यचन्द्रशेखरम्
नारायणञ्च ब्रह्माणं ननामशङ्करः स्वयम् । तौ च तञ्च समाश्लिष्याशिषं कृत्वाप्रजग्मतुः
अथ शैलश्च मेना च मैनाकमाजुहाव ह ।
शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वतीं शङ्करं सुत ॥ ७७ ॥
तयोःस वचनं श्रुत्वा शीघ्रंगत्वाशिवालयम् । आजगामसमानीय पार्वतीपरमेश्वरौ ॥
पार्वत्या गमनंश्रुत्वाबालाश्च बालिकास्तथा । वृद्धायुवत्यो या याश्चशैलाश्चदुद्रुवुर्मुदा ॥
मेना सुताभ्यां वध्वा च सह दुद्राव सस्मिता ।
हिमालयश्च मुदितो दुद्रावानुव्रजन् सुताम् ॥ ८० ॥
अवरुह्य रथाद्देवी मातरं पितरं गुरुम् । प्रणनाम प्रमुदिता निमग्नानन्दऽऽसागरे ॥ ८१॥
पार्वतीञ्च समाश्लिष्य मेनका हर्षविह्वला । हिमालयश्च मुदितो गताःप्राणा इवागताः ॥
सुतां निधाय गेहे स्वे रत्नसिंहासनं ददौ । शूलभृते गणेभ्यश्च मधुपर्कादिकं मुदा ॥
तस्थौ श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः । नित्यंषोड़शोपचारैः पूजितः सह भार्य्यया ॥
इत्येवं कथितं राधे शङ्करोद्वाहमङ्गलम् । शोकघ्नं हर्षजनकं किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणेनारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
शङ्करविवाहो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

———

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

राधिकाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

राधिकोवाच

सुचिरञ्च मृतं कामंशङ्करेण च जीवितम् । रतिः पुनःप्रियं प्राप्यकिंचकारमुदान्विता ॥
स्त्रीणां स्वस्वामिविच्छेदो मरणादतिदुष्करः । पुनःसंमेलनं भर्तुः सुखंपरमदुर्लभम् ॥
शिवः सतीं तां संप्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि । चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदान्वितः ॥
कलत्रविरहः पुंसांसर्वशोकात्सुदुष्करः । पुनःसम्मीलनं तस्याः प्राणदानाधिकंसुखम्
रतिःपुंसोविरहिणीशिवःस्त्रीविरहीचिरम् । द्वयोर्द्वयोश्चसंप्राप्तौकिंस्वभूव द्वयोःसुखम्
तदेव श्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलं मम । कृपया विदुषां श्रेष्ठ सव्यासं कथय प्रभो ॥
मेलनं शक्तिशिवयो रतिमन्मथयोस्ततः । शोकापहं श्रुतवतां सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ७ ॥

नारायण उवाच ।

इत्युक्त्वाराधिकादेवीसस्मिता विरराम ह । कृष्णस्तद्वचनंश्रुत्वा सस्मितस्तामुवाच ह ॥

कृष्ण उवाच

मृतं कामं पुनःप्राप्य कामार्ता कामकामिनी ।
स्वालयं तं समानीय हरोद्वाहगृहादहो ॥ ६ ॥
भर्तुः सुवेषं विविधं स्वात्मनः स्वालिभिर्मुदा ।
कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका ॥ १० ॥

ज्ञात्वा कामस्तु तद्भावं कामशास्त्रविधायकः। रत्नयानं समारुह्य जगाम स्वालयाद्वनम् ॥
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥१२
काञ्चने भूमिनिकरे वटमूलेऽतिनिर्जने । नदीपुलिनभूम्याञ्च पुष्पिते पुष्पकानने ॥ १३ ॥
भ्रमरध्वनि संयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । सुगन्धिवायुनाकीर्णा दधती जलशीकरम् ॥
चित्तेषु चेतनानाञ्च हरणं योषितामहो । कलामानप्रकारेण शृङ्गारञ्च चकार सा ॥१५॥

पूर्णमब्दशतं दिव्यं स रेमे वामया सह । दिवानिशं न बुबुधे संसक्तः सततं मुदा ॥
तस्थतुस्तौ च तत्रैव संसक्तौ सन्ततं मुदा । सुरतौ च न विरतौ रतिशास्त्रविशारदौ
पतिविच्छेदसन्तापं विजहौ सा रतिर्मुदा । प्राप्य रत्नमपहृतं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥
इत्येवं कथितं सर्वं रतिसन्तापकारणम् । शृङ्गारं शक्तिशिवयोरतुलं शृणु राधिके ॥
शृण्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम् । सर्वसन्तापहरणं सुखदं पुण्यदं शुभम् ॥
वसन् श्वशुरगेहे स पार्वत्या सह शङ्करः । तदनुज्ञां सामदाय क्रीडार्थं प्रययौ वनम् ॥
रत्नस्यन्दनमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नसारेण खचितं रचितं विश्वकर्मणा ॥२२॥
शतशृङ्गे सुवसने मलये गन्धमादने । नन्दने पुष्पभद्रे च पारिभद्रे च भद्रके ॥ २३ ॥

पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके ।
वने वनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे ॥ २४ ॥

निकटेऽस्तगिरेः पार्श्ववटमूले मनोहरे । चकार करुणां यत्र परित्यज्य सती शिवम् ॥
नानास्थानेषु रहसि पशुपक्षिविवर्जिते । यथा मनोरथं गामी स रेमे वामया सह ॥२६
यत्र यत्र शवं नीत्वा बभ्राम धरणीतलम् । तत् सर्वं दर्शयामास सतीं शम्भुर्मुदान्वितः
कृत्वा विहारं सुचिरं न पूर्णं मानसं तयोः । महाशृङ्गारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥
मायातीतोऽतिमायेशो मायासक्तः स्वमायया । न कालं बुबुधेयोगी सुखेन कालकारकः
शक्तिशक्तिमतोस्तत्र न बभूव परिश्रमः । जहतोःसर्वसन्तापमन्योन्यविरहोद्भवम् ॥३०॥
सुखसंसक्तमनसोः पुलकाञ्चितगात्रयोः । कामबाणमूर्च्छितयोः पुष्पशय्याशयानयोः ॥
नग्नयोः सुखसम्भोगाद्रतिशास्त्रविधिज्ञयोः । नखदन्तप्रहारैश्च क्षतविक्षतदेहयोः ॥ ३२॥

चन्दनागुरुकस्तूरीसिन्दूरविन्दुलिप्तयोः ।
निबद्धकेशकबरीश्लथयोश्छिन्नमाल्ययोः ॥ ३३ ॥
वसनानां नूपुराणां कङ्कणानाञ्च सुन्दरि ।
वलयानां कुण्डलानां शब्दैः क्रीड़ा प्रकुर्वतोः ॥ ३४ ॥

पुष्पतल्पं दलितयोर्वाष्पोत्कर्षञ्च बिभ्रतोः । तेजसा समयोःशश्वत् क्रीड़या कौतुकेनच
भारेण विश्वम्भरयोर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा । सा विदीर्णा चकम्पे च सशैलवनसागरा

तयोर्भरभराक्रान्तधरायाश्च भरेण च। भाराक्रान्तो हि शेषश्च तद्भरार्तोऽपि कच्छपः॥ कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः। महाविक्लवयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः स्तम्भितेषु समीरेषु त्रिलोका भयविह्वलाः। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणं ययुः सर्वं निवेदयामासुर्नारायणपदाम्बुजे। नारायणश्च भगवानुवाच कमलोद्भवम् ॥ ४० ॥

श्रीनारायण उवाच।

शृङ्गारभङ्गसमयो भविता नाधुना विधे। कालप्रयुक्तं कार्य्यञ्च सिद्धं तत्समयोचितम् पूर्णे वर्षसहस्रेच स्वेच्छया विरमिष्यति। शम्भोःसम्भोगमिष्टञ्च को भेदं कर्तुमीश्वर स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः। तस्य स्त्रीपुंसयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ यात्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी। भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह॥ रम्भा युक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ। महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह॥ पुनरन्यां स संप्राप्य निषेव्य शूलपाणिनम्। दिव्यवर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वरम्॥ रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ। महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह॥ पुनः शिवं समाराध्य प्रापाहल्याञ्च पुष्करे। दिव्वर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वरम् ॥४८॥ मुनिः स्वभार्य्यासंसक्ते दिवसे निर्जने वने। ब्रह्माण्डकसुतं नीत्वा चकार विरतं रुषा॥ बभूव पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः। शिवं निषेव्य संप्राप्य पुत्रं तत्याज विक्लवम् हरिश्चन्द्रो हालिकञ्च वृषल्या सह संयतम्। वारयामास निश्चेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु भ्रष्टः श्रीराज्यवित्तेभ्यस्तं चकारावलीलया। विश्वामित्रो महर्षिश्च ताड़यामास तं पुरा ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसम्पदाम्। सद्यो जगामवैकुण्ठंसगणो मम मन्दिरम् अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम्। न भिया वारयामासुः सुरास्तश्चाति केचन निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह। मन्नामस्मृतिमात्रेण चाजगाम ममालयम् सर्वं निषेकसाध्यञ्च निषेको बलवान् विधे। निषेकफलदाताहं निषेकः केन वार्य्यते॥ दिव्यं वर्षसहस्रञ्च शम्भोः सम्भोगकर्मकृत्। निषेकफलदातुस्तु निषेकफलसञ्चयम्॥

पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र महेश्वरः।
येन वीर्य्यं पतद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

तत्र वीर्य्ये च भविता स्कन्दको भक्ततारकः ।
सदा भद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते ॥ ५९ ॥

अधुनात्वं गृहंगच्छ भगवन् स्वगणैः सह । करोतु शम्भुः सम्भोगं पार्वत्या सहनिर्जने
इत्युक्त्वा कमलाकान्तःशीघ्रं स्वान्तःपुरंययौ । स्वालयं प्रययुर्देवाःशिवःस्वस्थो रतौरतः

नारायण उवाच ।

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्णः सकटाक्षाञ्च सस्मिताम् ।
जगाम चन्दनवनं निर्जने च तया सह ॥ ६२ ॥

अतीवनिर्जनं रम्यं वायुना सुरभीकृतम् । पुष्पोद्यानैः समाकीर्णे तत्र क्रीड़ां चकार ह ॥
पुष्पतल्पसमाकीर्णे परपुष्टश्रुतश्रुते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे ॥ ६४ ॥

कृष्णसम्भोगमात्रेण सुखसंमूर्च्छिता च सा ।
अतीवमूर्च्छितः कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमात्रतः ॥ ६५ ॥

तस्थतुस्तत्र संयुक्तो राधारासेश्वरौ मुने । अतीवरतिनिश्चेष्टौ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
इत्येवं मङ्गलं कर्म यः शृणोति समाहितः । कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य नारद ॥

महाशोकार्णवे मग्नो भेदे पुत्रकलत्रयोः ।
मद्भृत्यानत्स्च बन्धूनां मासं श्रुत्वा लभेद् ध्रुवम् ॥ ६८ ॥

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च विरराम महामुनिः । पुनः संप्रष्टुमारेभे देवर्षिः कौतुकान्वितः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे मङ्गल-
वर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम् ।
कां कथां कथयामास कथ्यतां करुणानिधे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्थाय सुखसम्भोगाद्राधां कृत्वा पुरो हरिः । उवास मलयद्रोण्यां वटमूले मनोहरे ॥
राधां तां परिपप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम् । दर्पभङ्गं वज्रभृतो निगूढं श्रुतिसुन्दरम् ॥

श्रीराधिकोवाच ।

श्रुतं यशः शूलभृतो दर्पभङ्गश्च दैवतः । पार्वत्या दर्पभङ्गश्च विवाहश्च तयोरहो ॥ ४ ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पभङ्गं हरेर्हरे ।
शेषाणाञ्च क्रमेणैव वद व्यस्य जगद्गुरो ! ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्पभङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । कर्णपीयूषमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि ॥ ६ ॥
पुरा शतमखो दर्पात् कृत्वा शतमखं मुदा । बभूव सर्वदेवानामध्यक्षः सम्पदा युतः ॥७॥
दिने दिने तदैश्वर्य्यं वर्द्धते तपसः फलात् । दीक्षान्तं कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः
स जजाप महामन्त्रं पुष्करे शतवत्सरम् । बभूव मन्त्रसिद्धश्च परिपूर्णमनोरथः ॥ ९ ॥
ब्रह्मस्वरूपां प्रकृतिं सम्पन्मूढो न मन्यसे ।
सा तं शशाप स्वगुरोः शापं लभेऽतिकोपतः ॥ १० ॥
एकदा प्रकृतेः शापाद्धतबुद्धिः स्वसंसदि । गुरुं दृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मुदान्वितः
बृहस्पतिस्ततः कोपान्नोवास गृहमाययौ । न तस्थौ तारकाभ्यासे तपसे काननं ययौ॥
उवाच मनसा दीनो या तु सम्पद्धरेरिति । अथ शक्रो मतिं प्राप्य क्व गतोऽतो मदीश्वरः

इत्युक्त्वा वेगतः पीठाज्जगाम तारकान्तिकम् ।
प्रणम्य मातरं भक्त्या नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः ॥ १४ ॥
सर्वं निवेदनं कृत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा रुरोद तारका भृशम् ॥
वत्स गच्छ गृहं नैव गुरुं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम् ।
दुर्दिनान्ते गुरुं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि ॥ १६ ॥
अधुना कर्मणां भोगं भुंक्ष्व मूढ दुराशय ।
दुर्दिने स्वगुरौ दोषः सुदिने परितोषणम् ॥ १७ ॥
सुदिनं दुर्दिनं शक्र कारणं सुखदुःखयोः । इत्युक्त्वा तारकादेवी विरराम पतिव्रता ॥
जगाम शक्रःस्नानार्थंस्वर्णदीं सुमनोहराम् । ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीञ्चनितम्बिनीम् ॥
सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम् ।
दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥ २० ॥
सतस्याः शक्रःसम्पश्यन् मुमोहकाममोहितः । पुनःसचेतनांप्राप्यविहायस्नानमीश्वरि ॥
मूर्ति विधाय तद्भर्तुस्तत्समीपं जगाम ह ॥ २१ ॥
गत्वा तु स्निग्धवस्त्रां तां समाकृष्य स्मरातुरः । चकारविविधंतत्र शृङ्गारं सुमनोहरम्
मूर्च्छां संप्राप कामेन तन्द्राञ्च मुनिकामिनी ।
निश्चेष्टा सुखसम्भोगान्निश्चेष्टस्त्रिदशाधिपः ॥ २३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा समागत्य मुनीश्वरः । ददर्श गेहे मिथुनं मैथुने च रतिप्रिये ॥२४॥
दृष्ट्वा चुकोप स मुनिर्ज्वलन्निव हुताशनः । विज्ञो न चातिरोषेण बभञ्ज सुरतिक्षणम् ॥
शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवम् ।
कालस्वरूपं त्रासेन दधार चरणाम्बुजम् ॥ २६ ॥
कोपरक्तास्यनयनो देवं पादानतं भिया । उवाच नीतिवचनं जगाम शरणागतम् ॥

गौतम उवाच

धिक् त्वामिन्द्र सुरश्रेष्ठ कश्यपात्मज पण्डित ।
प्रपौत्र जगतां स्रष्टुर्बुद्धिस्ते कथमीदृशी ॥ २८ ॥

मातामहः स्वयं दक्षोऽदितिर्माता पतिव्रता। कर्मसाध्यः स्वभावश्च कुलधर्मं प्रबाधते॥
वेदं विज्ञाय ज्ञानी त्वं योनिलुब्धोऽसिकर्मणा। योनीनाञ्च सहस्रञ्च तवगात्रे भवत्विह
पूर्णवर्षञ्च सततं योनिगन्धं त्वमाप्नुहि। ततः सूर्य्यं समाराध्य योनिश्चक्षुर्भविष्यति॥

मम प्राणेश्वरी दुष्टा येन मूढ़ त्वया कृता।
मच्छापेन गुरोः कोपाद् भ्रष्टश्रीर्भव साम्प्रतम्॥ ३२॥

गुरोरपेक्षया मूढ़ प्राणा नापहृतास्तव। तेजस्विनोऽतिवन्धोर्मे वन्धुभेदभिया सुर॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठदेवेन्द्र गच्छ वत्सस्वमन्दिरम्। शुभाशुभञ्चयत्किञ्चित् सर्वं कर्मोद्भवंभवेत्
महामुनीन्द्रवचनाद्गत्वा शक्रश्च पुष्करम्। चकाराराधनं भक्त्या नैष्कृत्यञ्च चकार ह॥
पादानतामहल्यां तामुवाच मुनिपुङ्गवः। वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः॥
अकामाञ्चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहंप्रिये। तथा च परभोग्या मे न च भोग्या व्रजाधमे
परवीर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपिवा। अहल्ये याति दैवेन तदुपायं निशामय॥३८॥
अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेनशुध्यति। कामभोगेनत्याज्या सा कर्मभोगेनशुध्यति
पितृपाके दैवपाके पूजायां नाधिकारिणी। षष्टिर्वर्षसहस्राणि कालसूत्रं प्रयाति सा॥
षष्टिर्वर्षसहस्राणिक्षयं कृत्वास्वकर्मणः। स्वामिनोवचनात् सा तु प्रणम्यस्वामिनंभिया

नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती वनमाप सा।
षष्टिर्वर्षसहस्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया॥ ४२॥

श्रीरामचरणस्पर्शात्सद्यः शुद्धा वभूव ह। त्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी॥
जगाम गौतमाभ्यासं मुनिः सम्प्राप्यसुन्दरीम्। अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं श्रृणुसुन्दरि

पापघ्नं पुण्यवीजं तत् संव्यस्य कथयामि ते।
एकदा च गुरोः कोपात् प्रकृतेरेव हेलनात्॥ ४५॥

ब्रह्महत्या वज्रभृतो वभूव हतचेतसः। शक्रस्त्यक्तगुरुर्दैवत्रस्यो दैत्यनिपीड़ितः॥ ४६॥
जगाम शरणं भीतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम्। तदाज्ञया विश्वरूपञ्चकार च पुरोहितम्॥

वभूव तत्र विश्वस्तो दैवाद्बुद्धिहतो हरिः।
दैत्यदौहित्रस्य भावं विज्ञाय च विचक्षणः॥ ४८॥

प्रचिच्छेद शिरस्तस्य तीक्ष्णबाणेनलीलया। विश्वरूपपिता त्वष्टा श्रुत्वा सद्यश्चुकोपह
इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्वेत्युक्त्वा यज्ञश्चकार ह। यज्ञकुण्डात् समुत्तस्थौ वृत्रो नाममहासुरः
चकार निग्रहं कोपाद्देवानामवलीलया। शक्रो महामुनेरस्थ्नां वज्रं कृत्वा सुदारुणम् ॥
जघान वृत्रं देवानां कण्टकं दैत्यमर्दनः। ब्रह्महत्या शुनासीरं दुद्राव हतचेतनम् ॥५२॥
रक्तवस्त्रपरीधाना वृत्रस्त्रीवेशधारिणी। सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥
ईषाप्रमाणदशना महाभीतश्चकार तम्। धावन्तं परिधावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम् ॥५४॥

खड्गहस्ता दयाहीना वेगेन परिधावति।
इन्द्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम् ॥ ५५ ॥
विवेश मानससरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः।
तत्र गन्तुं न शक्ता सा ब्रह्मणः शापकारणात् ॥ ५६ ॥

सा तस्थौ वटशाखायां सरसस्तटसन्निधौ। अथात्र नहुषो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह
स ययाचे शचीं देवान् बलिष्ठो दुर्बलानपि। शची श्रुत्वा महाभीता तारकां शरणंययौ
तारा निर्भर्त्स्य स्वपतिं भृत्यपत्नीं ररक्ष च। शचीमाश्वास्य स्वगुरुर्जगाम तत्सरो मुदा

आजुहाव शुनासीरं कातरं हतचेतनम् ॥ ५९ ॥

बृहस्पतिरुवाच।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे वत्स भयं किं ते मयि स्थिते। त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामय भयंत्यज
स्वरं बृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो हरिः। सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपञ्च दधार सः
उत्थायसद्यःसम्भ्रान्तोगुरुं तं सूर्य्यवर्चसम्। दृष्ट्वाननामसम्प्रीत्या सम्प्रीतंत्यक्तकोपकम्
पादाम्बुजे निपतितं रुदन्तं भयविह्वलम्। निधाय वक्षसि प्रेम्णा रुरोद प्रेमविह्वलः ॥

रुदन्तं वाक्पतिं तुष्टं तुष्टाव त्रिदशेश्वरः।
पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ६४ ॥

इन्द्र उवाच।

क्षमस्व भगवन् दोषं कृपां कुरु कृपानिधे। (पुत्र) भृत्यापराधं (च)न गृह्णाति सदीश्वरः

स्वभार्य्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च।

दुर्बलः सबलो वापि को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥ ६६ ॥
त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः । त्वत्प्रसादात् सुरश्रेष्ठ कृपया बर्द्धितस्त्वया
संहर्तुमीशस्त्वंसर्वमहं को वापिकीटवत् । स्वयंविधातुः पौत्रश्च पुनः स्रष्टुं स्वयंक्षमः
इति तस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो गुरुः स्वयम् । उवाच वचनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः

गुरुरुवाच ।

स्थिरो भव महाभाग निश्चलां कमलां लभ । सम्प्राप्य परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम्
गच्छामरावतीं वत्स राज्यं कुरु पुरन्दर ।
हतशत्रुर्मत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शचीं सतीम् ॥ ७१ ॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः । ददर्श पुरतो घोरं ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम्
दृष्ट्वा शक्रो महाभीतस्तं गुरुं शरणं ययौ । बृहस्पतिर्महाभीतः सस्मार मधुसूदनम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग् बभूवाशरीरिणी । स्वल्पाक्षरा च बह्वर्था तां शुश्राव बृहस्पतिः
संसारविजयं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ।
राधिके वचनं श्रुत्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च ॥ ७५ ॥
तदा तत् कवचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः ।
चकार भस्मसात्ताञ्च हुङ्कारेणैव लीलया ॥ ७६
तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वाताममरावतीम् । ददर्श छिन्नभग्नाञ्च शत्रुणा वचनाद्गुरोः
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शची संहृष्टमानसा । प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा
श्रुत्वा गमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये । ऋषयो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः ॥
योजयामास सत्कारं निर्मातुममरावतीम् । पूर्णमब्दशतं शिल्पी निर्ममे त्वमरावतीम्
नानारत्नविचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम् ।
मनोहरां निरुपमां न हि तुष्टो यया हरिः ॥ ८१ ॥
विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाक विनाज्ञया । परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तमुवाच विधिः स्वयम् । तव कर्मक्षयादेव तावच्छ्वो भवितेति च
श्रुत्वा तद्वचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम् । ब्रह्मा जगाम वैकुण्ठं प्रणम्योवाच मातरम्

हरिर्ब्रह्माणमाश्वास्य प्रस्थाप्य स्वगृहञ्च तम् । विप्ररूपं समास्थाय चाजगामामरावतीम्

दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्
अतिखर्वः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः ॥ ८६ ॥
वयसातिशिशुर्वृद्ध्या ज्ञानवृद्ध्या विचक्षणः ।
स्वयं विधातुर्धाता च दाता च सर्वसम्पदाम् ॥ ८७ ॥

इन्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन् द्वारपालमुवाच ह । ब्रूहीदं ब्राह्मणो द्वारे त्वां शीघ्रं द्रष्टुमागतः ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा द्वारिज्ञानं चकार तम् । स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्भकम्
बालकानांबालिकानां समूहैःपरिवेष्टितम् । हसद्भिश्च महोत्साहात्सस्मितंतेजसान्वितम्
प्रणनाम हरिर्भक्त्या तं हरिं शिशुरूपिणम् । आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्भक्तवत्सलः ॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकार तम् । पप्रच्छागमनं कस्माद्वदेति विप्रबालकम्
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम् । चित्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्याद्भुतं हरे

कतिवर्षैश्च निर्माणे भवान् संकल्पितो यथा ।
कतिचितां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति ॥ ९५ ॥

एवम्भूतञ्च निर्माणं न केनेन्द्रेण निर्मितम् । नैवंविधं सुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः ॥
बालकस्य वचः श्रुत्वा जहास स सुरेश्वरः । सम्पन्मदातिमत्तश्च पुनः पप्रच्छ बालकम्

कतीन्द्राणां समूहश्च त्वया दृष्टः श्रुतोऽथवा ।
विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना ॥ ९८ ॥

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विप्रबालकः । तमुवाच श्रुतिसुखं पीयूषसदृशं वचः ॥९९॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानामि कश्यपं तात तव तातं प्रजापतिम् । मुनिं मरीचिनामानं तत्रालञ्च तपोनिधिम् ।

नाभिपद्मोद्भवं विष्णोः स्तुत्वा तं विधिमीश्वरम् ।
रक्षितारञ्च तं विष्णुं परं सत्वगुणान्वितम् ॥ १०१ ॥

एकार्णवञ्च प्रलयं सत्वशून्यं भयानकम् । सृष्टिं कतिविधां शक्र कल्पं कतिविधं ध्रुवम्

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिन्द्रान् को गन्तुमीश्वरः ॥ १०३ ॥

यदि संख्याऽस्ति रेणूनां धरायाञ्च सुराधिप ।

तथापि संख्या शक्राणां नास्त्येवेति विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

शक्रश्चायुश्चाधिकारो युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिशक्राणां पतनेऽहर्निशं विधेः ॥

विधेरष्टोत्तरशतमायुरेव प्रमाणतः । रसेन्द्राणाञ्च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि ॥

ब्रह्माण्डसंख्या यत्र क्व ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ॥

ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा ।

एवं लोम्नः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाःसन्त्यसंख्यकाः ॥ १०८ ॥

ब्रह्माण्डे च कतिविधाः सुराः सन्त्येव त्वत्समाः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुषोत्तमः

पिपीलिकासमूहञ्च व्यायतं धनुषां शतम् । क्रमशस्तान् संनिरीक्ष्य जहासोच्चैर्द्विजार्भकः

नोवाच किञ्चिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा हास्यं विप्रवटोर्गाथां श्रुत्वातिविस्मितः । पप्रच्छ च पुनर्विप्रं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः

इन्द्र उवाच ।

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद ।

त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः ॥ ११२ ॥

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानबीजं परं वरम्

ब्राह्मण उवाच ।

दृष्टः पिपीलिकासङ्घो हेतुरस्य निगूढकः। मा मां पृच्छ शोकबीजं तवान्यज्ञानकारणम्

सांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिकृन्तनम् । अज्ञानतमसि छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम् ।११५

निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम् । योगिनां प्राणतुल्यञ्च मूढाहङ्कारभञ्जनम् ॥

इत्युक्त्वा तत्र सन्तस्थौ सस्मितो द्विजपुङ्गवः ।

पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ ११७ ॥

शक्र उवाच ।

ब्रूहि विप्रवटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम् । न जानामि शिशुःकस्त्वंज्ञानराशिःस्वमूर्तिमान्
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । ज्ञानं भाषितुमारेभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

सृष्टःपिपीलिकासङ्घ एकैकं क्रमशो मया । सर्वे स्वकर्मणा शक्र शक्रीभूताः सुरालये ॥

अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम् ।
अतीतकाले संप्राप्ता भूतजातिं पिपीलिकाम् ॥१२१ ॥

कर्मणाजीविनो यान्ति वैकुण्ठञ्च निरामयम् । कर्मणा ब्रह्मलोकञ्च शिवलोकञ्च कर्मणा
स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालञ्च स्वकर्मणा । कर्मणा नरकंघोरं स्वात्मदुःखैककारणम्
कर्मणा शूकरीगर्भं कर्मणा क्षुद्रजीवनम् । कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोषिताम् ॥
कर्मणा कीटयोनिञ्च वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा सुखीदुःखी सेव्यः सेवकएव च
कर्मणाब्राह्मणत्वञ्चदेवंचापि स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वञ्च स्वकर्मणा ॥
कर्मणाव्याधियुक्तश्च कर्मणैवातिसुन्दरः । कर्मणा स्वाङ्गहीनश्च स्वाङ्गवृद्धश्च कर्मणा ॥

विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम् ।
कर्म स्वभावसाध्यञ्च स्वभावोऽभ्यासजीवकः ॥ १२८ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं वचः । सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णवतारकम् ॥
संसारः स्वप्नवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम् । मृत्युश्च मस्तकस्थायी सर्वेषां कालयोगतः
जलबुद्बुदवत्सर्वं जीविनाञ्च शुभाशुभम् । शक्र शश्वद् भ्रमत्येव नाविष्टस्तत्र पण्डितः
इत्येवमुक्त्वाविप्रश्च तत्रतस्थौ च सस्मितः । विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नात्मानंबहुमन्यते
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनीश्वरः । अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान् ॥

कृष्णाजिनी जटाधारी बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।
वक्षःस्थले रोमचक्रं बिभर्त्ति मस्तके कटम् ॥ १३४ ॥

स्थितंसर्वं मध्यदेशेकिञ्चिदुत्पाटितं स्फुटम् । समागत्यद्वयोर्मध्येतस्थौस्थाणुवदेव सः
महेन्द्रो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणनाम मुदान्वितः । मधुपर्कादिकं दत्वापूजयामास भक्तितः ॥

पप्रच्छ कुशलं विप्रश्चकार विनयं पुनः। तुष्टावातिथिभावेन मुदा सादरपूर्वकम्॥
विप्रार्भकस्तेन सार्द्धं सम्भाषाञ्च चकार सः। स्ववाञ्छितं परंप्राहसर्वं विनयपूर्वकम्॥

बालक उवाच।

कुतस्त्वमागतो विप्र किन्नाम तव वा वद। को वात्रागमने हेतुर्निवासः केन हेतुना॥
कटं कथं मस्तके ते लोमचक्रञ्च वक्षसि। अत्युन्नतं मध्यदेशे किञ्चिदुत्पाटितं मुने॥

मां चेत् कृपाऽस्ति ते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम्।
अत्यद्भुतमिदं सर्वं श्रोतुं कौतूहलं मम॥ १४१॥

स शिशोर्वचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः। सर्वं स्वकीयवृत्तान्तं शक्रस्य पुरतो मुदा।

मुनिरुवाच।

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः। न विवाहश्चोपजीव्यं भिक्षोपजीविनाऽधुना
लोमशेति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम्। वर्षणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं कटं मम॥
वक्षःस्थलस्थितं रोमचक्रं तत्कारणं शृणु। सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम्।
आयुःसंख्याप्रमाणं मे लोमचक्रञ्च वक्षसि। शक्रैकपतनं विप्र लोमैकोत्पाटनं मम॥

उत्पाटितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च।
ब्रह्मणो द्विपरार्धे च मम मृत्युर्निरूपितः॥ १४७॥

असंख्यविधयो ब्रह्मन् मरिष्यन्ति मृता अपि। कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोजनम्
ब्रह्मणः पतने चक्षुर्निमेषश्च हरेर्भवेत्। तत्पादपद्ममतुलं चिन्तयामि निरन्तरम्॥१४९॥
दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी। स्वप्नवत्सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम्॥१५०
इदं मद्गुरुणा दत्तं शम्भुना ज्ञानमुत्तमम्। विना भक्तिं न गृह्णामि सालोक्यादिचतुष्टयम्

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम शिवसन्निधिम्।
शिशुरूपी हरिस्तत्रैवान्तर्धानं चकार ह॥१५२॥

इन्द्रस्तु स्वप्नवद् दृष्ट्वा बभूव तत्र विस्मितः। तृष्णामात्रञ्च सम्पत्तौ नास्त्येव परमेश्वरे

विश्वकर्माणमानीय प्रियमुक्त्वा शतक्रतुः।
दत्त्वा रत्नानि सम्पूज्य तं प्रस्थापितवान् गृहम्॥ १५४॥

सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः। शचीं राज्यश्रियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः
दृष्ट्वा विवेकिनं कान्तं हृदयेन विदूयता। शची जगाम शोकार्ता सन्त्रस्ता शरणं गुरोः
सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम्। बोधयामास शक्रं तं नीतिसारेण कामिनी
गुरोः शास्त्रविशेषञ्च दम्पतीरससंयुतम्। विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा

मुनिः शास्त्रविशेषञ्च बोधयामास वाक्पतिः।
स चकार तदा राज्यं वृन्दावनविनोदिनि ॥ १५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शक्रदर्पविमोचनम्। साक्षाद् दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयज्ञे सुरेश्वरि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णराधासंवादो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

राधिकोवाच।

कथितंभवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः। दर्पभङ्गं रवेश्चापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच।

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह। माली सुमाली दैत्येन्द्रौ दीप्तिं कर्तुं समुद्यतौ
महासम्पन्मदोन्मत्तौ शङ्करस्य वरेण च। तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ॥३॥
रुष्टः सूर्य्यः स्वशूलेन तौ जघानावलीलया। पतितौ सूर्य्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले ॥
भक्तापायञ्च विज्ञाय शङ्करो भक्तवत्सलः। आगत्य जीवयामास सहाज्ञानेन तौ विभुः॥

तौ च नत्वा शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम्।
दुद्राव च महादेवः सूर्य्यं हन्तुं रुषा ज्वलन् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः। भिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥७॥

दुद्राव च महादेवो ब्रह्मणो निलयं रुषा। शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः॥
दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं रुष्टं तुष्टाव परमेश्वरम्। चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः॥६॥

ब्रह्मोवाच।

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न सूर्य्यं मच्छरणागतम्। त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो॥
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल। कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष दिवानिशम्॥
ब्रह्मस्वरूप भगवन् सृष्टिस्थित्यन्तकारण। स्वयं रविञ्च निर्माय स्वयं संहर्तुमिच्छसि

स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्य्यो हुताशनः।
चन्द्रइन्द्रादयो देवास्त्वत्तो भीताः परात्पर॥ १३॥

ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः। तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसांफलम्
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा तं सूर्य्यमानीय भक्तितः। प्रीत्या समर्पयामास शङ्करे दीनवत्सले॥
शम्भुस्तमाशिषं कृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः। प्रसन्नवदनः श्रीमानालयं प्रययौ मुदा

इति धातृकृतं स्तोत्रं सङ्कटे यः पठेन्नरः।
भयात् प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ १७॥

राजद्वारे श्मशाने च मग्नपोते महर्णवे। स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः॥१८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीकृष्णराधासंवादो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।

———

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वह्निदर्पभङ्गवर्णनम्।

श्रीकृष्ण उवाच।

सूर्य्यःप्रणम्य ब्रह्माणं मुदायुक्तस्तदाज्ञया। चकारविनयं प्रीत्या तेजस्वी त्रिगुणात्मकः
अथ वह्नेरुपाख्यानं सावधानंनिशामय। गोपनीयं पुराणेषु कर्णपीयूषमुत्तमम्॥ २॥

त्रैलोक्यंभस्मसात् कर्तुमेकदाग्निःसमुद्यतः। शततालप्रमाणां तां शिखांकृत्वाभयानकीम्
क्षुभितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात्।
स्वञ्च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामावलीलया। वह्नेस्तां दाहिकीं शक्तिं तां जहार पुरस्थितः॥
मायया शिशुरूपी च तमुवाच जनार्दनः। सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥

शिशुरुवाच।

कथं रुष्टोऽसि भगवन् भवान् मां कारणं वद।
त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम् ॥७॥
त्वमेव भृगुणा शप्तो भृगोश्च दमनंकुरु। एकापराधात् त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चार्हसि
विश्वञ्च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः। संहर्ता भगवान् रुद्र एवमेव क्रमोभवेत्
तत्कथं भस्मसात् कर्तुमीश्वरे शङ्करे स्थिते। रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम्
इत्युक्त्वा ब्राह्मणवटुःशरपत्रं पुरःस्थितम्। अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं ददौ मुदा
दृष्ट्वा शुष्केन्धने वह्निर्लेलिहानो भयानकः। स वव्रे शिखया चिप्रं मेघेन शशिनं यथा
न च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकञ्च शिशोस्तथा।
दृष्ट्वा व्रीडायुतो वह्निनिस्तब्धो हि शिशोः पुरः ॥ १३ ॥
कृत्वा वह्नेर्दर्पभङ्गमन्तर्धानं चकार सः। वह्निः स्वमूर्तिं संहृत्य स्वस्थानं भीतवद्ययौ॥
उक्तो वह्नेर्दर्पभङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि। नित्यनूतनमाख्यानं देवानां दर्पमोचनम्॥

श्रीराधिकोवाच।

शेषाणां दर्पभङ्गञ्च क्रमेण कथय प्रभो!। कथापीयूषधारां ते श्रुत्वा तृप्येत को भुवि॥

श्रीनारायण उवाच।

राधिकावचनं श्रुत्वा सस्मितो भगवान् प्रभुः।
कथां कथितुमारेभे श्रुत्वा रम्यां पुरातनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे अग्नि-
दर्पमोचनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्वाससो दर्पभंगवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दुर्वाससो दर्पभङ्गं कथयामि शृणु प्रिये ।
महामुनेर्योगिनश्च रुद्रांशस्यातितेजसः ॥ १ ॥
एकदा चाम्बरीषश्च कृत्वा च द्वादशीव्रतम् ।
पारणं कर्तुमारेभे भोजयित्वा द्विजान् बहून् ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाजगाम मुनिः स्वयम् । क्षुधार्तश्च तृषार्तश्च विष्णुव्रतपरायणः ॥
मां भोजय महाभागेत्येवं स नृपमुक्तवान् । राजा भक्त्या ददौ तस्मै परमान्नंसुधोपमम्
सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शप्तुमुद्यतः । जटां निकृत्य शिरसः स्थापयामास भूतले ॥
जटामध्यात् समुद्भूतो ज्वलदग्निशिखोपमः । सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः ॥
नृपश्रेष्ठं स राजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः । भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥
सस्मार च महाभीतो राजा मम पदाम्बुजम् । सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बभूव ह
एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्य्यं सुदर्शनम् । तेजसा मम तुल्यश्च कोटिसूर्य्यप्रभोपमम् ॥
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम् । निकृत्य कृत्यापुरुषं दुद्राव मुनिपुङ्गवः ॥

सशैलसागरां पृथ्वीं काञ्चनीं भूमिमुत्तमाम् ।
भ्रामयित्वा महीं सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम् ॥ ११ ॥
धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम् ।
तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्य्यं तं दीप्तिं कुर्वन्तमुत्तमाम् ॥ १२ ॥

कैलासं सप्तवर्गञ्च ब्रह्मलोकमनामयम् । विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥
पादपद्मे पतन्तञ्च ददर्श विप्रपुङ्गवम् । कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम् ॥१४
नारायणवरेणैव बभूव विज्वरो द्विजः । पुनर्ययौ हरिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाज्ञया ॥१५॥

राजा मुनीन्द्रं सम्प्राप्य भोजयामास पायसम् ।
स्वयञ्च पारणं चक्रे सस्त्रीकः सहबान्धवः ॥ १६ ॥
राजानमाशिषं कृत्वा भुक्त्वा विप्रो गृहं ययौ ।
मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च ॥ १७ ॥

नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति । सर्वे देवा मम प्राणाः भक्ताप्राणाधिका मम त्वञ्च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती । ब्रह्मा शम्भुरनन्तश्च धर्मश्चब्राह्मणास्तथा गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम । तेभ्यः प्रियाःपरा भक्ताः प्रियो भक्तान्नकश्चन दत्त्वा सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च । तथापि न प्रतीतिर्मे स्वयं द्रष्टुं प्रयामि तान् दुर्वाससो दर्पभङ्गः श्रुतो मत्तः सुरेश्वरि । आज्ञापय महाभागे किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

राधिकोवाच ।

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गं कथयस्व जगद्गुरो ! पुराणे गोपनीयञ्च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ २३ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे श्रुतिरम्यां पुरातनीम् ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे दुर्वाससो दर्पभङ्गो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धन्वन्तरेर्दर्पभंगवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणांशो भगवान् स्वयं धन्वन्तरिर्महान् । पुरा समुद्रमथने समुत्तस्थौ महोदधेः ॥
सर्ववेदेषु निष्णातो मन्त्रतन्त्रविशारदः । शिष्यो हि वैनतेयस्य शङ्करस्योपशिष्यकः ॥
शिष्याणाञ्च सहस्रेणागतः कैलासमीश्वरि । ददर्श तक्षकं मार्गे लेलिहानं भयानकम् ॥

लक्षनागैः परिवृतं शैलतुल्यं विषोल्वणम् । भोक्तुं कोपात् समायान्तमेवं दृष्ट्वा जहास च

दम्भी धन्वन्तरेः शिष्यो धृत्वा तक्षकमुल्वणम् ।

मन्त्रेण जृम्भितं कृत्वा निर्विषं तं चकार ह ॥ ५ ॥

अमूल्यं मणिरत्नञ्च जहार मस्तके स्थितम् । करेण भ्रामयित्वा च प्रेरयामास दूरतः ॥

निश्चेष्टस्तक्षकस्तस्थौ तत्रमार्गे यथामृतः । गणा निवेदयामासुर्गत्वा वासुकिसन्निधिम्

वासुकिस्तत्समाकर्ण्य प्रज्वलन्नतिकोपतः ।

सर्पान् प्रस्थापयामासासंख्यांश्चैव विषोल्वणान् ॥ ८ ॥

सर्पसेनाग्रणीनाञ्च मुख्यान् पञ्च विशारदान् । द्रोणकालीयकर्कोटपुण्डरीकधनञ्जयान्

सर्वे नागाः समाजग्मुर्यत्र धन्वन्तरिः स्वयम् ।

भयमापुः शिष्यगणा दृष्ट्वा नागानसंख्यकान् ॥ १० ॥

नागनिःश्वासवातेन सर्वे शिष्या मृता इव । निश्चेष्टा ज्ञानरहिताः शेरते धरणीतले ॥

धन्वन्तरिश्च भगवान् पीयूषवर्षणेन च । जीवयामास शिष्यांश्च मन्त्रेण च गुरुं स्मरन्

चेतनां कारयित्वाच शिष्याणाञ्चजगद्गुरुः । चकारजृम्भितं मन्त्रैःसर्पसङ्घंविषोल्वणम्

सर्वे बभूवुर्निश्चेष्टा जृम्भितास्ते मृता इव । कोऽपि नालं ततो देवि वार्तां दातुंगणेषु च

वासुकिर्बुबुधे सर्वं सर्वज्ञः सर्वसङ्कटम् । आजुहाव जगद्गौरीं भगिनीं ज्ञानरूपिणीम् ॥

वासुकिरुवाच ।

मनसे त्वं समागच्छ नागान् रक्षातिसङ्कटात् ।

जगत्त्रये महाभागे पूजा तव भविष्यति ॥ १६ ॥

वासुकेर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच कन्यका । वाक्यं पीयूषतुल्यञ्च विनयावनतस्थिता ॥

मनसोवाच ।

नागेन्द्र श्रृणु मद्वाक्यं यास्यामिसमरंप्रति । भद्राभद्रं दैवसाध्यं करिष्यामि यथोचितम्

तं शत्रुं संहरिष्यामि लीलया समरस्थले । अहं यं निहनिष्यामि तं को रक्षितुमीश्वरः

यदि ब्रह्मादयो देवाः समायान्ति रणस्थले । तथापि तव शत्रुञ्च प्रजेष्यामि न संशयः

गुरुर्मे भगवान् शेषः सिद्धमन्त्रञ्च दत्तवान् । नारायणस्य जगतामीशस्य परमाद्भुतम् ॥

बिभर्मि कवचं कण्ठे परं त्रैलोक्यमङ्गलम् । संसारं भस्मसात् कृत्वा पुनः स्रष्टुमहंक्षमा
शिष्याहं मन्त्रशास्त्रेषु शम्भोर्भगवतः पुरा । महाज्ञानं दत्तवान् स मह्यञ्च कृपया विभुः

शम्भोश्च शिष्यो गरुड़ो गणयामि न तं ध्रुवम् ।
धन्वन्तरिस्तच्छिष्याणामेकः किं गणयामि तम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा सा जगामैका त्यक्त्वा नागगणान् रुषा ।
प्रणम्य श्रीहरिं शम्भुं शेषञ्च हृष्टमानसा ॥ २५ ॥

यत्र धन्वन्तरिर्दिव्यः प्रसन्नवदनेक्षणः । तत्राजगाम सा देवी कोपरक्तेक्षणा रुषा ॥२६॥
दृष्टिमात्रेण सर्वांश्च जीवयामास सुन्दरी । विषदृष्ट्या शत्रुशिष्यान्निश्चेष्टांश्च चकार ह
धन्वन्तरिस्तु भगवान् मन्त्रशास्त्रविशारदः । मन्त्रेण यत्नं कृतवान्नोत्थापयितुमीश्वरः

दृष्ट्वा धन्वन्तरिं देवी प्रहस्योवाच सत्वरम् ।
बह्वुक्तिमर्थयुक्ताञ्च साहङ्कारां सुरेश्वरि ॥ २६ ॥

मनसोवाच ।

मन्त्रार्थं मन्त्रशिल्पञ्चमन्त्रभेदं महौषधम् । वद्जानासि किं सिद्धशिष्योऽसिगरुड़स्यच
अहञ्च वैनतेयश्च शिष्यौ शम्भोश्च विश्रुतौ । सुकल्पकालं सुचिरमहं धन्वन्तरे श्रृणु ॥
इत्युक्त्वा सरसः पद्मं समानीय जगत्प्रसूः । मन्त्रसम्पलितं कृत्वा प्रेरयामास कोपतः
दृष्ट्वागतं पद्मपुष्पं ज्वलदग्निशिखोपमम् । धन्वन्तरिश्च निःश्वासैर्भस्मसात्तच्चकार ह
तञ्च धन्वन्तरिर्दृष्ट्वा समन्त्ररेणुमुष्टिना । चकार निष्फलं भस्म तां प्रहस्यावलीलया

देवी जग्राह शक्तिञ्च ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभाम् ।
मन्त्रसंवलितां कृत्वा प्रेरयामास तं रिपुम् ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा जाज्वल्यमानां तां शक्तिं धन्वन्तरिः स्वयम् ।
विष्णुदत्तेन शूलेन स तु चिच्छेद लीलया ॥ ३६ ॥

ताञ्च शक्तिं वृथा दृष्ट्वा प्रजज्वालेश्वरी रुषा । जग्राह नागपाशञ्च घोरमव्यर्थमुल्वणम्
नागलक्षसमायुक्तं सिद्धमन्त्रेण मन्त्रितम् । प्रेरयामास कोपेन कालान्तकसमप्रभम् ॥
धन्वन्तरिर्नागपाशं दृष्ट्वा च संस्मितो मुदा । सस्मार गरुड़ं तूर्णमाजगाम खगेश्वरः

सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुड़ो हरिवाहनः ।
विधाय चञ्चुना शीघ्रं बुभुजे क्षुधितश्चिरम् ॥ ४० ॥

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरक्तेक्षणा भृशम् । जग्राह भस्ममुष्टिञ्च शिवदत्तां पुरा प्रिये भस्ममुष्टिं मन्त्रपूतां दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा । पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च ॥ निरस्तां भस्ममुष्टिञ्च दृष्ट्वा देवी चुकोप ह । जग्राह शूलमव्यर्थं हन्तुं धन्वन्तरिं स्वयम् शिवदत्तञ्च शूलञ्च शतसूर्य्यसमप्रभम् । अव्यर्थशूलं लोकेषु प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥ अथ ब्रह्मा तथा शम्भुराजगाम रणाजिरम् । धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं सम्मानार्थं खगस्य च दृष्ट्वा शम्भुं जगद्गौरी विधिञ्च जगतां पतिम् । भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्काशूलधारिणी धन्वन्तरिश्च गरुड़ः प्रणनाम सुरेश्वरौ । तुष्टाव परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिषम् ॥ उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरिं मुदा । पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकाम्यया

ब्रह्मोवाच ।

धन्वन्तरे महाभाग सर्वशास्त्रविशारद । रणं ते मनसासार्द्धं न हि साध्यञ्च मे मतम् ॥ शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्य्येण सर्वतः । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमेयं त्रिदशेश्वरी ॥

ध्यानं कौथुमशाखोक्तं कृत्वा भक्त्या समाहितः ।
दत्त्वा षोड़शोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम् ॥ ५१ ॥

आस्तिकोक्तेन स्तोत्रेण स्तवनं कर्तुमर्हसि । परितुष्टा च मनसा वरं तुभ्यं प्रदास्यति ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा चकारानुमतिं शिवः । वैनतेयश्च सम्प्रीत्या बोधयामास यत्नतः ॥ एषाञ्च वचनं श्रुत्वा स्नात्वा शुचिरलंकृतः । विधिं पुरोहितं कृत्वा पूजां कर्तुं समुद्यतः

धन्वन्तरिरुवाच ।

इहागच्छ जगद्गौरि गृहाण मम पूजनम् । पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्यके ॥ त्वया जितं जगत् सर्वं देवि विष्णुस्वरूपया । तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न कृतो रणभूमिषु इत्युक्त्वा संयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । गृहीत्वा शुक्लकुसुमं ध्यानं कर्तुं समुद्यतः चारुचम्पकवर्णाभां सर्वाङ्गसुमनोहराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शोभितां सूक्ष्मवाससा ॥ सुचारुकवरीशोभां रत्नाभरणभूषिताम् । सर्वाभयप्रदां देवीं भक्तानुग्रहकातराम् ॥ ५६॥

सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशारदाम् । नागेन्द्रवाहिनीं देवीं भजे नागेश्वरीं पराम्
ध्यात्वैवं कुसुमं दत्त्वा नानाद्रव्यसमन्वितम् । दत्त्वाषोड़शोपचारं पूजयामास तां प्रिये
स्तोत्रं चकार यत्नाच्च पुलकाञ्चितविग्रहः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥

धन्वन्तरिरुवाच ।

नमः सिद्धिस्वरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः । नमः कश्यपकन्यायै वरदायै नमो नमः ॥
नमः शङ्करकन्यायै शङ्करायै नमो नमः । नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वर्य्यै नमो नमः ॥
नमः आस्तीकजननि जनन्यै जगतां मम । नमो जगत्कारणायै जरत्कारुस्त्रियै नमः
नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः। नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः ॥
नमस्तपस्यारूपायै फलदायै नमो नमः। सुशीलायै च साध्व्यै च शान्तायै च नमो नमः
इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः । तुष्टा देवी वरं दत्त्वा सत्वरं सालयं ययौ
ब्रह्मरुद्रवैनतेयाः समाजग्मुर्निजालयम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् जगाम निजमन्दिरम् ॥
जग्मुर्नागाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिविराजिताः । इत्येवं कथितः सर्वः स्तवराजो मया तव
विधिना मातरं भक्तिमास्तिकश्च चकार ह । तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुङ्गवम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
धन्वन्तरिदर्पभङ्ग-मनसाविजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधावञ्चनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

सर्वेषां दर्पभङ्गश्च कथितश्च श्रुतस्त्वया । क्षुद्राणां महताञ्चैव कृत एव न संशयः ॥१॥
अधुना चोत्समुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनंवनम् । गोपिका विरहार्त्ताश्च शीघ्रं पश्यामिसुन्दरि

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मानिनी रसिकेश्वरी । उवाच कृष्णं नय मां न शक्ता गन्तुमीश्वर
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । मामारुहेत्येवमुक्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥

सा मनोयायिनी राधा कृत्वा च रोदनं क्षणम् ।
इतस्ततस्तमन्वेष्य वृन्दारण्यं जगाम सा ॥ ५ ॥

विवेश चन्दनवनं रुदन्ती शोककातरा । ददर्श गोपिकास्तत्र शोकार्ता [भयविह्वलाः ॥
ताम्रास्यां घूर्णनयना भ्रमन्ती सर्वकाननम् । नाथनाथेति कुर्वन्तीनिराहारा रुषान्विताः
ता दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमविच्छेदकातरा । कथयामास वृत्तान्तं मलयभ्रमणादिकम्
ताभिःसार्धञ्च सा राधा रुरोद विरहातुरा । हानाथ नाथेत्युच्चार्य्य विलप्य च मुहुर्मुहुः

विनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम् ।
क्षणं शरीरमुत्स्रष्टुं कोपात् सर्वाः समुद्यताः ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तत्र चन्दनकानने । स्वात्मानं दर्शयामासराधिकां गोपिकागणम्
राधा गोपाङ्गनाभिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा । सस्मिता च प्रदुद्राव पुलकाञ्चितविग्रहा ॥
तूर्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरलीं रुषा । मालाञ्च पीतवसनं भग्नं कृत्वा च मानिनी
पुनः संधारयामास वस्त्रं मालां मनोहराम् । विनोदमुरलीं तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च कातरम् । मुहुर्मुहुर्मुखं वीक्ष्य चुचुम्ब परमादरम् ॥१५॥
क्षणं तं तर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह । सकर्पूरञ्च ताम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा ॥
अथ गोपाङ्गनाः सर्वा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । सर्वं निवेदयामासुः स्वदुःखं विरहोद्भवम् ।
देहत्यागञ्च स्नानञ्च स्वाहारस्य विसर्जनम् । वने वनेऽहर्निशञ्च शश्वद्भ्रमणमेव च ॥

क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुः क्षणं मुदा ।
क्षणं ददुर्भूषणञ्च क्षणं तस्मै च चन्दनम् ॥ १९ ॥

काश्चिदूचुः प्राणचौरं पश्य रक्षेति सन्ततम् । एवं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काश्चन ॥२०
काश्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम् । निबध्य प्रेमपाशेन हृदये चेति काश्चन ॥२१।
काश्चिदूचुरयं नास्ति प्रतीतिर्न कदाचन । यत्नाच्चेतनचोरञ्च पश्य पश्येति काश्चन ॥२२।

काश्चिद्रुचुर्निष्ठुरोऽयं नरघातीति कोपतः। न पुनर्वदतेमञ्च काञ्चनेति च नारद ॥२३॥

निर्जनानि च रम्याणि यानि यानि वनानि च।
प्रययुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात् ॥ २४ ॥

एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्येकृत्वा सदीश्वरम्। ययुर्वनान्तरे यत्र सुरम्यं रासमण्डलम्

रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वरः।
निशि भाति यथाकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह ॥ २६ ॥

नानामूर्तीर्विधायात्र सह ताभिर्जनार्दनः।
चकार च पुनः क्रीड़ां कामुकीनां मनोहराम् ॥ २७ ॥

स्वयं राधाकरे धृत्वा पूर्वोक्तं रतिमन्दिरम्। विश्वकर्मविनिर्माणमारुरोह स्मरातुरः ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं सुवासितम्। तत्र चम्पकतल्पेषु सुष्वाप च तया सह ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः। चकारकामी क्रीड़ाञ्च कामिन्या सह कौतुकी
बभूव सुरतिस्तत्र सुचिरञ्च तयोर्मुने। रतिनिष्ठा तयो रम्या विरतिर्नास्ति तत्क्षणम् ॥

एवं तौ तस्थतुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ।
तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरतौ कृष्णमूर्तयः ॥ ३२ ॥

नारद उवाच।

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं विदुर्बुधाः।
निमित्तमस्य मां भक्तं वद भक्तजनप्रिय ॥ ३३ ॥

श्रीनारायण उवाच।

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय। जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता।
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥ ३४ ॥

राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दःश्रुतौ श्रुतः। कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः
प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिमं मम। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर
प्रसीद कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम्। इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम ॥३७॥
राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवतिमाधवः। धाशब्दोचारणात् पश्चाद्धावत्येव ससम्भ्रमः

आदौ पुरुषमुच्चार्य्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् । स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमणे मुने ॥३९

त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रञ्च पुण्यदम् ।
ततो वृन्दावनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना ॥ ४० ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तञ्च वेधसा । राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलब्धये ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-
माधवयो रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णरासक्रीड़ावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

समतीते पूर्णमासे किञ्चकार जगत्पतिः । रहस्यं किं बभूवाथ तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥१॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासं निर्वृत्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः । स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनंययौ

तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले ।
सार्धं गोपाङ्गनाभिश्च जलक्रीड़ाञ्चकार सः ॥ ३ ॥

ततो जगाम भगवान् भाण्डीरं राधया सह। गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान् प्रययुर्विरहातुराः ॥
क्रीड़ाञ्चकार रहसि भाण्डीरे मालतीवने । मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः।
कृत्वा क्रीड़ाञ्च तत्रैव वासन्तीकाननं ययौ । रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे ॥६॥
तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकाननम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्
रम्ये चन्दनतल्पे च स्निग्धे चन्दनपल्लवे । पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तया सह ॥ ८ ॥
कृत्वा विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम् । रम्ये चम्पकतल्पे च चकार रतिमीश्वरीम्
रतिं निर्वृत्य तत्रैव ययौ पद्मवनं प्रभुः । पद्मपत्रसमाकीर्णे तल्पेऽतिसुमनोहरे ॥ १० ॥

सार्धं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना । चकार सुखसम्भोगं ययौ निद्रां तया सह ॥
विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम् ।
शयानां पद्मतल्पे च सुखसम्भोगमात्रतः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा मुखञ्च घर्मार्त्तं शरच्चन्द्रविनिन्दितम् । अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कज्जलमुल्वणम् ॥१३
संलुप्ताधररागञ्च संलुप्तगण्डपत्रकम् । विस्रस्तकवरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥१४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेनामूल्येन परिशोभितम् । राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥१५॥
प्रेमणा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण वह्निशुद्धेन माधवः । मार्जयामास भक्त्याचतद्वक्त्रं भक्तवत्सलः
केशसंमार्जनं कृत्वा निर्माय कबरीं हरिः । माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम् ॥
रत्नपट्टसूत्रबद्धां वामवक्त्रां मनोहराम् । अतीववर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ॥१८
ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम् । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं परितः परिशोभिताम्
चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम् । प्रददौ कज्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम्
चकाराधररागञ्च राधायाश्चानुरागतः । कर्णभूषणयुग्मञ्च चकारातीवनिर्मलम् ॥२१॥
अमूल्यरत्नहारञ्च स्तनभारयुगोज्ज्वलम् । ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजितम्
वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः । वासयामास वसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम् ॥
प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गुलिनखेषु च ॥ २४॥
चकार सेवां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् ।
अहो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥ २५ ॥
सर्वभाववदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित ।
कामिनीं बोधयामास वासयामास वक्षसि ॥ २६ ॥
प्रेम्णा च प्रददौ तस्यै सद्रत्नदर्पणं शुभम् । सुवेशदर्शनार्थञ्च मुखचन्द्रञ्च मार्जितुम् ॥२७
नानापुष्पैर्विरचितामम्लानां चन्दनोक्षिताम् ।
गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभाग्येन ददौ हरिः ॥ २८ ॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धिचन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च ॥
पारिजातस्य कुसुमं दत्तं रहसि ब्रह्मणा । प्रददौ तत्कबर्य्याञ्च ललितायाञ्च नारद ॥३०

कमलं निर्मलं दिव्यं सहस्रदलमुज्ज्वलम् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तद्दक्षिणे करे ॥३१
अतिसारं मणीन्द्राणां मणिरत्नञ्च कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ
आसवं रत्नपात्रस्थं दस्रदत्तञ्च निर्जने । पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम् ॥३३
मालतीमाधवीकुन्दमन्दारचम्पकादिकम् । पुष्पं सद्रत्नपात्रस्थं तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥
सुदुर्लभञ्च ताम्बूलं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । भक्षणं कारयामास समयज्ञश्च तां प्रियाम् ॥३५॥
सुदुर्लभञ्च विश्वेषु वाक्पतेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यञ्च वरुणेन रहःस्थले ॥३६॥

अतिसूक्ष्ममनुपमं दत्तं भक्त्या विराजितम् ।
वासयामास वसनं कृत्वा नग्नाञ्च कौतुकात् ॥ ३७ ॥

देवराजेन दत्तञ्च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणञ्चारु तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशीलाद्याश्चगोपिकाः । षष्टिःसत्सहचर्य्यश्च राधायाःसुप्रतिष्ठिताः

षष्टिशतकोटिगोपीभिः सार्द्धं संहृष्टमानसाः ।
आययुः पादचिह्नेन प्रियस्य वहतः प्रियाम् ॥ ४० ॥
काश्चिच्चन्दनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहिकाः ।
काश्चित् कस्तूरीहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥ ४१ ॥
काश्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित् कङ्कतिकाकराः ।
काश्चिदलक्तककरा वस्त्रहस्ताश्च काश्चन ॥४२ ॥

काश्चिद्दर्पणहस्ताश्च पुष्पपात्रधरावराः । काश्चित् क्रीड़ापद्महस्ता मालाहस्ताश्चकाश्चन
काश्चिदासवहस्ताश्च काश्चिद्भूषणवाहिकाः । करतालकराःकाश्चिन्मृदङ्गवाहिकाःपराः
स्वरयन्त्रकराः काश्चिद्वीणाहस्ताश्चकाश्चन । षट्त्रिंशद्रागरागिण्योगोपीकारूपधारिकाः

गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह ॥ ४५ ॥
काश्चिज्जगुश्च ननृतुस्तत्रागत्य च काश्चन ।
काश्चिच्चक्रुस्तथा सेवां राधायाः श्वेतचामरैः ॥ ४६ ॥

काश्चिच्चक्रुश्च देव्याश्च पादसंवाहनं मुदा । काचिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने ॥
एवं कौतुकयुक्तश्च पुण्ये वृन्दावने वने । प्रतस्थौ गोपिकासार्द्धं राधावक्षःस्थलस्थितः

क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ।
क्षणञ्चखाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा ॥ ४९ ॥
क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे । क्षणं जलविहारञ्च चकार यमुनाजले ॥ ५० ॥
इत्येवं कथिता वत्स रासक्रीड़ा हरेरहो । स्वेच्छामयस्यात्मनश्च परिपूर्णतमस्य च ॥
निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः । ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च
कृष्णजन्मरहस्यञ्च बालक्रीड़नमीप्सितम् । उक्तं किशोरचरितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णरासक्रीड़ावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान् मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥
नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् ।
गोपाङ्गना यशोदा च कृष्णैकतानमानसाः ॥ २ ॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् या राधा न हि जीवति ।
कथं दधार सा देवी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥ ३ ॥
ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनाशनभोगतः । कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे
श्रीकृष्णोमथुरां गत्वा किं किं कर्म चकारसः । स्वर्गारोहणपर्य्यन्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति

श्रीनारायण उवाच ।

कंसश्चकार यज्ञञ्च समाहूतो धनुर्मखम् । जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥
राजाप्रस्थापयामास चाक्रूरं भगवत्प्रियम् । अक्रूरःप्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम्

श्रीकृष्णश्च गृहीत्वा च सगणं मथुरां गतः। कृष्णः श्रीमथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने
जघान रजकञ्चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम्। चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानाञ्च बान्धवः॥

कुब्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च।
ताञ्च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः॥ १०॥

चकार कृपया विष्णुर्मालाकारस्य मोक्षणम्। कृपयाचोद्धवद्वारा बोधयामासगोपिकाः
तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ। चकार विद्याग्रहणं मुनेः सान्दीपिनेर्गुरोः॥१२॥
ततो जित्वा जरासन्धं निहत्य यवनेश्वरम्। उग्रसेनञ्च नृपतिञ्चकार विधिपूर्वकम्॥
गत्वा समुद्रनिकटं निर्माय द्वारकां पुरीम्। जहाररुक्मिणीं देवीं जित्वा नृपतिसङ्कम्

कालिन्दीं लक्ष्मणां शैव्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम्।
मित्रविन्दां नाग्नजितीं समुद्वाहञ्चकार सः॥ १५॥

निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च। पत्नीषोड़शसाहस्त्रं विहारञ्च चकार सः॥१६॥
जहार पारिजातञ्च जित्वा शक्रञ्च लीलया। चिच्छेद्बाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम्
पौत्रस्यमोक्षणं कृत्वा पुनरागत्यद्वारकाम्। आत्मानं दर्शयामास लोकांश्चप्रतिमन्दिरम्
योगे च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च ददर्श तत्र राधिकाम्॥
पूर्णे च शतवर्षे च सुदाम्नः शापमोक्षणे। पुनर्ययौ तया सार्द्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम्॥
पुनश्चतुर्दशाब्दञ्च तया सार्द्धं जगत्पतिः। चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते॥
पूर्णमेकादशाब्दञ्च निर्वृत्य नन्दमन्दिरे। मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः॥२२॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः। पञ्चविंशतिवर्षञ्च शतवर्षाधिकं मुने।

तिष्ठन् जगाम गोलोकं पृथिव्याञ्च पुरातनः॥ २३॥
यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते।
राधामात्रे कलावत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम्॥ २४॥

कृष्णेन सार्द्धं गोपीभी राधिका च कुतूहलात्। ववन्ध धर्मसेतुञ्च वेदोक्तञ्च युगे युगे
इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने। श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ २६॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च। भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम्॥ २७॥

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्। परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ २८॥
सत्यं नित्यं स्वतन्त्रञ्च सर्वेशं प्रकृतेः परम्। निर्गुणञ्च निरीहञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीकृष्णराधिकासंवादो नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम्।

नारायण उवाच।

स एवभगवान् कृष्णः सर्वात्मा पुरुषःपरः। दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यःसुखप्रदः

निजभक्तातिसाध्यश्च भक्तस्याराध्य एव च।
शश्वद् दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च ॥ २ ॥

दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च। बद्धास्तन्मायया सर्वे मोहिताश्च दुरन्तया ॥३॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं कूर्मो धत्ते निराश्रयः। कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्भयेन निरन्तरम्
विभर्ति शेषो विश्वञ्च यद्भयेन च नारद। सहस्रशीर्षा पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः ॥ ५ ॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा। शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च ॥६॥

सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः।
एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥
यद्भयेन विधात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम्।
एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपैर्महान् विराट् ॥ ८ ॥

यद्भयेन विधत्ते च यदंशो ध्यायते हि यम्। विष्णुः पाति च संसारं यद्भयेन कृपानिधिः
कालाग्निरुद्रो यद्भीतः कालः संहरते प्रजाः। मृत्युञ्जयो महादेवो यद्भयाद्ध्यायते च यम्
षड्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा। यद्भयेन दहत्यग्निः सूर्य्यस्तपति यद्भयात् ॥

यद्भयाद्वर्षतीन्द्रश्च मृत्युश्चरति जन्तुषु । यद्भयेन यमः शास्ता पापिनां धर्म एव च ॥१३॥
धत्ते च धरणी लोकान् यद्भयेन चराचरान् । सूयते प्रकृतिः सृष्टौ यद्भयान्महदादिकम् ॥
दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं को वा जानाति पुत्रक । यत्प्रभावं न जानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
कथं जानामि तच्चेष्टामहं वत्स सुमन्दधीः । कथं जगाम मथुरां त्यक्त्वा वृन्दावनं वनम् ॥

कथं तत्याज गोपीश्च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।
यशोदां बान्धवादींश्च नन्दं वा नन्दनन्दनः ॥ १६ ॥

दर्पहा दर्पदः सोऽपि सर्वेषां सर्वदः सदा । बभञ्ज राधादर्पञ्च सुदाम्नः शापकारणात् ॥
अन्येषां भावनाहेतोर्ब्रह्मप्राप्तिस्तथा भवेत् । एवं किञ्चिद्वितर्कञ्च कुरुते कमलोद्भवः ॥
चकार दर्पभङ्गञ्च महाविष्णुः पुराविभुः । ब्रह्मणश्च तथा विष्णोः शेषस्य च शिवस्य च
धर्मस्य च यमस्यापि साम्बस्यचन्द्रसूर्य्ययोः । गरुड़स्य च वह्नेश्च गुरोर्दुर्वाससस्तथा
दौवारिकस्य भक्तस्या जयस्य विजयस्य च । सुराणामसुराणाञ्च भवतः कामशक्रयोः
लक्ष्मणस्यार्जुनस्यापि वाणस्य च भृगोस्तथा । सुमेरोश्चसमुद्राणां वायोश्चवरुणस्य च
सरस्वत्याश्च दुर्गायाःपद्मायाश्चभुवस्तथा । सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च

प्राणाधिष्ठातृदेव्याश्च प्रियायाः प्राणतोऽपि च ।
प्राणाधिकाया राधाया अन्येषामपि का कथा ॥ २४ ॥

हृत्वा दर्पञ्च सर्वेषां प्रसादञ्च चकार सः । कर्ता हर्ता पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः
यं स्तोतुमीशो नालञ्च पञ्चवक्त्रेण शङ्करः । स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाताजगतामपि
स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनैरहो । स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः
महाविराट् न शक्तोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम् । कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिःपरमात्मनः
सरस्वती जड़ीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम् । महिमानं न जानन्ति वेदा यस्य च नारद ॥

इत्येवं कथितो ब्रह्मन् प्रभावः परमात्मनः ।
निर्गुणस्य च कृष्णस्य किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णप्रभाववर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महाविष्णोरहंकार भङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

किमपूर्वं श्रुतं ब्रह्मन् रहस्यं परमाद्भुतम् । अनन्तचरितं धन्यमनन्तस्याच्युतस्य च ॥१
कथंकृष्णो महाविष्णोर्दर्पभङ्गं चकार सः । अन्येषां वा कथमहो तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥२
स्वतः श्रीकृष्णचरितमतीवमधुरं श्रुतौ । अतीवमधुरं रम्यं काव्यं कविमुखात्ततः ॥३

श्रीनारायण उवाच ।

महाविष्णोरहङ्कारो बभूव सहसेति च । सर्वं मल्लोमकूपेषु विश्वान्येवाहमीश्वरः ॥ ४ ॥
संहारभैरवोभूत्वा तं जग्रास सलीलया । स्थिते मूर्द्धावशेषे च प्रसादंतंचकार सः ॥५
सर्वात्मानं ध्यायमानंस्तुतंभीतंकृपानिधिः । तच्छरीरं सुसम्पन्नं पुनरेव चकार सः ॥६

ब्रह्मणः सहसा ब्रह्मन्निति दर्पो बभूव ह ।
अहं त्रिजगतां धाता कर्ताहमीश्वरः स्वयम् ॥ ७ ॥

मत्परःपूजितो नास्ति मत्परः पूजितेन्द्रियः । इत्येवं मनसा कृत्वा बहुदर्पो बभूव ह ॥८

तं ब्रह्मणां समूहञ्च दर्शयामास तत्क्षणम् ।
गोलोके स्वसमीपे च वसन्तं पुरतो विभोः ।
पञ्चवक्त्रं चतुर्वक्त्रं षड्वक्त्रञ्च ततोऽधिकम् ॥ ९ ॥

शतवक्त्रञ्च प्रत्येकं ब्रह्माण्डौघञ्च लीलया । त्यक्तुकामं स्वदेहञ्च व्रीड़या नतकन्धरम् ॥१०
पुनःप्रसादं कृपया तंचकारकृपानिधिः । कालेन मोहिनीद्वारा तमपूज्यं चकार सः ॥११
स्वकन्यां दर्शयित्वा तं सकामञ्च चकार ह । पुनस्तद्दर्पभङ्गञ्च शिवद्वारा चकार सः ॥१२
तत्याज लज्जया देहं पुनर्देहं दधार सः । पुनश्चकार तंपूज्यं ब्रह्माणं ब्रह्मणः प्रभुः ॥१३

ज्ञानं ददौ महाज्ञानी ज्ञानानन्दः सनातनः ।
विष्णोर्बभूव गर्वश्च जगत्पाताहमीश्वरः ॥१४॥

तमात्मविस्मृतं कृष्णश्चकार रामजन्मनि। अहं विश्वं बिभर्मीति शेषदर्पो बभूव ह॥
तद्दर्पं गरुड़द्वारा चूर्णीभूतं चकार सः। एकदा पूजितोनागैर्गरुड़ः कृष्णवाहनः॥ १६॥
न पूजितश्च शेषेणस्वदर्पण पुरा मुने। गरुड़ेन जितं क्रोधात्तमनन्तं मनस्विनम्॥
चकार मोक्षणं तस्य श्रीकृष्णश्च कृपानिधिः। स्वयंशिवः स्वदर्पाच्चविवाहंन चकार सः

तं कृत्वा मायया मोहं कारयामास स्त्रीयुतम्।
पुनर्जहार पत्नीञ्च दक्षकन्यां महासतीम्॥ १९॥
वर्षं शुशोच तद्देहं क्रोड़े कृत्वा च शङ्करः।
नानास्थानञ्च बभ्राम रुदन् शोकान्मुहुर्मुहुः॥ २०॥

जन्मान्तरे पुनः प्राप्य तां सतीं पार्वतीं मुदा। विसस्मार च स्वज्ञानं दक्षशप्तःपुनःशिवः
पुनश्चाङ्गिरसद्वारा स्मारयामास सत्वरम्। एकदा सरथः शम्भुः प्रेरितस्त्रिपुरे पुरा॥
हत्वा दैत्यं शिवद्वारा त्रिपुरारिं चकार तम्। सर्वं वरञ्चसर्वस्मै दातुं शम्भुःकृपानिधिः॥
स्वयं कल्पतरुर्भूत्वा प्रतिज्ञाञ्च चकार सः। वृकासुरोऽनुष्ठानञ्च कृत्वा वव्रे वरंविभुम्

दास्यामि हस्तं तन्मूर्ध्नि भस्मसाद्भवतु क्षणात्।
जगाद जगतां नाथ ईप्सितं ते भविष्यति॥ २५॥

इतिलब्ध्वा वरं रुद्रात् गच्छन्तं शङ्करंविभुम्। हस्तं दातुंश्चतन्मूर्ध्नि प्राधावत्सत्वरंपुर
अतीवभीतः शम्भुश्च जगाम शरणं हरिम्। भगवांश्च शिवस्यार्थे दैत्यं भस्मीचकारसः
शिवं युद्धञ्च कुर्वन्तं वाणं युद्धे पुराविभुः। लीलया जृम्भणास्त्रेण जड़ीभूतं चकारसः
समागतं दक्षयज्ञे शम्भुं दम्भेन लीलया। वारयामास भगवान् हस्तं दत्त्वा च तद्गले॥
केदारकन्यकाद्वारा शप्तो धर्मोऽतिदैवतः। बभूवातिकृशो भीतः कुह्वामेव यथा शशी॥
तदा तस्य च शापान्ते सत्ये पूर्णो बभूव ह। त्रिपाद्बभूव त्रेतायां द्वापरे च द्विपादिति

एकपाच्च कलौ सोऽपि कलेरन्ते पुनः क्षयः।
षोडशांशोऽतिक्लष्टश्च सस्मार चरणं विभोः॥ ३२॥

तदा सत्ययुगारम्भे परिपूर्णोऽभवत् पुनः। पुनर्युगानुरोधेन क्रमेण च पुनः क्षयः॥३३
यमो माण्डव्यशापेन शूद्रयोनिमवाप ह। तदा पुनः शताब्दान्ते पुनः शुद्धो बभूव ह॥

साम्बो विमातृशापेन गलत्कुष्ठी बभूव सः। चन्द्रो दर्पमदेनैव जहार च गुरोः प्रियाम्
बभूव दर्पभङ्गोऽस्य यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः। सूर्य्यो दर्पात्तेजसश्च हन्तुं शङ्करकिङ्करम् ॥
सुमालीत्यभिधं दैत्यं जगामाशु गिरिं प्रति। अहर्निशं दीप्तिकरं कुर्वन्तं विषयं रवेः ॥३७
सूर्य्येण भीतो दैत्यश्च शङ्करं शरणं ययौ। सूर्य्यं दृष्ट्वा शङ्करश्च जग्राह शूलमेव च।

भीतो दुद्राव सूर्य्यश्च दृष्ट्वा तं शूलिनं मुने ॥ ३८ ॥

जघान काश्यां शूलेन शूली काशीश्वरो रविः। मूर्च्छां संप्राप्य शूलेन दर्पभङ्गो बभूवह

सान्द्रान्धकारः सहसा जग्राह पृथिवीतलम्।

आशुतोषो महादेवो जीवयामास तत्क्षणम् ॥ ४० ॥

तुष्टाव शङ्करं सूर्य्यो लज्जितोऽपि भयेन च। कृत्वा तमाशिषं तुष्टो ययौ गेहं कृपानिधिः
विभुर्गरुत्मतो दर्पं बभञ्ज लीलया पुरा। निःश्वासैः प्रेरितस्यापि शिवस्य वृषभस्य च
आगच्छतश्च वैकुण्ठं पृष्ठे कृत्वा शिवं पुरा। द्रष्टुं समागतं भक्त्या देवं नारायणं परम्
वह्निर्दर्पी भृगोः शापात् सर्वभक्षो बभूव ह। गुरोः स्वभार्याहरणाद्दर्पश्चूर्णो बभूव ह ॥
दुर्वाससो दर्पभङ्गो बभूव ह्यम्बरीषतः। सुदर्शनेन चक्रेण विष्णोर्दुर्विषहेण च ॥ ४५ ॥
जयस्य विजयस्यापि दर्पभङ्गं चकार सः। वैकुण्ठात् पतितस्यापि ब्रह्मशापच्छलेन च ॥
नृसिंहेन हतः सोऽपि हिरण्यकशिपुर्यथा। शूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले ॥
रावणः कुम्भकर्णश्च निहतौ रामबाणतः। जन्मान्तरे च लङ्कायांब्रह्मणा प्रार्थितस्य च
शिशुपालो हि निहतः कृष्णबाणेन लीलया। दन्तवक्रश्च सहसा परिपूर्णेऽत्र जन्मनि ॥
सुराणां दर्पभङ्गश्च दैत्यद्वारा चकार ह। असुराणां सुरद्वारा विरोधेन परस्परम् ॥५०।
विधिद्वारा दर्पभङ्गं भवतश्च चकारसः। भवानासीन्नारदश्च पुरा पुत्रः प्रजापतेः ॥५१॥

गन्धर्वश्च पितुः शापात् शूद्रीपुत्रस्ततः क्रमात्।

ततः पुनर्नारदश्च प्रसादादधुना विभोः ॥ ५२ ॥

मम साध्यं विश्वमिति कामदर्पो बभूव ह। तं प्रमत्तं हरद्वारा भस्मसाच्च चकार सः ॥
पुनः कृत्वा प्रसादन्तं जीवयामास लीलया। एकान्तिकञ्च तद्भक्तं स च नास्त्रं करोतिह
चकार दर्पभङ्गञ्च दर्पिणो लक्ष्मणस्य च। रणे शङ्करशूलेन रावणप्रेरितेन च ॥ ५५ ॥

पुनस्तं जीवयामास रामस्य स्तवनेन च। स्वयं विस्मृतविष्णोश्च ब्राह्मणशापेन नारद
चकार दर्पभङ्गञ्च कार्तवीर्यार्जुनस्य च। जामदग्न्यस्य शस्त्रेणामोघेन पर्शुना पुरा॥
विप्रपुत्रस्य मरणे हरणे कृष्णयोषिताम्। कर्णेन सार्द्धं समरे पार्थदर्पं बभञ्ज सः॥५८॥
बाणस्य योषाहरणे चिच्छेद च भुजान् विभुः। भृगोश्च दक्षयज्ञे च दर्पभङ्गं चकार सः
पर्शुरामस्य रामस्य विवाहे पथि गच्छतः। बभञ्ज दर्पं समरे रामद्वारा पुरा विभुः॥६०
सुमेरोः शृङ्गभङ्गञ्च वायुद्वाराच कार सः। समुद्राणां दर्पभङ्गं चकारागस्त्यभक्षणात्
अकाले सृष्टिहरणे तत्पुत्रमरणे पुरा। कोपयुक्तस्य वायोश्च दर्पभङ्गं चकार सः॥६२॥
उषाहरणयात्रायां द्वारकागमने हरेः। बाणस्य च गवां हेतोर्वरुणञ्च शशाप सः॥६३॥
कलहे गङ्गया सार्द्धं वाण्या नारायणाग्रतः। सरस्वतीञ्च तत्याज तस्या दर्पं बभञ्ज सः

दर्पयुक्ताञ्च दुर्गाञ्च त्यक्त्वा शम्भुर्हिमालये।
कामञ्च भस्मसात् कृत्वा तपसे च ययौ विभुः॥ ६५ ॥
लज्जामवाप सा देवी तस्या दर्पं बभञ्ज सः।
सा ययौ तपसे विष्णोः प्राप्तिहेतोः शिवस्य च॥ ६६ ॥

भारते सुचिरं तप्त्वा देवी विष्णोर्वरेण च। चकार स्वामिनं शम्भुं भगवन्तं सनातनम्
महासौभाग्ययुक्ता सा बभूव शङ्करप्रिया। विश्वेषु सर्वदेवीषु पूज्या वन्द्या स्तुता सुरैः
दर्पयुक्ता महालक्ष्मीर्बभूव सा महामुने। पराभूता पुरा देवी जयेन विजयेन च॥ ६९ ॥

प्रविशन्ती विभोर्द्वारं दत्त्वा भक्ताय वाञ्छितम्।
निवारिता सा द्वाराच्च तेन दौवारिकेण वै॥ ७० ॥

यदात्मनस्तिरस्कारं साभिमाना महासती। स्मृत्वा हरेः पादपद्मं देहं त्यक्तुं समुद्यता॥
तदा ब्रह्मा महेशश्च विष्णुर्धर्मश्च भास्करः। चन्द्रश्च कामदेवश्च वैश्वानरो धनेश्वरः॥
ऋषयो मुनयश्चैव मनवो विघ्ननाशकाः। महेन्द्रो वरुणश्चैव जगत्प्राणो हुताशनः॥
समाययू रुदन्तस्ते पद्मायाः पुरतः पुरः। तुष्टुवुश्च महालक्ष्मीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम्॥

देवा ऊचुः।

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे। शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते॥७५॥

उपमे सर्वसाध्वीनां देवानां देवपूजिते । त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यञ्च निष्फलम्
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी । रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः

कैलासे पार्वती त्वञ्च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका ।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥ ७८ ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।
गङ्गा च तुलसी त्वञ्च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥ ७६ ॥
कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।
रासे रासेश्वरी त्वञ्च वृन्दा वृन्दावने वने ॥ ८० ॥

कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने । विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥
पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने । कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥ ८२ ॥
कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च । राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥
इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥

इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥ ८५ ॥
अभार्यो लभते भार्यां विनीताञ्च सुतां सतीम् ।
सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥ ८६ ॥

पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम्
परमैश्वर्ययुक्तञ्च विद्यावन्तं यशस्विनम् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥

हतबन्धुर्लभेद् बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् ।
कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठाञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसन्तापनाशनम् । हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ॥६०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवद्गुणवर्णने लक्ष्मीस्तोत्रकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

————

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पत्युर्महत्त्ववर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

देवानां स्तवनं श्रुत्वा त्यक्त्वा च रोदनं सती ।
उवाच सुप्रसन्ना तान् तेषां स्तोत्रेण नारद ॥ १ ॥

महालक्ष्मीरुवाच ।

त्यजामि देहं न क्रोधान्न वैराग्येण साम्प्रतम् ।
इदं हृदि समालोच्य देवास्तच्छ्रूयतामिति ॥ २ ॥
यस्मिन् सदीशे महति सर्वसाम्ये च निर्गुणे । सर्वात्मनि सदानन्दे समता तृणशैलयोः
भ्रूभङ्गलीलया लक्ष्मीर्लक्षं स्रष्टुमलञ्च यः ।
भृत्ये स्त्रियां यत्समता किं कार्य्यं तस्य सेवया ॥ ४ ॥
तत्पत्नीनां प्रधानाऽहं निरस्ता द्वारिणाऽधुना । उद्धृत्य भृत्यभृत्येन परिपूर्णेन नेप्सिता
त्यक्ष्यामि जीवनमहमसौभाग्या च स्वामिनि । वह्नौ च कामनां कृत्वा यथाभद्रं भवेत्पुरा
या स्त्री भर्तुरसौभाग्या ससौभाग्या च सर्वतः ।
शयने भोजने तस्या न सुखं जीवनं वृथा ॥ ७ ॥
यस्या नास्ति प्रियप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम् । तत्र किं पुत्रे धने रूपे सम्पत्तौ यौवनेऽथवा
यद्भक्तिर्नास्ति कान्ते च सर्वप्रियतमे परे । साऽशुचिर्धर्महीना च सर्वकर्मविवर्जिता ॥९॥
पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च । सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः ॥
पिता माता सुतो भ्राता क्लिष्टा दातुमिदं धनम् ।
सर्वस्वदाता स्वामी च मूढानां योषितां सुराः ॥ ११ ॥
काचिदेव हि जानाति महासाध्वी च स्वामिनम् ।
अतिसद्वंशजाता च सुशीला कुलपालिका ॥ १२ ॥

असद्वंशप्रसूता या दुःशीला धर्मवर्जिता । मुखदुष्टा योनिदुष्टा पतिं निन्दति कोपतः ॥
या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम् । कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम् । पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम् ॥

अतः किञ्चिन्न वक्ष्यामि निष्ठुरं पतिमीश्वरम् ।
भृत्यापराधैर्देवस्य प्राणांस्त्यक्ष्यामि निश्चितम् ॥ १६ ॥

पतिदोषे महासाध्वी पतिश्चानिष्ठुरं वदेत् । यदि सोढुमशक्ता च प्राणांस्त्यजति धर्मतः
पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः । पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम् ॥
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम् । सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः ॥
सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः । या सती भर्तुरुच्छिष्टं भुंक्ते पादोदकं सदा ॥

तस्या दर्शमुपस्पर्शं नित्यं वाञ्छन्ति देवताः ।
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुनन्ति पापिनो ह्यघात् ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा च महासाध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः । उवाच ब्रह्मा भीतश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः

ब्रह्मोवाच ।

भविष्यति न भद्रश्च जयस्य विजयस्य च ।
त्वया न शप्तौ तौ मूढौ प्रियापराधभीतया ॥ २३ ॥
सापराधश्च धर्मिष्ठः क्षमया नाशयेद् यदि ।
सर्वनाशो भवेत्तस्य निश्चितं मा चिरं सति ॥ २४ ॥

यदि शप्तुं न शक्तश्च न दण्डं कर्तुमीश्वरः । सापराधे च पुरुषे धर्मो दण्डं करोति च ॥

सर्वं क्षमस्व हे मातर्गच्छ गच्छ प्रियान्तिकम् ।
माञ्च त्वत्स्वामिनो भक्तं नियोजय सृष्टिकर्मणि ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा तां पुरस्कृत्वा सार्द्धं देवैर्मुनीन्द्रकैः । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं वैकुण्ठे स्तोतुमीश्वरः
तत्र गत्वा जगन्नाथं तुष्टाव कमलासनः । चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्वेदविदां गुरुम् ॥२८

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा दृष्ट्वा लक्ष्मीं पुरःसराम् ।
रुदन्तीं नम्रवदनामुवाच कमलापतिः ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वं जानामि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वपालकः । सर्वशास्ता च सर्वादिकारणं कमलोद्भव
भक्ते कलत्रे बन्धौ च सर्वत्र समता मम । विशेषतोऽतिमद्भक्तः कलत्रात्पर एव च ॥
मद्भक्तौ तव पुत्रौ च द्वारपालौ दुरन्तकौ । क्षम मामपराधञ्च तयोश्च भक्तिपूर्वयोः ॥

मद्भक्तिपूर्णो बलवान् दैत्येभ्यो न बिभेति च ।
रक्षितो मम चक्रेण भक्तिमाध्वीकदुर्मदः ॥ ३३ ॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो लक्ष्मीं कृत्वा स्ववक्षसि ।
समानीय द्वारपालं तमुवाचेदमेव च ॥ ३४ ॥
मा भैर्वत्स सुखं तिष्ठ भयं किं ते मयि स्थिते ।
मद्भक्तानाञ्च कः शास्ता गच्छ वत्सात्मनः पदम् ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र विरराम महामुने । ययुर्देवाश्च स्वस्थानं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥
नारायणवचः श्रुत्वा द्वारपाल उवाच तम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥

जय उवाच ।

नाहं बिभेमि देवांश्च लक्ष्मीं मुनिगणांस्तथा । त्वदीयचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
वैराग्यमोचनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

बभूव दर्पः पृथ्व्याश्च सर्वाधाराऽहमेव च । पृथुद्वारा च तद्दर्पं जघान चैव तत्प्रभुः ॥१॥
बभूव दर्पः सावित्र्या वेदमाताऽहमेव च । काले चकार तस्याश्च सपुत्राया अदर्शनम् ॥२

बभूव दर्पो गङ्गाया अहं निर्वाणदेति च। जह्नुद्वारा च तद्दर्पं जहार जगतां पतिः ॥३॥
जहार मनसादर्पं दुर्गाद्वारा पुरा मुने। विरजोपगतं कृष्णं भर्त्सयामास कोपतः ॥४॥
प्रविशन्तं रासगृहं गोपीभिर्विनिवारितम्। दौवारिकाभिर्वेत्रैश्च ताड़ितं तञ्च दर्पतः॥५॥

सुदाम्ना निजभक्तेन राधा शप्ता बभूव ह।
दैवेन सहसा ध्वस्ता गोलोकादागता धराम् ॥ ६ ॥

वृषभानुस्त्रियां जाता कलावत्याश्च नारद। कृष्णस्तदनुरोधेन कंसभीतिच्छलेन च ॥
समागतो नन्दगेहं तेनाहं नन्दनन्दनः। सुदाम्नः शापविच्छेदपालनार्थं जगत्पतिः ॥८॥
पुनर्जगाम मथुरामित्याह कमलोद्भवः। अस्याः परमभिप्रायं को वा जानाति नारद ॥
कथं जातः समाग्रातो मथुरायाश्च गोकुलम्। इत्येवं कथितं सर्वमपरं श्रूयतामिति ॥

यथा जगाम मथुरां नन्दात् स नन्दनन्दनः।
शोकं नन्दो यशोदा च यथा सम्प्राप दैवतः ॥ ११ ॥
यथा गोपाश्च गोप्यश्च गावो वृन्दावने वने।
वने वने वा वन्यास्ते वन्या जानन्ति किञ्चन ॥ १२ ॥

वनं रम्यं वन्यपदमपि त्यक्त्वा वने वने। श्मशाने वाश्मशाने वा बभ्राम भामिनी मुने ॥
ग्रामं त्यक्त्वा च बभ्राम चेतनाचेतनाक्षणम्। क्षणेनवर्जिता सा च प्रार्थयन्ती प्रतीक्षणम्
क्षणांक्षणं सा श्वसन्ती चेतनं कुर्वतोक्षणम्। क्षणं विशन्ती तल्पे च क्षणमुत्थायतिष्ठति

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

———

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

इत्येवं कथितं सर्वं सर्वेषां दर्पभञ्जनम्। इन्द्रस्य दर्पभङ्गञ्च विस्तारेण निशामय ॥ १ ॥

इन्द्रो दर्पात् सभायाञ्च रत्नसिंहासनाद्वरात् ।
नोत्तस्थौ स्वगुरुं दृष्ट्वा ब्रह्मिष्ठञ्च बृहस्पतिम् ॥ २ ॥
गुरुर्जगामातिरुष्टः स्वापमाने समत्सरः । तथापि कृपया धर्मी स्नेहाच्च न शशाप तम् ॥
विना शापेन तद्दर्पश्चूर्णीभूतो बभूव ह ।
अन्यश्चेन्न शपेद्धर्मात् प्रेम्णा वा चाति किल्बिषम् ॥ ४ ॥
तथापि तञ्च फलति धर्मस्तं हन्ति नारद । यो यं हिंस्रं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः ॥
विनाशः सापराधस्य धर्मो नष्टश्च धर्मिणः । तेनाधर्मेण शक्रस्य ब्रह्महत्या बभूव ह ॥
भीतस्त्यक्त्वा स्वराज्यञ्च प्रययौ स सरोवरम् । सरसः पद्मसूत्रे च निवासञ्चचकार सः
गन्तुं न शक्ता हत्या च पुण्यं विष्णुसरोवरम् । श्रेष्ठं भारतवर्षे च तपस्थानंतपस्विनाम्
तदेव पुष्करं तीर्थं प्रवदन्ति पुराविदः । राज्यभ्रष्टं हरिं दृष्ट्वा हरिभक्तो नराधिपः ॥ ६ ॥
बलाज्जहार तद्राज्यं नहुषो नाम धार्मिकः । दृष्ट्वा शचीं वरारोहामनपत्याञ्च सुन्दरीम् ॥
स्वर्गगङ्गाञ्च गच्छन्तीं हृदयेन विदूयता । नवयौवनसम्पन्नां रत्नालङ्कारभूषिताम् ॥११॥
सुकोमलां तां सुदतीं वदन्तीञ्च महासतीम् ।
मूर्च्छां सम्प्राप राजेन्द्रः कामेन यौवनेन च ॥ १२ ॥
उवाच तत्पुरःस्थित्वा सुविनीतश्च दासवत् ।

नहुष उवाच ।

धातुर्गतिर्विचित्राऽहो न बोध्या च सतामपि ॥ १३ ॥
ईदृशी स्त्री भगाङ्गस्य लुब्धस्य परयोषिति । ईदृशी सुन्दरी यस्य परभार्य्यासु तन्मनः
अस्या अग्रे च का रम्भा कोर्वशी का तिलोत्तमा ।
का वा मेना घृताची वा रत्नमाला कलावती ॥ १५ ॥
कालिकासुन्दरीभद्रावती चम्पावतीतथा । एताश्चाप्सरसश्चास्याःकलांनार्हन्तिषोड़शीम्
इमां विहाय मूढोऽन्यां कथं गच्छति मन्दधीः ।
अस्माकं योषितो याश्च चेटीतुल्याश्च निश्चितम् ॥ १७ ॥
मां भजस्व वरारोहे सुप्रीता भव किङ्करम् । यथा राधा च गोलोके कृष्णवक्षसिराजते

वैकुण्ठोरसि वैकुण्ठे यथा लक्ष्मीः सरस्वती। ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी यथैव ब्रह्मवक्षसि
यथा मूर्तिर्महासाध्वी धर्मवक्षःस्थलस्थिता। पातालतललक्ष्मीर्वा यथैवानन्तवक्षसि॥
यथा पुष्टिर्गणेशे च देवसेना च कार्तिके। वरुणे वरुणानी च यथा स्वाहा हुताशने॥

यथा रतिः कामदेवे यथा संज्ञा दिनेश्वरे।
वायोः पत्नी यथा वायौ यथा चन्द्र च रोहिणी॥ २२॥

यथादितिर्देवमाता तव श्वश्रूश्च कश्यपे। यथा हिमालये मेना पितृकन्या च मानसी॥
लोपामुद्रा यथागस्त्ये यथा तारा बृहस्पतौ। कर्दमे देवहूती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा
मनौ च शतरूपेव दमयन्ती नले यथा। तथा भव त्वं सौभाग्या मम वक्षसि सुन्दरि
लीलयाच सहस्रेन्द्रान् छेत्तुंशक्तोऽहमीश्वरः। नारीवाञ्छति जारञ्च स्वामिनोवलवत्तरम्

सुमेरुगिरिकूटे च दुर्गमेऽतिरहःस्थले।
अथवामलये रम्ये रम्ये चन्दनवायुना॥ २७॥

विश्वम्भके सुरसने किंवा नन्दनकानने। निकटे शतश्रृङ्गस्य पुष्पभद्रानदीतटे॥ २८॥
गोदावरीतीरनीरे समीपे शीतवायुना। चम्पावतीनदीतीरे रम्ये चम्पककानने॥ २९॥
श्मशानेऽतिश्मशाने च रम्येऽतिनिर्जने वने। शैले शैलेऽतिरहसि कन्दरे कन्दरे वने॥
द्वीपे द्वीपे दुर्गदुर्गे नद्यां नद्यां नदे नदे। समुद्रपुलिने रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते॥ ३१॥
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो निर्जने सुखः। पुष्पचन्दनशय्यायां पुष्पचन्दनचर्चिते॥
मां गृहीत्वा कुरु रतिं पुष्पचन्दनचर्चितम्। ब्रह्मणश्च वरैर्देवी जरामृत्युविवर्जितम्॥
मां कुरुष्व पतिं भद्रे नित्यं सुस्थिरयौवनम्। सुवेशं सुन्दरं धीरं कामशास्त्रविशारदम्
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं चन्द्रवंशसमुद्भवम्। आगतामुर्वशीं मह्यां त्यक्तवन्तश्च याचतीम्।

न मे स्पृहा परस्त्रीषु त्वां दृष्ट्वा लोलुपं मनः।
त्यक्ता मया स्वभार्य्याश्च रत्नभूषणभूषिताः॥ ३६॥
अथवा रक्षिताः सर्वा दासीः कृत्वा वरानने।
रत्नेन्द्रसारां मालां ते दास्यामि वरुणस्य च॥ ३७॥

निर्जित्य वरुणं युद्धे ब्रह्मास्त्रेणातितेजसा। वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं जित्वा वह्निं सुदुर्बलम्॥

दास्याम्यद्यैव ते देवि वियोज्यं मां नियोजय । मणीन्द्रसारनिर्माणमकराकारकुण्डले ॥
दास्यामि देवान्निर्जित्य देवमातुश्च सुन्दरि । करभूषणयुग्मञ्चात्यमूल्यरत्ननिर्मितम् ॥
दास्याम्यद्यैव रोहिण्याश्चन्द्रं जित्वातिदुर्लभम् । यक्ष्मग्रस्तमतिक्रूरं ममैव पूर्वपूरुषम्
विना युद्धेन भीतो मां कृपया वा प्रदास्यति । अल्परत्नविनिर्माणं क्वणन्मञ्जीरयुग्मकम्

दास्याम्यद्यैव पार्वत्या भिक्षां कृत्वा महेश्वरम् ।
आशुतोषं स्तुतिवशं भक्तेशञ्च कृपामयम् ॥ ४३ ॥

सर्वसम्पत्तिदातारं परं कल्पतरुं शुभे । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरयुगलं प्रिये ॥ ४४ ॥

दास्यामि तेऽद्य गङ्गाया युद्धं कृत्वा सुदुर्लभम् ।
वहुलीयुगलं चारु सूर्य्यपत्न्या मनोहरम् ॥ ४५ ॥

सद्रत्नसारनिर्माणं दास्याम्यद्य सुशोभने । अमूल्यरत्ननिर्माणं दर्पणञ्चातिनिर्मलम् ॥४६।

दास्यामि ते कामपत्न्याः कामं जित्वा च लीलया ।
क्रीड़ाकमलमम्लानं कमलायाश्च सुन्दरि ॥ ४७ ॥
भिक्षां कृत्वा च दास्यामि स्तुत्वा च कमलापतिम् ।
अङ्गुलीयकरत्नानि विश्वेषु दुर्लभानि च ॥ ४८ ॥
सावित्र्याश्च प्रदास्यामि कृत्वा च ब्रह्मणस्तथा ।
स्वयं गीतं प्रगायन्तीं मूर्च्छनाश्रुतिसंयुताम् ॥ ४९ ॥

वाणीवीणां प्रदास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् । रत्नपाशकसङ्घञ्च विश्वकर्मविनिर्मितम्
कुबेरपत्न्या दास्यामि पादाङ्गुलिविभूषणम् । इत्येवमुक्त्वा नहुषः पपात तत्पदाम्बुजे॥

उवाच तं शची त्रस्ता राजमार्गगतं नृपम् ॥ ५१ ॥

उत्थाप्य तं करे धृत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । स्मारंस्मारं पदाम्भोजं महासाध्वी हरेर्गुरो

शच्युवाच ।

शृणु वत्स महाराज हे तात भयभञ्जन । भयत्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता॥

भ्रष्टश्रीश्च महेन्द्रोऽद्य त्वञ्च स्वर्गे नृपोऽधुना ।
यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम् ॥ ५४ ॥

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः। पित्रोःस्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नीच मातुली
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता। गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोड़श मातरः॥

त्वं नरो देवभार्य्याऽहं माता ते वेदसम्मता।
गच्छ वत्सादितिं रन्तुं यदि चेच्छसि मातरम्॥ ५७॥
सर्वेषां निष्कृतिर्नास्ति न वत्स ! मातृगामिनाम्।
कुम्भीपाके ते पचन्ति यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ ५८॥

ततोंभवन्ति क्रमयःवेश्यायोनिषु कल्पकान्। ततश्च कुष्ठिनो म्लेच्छा भवन्तिसप्तजन्मसु
नास्त्येव निष्कृतिस्तेषामित्याह कमलोद्भवः। एवं विट्क्षत्रशूद्राणां ब्राह्मणीगमने नृप

वेदेषु निष्कृतिर्नास्ति चेत्याङ्गिरसभाषितम्।
स्वर्गसम्पत्तिभोगश्च सुखं संसारिणां ध्रुवम्॥ ६१॥

मुमुक्षूणाञ्च मोक्षश्च तपश्चैव तपस्विनाम्। ब्राह्मणानाञ्च ब्राह्मण्यं मुनीनां मौनमेव च

वेदाभ्यासो वैदिकानां कवीनां काव्यवर्णनम्।
विष्णुदास्यं वैष्णवानां विष्णुभक्तिरसं परम्॥ ६३॥
विष्णुभक्तिं विना नैव मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः।
मलाढ्येषु च क्लेदेषु दुर्गन्धिनिलयेषु च॥ ६४॥
साधूनां किं सुखं साधो स्त्रीणां योनिषु मां वद।
कुलप्रदीपे राजेन्द्र राज्ञां मण्डलवर्त्तिनाम्॥ ६५॥

लब्धश्च भारते जन्म पुण्येन बहुजन्मनाम्। पद्मानां चन्द्रवंश्यानां नृपाणां दीप्तिहेतवे॥
त्वमाविरासीस्तेजस्वी ग्रीष्ममध्याह्नभास्करः। सर्वेषामाश्रमाणाञ्च स्वधर्मश्चयशःपरम्
स्वधर्महीना नरके पतन्ति मूढ़चेतसः। ब्राह्मणस्य स्वधर्मश्च त्रिसन्ध्यमर्चनं हरेः॥६८॥
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणञ्च सुधाधिकम्। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रमनिवेद्यं हरेर्नृप॥ ६९॥
भवन्ति शूकराः सर्वे ब्राह्मणा यदि भुञ्जते। आजीवं भुञ्जते विप्रा एकादश्यां न भुञ्जते
कृष्णजन्मदिने चैव शिवरात्रौ सुनिश्चितम्। तथा रामनवम्याञ्च यत्नतः पुण्यवासरे॥
ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कथितो ब्रह्मणा नृप। व्रतं पतिव्रतानाञ्च पतिसेवा परं तपः॥७२

यथा पुत्रः परपतिरेष धर्मश्च योषिताम् । पालयन्ति यथा भूपाः प्रजाः पुत्रानिवौरसान्
प्रजाःस्त्रियश्च पश्यन्ति राजानो मातरंयथा । यज्ञं कुर्वन्ति विष्णोश्च सेवनं देवविप्रयोः
निवारणञ्च दुष्टानां शिष्टानां प्रतिपालनम् । इति धर्मः क्षत्रियाणां कथितो ब्रह्मणा पुरा
वाणिज्यञ्चैव वैश्यानां स्वधर्मो धर्मसञ्चयः । शूद्राणां विप्रसेवा च परो धर्मो विधीयते

सर्वन्यासो हरौ भूप धर्मः सन्न्यासिनां ध्रुवम् ।
रक्तैकवासा दण्डी च विभर्ति मृत्कमण्डलुम् ॥ ७७ ॥

सर्वत्र समदर्शी च स्मरेन्नारायणं सदा । करोति भ्रमणं नित्यं गेहे गेहे न तिष्ठति ॥७८
विद्या मन्त्रञ्च कस्मैचिन्न ददातिच लोभतः । करोतिनाश्रमं भिक्षुःकरोतिनान्यवासनाम्

करोति नान्यसङ्गञ्च निर्मोहः सङ्गवर्जितः ।
न स्वादु भुङ्क्ते लोभाच्च स्त्रीमुखं न हि पश्यति ॥ ८० ॥

न वाञ्छितं भक्ष्यवस्तु याचतेगृहिणं व्रती । इति सन्न्यासिनां धर्ममित्याह कमलोद्भवः

इति ते कथितं पुत्र गच्छ वत्स यथासुखम् ॥ ८२ ॥

इत्युक्त्वा च महेन्द्राणी विरराम च वर्त्मनि । उवाच नहुषो राजा शचीं वक्रप्रकन्धरः

नहुष उवाच ।

त्वया यत् कथितं देवि सर्वं तत्तु विपर्य्ययम् । यथार्थधर्मं वेदोक्तं निवोध कथयामि ते
कर्मणां फलभोगश्च सर्वेषां सुरसुन्दरि । नैव स्वर्गे न पाताले नान्यद्वीपे श्रुतौ श्रुतम् ॥

कृत्वा शुभाशुभं कर्म पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
अन्यत्र तत्फलं भुंक्ते कर्मी कर्मनिबन्धनात् ॥ ८६ ॥

हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् । श्रेष्ठं सर्वस्थलानाञ्च मुनीनाञ्च तपःस्थलम् ॥
तत्रलब्ध्वा जन्म जीवी वञ्चितो विष्णुमायया । शश्वत्करोतिविषयं विहाय सेवनंहरेः

कृत्वा तत्र महत् पुण्यं स्वर्गं गच्छति पुण्यवान् ।
गृहीत्वा स्वर्गकन्याश्च चिरं स्वर्गे प्रमोदते ॥ ८९ ॥
स्वर्गमागच्छति नरो विहाय मानवीं तनुम् ॥ ९० ॥

स्वशरीरेणागतोऽहं मत्पुण्यंपश्य सुन्दरि । अनेकजन्मपुण्येन चागतो स्वर्गमीप्सितम् ॥

ततः किं केन पुण्येन दर्शनं मे त्वया सह । न हि कर्मस्थलमिदं स्वभोगस्थलमेव हि ॥
भोगस्थलेभोगवस्तु न हि त्यक्तुंप्रशस्यते । भावानुरक्तारसिका भोग्या त्वंभोगिनामिह
द्रव्यमस्वामिकं भोग्यं सुखं त्यजति मन्दधीः । अविरोधसुखत्यागी पशुरेव न संशयः

गच्छ कान्ते गृहं गत्वा कुरु तल्पं मनोहरम् ।
रमणीयञ्च रहसि वरं रतिकरं परम् ॥ ६५ ॥

त्यज द्वैधञ्च मनसो निश्चितं वरवर्णिनि । वरानने मया सार्द्धं मोदस्व वरमन्दिरे॥६६॥

अमूल्यरत्नमालाञ्च मणिराजविराजिताम् ।
भिक्षां कृत्वा च दास्यामि लक्ष्मीवक्षसि शोभिताम् ॥ ६७ ॥

मणिञ्चानन्तशिरसः सर्वेषामतिदुर्लभम् । दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु तुभ्यं दास्यामिसुन्दरि

मणिरत्नं कौस्तुभञ्च यन्नारायणवक्षसि ।
भिक्षां कृत्वा तु दास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् ॥ ६६ ॥

चन्द्रशेखरमौलेश्च यदर्द्धं चन्द्रभूषणम् । जरामृत्युव्याधिहरं शान्तं क्रीड़ाकरं वरम् ॥

अतीव विश्वदुष्प्राप्यं विश्ववन्द्यञ्च सुन्दरम् ।
विश्वनाथव्रतं कृत्वा तुभ्यं दास्यामि निश्चितम् ॥ १०१ ॥

दास्यामि ते श्रीसूर्य्यस्य मणिश्रेष्ठं स्यमन्तकम् ।
भक्त्या सूर्य्यव्रतं कृत्वा त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १०२ ॥

अष्टौ भारान् सुवर्णञ्च यश्च नित्यं प्रसूयते । जरामृत्युहरंचैव परं क्रीड़ाकरं प्रिये ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं पात्ररत्नं मनोरमम् । सन्ततं मधुपूर्णञ्च दास्यामि मदनस्य च ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं सूर्य्यतुल्यञ्च तेजसा । नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्माणमीश्वरेच्छया
निर्मलं मण्डलाकारं मणिराजविराजितम् । हस्तलक्षपरिमितं चतुरस्रञ्च सुन्दरि॥१०६॥

पद्मा पद्मासनं श्रेष्ठं प्रेष्ठं तस्याः सुदुर्लभम् ।
ध्रुवं तुभ्यं प्रदास्यामि कृत्वा पद्मालयाव्रतम् ॥ १०७ ॥

इत्येवमुक्त्वा नहुषः कृत्वा वर्त्मनिरोधनम् । पुनः पपात चरणे महेन्द्राण्या मुहुर्मुहुः ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । तमुवाच महेन्द्राणी स्मारं स्मारं गुरुंहरिम्

शच्युवाच ।

अचेतनस्यमूढस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः । श्रोष्याम्यद्य कतिविधां कथां कामातुरस्यच
मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः । मृत्युं न गणयेत्कामी कामेन हृतमानसः ॥

त्यज मामद्य हे मत्त मातृतुल्यां रजस्वलाम् ।
ऋतोः प्रथमो दिवसो ह्यद्य हे नृप मे ध्रुवम् ॥ ११२ ॥
प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला ।
द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा ॥ ११३ ॥

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपैत्र्ययोः । असत्शूद्रा समा सा च तद्दिने च परं प्रति
प्रथमे दिवसे कान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । ब्रह्महत्याचतुर्थांशं लभते नात्र संशयः
स पुमान्न हि कर्मार्हो दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । अधमः स च सर्वेषां निन्दितश्चायशस्करः
द्वितीये दिवसे नारीं यो व्रजेच्च रजस्वलाम् । कामतः परिपूर्णश्च गोहत्यां लभते ध्रुवम्

आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुरार्चने ।
अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याङ्गिरसभाषितम् ॥ ११८ ॥

तृतीयेदिवसे जायां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । स मूढो भ्रूणहत्याञ्च लभते नात्रसंशयः
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चार्हःसर्वकर्मसु । असत्शूद्रा चतुर्थेऽह्नि न गच्छेत्तां विचक्षणः
यदि मां मातरं मूढ गृहिष्यसि बलेन च । ऋतावतीते दिवसे गमनञ्च करिष्यसि ॥

शच्याश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य नहुषस्तथा ।
उवाच मधुरं शान्तः शक्रकान्ताञ्च सुव्रताम् ॥ १२२ ॥

देवपत्नी सदा शुद्धा तन्न्यूनं मानवं प्रति । शयने भोजने देवी नाशुद्धा मानवं प्रति ॥
रजस्वलायाः सम्भोगे कर्मक्षेत्रे च भारते । त्वयोक्तश्च भवेत् पापं नात्र दुर्गे च सुन्दरि
कर्मक्षेत्रेऽपि तत्कर्म यद्वेदोक्तं शुभाशुभे । न भवेद्वैष्णवानाञ्च ज्वलतां ब्रह्मतेजसा ॥

यथा प्रदीप्ते वह्नौ च शुष्काणि च तृणानि च ।
भवन्ति भस्मीभूतानि तथा पापानि वैष्णवे ॥ १२६ ॥

वह्निसूर्य्यब्राह्मणेभ्यस्तेजीयान् वैष्णवः सदा । रक्षितो विष्णुचक्रेण स्वतन्त्रोमत्तकुञ्जरः

न विचारो न भोगश्च वैष्णवानां स्वकर्मणाम् ।
लिखितं साम्नि कौथुम्यां कुरु प्रश्नं वृहस्पतिम् ॥ १२८ ॥
अस्मांश्चसर्वेजानन्ति चन्द्रवंश्यांश्चवैष्णवान् । देवमन्यं न सेवन्ते चन्द्रवंश्याहरिंविना
सद्वंशप्रभवो यो हि ब्राह्मणःक्षत्रियोऽथवा । विष्णुमन्त्रं न गृह्णातिवञ्चितोविष्णुमायया
को वा मन्त्रश्च के देवा न हि शास्ता यमो मम ।
सर्वान् शास्तुं समर्थोऽहं ब्रह्मविष्णू शिवं विना ॥ १३१ ॥
शय्यांकुरु गृहं गत्वा शीघ्रं यास्यामि ते गृहम् । ऋतुपापंमयि भवेत्तव किं गच्छशोभने
इत्युक्त्वा नहुषो राजा प्रफुल्लवदनेक्षणः । रत्नयानं समारुह्य ययौ नन्दनकाननम्॥१३३॥
न ययौ सा शची गेहं प्रजगाम गुरोर्गृहम् ।
गत्वा कुशासनस्थञ्च ददर्श च वृहस्पतिम् ॥ १३४ ॥
तारासेवितपादाब्जं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । जपमालाकरं शश्वज्जपन्तं कृष्णमीप्सितम् ।
परमं परमानन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥ १३५ ॥
निर्गुणञ्च निरीहञ्च स्वतन्त्रं प्रकृतेः परम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
तमानन्दाश्रुनेत्रञ्च ननाम शिरसा भुवि । रुदन्ती साश्रुनेत्रा सा मज्जन्ती भक्तिसागरे ॥
शोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता । तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मिष्ठञ्च कृपानिधिम् ॥

शच्युवाच ।

रक्ष रक्ष महाभाग मां भीतां शरणागताम् । त्वमीश्वरः स्वदासीञ्च निमग्नां शोकसागरे
अनीश्वरश्चेश्वरो वा बलवान् वा सुदुर्बलः ।
स्वशिष्यभार्य्यां पुत्रांश्च शासितुञ्च सदा क्षमः ॥ १४० ॥
दूरीभूतः स्वराज्याच्च स्वशिष्यश्च कृतस्त्वया । शान्तिर्बभूव दोषस्य चाधुना निग्रहंकुरु
अनाथां सर्वशून्यां मां शून्यांताममरावतीम् ।
सम्पत्शून्यमाश्रमं मे पश्य रक्ष कृपानिधे ॥ १४२ ॥
दस्युग्रस्ताञ्च मां रक्ष देशं किङ्करमःनर । दत्त्वा चरणरेणून् तं शुभाशीर्वचनं कुरु ॥१४३
सर्वेषाञ्च गुरूणाञ्च जन्मदाता परो गुरुः । पितुः शतगुणा माता पूज्या वन्द्या गरीयसी

विद्यादाता मन्त्रदाता ज्ञानदो हरिभक्तिदः ।
पूज्यो वन्द्यश्च सेव्यश्च मातुः शतगुणो गुरुः ॥ १४५ ॥
मन्त्राद्युद्गीरणेनैव गुरुरित्युच्यते बुधैः । अन्यो वन्द्यो गुरुरयमन्यश्चारोपितो गुरुः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अदीक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृतिर्नास्ति निश्चितम् ।
सर्वकर्मस्वनर्हस्य नरके तत्पशोः स्थितिः ॥ १४८ ॥
जन्मदातान्नदाता च मातान्ये गुरवस्तथा । पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसारसागरे ॥
विद्यामन्त्रज्ञानदाता निपुणः पारकर्मणि । स शक्तः शिष्यमुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात् परः ॥
गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः ॥
सर्वतीर्थाश्रमश्चैव सर्वदेवाश्रयो गुरुः । सर्वदेवस्वरूपश्च गुरुरूपी हरिः स्वयम् ॥१५३॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम् । गुरौ रुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्तश्च रक्षितुम्
सर्वे ग्रहाश्च यं रुष्टा रुष्टाश्च देवब्राह्मणाः । तमेव रुष्टो भवति गुरुरेव हि दैवतः ॥१५४॥
न गुरोश्च प्रियश्चात्मा न गुरोश्च प्रियः सुतः ।
धनं प्रियञ्च न गुरोर्न च भार्य्या प्रिया तथा ॥ १५५ ॥
न गुरोश्च प्रियो धर्मो न गुरोश्च प्रियं तपः । न गुरोश्च प्रियं सत्यं न पुण्यञ्चगुरोःपरम्
गुरोः परो न शास्ता च न हि बन्धुर्गुरोः परः ।
देवो राजा च शास्ता च शिष्याणाञ्च सदा गुरुः ॥ १५७ ॥
यावत्शक्तोदातुमन्नं तावत्शास्तातदन्नदः। गुरुःशास्ता च शिष्याणां प्रतिजन्मनि जन्मनि
मन्त्रो विद्यागुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथा पतिः । प्रतिजन्मनिबन्धेन सर्वेषामुपरि स्थितः ॥
पिता गुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः । गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रतिजन्मनि
विप्राणां त्वं वरिष्ठश्च गरिष्ठश्चतपस्विनाम् । ब्रह्मिष्ठोब्रह्मविद्ब्रह्मन् धर्मिष्ठःसर्वधर्मिणाम्
तुष्टो भव मुनिश्रेष्ठ माञ्च शक्रञ्च साम्प्रतम् ।
त्वयि तुष्टे सदा तुष्टा भवन्ति ग्रहदेवताः ॥ १६२ ॥
इत्युक्त्वा सा शची ब्रह्मन् पुनरुच्चै रुरोद ह । दृष्ट्वा तद्रोदनं तारा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥

पपात चरणे तारा रुरोद च पुनः पुनः। अपराधं क्षमेत्युक्त्वा गुरुस्तुष्टोऽप्युवाच ताम् ॥

गुरुरुवाच।

उत्तिष्ठ तारे! शच्याश्च सर्वं भद्रं भविष्यति। सद्यःप्राप्स्यति भर्त्तारं महेन्द्रश्च मदाशिषा
इत्युक्त्वा स गुरुस्तत्र विरराम च नारद। पपात चरणे तारा पुनरेव रुरोद च ॥१६६॥
गृहीत्वा च शचीं तारा संस्थाप्य च स्वक्षसि। बोधयामास विविधमध्यात्मकनुत्तमम्
शचीकृतं गुरुस्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत्। गुरुश्चाभीष्टदेवस्य सन्तुष्टः प्रतिजन्मनि ॥
ग्रहदेवद्विजास्तञ्च परितुष्टाश्च सन्ततम्। राजानो बान्धवाश्चैव सन्तुष्टाः सर्वतःसदा ॥

गुरुभक्तिं विष्णुभक्तिं वाञ्छितं लभते ध्रुवम्।
सदा हर्षो भवेत्तस्य न च शोकः कदाचन ॥ १७० ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्। सुस्वरूपां गुणवतीं सतीं पुत्रवतीं ध्रुवम्

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ १७२ ॥

कदाचिद् बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य निश्चितम्। नित्यंतद्वर्द्धते धर्मो विपुलं निर्मलंयशः
लभते परमैश्वर्यं पुत्रपौत्रधनान्वितम्। इह सर्वसुखं भुक्त्वा प्राप्यते श्रीहरेः पदम् ॥

न भवेत्तत्पुनर्जन्म हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम्।
विष्णुभक्तिरसाब्धौ च निमग्नश्च भवेद् ध्रुवम् ॥ १७५ ॥

शश्वत्पिबन्तिशान्ताश्च विष्णुभक्तिरसामृतम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसन्तापनाशनम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे महेन्द्रदर्पभङ्ग-प्रकरणे शचीशोकापनोदने शचीकृतगुरुस्तोत्रकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।

———

षष्टितमोऽध्यायः

शचीम्प्रति वृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

शचीस्तोत्रं समाकर्ण्य परितुष्टो वृहस्पतिः । उवाच मधुरं शान्तःकान्तामिन्द्रस्य नारद

वृहस्पतिरुवाच ।

त्यज वत्से भयं सर्वं भयं किं ते मयि स्थिते ।

यथा कचस्य पत्नी मे तथा त्वमसि शोभने ॥ २ ॥

यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः । तर्पणे पिण्डदाने च पालने परितोषणे ॥

यथाग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् । इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः

पिता माता गुरुर्भार्याशिशुश्चानाथबान्धवाः । एते पुंसां नित्यपोष्याइत्याह कमलोद्भवः

यश्चैतांश्च न पुष्णाति भस्मान्तं तस्य सूतकम् ।

दैवे पित्र्येन कर्मार्हः सोऽपीत्याह महेश्वरः ॥ ६ ॥

कुरुते नरबुद्धिञ्च मातरं पितरं गुरुम् । अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्न एव पदे पदे ॥ ७ ॥

सम्पन्मत्तो यः करोति स्वगुरोश्च पराभवम् ।

अचिरात्सर्वनाशश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

मां च दृष्ट्वा सभामध्ये नोत्तस्थौ पाकशासनः ।

तत्फलं भुज्यते साक्षात्सद्यः पश्य च साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

अहं करोमि मोक्षञ्च तव रक्षां सुनिश्चितम् । शासितुं रक्षितुं शक्तःस एव गुरुरुच्यते ॥

न नश्यति सतीत्वञ्च ह्यच्छुद्धायाश्च योषितः । यन्मानसे विकल्पश्च तस्य धर्मश्चनश्यति

भविष्यति प्रभावस्ते दुर्गायाश्च समः सति । लक्ष्मीसमा प्रतिष्ठाच यशस्तद्यशसासमम्

सौभाग्यं राधिकातुल्यं तत्समं प्रेम भर्त्तरि ।

तत्तुल्यं गौरवं मान्यं प्रीतिः प्राधान्यमीश्वरे ॥ १३ ॥

रोहिण्याश्चलमापेक्षा पूज्याश्चभारतीसमा । शुद्धा निरुपमाशश्वत् सावित्रीसदृशीसदा
एतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतो नहुषाच्चरः । उवाच वचनं भीतो वाक्पतेर्गोचरे ततः ॥

दूत उवाच ।

उत्तिष्ठ देवि शीघ्रं त्वं गच्छस्व नहुषं प्रति । क्रीड़ां कर्त्तुञ्च रहसि रम्ये नन्दनकानने ॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच वृहस्पतिः । कम्पितावयवः कोपात् रक्तपङ्कजलोचनः ॥

गुरुरुवाच ।

नहुषं वद गत्वा त्वं शचीं चेद्भोक्तुमिच्छसि । अपूर्वं यानमारुह्य निशायामागमिष्यसि
सप्तर्षीणाञ्च स्कन्धे च दत्त्वा स्वशिविकां शुभाम् ।
तामारुह्य सुवेशश्च गमनं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥
वाक्पतेर्वचनं श्रुत्वा गत्वोवाच नृपं तदा । दूतस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच किङ्करम्
गच्छ गच्छ त्वरन् गच्छ सप्तर्षीन् शीघ्रमानय ।
उपायञ्च करिष्यामि तैः सार्द्धं साम्प्रतं चर ॥ २१ ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा गत्वा दूतस्तदन्तिकम् । उवाच सर्वांस्तत्रैव यथोक्तं नहुषेण च ॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा ययुः सप्तर्षयो मुदा ।
राजा दृष्ट्वा च तान् सर्वान् ननामोवाच सादरम् ॥ २३ ॥

नहुष उवाच ।

यूयञ्च ब्रह्मणः पुत्रा ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मणः सदृशाः सर्वे सततं भक्तवत्सलाः ॥
नारायणपराः शश्वच्छुद्धसत्वस्वरूपिणः । मोहमात्सर्यहीनाश्च दर्पाहङ्कारवर्जिताः ॥
नारायणसमाः सर्वे तेजसा यशसा सदा । गुणेन कृपया प्रेम्णा वरदानेन निश्चितम् ॥
इत्युक्त्वा प्रणतो राजा तुष्टाव च रुरोद च । दृष्ट्वा ते कातरं भूपमूचुः परहितैषिणः ॥

ऋषय ऊचुः ।

वरं वृणीष्व हे वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम् । सर्वं दातुं वयं शक्ता नासाध्यं नश्चकिञ्चन
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा चिरायुर्वा ततः परम् । सप्तद्वीपेश्वरत्वञ्चाप्यतीव सुचिरं सुखम्
अथापि सर्वसिद्धित्वं सर्वैश्वर्यं सुदुर्लभम् । मुक्तिं वा हरिभक्तिं वा तपसा या सुदुर्लभा

किमीप्सितं ते हे वत्स ब्रूहि नः साम्प्रतं मुदा। सर्वं तुभ्यं प्रदायैव यास्यामस्तपसे मुदा

युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना।
तद्दिनं दुर्दिनं यत्तद् ध्यानसेवनवर्जितम् ॥ ३२ ॥
विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यश्च वाञ्छति।
विषमत्ति प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्माशिवश्च धर्मश्च विष्णुश्चापिमहान्विराट्। गणेशश्चदिनेशश्च शेषश्चसनकादयः
एते यच्चरणाम्भोजं ध्यायन्तोऽहर्निशं मुदा। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं तन्निरता वयम् ॥

तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुवाच नृपेश्वरः।
स लज्जितो नम्रवक्त्रो मायामोहितमानसः ॥ ३६ ॥

नहुष उवाच।

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयञ्च भक्तवत्सलाः। अधुना देहि मे तूर्णं शचीदानमभीप्सितम्
सप्तर्षिवाहनं कान्तं शचीच्छति महासती। एतदेव मम वरं निष्पन्नं कुरुताचिरम् ॥३८॥

नहुषस्य वचः श्रुत्वा मुनयश्च परस्परम्।
अत्युच्चैर्जहसुः सर्वे कौतुकेन च नारद ॥ ३९ ॥

राजानं मोहितं मत्वा वेष्टितं विष्णुमायया। चक्रुः प्रतिज्ञां वोढुञ्च कृपया दीनवत्सलाः

चक्रुः स्कन्धे तच्छिबिकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम्।
राजा ययौ सुवेशश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वातिविलम्बञ्च भर्त्सयामास तान्नृपः। क्रुधाशशाप दुर्वासाश्चाग्रगामी च वर्त्मनि
महानजगरो भूत्वा पत वै मूढमानस। दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति ॥४३॥
रत्नयानेन वैकुण्ठं गत्वा वैकुण्ठसेवनम्। करिष्यसि महाराज न कर्म निष्फलं भवेत्

इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे प्रहस्य मुनिसत्तमाः।
राजा पपात तच्छापात् सर्पो भूत्वा महामुने ॥ ४५ ॥

शची जगाम तच्छ्रुत्वा गुरुं नत्वाऽमरावतीम्। ययौ बृहस्पतिः शीघ्रंयत्रेन्द्रःपद्मतन्तुषु
गत्वा सरोवराभ्यासमाजुहाव सुरेश्वरम्। अतिप्रसन्नवदनः कृपया च कृपानिधिः॥

बृहस्पतिरुवाच ।

अयि वत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते ।
त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेऽहं बृहस्पतिः ॥ ४८ ॥

स्वगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः । रूपं विहाय सूक्ष्मञ्च स्वरूपेण समाययौ
पपात दण्डवन्मूर्ध्ना भक्त्या चरणयोर्गुरोः । तं रुदन्तं महाभीतं मुदोरसि चकार सः ॥

कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च ।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास तं गुरुम् ॥ ५१ ॥

प्रददौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम् । आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदान्विताः
शची संप्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम् । मन्दिरे पुष्पतल्पे च मुमुदे सा मुदान्विता ॥

इत्येवं कथितं वत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम् ।
शचीसतीत्वरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥

नारद उवाच ।

सोमयागविधानञ्च ब्रूहि मां मुनिसत्तम । कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फलं परम्

नारायण उवाच ।

ब्रह्महत्याप्रशमनं सोमयागफलं मुने । वर्षं सोमलतापानं यजमानः करोति च ॥ ५६ ॥
वर्षमेकं फलं भुंक्ते वर्षमेकं जलं मुदा । त्रैवार्षिकं व्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥
यत्र त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं भूतवृद्धये । अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥
महाराजश्च देवो वा यागं कर्त्तुमलं मुने । न सर्वसाध्यो यज्ञोऽयं बह्वन्नो बहुदक्षिणः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शक्रमोक्षकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।

———

एकषष्टितमोऽध्यायः ।

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

इति ते कथितं किञ्चिदिन्द्रस्य दर्पभञ्जनम् । अपरं श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानं निगूढ़कम्
समुद्रमथनं कृत्वा पीत्वामृतरसंपुरा । निर्जित्य दैत्यसङ्घांश्च बहुदर्पो बभूव ह ॥ २ ॥
तदा कृष्णो बलिद्वारा शक्रदर्पं बभञ्ज ह । भ्रष्टश्रियो बभूवुस्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥३॥
तदा वृहस्पतेः स्तोत्राददितेश्च व्रतेन ते । जातश्च स्वांशकलयाप्यदित्यां वामनोविभुः

याञ्चां कृत्वा बलिं राज्यं कृपया च कृपानिधिः ।
तस्मै ददौ महेन्द्राय देवेभ्यश्चापि सम्पदम् ॥ ५ ॥

बभूव शक्रदर्पश्च पुनः कल्पान्तरे पुरा । विभुर्दुर्वाससाद्वारा जहार तच्छ्रियं मुने ॥६॥
पुनर्ददौ च कृपया कृपालुर्भक्तवत्सलः । पुनः श्रीदुर्मदः सोऽपि जहार गौतमप्रियाम् ॥
तदा गौतमशापेन भगाङ्गश्च बभूव सः । सम्प्राप यातनामिन्द्रः स्वाङ्गवेदनया पुरा ॥
उच्चैस्तं जहसुर्दृष्ट्वा ऋषयो मनवस्तथा । देवाश्च लज्जिताः सर्वे मृततुल्यो वृहस्पतिः
तदा सहस्रवर्षञ्च तपस्तप्त्वा रवेः पुरा । रवेर्वरेण शक्रः स सहस्राक्षो बभूव ह ॥ १०॥
कलङ्करूपमिन्द्रस्य तच्चक्षुर्निकरं परम् । यथा चन्द्र कलङ्कश्च तारकाहरणादभूत् ॥ ११ ॥

नारद उवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण जहार गौतमप्रियाम् । महासतीमहल्याञ्च पूज्यां भुवनपावनीम् ॥
शुद्धाशयां महाभागां निर्मलां कमलाकलाम् । एतद्वेदितुमिच्छामि वद वेदविदां वर ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पुष्करे तीर्थयात्रायां सूर्य्यपर्वणि नारद । तत्रागतामहल्याञ्च ददर्श पाकशासनः ॥१४॥

सस्मितां सुदतीं शान्तां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
मूर्च्छामवाप चेन्द्रश्च दृष्टिमात्रेण तत्क्षणम् ॥ १५ ॥

अथापरदिने ताञ्च दृष्ट्वा मन्दाकिनीतटे।
एकाकिनीं सस्मिताञ्च स्नान्तीं नग्नां सलज्जिताम् ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा श्रोणीं स्तनयुगमतीवविपुलं हरिः। मूर्च्छामवाप कामार्तो जहार चेतनां पुनः ॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य गत्वा कामी तदन्तिकम्।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा विनयेन पतिव्रताम् ॥ १८ ॥

महेन्द्र उवाच।

अहो गुणमहो रूपमहो किं वा नवं वयः। अहो किंवा मुखश्रीस्ते शरच्चन्द्रविनिन्दिता
अहो कटाक्षं कुटिलं पुंसां चित्तविकर्षणम्। किमहो लोचनं पद्मप्रभामोचनमीप्सितम्
गमनं रमणीयञ्च गजखञ्जनभञ्जनम्। अहो वाक्यन्तु मधुरं पीयूषादपि दुर्लभम् ॥२१॥
किमहो विपुलश्रोणी कामाधारा मनोहरा। कामदा कामुकायैव मुनिमानसमोहिनी ॥
अतीव कठिना पीना रम्भास्तम्भविडम्बिता। अहो नितम्बयुगलं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत्
श्रीयुक्तं श्रीफलयुगतुल्यं ते स्तनयुग्मकम्। अत्युन्नतं सुकठिनं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥
अहो किंवा तपस्तेपे गौतमश्च तपोधनः। संप्राप यत्फलेनैव सुदतीं सुन्दरीं वराम् ॥
निषेव्य प्रकृतिं दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम्।
लक्ष्मीञ्च लक्ष्मीसदृशीं तपसा प्राप पद्मिनीम् ॥ २६ ॥
सुकोमलां सुवदनां ललनां नलिनाननाम्। शुद्धाञ्च सुदतीं श्यामां न्यग्रोधदलमध्यमाम्
त्वत्पालनञ्च जानामि कामशास्त्रविचक्षणः।
कामो वा कामुकश्चन्द्रःकिंत्वां जानाति गौतमः ॥ २८ ॥
मां प्रशंसन्ति नित्यं ते कामशास्त्रविचक्षणाः।
उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो मां प्रशंसन्ति सन्ततम् ॥ २९ ॥
दासीं कृत्वाचदास्यामि शचींतुभ्यंवरानने। त्रैलोक्यलक्ष्मीं विपुलांगृहाण त्यजगौतमम्
अनभिज्ञं कामशास्त्रे दुर्बलञ्च तपस्विनम्। अव्यवहार्य्यं निष्कामं नारायणपरायणम्।
अविदग्धो विधाता च योजयामास योऽक्षमम्।
ईदृशीं कामुकीं रम्यां ददाति च तपस्विने ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा कामुकः शक्रः पपात चरणेमुदा । तमुवाच महासाध्वी त्रैलोक्यञ्च यथोचितम्

अहल्योवाच ।

अभाग्याद्ब्रह्मणश्चापि मरीचेश्चतपस्विनः । अभाग्यात्कश्यपस्यापि त्वंपुत्रःपापमानसः
किं तज्जपेत तपसा मौनेन च व्रतेन च । सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥
स्त्रीरूपं निर्मितं सृष्टौमोहाय कामिनां मनः । अन्यथा न भवेत् सृष्टिःस्रष्टा तेनपुराज्ञया
सर्वमायाकरण्डश्च धर्ममार्गार्गलं नृणाम् । व्यवधानञ्च तपसां दोषाणामाश्रमं परम्
कर्मबन्धनिबन्धानां निगडं कठिनं स्मृतम् । प्रदीपरूपं कीटानां मीनानां बडिशं यथा ॥
विषकुम्भं दुग्धमुखमारम्भे मधुरोपमम् । परिणामे दुःखबीजं सोपानं नरकस्य च ॥
ऋषयः सनकाद्याश्च नोद्वाहञ्चक्रुरीप्सितम् । परस्त्रीषु मनोयेषां तेषां सर्वञ्च निष्फलम्
परस्त्रीसेवनं शक्र इहैवात्ययशस्करम् । परत्र नरकं घोरं ददाति कामुकाय च ॥ ४१॥

इत्युक्त्वा च महासाध्वी विहाय तञ्च कामुकम् ।
प्रययौ स्वगृहं तूर्णं गृहिणी गौतमस्य च ॥ ४२ ॥

तत्सर्वं कथयामास गौतमाय तपस्विने । तस्थौ प्रहस्य स मुनिर्महेन्द्रञ्च विनिन्द्य च ॥
एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम् । शक्रो गौतमरूपेण तां सम्भोगं चकार सः
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो स्वयं मन्दिरमाययौ । निर्गच्छन्तं महेन्द्रञ्च ददर्श मुनिपुङ्गवः ॥
नग्नामहल्यां रहसि पीनश्रोणिपयोधराम् । मुनिःशशाप शक्रञ्च भगाङ्गञ्च भवेति च
कोपाच्छशाप पत्नीञ्च रुदन्तीं भयविह्वलाम् । त्वञ्च पाषाणरूपा च महारण्ये भवेति च
ययौ च स्वगृहं शक्रो लज्जैकतानमानसः । उवाच मधुरं भीता स्वामिनं शोककर्षितम्

अहल्योवाच ।

मांञ्च दासीञ्च निर्दोषां कथं त्यजसि धार्मिक । त्वञ्चवेदविदां श्रेष्ठो विचारं कुरुधर्मतः

गौतम उवाच ।

त्वां जानामिमनःशुद्धांसुव्रताञ्चपतिव्रताम् । त्यक्ष्यामि च तथापितांपरवीर्यञ्चबिभ्रतीम्

परभोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु ।
तां यो गच्छेन्महामूढो नरकं तस्य कल्पकम् ॥ ४१ ॥

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं परभोग्याश्च निश्चितम् उपस्पृशेन्न तस्याश्च हन्तिपुण्यं पुराकृतम्

अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति ।

दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छाशृङ्गार कर्मणि ॥ ५३ ॥

त्वं शक्रं स्वामिनं मत्वा सुखं भुक्त्वा रतिं गृहे। पश्चाद्बभूव ते ज्ञानं मां दृष्ट्वाच निशामय

गच्छ गच्छ महारण्यं भव पाषाणरूपिणी। रामपादाङ्गुलिस्पर्शात् सद्यःपूता भविष्यसि

मां संप्राप्स्यसि तत् पुण्यात् पुनरेवागमिष्यसि ।

गच्छ कान्ते महारण्यमित्युक्त्वा तपसे ययौ ॥ ५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं महेन्द्रदर्पभञ्जनम् । पुनः संप्राप लक्ष्मीञ्च विभोश्च कृपया मुने ॥५७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

संक्षेपेण श्रीरामचरित्रम् अहल्यामोक्षणञ्च ।

नारद उवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण रामो दाशरथिः स्वयम् । चकार मोक्षणं कुत्र युगे गौतमयोषितः

रामावतारं सुखदं समासेन मनोहरम् । कथयस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम ॥

श्रीनारायण उवाच ।

ब्रह्मणाप्रार्थितो विष्णुर्जातोदशरथात्स्वयम् । कौशल्यायाञ्चभगवान्त्रेतायाञ्चमुदान्वितः

कैकेय्यां भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च । लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः

विश्वामित्रप्रेषितश्च श्रीरामश्च सलक्ष्मणः । प्रययौ मिथिलां रम्यां सीताग्रहणहेतवे ॥५

दृष्ट्वा पाषाणरूपाञ्च रामो वर्त्मनि कामिनीम् ।

विश्वामित्रञ्च पप्रच्छ कारणं जगदीश्वरः ॥ ६ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः । उवाच तत्र धर्मिष्ठो रहस्यं सर्वमेव च ॥
कारणं तन्मुखाच्छ्रुत्वा रामो भुवनपावनः । पस्पर्श पादाङ्गुलिना सा बभूव च पद्मिनी

सा राममाशिषं कृत्वा प्रययौ भर्तृमन्दिरम् ।
शुभाशिषं ददौ तस्मै भार्य्यां सम्प्राप्य गौतमः ॥ ६ ॥

रामश्च मिथिलां गत्वा धनुर्भङ्गं शिवस्य च । चकार पाणिग्रहणं सीतायाश्चैव नारद ॥
कृत्वा विवाहं राजेन्द्रो भृगुदर्पं निहत्यच । अयोध्यां प्रययौ रम्यां क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः
राजा पुत्रं नृपं कर्तुमियेष स तु सादरम् । सप्ततीर्थोदकं तूर्णमानीय मुनिपुङ्गवान् ॥१२
कृताधिवासं श्रीरामं सर्वमङ्गलसंयुतम् । दृष्ट्वा भरतमाता च कैकेयी शोकविह्वला ॥१३
वरयामास राजानं पूर्वमङ्गीकृतं वरम् । रामस्य वनवासञ्च राजत्वं भरतस्य च ॥१४॥
वरं दातुं महाराजो नेयेष प्रेममोहितः । धर्मसत्यभवेनैवोवाच रामो नृपं सुधीः ॥ १५॥

श्रीराम उवाच ।

तड़ागशतदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते वापीदानेन निश्चितम् ॥
दशवापीप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥१७
दशकन्याप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते यज्ञैकेन नराधिप ॥ १८॥
दशयज्ञेन यत् पुण्यं लभते पुण्यकृज्जनः । ततोऽधिकञ्च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥१६॥
दर्शने शतपुत्राणां यत् पुण्यं लभतेनरः । तत् पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालनात्

न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः ॥ २१ ॥
नास्ति धर्मात् परो वन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् ।
धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः ॥ २२ ॥

स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन् । वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते

कृत्वा सत्यञ्च शपथमिच्छायानिच्छयाथवा ।
न कुर्यात्पालनं यो हि भस्मान्तं तस्य सूतकम् ॥ २५ ॥

कुम्भीपाके स पचति यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो मूको भवेत् कुष्ठी मानवः सप्तजन्मसु
इत्येवमुक्त्वा श्रीरामो विधाय वल्कलं जटाम् । प्रययौच महारण्ये सीतया लक्ष्मणेनच
पुत्रशोकान्महाराजस्तत्याज स्वतनुं मुने । पालनाय पितुः सत्यं रामो बभ्राम कानने ॥

कालान्तरे महारण्ये भगिनी रावणस्य च ।
भ्रमन्तो कानने घोरे भन्त्रा सार्द्धं सुकौतुकात् ॥ २९ ॥

ददर्श रामं कुलटा कामार्त्ता राक्षसी तदा । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छामाप स्मरेण च
श्रीरामनिकटं गत्वा सस्मितोवाच कामुकी । शश्वद्यौवनसंयुक्तातिप्रौढ़ा कामदुर्मदा ॥

शूर्पणखोवाच ।

हे राम हे घनश्याम रूपधाम गुणान्वित । भावानुरक्तां वनितां मां गृहाण सुनिर्जने ॥

श्रुत्वा शूपर्णखावाक्यं धर्मं संस्मृत्य धार्मिकः ।
उवाच मधुरं वाक्यं शापभीतश्च नारद ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच ।

अम्ब मातःसभार्योऽहमभार्यं गच्छ मेऽनुजम् । भजेत् प्रियजनं दुःखमितरश्च सुखालयम्

रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रययौ लक्ष्मणं मुदा ।
ददर्श लक्ष्मणं शान्तं कान्तञ्च लक्षणान्वितम् ॥ ३५ ॥

मां भजस्व महाभागेत्युवाच च पुनः पुनः । लक्ष्मणस्तद्वचः श्रुत्वा तामुवाच कुतूहलात्

लक्ष्मण उवाच ।

विहाय रामं सर्वेशं हे मूढ़े दासमिच्छसि । सीतादासी च मत्पत्नी सीतादासोऽहमेवच
भव सीतासपत्नीत्वं गच्छ रामं मदीश्वरम् । तवपुत्रो भविष्यामि सीतायाश्च यथासति
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कामेन हृतमानसा । उवाच लक्ष्मणं मूढ़ा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका

शूर्पणखोवाच ।

यदि त्यजसिमां मूढ़कामात् स्वयमुपस्थिताम् । युवयोश्चविपत्तिश्च भविष्यतिनसंशयः

ब्रह्मा च मोहिनीं त्यक्त्वा विश्वेऽपूज्यो बभूव सः ।
रम्भाशापेन दक्षश्च छागमुण्डो बभूव सः ॥ ४१ ॥

स्ववैंद्यश्चोर्वशीशापाद् यज्ञभागविवर्जितः। रूपहीनः कुवेरश्च मेनाशापेन लक्ष्मण ॥४२॥

कामो घृताचीशापेन बभूव भस्मसात् शिवात्।
बलिर्मदालसाशापाद् भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥ ४३ ॥

शापेन मिश्रकेश्याश्च हृतभार्यो बृहस्पतिः। मम शापात्तथा रामो हृतभार्यो भविष्यति
कामातुरां यौवनस्थां भार्यां स्वयमुपस्थिताम्। न त्यजेद्धर्मभीतश्च श्रुतं साध्यं दिनेपुरा

इह त्यक्त्वा विपद्ग्रस्तः परत्र नरकं व्रजेत् ॥ ४५ ॥

श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यमर्द्धचन्द्रेण लक्ष्मणः। चिच्छेद नासिकां तस्याः क्षुरधारेणलीलया

तस्या भ्राता च युयुधे बलवान् खरदूषणः।
ससैन्यो लक्ष्मणास्त्रेण स जगाम यमालयम् ॥ ४७ ॥

चतुर्दशसहस्रञ्च राक्षसान् खरदूषणम्। मृतान् दृष्ट्वा शूर्पणखा भर्त्सयामास रावणम्
सर्वं निवेदनं कृत्वा जगाम पुष्करं तदा। ब्रह्मणश्च वरं प्राप कृत्वा च दुष्करं तपः॥
उवाच तादृशीं दृष्ट्वा निराहारां तपस्विनीम्। सर्वज्ञस्तन्मनो मत्वा कृपासिन्धुश्चनारद

ब्रह्मोवाच।

अप्राप्य रामं दुष्प्रापं करोषि दुष्करं तपः। जितेन्द्रियाणां प्रवरं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम्
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरं प्रकृतेः परम्। जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं वरानने

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च जगाम स्वालयं मुदा।
देहं तत्याज सा वह्नौ सा च कुब्जा बभूव ह ॥ ५३ ॥

अथ शूर्पणखावाक्यात्कोपात्कम्पितविग्रहः। जहार मायया सीतां मायावी राक्षसेश्वरः
सीतां न दृष्ट्वा रामश्चमूर्च्छां प्रापचिरं मुने। चेतनां कारयामास भ्राता चाध्यात्मिकेनव
ततो बभ्राम गहनं शैलञ्च कन्दरं नदम्। अहर्निशं स शोकार्तो मुनीनामाश्रमं मुने ॥५६
चिरमन्वेषणं कृत्वा न दृष्ट्वा जानकीं विभुः। चकार मित्रतां रामः सुग्रीवेण स्वयंप्रभुः
निहत्य वालिनं बाणैर्ददौ राज्यञ्च लीलया। सुग्रीवायच मित्राय स्वीकारपालनाय वै
दूतान् प्रस्थापयामास सर्वत्र वानरेश्वरः। तस्थौ सुग्रीवभवने श्रीरामश्च सलक्ष्मणः
हनूमते वरं दत्त्वा रम्यं रत्नाङ्गुलीयकम्। सीतायै शुभसन्देशं प्राणधारणकारणम् ॥६०॥

तञ्चप्रस्थापयामास दक्षिणां दिशमुत्तमाम्। सुप्रीत्यालिङ्गनं दत्त्वापादरेणून्सुदुर्लभान् ॥
हनूमान् प्रययौ लङ्कां सीतान्वेषणहेतवे। रामादधीतसन्देशो ययौ रुद्रकलोद्भवः ॥६२॥
अशोककानने सीतां ददर्श शोककर्शिताम्। निराहारामतिकृशां कुह्वां चन्द्रकलामिव ॥
सततं रामरामेति जपन्तीं भक्तिपूर्वकम्। बिभ्रतीञ्च जटाभारं तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥६४
ध्यायमानांपदाब्जञ्च श्रीरामस्यदिवानिशम्। शुद्धशय्यां सुशीलाञ्च सुव्रताञ्चपतिव्रताम्

महालक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां प्रज्वलन्तीं स्वतेजसा।
पुण्यदां सर्वतीर्थानां दृष्ट्या भुवनपावनीम् ॥६६॥

प्रणम्य मातरंदृष्ट्वा रुदन्तीं वायुनन्दनः। रत्नाङ्गुलीयं रामस्य ददौ तस्यै मुदान्वितः
रुरोद धर्मी तांदृष्ट्वा धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्। उवाच रामसन्देशं सीताजीवनरक्षणम् ॥

हनूमानुवाच।

पारंसमुद्रेश्रीरामः सन्नद्धश्च सलक्ष्मणः। बभूव राममन्त्रश्च सुग्रीवो बलवान् कपिः ॥

रामश्च वालिनं हत्वा राज्यं निष्कण्टकं ददौ।
सुग्रीवाय च मित्राय तद्भार्यां वालिना हृताम् ॥७०॥

सुग्रीवश्च तवोद्धारं स्वीचकार च धर्मतः। वानराश्च ययुः सर्वे तवान्वेषणकारणात् ॥
प्राप्य मङ्गलवार्ताञ्च मत्तो राजीवलोचनः। गम्भीरंसागरंबद्ध्वा सोऽचिरेणागमिष्यति
निहत्य रावणं पापं सपुत्रञ्च सबान्धवम्। करिष्यत्यचिरेणैव हे मातस्तवमोक्षणम् ॥

अद्य रत्नमयीं लङ्कां निःशङ्कस्त्वत्प्रसादतः।
भस्मीभूतां करिष्यामि मातः पश्य च सस्मितम् ॥ ७४ ॥

मर्कटीडिम्भतुल्याञ्च लङ्कां पश्यामि सुव्रते। मूत्रतुल्यं समुद्रञ्च शरावमिव भूतलम् ॥
पिपीलिकासङ्घमिव ससैन्यं रावणं तथा। संहर्तुञ्च समर्थोऽहंमुहूर्त्तार्धेन लीलया ॥
रामप्रतिज्ञारक्षार्थं न हनिष्यामिसाम्प्रतम्। स्वस्था भवमहाभागे त्यज्य भीतिमदीश्वरि
वानरस्य वचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। उवाच वचनंभीता सीता रामपतिव्रता ॥ ७८ ॥

सीतोवाच।

अये जीवति मे रामो मच्छोकार्णवदारुणात्। अपिमेकुशली नाथः कौशल्यानन्दनःप्रभुः

कीदृशश्च कृशाङ्गश्च जानकाजीवनोऽधुना। किमाहारश्चकिंभुंक्तेमम प्राणाधिकःप्रियः॥
अपिपारेसमुद्रस्यसत्यं सीतापतिःस्वयम्। अपिसत्यं ससन्नद्धो नशोकेन हतः प्रभुः॥
अपि स्मरति मां पापां स्वामिनो दुःखरूपिणीम्।
मदर्थे कति दुःखं वा संप्राप स मदीश्वरः॥ ८२॥
हारो नारोपितः कण्ठे पुरा व्यवहितो रतौ। अधुनैवावयोर्मध्ये समुद्रः शतयोजनः॥
अपिद्रक्ष्यामि तंरामं करुणासागरं प्रभुम्। कान्तं शान्तं नितान्तञ्च धर्मिष्ठं धर्मकर्मणि
अपिसेवां करिष्यमि पादपद्मे पुनःप्रभोः। पतिसेवाविहीना या मूढ़ा सा जीवनं वृथा॥
अपिमे धर्मपुत्रश्च सत्यं जीवति लक्ष्मणः। मच्छोकसागरे मग्नोभग्नदर्पो मयाविना॥
वीराणां प्रवरो धर्मी देवकल्पश्च देवरः। अपि सत्यं स सन्नद्धो मत्प्रभोरनुजःसदा॥
अपि द्रक्ष्यामि सत्यं तं लक्ष्मणं धर्मलक्ष्मणम्।
प्राणानामधिकं प्रेम्णा धन्यं पुण्यस्वरूपिणम्॥ ८८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा दत्वा प्रत्युत्तरं शुभम्। भस्मीभूताञ्च लङ्काञ्च चकारलीलया मुने॥
पुनःप्रबोधं तस्यै च दत्त्वावायुसुतः कपिः। प्रययौलीलया वेगाद्यत्र राजीवलोचनः॥
सर्वंतत्कथयामासवृत्तान्तं मातुरेवच। सीतामङ्गलवृत्तान्तं श्रुत्वा रामो रुरोद च॥
रुरोदोच्चैर्लक्ष्मणश्च सुग्रीवश्चापि नारद। वानरा रुरुदुः सर्वे महाबलपराक्रमाः॥ ९२॥
निबध्य सेतुंलङ्काञ्च प्रययौ रघुनन्दनः। ससैन्यः सानुजः शीघ्रं सन्नद्धश्चापि नारद॥
निहत्यरावणं रामो रणंकृत्वा सबान्धवम्। चकार मोक्षणं ब्रह्मन् सीतायाश्च शुभेक्षणे
कृत्वापुष्पकयानेन सीतां सत्यपरायणाम्। अयोध्यां प्रययौ शीघ्रं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः
क्रीड़ांचकार भगवान् सीतांकृत्वा चवक्षसि। विजहौविरहज्वालांसीतारामश्चतत्क्षणम्
सप्तद्वीपेश्वरो रामो बभूव पृथिवीतले। बभूव निखिला पृथ्वी आधिव्याधिविवर्जिता
बभूवतू रामपुत्रौ धार्मिकौ च कुशीलवौ। तयोः पुत्रैश्च पौत्रैश्च सूर्य्यवंशोद्भवा नृपाः॥
इति ते कथितं वत्स श्रीरामचरितं शुभम्। सुखदं मोक्षदं सारं पारपोतं भवार्णवे॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीरामचरितं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कंसयज्ञकथनम् ।

नारद उवाच ।

अथकंसो विचिन्त्यैवं दृष्ट्वा दुःस्वप्नमेवच । समुद्विग्नो महाभीतो निराहारोनिरुत्सुकः
पुत्रं मित्रं बन्धुगणं बान्धवञ्च पुरोहितम् । समानीय सभामध्ये तानुवाच सुदुःखितः ॥

कंस उवाच

मयादृष्टो निशीथे यो दुःस्वप्नोहिभयप्रदः । निबोधतवुधाःसर्वे बान्धवाश्च पुरोहिताः ॥
बिभ्रती रक्तपुष्पाणां मालां सारक्त चन्दनम् । रक्ताम्बरं खड्गतीक्ष्णं खर्परञ्च भयङ्करम्
प्रकृत्याट्टाट्टहासञ्च लोलजिह्वा भयङ्करी । अतीववृद्धा कृष्णाङ्गी नगरे ममनृत्यति ॥ ५ ॥

मुक्तकेशी छिन्ननासा कृष्णा कृष्णाम्बरापि या ।
विधवा सा महाशूद्री मामालिङ्गितुमिच्छति ॥ ६ ॥

मलिनं चैलखण्डञ्च बिभ्रती रूक्षमूर्द्धजान् । दधतीं चूर्णतिलकं कपाले मम वक्षसि ॥
कृष्णवर्णानि पक्वानि छिन्नभिन्नानि सत्यक। पतन्तिकृत्वाशब्दांश्चशश्वत्तालफलानिच

कुचैलो विकृताकारो म्लेच्छो हि रूक्षमूर्द्धजः ।
ददाति मह्य भूपायां छिन्नभिन्नकपर्दकान् ॥ ६ ॥

महारुष्टा च दिव्या स्त्री पतिपुत्रवती सती । बभञ्ज पूर्णकुम्भञ्च साभिशप्य पुनः पुनः॥
अम्लानामूढमालाञ्च रक्तचन्दनचर्चिताम् । ददाति मह्यं विप्रश्च महारुष्टोऽतिशप्य च ॥
क्षणमङ्गारवृष्टिश्च भस्मवृष्टिः क्षणं क्षणम् । क्षणं क्षणं रक्तवृष्टिर्भवेच्च नगरे मम ॥१२॥
वानरं वायसं श्वानं भल्लूकं शूकरं खरम् । पश्यामि विकटाकारं शब्दं कुर्वन्तमुल्वणम्

पश्यामि शुष्ककाष्ठानां राशिमम्लानकज्जलम् ।
अरुणोदयवेलायां कपीन् छिन्ननखानि च ॥ १४ ॥

पीतवस्त्रपरीधाना शुक्लचन्दनचर्चिता । बिभ्रती मालतीमालां रत्नभूषणभूषिता ॥ १५ ॥

क्रीड़ाकमलहस्ता सा सिन्दूरविन्दुशोभिता ।
कृत्वाभिशापं मां रुष्टा याति मन्मन्दिरात् सती ॥ १६ ॥

पाशहस्तांश्च पुरुषान् मुक्तकेशान् भयङ्करान् । अतिरूक्षांश्च पश्यामि विशतो नगरं मम ॥
नग्ननारीं मुक्तकेशीं नृत्यन्तीश्च गृहे गृहे । अतीवविकृताकारां पश्यामि सस्मितां सदा ॥
छिन्ननासा च विधवा महाशूद्री दिगम्बरी । सा तैलाभ्यङ्गितं माञ्च करोत्यतिभयङ्करी

निर्वाणाङ्गारयुक्ताश्च भस्मपूर्णा दिगम्बराः ।
अतिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः ॥ २० ॥

पश्यामि च विवाहञ्च नृत्यगीतमनोहरम् । रक्तवस्त्रपरीधानान् पुरुषान् रक्तपूर्द्धजान् ॥
रक्तं वमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नग्नमुल्वणम् । धावन्तञ्च शयानञ्च पश्यामि सस्मितं सदा ॥
राहुग्रस्तञ्च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्य्ययोः । एककाले च पश्यामि सर्वग्रासञ्च बान्धवाः
उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविप्लवम् । झञ्झावातं महोत्पातं पश्यामि च पुरोहित

वायुना घूर्णमानांश्च छिन्नस्कन्धान् महीरुहान् ।
पतितान् पर्वतांश्चैव पश्यामि पृथिवीतले ॥ २५ ॥
पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छ्रितम् ।
मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गृहे ॥ २६ ॥

दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमङ्गारसङ्कुलम् । हाहाकारञ्च कुर्वन्तं सर्वं पश्यामि सर्वतः ॥
इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले । श्रुत्वा स्वप्नं बान्धवाश्च नतवक्त्रा निशश्वसुः
जहार चेतनां सद्यः सत्यकश्च पुरोहितः । मत्वा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद ॥
रुरोद नारीवर्गश्च पिता माता च शोकतः । मेने विनाशकालञ्च सद्यः स्वयमुपस्थितम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कंसदुःस्वप्नकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

———

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः । बुद्धिमान् शुक्रशिष्यश्च तमुवाच हितं मुने ॥

सत्यक उवाच ।

भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते । कुरु यागं महेशस्य सर्वारिष्टविनाशनम् ॥
यागो धनुर्मखो नाम वह्वन्नो बहुदक्षिणः । दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिविनाशकः ॥

आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिभौतिकमुत्कटम् ।
एषां त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भूतिवर्धनः ॥ ४ ॥

यागे समाप्ते शम्भुश्च जरामृत्युहरं वरम् । ददाति साक्षाद्भवति दाता च सर्वसम्पदाम् ॥
चकारैमञ्च यागञ्च पुरा वाणो महावलः । नन्दी परशुरामश्च भल्लश्च वलिनां वरः ॥६॥

पुरा ददौ धनुरिदं शिवो नन्दीश्वराय च ।
यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ वाणाय धार्मिकः ॥ ७ ॥

कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे । तुभ्यं ददौ पर्शुरामः कृपया च कृपानिधिः ॥
सहस्रहस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप । दशहस्तप्रशस्तञ्च शङ्करेच्छाविनिर्मितम् ॥९॥
पशुपतेः पाशुपतं युक्तयानेन दुर्वहम् । सर्वे भंक्तुं न शक्ताश्च देवं नारायणं विना ॥
यागे च धनुषः पूजां शङ्करस्य तु शङ्करे । कुरु शीघ्रं शुभार्हश्च सर्वान् कुरु निमन्त्रणम् ॥
अस्मिन् यागे धनुर्भङ्गो भवेद्यदि नराधिप । विनाशो यजमानस्य भविष्यति न संशयः ॥

भग्ने धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम् ।
फलं ददाति को वात्र चानिष्पन्ने च कर्मणि ॥ १३ ॥
ब्रह्मा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम् ।
अग्रे चोग्रप्रतापश्च महादेवो महामते ॥ १४ ॥

धनुर्हि त्रिविकारञ्च सद्रत्नखचितं वरम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाप्रच्छन्नकारणम् ॥
अशक्तश्च नमयितुमनन्तश्च महाबलः । सूर्यश्च कार्तिकेयश्च का कथान्यस्य भूमिप ॥
त्रिपुरारिः पुरानेन जघान त्रिपुरं मुदा । निर्भयं कुरु स्वच्छन्दं मङ्गलार्हं महोत्सवे ॥
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा चन्द्रवंशविवर्धनः । उवाच कंसः सर्वार्थे सततञ्च हितैषिणम् ॥

कंस उवाच ।

वसुदेवगृहे यज्ञे मद्वधी कुलनाशनः । स्वच्छन्दं नन्दगेहे च वर्धते नन्दनन्दनः ॥ १९ ॥

मद्बन्धुवर्गान् शूरांश्च मन्त्रिणः सुविशारदान् ।
भगिनीं पूतनां पूतां जघान बालको बली ॥ २० ॥

गोवर्धनं दधारैककरेण बलवर्धनः । महेन्द्रस्य च शूरस्य चकार च पराभवम् ॥ २१ ॥
ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मरूपं चराचरम् । निवहं बालवत्सानां चकार कृत्रिमं मुदा ॥२२॥
तमेव बलिनं हन्तुं मन्त्रणं कुरु सत्यक । मम शत्रुर्विना तेन नास्तीह धरणीतले ॥२३॥

न हि स्वर्गे न पाताले त्रिषु लोकेषु निश्चितम् ।
सन्ति सन्तश्च राजानः सर्वत्र मम बान्धवाः ॥ २४ ॥
महातपस्वी ब्रह्मा च तपस्वी शङ्करः स्वयम् ।
विष्णुः सर्वत्र सर्वात्मा समदर्शी सनातनः ॥ २५ ॥

नन्दपुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः । सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान्

स्वर्गे निहत्य शक्रञ्च दुर्बलं दैत्यनिर्जितम् ।
भविष्यामि महेन्द्रश्चतत्र निर्जित्य भास्करम् ॥ २७ ॥

यक्ष्मग्रस्तञ्च चन्द्रञ्च ममैव पूर्वपूरुषम् । वाग्नुं कुबेरं वरुणं यमं जेष्यामि निश्चितम् ॥
गच्छ नन्दव्रजं शीघ्रं नन्दञ्च नन्दनन्दनम् । तद्भ्रातरञ्च बलिनं बलमानय साम्प्रतम् ॥
कंसस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच स सत्यकः । हितं सत्यं नीतिसारं परं सामयिकं तथा

सत्यक उवाच ।

अक्रूरमुद्धवं वापि वसुदेवमथापि वा । प्रस्थापय महाभाग नन्दव्रजमभीप्सितम् ॥३१॥
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा वसन्तं तत्र संसदि । स्वर्णसिंहासनस्थञ्च वसुदेवमुवाच सः॥

राजेन्द्र उवाच ।

तत्त्वज्ञो नीतिशास्त्राणां त्वमुपायविशारदः । व्रज नन्दव्रजं बन्धो वसुदेवसुतालयम् ॥
वृषभानुश्च नन्दश्च बलश्च नन्दनन्दनम् । शीघ्रमानय यज्ञेऽत्र सर्वं गोकुलवासिनम्॥३४॥

गृहीत्वा पत्रिकां दूता गच्छन्तु च चतुर्दिशम् ।
नृपान् मुनिगणान् सर्वान् कर्तुं विज्ञापनं मुदा ॥ ३५ ॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्कण्ठोष्ठतालुकः । उवाच वचनं ब्रह्मन् हृदयेन विदूयता ॥३६॥

वसुदेव उवाच ।

न युक्तमत्र राजेन्द्र गमनं मम साम्प्रतम् । विज्ञापितुं नन्दव्रजं वसुदेवस्य नन्दनम् ॥
यद्यायातो नन्दपुत्रो यागे ते च महोत्सवे । अवश्यं तद्विरोधश्च भविष्यति त्वया सह

तमहञ्च समानीय कारयिष्यामि संयुगम् ।
इति मे न हि भद्रञ्च विघ्नस्तस्य तवापि च ॥ ३६ ॥

पित्रानीतो मृतः कृष्णः इति सर्वो वदिष्यति । वसुदेवः सुतद्वारा जघान नृपमेव च ॥

द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति ।
पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्ति युद्धं निरामयम् ॥ ४१ ॥

वसुदेववचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः । खड्गं गृहीत्वा तं हन्तुं प्रययौ नृपतीश्वरः ॥४२॥
हा हेति कृत्वा पुत्रञ्च वारयामास तत्क्षणम् । उग्रसेनो महाराजमतीवबलवान् मुने ॥
स्वपीठाद्वसुदेवश्च कोपाविष्टो गृहं ययौ । अक्रूरं प्रेरयामास गन्तुं नन्दव्रजं नृपः ॥४४॥
दूतान् प्रस्थापयामास शीघ्रं प्रतिदिशं तथा । आययुर्मुनयः सर्वे नृपाश्च सपरिच्छदाः ॥

दिक्पालाश्च सुराः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥ ४६ ॥

सनत्कुमारो भगवान् प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । कपिलश्चासुरिः पैलः सुमन्तुश्चसनातनः
पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्च क्रतुरङ्गिराः । मरीचिःकश्यपश्चैव दक्षोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ॥

भरद्वाजश्च व्यासश्च गौतमश्च पराशरः ।
प्रचेताश्च वशिष्ठश्च संवर्तश्च बृहस्पतिः ॥ ४६ ॥

कात्यायनो याज्ञवल्क्यश्चोऽप्युतथ्यः सौभरिस्तथा ।
पर्वतो देवलश्चैवं जैगीषव्यश्च जैमिनिः ॥ ५० ॥
विश्वामित्रश्च सुतपाः पिप्पलःशाकटायनः ।
जावालिर्जाङ्गलिश्चैव पिशलिश्च शिलालिकः ॥ ५१ ॥
आस्तिकश्चजरत्कारुस्तथा कल्याणमित्रकः । दुर्वासावामदेवश्च ऋष्यशृङ्गोविभाण्डकः
करिपथःकणादश्च कौशिकःपाणिनिस्तथा । कौत्सोऽघमर्षणश्चैव वाल्मीकिर्लोमहर्षणः
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पर्शुरामश्च साङ्कृतिः ।
अगस्त्यश्च तथावाश्च तथाऽन्ये मुनयो मुने ॥ ५४ ॥
सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
जरासन्धो दन्तवक्रो दाम्भिको द्राविडाधिपः ॥ ५५ ॥
शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्गलः । धृतराष्ट्रो धूमकेशो धूमकेतुश्च शम्बरः ॥
शल्यः सत्राजितः शङ्कुर्नृपाश्चान्ये महाबलाः ।
भीष्मो द्रोणः कृपाचार्यो ह्यश्वत्थामा महाबलः ॥ ५७ ॥
भूरिश्रवाश्चशाल्वश्च कैकेयःकौशलस्तथा । सर्वान्सम्भाषयामास महाराजोयथोचितम्
सत्यको यज्ञदिवसं चकार च शुभक्षणम् ॥ ५६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कंसयज्ञकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कंसस्य वचनं श्रुत्वा सोऽक्रूरो धर्मिणां वरः ।उवाच चोद्धवं शान्तं शान्तःप्रहृष्टमानसः

अक्रूर उवाच ।

सुप्रभाताद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम् । तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम्
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम् । बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम्
विच्छेद बन्धनिगड़ं मम बद्धस्य कर्मणा । कारागाराच्च संसारान्मुक्तो यामि हरेःपदम्
सुहृदर्थी कृतोऽहञ्च कंसेन विदुषा रुषा । वरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥

व्रजराजं समाहर्त्तुं व्रजं यास्यामि साम्प्रतम् ।
द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥ ६ ॥

नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम् ॥ ७ ॥
धूलिधूसरिताङ्गञ्च किंवा चन्दनचर्चितम् । अथवा नवनीताक्तमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम्
किंवा विनोदमुरलीं वादयन्तं मनोहरम् । किंवा गवां समूहञ्च चारयन्तमितस्ततः ॥

किंवा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् ।
निर्देशं कीदृशञ्चाद्यं सुदृष्ट्या च शुभे क्षणे ॥ १० ॥

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः

यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च सन्ततम् ।
यस्य स्तोत्रे जड़ीभूता भीता देवी सरस्वती ॥ १२ ॥
दासी नियुक्ता यद्दास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता ।
गङ्गा यस्य पदाम्भोजान्निःसृता सत्त्वरूपिणी ॥ १३ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात्परा । दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्चनृणां पातकनाशिनी॥१४॥
ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

लोम्नां कूपेषु विश्वानि महाविष्णोश्च यस्य च ।
असंख्यानि बिचित्राणि स्थूलात् स्थूलतरस्य च ॥ १६ ॥

स च यत्षोड़शांशश्च यस्यसर्वेश्वरस्य च । तंद्रष्टुं यामि हे बन्धोमायामानुषरूपिणम्
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वज्ञं प्रकृतेः परम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
निर्गुणञ्च निरीहञ्च निरानन्दं निराश्रयम् । परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥१९॥

स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् ।
वदन्ति योगिनः शश्वत् ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥ २० ॥

मन्वन्तरसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः । पद्मे पाद्मतपस्तेपे पुरा पाद्मे तु यत्कृते ॥ २१ ॥
पुनः कुरु तपस्याञ्च तदा द्रक्ष्यसि मामिति । सकृच्छब्दञ्च शुश्राव न ददर्श तथापि तम्
तावत्कालं पुनस्तप्त्वा वरं प्राप ददर्श तम् । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२३॥
पुराशम्भुस्तपस्तेपे यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः

सर्वतत्वं सर्वसिद्धं मम तत्वं परं वरम् ।
सम्प्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिञ्च निर्मलां पराम् ॥ २५ ॥

चकारात्मसमं तञ्च यो भक्तो भक्तवत्सलः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२६॥
सहस्रशक्रपातान्तं निराहारः कृशोदरः । यस्यानन्तस्तपस्तेपे भक्त्या च परमात्मनः ॥
तदा चात्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२८॥
सहस्रशक्रपातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः । तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह । सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥
अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्दिवानिशम् । एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः
अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३२॥
नास्ति भूरजसां संख्या यथैव ब्रह्मणांतथा । तथैववन्धो विश्वानांतदाधारो महाविराट्
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवःसिद्धा मानवाद्याश्चराचराः
यत्षोड़शांशः स विराट् सृष्टो नष्टश्च लीलया । ईदृशं सर्वशास्तारं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव
इत्येवमुक्त्वाक्रूरश्च पुलकाञ्चितविग्रहः । मूर्च्छां प्राप साश्रुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाम्बुजम् ॥
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारंस्मारं पदाम्बुजम् । कृत्वा प्रदक्षिणं वापि कृष्णस्य परमात्मनः
उद्धवश्च तमाश्लिष्य प्रशशंस पुनः पुनः । स च शीघ्रं ययौ गेहमक्रूरोऽपि स्वमन्दिरे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे-
अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

———

षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीराधाशोकापनोदनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ रासेश्वरीयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम् । स च रेमे तया सार्द्धमतीवरमणोत्सुकः

सुखसम्भोगमात्रेण ययौ निद्राञ्च राधिका। दृष्ट्वास्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियंप्रियंदिने

राधिकोवाच ।

अहो स्वामिन्निहागच्छ त्वां करोमि स्ववक्षसि ।

परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रियंकृत्वा स्ववक्षसि । दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता

राधिकोवाच ।

रत्नसिंहासनऽहञ्च रत्नच्छत्रञ्च विभ्रती । तदातपत्रं जग्राह रुष्टो विप्रश्च मे प्रभो ॥ ५ ॥

सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे । गभीरे प्रेरयामास मामेव दुर्बलां स च ॥ ६ ॥

तत्र स्रोतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहुः । महोर्मीणाञ्च वेगेन व्याकुला नक्रसङ्कुलैः

त्राहि त्राहीति हे नाथ त्वां वदामि पुनः पुनः ।

त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम् ॥ ८ ॥

कृष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम् । निपतन्तञ्च गगनाच्छतखण्डञ्च भूतले ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात् सूर्य्यमण्डलम् । बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले

एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्य्ययोः । अतीवकज्जलाकारं सर्वं ग्रस्तञ्च राहुणा ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति ।

मत्क्रोड़स्थसुधाकुम्भं बभञ्ज च रुषेति च ॥ १२ ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टञ्च ब्राह्मणम् । गृहीत्वा च व्रजन्तञ्च चक्षुषोः पुरुषं मम ॥

क्रीड़ाकमलदण्डञ्च हस्ताद्धस्तं मम प्रभो । सहसा खण्डखण्डञ्च बभूव सह हेतुना ॥

हस्ताद्ध्वस्तश्च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः । निर्मलः कज्जलाकारः खण्डखण्डो बभूव ह ॥
हारो मे रत्नसाराणां छिन्नो भूत्वा च वक्षसः । अतीवमलिनं पद्मं पपात धरणीतले ॥
सौधपुत्तलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम् ॥ १७ ॥
कृष्णवर्णं वृहच्चक्रं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः । निपतन्तश्चोत्पतन्तं पश्यामि च भयङ्करम्॥१८॥
प्राणाधिदेवः पुरुषो निःसृत्याभ्यन्तरान्मम । राधे विदायं देहीति ततो यामीत्युवाच ह
कृष्णवर्णा च प्रतिमा मामाश्लिष्यति चुम्बति ।
कृष्णवस्त्रपरीधाना चेति पश्यामि साम्प्रतम् ॥ २० ॥
इतीदं विपरीतञ्च दृष्ट्वा च प्राणवल्लभ । नृत्यन्ति दक्षिणाङ्गानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे
रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नञ्च मानसम् । किमिदं किमिदं नाथ वद वेदविदां वर
इत्युक्त्वा राधिकादेवी शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।
पपात तत्पदाम्भोजे भीता सा शोकविह्वला ॥ २३ ॥
श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देवीं कृत्वा स्ववक्षसि ।
आध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम् ॥ २४ ॥
तत्याज शोकं सा देवी ज्ञानं सम्प्राप्य निर्मलम् ।
शान्तञ्च भगवन्तञ्च कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ॥ २५ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीराधाशोकापनोदनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

————

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

आध्यात्मिकयोगकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

विरहव्याकुलांदृष्ट्वा कामिनीं काममोहनः । कृत्वावक्षसि तां कृष्णो ययौक्रीड़ासरोवरम्

राजराजेश्वरी राधा कृष्णवक्षसि राजते। सौदामिनीव जलदे नवीने गगने मुने ॥ २ ॥
रेमे रामया सार्द्धं कृपया च कृपानिधिः। द्वयोर्द्वयोर्यथा स्वर्णमण्योर्मारकतो मणिः
रत्ननिर्माणपर्य्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते। रत्नप्रदीपे ज्वलति रत्नभूषणभूषितः ॥ ४ ॥
रत्नभूषाभूषितया रासरत्नश्च कौतुकात्। रसरत्नाकरे रम्ये निमग्नो रसिकेश्वरः ॥ ५ ॥
रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा। सुरतौ विरतौ सत्यां विरते न मनोरथे ॥

राधिकोवाच।

प्रफुल्लाऽहं त्वया नाथ मृता म्लाना च त्वां विना।
यथा महौषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥ ७ ॥
नक्तं दीपशिखेवाहं त्वया सार्द्धं त्वया विना।
दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोःकला ॥ ८ ॥

तव वक्षसि मे दीप्तिःपूर्णचन्द्रप्रभासमा। सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुह्वां चन्द्रकलायथा
ज्वलदग्निशिखेवाहं घृताहुत्या त्वया सह। त्वया विनाहं निर्वाणा शिशिरे पद्मिनी यथा
चिन्ताज्वरजराग्रस्ता मत्तस्त्वयि गतेऽप्यहम्। अस्तंगतेरवौचन्द्रे ध्वान्तग्रस्ताधरायथा
भ्रष्टो वेशस्त्वां विना मे रूपं यौवनचेतनम्। तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा॥१२
त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः। तनुर्यथात्मना त्यक्ता तथाहञ्च त्वया विना
पञ्चप्राणात्मकस्त्वं मे मृताहञ्च त्वयाविना। यथा दृष्टिश्च गोलोके दृष्टिपुत्तलिकांविना

स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सार्द्धमहं तथा।
असंस्कृता त्वया हीना तृणाच्छन्ना यथा मही ॥ १५ ॥

त्वया सार्द्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेव मृण्मयी। त्वां विना जलधौताहं विरूपा मृण्मयीवच
गोपाङ्गनानां शोभा च त्वया रासेश्वरेणच। हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह
व्रजराज त्वया सार्द्धं राजन्ते राजराजयः। यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्विराजते ॥
त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन। यथा शाखा फलस्कन्धैस्तरुराजिर्विराजते

त्वया सार्द्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम्।
यथा सर्वा लोकराजी राजेन्द्रेण विराजते ॥ २० ॥

रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा। राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावती।
वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वञ्च शोभा पतिर्गतिः। अन्येषाञ्च वनानाञ्च बलवान् केशरीयथा
त्वयाविनायशोदाच निमग्ना शोकसागरे। अप्राप्यवत्सं सुरभी क्रोशन्ती व्याकुलायथा
आन्दोलयन्ति नन्दस्यप्राणा दग्धञ्च मानसम्। त्वयाविना तप्तपात्रे यथाधान्यसमूहकः
इत्युक्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरेः पदे। पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः
आध्यात्मिको महायोगो मोहसंच्छेदकारणम्। यथापरशुर्वृक्षाणां तीक्ष्णधारश्च नारद

नारद उवाच।

आध्यात्मिकं महायोगं वद वेदविदां वर। शोकच्छेदञ्च लोकानां श्रोतुं कौतूहलं मम।

श्रीनारायण उवाच।

आध्यात्मिको महायोगो न ज्ञातो योगिनामपि।
स च नानाप्रकारश्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम्॥ २८॥

किञ्चिदाध्यात्मिकञ्चैव गोलोके राधिकेश्वरः। सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरारिंमहामुने
सहस्रेन्द्रनिपातान्तं तपः कुर्वन्तमीश्वरम्। श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां वरिष्ठञ्च तपस्विनाम्
पुष्करे दुष्करं तप्त्वा पाद्मे पाद्मञ्च पद्मजः। दृष्ट्वा तं सादरं कृत्वा उवाच किञ्चिदेव तम्
शतेन्द्रपातपर्य्यन्तं कठोरेण कृशोदरम्। निश्चेष्टमस्थिसारञ्च कृपया च कृपानिधिः॥३२
सिंहक्षेत्रे पुरा धर्मं मत्तातं धर्मिणां वरम्। चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं तपस्तप्त्वा कृशोदरम्॥

पपाठाध्यात्मिकं किञ्चित् कृपया च कृपानिधिः।
किञ्चिच्छतेन्द्रावच्छिन्नमातपन्तमुवाच सः॥ ३४॥

किञ्चित् सनत्कुमारञ्च तपन्तं सुचिरं परम्। सुतपन्तमनन्तञ्च किञ्चिच्चोवाच नारद॥
चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्विनम्। पुष्करे भास्करे किञ्चित्तपन्तं दुष्करं तपः॥
उवाच किञ्चित् प्रह्लादं किञ्चिद् दुर्वाससं भृगुम्। एवंनिगूढं भक्तञ्चकृपया भक्तवत्सलः
क्रीड़ासरोवरे रम्ये यदुवाच कृपानिधिः। शोकार्त्तां राधिकां तच्च कथयामि निशामय

विरसां रसिकां दृष्ट्वा वासयित्वा च वक्षसि।
उवाचाध्यात्मिकं किञ्चिद् योगिनीं योगिनां गुरुः॥ ३६॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

जातिस्मरे स्मरात्मानं कथं विस्मरसि प्रिये । सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेवच

शापात् किञ्चिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह ।

भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः ॥ ४१ ॥

पुनरेवागमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम् । गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकवासिभिः

अधुनाऽध्यात्मिकं किञ्चित् त्वांवदामि निशामय । शोकघ्नं हर्षदं सारंसुखदं मानसस्यच

अहं सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु । विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्रादृष्ट एव च ॥४४॥

वायुश्चरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु । न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च सर्वः सर्वत्र जीविषु । भोक्ता शुभाशुभानाञ्च कर्ताच कर्मणांसदा

यथा जलघटेष्वेव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरेव तथा मयि ।४७।

जीवश्लिष्टस्तथा काले मृतेषु जीविषु प्रिये । आवाञ्च विद्यमानौ च सततं सर्वजन्तुषु ।

आधारश्चाहमाधेयं कार्यञ्च कारणं विना । अये सर्वाणि द्रव्याणि नश्वराणिच सुन्दरि

आविर्भावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्नूनमेवच । ममांशाःकेऽपि देवाश्च केचिद्देवाःकलास्तथा

केचित्कलाः कलांशांशास्तदंशांशाश्च केचन । मदंशाःप्रकृतिःसूक्ष्मा साच मूर्त्याचपञ्चधा

सरस्वतीच कमला दुर्गा त्वञ्चापि वेदसूः । सर्वेदेवाः प्राकृतिका यावन्तो मूर्तिधारिणः

अहमात्मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः । ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये ॥

अहमेवासमेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च । यथाहञ्च तथा त्वञ्च यथा धावल्यदुग्धयोः ॥५४॥

भेदः कदापि न भवेन्निश्चितञ्च तथावयोः ।

अहं महान्विराट् सृष्टौ विश्वानि यस्य लोमसु ॥ ५५ ॥

अंशस्त्वं तत्र महती स्वांशेनतस्य कामिनी । अहं क्षुद्रविराट् सृष्टौ विश्वं यन्नाभिपद्मतः

अयं विष्णोर्लोमकूपे वासो मे चांशतः सति ।

तस्य स्त्री त्वञ्च वृहती स्वांशेन सुभगा तथा ॥ ५७ ॥

तस्यविश्वेचप्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । ब्रह्मविष्णुशिवा अंशाश्चान्याश्चापिचमत्कलाः

मत्कलांशांशकलया सर्वे देवि चराचराः । वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥

स च विश्वाद्बहिश्चोर्द्ध्वं यथा गोलोक एव च ।
सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ ६० ॥
शिवलोके शिवा त्वञ्च मूलप्रकृतिरीश्वरी । विनाश्य दुर्गं दुर्गाञ्च सर्वदुर्गतिनाशिनी ॥
सा एव दक्षकन्या च सा एव शैलकन्यका । कैलासे पार्वती तेन सौभाग्या शिववक्षसि
स्वांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोदे विष्णुवक्षसि । अहंस्वांशेन सृष्टौ च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
त्वञ्च लक्ष्मीः शिवा धात्री सावित्री च पृथक् पृथक् ।
गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ॥ ६४ ॥
वृन्दा वृन्दावने रम्ये विरजा विरजातटे । सा त्वं सुदामशापेन भारतं पुण्यमागता ॥
पूतं कर्तुं भारतञ्च वृन्दारण्यञ्च सुन्दरि । त्वत्कलां स्वांशकलया विश्वेषु सर्वयोषितः
या योषित्सा च भवती यः पुमान् सोऽहमेव च ।
अहं च कलया वह्निस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया ॥ ६७ ॥
त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुञ्च त्वांविना । अहंदीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वंप्रभाकरी
संज्ञा त्वञ्च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान् ।
अहञ्च कलया चन्द्रस्त्वञ्च शोभा च रोहिणी ॥ ६९ ॥
मनोहरस्त्वयासार्द्धं त्वां विना न च सुन्दरः । अहमिन्द्रश्च कलयासर्वलक्ष्मीश्च त्वंशची
त्वया सार्द्धं देवराजो हतश्रीश्च त्वया विना । अहंधर्मश्च कलया त्वञ्च मूर्तिश्च धर्मिणी
नाहं शक्तो धर्मकृत्ये त्वाञ्च धर्मक्रियां विना । अहंयज्ञश्च कलया त्वं स्वाहांशेनदक्षिणा
त्वया सार्द्धञ्च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना ।
कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती ॥ ७३ ॥
त्वयालं कव्यदाने च सदा नालं त्वयाविना । अहंपुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्रष्टाहं त्वयाविना
त्वञ्च सम्पत्स्वरूपाहमीश्वरश्च त्वया सह ।
लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्या निःश्रीकश्च त्वया विना ॥ ७५ ॥
यथा नालं कुलालश्च घटं कर्तुं मृदा विना । अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुन्धरा
त्वां शस्यरत्नाधाराञ्चबिभर्मिमूर्ध्नि सुन्दरि । त्वञ्चकान्तिश्च शान्तिश्चमूर्तिर्मूर्तिमतीसती

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया ।
निद्रा शुद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च सन्नतिः क्रिया ॥ ७८ ॥
मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी । ममाधारा सदा त्वञ्च तवात्माहं परस्परम् ॥
यथा त्वञ्च तथाहञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ । न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरेकतरं विना ॥ ८०॥
इत्युक्त्वा परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।
कृत्वा वक्षसि सुप्रीतो बोधयामास नारद ॥ ८१ ॥
स च क्रीडानियुक्तश्च बभूव रत्नमन्दिरे । तया च राधया सार्द्धं कामुक्या सह कामुकः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
आध्यात्मिकयोगकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

———

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृत्वाक्रीड़ांसमुत्थाय पुष्पतल्पात् पुरातनः । निद्रितांप्राणसदृशीं बोधयामासतत्क्षणम्
वस्त्राञ्चलेन संस्कृत्य कृत्वा तन्निर्मलं मुखम् । उवाच मधुरं शान्तं शान्ताञ्च मधुसूदनः

श्रीकृष्ण उवाच ।

अयि तिष्ठ क्षणं रासे रासेश्वरि शुचिस्मिते । व्रज वृन्दावनं वापि व्रजं व्रज व्रजेश्वरि
रासाधिष्ठातृदेवि त्वं रासं रासे कुरु क्षणम् ।
ग्रामे ग्रामे यथा सन्ति सर्वत्र ग्रामदेवताः ॥ ४ ॥
प्रियालिनिवहैः सार्द्धं क्षणं चन्दनकाननम् । क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि
क्षणं गृहञ्च यास्यामि विशिष्टं कार्य्यमस्ति मे ।
विरामं देहि मे प्रीत्या क्षणं मां प्राणवल्लभे ॥ ६ ॥

प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे ।
प्राणी विहाय प्राणांश्च कुत्र स्थातुं क्षमः प्रिये ॥ ७

त्वयि मे मानसंशश्वत्त्वं मे संसारवासना । त्वत्तोममप्रिया नास्ति त्वमेवशङ्करात्प्रिया

प्राणा मे शङ्करः सत्यं त्वञ्च प्राणाधिका सति ।
इत्युक्त्वा तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः ॥ ६ ॥

अक्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः । आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारकः
दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम् । उवाच राधिका देवी हृदयेनविदूयता॥११॥

राधिकोवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठश्च प्रेयसां मम । हे कृष्ण हे रमानाथ व्रजेश मा व्रज व्रजम्॥

अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम् ।
गते त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च ॥ १३ ॥

क्यासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरेशोकसागरे । विरहव्याकुलांदीनां त्वय्येवशरणागताम्

न यास्यामि पुनर्गेहं यास्यामि काननान्तरम् ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गायं गायं दिवानिशम् ॥ १५ ॥

न यास्याम्यथवारण्यंयास्यामिकामसागरे । तत्रत्वत्कामनांकृत्वात्यक्ष्यामिचकलेवरम्

यथाऽऽकाशो यथात्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः ।
तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो वसनाञ्चले ॥ १७ ॥

अधुनायासि नैराश्यंकृत्वा मे दीनवत्सल । न युक्तं हि परित्यक्तुंदीनां मां शरणागताम्
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । त्वां मायया गोपवेशं कथं जानामि मत्सरी
कृतं यद्देव दुर्नीतमपराधसहस्रकम् । यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तत् क्षम ॥ २० ॥
चूर्णीभूतश्च मद्गर्वो दूरीभूतो मनोरथः । विज्ञातमात्मसौभाग्यं किमन्यत् कथयामि ते

ज्ञात्वा गर्गमुखात्कृत्वा मोहिता तव मायया ।
त्वाञ्च वक्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः ॥ २२ ॥

यासिचेन्मां परित्यज्य सकलङ्को भविष्यसि । त्वत्पुत्रपौत्रा नश्यन्ति ब्रह्मकोपानलेनच

क्षणं युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवल्लभम् ।
कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा बिभर्मि जीवनं प्रभो ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा राधिका कोपात्पपात धरणीतले । मूर्च्छां संप्राप सहसा जहार चेतनां मुने

कृष्णस्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः ।
चेतनां कारयित्वा च वासयामास वक्षसि ॥ २६ ॥

बोधयामासविविधं योगैःशोकविखण्डनैः । तथापिशोकं त्यक्तुञ्च न शशाकशुचिस्मता

सामान्यवस्तुविश्लेषो नृणां शोकायकेवलम् । देहात्मनोश्च विच्छेदः क्व सुखायप्रकल्पते

न ययौ तत्र दिवसे व्रजराजो व्रजं प्रति । क्रीड़ासरोवराभ्यासं प्रययौ राधया सह ॥

तत्र गत्वा पुनः क्रीड़ां चकार च तया सह । विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा

राधा सा स्वामिना सार्द्धं पुष्पचन्दनचर्चिता । पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधाशोकविमोचनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

रासक्रीड़ावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद । निगूढ़तत्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यंपरमाद्भुतम् । गोपनीयञ्च वेदेषु पुराणेषु पुराविदाम् ॥ २ ॥

पुनः सकामो भगवान् कृष्णःस्वेच्छामयोविभुः । रेमे सरमयासार्द्धं विदग्धश्चविदग्धया

चतुःषष्टिकलासक्ता यथा कान्ताकलावती । कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धारसिकेश्वरी

शृङ्गारलीलानिपुणाशश्वत्कामा च कामुकी । सुन्दरीसुन्दरीष्वेव शश्वत्सुस्थिरयौवना

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या च मानिनी।
शम्भोः शिष्या ज्ञानयुता शतकल्पान्त जीविनी॥ ६॥

वेदवेदाङ्गनिपुणा योगनीतिविशारदा। नानारूपधरा साध्वी प्रसिद्धा सिद्ध योगिनी॥ तत्कन्याराधिकादेवी मातृतुल्याचकामुकी। चकारनानाभावंसासुशीलास्वामिनं प्रति चतुःषष्टिकलामानं श्रृङ्गारञ्च चकार सः। तया विशिष्टया सार्कं रासे रासरसोत्सुकः तां नखाग्रक्षतश्रोणीं नखक्षतपयोधराम्। लुप्तचन्दनसिन्दूरां कबरीशिथिलां सतीम्॥ सुखसम्भोगमग्नाञ्चनग्नाञ्चशोकमूर्च्छिताम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं निद्रा देवीं समाययौ दृष्ट्वातांनिद्रितां कृष्णः कृपयाच कृपानिधिः। रुरोद मायया मायीमायेशो लोकशिक्षया कृत्वावक्षसि राधाञ्च चुचुम्ब च पुनः पुनः। स्नाताञ्च नेत्रसलिलैः प्राणाधिष्ठातृदेवताम् प्राणाधिकां प्रियतमां धारयामास वाससी। वह्निशुद्धेऽतिसूक्ष्मे चामूल्ये विश्वसुदुर्लभे कबरीं रचयामास ददौ कुङ्कुमचन्दनम्। तद्गात्रे च गले हारममूल्यं रत्ननिर्मितम्॥ सिन्दूरञ्च ददौ तस्याः सीमन्ताधःस्थलेऽमले। दाड़िमकुसुमाकारं युक्तञ्चदनविन्दुभिः चकार पत्रकं गण्डे नानाचित्रविचित्रकम्। ददौ तत्पादपद्मे च रत्नमञ्जीररञ्जितम्॥

पादाङ्गुलिनखाग्रे च सुन्दरालक्तकंददौ॥ १८॥

नानासुवेशोज्ज्वलितां तां निद्राकुलितांविभुः। पुनश्चकार मोहेनगाढ़ालिङ्गनमीप्सितम् पुनश्च चुम्बनं कृत्वा निवेश्य च स्ववक्षसि। सुष्वाप जगतांस्वामी कामी विरहकातरः एतस्मिन्नन्तरे काले ब्रह्मा लोकपितामहः। शिवशेषादिभिर्देवैर्मुनीन्द्रैः सार्द्धमाययौ आगत्यनत्वा शिरसा तुष्टावसम्पुटाञ्जलि। सामवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमं विभुम्॥

ब्रह्मोवाच।

जय जय जगदीश वन्दितचरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रह नित्यविग्रह गोपवेश मायया मायेश सुवेश सुशील शान्त सर्वकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परात् परतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन भारावतारण करुणार्णव शोकसन्तापग्रसन जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर भक्तानुग्रहकातर भक्तवत्सल भक्तसञ्चितधन ओं नमोऽस्तु ते॥ २३॥

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च।
पुनः पुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥ २४ ॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥ २५ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम्।
निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥ २६ ॥

इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः। अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मकृतस्तोत्रम्।

स्तुत्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः। शनैःशनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह

ब्रह्मोवाच।

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण। नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥२९॥
व्रज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं वनम्। स्मर सुदामशापञ्च शतवर्षनिबन्धनम् ॥३०
भक्तशापानुरोधेन शतवर्षं प्रियां त्यज। पुनरेताञ्च सम्प्राप्य गोलोकञ्च गमिष्यसि ॥
गत्वा पितृगृहं देव पश्याक्रूरं समागतम्। पितृव्यमतिथिं मान्यं धन्यं वैष्णवमीश्वरम् ॥
तेन सार्द्धं मधुपुरीं भगवन् गच्छ साम्प्रतम्। कुरु शम्भोर्धनुर्भङ्गं भग्नं वैरिगणं हरे ॥

हन कंसं दुरात्मानं तातं बोधय मातरम्।
निर्माणं द्वारकायाश्च भारावतरणं भुवः ॥ ३४ ॥
दह वाराणसीं शम्भोः शक्रस्य सदनं विभो।
शिवस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥ ३५ ॥

रुक्मिणीहरणं नाथ घातनं नरकस्य च। षोडशानां सहस्रञ्च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु ॥
त्यज प्रियां प्राणसमां व्रजेश्वर व्रजं व्रज। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते यावद्राधा न जाग्रति ॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रैर्देवगणैः सह। जगाम ब्रह्मलोकञ्च शेषश्च शङ्करस्तथा ॥

पुष्पचन्दनवृष्टिञ्च कृष्णस्योपरि देवताः।
चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च वागभूवाशरीरिणी ॥ ३६ ॥

वध कंसं वधार्हञ्च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुरु ।
क्षयं कुरु भुवो भारं नारदेत्येवमेव च ॥ ४० ॥
इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ।
राधां भगवतीं त्यक्त्वा समुत्तस्थौ शनैः शनैः ॥ ४१ ॥
ययौ हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः । क्षणं तस्थौ चन्दनानां वने वाससमीपतः
विहाय राधा निद्रां सा समुत्तस्थौ स्वतल्पतः ।
न निरीक्ष्य हरिं शान्तं कान्तञ्च प्राणवल्लभम् ॥ ४३ ॥
हा नाथ रमणश्रेष्ठ प्राणेश प्राणवल्लभ । प्राणचोर प्रियतम क्व गतोऽसीत्युवाच ह ॥४४
क्षणमन्वेषणं कृत्वा बभ्राम मालतीवनम् । उवास क्षणमुत्तस्थौ क्षणं सुष्वाप भूतले
रुरोद क्षणमत्युच्चैर्विललाप मुहुर्मुहुः । आगच्छागच्छ हे नाथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः ॥
मूर्च्छां सम्प्राप सन्तापात् सन्तप्ता विरहानलैः ।
भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता ॥ ४७ ॥
आययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मन् शतसहस्रशः । काश्चिच्चामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम् ॥
तासां मध्ये प्रियालीलाः कृत्वाराधां स्ववक्षसि । मृतामिवप्रियां दृष्ट्वा रुरोद प्रेमविह्वला
सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च । स्थापयामास तां राधां निश्चेष्टाञ्च मृतामिव ॥
गोपीभिः सेवितां तत्र रुचिरैःश्वेतचामरैः । चन्दनद्रवयुक्ताञ्च स्निग्धवस्त्रान्वितांसतीम्
ददर्श कृष्णस्तत्रेत्य तामेव प्राणवल्लभाम् ।
निवारितश्च गोपीभिर्वलिष्ठाभिश्च नारद ॥ ५२ ॥
यथानीतः सापराधो दण्ड्यो राजभयादिभिः ।
चकार राधां क्रोड़े च समागत्य कृपानिधिः ॥ ५३ ॥
चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः । सम्प्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणवल्लभम्
बभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम् ।
चकार कान्तं सा कान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम् ॥ ५५ ॥
नानाप्रकारश्रृङ्गारं चकार मधुसूदनः । उवास रत्नतल्पे च राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥

राधासखी रत्नमाला विदग्धा सर्वपूजिता। उवाच कृष्णं मधुरं नीतिसारमनुत्तमम् ॥

रत्नमालोवाच।

शृणु कृष्ण प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम्।
हितं तथ्यं नीतिसारं दम्पत्योः प्रीतिकारणम् ॥ ५८ ॥

सम्मतं कामशास्त्रेषु नीतौ वेदपुराणयोः। लौकिकव्यवहारेषु प्रशस्यं सुयशस्करम् ॥

नारीणाञ्च यथा माता प्रियो भ्राता च बन्धुषु।
ततः प्रियश्च पुत्रश्च पुत्रादेव प्रियः पतिः ॥ ६० ॥
शतपुत्रात् प्रियः स्वामी साध्वीनां साधुसम्मतः।
रसिकानां विदग्धानां न हि भर्तुः परः प्रियः ॥ ६१ ॥

यदि भर्ता विदग्धश्च विदग्धानां सुखावहः। अन्यथा विषतुल्यश्च विषमश्चेत्खलःखलु
संसारे चानृते वत्स दम्पत्योः प्रीतिरेव च। परस्परञ्च समता प्रेमसौभाग्यमीप्सितम्
दम्पत्योः समता नास्ति यत्र यत्र हि मन्दिरे। अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलंजीवनंतयोः

सुस्वामिनां विभेदश्च परं दुःखञ्च योषिताम्।
शोकसन्तापबीजञ्च जीवितं मरणाधिकम् ॥ ६५ ॥
स्वप्ने जागरणे चापि पतिः प्राणाश्च योषिताम्।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणामिहलोके परत्र च ॥ ६६ ॥
अस्मात्त्वयि गते नाथे मूर्च्छां संप्राप राधिका।
पपात सहसा भूमौ तृणाच्छन्ने च भूतले ॥ ६७ ॥

मया दत्तं मुखेऽस्याश्च शीतलं जलमुत्तमम्। तदा श्वासो बभूवास्याश्चेतनं चाल्पमेवच

क्षणं वदति हे नाथ हे कृष्णेति क्षणं सखी।
क्षणं रोदिति सन्तप्ता मूर्च्छां प्राप्नोति तत्क्षणम् ॥ ६९ ॥

राधिकायाः शरीरञ्च सन्तप्तं विरहानलैः। दग्धलोहयष्टिसममस्पृश्यमनलोपमम् ॥७०॥
स्वप्ने जागरणे रात्रौ दिवासु च गृहे वने। जले स्थले चान्तरिक्षेऽभ्युदये चन्द्रसूर्ययोः
नास्तिभेदश्च राधाया मृततुल्या जडाकृतिः। शश्वत्पश्यतिस्थानस्थासर्वंविष्णुमयंजगत्

स्निग्धपङ्के पङ्कजानां सजलानि दलानि च। निपत्य त्वत्कृते तल्पे सुष्वाप विरहातुरा
सेविता सा प्रियालीभिः सन्ततं श्वेतचामरैः। चन्दनद्रवसंसिक्ता स्निग्धवस्त्रसमन्विता
राधाङ्गस्पर्शमात्रेण पङ्कःसंप्राप शुष्कताम्। स्निग्धानि पद्मपत्राणि बभूवुर्भस्मसात्क्षणम्
चन्दनं शुष्कतां प्राप वर्णश्चम्पकसन्निभः। बभूव कज्जलाकारः केशस्य वर्णतो हरे॥
सिन्दूरबिन्दुरुचिरःश्यामतांप्रापतत्क्षणम्। वेषो विलासोलीला च क्रीड़ात्यक्ताबभूव ह
रत्नमाला तु तां दृष्ट्वा गत्वा कृष्णान्तिकं तदा। उवाच मधुरं वाक्यं राधाहितकरं परम्

रत्नमालोवाच।

हे कृष्ण कमलाकान्त त्वद्वियोगेन मत्सखी।
प्राणांस्त्यक्ष्यति शीघ्रं सा यदि नायास्यसि ध्रुवम् ॥ ७९ ॥

विचार्य्य मनसा कृष्ण यत्तत्समुचितं कुरु। न भवेत् कामिनीहत्या येन नीतिविशारद
रत्नमालावचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच माधवः। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्

श्रीभगवानुवाच।

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेधं खण्डितुं प्रिये। तथापि न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम्
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया। तया कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरा नराः॥
सुदामशापाद्विच्छेदः शतवर्षमनीप्सितः। भविष्यत्येव दम्पत्योरावयोरेव सुन्दरि॥
भेदो जागरणेऽस्याश्च मया सह सुमध्यमे। संश्लेषः सन्ततं स्वप्ने मद्वरेण भविष्यति

आध्यात्मिकी मया दत्ता शोकच्छेदो भविष्यति।
राधां बोधय भद्रं ते यास्यामि नन्दमन्दिरम् ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो ययौ नन्दालयं प्रति। राधिकां बोधयामासुरालिसंघाश्च नारद॥
गत्वा गृहञ्च पितरं ननाम मातरं तथा। चकार माता क्रोड़े च नवनीतञ्च नूतनम् ॥८८
मातृदत्तञ्च ताम्बूलं चखाद शीतलं जलम्। उवास तत्र जगतां नाथो मातृसमीपतः॥
सर्वैर्गोपसमूहैश्च सेवितः श्वेतचामरैः। माल्यचन्दनताम्बूलं ते च तस्मै ददुर्मुदा ॥९०

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णागमनं नामोनसप्ततितमोऽध्यायः।

सप्ततितमोऽध्यायः

अक्रूरस्य कृष्णसमीपे गमनम्।

श्रीनारायण उवाच।

यथाऽक्रूरः स्वशरणं गत्वा कंसेन प्रेषितः। चकार शयनं तल्पे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम्॥
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं चखाद वासितं जलम्। जगाम निद्रां सुखतः सुखसम्भोगमात्रतः॥
ततो ददर्श सुस्वप्नं पुराणश्रुतिसम्मितम्। निशावशेषसमये वाद्यादिपरिवर्जिते॥ ३॥
अरोगी बद्धकेशश्च वस्त्रयुग्मसमन्वितः। सुतल्पशायी सुस्निग्धश्चिन्ताशोकविवर्जितः
किशोरवयसं श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्। पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम्॥५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मालतीमाल्यशोभितम्। भूषितं भूषणार्हैश्च सद्रत्नमणिभूषणैः॥ ६॥
मयूरपिच्छचूडञ्च सस्मितं पद्मलोचनम्। एवम्भूतं द्विजशिशुं ददर्श प्रथमं मुने॥ ७॥
ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रवतीं सतीम्। पीतवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ८॥
ज्वलत्प्रदीपहस्ताञ्च शुक्लधान्यकरां वराम्। शरच्चन्द्रनिभास्याञ्च सस्मितांवरदां शुभाम्
ततो ददर्श विप्रञ्च प्रकुर्वन्तं शुभाशिषम्। श्वेतपद्मं राजहंसं तुरगञ्च सरोवरम्॥१०॥
ददर्श चित्रितं चारु फलितंपुष्पितं शुभम्। आम्रनिम्वनारिकेलगुर्वार्ककदलीतरुम्॥११
दंशन्तं श्वेतसर्पञ्च स्वात्मानं पर्वतस्थितम्। वृक्षस्थञ्च गजस्थञ्च तरिस्थं तुरगस्थितम्
वीणां वादितवन्तञ्च भुक्तवन्तञ्च पायसम्। दधिक्षीरयुतान्नञ्च पद्मपत्रस्थमीप्सितम्॥
कृमिविट्सहिताङ्गञ्च रुदन्तं मोहितं तदा। शुक्लधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनचर्चितम्॥१४
प्रासादस्थं समुद्रस्थमात्मानञ्च सलोहितम्। छिन्नभिन्नक्षताङ्गञ्च मेदपूयसमन्वितम्॥
ततो ददर्श रजतं मणिं शुभ्रञ्च काञ्चनम्। मुक्तामाणिक्यरत्नञ्च पूर्णकुम्भजलं शुभम्॥
सुरभीञ्च सवत्साञ्च वृषभेन्द्रं मयूरकम्। शुकञ्च सारसं हंसं चिल्लं खञ्जनमेव च॥१७॥
ताम्बूलं पुष्पमाल्यं ज्वलदग्निं सुरार्चनम्। पार्वतीप्रतिमां कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम्॥
विप्रबालाञ्च बालाञ्च सुपक्कफलितां कृषिम्। देवस्थलीञ्च राजेन्द्र सिंहं व्याघ्रं गुरुंसुरम्

दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराह्निकमीप्सितम् । उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेव च

उद्धवाज्ञां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम् ।
यात्रां चकार श्रीकृष्णं ध्यात्वा मनसि नारद ॥ २१ ॥

ददर्श वर्त्मन्येवञ्च मङ्गलार्हं शुभप्रदम् । वाञ्छाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम् ॥२२॥

वामे शवं शिवां पूर्णकुम्भं नकुलचासकम् ।
पतिपुत्रवतीं साध्वीं दिव्याभरणभूषिताम् ॥ २३ ॥

शुक्लपुष्पञ्च माल्यञ्च धान्यञ्च खञ्जनं शुभम् । दक्षिणे ज्वलदग्निञ्च विप्रञ्च वृषभं गजम्

वत्सप्रयुक्तां धेनुञ्च श्वेताश्वं राजहंसकम् ।
वेश्याञ्च पुष्पमालाञ्च पताकां दधि पायसम् ॥ २५ ॥

मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामाणिक्यमीप्सितम् । सद्योमांसं चन्दनञ्च माध्वीकं घृतमुत्तमम्

कृष्णसारं फलं लाजसिद्धार्थं दर्पणं तथा । विचित्रितं विमानञ्च सुदीप्तां प्रतिमां तथा

शुक्लोत्पलं पद्मवनं शङ्खचिह्लं चकोरकम् । मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुकसारसम् ॥२८॥

शङ्खकोकिलवाद्यानां ध्वनिं शुश्राव मङ्गलम् ।
विचित्रं कृष्णसङ्गीतं हरिशब्दं जयध्वनिम् ॥ २६ ॥

एवम्भूतं शुभं दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रहृष्टमानसः । प्रविवेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥

ददर्श पुरतो रम्यं रासमण्डलमीप्सितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पचन्दनवायुना ॥ ३१॥

वासितं मङ्गलघटै रम्भास्तम्भैर्विराजितम् । आम्रपल्लवसङ्घैश्च पट्टसूत्रविचित्रितैः ॥३२॥

शोभितैः परितः शश्वत् पद्मरागविनिर्मितम् ।
शोभितं शोभनार्हैश्च त्रिकोटिरत्नमन्दिरैः ॥ ३३ ॥

रम्यैः कुञ्जकुटीरैश्च राजितं शतकोटिभिः । रासं वृन्दावनं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययौ च सः

ददर्श पुरतो रम्यं नन्दव्रजमनुत्तमम् । परं वैकुण्ठसङ्काशं वैकुण्ठनिलयं शुभम् ॥ ३५ ॥

रत्नसोपानसंयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।
नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नवलयान्वितम् ॥ ३६ ॥

खचितं मणिसारेण रचितं विश्वकर्मणा । द्वारिदृष्टेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सः ॥

पताकारत्नजालाढ्यं मुक्तामाणिक्यभूषितम् । रत्नदर्पणशोभाढ्यं रत्नचित्रविचित्रितम् ।
रत्नवीथीविरचितं मङ्गलं मङ्गलैर्घटैः ॥ ३८ ॥
अक्रूरागमनं श्रुत्वा साह्लादो नन्द एव च ।
सहितो रामकृष्णाभ्यां जगामानु व्रजाय वै ॥ ३९ ॥
वृकभान्वादिभिर्युक्तःकृत्वा वेश्यांपुरःसराम् । पूर्णकुम्भंगजेन्द्रञ्च कृत्वाऽग्रे शुक्लधान्यकम्
कृष्णां गां मधुपर्कञ्च पाद्यं रत्नासनादिकम् ।
गृहीत्वा सादरः शान्तः सस्मितो विनतस्तथा ॥ ४१ ॥
आनन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सहबालकः । दृष्ट्वाऽक्रूरं महाभागं तूर्णमालिङ्गनं ददौ ॥४२॥
प्रणेमुः शिरसा सर्वे गोपा जगृहुराशिषम् । परस्परञ्च संयोगो बभूव गुणवान् मुने ॥
क्रोडे चकाराक्रूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च । चुचुम्ब गण्डयुगले पुलकाञ्चितविग्रहः ॥
साश्रुनेत्रोऽतिसाह्लादः कृतार्थः सिद्धवाञ्छितः ।
ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम् ॥ ४५ ॥
पीतवस्त्रपरीधानं मालतीमाल्यभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं परं वंशीधरं वरम् ॥४६॥
स्तुतं ब्रह्मेशशेषाद्यैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः । वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम्
क्षणं ददर्श क्रोड़स्थं सस्मितञ्च चतुर्भुजम् ।
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥ ४८ ॥
सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिसेवितम् । सेवितं सिद्धसङ्घैश्च भक्तिनम्रैः परात्परम् ॥
क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं नागराजविराजितम् ॥
दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्माङ्गञ्च जटायुतम् ।
जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठञ्च योगिनाम् ॥ ५१ ॥
क्षणं चतुर्मुखं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम् । क्षणं धर्मस्वरूपञ्च शेषरूपं क्षणं क्षणम्
क्षणं भास्कररूपञ्च ज्योतीरूपं सनातनम् ।
क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्प निन्दितम् ॥ ॥५३ ॥
कामिनीकमनीयञ्च कामुकं कामसंयुतम् । एवम्भूतं शिशुं दृष्ट्वा स्थापयामास वक्षसि

रत्नसिंहासने रम्ये नन्ददत्ते च नारद । कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः।
प्रणम्य शिरसा भूमौ तुष्टाव पुरुषोत्तमम् ॥ ५५ ॥

अक्रूर उवाच ।

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे । सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः ॥
पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च । निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे ॥ ५७ ॥
सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च । सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे ॥ ५८ ॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
स्वरूपायादिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे ॥ ५९ ॥
नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे । नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः ॥६०॥
राधारमणरूपाय राधारूपधराय च । राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥
राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च । राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः ॥
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः । वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः ॥ ६३ ॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः।
महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः ॥ ६४ ॥
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः । प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च ॥ ६५ ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले । पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः ॥
बहिस्थं हृदयस्थञ्च परमात्मानमीश्वरम् । परितः श्यामरूपञ्च विश्वस्थं विश्वमेवच
अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारद ।६८
पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किञ्चिद्दृष्टमिति त्वया । मिष्टान्नं भोजयामास कुशलञ्च पुनःपुनः
अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् । स्वपित्रोर्मोक्षणार्थञ्च गमनं रामकृष्णयोः
इत्यक्रूरकृतं स्तोत्रं यः पठेत् सुसमाहितः । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥
अधनो धनमाप्नोति निर्भूमिरुर्वरां महीम् । हतप्रजः प्रजां लेभे प्रतिष्ठाञ्च प्रतिष्ठितः ॥
यशः प्राप्नोति विपुलमयशस्वी च लीलया ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे अक्रूरस्तोत्रम् ।

अथ सुष्वाप समये परं संहृष्टमानसः। रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥
प्रातरुत्थाय सहसा कृत्वाह्निकमनुत्तमम्। स्वरथे स्थापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम्
गव्यं पञ्चप्रकारञ्च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम्। वृषभानुञ्च नन्दञ्च सुनन्दं चन्द्रभानकम्
नानाप्रकारं वाद्यञ्च मृदङ्गमुरजादिकम्। पटहं पणवञ्चैव ढक्कां दुन्दुभिमानकम् ॥७६
सज्ञासंगहनीकांस्यपट्टमर्दलमण्डवीम्। वादयामास सानन्दं नन्दगोपो व्रजेश्वरः ॥७७

श्रुत्वा वाद्यञ्च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः।
दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमाययुः कोपपीड़िताः ॥ ७८ ॥

कृष्णेन वारिताः सर्वाः प्रेरिता राधया द्विज। बभञ्जुरीश्वररथं पादाघातेन लीलया ॥
तत्र सर्वेषु गोपेषु हाहाकारं कृतेषु च। प्रययुर्बलवत्यश्च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥८०॥
काचित्क्रूरं तमक्रूरं भर्त्सयामास कोपतः। काश्चिद्बबन्धुश्चाच वस्त्रेणचाक्रूरं प्रययुस्ततः
काचित्तं ताडयामास कङ्कणेन करेण च। तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विवसनं मुने ॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाक्रूरञ्च माधवः। जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः ॥
आध्यात्मिकेन योगेन विनयेन च सादरम्। अक्रूरं बोधयामास बोधयामास तां विभुः
आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम्। विचित्रवस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः ॥

खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा।
तं दृष्ट्वा भातृभवनमाजगाम जगत्पतिः ॥ ८६ ॥

भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुप्त्वा गमने सहबान्धवः। तस्थौ मुनीन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशशेषवन्दितः॥
सुषुपुर्गोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसाः। पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद ॥
सर्वे चानन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः। केचिद्गोपाश्च ननृतुः केचित् सङ्गीततत्पराः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
गोपीविषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः।

———

एकसप्ततितमोऽध्यायः

यात्रामङ्गलवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकायाञ्च सुप्तायां सुप्तासु गोपिकासु च । पुष्पचन्दनतल्पे च वायुना सुरभीकृते
तृतीयप्रहरेऽतीते निशायाञ्च शुभक्षणे । शुभचन्द्रर्क्षयोगे चामृतयोगसमन्विते ॥ २ ॥
सौम्यस्वामियुते लग्ने सौम्यग्रहविलोकिते । पापग्रहसमासक्तदुष्टदोषादिवर्जिते ॥ ३ ॥

यशोदां वोधयामास कारयामास मङ्गलम् ।
बन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम् ॥ ४ ॥
वाद्यं निषेधयामास राधिकाभयभीतवत् ।
स्वतन्त्रो विश्वकर्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रवत् ॥ ५ ॥

प्रक्षाल्य पादयुगलं धृत्वा धौतेच वाससी । उवास संस्कृते स्थाने विलिप्ते चन्दनादिना
फलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः । वामे कृत्वा पूर्णकुम्भं वह्निं विप्रं स्वदक्षिणे ॥
पतिपुत्रवतीं दीपं दर्पणं पुरतस्तथा । दूर्वाकाण्डञ्च सुस्निग्धं पुष्पं धान्यं सितंशुभम्
गुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रददौ मस्तकोपरि । घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि ॥६॥
चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ । गुरुवर्गं ब्राह्मणञ्च वन्दयामास भक्तितः ॥१०
शङ्खध्वनिं वेदपाठं सङ्गीतं मङ्गलाष्टकम् । विप्राशीर्वचनं रम्यं शुश्राव परमादरम् ॥११॥
ध्यात्वा मङ्गलरूपञ्च सर्वत्र मङ्गलप्रदम् । चिक्षेप दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मविग्रहम् ॥
विधृत्य नासिकां वामभागं मध्यमयाविभुः । विसृज्यवायुं सम्पूर्णं नासादक्षिणरन्ध्रतः
ततो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य प्राङ्गणं वरम् । सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः

नित्योऽनित्यो नित्यबीजस्वरूपो नित्यविग्रहः ।
नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यकृत्यविशारदः ॥ १५ ॥

नित्यनूतनरूपञ्च नित्यनूतनयौवनः । नित्यनूतनवेशञ्च वयसा नित्यनूतनः ॥ १६ ॥

नित्यनूतनसम्भाषो यत्प्रेम नित्यनूतनम् । नित्यनूतनसम्प्राप्तिःसौभाग्यं नित्यनूतनम् ॥
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम् । नित्यनूतनभक्तञ्च यत्पदं नित्यनूतनम् ॥
स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन् मायेशो मायया युतः ।
अतीवरम्ये सुस्निग्धो बभूव गमनोन्मुखः ॥ १६ ॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च रसालपल्लवान्वितैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृते ॥ २० ॥
पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते ॥२१॥
तत्र तस्थौ स्वयं कृष्णः सहाक्रूरः सबान्धवः ।
यशोदया समाश्लिष्टो वामपार्श्वेन मायया ॥ २२ ॥
नन्देनानन्दयुक्तेनाश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः ।
सम्भापितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च चुम्बितः ॥ २३ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे यात्रा-
मङ्गलं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णो गुरुं नत्वा निर्गम्य शिविरान्मुने ।
आरुह्य स्वर्गयानञ्च शुभां मधुपुरीं ययौ ॥ १ ॥
विवेश मथुरां रम्यांसहाक्रूरगणैःसमम् । निर्जित्य शक्रनगरीं शोभायुक्तां मनोहराम् ॥
रत्नश्रेष्ठेन खचितां रचितां विश्वकर्मणा । अमूल्यरत्नकलशै राजितैश्च विराजिताम् ॥
राजमार्गशतैरिष्टैर्वेष्टितां रुचिरैर्वरैः । चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिसंस्कृतैः ॥
विचित्रैर्मणिसारैश्च वीथीशतविनिर्मितैः । शोभितैर्वणिजैः श्रेष्ठैःपुण्यवस्तुसमन्वितैः ॥

सरोवरसहस्रैश्च परितः परिशोभिताम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशैः पद्मरागविराजितैः ॥ ६॥
रत्नलङ्कारभूपाढ्यैः शोभितां पद्मिनीगणैः। स्थिरयौवनसंयुक्तैर्निमेषरहितैः परैः ॥ ७ ॥
साक्षतैरूर्ध्ववदनैः कृष्णदर्शनलालसैः। भ्रूभङ्गलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः ॥ ८॥

शश्वत्कामसमायुक्तैः पीनश्रोणिपयोधरैः।
कोमलाङ्गैर्मध्यरूपै रतिसारविशारदैः ॥ ९ ॥
रत्ननिर्माणयानानां कोटिभिः परिशोभिताम् ।
भूषणैर्भूषिताभिश्च चित्रिताभिश्च चित्रकैः ॥ १० ॥
नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिभिः ।
नानापुष्पैः पुष्पिताभिर्युक्ताभिर्मधुसूदनैः ॥ ११ ॥

माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मुदान्वितैः । माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः ॥ १२ ॥
नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गम्यांवैरिणां गणैः। रक्षितां रक्षकैःशश्वद्रक्षाशास्त्रविशारदैः ॥
त्रिकोट्याट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम् । रचिताभिश्चसद्रत्नैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा
एवम्भूताञ्च मथुरां दृष्ट्वा कमललोचनः। ददर्श पथि कुब्जां तां वृद्धामतिजरातुराम् ॥

यान्तीं दण्डसहायेन चातिनम्रां नमद्वलीम् ।
रुक्षितां विकृताकारां बिभ्रतीं चन्दनद्रवम् ॥ १६ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च स्पृष्टमात्रेण नारद। सुगन्धिमकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ॥

सा दृष्ट्वासस्मिता वृद्धा श्रीकान्तं शान्तमीश्वरम् ।
श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीवीजं श्रीनिकेतनम् ॥ १८ ॥

प्रणम्य सहसामूर्ध्ना भक्तिनम्रा पुटाञ्जलिः। प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामलसुन्दरे ॥
गात्रेषु तद्गणानाञ्च स्वर्णपात्रकरा वरा । कृत्वा प्रदक्षिणं कृष्णं प्रणनाम पुनःपुनः ॥
श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा बभूव ह । सहसा श्रीसमा रम्या रूपेण यौवनेन च ॥
वह्निशुद्धा सुवसना रत्नभूषणभूषिता । यथा द्वादशवर्षीया कन्या धन्या मनोहरा ॥२२

बिम्बोष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकाञ्चनसन्निभा ।
सुश्रोणी सुदतीविल्वफलतुल्यपयोधरा ॥ २३ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारविराजिता । गजेन्द्रराजगमना रत्नमञ्जीररञ्जिता ॥ २४ ॥
बिभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यवेष्टितम् । रक्षितं वामभागेन रुचिरं वर्तुलाकृतिम् ॥२५
सिन्दूरबिन्दुं दधती दाड़िम्बकुसुमाकृतिम् । कस्तूरीबिन्दुमुपरि सार्द्धं चन्दनबिन्दुभिः
रत्नदर्पणहस्ता च प्रसस्ता रतिकर्मसु । श्रीकृष्णं वरयामास लोललोचनकोणतः ॥

श्रीवासस्तां समाश्वास्य ययौ स्थानान्तरं परम् ।
कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथालयम् ॥ २८ ॥

साददर्श स्वभवनं यथापद्मालयालयम् । रत्नशय्याविरचितं सद्रत्नसारनिर्मितम् ॥२६॥
रत्नप्रदीपराजीभीराजताभिश्च राजितम् । रत्नदर्पणराजैश्च राजितं परितस्ततः ॥ ३० ॥
सिन्दूरवस्त्रताम्बूलं श्वेतचामरमाल्यकम् । बिभ्रतीभिश्च दासीभिर्वेष्टितं दाससंघकैः ॥
तत्र गत्वा च भुक्त्वा च मिष्टान्नंपरमंमुदा । सुष्वाप रत्नपर्यङ्के सा दासीभिश्च सेविता
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । चन्दनं स्थापयामास स्वतल्पे हरये सती ॥

मालतीमाल्ययुगलं कर्पूरादिसुवासितम् ।
शीतलं सलिलं स्वादु मिष्टान्नं स्वसमीपतः ॥ ३४ ॥

कर्मणा मनसा वाचा चिन्तयन्ती हरेः पदम् । हरेरागमनञ्चापि मुखचन्द्रं मनोहरम् ॥

जगत्कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने ।
कोटिकन्दर्पलीलाभं कामासक्तञ्च कामुकम् ॥ ३६ ॥

ततो ददर्श श्रीकृष्णो मालाकारं मनोहरम् । मालासमूहं बिभ्रन्तं गच्छतं राजमन्दिरम्
सोऽपि दृष्ट्वा च श्रीकान्तं प्रणम्य शिरसाभुवि । ददौ माल्यसमूहञ्च कृष्णाय परमात्मने
कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम् । माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गं वरं वरः
ततो ददर्श रजकं बिभ्रन्तं वस्त्रपुञ्जकम् । अहङ्कृतं बलिष्ठञ्च सततं यौवनोद्धतम् ॥४०॥
वस्त्रं ययाचे तं कृष्णो विनयेन महामुने । स तस्मै न ददौ वस्त्रं तमुवाच च निष्ठुरम्

रजक उवाच ।

गोरक्षकाणां त्वयोग्यं वस्त्रमेतत् सुदुर्लभम् । राजयोग्यञ्च हे मूढ़ हे गोपजनवल्लभ ॥
गृहीत्वा गोपकन्याश्च कन्यालोलुपलम्पट । यद्विहारः कृतस्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके ॥

न चात्र तादृशं कर्म राज्ञः कंसस्य वर्त्मनि ।
विद्यमानोऽत्र राजेन्द्रः शास्ता दुष्टस्य तत्क्षणम् ॥ ४४ ॥
रजकस्य वचः श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । जहास बलदेवश्च साक्रूरो गोपवर्गकः ॥४५॥
तं निहत्य चपेटेन जग्राह वस्त्रपुञ्जकम् । वस्त्रं संधारयामास श्रीकृष्णः सगणस्तथा ॥
रत्नयानेन गोलोकं पार्षदैर्वेष्टितेन च । ययौ रजकराजश्च धृत्वा दिव्यकलेवरम् ॥४७॥
शश्वद्यौवनयुक्तञ्च जरामृत्युहरं वरम् । पीतवस्त्रसमायुक्तं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥
बभूव सोऽपि गोलोके पार्षदेषुच पार्षदः । कृष्णस्यागमनं तत्र सस्मार सततं वशी ॥४९॥
अस्तं गतो दिनकरोऽप्यक्रूरः स्वगृहं ययौ ।
कृष्णस्यानुमतिं प्राप्य कृष्णोऽपि कस्यचिद् गृहम् ॥ ५० ॥
वैष्णवस्य कुविन्दस्य तस्मिन् न्यस्तधनस्य च । सानन्दो नन्दसहितो बलदेवादिभिर्युतः
स भक्तः पूजयामास प्रणम्य श्रीनिकेतनम् । तस्मै ददौ स्वदास्यञ्च ब्रह्मादिदेवदुर्लभम्
पर्य्यङ्के सुषुपुः सर्वे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम् ।
निद्राञ्च लेभे सा कुब्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा ॥ ५३ ॥
गत्वा ददर्श कुब्जां तां रत्नतल्पे च निद्रिताम् । दासीगणैः परिवृतां सुन्दरीं कमलामिव
बोधयामास तां कृष्णो न दासीश्चापि निद्रिताः ।
तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथप्रियां सतीम् ॥ ५५ ॥
श्रीभगवानुवाच ।
त्यज निद्रां महाभागे श्रृङ्गारं देहि सुन्दरि । पुरा शूर्पणखा त्वञ्च भगिनी रावणस्य च॥
तपःप्रभावान्मां कान्तं भज श्रीकृष्णजन्मनि ।
रामजन्मनि मद्धेतोस्त्वया कान्ते तपःकृतम् ॥ ५७ ॥
अधुना सुखसम्भोगं कृत्वा गच्छ ममालयम् । सुदुर्लभञ्चगोलोकं जरामृत्युहरं परम्
इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च कृत्वा तामेव वक्षसि ।
नग्नां चकार श्रृङ्गारं चुम्बनञ्चापि कामुकीम् ॥ ५९ ॥
सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नवसङ्गमलज्जिता । चुचुम्ब गण्डे क्रोडे तां चकारकमलां यथा

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद ॥ ६१ ॥
स्तनश्रोणियुगं तस्या विक्षतञ्च चकार ह । भगवान् नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरं वरम् ॥६२॥
निशावसानसमये वीर्य्याधानं चकार सः । सुखसम्भोगभोगेन मूर्च्छामाप च सुन्दरी

तत्राजगाम तां तन्द्रा कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम् ।
बुबुधे न दिवारात्रं स्वर्गं मर्त्यं जलं स्थलम् ॥ ६४ ॥

सुप्रभाता च रजनी बभूव रजनीपतिः । पत्युर्व्यतिक्रमेणैव लज्जयैव मलीमसः ॥ ६५ ॥
अथाजगाम गोलोकात् रथो रत्नविनिर्मितः । जगाम तेन तं लोकं धृत्वा दिव्यकलेवरम्
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । प्रतप्तकाञ्चनाभासं नित्यं जन्मादिवर्जितम् ॥६७
सा बभूव च तत्रैवगोपी चन्द्रमुखी मुने । गोप्यः कतिविधास्तस्या बभूवुः परिचारिकाः
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् । जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दनः
अथ कंसो निशायाञ्च निद्रायां भयविह्वलः । ददर्श दुःखदुःस्वप्नमात्मनो मृत्युसूचकम् ॥
ददर्श सूर्य्यं भूमिस्थं चतुःखडं नभश्च्युतम् । दशखण्डं चन्द्रबिम्बं भूमिस्थं खाच्च्युतंमुने

पुरुषान् विकृताकारान् रज्जुहस्तान् दिगम्बरान् ।
विधवां शूद्रपत्नीञ्च नग्नाञ्च छिन्ननासिकाम् ॥ ७२ ॥

हसन्तीं चूर्णतिलकां श्वेतकृष्णोच्चमूर्द्धजाम् । खड्गखर्परहस्ताञ्च लोलजिह्वाञ्च बिभ्रतीम्
मुण्डमालासमायुक्तां गर्दभं महिषं वृषम् । शूकरं भल्लुकं काकं गृध्रं कङ्कञ्च वानरम् ॥
विरजं कुक्कुरं नक्रं शृगालं भस्मपुञ्जकम् । अस्थिराशिं तालफलं केशं कार्पासमुल्वणम्

निर्वाणाङ्गारमुल्काञ्च शवं मर्त्यं चिताश्रितम् ।
कुलालतैलकाराणां चक्रं वक्रं कपर्दकम् ॥ ७६ ॥

श्मशानं दग्धकाष्ठञ्च शुष्ककाष्ठं कुशं तृणम् । गच्छन्तञ्च कबन्धञ्च नदन्तं मृतमस्तकम्
दग्धस्थानं भस्मयुतं तड़ागं जलवर्जितम् । दग्धमत्स्यञ्च लोहञ्च निर्वाणदग्धकाननम् ॥
गलत्कुष्ठञ्च वृषलं नग्नञ्च मुक्तमूर्द्धजम् । अतीवरुष्टं विप्रञ्च शपन्तं गुरुमीदृशम् ।

अतीवरुष्टं भिक्षुञ्च योगिनं वैष्णवं नरम् ॥ ७९ ॥

एवं दृष्ट्वा समुत्थाय कथयामास मातरम् । पितरं भ्रातरं पत्नीं रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् ॥

मञ्चकान् कारयामास स्थापयामास हस्तिनम्
मल्लं सैन्यञ्च योद्धारं कारयामास मङ्गलम् ॥ ८१ ॥
सभाञ्च कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम् । यत्नेन योजयामास योगेयुक्तंपुरोहितम्
उवास मञ्चके रम्ये धृत्वा खड्गं विलक्षणम् । रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम्
वासयामास राजेन्द्रान् ब्राह्मणांश्च मुनीश्वरान् ।
ब्राह्मणांश्च सुहृद्वर्गान् धर्मिष्ठान् रणकोविदान् ॥ ८४॥
अथाजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद । महेशस्य धनुर्मध्यं वभञ्ज तत्र लीलया ॥८५॥
शब्देन तस्य मथुरा,वधिरा च वभूव ह ॥ ८६ ॥
विषादं प्राप कंसश्च मुदञ्च देवकीसुतः । उपस्थितः सभामध्ये गजमल्लं निहत्य च॥
योगी ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम् । यथा हृत्पद्ममध्यस्थं तादृशं वहिरेव च ॥८८
राजेन्द्ररूपं राजानः शास्तारं दण्डधारिणम् ।
पिता माता दुग्धमुखं स्तनान्धं बालकं यथा ॥ ८९ ॥
कामिन्यः कोटिकन्दर्पलीलालावण्यधारिणम् । कंसश्चकालपुरुषं वैरिणं तस्यबान्धवाः
मल्ला मृत्युपदञ्चैव प्राणतुल्यञ्च यादवाः ॥ ९० ॥
नमस्कृत्य मुनीन् विप्रान् पितरं मातरं गुरुम् । जगाम मञ्चकास्यासं हस्तेकृत्वासुदर्शनम्
दृष्ट्वा भक्तं भक्तवन्धुः कृपया च कृपानिधिः ।
आकृष्य मञ्चकात् कंसं जघान लीलया मुने ॥ ९२ ॥
राजा ददर्श विश्वञ्च सर्वं कृष्णमयं परम् । पुरतो रत्नयानञ्च हीराहारविभूषितम् ॥९३॥
ययौ विष्णुपदं स्फीतो दिव्यरूपं विधाय च । तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने
निर्वृत्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । ददौ राज्यं राजच्छत्रमुग्रसेनाय श्रीमते
स बभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः । विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता ॥ ९६॥
बान्धवा मातृवर्गश्च भगिनी भ्रातृकामिनी । दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने॥९७॥
राज्यं रक्ष धनं रक्ष वान्धवं बलमेव च ।
क यासि वान्धवान् हित्वा त्वमनाथान् महावल ॥ ९८ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च। सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया॥
ब्रह्मेशशेषधर्म्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः। मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम्॥
वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती।
स्तौति यं प्रकृतिर्द्दृष्टा प्राकृतं प्रकृतेः परम्॥ १०१॥
स्वेच्छामयं निरीहञ्च निर्गुणञ्च निरञ्जनम्। परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥१०२॥
नित्यं ज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम्। नित्यानन्दञ्चनित्यञ्च नित्यमक्षरविग्रहम्
सोऽवतीर्णो हि भगवान् भारावतरणाय च। गोपालबालवेशश्च मायेशो मायया प्रभुः
स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्।
स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥ १०५॥
इत्येवमुक्त्वा सर्वश्च विरराम महामुने। ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददौ॥
भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम्। छित्वा च लोहनिगड़ं तयोर्मोक्षञ्चकारसः
ननाम दण्डवद्भूमौ मातरं पितरं तथा। तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥

श्रीभगवानुवाच।

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च। यो न पुष्णाति पुरुषो यावज्जीवञ्च सोऽशुचिः
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः। पितुःशतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात्
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी। नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषांजगतीतले
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरोगुरुः। न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्चवेदतः
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च।
माता चकार तौ क्रोड़े पिता च सादरं मुने॥ ११३॥
मिष्टान्नं परमं तौ च भोजयामास सादरम्। नन्दञ्च भोजयामास गोपालान्परमादरम्
मङ्गलं कारयामास भोजयामासब्राह्मणान्। वसुर्वसुसमूहञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कंसवधवसुदेवदेवकीमोक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः।

———

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

नन्दाय ज्ञानकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथकृष्णञ्च सानन्दं नन्दं तं पितरंबलः। बोधयामासशोकार्तं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः
उच्चैरुदन्तं निश्चेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम् । गत्वा तस्मै मुनिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ । ज्ञानं गृहाण मद्दत्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
यद्यद्दत्तञ्च शेषाय गणेशायेश्वराय च । दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥४॥

कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित् कुतः ।
आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृतकर्मणा ॥ ५ ॥
कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः ।
कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपस्त्रियाम् ॥ ६ ॥

द्विजपत्न्यांक्षत्रियायां वैश्यायांशूद्रयोनिषु । तिर्यग्योनिषुकश्चिच्च कश्चित्पश्वादियोनिषु
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च । देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च

प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः ।
नित्यं भवति मूढ़श्च न च विद्वान् शुचा युतः ॥ ९ ॥

मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः । मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतःशुचिः
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः । भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु । बिभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च
निराधारश्च वायुश्च वाय्वाधारश्च कच्छपः । शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधाराश्च पर्वताः

तदाधाराश्च पातालाः सप्त एव हि पङ्क्तितः ।
निश्चलञ्च जलं तस्माज्जलस्था च वसुन्धरा ॥ १४ ॥

सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ग्रहाश्रयम् । निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः परोवरः
तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
ऊर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः ॥ १६ ॥
सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः । लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः ॥ १७॥
वेष्टितो रत्नशैलेन शतश्रृङ्गेणचारुणा । योजनायुतमानञ्च यस्यैकं श्रृङ्गमुज्ज्वलम् ॥
शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च ।
दैर्घ्यं तस्य शतगुणं प्रस्थञ्च लक्षयोजनम् ॥ १६ ॥
योजनायुतविस्तीर्णस्तत्रैव रासमण्डलः । अमूल्यरत्ननिर्माणो वर्तुलश्चन्द्रबिम्बवत् ॥
पारिजातवनेनैव पुष्पितेन च वेष्टितः । कल्पवृक्षसहस्रेण पुष्पोद्यानशतेन च ॥ २१ ॥
नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा ।
त्रिकोटिरत्नभवनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः ॥ २२ ॥
रत्नप्रदीपयुक्तश्च रत्नतल्पसमन्वितः । नानाभोगसमायुक्तो मधुवापीशतैर्वृतः ॥ २३ ॥
पीयूषवापीयुक्तश्च कामभोगसमन्वितः । गोलोकगृहसंख्यानवर्णने वा विशारदः ॥२४॥
न कोऽपि वेद विद्वान् वा वेदविद्वान् व्रजेश्वरः ।
अमूल्यरत्ननिर्माणभवनानां त्रिकोटिभिः ॥ २५ ॥
शोभितंसुन्दरं रम्यंराधाशिविरमुत्तमम् । अमूल्यरत्नस्तम्भानां राजिभिश्चविराजितम्
नानाचित्रविचित्रैश्च चित्रितं श्वेतचामरैः ॥ २७ ॥
माणिक्यमुक्तासंसक्तं हीराहारसमन्वितम् । रत्नप्रदीपसंसक्तं रत्नसोपानसुन्दरम्॥२८॥
अमूल्यरत्नपात्रैश्च तल्पराजिविराजितम् । अमूल्यरत्नचित्रैश्च त्रिभिश्चित्रविचित्रितैः
तिसृभिः परिखाभिश्च त्रिभिर्द्वारैश्च दुर्गमैः । युक्तं षोड़शकक्षाभिः प्रतिद्वारेषुवान्तरम्
गोपीषोड़शलक्षैश्च सन्नियुक्तैरितस्ततः । वह्निशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः ॥३१॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभैः शतचन्द्रसमन्वितैः । राधिकाकिङ्करैर्वर्गैर्युक्तमभ्यन्तरं वरम् ॥ ३२॥
अमूल्यरत्ननिर्माणप्राङ्गणं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्नस्तम्भानां समूहैश्चसुशोभितम् ॥३३
रत्नमङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः । संयुतं रत्नवेदीभिर्युक्तायुक्ताभिरीप्सितम् ॥३४॥

अमूल्यरत्नमुकुरैः शोभितं सुन्दरैरहो । अमूल्यरत्ननिर्माणं भवनानां वरं गृहम् ॥ ३५॥

रत्नसिंहासनस्था च गोपीलक्षैश्च सेविता ।
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या श्वेतचम्पकसन्निभा ॥ ३६ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणैश्च विभूषिता । अमूल्यरत्नवसना बिभ्रती रत्नदर्पणम् ॥ ३७

रत्नपद्मञ्च रुचिरं सव्यदक्षिणहस्ततः । दाड़िम्बकुसुमाकारं सिन्दूरं सुमनोहरम् ॥ ३८

सुशोभितं मृगमदै रिष्टैश्चन्दनबिन्दुभिः । दधतीकवरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥

रचितं वामभागेन मुनीन्द्राणां मनोहरम् ।
एवम्भूतं तत्र राधा गोपीभिः परिसेविता ॥ ४० ॥

श्वेतचामरहस्ताभिस्तत्तुल्याभिश्च सर्वतः । अमूल्यरत्ननिर्माणैर्भूषिताभिश्च भूषणैः ॥

मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा वरा । सुदाम्नः सा च शापेन वृषभानसुताऽधुना ॥

शताब्दिको हि विच्छेदो भविष्यति मया सह ।
तेन भारावतरणं करिष्यामि भुवःपिता ॥ ४३ ॥

तदा यास्यामि गोलोकं तया सार्द्धं सुनिश्चितम् ।
त्वया यशोदया चापि गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ ४४ ॥

वृषभानेनतत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः । एवं च नन्दं सानन्दंयशोदां कथयिष्यति

त्यज शोकं महाभाग व्रजैःसार्द्धं व्रजं व्रज । अहमात्माचसाक्षीच निर्लिप्तः सर्वजीविषु

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्वसम्मतम् ।
प्रकृतिर्मद्विकारा च साप्यहं प्रकृतिः स्वयम् ॥४७ ॥

यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च । यथा जले तथाशैत्यं यथा वह्नौ च दाहिका

यथाऽऽकाशे तथा शब्दो भूमौ गन्धोयथा नृप । यथाशोभा च चन्द्रेच यथादिनकरे प्रभा

यथा जीवस्तथात्मानं तथैव राधया सह ।
त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम् ॥५०॥

अहं सर्वस्य प्रभवः साच प्रकृतिरीश्वरी । श्रूयतां नन्द सानन्दं मद्विभूतिंसुखावहाम् ॥

पुरा या कथिता तातब्रह्मणे ऽव्यक्तजन्मने । कृष्णोऽहं देवतानाञ्च गोलोके द्विभुजः स्वयम

चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठेशिवलोके शिवः स्वयम् । ब्रह्मलोकेच ब्रह्माऽहं सूर्य्यस्तेजस्विनामहम्
पवित्राणामहं वह्निर्जलमेव द्रवेषु च । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम् ॥

यमोऽहं दण्डकर्तॄणां कालः कलयतामहम् ।
अक्षराणामकारोऽस्मि साम्नाञ्च साम एव च ॥५५॥

इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रेषु कुबेरो धनिनामहम् । ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा ॥
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाश्रमेषु च । धनानाञ्च रत्नमहममूल्यं सर्वदुर्लभम् ॥

तैजसानां सुवर्णोऽहं मणीनां कौस्तुभः स्वयम् ।
शालग्रामस्तथार्च्यानां पत्राणां तुलसीति च ॥ ५८ ॥
पुष्पाणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम् ।
वैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः ५९ ॥
सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम् ।
राजेन्द्राणाञ्च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी ॥ ६० ॥

मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः । वारेष्वादित्यवारोऽहंतिथिष्वेकादशीतिच
सहिष्णूनाञ्च पृथिवी माताहं बान्धवेषु च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां गव्येष्वाज्यमहं तथा
कल्पवृक्षश्च वृक्षाणां सुरभी कामधेनुषु । गङ्गाऽहं सरितां मध्ये कृतपापविनाशिनी ॥

वाणीति पण्डितानाञ्च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ।
विद्यासु वीजरूपोऽहं शस्यानां धान्यमेव च ॥ ६४ ॥

अश्वत्थः फलिनामेव गुरूणां मन्त्रदः स्वयम् । कश्यपश्च प्रजेशानां गरुड़ःपक्षिणां तथा
अनन्तोऽहञ्च नागानां नराणाञ्च नराधिपः। ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं देवर्षीणाञ्च नारदः ॥६६॥

राजर्षीणाञ्च जनको महर्षीणां शुकस्तथा ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ ६७ ॥

वृहस्पतिर्बुद्धिमतां कवीनां शुक्र एव च । ग्रहाणाञ्च शनिरहं विश्वकर्मा च शिल्पिनाम् ॥
मृगाणाञ्च मृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिववाहनम्। ऐरावतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम्
वेदाश्च सर्वशास्त्राणां वरुणो यादसामहम् । उर्वश्यप्सरसामेव समुद्राणां जलार्णवः ॥

सुमेरुः पर्वतानाञ्च रत्नवत्सु हिमालयः । दुर्गा च प्रकृतीनाञ्च देवीनां कमलालया ॥

शतरूपा च नारीणां मत्प्रियाणाञ्च राधिका ।
साध्वीनामपि सावित्री वेदमाता च निश्चितम् ॥ ७२ ॥

प्रह्लादश्चापि दैत्यानां वलिष्ठानां वलिः स्वयम् । नारायणर्षिर्भगवान् ज्ञानिनांमध्यएव च
हनूमान् वानराणाञ्च पाण्डवानां धनञ्जयः । मनसा नागकन्यानां वसूनां द्रोण एव च
द्रोणो जलधराणाञ्च वर्षाणां भारतं तथा । कामिनां कामदेवोऽहं रम्भा च कामुकीषुच
गोलोकश्चास्मि लोकानामुत्तमः सर्वतः परः । मातृकासु शान्तिरहं रतिश्च सुन्दरीषु च

धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये सन्ध्या च वासरेषु च ।
देवेष्वहञ्च माहेन्द्रो राक्षसेषु विभीषणः ॥ ७७ ॥

कालाग्निरुद्रो रुद्राणां संहारो भैरवेषु च । शंखेषु पाञ्चजन्योऽहं अङ्गेष्वपि च मस्तकः

परं पुराणसूत्रेषु चाहं भागवतं वरम् ।
भारतं चेतिहासेषु पञ्चरात्रेषु कापिलम् ॥ ७९ ॥

स्वायम्भुवो मनूनाञ्च मुनीनां व्यासदेवकः । स्वधाऽहं पितृपत्नीषु स्वाहा वह्निप्रियासुच
यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपत्नीषु दक्षिणा । शस्त्रास्त्रज्ञेषु रामोऽहं जमदग्निसुतो महान्
पौराणिकेषु सूतोऽहं नीतिवत्स्वङ्गिरा मुनिः । विष्णुव्रतं व्रतानाञ्च वलानां दैवमेव च ।
औषधीनामहं दूर्वा तृणानां कुशमेव च । धर्मकर्मसु सत्यञ्च स्नेहपात्रेषु पुत्रकः ॥८३॥
अहं व्याधिश्च शत्रूणांज्वरो व्याधिष्वहं तथा । मद्भक्तिष्वपि मद्दास्यं वरेषुच वरःस्मृतः

आश्रमाणां गृहस्थोऽहं सन्न्यासी च विवेकिनाम् ।
सुदर्शनञ्च शस्त्राणां कुशलञ्च शुभाशिषाम् ॥ ८५ ॥

ऐश्वर्याणां महाज्ञानं वैराग्यञ्च सुखेष्वहम् । मिष्टवाक्यं प्रीतिदेषु दानेषु चात्मदानकम्
सञ्चयेषु धर्मकर्म कर्मणाञ्च मदर्चनम् । कठोरेषु तपश्चाहं फलेषु मोक्ष एव च ॥८७॥
अष्टसिद्धिषु प्राकाम्यमहं काशी पुरीषु च । नगरेषु तथा काञ्ची स देशो यत्र वैष्णवः
सर्वाधारेषु स्थूलेषु अहमेव महान्विराट् । परमाणुरहं विश्वे महासूक्ष्मेषु नित्यशः ॥८९
वैद्यानामश्विनीपुत्रो चोषधीषु रसायनः । धन्वन्तरिर्मन्त्रविदां विषादः क्षयकारिणाम्

रागाणां मेघमल्लारः कामोदस्तत्प्रियासु च ।
मत्पार्षदेषु श्रीदामा मद्बन्धुष्वहमुद्धवः ॥ ९१ ॥
पशुजन्तुषु गौश्चाहं चन्दनं काननेषु । तीर्थभूतश्च पूतेषु निःशङ्केषु च वैष्णवः ॥९२॥
न वैष्णवात् परः प्राणी मन्मन्त्रोपासकश्च यः । वृक्षेष्वङ्कुररूपोऽहमाकारः सर्ववस्तुषु
अहं च सर्वभूतेषु मयि सर्वे च सन्ततम् । यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चाङ्कुरस्तरोः ॥
सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारणे परम् । सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणकारणम्
सर्वेषां सर्वबीजानां प्रवदन्ति मनीषिणः । मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापिनः ॥
पापग्रस्तेन दुर्बुद्ध्या विधिना वञ्चितेन च ।
स्वात्माहं सर्वजन्तूनां स्वात्माहं नादृतः स्वयम् ॥ ९७
यत्राहं शक्तयस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा । गते मयि तथा यान्ति नरदेहे यथानुगाः ॥
हे व्रजेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा व्रजं व्रज । कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानमेव च
ज्ञात्वा ज्ञानं व्रजेशश्च जगाम स्वानुगैः सह । गत्वा च कथयामास ते द्वे च योषितांवरे
ते च सर्वे जहुः शोकं महाज्ञानेन नारद । कृष्णो यद्यपि निर्लिप्तो मायेशो मायया रतः
यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम् । तुष्टाव परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम् ॥१०२॥
सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन ब्रह्मणा पुरा ।
पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा रुरोद च पुनः पुनः ॥ १०३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
नन्दादिशोकप्रमोचनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भगवन्नन्दसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः । परमात्मा च परमो भक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥

भुवो भारावतरणे निर्गुणः प्रकृतेः परः। परात्परस्तु भगवान् ब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥२॥
तुष्टो नन्दस्तवं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः। आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहज्वरकातरम्

श्रीभगवानुवाच।

गच्छ नन्द व्रजं नन्द त्यज शोकं भ्रमं भुवि। शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकग्रन्थिनिकृन्तनम्
वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पञ्चकम्। उक्तः श्रुतिगणैरेतैःपञ्चभूतैश्च नित्यशः
सर्वेषांदेहिनां तात देहश्चपाञ्चभौतिकः। मिथ्याभ्रमः कृत्रिमश्च स्वप्नवन्माययान्वितः
देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पञ्चभूतानि नित्यशः। मायासङ्केतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम्॥

को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा।
कर्मणा भ्रमणं शश्वत् सर्वेषां भुवि जन्मनि ॥ ८ ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते॥

केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे।
केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥ १० ॥

अतिनीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विट्सु च। पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु
पुनः पुनर्भ्रमन्त्येव सर्वे तात स्वकर्मणा। करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। पंचविंशत्सहस्राणां युगान्ते निधनं मनोः॥
मनोःसमंमहेन्द्रस्य परमायुर्विनिर्मितम्। चतुर्दशेन्द्रविच्छित्तौ ब्रह्मणो दिनमुच्यते॥

एवं परिमिता रात्रिः कालविद्भिर्विनिर्मिता।
एवं परिमिता मासा वर्षञ्च परिनिश्चितम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायुर्विनिर्मितम्। निमेषमात्रं कालोऽयं ब्रह्मणो निधने मम॥१६॥

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं विश्वे विनिश्चितम्।
सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ १७ ॥
मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देहं त्यक्त्वा धरासु च।
यास्यत्येव हि गोलोकं छित्त्वा कर्म पुरातनम् ॥ १८ ॥
असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम्।

गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ १६ ॥
न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । नित्यं सुदर्शनं तांश्च परिरक्षति सर्वतः ॥
भक्तो हि बलवान् भक्तश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः ।
अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः ॥ २१ ॥
पुत्रबुद्धिं परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम् । छित्त्वा च कर्मनिगडं गोलोकं तद् व्रजस्वयम्
कथयस्व यशोदाञ्च गोपीं गोपगणं व्रज । तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं व्रज
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च संसदि । पप्रच्छ पुनरेवं तं नन्दश्चानन्दसंप्लुतः ॥

नन्द उवाच ।

वद सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामि त्वत्पदम् । मूढोऽहं परमानन्द श्रुतीनां जनकोभवान्
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञो भगवान् स्वयम् । आह्निकं कथयामास श्रुतिभिर्नश्रुतं हियत्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

आह्निकवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानञ्च परमाद्भुतम् । सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥१॥
न विश्वासो हि नारीषु सन्ततं कुलटासु च । मोक्षमार्गार्गलास्वेव भ्रमयामासुभूमिषु ॥
हरिभक्तेरसाध्वीनां विरुद्धासु युतासु च । बीजरूपासु नाशानां प्रमदासु व्रजेश्वर ॥३॥
नित्यञ्च प्रातरुत्थाय रात्रिवासो विहाय च । अभीष्टदेवं हृत्पद्मे ब्रह्मे रन्ध्रे गुरुंपरम् ॥
विचिन्त्य मनसा प्रातःकृत्यं कृत्वा सुनिश्चितम् ।
स्नानं करोति सुप्राज्ञो निर्मलेषु जलेषु च ॥ ५ ॥

न सङ्कल्पञ्च कुरुते भक्तः कर्मनिकृन्तनः । स्नात्वा हरिं स्मरेत् सन्ध्यां कृत्वा यातिगृहंप्रति
प्रक्षाल्य पादौ प्रविशेन्निधाय धौतवाससी । पूजयेत् परमात्मानं मामेव मुक्तिकारणम्
शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां जलेऽपि च । तथा च विप्रे गवि च गुरुष्वेवाविशेषतः
घटेऽष्टदलपद्मे च पात्रे चन्दननिर्मिते । आवाहनञ्च सर्वत्र शालग्रामे जले न च ॥ ६ ॥

मन्त्रानुरूपध्यानेन ध्यात्वा मां पूजयेद् व्रती ।
षोड़शोपचारद्रव्याणि दद्यान्मूलेन भक्तितः ॥ १०

श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च । वीरभानुं शूरभानुं गोपान् पञ्च प्रपूजयेत् ॥११॥
सुनन्दनन्दकुमुदं पार्षदं मे सुदर्शनम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां राधां गङ्गां वसुन्धराम्

गुरुञ्च तुलसीं शम्भुं कार्तिकेयं विनायकम् ।
नवग्रहांश्च दिक्पालान् परितः पूजयेत् सुधीः ॥ १३ ॥

देवषट्कञ्च सम्पूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः । गणेशञ्चदिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवंशिवाम्

श्रुतौ विनिर्मितान् देवान् मोक्षदान् कर्मकृन्तनान् ।
गणेशं विघ्ननाशाय सूर्य्यं व्याधिविनाशने ॥ १५ ॥

वह्निप्राप्तिनिमित्तेन शान्तौ शुद्धौ भवेद्ध्रुवम् । विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानायशङ्करम्
बुद्धिमुक्तिनिमित्तेन पार्वतीं पूजयेत्सुधीः । पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वस्तोत्रं कवचं पठेत्
गुरुंप्रणम्य संपूज्य तत्पश्चात् प्रणमेत्सुरम् । कृत्वाह्निकञ्च संपूज्य यथासुखमुदीरितम्

समाचरेत् स्वकर्मैतत् वेदोक्तं स्वात्मशुद्धये ।
विष्ठां न पश्येत् प्राज्ञश्च व्याधिबीजस्वरूपिणीम् ॥ १६ ॥

मूत्रञ्चव्याधिवीजञ्च परं नरककारणम् । लिङ्गयोनिं पापदुःखव्याधिदारिद्र्यदायिनीम्
उरोमुखं स्तनं स्त्रीणां कटाक्षं हास्यमेव च । विनाशवीजं रूपञ्च विपदां कारणं सदा
दिवाभोगञ्चस्वस्त्रीणांस्वलोपंपरिवर्जयेत् । रोगाणांकारणञ्चैवचक्षुषोःकर्णयोस्तथा
एकतारञ्चगगनं न पश्येत्तुरुजां भयात् । देवान्दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा सप्तधा नारदंजपेत् ॥

अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ।
खड्गं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ॥ २४ ॥

जलस्थश्च रविं चन्द्रं दृष्ट्वा शोकं लभेन्नरः। बन्धुविच्छेदहेतुश्च न पश्येत् परमैथुनम् ॥
एकत्र शयनस्थानं भोजनञ्च गतिं तथा।
न कुर्यात् पापिना सार्द्धं सर्वं नाशस्य लक्षणम् ॥ २६ ॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शाच्छयनाश्रयभोजनात्। सञ्चरन्तिध्रुवं पापास्तैलबिन्दुरिवाम्भसा
हिंस्रजन्तुसमीपञ्च न गच्छेद्दुःखकारणम्। खलेनसार्द्धंमिलनं न कुर्याच्छोककारणम्
ब्राह्मणानां गवाञ्चैव वैष्णवानां विशेषतः।
न कुर्याद्धिंसनं हानिं सर्वनाशस्य कारणम् ॥ २९ ॥
देवदेवलविप्राणां वैष्णवानां तथैव च। वित्तं धनञ्च न हरेत् सर्वनाशस्य कारणम् ॥
स्वदत्तं परदत्तं वा ब्रह्मवित्तं हरेत्तु यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥३१॥
गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः। श्वापदः शतजन्मानि गण्डकः सप्तजन्मनि ॥
घोटकः सप्तजन्मानि कुम्भीरः पञ्चजन्मसु। पुंश्चलीनां योनिकीटं शतजन्मसु निश्चितम्
ब्रह्मकीटश्च तेषाञ्च शतजन्मसु नारद।
गोधिका सप्तजन्मानि गर्दभः सप्तजन्मसु ॥ ३४ ॥
सप्तजन्मसु मार्जारो नकुलस्त्रिषु जन्मसु। उच्चैःश्रवा जन्मशतं खरश्चापि तथैव च ॥
क्रूरसर्पश्च शार्दूलो महिषः सप्तजन्मसु। भेकश्च शतजन्मानि छागलः सप्तजन्मसु ॥
भल्लूकः शतजन्मानि शृगालो लक्षजन्मसु। ततो जलौका भवति ब्रह्मस्वहरणाद्ध्रुवम्
कुम्भीपाके च पच्यन्ते पापिनो ब्रह्मणः शतम्।
दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालञ्चेन्न दीयते ॥ ३८ ॥
एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्। मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् ॥
संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत्। दात्रा न दीयते मूर्खो गृहीता च न याचते
उभौ तौ नरकं यातौ दाता व्याधियुतो भवेत् ॥ ४० ॥
विप्राणां हिंसनं कृत्वा वंशहानिं लभेद् ध्रुवम्।
धनं लक्ष्मीं परित्यज्य भिक्षुकश्च भवेद् व्रजन् ॥ ४१ ॥
देवञ्च ब्राह्मणं दृष्ट्वा न नमेद्यो लभेच्छ्रुचम्। न कुर्याद् गुरुभक्तिं योलभते रौरवंशुचम्

या स्त्री मूढ़ा दुराचारा स्वपतिं हरिरूपिणम् ।
न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
वाक्तर्जनाद्भवेत् काको हिंसनात् शूकरो भवेत् । सर्पो भवति कोपेन दर्पेण गर्दभो भवेत्
कुक्कुरी च कुवाक्येनाप्यन्धश्च विषदर्शनात् ॥ ४५ ॥
पतिव्रता च वैकुण्ठं पत्या सह व्रजेद् ध्रुवम् ।
शिवं दुर्गां गणपतिं सूर्य्यं विप्रञ्च वैष्णवम् ॥ ४६ ॥
विष्णुं निन्दति यो मूढ़ो स महारौरवं व्रजेत् ।
पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुरुं तथा ॥ ४७ ॥
अनाथां भगिनीं कन्यां विनिन्द्य नरकं व्रजेत् ।
विप्रभक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः ॥ ४८ ॥
हरिभक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम् । पतिभक्तिविहीनाश्च युवत्यश्च नराधमाः ॥
शालग्रामजलं विष्णुप्रसादं ये च भुञ्जते । तीर्थं पुनन्ति ते विप्राः शतं पुंसां वसुन्धराम्
पितृदेवान् समभ्यर्च्य खादन् मांसं द्विजः शुचिः। यो भक्षति वृथामांसं स महारौरवंव्रजेत्
मत्स्यांश्च कामतो दग्ध्वा चोपवासं वसेद् द्विजः ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्य्याद् व्रतं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ५२ ॥
सोऽशुचिः सततं नन्द हन्ति पुण्यं पुराकृतम् । कामतोब्राह्मणो मत्स्यंभुंक्ते योऽज्ञानदुर्दैवा
विष्णोरुच्छिष्टभोजी यो मत्स्यं मांसेन खादति ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ५४ ॥
एकादशीं ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात् पापान् मुच्यतेनात्र संशयः
यद् बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके यच्च यौवने । भस्मीभूतानि कुर्वन्ति पातकानिकृतानि
एकादशीदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीव्रते । त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपिभुङ्क्तेन संशयः
आतुरे नियमो न स्यादतिवृद्धे च बालके । भक्तस्य द्विगुणंदत्त्वा ब्राह्मणायशुचिर्भवे
यो भुङ्क्ते शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने । उपवासे समर्थश्च स महारौरवं व्रजेत्
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च । नरश्चाण्डालयोनिः स्यात् स्त्रीतैलमांससेवनात्

मत्स्यं मांसं मसूरञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम्। आर्द्रकं रक्तशाकञ्च रवौ च परिवर्जयेत्।

अन्यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः ॥ ६१ ॥

रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मन्दिरान्नं व्रजेश्वर।

यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो दैवात् विट्भोजी स भवेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

यद्यहा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्। स भवेदशुचिर्नित्यं भस्मान्तं तस्य सूतकम्

नारी वेश्या प्रविज्ञेया चतुष्पुरुषगामिनी। पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत् ॥

यद् ग्रामयाजिनामन्नं शूद्रश्राद्धान्नभोजनम्। भुक्त्वा च नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ

शूद्राणां श्राद्धदिवसे तदन्नं भुञ्जते द्विजाः। कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम्

यः शूद्रेणाऽप्यनुज्ञातो भुङ्क्ते श्राद्धदिनेऽन्यतः। सुरापीति स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

असिजीवी मषीजीवी देवलो वृषवाहकः। शूद्राणां शवदाही च यो हि शूद्रापतिर्द्विजः।

स शूद्रवद् बहिष्कार्य्यस्तदन्नं विट्समं सताम्।

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।

स शूद्रवद् बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ६६ ॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥

राममन्त्रविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ७० ॥

नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके।

देवान्तिके शस्यभूमौ पुरीषं नोत्सृजेद् बुधः ॥ ७१ ॥

वल्मीकमूषकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच्च न दद्याल्लेपसम्भवाम्

अन्तःप्राणिपिपिल्याश्च हलोत्खातां व्रजेश्वर।

आलवालोस्थि(त्थि)ताञ्चैव शस्यक्षेत्रोत्थितां तथा ॥ ७३ ॥

वृक्षमूलोत्थितां नन्द नदीगर्भोत्थितां तथा। परित्यजेन्मृदस्त्वेताः सकलाः शौचसाधने

कुष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान्।

सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि ॥ ७५ ॥

प्रदीपं शिवलिङ्गञ्च शालग्रामं मणिं तथा। प्रतिमां यज्ञसूत्रञ्च सुवर्णं शङ्खमेव च ॥७६॥

हीरकञ्च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम् । शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्त्वा व्रजेदधः॥
दरिद्रः कृपणः कुष्ठी वंशहीनोऽप्यभार्य्यकः । भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सितः
अन्धः पङ्गुर्वा खरश्च खञ्जश्चैवाङ्गहीनकः । भवेत् क्रमेण पापी स ह्येतान् भूमौ त्यजेत्तु यः

दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः ।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥

उदिते जगतीनाथे यः कुर्य्याद्दन्तधावनम् । स पापिष्ठः कथं ब्रूते पूजयामि जनार्दनम् ।
मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा वालुकयापि वा । कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत् कल्पशतं दिवि

सहस्रपूजनात् सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ।
लक्षञ्च पूजयेद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः । शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥
मत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः । पच्यन्ते निरये तावद्यावद्ब्रै ब्रह्मणः शतम्॥

पूजिते शिवलिङ्गे च यदि स्यात् केशवालुका ।
स महान्धो वालुकया केशेन यवनो भवेत् ॥ ८६ ॥
क्षुद्रे दरिद्रः कृपणो व्याधिः स्यात् कुत्सिते तथा ।
सर्वेभ्यो मानहानिः स्याज्जायते नीचयोनिषु ॥ ८७ ॥
सर्वेषु प्रियमात्रेषु ब्राह्मणश्च मम प्रियः ।
ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सततं वक्षसि स्थिता ॥ ८८ ॥
ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्ततोऽधिकाः ।
ततोऽधिकः शङ्करो मे नास्ति मे शङ्करात् प्रियः ॥ ८९ ॥

महादेव महादेव महादेवेति वादिनः । पश्चाद्यामि च संतृप्तो नामश्रवणलोभतः ॥९०॥

मनो मे भक्तमूले च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम् ।
आत्मा मे शङ्करस्थानां शिवः प्राणाधिकश्च यः ॥ ९१ ॥
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः ॥ ९२ ॥

यया जयति विश्वञ्च यया सृष्टिःप्रजायते। यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय सा

दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः।
तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाधिदेवता हि सा ॥ ६४ ॥
वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती।
मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा ॥ ६५ ॥
सा दुर्गा मेनका कन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी।
स्वर्गलक्ष्मीश्च दुर्गा सा शक्रादीनां गृहे गृहे ॥ ६६ ॥
सा वाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता।
वह्नौ सा दाहिका शक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करे ॥ ६७ ॥

शोभाशक्तिः पूर्णचन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता। शस्यप्रसूता शक्तिश्चधारणा च धरासु सा

ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा। तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता ॥

मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा।
मद्भक्तानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा ॥ १०० ॥

नृपाणांराज्यलक्ष्मीश्च वणिजांलभ्यरूपिणी। पारे संसारसिन्धूनां त्रयी तत्त्वावतारिणो

सत्सु सद्बुद्धिरूपा सा मेधाशक्तिस्वरूपिणी।
व्याख्याशक्तिः श्रुतौ शास्त्रे दातृशक्तिश्च दातृषु ॥ १०२ ॥

क्षत्रादीनां विप्रभक्तिः पतिभक्तिः सतीषु च। एवंरूपा च या शक्तिर्मया दत्ता शिवाय सा

एवं ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
प्रश्नं करोषि यद्यन्मां तत्सर्वं कथयामि ते ॥ १०४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।

———

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शुभाशुभदर्शनफलम् ।

श्रीनन्द उवाच ।

येषाञ्च दर्शने पुण्यं पापञ्च यस्य दर्शने । तत्सर्वं वद सर्वेश श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुब्राह्मणानां तीर्थानां वैष्णवानाञ्च दर्शने । देवताप्रतिमादर्शी तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥२
सूर्य्यस्य दर्शने भक्त्या सतीनांदर्शने तथा । सन्न्यासिनां यतीनाञ्च तथैव ब्रह्मचारिणाम्
भक्त्या गवाञ्चवह्नीनां गुरूणाञ्च विशेषतः । गजेन्द्राणाञ्च सिंहानां श्वेताश्वानां तथैवच
शुकानाञ्च पिकानाञ्च खञ्जनाञ्च तथैवच । हंसानाञ्च मयूराणां चाषाणां शङ्खपक्षिणाम्
वत्सप्रयुक्तधेनूनामश्वत्थानां तथैव च । पतिपुत्रवतीनाञ्च नराणां तीर्थयायिनाम् ॥ ६ ॥
प्रदीपानां सुवर्णानां मणीनाञ्च विशेषतः । मुक्तानां हीरकाणाञ्च माणिक्यानां महाशय
तुलसीशुक्लपुष्पाणां दर्शनं पापनाशनम् । फलानि शुक्लधान्यानि घृतं दधि मधूनि च ॥
पूर्णकुम्भञ्च लाजांश्च राजेन्द्र दर्पणं जलम् । मालाञ्च शुक्लपुष्पाणां दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥
गोरोचनञ्च कर्पूरं रजतञ्च सरोवरम् । पुष्पोद्यानं पुष्पितञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१०॥
शुक्लपक्षस्य चन्द्रञ्च पीयूषं चन्दनं तथा । कस्तूरीं कुङ्कुमं दृष्ट्वा नन्द पुण्यं लभेन्नरः ॥
पताकामक्षयवटतरुं देवोत्थितं शुभम् । देवालयं देवखातं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१२
देवाश्रितं देवघटं सुगन्धिपवनं तथा । शङ्खञ्च दुन्दुभिं दृष्ट्वा सद्यः पुण्यं लभेन्नरः ॥
शुक्तिप्रवालं रजतं स्फाटिकं कुशमूलकम् । गङ्गामृदं कुशं ताम्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः॥
पुराणपुस्तकं शुद्धं सबीजं विष्णुयन्त्रकम् । स्निग्धदूर्वाक्षतं रत्नं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः
तपस्विनां सिद्धमन्त्रं समुद्रं कृष्णसारकम् । यज्ञं महोत्सवं दृष्ट्वा स पुण्यं लभते नरः॥

गोमूत्रं गोमयं दुग्धं गोधूलिं गोष्ठगोष्पदम् ।
पक्कशस्यान्वितं क्षेत्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

रुचिरां पद्मिनीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । सुवेशकां सुवसनां दिव्यभूषणभूषिताम्
वेश्यां क्षेमकरीं गन्धं सदूर्वाक्षततण्डुलम् । सिद्धान्नं परमान्नञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

कार्तिकीपूर्णमायाञ्च राधिकाप्रतिमां शुभाम् ।
संपूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २० ॥
हिङ्गुलायां तथाष्टम्यामिषे मासि सिते शुभे ।
श्रीदुर्गाप्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥ २१ ॥
शिवरात्रौ च काश्याञ्च विश्वनाथस्य दर्शनम् ।
कृत्वोपवासं पूजाञ्च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २२ ॥
जन्माष्टमीदिने भक्तो दृष्ट्वा मां बिन्दुमाधवम् ।
प्रणम्य पूजां कृत्वाच करोति जन्मखण्डनम् ॥ २३ ॥

पौषेमासि शुक्लरात्रौ यत्रयत्र स्थलेनरः । पद्मायाः प्रतिमां दृष्ट्वा करोतिजन्मखण्डनम्
सप्तजन्म भवेत्तस्य पुत्रः पौत्रो धनेश्वरः ॥ २४ ॥
उपोष्यैकादशीं स्नात्वा प्रभाते द्वादशीदिने ।
दृष्ट्वा काश्यामन्नपूर्णां करोति जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥

चैत्रेमासि चतुर्दश्यां कामरूपेषु पुण्यदे । दृष्ट्वानत्वा भद्रकालीं करोति जन्मखण्डनम्
अयोध्यायाञ्च रामं मां श्रीरामनवमीदिने । संपूज्य नत्वादृष्ट्वाच करोति जन्मखण्डनम्
दत्त्वा विष्णुपदेपिण्डं विष्णुंयश्च प्रपूजयेत् । पितॄणांस्वात्मनश्चैव करोतिजन्मखण्डनम्
प्रयोगे मुण्डनं कृत्वा दानञ्च कुरुते यदि । उपोष्य नैमिषारण्ये करोति जन्मखण्डनम् ॥

उपोष्य पुष्करे स्नात्वा किं वा बदरिकाश्रमे ।
संपूज्य दृष्ट्वा मामेकं करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३० ॥

सिद्धिंकृत्वाच बदरीं भुङ्क्ते बदरिकाश्रमे । दृष्ट्वा मत्प्रतिमां नन्दकरोति जन्मखण्डनम्

दोलयामानं गोविन्दं पुण्ये वृन्दावने च माम् ।
दृष्ट्वा संपूज्य नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३२ ॥

भाद्रे दृष्ट्वाच मञ्चस्थं मामेवमधुसूदनम् । संपूज्य नत्वा भक्तश्च करोति जन्मखण्डनम्

रथस्थञ्च जगन्नाथंयो द्रक्ष्यतिकलौनरः। संपूज्य नत्वाभक्त्याच करोति जन्मखण्डनम्
उत्तरायणसंक्रान्त्यां प्रयागे स्नानमाचरेत्। संपूज्य नत्वामामेव करोति जन्मखण्डनम्

कार्तिकीपूर्णिमायाञ्च दृष्ट्वा मत्प्रतिमां शुभाम्।
उपोष्य कृत्वा पूजाञ्च करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३६ ॥
चन्द्रभागासमीपे च माघ्याञ्च मां नमेत् सुधीः।
राधया सह मां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३७ ॥

रामेश्वरं सेतुबन्धे आषाढ़ीपूर्णिमादिने। उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मखण्डनम्
स्वर्गविद्याधरी रात्रौ नृत्यती च मुहुर्मुहुः। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति विभीषणः॥
गायन्ति किन्नरा रात्रौ गन्धर्वाश्च मनोहरम्। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायातिच माधवः
दृष्ट्वा साक्षाद्वसन्तञ्च सर्वेशं चन्द्रशेखरम्। जीवन्मुक्तो भवेदन्ते प्रयाति हरिमन्दिरम्
दीननाथं दिनकरं कोणार्के चोत्तरायणे। उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मनःक्षयम्
कृपिकोष्टे सुवसने कलविङ्के युगन्धरे। विस्पन्दके राजकोष्ठे नन्दके पुष्पभद्रके ॥ ४३ ॥
पार्वतीप्रतिमां दृष्ट्वा कार्तिकेयं गणेश्वरम्। नन्दिनं शङ्करं दृष्ट्वा करोति जन्मनःफलम्

उपोष्य प्रतिसम्पूज्य दृष्ट्वा स्तुत्वा च तौ नतः।
पारणञ्च दधि प्राश्य करोति जन्मनः फलम् ॥ ४५ ॥
त्रिकूटे मणिभद्रे च पश्चिमोदधिसन्निधौ।
समुपोष्य दधि प्राश्य मां दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

प्रतिमासु मदीयासु पार्वतीप्रतिमासु च। जीवं संन्यस्य सम्पूज्य करोति जन्मनःक्षयम्
शिवदुर्गालयं दत्त्वा मदीयञ्च विशेषतः। शिवसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मनः क्षयम्
पुष्पोद्यानञ्च शङ्कुञ्च सेतुं खातं सरोवरम्। विप्रसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मनः फलम्

न च वेदाः पुराणानि ब्रह्मसंस्थापनं फलम्।
जानन्ति सन्तो मुनयः सुरा विप्रादयः पितः ॥ ५० ॥

गण्यन्ते पांशवो भूमौ गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः। न गण्यतेविधात्रापिविप्रसंस्थापनेफलम्
कृत्वोपजीव्यं विप्रस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। अचलां श्रियमाप्नोति परे मुक्तिचतुष्टयम्

मद्दास्यभक्तिं स लभेद्वैकुण्ठे मोदते चिरम् । न हि पातो भवेत्तस्य यथा मे परमात्मन
कुमारीमष्टवर्षीयां सुविप्राय ददाति यः । सम्पूज्य सर्वाभरणां दुर्गादानफलं लभेत् ॥
सर्वं स्वर्ग्यं समालोक्य ब्रह्मलोकेषु पूजितः । लभते मम दास्यञ्च वैकुण्ठे मोदते चिरम्
विवाहदर्शने कोटिस्वर्णदानफलं लभेत् । अन्ते स्वर्गे प्रयात्येवमिहैव निश्चलां श्रियम् ॥
यः सुविप्रमनाथञ्च दरिद्रञ्च सुपण्डितम् । दृष्ट्वा कुर्य्यात्तद्विवाहं स मोक्षं लभते ध्रुवम्

यच्छत्रपादुकादानं शालग्रामस्य योषितः ।
करोति भक्त्या पुण्याहे पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥ ५८ ॥

गजदाने च तल्लोममानवर्षं श्रुतौ श्रुतम् । चतुर्गुणं गजेन्द्रे च मोदते मम मन्दिरे ॥५९॥
गजार्द्धं श्वेततुरगे तदर्द्धञ्चेतरे पितः । गजतुल्यं कृष्णगवां दाने च तत्फलं लभेत् ॥
तत्तुल्यं धेनुदाने च अर्द्धं सामान्यगोस्तथा । लभेद्वत्सप्रसूतानां दाने दाने फलं ध्रुवः ॥

भूमिदाने रेणुमानवर्षं स्थानञ्च मत्पदे ।
ज्ञानदाने महत् पुण्यं वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ ६२ ॥

श्रियं लभेत् स्वर्णदाने राजत्वं रजतेन च । अन्नदाने फलं नाहं कथं जानामि वै श्रुतम्
लभते सर्वदानस्य फलं ब्राह्मणभोजने । अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

नात्र पात्रपरीक्षा सा न कालनियमः क्वचित् ।
अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी ॥ ६५ ॥

अन्नदानञ्च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम् । वस्त्रं ददाति विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने ॥
वस्त्रसूत्रमानवर्षं वैकुण्ठे मोदते चिरम् । सुरम्ये चन्द्रलोके च वारुणे च तथैव च ॥
कृत्वा लोहप्रदीपञ्च स्वर्णवर्तिसमन्वितम् । दत्त्वा घृतप्रदीपञ्च हरये परमात्मने ॥ ६८ ॥

अन्धकारञ्च न गृहं यमदूतं यमं तथा ।
न हि पश्यति दाता च प्रयाति मम मन्दिरम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणाय च दत्त्वैव न याति यमयातनाम् । दिव्यवर्षसहस्रञ्च मोदते शक्रमन्दिरे ॥७०॥
आसनं लभते स्वर्गे वस्तुमानानुरूपतः । उत्तमे लक्षवर्षञ्च तदर्द्धं चेतरे व्रज ॥ ७१ ॥

ताम्बूलेन लभेद्भोगं स्वर्गे वर्षशतं द्विज ॥ ७२ ॥

माल्यदाने प्रियं स्वर्गं वस्तुपात्रानुरूपतः। फलदानफलं स्वर्गं लभते नात्र संशयः॥
सामान्यशय्यादानेन स्वर्गं वर्षशतं व्रजेत्। चतुर्गुणं प्रकृष्टानां गुणलक्षं विलक्षणे॥
अनाथाय सुविप्राय यदि गेहं प्रदीयते। अत्रैव मानवर्षञ्च शक्रलोके महीयते॥ ७५॥
दृष्ट्वा बुभुक्षितं विप्रमन्नं तस्मै प्रदीयते। अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्द्धिनीम्॥७६॥
व्रजनाथ व्रजं गत्वा व्रजभूमौ व्रजाधुना। व्रज भोजय विप्रांश्च व्रज सर्वं व्रजे व्रजे॥

गोकुले गोकुले वत्स वस वत्सनिराकुले।
व्याकुलानां गोकुलानां सङ्कुले च व्रजे व्रजे॥ ७८॥

एतत्त कथितं नन्द सानन्दं पुण्यवर्द्धनम्। सुस्वप्नदर्शनं पुण्यं यदि नीचं न वक्ति च॥

काश्यपं दुर्गगं नीचं शत्रुमज्ञानिनं स्त्रियम्।
त्यक्त्वा रात्रिश्च दिवसे वक्ति विप्रं सुपण्डितम्॥ ८०॥

देवालये च देवं वाप्यश्वत्थतुलसीवटम्। उक्त्वा तद्द्विगुणं पुण्यमप्रकाश्यं चतुर्गुणम्
सुस्वप्नदर्शने प्राज्ञो गङ्गास्नानफलं लभेत्। अर्थं वित्तञ्च भार्य्याञ्च भूमिं पुत्रं लभेच्च सः

मोक्षञ्च परमैश्वर्य्यं लभते सर्ववाञ्छितम्।
इत्येवं कथितं तात किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ८३॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे शुभाशुभदर्शनफलं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सुस्वप्नदर्शनफलम्

नन्द उवाच।

केन स्वप्नेन किं पुण्यं केन मोक्षो भवेत् सुखम्।
कोऽपि कोऽपि च सुस्वप्नस्तत्सर्वं कथय प्रभो॥ १॥

श्रीभगवानुवाच ।

वेदेषु सामवेदश्च प्रशस्तः सर्वकर्मसु । तथैव काण्वशाखायां पुण्यकाण्डे मनोहरे ॥२॥
स व्यक्तो यश्च दुःस्वप्नः शश्वत् पुण्यफलप्रदः। तत्सर्वं निखिलंतात कथयामिनिशामय
स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यफलप्रदम् । स्वप्नाध्यायं नरः श्रुत्वा गङ्गास्नानफलंलभेत्
स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरफलप्रदः । द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ॥
चतुर्थे चार्द्धमासेन स्वप्नः स्वात्मफलप्रदः । दशाहे फलदः स्वप्नोऽप्यरुणोदयदर्शने ॥

प्रातःस्वप्नश्च फलदस्तत्क्षणं यदि बोधितः ।
दिने मनसि यद् दृष्टं तत्सर्वञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

चिन्ताव्याधिसमायुक्तोनरः स्वप्नञ्चपश्यति । तत्सर्वंनिष्फलं तात प्रयात्येव न संशयः
जड़ो मूत्रपुरीषेण पीड़ितश्च भयाकुलः । दिगम्बरो मुक्तकेशो न लभेत् स्वप्नजं फलम्

दृष्ट्वा स्वप्नञ्च निद्रालुर्यदि निद्रां प्रयाति च ।
विमूढ़ो वक्ति चेद्रात्रौ न लभेत् स्वप्नजं फलम् ॥ १० ॥

उक्त्वा काश्यपगोत्रञ्च विपत्तिं लभते ध्रुवम् । दुर्गतेदुर्गतिं याति नीचे व्याधिं प्रयातिच
शत्रौ भयञ्च लभते मूर्खे च कलहं लभेत् । कामिन्यां धनहानिः स्याद्रात्रौ चौरभयंभवेत्

निद्रायां लभते शोकं पण्डिते वाञ्छितं फलम् ।
न प्रकाश्यश्च स स्वप्नः पण्डितैः काश्यपे व्रज ॥ १३ ॥

गवाञ्च कुञ्जराणाञ्च हयानाञ्च व्रजेश्वर । प्रासादानाञ्च शैलानां वृक्षाणाञ्च तथैव च ॥

आरोहणञ्च धनदं भोजनं रोदनं तथा ।
प्रतिगृह्य तथा वीणां शस्याढ्यां भूमिमालभेत् ॥ १५ ॥

शस्त्रास्त्रेण यदा विद्धो व्रणेनकृमिणातथा । विष्ठयारुधिरेणैव स युक्तोऽप्यर्थवान्भवेत
स्वप्नेऽप्यगम्यगमनो भार्य्यालाभं करोति यः । मूत्रसिक्तः पिबेच्छुक्रं नरकञ्चविशत्यपि
नगरं प्रविशेद्रक्तं समुद्रं वा सुधां पिबेत् । शुभवार्तामवाप्नोति विपुलञ्चार्थमालभेत् ॥
गजं नृपं सुवर्णञ्च वृषभं धेनुमेव च । दीपमन्नं फलं पुष्पं कन्यां छत्रं रथं ध्वजम ॥

कुटुम्बं लभते दृष्ट्वा कीर्तिञ्च विपुलां श्रियम् ॥ १६ ॥

पूर्णकुम्भं द्विजं वह्निं पुष्पताम्बूलमन्दिरम्। शुक्लधान्यं नटं वेश्यां दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात्
गोक्षीरञ्च घृतं दृष्ट्वा चार्थं पुण्यधनं लभेत् ॥ २१ ॥
पायसं पद्मपत्रे च दधिदुग्धं घृतं मधु। मिष्टान्नं स्वस्तिकं भुक्त्वा ध्रुवं राजा भविष्यति
पक्षिणां मानुषाणाञ्च भुङ्क्ते मांसं नरोयदि। बह्वर्थंशुभवार्ताञ्च लभते वाञ्छितंफलम्
छत्रं वा पादुकां वापि लब्ध्वा धान्यञ्च गच्छति।
असिञ्च निर्मलं तीक्ष्णं तत्तथैव भविष्यति ॥ २५
हेलया सन्तरेद्यो हि स प्रधानो भविष्यति। दृष्ट्वा च फ[illegible] धनमाप्नोतिनिश्चितम्
सर्पेणभक्षितो यो हि अर्थलाभश्चतद्भवेत्। स्वप्नेसूर्य्यंविधुं दृष्ट्वा मुच्यतेव्याधिबन्धनात्
वडवां कुक्कुटीं दृष्ट्वा क्रौञ्चीं भार्य्यां लभेद् ध्रुवम्।
स्वप्ने यो निगडैर्बद्धः प्रतिष्ठां पुत्रमालभेत् ॥ २७ ॥
दध्यन्नं पायसं भुङ्क्ते पद्मपत्रे नदीतटे। विशीर्णपद्मपत्रेच सोऽपि राजा भविष्यति॥
जलौकसं वृश्चिकञ्च सर्पञ्च यदि पश्यति। धनं पुत्रञ्च विजयं प्रतिष्ठां वा लभेदिति॥
शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः कोलैर्वानरैः पीड़ितो यदि। निश्चितञ्च भवेद्राजा धनञ्च विपुलं लभेत्
मत्स्यं मांसं मौक्तिकञ्च शङ्खं चन्दनहीरकम्।
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते विपुलं धनमालभेत् ॥ ३१ ॥
सुराञ्च रुधिरंस्वर्णं दृष्ट्वा विष्ठां धनंलभेत्। प्रतिमां शिवलिङ्गञ्च लभेद् दृष्ट्वा जयंधनम्
फलितं पुष्पितं विल्वमाम्रं दृष्ट्वा लभेद्धनम्। दृष्ट्वा च ज्वलदग्निञ्च धनं वृद्धिं श्रियंलभेत्
आमलकं धात्रीफलमुत्पलञ्च धनागमम् ॥ ३३ ॥
देवताश्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनस्तथा। यद्ददाति मिथः स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति
शुक्लाम्बरधरा नार्यः शुक्लमाल्यानुलेपनाः।
समाश्लिष्यन्ति यं स्वप्ने तस्य श्रीः स्वप्नतः सुखम् ॥ ३५ ॥
पीताम्बरधरां नारीं पीतमाल्यानुलेपनाम्। अवगूहति यः स्वप्ने कल्याणं तस्य जायते
सर्वाणि शुक्लानि प्रशंसितानि भस्मास्थिकार्पासविवर्जितानि।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिवाजिद्विजदेववर्ज्यम् ॥ ३७ ॥

दिव्या स्त्री सस्मिता विप्रा रत्नभूषणभूषिता। यस्य मन्दिरमायाति स प्रियंलभतेध्रुवम्

स्वप्ने च ब्राह्मणो देवो ब्राह्मणी देवकन्यका।
ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापी सन्तुष्टा सस्मिता सती।
फलं ददाति यस्मै च तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ३६ ॥
यं स्वप्ने ब्राह्मणा नन्द कुर्वन्ति च शुभाशिषम्।
यद्वदन्ति भवेत्तस्य तस्यैश्वर्यं भवेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥

परितुष्टो द्विजश्रेष्ठश्चायाति यस्य मन्दिरम्। नारायणःशिवो ब्रह्मा प्रविशेत्तु तदाश्रयम्
सम्पत्तिस्तस्य भवति यशश्च विपुलं शुभम्। पदे पदे सुखं तस्य स मानं गौरवं लभेत्
अकस्माद्पि स्वप्ने तु लभते सुरभिं यदि। भूमिलाभो भवेत्तस्य भार्या चापि पतिव्रता
करेण कृत्वा हस्ती यं मस्तके स्थापयेद्यदि। राज्यलाभो भवेत्तस्यनिश्चितं च श्रुतौमतम्

स्वप्ने तु ब्राह्मणस्तुष्टः समाश्लिष्यति यं व्रज।
तीर्थस्नायी भवेत्सोऽपि निश्चितश्च श्रियान्वितः ॥ ४५ ॥
स्वप्ने ददाति पुष्पञ्च यस्मै पुण्यवते द्विजः।
जययुक्तो भवेत् सोऽपि यशस्वी च धनी सुखी ॥ ४६ ॥

स्वप्ने दृष्ट्वा च तीर्थानि सौधरत्नगृहाणि च। जययुक्तश्च धनवान् तीर्थस्नायी भवेन्नरः
स्वप्नेतु पूर्णकलशं कश्चित्कस्मै ददातिच। पुत्रलाभो भवेत्तस्य सम्पत्तिं वा समालभेत्
हस्ते कृत्वा तु कुडवमाढकं वारसुन्दरी। यस्य मन्दिरमायाति स लक्ष्मीं लभते ध्रुवम्
दिव्यास्त्री यद्गृहं गत्वा पुरीषं विसृजेद् व्रज। अर्थलाभो भवेत्तस्य दारिद्र्यञ्चप्रयातिच
यस्यगेहं समायाति ब्राह्मणो भार्ययासह। पार्वत्यासह शम्भुर्वा लक्ष्मीर्नारायणोऽथवा

ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापि स्वप्ने यस्मै ददाति च।
धान्यं पुष्पाञ्जलिं वापि तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५२ ॥

मुक्ताहारं पुष्पमाल्यं चन्दनञ्च लभेद् व्रज। स्वप्ने ददाति विप्रश्च तस्यश्रीः सर्वतोमुखी

गोरोचनं पताकां वा हरिद्रामिक्षुदण्डकम्।
सिद्धान्नञ्च लभेत् स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणीवापि ददाति यस्यमस्तके। छत्रंवा शुक्लधान्यं वा स च राजाभविष्यति
स्वप्ने रथस्थः पुरुषः शुक्लमाल्यानुलेपनः। तत्रस्थो दधि भुङ्क्तेच पायसंवा नृपोभवेत्
स्वप्ने ददाति विप्रश्च ब्राह्मणी वा सुधां दधि।
प्रशस्तपात्रं यस्मै वा सोऽपि राजा भवेद् ध्रुवम् ॥ ५७ ॥
कुमारी चाष्टवर्षीया रत्नभूषणभूषिता। यस्य तुष्टा भवेत् स्वप्ने स भवेत्कविपण्डितः॥
ददाति पुस्तकं स्वप्ने यस्मै पुण्यवते च सा।
स भवेद्विश्वविख्यातः कवीन्द्रः पण्डितेश्वरः ॥ ५९ ॥
यं पाठयति स्वप्ने वा मातेवचसुतंयथा। सरस्वतीसुतः सोऽपितत्परो नास्तिपण्डितः
ब्राह्मणः पाठयेद्यश्च पितेव यत्नपूर्वकम्। ददाति पुस्तकं प्रीत्या स च तत्सदृशो भवेत् ॥
प्राप्नोति पुस्तकं स्वप्ने पथिवा यत्रयत्र वा। सपण्डितो यशस्वीच विख्यातश्च महीतले
स्वप्ने यस्मै महामन्त्रं विप्रा विप्रो ददाति चेत्।
स भवेत् पुरुषः प्राज्ञो धनवान् गुणवान् सुधीः ॥ ६३ ॥
स्वप्ने ददाति मन्त्रं वा प्रतिमां वा शिलामयीम्।
यस्मै ददाति विप्रश्च मन्त्रसिद्धिश्च तद्भवेत् ॥ ६४ ॥
विप्रो विप्रसमूहश्च दृष्ट्वा नत्वाऽऽशिषं लभेत्।
राजेन्द्रः स भवेद्वापि किंवा च कविपण्डितः॥६५ ॥
शुक्लधान्ययुतां भूमियस्मै विप्रःसमुत्सृजेत्। स्वप्नेऽपि परितुष्टश्चस भवेत् पृथिवीपतिः
स्वप्ने विप्रो रथे कृत्वा नानास्वर्गं प्रदर्शयेत्। चिरजीवी भवेदायुर्धनवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम्
विप्रायविप्रः सन्तुष्टोयस्मै कन्यांददातिच। स्वप्नेचस भवेन्नित्यंधनाढ्यो भूपतिःस्वयम्
स्वप्ने सरोवरं दृष्ट्वा समुद्रं वा नदीं नदम्। शुक्लाहिं शुक्लशैलञ्च दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात्
यः पश्यति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीवी च।
अरोगो रोगिणं दुःखी सुखिनश्च सुखी भवेत्॥ ७० ॥
दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवानिति।
स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद् दृढम् ॥ ७१ ॥

स्वप्ने वा कालिकां दृष्ट्वा लब्ध्वा स्फटिकमालिकाम्।
इन्द्रचापं शक्रवज्रं स प्रतिष्ठां लभेद् ध्रुवम् ॥ ७२ ॥
स्वप्ने वदति यं विप्रो मम दासो भवेति च।
हरिदास्यं च मद्भक्तिं स लब्ध्वा वैष्णवो भवेत् ॥ ७३ ॥

स्वप्ने विप्रो हरिःशम्भुर्ब्राह्मणी कमलाशिवा। शुक्लाम्बरो वेदमातावा जाह्नवीवासरस्वती गोपालिकावेषधरा बालिका राधिका मम। बालश्च बालगोपालः स्वप्नविद्भिःप्रकाशितः एषते कथितो नन्द सुस्वप्नः पुण्यहेतुकः। श्रोतुमिच्छसि किंवा त्वं किं भूयःकथयामिते

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
सुस्वप्नदर्शनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम्

नन्द उवाच।

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुस्वप्नश्च श्रुतोमया। वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं तेषाञ्चदर्शने। यस्मिन् कर्मणिवा वत्सतन्मां कथितुमर्हसि वचनं वेदशास्त्रोक्तंतथा वेदानुयायिनः। श्रोतुमिच्छन्तिसन्तप्तालोकास्त्वन्मुखतस्तथा वेदानां जनकस्त्वञ्च वैदिकानां सतामपि। ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनीनां जगतामपि ॥

श्रुतं यत् त्वन्मुखाम्भोजात् प्रमाणं वचनामृतम्।
तेन देहोऽभिषिक्तो मे वत्स चिच्छेददाहन ॥ ५ ॥

स्वप्ने यच्चरणाम्भोजं सर्वकामफलप्रदम्। ब्रह्मादयो न पश्यन्ति तदद्य दृष्टिगोचरम् ॥ अतः परं त्वत्पदाब्जं क पश्यामि च पातकी। विण्मूत्रधारी देहो मे निबद्धश्चस्वकर्मणा ईदृशश्च दिनं वत्स कदा मम भविष्यति। त्वया ब्रह्मादिनाथेन संवादो मम पापिनः ॥८

कृपां कुरु कृपानाथ मम दोषं क्षमस्व च । वत्सबुद्ध्याच दुर्नीतं यत् कृतञ्च महेश्वर ॥
ब्रह्मेशशेषमुनयो ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम् । सरस्वती श्रुतिर्यस्य स्तवने जड़तां व्रजेत्
इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च निरानन्दः शुचाकुलः । मूर्च्छामाप रुदित्वा च पुत्रविच्छेदविह्वलः

सन्त्रस्तो भगवान् कृष्णो बोधयामास यत्नतः ।
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ददौ तस्मै जगत्पतिः ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर । चेतनं कुरु कल्याणज्ञानञ्च परमं शृणु ॥ १३ ॥

परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ज्ञानिनाञ्च सुदुर्लभम् ।
वेदशास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम् ॥ १४ ॥

निबोध श्रूयतां नन्द सानन्दः सुसमाहितः । जन्ममृत्युजराव्याधि यदभ्यासान्न जायते

स्थिरो भव महाराज व्रजनाथ व्रजं व्रज ।
ज्ञानं लब्ध्वा सदानन्दः शोकमोहविवर्जितः ॥ १६ ॥

जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम् । प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या मोहकारणमेव च॥१७॥
मिथ्याकृत्रिमनिर्माणहेतुश्च पाञ्चभौतिकः । मायया सत्यबुद्ध्या च प्रतीतिं जायते नरः
कामक्रोधलोभमोहैर्वेष्टितः सर्वकर्मसु । मायया मोहितः शश्वत् ज्ञानहीनश्च दुर्बलः ॥

निद्रातन्द्राक्षुत्पिपासाक्षमाश्रद्धादयादिभिः ।
लज्जा शान्तिर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चाभिश्च वेष्टितः ॥ २० ॥

मनोबुद्धिचेतनाभिः प्राणज्ञानात्मभिः सह । संसक्तः सर्वदेवैश्च यथा वृक्षश्च वायसैः ॥
अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः । मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी

प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवता ।
मयि स्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥ २३ ॥

अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पततिनिश्चितम् । पाञ्चभूतो विलीनश्च पञ्चभूतेषुतत्क्षणम्

नाम संकेतरूपञ्च निष्फलं मोहकारणम् ।
शोकश्चाज्ञानिनां तात ज्ञानिनां नास्ति किञ्चन ॥ २५ ॥

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । लोभादयोह्यधर्मांशास्तथाहङ्कारपञ्चमः ॥
ते ब्रह्मविष्णुरुद्रांशागुणाःसत्वादयस्त्रयः। ज्ञानात्मकःशिवो ज्योतिरहमात्माच निर्गुणः

यदा विशामि प्रकृतौ तदाहं सगुणः स्मृतः ।
सगुणा विषया विष्णुब्रह्मरुद्रादयस्तथा ॥ २८ ॥

धर्मोमदंशो विषयी शेषः सूर्य्यः कलानिधिः । एवंसर्वे मत्कलांशा मुनिमन्वादयःसुराः
सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लिप्तः सर्वकर्मसु । जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः॥३०॥

सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान् कीर्तिमान् पण्डितः कविः ।
चतुस्त्रिंशद्विधः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः ॥ ३१ ॥

तमुपैमिस्वयं सिद्धं भक्तस्त्वन्यन्नवाञ्छति । द्वाविंशतिविधं सिद्धं सिद्धसाधनकारणम्

मन्मुखाच्छ्रूयतां नन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च ।
अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ॥ ३३॥

ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावसायिता । दूरश्रवणमेवेति परकायप्रवेशनम् ॥ ३४ ॥
मनोयायि त्वमेवेति सर्वज्ञत्वमभीप्सितम् । वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं चिरजीवित्वमेव च
कायव्यूहञ्च वाक्सिद्धिं मृतानयनमीप्सितम् । सृष्टीनां करणञ्चैव प्राणाकर्षणमेव च

ओं सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति ।
अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः ।
सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥ ३७ ॥

अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा । शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम् ॥

यदि नारायणक्षेत्रे हविष्यान्नरतो जपेत् ।
गत्वा कुरु जपं तात काशिकां मणिकर्णिकाम् ॥ ३६

शृणु नारायणक्षेत्रं जलाधस्तच्चतुष्टयम् । अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामीकदाचन
ज्ञानञ्चात्र मृते लोके सिद्धिर्भवति तस्य वै । व्रतं विनापि मन्त्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः
व्रजं कुरु पवित्रञ्च व्रजनाथ व्रजं व्रज । पापं यद्दर्शने तात कथयामि निशामय ॥ ४२ ॥
दुःस्वप्नं पापबीजञ्च केवलं विघ्नकारणम् । गोघ्नञ्च ब्राह्मणघ्नं वा कृतघ्नं कुटिलं तथा

देवघ्नं पितृमातृघ्नं पापं विश्वासघातिनम् ।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं यज्ञातिथ्यविवञ्चकम् ॥ ४४ ॥
ग्रामयाजिनमेवेति देवविप्रस्वहारिणम् । अश्वत्थघातिनं दुष्टं शिवविष्णुविनिन्दकम् ॥
अदीक्षितमनाचारं सन्ध्याहीनं द्विजं तथा । देवलं वृषवाहञ्च शूद्राणां सूपकारकम्॥४६॥
शवदाहिनञ्च शूद्राणां शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम् ।
अवीरां छिन्ननासाञ्च देवब्राह्मणनिन्दकाम् ॥ ४७ ॥
पतिभक्तिविहीनाञ्च विष्णुभक्तिविहीनकाम् ।
शूद्राणां विधवाञ्चैव चाण्डालीं व्यभिचारिणीम् ॥ ४८ ॥
शश्वत्कोपयुतं दुष्टमृणग्रस्तञ्च जारजम् । चौरं मिथ्यावादिनञ्च शरणागतयायिनम् ॥
मांसापहारिणञ्चैव ब्राह्मणं वृषलीपतिम् । ब्राह्मणीगामिनं शूद्रं द्विजं वार्द्धुषिकं तथा
अगम्यागामिनं दुष्टं चतुर्वर्णनराधमम् ॥ ५० ॥
माता सपत्नीमाता च श्वश्रूश्च भगिनी तथा । गुरुपत्नी पुत्रपत्नी सोदरस्य प्रिया सती
मातृस्वसा पितृस्वसा भागिनेयप्रिया तथा ।
मातुलानी नवोढ़ा च पितृव्यस्त्री रजस्वला ॥ ५२ ॥
पितृमातृप्रसूश्चैव चागम्याष्टादश स्मृताः । कीर्त्तिताः सामवेदे च परिपाल्याः सतांव्रज
एता दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च ब्रह्महत्यांलभेन्नरः ।
तस्माद्दैवेन ता दृष्ट्वा सूर्य्यं दृष्ट्वा हरिंस्मरेत् ॥ ५४ ॥
कामतो यदि पश्यन्ति विनिन्द्यास्ते भवन्ति वै ।
तस्मात्सन्तो न पश्यन्ति शापभीता व्रजेश्वर ॥ ५५ ॥
राहुग्रस्तं रविं सोमं न पश्यन्ति विपश्चितः । जन्माष्टसप्तरिःफाङ्कदशमस्थे दिवाकरे ॥
जन्मर्क्षेनिधनं चापि चतुर्थेऽपिकलानिधौ । नष्टचन्द्रो न दृश्यश्च भाद्रे मासि सितासिते
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रः परित्यक्तो मनीषिभिः ॥ ५७ ॥
चन्द्रस्तारापहरणं कलङ्कमतिदुष्करम् ।
तस्मै ददाति हे नन्द कामतो यदि पश्यति ॥ ५८ ॥

अकामतो नरो दृष्ट्वा मन्त्रपूतं जलं पिबेत् । तदा शुद्धो भवेत्सद्यो निष्कलङ्की महीतले
सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः
इति मन्त्रेण पूतञ्च जलं साधु पिबेद् ध्रुवम् । इति ते कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
आध्यात्मिकज्ञानवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

सूर्यग्रहणाख्यानम्

श्रीनन्द उवाच ।

राहुग्रस्तः कथं सूर्यश्चन्द्रो वापिजगत्प्रभो । नष्टश्चन्द्रः कथं भाद्रे चतुर्थ्याञ्चासितेसिते
वेदानांजनकस्त्वञ्च कं पृच्छामि त्वयाविना । वेदेपुराणे गोप्यं यन्न जानन्तिविपश्चितः
इति तद्वचनं श्रुत्वा चेदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अकथ्यं वचनं चेदं निषिद्धं वैदिकैरपि । क्षमस्व नन्द भद्रं ते प्रश्नमन्यं कुरुष्व माम् ॥
विश्वस्तं वचनं तात न प्रकाश्यं मनीषिभिः ।
विघ्नः प्रकाशे भवति सतां छिद्रस्य दैवतः ॥ ४ ॥

नन्द उवाच ।

कथयस्व जगन्नाथ न भक्ते वञ्चनं कुरु । अदृश्यौ चापि देवेशौ राहुग्रस्तौ च पुण्यदौ

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । यां श्रुत्वा निष्कलङ्कश्च तीर्थस्नायीभवेन्नरः
सर्वपातकिनं दृष्ट्वा यत्पापं लभते नरः । आख्यानश्रवणेनैव भस्मीभूतं भविष्यति॥७॥
एकदा जमदग्निश्च महाकौतूहलान्वितः । रेणुकासहितस्तुष्टो जगाम नर्मदातटम् ॥ ८ ॥

निर्जने नर्मदातीरे विजहार तया सह। नवोढ़या च सुन्दर्या नवयौवनयुक्तया ॥ ९ ॥
सुवेशया सुस्मितया रत्नभूषणयुक्तया। नतया स्तनभारेण श्रोणीभारेण मन्दया ॥१०॥
सुन्दरीणामतुलया श्वेतचम्पकवर्णया। सुपूर्णचन्द्राननया कटाक्षयुतया तथा ॥ ११ ॥
अतीवसूक्ष्माम्बरया कामबाणार्त्तया व्रज। पुलकाञ्चिसर्वाङ्गसम्भोगेनातिमूर्च्छया॥१२॥
पुंस्कोकिलयुते रम्ये शब्दिते सुमधुव्रते। सुगन्धिवायुसंयुक्ते पुष्पतल्पान्विते शुभे ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वस्त्रमाल्यधरं मुनिम्।
महारासरसाढ्यं तमुवाच भास्करः स्वयम् ॥ १४ ॥
वेदकर्त्तुः प्रपौत्रस्त्वं ब्रह्मणश्च जगत्पतेः। चतुर्वेदविधेयेषु सुनिष्णातः सदा शुचिः ॥
वेदाङ्गकर्ता धर्मज्ञः श्रेष्ठो वेदविदां वरः। महातपस्वी तेजस्वी ब्रह्मचारी च सुव्रती ॥
युष्मद्विधोक्तं शास्त्रञ्च पठित्वान्यश्च पण्डितः।
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ १७ ॥
धर्मं त्यजति धर्मज्ञो ह्यधर्मेण रतः कथम्। दिवामैथुनदोषञ्च वक्ति वेदो विशेषतः।
अहञ्च धर्मिणां साक्षी तेन त्वां कथयामि च ॥ १८ ॥
सूर्य्यस्य वचनं श्रुत्वा तत्याज मैथुनं द्विजः। दृष्ट्वा पुरो विप्ररूपं सूर्य्यं तेजस्विनं सुरम्
उवाच सूर्य्यं रक्तास्यः कोपलज्जासमन्वितः। रेणुका लज्जिता तत्र विधाय वाससी सती

जमदग्निरुवाच।

को भवान् पण्डितम्मन्यो न त्वदन्योऽस्ति पण्डितः।
अहं भृगोर्भगवतः शिष्यस्त्वं कश्यपस्य च ॥ २१ ॥
चतुर्वेदांश्च जानामि धर्माधर्मनिरूपणे। वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ २२ ॥
अज्ञानी पुरुषः शश्वज्जड़ितश्च स्वकर्मणा। तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा
अन्ये भवांश्च धर्मश्च साक्षी सर्वे च कर्मणाम्। फलदाता च शास्त्रज्ञो यतस्त्वत्तनयः सदा
न वैष्णवानां शास्तारो यूयमस्माकमेव च। न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥
हरेः सुदर्शनञ्चक्रं शश्वद्रक्षति वैष्णवान्।
नारायणश्च भगवान् स्वयं ब्रह्मा च शङ्करः ॥ २६ ॥

शास्ता यमश्च नास्माकं त्वं वै नापि दिवाकर।
राजपुत्रो यथा स्थाने वयं स्वच्छन्दगामिनः ॥ २७ ॥
शक्तोऽहं भस्मसात् कर्त्तुं यमं सर्वसुरांस्तथा।
महेन्द्रप्रभृतीन् सूर्य्य क्षणेनैवावलीलया ॥ २८ ॥

कस्त्वं धर्मप्रवक्ता मे याहि स्वस्थानमेव च। मम शास्ता च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः
अद्य मे निर्जने स्थाने रसभङ्गस्त्वया कृतः। मम शापात्पापदृश्यो राहुग्रस्तो भविष्यसि

द्रष्टुं त्वां ये घनाः सर्वे दूरीभूता भवन्ति ते।
त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति वायुना प्रेरितास्तथा ॥ ३१ ॥
स्वतेजसा भवान् गर्वाद्धततेजा भविष्यसि।
मेघाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुग्रस्तो भवान् भव ॥ ३२ ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा भगवान् भास्करः स्वयम्।
ततः पुटाञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव मुनिपुङ्गवम् ॥ ३३ ॥

भास्कर उवाच।

अवध्याः सर्वधर्मेश धन्या मान्याः पुरस्कृताः।
नारायणश्च भगवान् शम्भुर्ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥ ३४ ॥

गणेशश्चापि शेषश्च धर्मश्चापि सनातनः। स्तुवन्ति ब्राह्मणं सर्वे विप्ररूपिजनार्दनम् ॥
विप्रदत्तश्च यो ब्रह्मन् वयमस्मन्मुखा द्विजः। हुताशनश्च द्विमुखाः सुराः सर्वे द्विजो परम्

क्षमस्व वैष्णवः शुद्धः स्वधर्मेश्च समाचर।
वैष्णवानां कुतः कोपो हृदि येषां जनार्दनः ॥ ३७ ॥
अस्माभिः पूजिता विप्रा युष्माभिः पूजिताः सुराः।
परस्परं स्नेहपात्रं चेदमाचरणं द्विज ॥ ३८ ॥

अहमेव त्वया शप्तो मया शप्तो भवान् भव। अन्यथा मां वदन्त्येवं सूर्यं निस्तेजसं जनाः
पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर। मरणं क्षत्रियास्त्रेण भवतश्च भविष्यति ॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप ब्राह्मणः पुनः। तं शशापातिरक्तास्यः शम्भुना निर्जितोभवान्

उभयोः कलहं ज्ञात्वा कश्यपेन सह व्रज। आजगाम स्वयं ब्रह्मा विधाता जगतामपि॥
आगत्य ब्रह्मा सन्त्रस्तं बोधयामास भास्करम्। मुनिश्रेष्ठश्च धर्मज्ञं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुः॥

ब्रह्मोवाच।

क्षमस्व भास्कर त्वञ्च साक्षान्नारायणो भवान्।
युष्माकं परिपाल्यश्चाप्यवध्यो ब्राह्मणः सदा॥ ४४॥

अहं करोमि भवतो विप्रशापान्तमुल्वणम्। अत्राहमागतस्त्रस्तो भृगुणा प्रेरितस्ततः॥
स्फुटोऽहं प्रेरितश्चापि कश्यपेन मरीचिना। शान्तो भव सुरश्रेष्ठ साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम्

कुत्रचिद्दिवसे ब्रह्मन् त्वां तत्र कुत्रचित् क्षणम्।
भविष्यसि घनाच्छन्नः सद्योमुक्तो भविष्यसि॥ ४७॥
न्यूनातिरिक्ते वर्षे च राहुग्रस्तो भविष्यसि।
तत्राद्रष्टश्च केषाञ्चित् पुण्यद्रश्यो हि कस्यचित्॥ ४८॥
अन्यथा सर्वकालेन पुण्यद्रश्यो भवान् भुवि।
त्वां द्रष्ट्वा च नमस्कृत्य सर्वेनिष्पापिनोजनाः॥ ४९॥

जन्मसप्ताष्टरिपफांक चतुर्थे दशमे तथा। जन्मर्क्षे निधनं नृणामद्रश्यस्त्वं भविष्यसि॥
अस्तकाले घनाच्छन्नमध्याह्नस्थे जलेऽपि वा। अर्द्धोदिते च काले च पापद्रश्यो भविष्यसि
भार्यादुःखनिमित्तेन भार्यया हेतुभूतया। श्वशुरेण श्यालकेन हततेजा भविष्यसि॥
अन्यथा तव तेजश्च संज्ञा सहितुमक्षमा। मालिसुमालियुद्धे च शम्भुना त्वं पराजितः॥
इत्येवमुक्त्वा सूर्यश्च बोधयामास ब्राह्मणम्। नम्रं शापपराभूतं लज्जितं कोपितं व्रज॥

हे विप्र स्वगृहं गच्छ गच्छ वत्स यथासुखम्।
त्वत्तेजसा क्षणेनैव भस्मीभूतं भवेज्जगत्॥ ५५॥
सूर्यस्त्वत्परिपाल्यश्च भवान् सूर्यस्य नित्यशः।
परस्परं च पूज्यश्च सम्बन्धः पोष्यपोषकः॥ ५६॥

हयंशेन क्षत्रियेण कार्तवीर्यार्जुनेन च। भविष्यसि न सन्देहः पराभूतो द्विजो मृतः॥
पुराते प्राक्तनं सर्वं कदाचिन्न हि खण्डितम्। नारायणश्च स्वांशेन तव पुत्रो भविष्यति

त्रिःसप्त कृत्वा जगतीं निःक्षत्राञ्च करिष्यति ।
मृत्युस्ते यशसो बीजं भविष्यति महीतले ॥ ५९ ॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च ययौ गेहं व्रजेश्वर ।
प्रययौ जमदग्निश्च भास्करश्च स्वमन्दिरम् ॥ ६० ॥
इत्येवं कथितं तात स्वाख्यानं पुण्यकारणम् ।
राहुग्रस्तो भास्करश्चाप्यदृश्यो येन हेतुना ॥ ६१ ॥
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो भाद्रे मासि सितासिते । अदृश्यो नष्टरूपश्च श्रूयतां येन हेतुना ॥
राहुग्रस्तो कलङ्की वा पुरा शप्तो मया पितः । सर्वं त्वां कथयिष्यामि कथामेतांपुरातनीम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे सूर्य्यग्रहणाख्यानवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

अशीतितमोऽध्यायः

चन्द्रग्रहणाख्यानवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

पुरा तारा गुरोः पत्नी नवयौवनसंयुता । रत्नभूषणभूषाढ्या वरसूक्ष्माम्बरा सती ॥१॥
सुश्रोणी सस्मिता रम्या सुन्दरी सुमनोहरा । अतीवकवरीरम्या मालतीमाल्यभूषिता ॥
सिन्दूरविन्दुना साकं चारुचन्दनविन्दुभिः । कस्तूरीविन्दुनाधश्च भालमध्यस्थलोज्ज्वला
रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जिता ।
सुवक्रलोचना श्यामा सुचारुकज्जलोज्ज्वला ॥ ४ ॥
सुचारुसारमुक्ताभदन्तपंक्तिमनोहरा । रत्नकुण्डलयुग्मेन चारुगण्डस्थलोज्ज्वला ॥ ५ ॥
कामिनीष्वतुला बाला गजेन्द्रमन्दगामिनी ।
सुकोमला चन्द्रमुखी कामाधारा च कामुकी ॥ ६ ॥

स्वर्गमन्दाकिनीतीरे स्नाता स्निग्धाम्बरावरा। ध्यायन्तीगुरुपादं सा स्वगृहं गमनोन्मुखी
दृष्ट्वा तस्याश्च सर्वाङ्गमनङ्गबाणपीड़ितः। भाद्रे चतुर्थ्यां चन्द्रश्च जहार चेतनां व्रज॥
ज्ञानं क्षणेन संप्राप्य रथस्थो रसिको बली। रथमारोहयामास करे धृत्वा च तारकाम्

कामोन्मत्तः कामिनीं तां समाश्लिष्य चुचुम्ब च।
शृङ्गारं कर्तुमुद्यन्तं तमुवाच गुरुप्रिया॥ १०॥

तारोवाच।

त्यज मां त्यज मां चन्द्र सुरेषु कुलपांसन। गुरुपत्नी ब्राह्मणीश्च पातिव्रत्यपरायणाम्

गुरुपत्नीसङ्गमने ब्रह्महत्याशतं भवेत्॥ ११॥

गुरुपत्नी विप्रपत्नी यदि सा च पतिव्रता। ब्रह्महत्यासहस्रञ्च तस्याः सङ्गमने लभेत्॥

पुत्रस्त्वं तव माताऽहं धैर्यं कुरु सुरेश्वर।
धिक् त्वां श्रुत्वा सुरगुरुर्भस्मीभूतं करिष्यति॥ १३॥
पुत्राधिकश्च शिष्यश्च प्रियो मत्स्वामिनो भवान्।
स्वधर्मं रक्ष पापिष्ठ मामेवं मातरं त्यज॥ १४॥
दास्यामि स्त्रीवधं तुभ्यं यदि मां संग्रहिष्यसि॥ १५॥

विलङ्घ्य तारावचनंताञ्च सम्भोक्तुमुद्यतम्। शशापतारा कोपेन निष्कामा सा पतिव्रता
राहुग्रस्तोघनग्रस्तः पापदृश्यो भवान्भव। कलङ्कीयक्ष्मणा ग्रस्तोभविष्यसि न संशयः

चन्द्रं शप्त्वा तदा तूर्णं कामदेवं शशाप सा।
तेजस्विना केनचित् त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि॥ १८॥
चन्द्रस्तारां गृहीत्वा च कृत्वापि रमणं व्रज।
क्रोड़े निधाय प्रययौ रुदन्तीं तां शुचान्विताम्॥ १६॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले मनोहरे। सरोनदनदीनाञ्च तीरे तीरे मनोहरे॥ २०॥
मधुव्रतपिकोक्ते च पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। रम्यायां पुष्पशय्यायां स रेमे रामया सह॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो मधुपानरतः सुरः।
सुखसम्भोगसंसक्तो बुबुधे न दिवानिशम्॥ २२॥

मलये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते । स्यन्दने चन्दनवने पश्चिमोदधिसन्निधौ ॥ २३ ॥
त्रिकूटे वटमूले च तत्र चन्द्रसरोवरे । सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनचर्चिते ॥ २४ ॥
सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते । क्षीरोदकाञ्चनीभूमौ क्रौञ्चकाञ्चनपर्वते ॥२५॥
रत्नशैले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे । माणिक्यमुक्तासारेण हीरहारेण शोभिते ॥२६॥
सुचारुवस्त्रचित्राढ्ये श्वेतचामरदर्पणैः । भूषिते रत्नदीपैश्च देवक्रीड़े प्रियस्थले ॥२७॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा वरुणानीसमन्वितः । वरुणो रमते यत्र तत्र रेमे तया सह॥२८॥
पावने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च । सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले ॥२९॥
ऋक्षशैले कल्पवृक्षवने वह्निप्रियाश्रमे । पपौ च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं वह्निस्तस्मै ददौ मुदा । वरुणो रत्नमालाञ्च रत्नच्छत्रं समीरणः ॥
तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं बलिगेहात् समागतम् । प्रणम्य सर्वमुक्त्वा च चन्द्रस्तं शरणं ययौ
शुक्रस्तं बोधयामास वचनं नीतियुक्तितः । निरपेक्षो मुनिश्रेष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३३॥

शुक्र उवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि गुरवे देहि तारकाम् ।
शम्भोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै ॥ ३४ ॥
पूजिताय सुराणाञ्च देया तस्मै निशापते ।
प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज ॥ ३५ ॥

गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्वचनाद्विधो । कुरु पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला ॥
सतीनां गुरुपत्नीनां ग्रहणे च बलेन च । ब्रह्महत्यासहस्राणां पातकं लभते जनः ॥३७॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम् । साम्यं नारायणस्थाने तृणपर्वतयोः सुर

कस्त्वं वत्स हरेः स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः ।
नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिविधा भवे ॥ ३९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे ताराहरणे चाशीतितमोऽध्यायः ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम्।

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः सुरश्रेणीं ददर्श सः। अकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीम्

पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथम् ।

शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम् ॥ २ ॥

अश्वानां तच्छतगुणं समूहश्च सुदारुणम्। पदातीनां समूहश्च तुरगेभ्यश्च षड्गुणम्॥

दुन्दुभीवाद्यभाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च ।

पटहानां त्रिलक्षञ्च डिण्डिमानां त्रिलक्षकम् ॥ ३ ॥

ऐरावते महेन्द्रश्च श्वेताश्वे धर्ममेव च। कुबेरं वरुणं वह्निं रथस्थं पवनं तथा ॥ ५॥

महिषस्थं यमञ्चैव स्यन्दनस्थं दिवाकरम्। ईशानञ्च गजेन्द्रस्थमनन्तं नागवाहनम्॥

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् सिद्धगन्धर्वकिन्नरान् ।

जीवन्मुक्तमुनीनाञ्च समूहं सूर्यवर्चसम् ॥ ७ ॥

तान् दृष्ट्वा निर्भयः शुक्रः समाश्वास्य निशाकरम् ।

सुराणां द्विगुणं सैन्यमाजुहाव व्रजेश्वर ॥ ८ ॥

रत्नमालानदीतीरे हुताशनप्रियाश्रमे। तत्र तस्थौ दैत्यसैन्यं पुण्यक्षीरोदधेस्तटे ॥ ९॥

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे। पुण्याश्रमेऽक्षयवटे सुरसैन्यात् समागतम्॥

ददर्श वृषभस्थञ्च शङ्करं सर्वशङ्करम्। त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥ ११॥

तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रविग्रहम्। सर्वसम्पत्प्रदातारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ १२॥

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वरूपं सनातनम्। शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणम् ॥ १३॥

सस्मितं परमात्मानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।

सन्त्रस्तः सहसोत्थाय प्रणनाम पदाम्बुजे ॥ १४ ॥

ददौ शुभाशिषं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः । रत्नसिंहासने तञ्च वासयामास सादरम् ॥
अथ तत्रान्तरे विप्र पुरतस्तं ददर्श सः । शान्तं स्वयं विधातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नमालाविभूषितम् । प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामीश्वरं परम् ॥

कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम् ।
वेदानां जनकं वेदप्रसूकान्तं मनोहरम् ॥ १८ ॥
पुटाञ्जलिस्तदा त्रस्तः प्रणनाम सुरेश्वरम् ।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास भक्तितः ॥ १९ ॥

पूजां चकार भक्त्या च तयोश्चरणपङ्कजे । नोचितं कुशलप्रश्नं तयोः कल्याणमेव च ॥

विधाता जगतां शुक्रमाचार्यं पुरतः स्थितम् ।
सुनीतिं कथयामास यत्नतः शम्भुसम्मतः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि दुर्नीतिं शशिनः सुत । लज्जाकरं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम् ॥

स्नात्वा गृहोन्मुखीं तारां गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ।
गृहीत्वा शरणापन्नस्त्वयि पापश्च साम्प्रतम् ॥ २३ ॥
प्रस्तुतं देवसैन्यञ्च पश्य वत्स रणोद्यतम् ।
अहं शम्भुस्त्वत्समीपं तदर्थञ्च समागतौ ॥ २४ ।

शम्भुरुवाच ।

चन्द्रमानय हे विप्र यद्यात्मशिवमिच्छसि । संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः ॥

अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदैत्यान् क्षणेन च ।
मयि रुष्टे रक्षिता को दैत्यानाञ्च भवेद् द्विज ॥ २६ ॥

सद्यः पाशुपतेनैव वाय्वास्त्रेण च साम्प्रतम् । सुराणां रिपुवर्गञ्च हरिष्यामिच लीलया
दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः । परस्पराच्च सम्बन्धाद् गुरुपुत्रो गुरुर्मम ॥
वृहस्पतिश्च तेजस्वी तं भस्मीकर्तुमीश्वरः । न चकार कृपालुश्चेत् प्रियशिष्येण हेतुना
उतथ्यपत्नीं दृष्ट्वा स पुरा रेमे स्वकामतः। तत्पतेः शापतोऽस्यैव परग्रस्ता प्रियासती

पत्नीं मद्गुरुपुत्रस्य देहि तारां मनोहराम् । मद्वैरिणञ्च चन्द्रञ्च भ्रातृभार्य्यापहारिणम्॥
शरणागतदीनार्तं न हि रक्षेद्यदीश्वरः । पच्यते निरये तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३२॥
अत्र नास्ति विचारो मे पापिष्ठे शरणागते । पापी यं शरणं याति स पापीच न संशयः
देहि तं विप्रशार्दूल पापिनं मातृगामिनम् । बहिष्कृत्य स्वाश्रमाच्च ताराऽसाध्वीसमन्वितम्

शुक्र उवाच ।

सुराणामसुराणाञ्च सर्वेषां जगतामपि । त्वमेवशास्ता भगवान् कोवाशास्ति सुरेऽसुरे
कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान् हनिष्यसि ।
संहर्तुः सर्वजगतां दैत्यौघे किञ्च पौरुषम् ॥ ३६ ॥
त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।
गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ३७ ॥

बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान् प्रभो । स्वयं प्रदत्ता शुक्राय तस्मै श्रीरपि लीलया
क्षमस्व भगवन् शम्भो हर क्रोधञ्च संहर । किं पौरुषञ्च भवतो ब्राह्मणस्यापि हिंसया
अहं जीवन् शरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम्॥
अहञ्च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शङ्कर । यथोचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तथैव च॥
शुक्रस्य वचनंश्रुत्वा प्रसन्नो भगवान् शिवः । इत्युक्त्वाच निशानाथं समानय शुभंभवेत्
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयित्वा कविं विभुः । समानीय निशानाथं तारकासहितं व्रज
शम्भोश्च चरणाम्भोजे चकारच्च समर्पणम् । शम्भुस्तं प्रीतियुक्तश्च वासयामास वक्षसि
दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापञ्च चकार सः । दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ॥
क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शङ्करः । चकारचन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितःशुचिम्
योगेन चन्द्रं योगीन्द्रो द्विखण्डं तं चकार सः । ररक्षार्धं ललाटेच सोऽप्यर्द्धं ब्रह्मणःपुरः
एवमेव महादेवो बभूव चन्द्रशेखरः । मृगाङ्को लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि ॥ ४८॥
लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः । तच्छरीरञ्च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम्
रुरोदात्रिश्च कृपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे ॥ ४९ ॥
अत्रेश्चक्षुर्जलं तस्य पपात च जले व्रज । तस्मादुबभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि ॥५०

ब्रह्मा च भगवान् शम्भुरभिषेकं चकार तम्। उवाच तं महादेवो निर्भयं देवसंसदि ॥

महादेव उवाच।

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा।
पश्चात्तस्याश्च शापेन यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि ॥ ५२ ॥

व्यर्थं पतिव्रताशापं कर्तुमीशश्च को भुवि। मदाशिषा यक्ष्मणश्च प्रतीकारो भविष्यति
यस्माद्भाद्रचतुर्थ्यान्तु गुरुपत्नीक्षतिःकृता। तस्मात्तस्मिन् दिने वत्स पापदृश्यो युगे युगे
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥५५।
देहत्यागेन हे वत्स कर्मभोगो न नश्यति। प्रायश्चित्तान्न सन्देहो ह्यस्तमेव भविष्यति
तारापहरणाद्वत्स कलङ्कश्चन्द्रमण्डले। मृगाकृतिंविलग्नश्च भविष्यति युगे युगे ॥ ५७ ॥
शृणु वाक्यमिहागच्छ तारके च पतिव्रते। सत्यंब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये

अकामतो बलात् साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति।
कामतो नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५९ ॥

उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम्।जहसुर्देवताः सर्वाः शम्भुश्च मुनिसङ्घकाः
ददौ ताराञ्च गुरवे लज्जिताय व्रजेश्वरः। बृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम् ॥
तया प्रसूतं पुत्रञ्च सुन्दरं कनकप्रभम्। गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य विधिं शिवम्
ययुर्देवाश्च मुनयः शम्भुश्च कमलोद्भवः। प्रययौ स्वगृहं शुक्रो दैत्ययुक्तो मुदान्वितः ॥

एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानं पुण्यदं शुभम्।
एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत ॥ ६४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसम्पत्करं परम्। शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम् ॥६५॥
त्यज शोकं सदा नन्द गृहं व्रज व्रजेश्वर। ब्रूहि सर्वं यशोदाञ्च मत्प्रसूं गोपिकागणम्
बोधयिष्यसि सर्वां तां स्त्रीजातिं शोकसंयुताम्। मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तःसदा भव ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
ताराहरणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः।

———

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दुःस्वप्नवर्णनम् ।

नन्द उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो ।
उवाच तं वै भगवान् श्रूयतामिति तद्वचः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति । नर्तनं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्॥
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तञ्च पश्यति । धनहानिर्भवेत्तस्य पीड़ा चापि शरीरजा
अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम् । खरोष्ट्रमहिषारूढ़ो मृत्युस्तस्य न संशयः
स्वप्ने कर्णे जपापुष्पमशोकं करवीरकम् । विपत्तिस्तस्य तैलञ्च लवणं यदि पश्यति॥

नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा ।
कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणञ्च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम् ।
विपत्तिश्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

वनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशञ्च सुपुष्पितम् । कार्पासं शुक्लवस्त्रञ्च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्

गायन्तीञ्च हसन्तीञ्च कृष्णाम्बरधरां स्त्रियम् ।
दृष्ट्वा कृष्णाञ्च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥

देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च । आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति
वान्तं मूत्रं पुरीषञ्च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम् । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमासिकम्॥
कृष्णाम्बरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम् । उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति

मृतवत्सञ्च मुण्डञ्च मृगस्य च नरस्य च ।
यः प्राप्नोत्यस्थिमालाञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ १३ ॥

रथं खरोष्ट्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत् । तत्रस्थोऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनापि च । तक्रेणापि गुडेनैव पीड़ा तस्य विनिश्चितम्

रक्ताम्बरधरां नारीं रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
उपगूहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम् ॥ १६ ॥

पतितान्नखकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च । भस्मपूर्णाश्चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च ॥

श्मशानं शुष्ककाष्ठञ्च तृणानि लौहमेव च ।
रामीञ्च किञ्चित्कृष्णाश्वं दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम् । माषं मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वासद्योव्रणं लभेत्
कटकं सरठं काकं भल्लूकं वानरं गवम् । पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम्
भग्नभाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठञ्च रोगिणम् । रक्ताम्बरञ्च जटिलं शूकरं महिषं खरम् ॥

अन्धकारं महाघोरमृतं जीवं भयङ्करम् ।
दृष्ट्वा स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

कुवेशरूपं म्लेच्छञ्च यमदूतं भयङ्करम् । पाशहस्तं पाशशस्त्रं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालको वा सुतः सुता ।
विलापं कुरुते कोपाद् दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

कृष्णं पुष्पञ्च तन्माल्यं सैन्यं शस्त्रास्त्रधारिणम् ।
म्लेच्छाञ्च विकृताकारां दृष्ट्वा मृत्युं लभेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥

वाद्यञ्च नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम् । मृदङ्गं वाद्यमानं तं दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥

त्यक्तप्राणं मृतं दृष्ट्वा मृत्युश्च लभते ध्रुवम् ।
मत्स्यादि धारयेद्यो हि तद्भ्रातुर्मरणं ध्रुवम् ॥ २७ ॥

छिन्नं वापि कवन्धं वा विकृतं मुक्तकेशिनम् । क्षिप्रं नृत्यञ्च कुर्वन्तं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः

मृतो वापि मृता वापि कृष्णम्लेच्छा भयानका ।
उपगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥ २६ ॥

येषां दन्ताश्च भग्नाश्च केशाश्चापि पतन्ति हि । धनहानिर्भवेत्तस्य पीड़ा वा तच्छरीरजा ॥

उपद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणोदंष्ट्रिणोऽपि वा । बालका मानवाश्चैव तस्य राजकुलाद्भयम्
छिन्नवृक्षं पतन्तञ्च शिलावृष्टिं तुषं क्षुरम् । रक्ताङ्गारं भस्मवृष्टिं दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥
ग्रहं पतन्तं शैलं वा धूमकेतुं भयानकम् । भग्नस्कन्धं नरं वापि दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्
रथगेहशैलवृक्षगोहस्तितुरगाम्बरात् । भूमौ पतति यः स्वप्ने विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥
उच्चैः पतन्ति गर्तेषु भस्माङ्गारयुतेषु च । क्षारकुण्डेषु चूर्णेषु मृत्युस्तेषां न संशयः ॥

बलाद् गृह्णाति दुष्टश्च छत्रञ्च यस्य मस्तकात् ।
पितुर्नाशो भवेत्तस्य गुरोर्वापि नृपस्य वा ॥ ३६ ॥

सुरभी यस्य गेहाच्च याति त्रस्ता सवत्सिका । प्रयाति पापिनस्तस्य लक्ष्मीरपिवसुन्धरा
पाशेन कृत्वाबद्धश्चयं गृहीत्वाप्रयान्तिच । यमदूताश्च ये म्लेच्छास्तस्य मृत्युर्विनिश्चितम्

गणको ब्राह्मणो वापि ब्राह्मणी वा गुरुस्तथा ।
परिरुष्टः शपति यं विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ ३६ ॥
विरोधिनश्च काकाश्च कुक्कुटा भल्लुकास्तथा ।
पतन्त्यागत्य यद्गात्रे तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ४० ॥

महिषाभल्लुकाउष्ट्राशूकरा गर्दभास्तथा । रुष्टा धावन्तियंस्वप्ने सरोगी निश्चतं भवेत्
रक्तचन्दनकाष्ठानि घृताक्तानि जुहोति यः । गायत्र्याचसहस्रेण तेन शान्तिर्विधीयते ॥

सहस्रधा जपेद्यो हि भक्त्यैनं मधुसूदनम् ।
निष्पापो हि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत् ॥ ४३ ॥
अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।
हंसं नारायणञ्चैव ह्येतन्नमाष्टकं शुभम् ॥ ४४ ॥
शुचि पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत् ।
निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत् ॥ ४५ ॥

विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम् । हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम् ॥

भक्त्या चेमानि नामानि दश भद्राणि यो जपेत् ।
शतकृत्वो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत् ॥ ४७ ॥

लक्षधा हि जपेद्यो हि बन्धनान्मुच्यतेध्रुवम् । जप्त्वा च दशलक्षञ्च महावन्ध्या प्रसूयते
हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥ ४८ ॥
शतलक्षञ्च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । शुद्धो नारायणक्षेत्रे सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥
ओं नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम् ।
धर्मं गङ्गाञ्च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ५० ॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत् ।
वाञ्छितञ्च लभेत्सोपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत् ॥ ५१ ॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा ।
कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।
शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत् ॥ ५२ ॥
शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । सिद्धमन्त्रस्तु लभते सर्वसिद्धिञ्च वाञ्छिताम्
ओं नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधाजपेत् । दृष्ट्वाच मरणं स्वप्ने शतायुश्चभवेन्नरः
पूर्वोत्तरमुखो भूत्वा स्वप्नं प्राज्ञे प्रकाशयेत् ॥ ५४ ॥
काश्यपे दुर्गते नीचे देवब्राह्मणनिन्दके । मूर्खे चैवानभिज्ञे च न च स्वप्नं प्रकाशयेत् ॥
अश्वत्थे गणके विप्रे पितृदेवासनेषु च । आर्ये च वैष्णवे मित्रे दिवास्वप्नं प्रकाशयेत् ॥
इति ते पुण्यमाख्यानं कथितं पापनाशनम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५७ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीभगवन्नन्दसंवादे दुःस्वप्नप्रवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

——— ———

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

विप्रादीनां धर्मकथनम्

नन्द उवाच ।

वेदानां कारणं त्वञ्च ब्रह्मादीनाञ्च पुत्रक । सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना

विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम् ।

सन्यासिनाञ्च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥

विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानांसतामपि । पतिव्रतानां स्त्रीणाञ्च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि

गृहिणां गृहिणीनाञ्च शिष्याणाञ्च विशेषतः ।

पुत्राणाञ्चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति ॥ ४ ॥

स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो ।

ब्रह्माण्डश्च कतिविधं वद नश्च किमात्मकम् ।

किं नित्यं कृत्रिमं किञ्च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सन्ध्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम् । नित्यं भुंक्ते मत्प्रसादमनिवेद्य कदाचन ॥

अन्नंविष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्मणः

नित्यं तपस्यानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित् ।

व्रततीर्थाश्रितो धर्मी नानाध्यापनसंयुतः ॥ ८ ॥

विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम् ।

गृहीत्वा तदनुज्ञाञ्च पश्चाद्भवति संगृही ॥ ६ ॥

दक्षिणां नित्यपूजानां गुरवे च निवेदयेत् । गुरूणां पोषणं नित्यं कर्तव्यं नात्र संशयः

सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः सुरः

मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणाञ्च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः ॥

उद्देशो दीयते तस्मै सुरायेति श्रुतौ श्रुतम् ।
प्रत्यक्षभोक्ता स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः ॥ १३ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः । गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥१४॥
गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिंस्तुष्टे च देवताः । गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न करिष्यति
लभते ब्रह्महत्याञ्च भुंक्ते कृत्वा च नाशिषम् ॥ १४ ॥
स्वधर्मनिरतोविप्रो ब्राह्मणश्चसदा शुचिः । विष्णुसेवीसदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिःसदा
ब्राह्मणो वृषवाहश्च शूद्राणां सूपकारकः । ब्राह्मणो देवलश्चैव सन्ध्याहीनश्च दुर्बलः ॥
ब्राह्मणश्च दिवाशायी शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ।
शूद्राणां शवदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः ॥ १८ ॥
शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः । भुंक्ते नैवेद्यशेषञ्च तत्पादोदकमेव च ॥१६॥
हरेःपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ॥
गङ्गाजलाद्दशगुणं शालग्रामजलं व्रज ।
नित्यं भुंक्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः ॥ २२ ॥
विप्राणां नित्यकृत्यञ्च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् । यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम् ॥
नित्यं त्रिसन्ध्यं कुरुते भक्त्या च मम पूजनम् ।
एकादश्यां न भुंक्ते च मम वै जन्मवासरे ॥ २४ ॥
शिवरात्रौ च हे तात श्रीरामनवमीदिने ।
न च भुंक्ते व्रती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २५ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे नतानि च ।
विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ २६ ॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥
विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रं कुरुते महीम् ।
तीर्थानि च नरांश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २८ ॥

सर्वतीर्थेषु स स्नातो व्रतानाञ्च फलं लभेत् । पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्
वह्निवायुसमः पूतस्तेजसा भास्करोपमः । यमदूतं यमं चैव स च स्वप्ने न पश्यन्ति ॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि पार्षदो हरिणा सह । न भवेत्तस्य पातो हि विप्रस्य हरिसेविनः

विष्णुमन्त्रोपासकश्च स एव वैष्णवो द्विजः ।
ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न हि तस्मात्परः पुमान् ॥ ३२ ॥
वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तन्त्रोक्तो वा मनुः शुचिः ।
विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः ॥ ३३ ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम् । तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । भित्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येव हरेः पदम्

पूर्वान् सप्त परान् सप्त सप्त मातामहादिकान् ।
सोदरानुद्धरेद्भक्तस्तत्प्रसूं तत्प्रसूं तथा ॥ ३६ ॥

जपेन्नारायणं क्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम् । पुरुषाणां सहस्रञ्च लीलयात्मानमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण फलमेतद् व्रजेश्वर । पुरश्चरणसम्पर्कात् पुरुषाणां शतं शतम् ॥३८॥

ऐकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षं समुद्धरेत् ।
क्रिया विष्णुपदे यस्य सङ्कल्पाश्च वहिष्कृताः ॥ ३९ ॥
द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणात् परः प्रियः ।
विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तात् परः प्रियः ॥ ४० ॥

तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम् । करोति मन्त्रग्रहणं तस्माद् भूयाद्विचक्षणः
वयोहीनाज्ज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च । जातिहीनाद् गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन ॥

शास्त्रार्थश्चाक्षतं मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन ।
मूर्खादाश्रमहीनाच्च पितुः सन्न्यासिनस्तथा ॥ ४३ ॥

रोगिणो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च । मन्त्रक्षिप्तात्तथा मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन

विष्णुमन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः ।
न च शैवान्न शाक्ताच्च गृह्णीयाद्वैष्णवात् द्विजात् ॥ ४५ ॥

वयोहीनात्तथाल्पायुर्ज्ञानहीनादपण्डितः ।
विद्याहीनाद्भवेन्मूढ़ो जातिहीनात् क्षयो भवेत् ॥ ४६ ॥
मूर्खान् मूर्खो भवेत् सद्यो दुःखी स्वाश्रमहीनतः ।
यशोहानिः पितुश्चैव मृत्युः सन्न्यासिनस्तथा ॥ ४७ ॥
रोगिणोव्याधियुक्तश्च निर्वंशोवंशहीनतः । भार्याहीनोऽपिस्त्रीहीनान्मन्त्रक्षिप्ताच्चुतत्समः
विष्णुभक्तिविहीनाच्च भक्तिहीनोभवेन्नरः । शैवाच्छाक्ताद् गृहीत्वा च हरौ भक्तिर्नवर्द्धते
ब्राह्मणो वैष्णवः शुद्धः पक्वान्नं दातुमीश्वरः । पक्वान्नं हरये दातुमक्षमश्चेतरो जनः ॥
ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् ।
मह्यं पक्वान्नदानाच्च विप्रादन्यो व्रजेदधः ॥ ५१ ॥
उदासीनाद् दुराचारान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः ।
दैवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥
ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यञ्च निरामिषम् ।
आमिषस्य परित्यागात् सूर्य्यवत्तेजसा भवेत् ॥ ५३ ॥
नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च । अथवा पक्षपर्य्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः
स्थानंसुसंस्कृतं कृत्वापाकं निर्वृत्यपूजकः । स्थानेपरिष्कृते विप्रोदत्त्वा मह्यञ्चभक्तितः
तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्त्वा विप्राय सादरम् ।
अनिवेद्य च भुक्त्वा च सुरापीति भवेद् द्विजः ॥ ५६ ॥
चन्द्रसूर्य्योपरागे वै चाशौचे मृतजातयोः । स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत्
भ्रष्टद्रव्यं तथान्नञ्च धृत्वा धौते च वाससी । पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थानेपरिष्कृते
द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्य्ये द्विजातिभिः ।
निष्फलं तद्भवेत् कर्म भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५९ ॥
यात्रां युद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैथुने । वर्जयेत् श्राद्धदिवसे हविष्याशी च संयमी॥६०॥
द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद् बुधाय च । वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने ॥
सन्ध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यत्नतः । शुक्रविक्रयिणे चैव देवलाय कदाचन ॥६२॥

प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्। पात्रं भुक्त्वा तद्दिवसे मैथुनान्नरकं व्रजेत्॥

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याविक्रयकारकः।

मूल्यं गृहीत्वा यो दद्यात्स महारौरवं व्रजेत्॥ ६४॥

कन्यालोमप्रमाणान्तं वर्षञ्च पितृभिः सह। कुम्भीपाके पच्यते च पुनश्चापि पुरोहितः

तस्मात्कन्यां सुपुत्राय प्रदद्याच्च विचक्षणः। शूद्रवद् ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च॥

विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर। यदुक्तञ्च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा॥

द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम्।

राज्यानां पालनञ्चैव रणे निर्भयता तथा॥ ६८॥

नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतरक्षणम्। पुत्रतुल्यं प्रजानाञ्च दुःखिनां परिपालनम्॥

शस्त्रास्त्राणाञ्च नैपुण्यं रणे सौन्दर्य्यमेव च। तपश्च धर्मकृत्यञ्च यत्नतः कुरुते सदा॥

पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यञ्च परिपालयेत्।

नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते॥ ७१॥

हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गञ्च चतुष्टयम्। पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान्॥

रणे निमन्त्रितश्चैव दानेन विमुखो भवेत्।

रणे वा यस्त्यजेत् प्राणान् तस्य स्वर्गो यशस्करः॥ ७३॥

वैश्यानामपि वाणिज्यमीश्वरः कृषिपालने। विप्रदेवार्चनं दानं तपस्या व्रतसेवनम्॥

विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते। तत्कृषी तद्धनग्राही शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥

गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः। श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापहः॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी च पातकी।

कुम्भीपाके पच्यते स यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥ ७७॥

कुम्भीपाके तप्ततैले भुक्तः सर्पैरहर्निशम्। शब्दञ्च विकृताकारं कुरुते यमताड़नात्॥

ततश्चाण्डालयोनिः स्यात् सप्तजन्मसु पातकी।

सप्तजन्मसु सर्पश्च जलौकाः सप्तजन्मसु॥ ७९॥

जन्मकोटिसहस्रञ्च विष्ठायां जायते कृमिः। पुंश्चलीनां योनिकृमिः स भवेत् सप्तजन्मसु

गवां व्रणकृमिः स्याच्च पातकी सप्तजन्मसु । योनौ योनौ भ्रमत्येव न पुनर्जायते नरः
सन्न्यासिनाञ्च यो धर्मो मन्मुखाच्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणो भवेत्
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिकृन्तनम् । कुरुते चिन्तयेन्माञ्च ह्यायाति मम मन्दिरम्

सन्न्यासिनः पदः स्पर्शात् सद्यःपूता वसुन्धरा ।
सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज ॥ ८४ ॥
सन्न्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः ।
सन्न्यासिनं भोजयित्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८५ ॥
नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् ।
फलं सन्न्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८६ ॥

सन्न्यासीयाति सायाह्ने क्षुधितोगृहिणांगृहम् । सदन्नं वा कदन्नं वा तद्दत्तंनैव वर्जयेत्
न याचते च मिष्टान्नं न कुर्य्यात्कोपमेव च । न धनग्रहणं कुर्य्यादेकवासा निरीहितः ॥
शीतग्रीष्मे समानश्च लोभमोहविवर्जितः । तत्र स्थित्वैकरात्रञ्च प्रातरन्यत्स्थलंव्रजेत् ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम् ।
गृहं कृत्वा गृही स्यात् स्वधर्मात् पतितो भवेत् ॥ ९० ॥
कृत्वा च कृषिवाणिज्यं कुवृत्तिं कुरुते च यः ।
स सन्न्यासी हताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥ ९१ ॥

अशुभञ्च शुभं वापि स्वकर्म कुरुते यदि । वहिष्कृतः स्वधर्मो वाप्युपहास्यश्च वै भवेत्

ब्राह्मणी पतिहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा ।
एकभुक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा ॥ ९३ ॥

न धत्ते दिव्यवस्त्रञ्च गन्धद्रव्यं सुतैलकम् । स्रजञ्च चन्दनञ्चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम् ॥९४
त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणंस्मरेत् । नारायणस्य सेवाञ्चकुरुते नित्यमेव च
तन्नामोच्चारणं शश्वत् कुरुतेऽनन्यभक्तितः । पुत्रतुल्यञ्च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः ॥
मिष्टान्नं न च भुंक्ते सा न कुर्य्याद्विभवंव्रज । एकादश्यां न भोक्तव्यंकृष्णजन्माष्टमीदिने
श्रीरामस्य नवम्यान्तु शिवरात्रौ पवित्रया । अघोरायाञ्च प्रेतायां चन्द्रसूर्य्योपरागयोः॥

भ्रष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च । ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्
सन्न्यासिनाञ्च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम् । रक्तशाकं मसूरञ्च जम्बीरं पर्णमेव च ॥

अलावु वर्तुलाकारं वर्जनीयं च तैरपि ।
पर्य्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् ॥ १०१ ॥
यानस्यारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत् ।
न कुर्य्यात् केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च ॥ १०२ ॥

केशवेणीजटारूप तत्क्षौरं तीर्थकं विना । तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत न हि पश्यति दर्पणम् ॥
मुखञ्च परपुंसाञ्च यात्रां नृत्यं महोत्सवम् । नर्तनं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम् ॥
शृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम् । परमार्थं परञ्चैव निबोध कथयामि ते ॥
अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम् । गुरूणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा ॥

सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम् ।
व्याख्यानं परिशुद्धञ्च ग्रन्थाभ्यस्तञ्च सन्ततम् ॥ १०७ ॥

व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसम्मतः । शास्त्रार्थाचरणञ्चैव कर्तव्यं स्वयमेव च ॥
देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीप्सितम् । वेदोक्तभक्षणञ्चैव पवित्राचरणं सदा ॥१०९
पतिव्रतानां यं धर्मं तन्निबोध व्रजेश्वर । नित्यन्तु भर्तर्य्यौत्सुक्यात्तत्पादोदकमीप्सितम्
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया । व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः ॥
कुर्य्याच्चरणसेवाञ्च स्तवनं परितोषणम् । तदाज्ञारहितं कर्म न कुर्य्याद्धैरतःसती ॥११२
नारायणात् परं कान्तं ध्यायते सततं सती । परपुंसां मुखञ्चैव सुवेशं पुरुषं परम् ॥
यात्रां महोत्सवं नृत्यं नर्तकं गायनं व्रज । परक्रीडाञ्च सततं न हि पश्यति सुव्रता ॥

यद्भक्ष्यं स्वामिनां नित्यं तदेवमपि योषिताम् ।
न हि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता ॥ ११५ ॥

उत्तरं नोत्तरं दद्यात् स्वामिनश्च-पतिव्रता । न कोपं कुरुते शुद्धा ताड़िता चापि कोपतः

क्षुधितं भोजयेत् कान्तं दद्यात् पानञ्च भोजनम् ।
न बोधयेत्तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु ॥ ११७ ॥

पुत्राणाञ्च शतगुणं स्नेहं कुर्य्यात्पतिं सती। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्त्ता दैवतं कुलयोषितः ॥
शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी। सस्मितं वदनं कृत्वा भक्तिभावेन यत्नतः
पुरुषाणां सहस्रञ्च सती स्त्री च समुद्धरेत्। पतिः पतिव्रतानाञ्च मुच्यते सर्वपातकात्
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा। तया सार्द्धञ्च निष्कर्मी मोदते हरिमन्दिरे
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि। तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनाञ्च सतीषु च
तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत् फलं व्रज। दाने फलं यद्दातॄणां तत्सर्वं तासु सन्ततम्

स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि।
सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यश्च सन्ततम् ॥ १२४ ॥

सतीनां पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा। पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः ॥
त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता। स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवतीसदा
सतीनाञ्च पतिः साधुः पुत्रो निःशङ्क एव च। नहि तस्य भयं किञ्चिद्देवेभ्यश्च यमादपि
शतजन्म पुण्यवतां गेहे जाता पतिव्रता। पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा ॥

सती स्त्री प्रातरुत्थाय त्यक्त्वा च रात्रिवाससम्।
भर्तारञ्च नमस्कृत्य करोति स्तवनं मुदा ॥ १२६ ॥
गृहकार्य्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धौते च वाससी।
गृहीत्वा शुक्लपुष्पञ्च भक्तितः पूजयेत्पतिम् ॥ १३० ॥

स्नापयित्वा च पूतेन जलेन निर्मलेन च। तस्मैदत्त्वा धौतवस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा

आसने वासयित्वा च दत्त्वा भाले च चन्दनम्।
सर्वाङ्गलेपनं कृत्वा दत्त्वा माल्यं गलेऽपि च ॥ १३२ ॥

सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैःसुधोपमैः। संपूज्य भक्तितः कान्तं स्तुत्वा च प्रणमेन्मुदा

ओं नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा।
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा पुष्पञ्च चन्दनम् ॥ १३४ ॥

पाद्यार्घ्यं धूपदीपौ चःवस्त्रनैवेद्यमुत्तमम्। जलं सुवासितं शुद्धं ताम्बूलञ्चसुवासितम्
दत्त्वास्तोत्रंपठेद्यद्यत् कृतंवै पाठ्यमेव च। ओं नमःकान्ताय भर्त्ते च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे

नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च । नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च ॥
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः । पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च ॥

ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे ॥ १३८ ॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः ।
पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते ॥ १३९ ॥

क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतञ्चयत् । पत्नीबन्धोदयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व मे
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम् । सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज

सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः ।
पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च ॥ १४२ ॥

मुनीनाञ्च सुराणाञ्च पत्नीभिश्च कृतं पुरा । पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम्

इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता ।
नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम् ॥ १४४ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् ।
रोगी च मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ १४५ ॥

पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत् । फलञ्च सर्वं तपसां व्रतानाञ्च व्रजेश्वर
इदं स्तुत्वा नमस्कृत्य भुङ्क्ते सा तदनुज्ञया । उक्तः पतिव्रताधर्मो गृहिणां श्रूयतां व्रज

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

गृहिणां धर्मवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

द्विजदेवार्चनञ्चैव करोति सततं गृही । स्वधर्माचरणञ्चैव चातुर्वर्ण्यश्च नित्यशः ॥१॥

कुर्वन्ति गृहिणामाशां सर्वे देवादयस्तथा। विधायातिथिपूजाञ्च गृहस्थश्च सदा शुचिः
पितरः कर्मकाले च तिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः

समायाति प्रयत्नेन सायाह्ने क्षुधितोऽतिथिः।
पूजां कृत्वाशिषं लब्ध्वा प्रयाति गृहिणो गृहात् ॥ ४ ॥

अकृत्वाऽतिथिपूजाञ्च गृही भवति पातकी। त्रैलोक्यजनितं पापं लभते नात्र संशयः ॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। पितरस्तस्य देवाश्च वह्नयश्च तथैव च ॥६॥

निराशाः प्रतिगच्छन्ति गृहिणोऽतिथयो गृहात्।
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्राह्मणैर्गुरुतल्पगैः ॥ ७ ॥

तुल्यदोषो भवत्येव येनातिथिरनर्चितः। स्वात्मनः पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति

तस्मात् कृत्वा सर्वसेवां देवादींश्च शुभाशयः।
पोष्याणां भरणं कृत्वा पश्चाद् भुंक्ते स धर्मवित् ॥ ६ ॥

यस्य माता गृहे नास्ति भार्य्या च पुंश्चली तथा।
अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद् दुःखदं गृहम् ॥ १० ॥

पतिं द्वेष्टि सदा दुष्टा विषतुल्यश्च पश्यति। ददाति तस्मै नाहारं भर्त्सनं कुरुते सदा ॥
पूजितं मुनितुल्यञ्च सा च पापीयसी परम्। सन्ततं तृणवन्मत्वा न्यक्कारं कुरुते सदा
दुर्वाक्यवह्निना दग्धो मृततुल्यश्च जीवति। यावज्जीवनपर्य्यन्तं सम्प्राप्य दुष्टवंशजाम्॥

गृहिणीनां सदाचारं श्रूयतां तच्छ्रुतौ श्रुतम्।
गृहिणी पतिभक्ता च देवब्राह्मणपूजिता ॥ १४ ॥

सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम्। प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद्गोमयेन जलेन च ॥
गृहकृत्यञ्च कृत्वा च स्नात्वागत्य गृहं सती। सुरं विप्रं पतिं नत्वापूजयेद् गृहदेवताम्
गृहकृत्यं सुनिर्वृत्य भोजयित्वा पतिं सती। अतिथिं पूजयित्वा च स्वयंभुंक्तेसुखंसती
पुत्रैश्च पूजितःस्नातो शिष्यैश्च पूजितो गुरुः। आज्ञया कुरुते कर्म पुत्रःशिष्यश्चभृत्यवत्
न प्रेरयद् गुरुं तातं पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु। पित्रे च गुरवे नित्यं सर्वस्वञ्च समर्पयेत् ॥
न कुर्य्यान्नरबुद्धिश्च गुरौ पितरि सन्ततम्। कृत्वा च नरबुद्धिश्च ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम्

मातरं पूजयेद्भक्त्या पितुश्चात्यधिकां तथा। मातुः परं गुरुञ्चैव पूजयेद्भक्तियोगतः॥

पिता माता गुरुभार्य्या शिष्यः पुत्रः सदाक्षमः।
अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया ॥ २२ ॥

एवञ्चकथितं तात सर्वेषां धर्ममुत्तमम्। स्त्रीजातिर्यास्तवी शुद्धा ताश्च सर्वाःपतिव्रताः

सर्वा जातिरेकविधा चादौ सृष्टा च ब्रह्मणा।
ताः सर्वाः प्रकृतेरंशाः पवित्राः पण्डिताधिकाः ॥ २४ ॥
केदारकन्याशापेन स हि धर्मः क्षयं गतः।
तदा कोपेन धात्रा च कृत्वा स्त्री च विनिर्मिता ॥ २५ ॥
कृत्वा स्त्री त्रिविधाजातिर्ब्रह्मणा निर्मिता पुरा।
उत्तमा प्रथमा सा च मध्यमा चाधमा व्रज ॥ २६ ॥

उत्तमा पतिभक्ता सा किञ्चिद्धर्मसमन्विता। प्राणान्तेऽपि न कुरुते तं जारमयशस्करम्

पूजयेत् सा यथा कान्तं तथा देवद्विजातिथीन्।
व्रतानि चोपवासांश्च कुरुते सर्वपूजनम् ॥ २८ ॥
गुरुणा रक्षिता यत्नाज्जारञ्च न भजेद्भयात्।
सा कृत्रिमा मध्यमा च यथा किञ्चित् पतिं भजेत् ॥ २६ ॥
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन हे नन्द तासाञ्च सतीत्वमुपजायते ॥ ३० ॥

अधमा परमा दुष्टाऽत्यन्तासद्वंशजा तथा। अधर्मशीला दुःशीला दुर्मुखा कलहान्विता॥
पतिं भर्त्सयते नित्यं जारञ्च सेवते सदा। दुःखं ददाति कान्ताय विषतुल्यञ्च पश्यति॥
जारद्वारमुपायेन हन्ति कान्तं मनोहरम्। धर्मिष्ठञ्च वरिष्ठञ्च गरिष्ठञ्च महीतले ॥ ३३॥
कामदेवसमं चापि जारं पश्यति कामतः। शुभदृष्ट्या कटाक्षेण शश्वत्पापीयसी मुदा॥

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं रतिशूरकम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां कामिनीनां निरन्तरम् ॥ ३५ ॥

ददाति भर्त्रे नाहारं विषोक्तिं वक्ति सन्ततम्। अधर्मञ्चिन्तयेच्छश्वज्जारञ्च परमं मुदा॥

गुरुभिर्भर्त्सिता सा च रक्षिता च शतेन च।
तथापि जारं कुरुते नापि साध्या नृपैरपि ॥ ३७ ॥
नास्ति तस्याः प्रियं किञ्चित् सर्वं कार्य्यवशेन च।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥ ३८ ॥

विद्युदाभा जले रेखा तस्याः प्रीतिस्तथैव च। अधर्मयुक्ता सततं कपटं वक्ति निश्चितम्
व्रते तपसि धर्मे च न मनो गृहकर्मणि। न गुरौ न च देवेषु जारे स्निग्धञ्च चञ्चलम् ॥

स्त्रीजातित्रिविधानाञ्च कथा च कथिता मया।
भक्तानां त्रिविधानाञ्च लक्षणं श्रूयतामिति ॥ ४१ ॥

तृणशय्यारतो भक्तो मन्नामगुणकीर्तिषु। मनो निवेशयेत् भक्त्या संसारसुखकारणम् ॥
ध्यायते मत्पदाब्जञ्च पूजयेद्भक्तिभावतः। अहैतुकीं तस्य देवाः सङ्कल्परहितस्य च ॥

सर्वसिद्धिं न वाञ्छन्ति तेऽणिमादिकमीप्सिताम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा सुरत्वं सुखकारणम् ॥ ४४ ॥
दास्यं विना न हीच्छन्ति सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नैव निर्वाणमुक्तिञ्च सुधापानमभीप्सितम् ॥ ४५ ॥

वाञ्छन्तिनिश्चलां भक्तिं मदीयामतुलामपि। स्त्रीपुंविभेदोनास्त्येव सर्वजीवेषु भिन्नता

तेषां सिद्धेश्वराणाञ्च प्रवराणां व्रजेश्वर।
क्षुत्पिपासादिकं निद्रां लोभमोहादिकं रिपुम् ॥ ४७ ॥
त्यक्त्वा दिवानिशं माञ्च ध्यायन्ते च दिगम्बराः।
स मद्भक्ततमो नन्द श्रूयतां मध्यमादिकम् ॥ ४८ ॥

नासक्तः कर्मसु गृही पूर्वप्राक्तनतः शुचिः। करोति सततं कर्म पूर्वकर्मनिकृन्तनम् ॥

न करोत्यपरं यत्नात् सङ्कल्परहितः स च।
सर्वं कृष्णस्य यत्किञ्चिन्नाहं कर्ता च कर्मणः ॥ ५० ॥

कर्मणा मनसा वाचा सततं चिन्तयेदिति। न्यूनभक्तश्च तन्न्यूनः स च प्राकृतिकः श्रुतौ
यमं वा यमदूतं वा स्वप्नेन च न पश्यति। पुरुषाणां सहस्रञ्च पूर्वभक्तः समुद्धरेत् ॥

पुंसां शतं मध्यमश्च तच्चतुर्थश्च प्राकृतः । भक्तश्च त्रिविधस्तात कथितश्च तवाज्ञया ॥
ब्रह्माण्डरचनाख्यानं श्रूयतां सावधानतः । ब्रह्माण्डरचनार्थञ्च भक्ता जानन्ति यत्नतः ॥

मुनयश्च सुराः सन्तः किञ्चिज्जानन्ति दुःखतः ।
जानामि विश्वं सर्वार्थं ब्रह्मानन्तो महेश्वरः ॥ ५५ ॥

धर्मः सनत्कुमारश्च नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती ॥

वेदाश्च वेदमाता च सर्वज्ञा राधिका स्वयम् ।
एते जानन्ति विश्वार्थं नान्यो जानाति कश्चन ॥ ५७ ॥
वैषम्यार्थञ्च सुधियः सर्वे विज्ञातुमक्षमाः ।
नित्याकाशो यथात्मा च तथा नित्या दिशो दश ॥ ५८ ॥

यथा नित्या च प्रकृतिस्तथैव विश्वगोलकः । गोलोकश्चयथा नित्यस्तथा वैकुण्ठएवच

एकदा मयि गोलोके रासे नित्यं प्रकुर्वति ।
आविर्भूता च वामाङ्गाद् बाला षोड़शवार्षिकी ॥ ६० ॥

श्वेतचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा । अतीवसुन्दरी रामा रमणीनां परावरा ॥ ६१ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या कोमलाङ्गी मनोहरा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नाभरणभूषिता ॥

यथा जलदपङ्क्तिश्च बलाकाभिर्विभूषिता ।
सिन्दूरविन्दुना चारुचन्द्रचन्दनविन्दुभिः ॥ ६३ ॥
कस्तूरीविन्दुभिः सार्धं सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वला ।
अमूल्यरत्ननिर्माणसुस्निग्धकिरणोज्ज्वला ॥ ६४ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुज्ज्वला । कुङ्कुमालक्तकस्तूरीचारुचन्दनपत्रकैः ॥ ६५ ॥

विचित्रैश्च सुचित्रैश्च सुकपोलस्थलोज्ज्वला ।
खगेन्द्रचञ्चुविजितनासा मौक्तिकशोभिता ॥ ६६ ॥

गजेन्द्रगण्डनिर्मुक्तमुक्ताभूषणभूषिता । शुक्त्याविमुक्तमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥ ६७॥

वलिता कलितातीव पक्वबिम्बाधरा वरा ।
शश्वत्पूर्णेन्दुनिन्दास्या पद्मनिन्दितलोचना ॥ ६८ ॥

कृष्णसारनिभोद्भिन्नसुचारुकज्जलोज्ज्वला। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरकङ्कणोज्ज्वला ॥

मणीन्द्रराजिराजीभिः शङ्खयुग्मकरोज्ज्वला।

रत्नाङ्गुलीयकैरेभिरमृताङ्गुलिभूषिता ॥ ७० ॥

रत्नेन्द्रराजराजेन क्वणन्मञ्जीररञ्जिता। रत्नपाशकराजीभिः पादाङ्गुलिविराजिता ॥७१॥

सुन्दरालक्तरागेण चरणाधःस्थलोज्ज्वला। गजेन्द्रगामिनी रामा कामिनीवामलोचना ॥

मां ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका। रासे संभूय रामा सा दधार पुरतो मम ॥

तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिः प्रपूजिता।

प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी ॥ ७४ ॥

शक्ता स्यात् सर्वकार्येषु तेन शक्तिः प्रकीर्तिता।

सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः ॥ ७५ ॥

सर्वमङ्गलदक्षा सा तेन स्यात् सर्वमङ्गला। वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्मूर्तिभेदे सरस्वती ॥

प्रसूय वेदान् विदिता वेदमाता च सा सदा।

सावित्री सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि ॥ ७७ ॥

पुरा संहृत्य दुर्गञ्च सा दुर्गा च प्रकीर्तिता। तेजसः सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती ॥

तेनाद्या प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वासुरविमर्दिनी। सर्वानन्दा च सानन्दा दुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥

शत्रूणां भयदाता च भक्तानां भयहारिणी। दक्षकन्या सती सा च शैलजातेति पार्वती

सर्वाधारस्वरूपा सा कलया सा वसुन्धरा। कलया तुलसी गङ्गा कलया सर्वयोषितः

सृष्टिं करोमि च यया तात शक्त्या पुनः पुनः।

दृष्ट्वा तां रासमध्यस्थां मम क्रीड़ा तया सह ॥ ८२ ॥

बभूव सुचिरं तात यावद्वै ब्रह्मणः शतम्। अत्यद्भुतं कौतुकञ्च महाशृङ्गारमीप्सितम् ॥

तयोर्द्वयोर्धर्मराशिः सुस्राव रासमण्डले। तस्मान्मनोहरं जज्ञे नाम्नाकारसरोवरम् ॥

पपात धर्मधाराधोवेगेन विश्वगोलके। बभूव जलपूर्णञ्च ब्रह्माण्डानाञ्च गोलकम् ॥

जलपूर्णं पुरा सर्वं सृष्टिशून्यं व्रजेश्वर।

शृङ्गारान्ते च तस्याञ्च वीर्य्याधानं मया कृतम् ॥ ८६ ॥

दधार गर्भं सा राधा यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ।
सुस्राव सा तदन्ते च डिम्बञ्च परमाद्भुतम् ॥ ८७ ॥
चुकोप देवी तं दृष्ट्वा रुरोद विषसाद सा ।
पादेन प्रेरयामास तमधो विश्वगोलके ॥ ८८ ॥
स पपात जले तात सर्वाधारो महान् विराट् ।
दृष्ट्वाऽपत्यं जलस्थञ्च मया शप्ता च सा पुरा ॥ ८९ ॥

अनपत्या च सा राधा मच्छापेन पुरा विभो । तेन प्रभूता क्रमतो दुर्गा लक्ष्मीःसरस्वती चतस्रः परिपूर्णास्ताःप्रसूताश्चसुनिश्चितम् । देव्योऽन्याश्चापिकामिन्योताःप्रसूताव्रजेश्वर कलया प्रभवं यासां कलांशांशेन वा व्रज । जज्ञे महान् विराड्येन डिम्बेन कलयाश्रयः अमृताङ्गुष्ठपीयूषं मया दत्तं पपौ च सः । जले स्थावररूपश्च शेते च निजकर्मणः ॥९३॥

उपाधानं जलं तल्पं तस्य योग वलेन च ।
तस्य लोम्नाञ्च कूपानि जलपूर्णानि सन्ततम् ॥ ९४ ॥

प्रत्येकं क्रमतस्तेषु शेते क्षुद्रविराट् पुनः । सहस्रपत्रं कमलं जज्ञे क्षुद्रस्य नाभितः ॥ तत्र जज्ञे वरो ब्रह्मा तेनायं कमलोद्भवः । तत्राविर्भूय स विधिश्चिन्ताग्रस्तो बभूव सः ॥

कस्मादेहः क्व माता मे पिता वा क्व च बान्धवः ।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च बभ्राम कमलान्तरे ॥ ९७ ॥
ततो दिव्यं पञ्चलक्षं सस्मार तपसा च माम् ।
तदा मया दत्तमन्त्रं जजाप कमलान्तरे ॥ ९८ ॥

दिव्यसप्तवर्षलक्षं नियतं संयतः शुचिः । तदा मत्तो वरं लब्ध्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः

मायया प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।
दिक्पाला द्वादशादित्या रुद्राश्चैकादशापि च ॥ १०० ॥

नवग्रहाष्टौ वसवो देवाः कोटित्रयं तथा । ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ भूतादयो राक्षसाश्चाप्येवंसर्वं चराचरम् । विश्वे विश्वे विनिर्माणस्वर्गाःसप्त क्रमेण च सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपवसुन्धरा । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता तमोयुक्तं स्थलं तथा ॥

पातालाश्च तथा सप्त ब्रह्माण्डमेभिरेव च। विश्वे विश्वे चन्द्रसूर्यौ पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम्
तीर्थान्येतानि सर्वत्र गङ्गादीनि व्रजेश्वर। यावन्ति लोमकूपानि महाविष्णोः क्रमेण च

विश्वान्येव हि तावन्ति ह्यसंख्यातानि च ध्रुवम्।
विश्वेषामूद्र्ध्वभागे च वैकुण्ठश्च निराश्रयः॥ १०६॥
मदिच्छया विनिर्माणो वेदाः कथितुमक्षमाः।
कुयोगिनामदृष्टश्चाभक्तानाञ्च विनिश्चितम्॥ १०७॥

तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः। वायुना धार्य्यमाणश्च विचित्रःपरमाश्रयः
अतीवरम्यनिर्माणो नित्यरूपो मदिच्छया। शतशृङ्गेण शैलेन पुण्यवृन्दावनेन च॥१०६
सुरासमण्डलेनापि नद्या विरजया युतः। कोटियोजनविस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा व्रज॥
दैर्घ्यं तस्य शतगुणं परितः परमा शुभा। अमूल्यरत्ननिकरैर्हीरमाणिक्ययोस्तथा॥१११
मणीनां कौस्तुभादीनामसंख्यानां मनोहरा। अमूल्यरत्ननिर्माणं तत्रापि प्रतिमन्दिरम्॥
मनोहरञ्च प्राकारमदृष्टं विश्वकर्मणा। गोपीभिर्गोपनिकरैर्वेष्टितं कामधेनुभिः॥११३॥
कल्पवृक्षैः पारिजातैरसंख्यैश्च सरोवरैः। पुष्पोद्यानैः कोटिभिश्च संवृतं रासमण्डलम्
वेष्टितं वेष्टितैर्गोपैर्मन्दिरैः शतकोटिभिः। रत्नप्रदीपयुक्तैश्च पुष्पतल्पसमन्वितैः॥११५॥
सुगन्धिचन्दनामोदैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः। क्रीड़ोपयुक्तैर्भोगैश्च ताम्बूलैर्वासितैर्जलैः॥
धूपैः सुरभिरम्यैश्च माल्यैश्च रत्नदर्पणैः। रक्षकैरक्षितं शश्वद्राधादासीत्रिकोटिभिः॥

अमूल्यरत्नाभरणैर्वह्निशुद्धांशुकैरपि।
लक्षमत्तगजेन्द्राणां वेष्टितञ्च बलैः क्रमात्॥ ११८॥

नवयौवनसम्पन्नै रूपैर्निरुपमैरपि। रम्यञ्च वर्तुलाकारं चन्द्रविम्बं यथा व्रज॥ ११६॥
अमूल्यरत्नरचितं दशयोजनविस्तृतम्। कस्तूरीकुङ्कुमै रम्यैः सुगन्धिचन्दनार्चितम्॥
आवृतं मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः। दधिलाजैश्च पर्णैश्च स्निग्धदूर्वाङ्कुरैः फलैः॥
श्रीरामकदलीस्तम्भैरसंख्यैश्च मनोहरैः। पट्टसूत्रनिबद्धैश्च स्निग्धैश्चन्दनपल्लवैः॥ १२२॥
चन्दनासक्तमाल्यैश्च भूषणैश्च विभूषितम्। अमूल्यरत्नरचितं शतशृङ्गमनोहरम्॥१२३॥
कोटियोजनमूद्र्ध्वञ्च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम्। शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्

अतीवकमनीयञ्च वेदानिर्वचनीयकम्। प्राकारमिव तस्यापि गोलोकस्य मनोहरम्॥
परितो वेष्टितं रम्यं हीरहारसमन्वितम्। तत्र वृन्दावनं रम्यं शुक्लं चन्दनपादपैः ॥१२६
कल्पवृक्षैश्च रम्यैश्च मन्दारैः कामधेनुभिः।
शोभितं शोभनाढ्यैश्च पुण्योद्यानैर्मनोहरैः ॥ १२७ ॥
क्रीड़ासरोवरै रम्यैः सुरम्यै रतिमन्दिरैः। अतीवरम्यं रहसि रासयोग्यस्थलान्वितम्॥
रक्षितं रक्षकै रम्यैरसंख्यैर्गोपिकागणैः। परितो वर्तुलाकारं त्रिलक्षयोजनं वरम् ॥१२९
षट्पदध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतान्वितम्। तत्राक्षयो वटो रम्यो रहस्ये वहुविस्तृतः॥
सहस्रयोजनोद्ध्वश्च परितश्च चतुर्गुणः। गोपीनां कल्पवृक्षश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदः॥
क्रीड़ान्वितैरावृतश्च राधादासीत्रिलक्षकैः। विरजातीरनीराणां वायुना शीतलेन च॥
पुष्पान्वितेन मन्देन पवित्रश्च सुगन्धिना। दासीगणैरसंख्यैश्च वृन्दावनविनोदिनी॥
तत्र क्रीड़ति राधा सा मम प्राणाधिदेवता। सेयं श्रीदामशापेन वृषभानुसुताऽधुना॥
ब्रह्मादिदेवैः सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः पूजिता व्रज। सिद्धैर्गुणैर्वलैर्वुद्ध्या ज्ञानयोगैश्च विद्यया॥
तात सर्वप्रकारेण वन्द्या मत्सदृशी प्रिया ॥ १३५ ॥
इत्येवं कथितं नन्द ब्रह्माण्डानाञ्च वर्णनम्।
यथोचितं परिमितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे ब्रह्माण्डवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

चतुर्णां वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम्।

नन्द उवाच।

वर्णानाञ्च चतुर्णाञ्च भक्ष्याभक्ष्यञ्चसाम्प्रतम्। विपाकंकर्मणाञ्चैव सर्वेषांप्राणिनामपि

कथयस्व महाभाग कारणानाञ्च कारणम् ।
त्वत्तोऽन्यं कं च पृच्छामि नितान्तं सन्तमीश्वरम् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

भक्ष्याभक्ष्यं चतुर्णाञ्च वर्णानाञ्च यथोचितम् ।
वेदोक्तं श्रूयतां तात सावधानं निशामय ॥ ३ ॥

अयःपात्रे पयःपानं गव्यं सिद्धान्नमेव च । भ्रष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलोदकं तथा ॥४॥
फलं मूलञ्च यत्किञ्चिदभक्ष्यं मनुरब्रवीत् । दग्धान्नं तप्तसौवीरमभक्ष्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गव्यञ्च ताम्रपात्रस्थं सर्वं मद्यं घृतं विना ॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टं घृतभोजनम् । दुग्धं सलवणञ्चैव सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥
अभक्ष्यं मधुमिश्रञ्च घृतं तैलं गुडं तथा । आर्द्रकं गुडसंयुक्तमक्ष्यं श्रुतिसम्मतम् ॥ ८ ॥
पीतशेषजलञ्चैव माघे च मूलकं तथा । उपोदिकाञ्च शयने सदा प्राज्ञः परित्यजेत् ॥ ६

द्विभोजनञ्च दिवसे सन्ध्ययोर्भोजनं तथा ।
भक्ष्यञ्च रात्रिशेषे च ध्रुवं प्राज्ञः परित्यजेत् ॥ १० ॥
पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च ।
स्वस्तिकं गुडकञ्चैव क्षीरं तक्रं तथा मधु ॥ ११ ॥
हस्ताद्धस्तगृहीतञ्च सद्यो गोमांसमेव च ।
कर्पूरं रौप्यपात्रस्थमभक्ष्यं श्रुतिसम्मतम् ॥ १२ ॥

परिवेषणकारी चेद्बोक्कारं स्पृशते यदि । अभक्ष्यञ्च तदन्नञ्च सर्वेषामेव सम्मतम् ॥

नकुलानां गण्डकानां महिषाणाञ्च पक्षिणाम् ।
सर्पाणां शूकराणाञ्च गर्दभानां विशेषतः ॥ १४ ॥
मार्जाराणां शृगालानां कुक्कुटानां व्रजेश्वर ।
व्याघ्राणामपि सिंहानां त्याज्यं मांसं नृणां सदा ॥ १५ ॥
जलौकसाञ्च नक्राणां गोधिकानां तथैव च ।
मण्डुकानां कर्कटीनां चुञ्चुकानाञ्च निश्चितम् ॥ १६ ॥

गवाञ्च चमरीणाञ्च न कलौ मांसभक्षणम् । हस्तिनां घोटकानाञ्च नृणामेवच रक्षसाम्
दंशश्च मशकश्चैव मक्षिका च पिपीलिका । अन्येषाञ्च निषिद्धानां लोके वेदे व्रजेश्वर
वानराणां भल्लुकानां शरभाणां तथैव च । निषिद्धं मृगनाभीनां गर्दभानाञ्च मांसकम्
अभक्ष्यं महिषीणाञ्च दुग्धं दधि घृतं तथा । स्वस्तिकञ्च तथा तत्र विप्राणां नवनीतकम्
मांसमुच्चैःश्रवसकं तस्य दुग्धादिकं तथा । वर्णानाञ्च चतुर्णाञ्चाप्यभक्ष्यञ्च श्रुतौ श्रुतम्
अभक्ष्यमार्द्रकञ्चैव सर्वेषाञ्च रवेर्दिने । पर्युषितं जलं चान्नं विप्राणां दुग्धमेव च ॥२२

वर्णानाञ्च चतुर्णाञ्चाप्यवीरान्नस्य भक्षणम् ।
तदन्नञ्च सुरातुल्यं गोमांसाधिकमेव च ॥ २३ ॥

अवीरान्नञ्च यो भुंक्ते ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । पितृदेवार्चनं तस्य निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥
ब्राह्मणानां वैष्णवानामभक्ष्यं मत्स्यमेव च । इतरेषामभक्ष्यञ्च पञ्चपर्वसु निश्चितम् ॥
पितृदेवावशेषे च भक्ष्यं मांसं न दूषितम् । पञ्चपर्वसु त्याज्यञ्च सर्वेषां मनुरब्रवीत् ॥
असंस्कृतञ्च लवणं तैलञ्चाभक्ष्यमेव च । भक्ष्यं पवित्रं सर्वेषां व्यञ्जनं वह्निसंस्कृतम् ॥
एकहस्ते धृतं तोयमभक्ष्यं सर्वसम्मतम् । आविलं क्रमियुक्तञ्चापरिशुद्धञ्च निर्मलम् ॥
अभक्ष्यं ब्राह्मणानाञ्च वैष्णवानां विशेषतः । अनिवेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

पिपीलिकामिश्रितञ्च मधु गव्यं गुड़ं तथा ।
यत्किञ्चिद्वस्तु वा तात न भक्ष्यञ्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ३० ॥

पक्षिभक्ष्यं कीटभक्ष्यं शुद्धं पक्वफलं तथा । काकभक्ष्यमभक्ष्यञ्च सर्वेषां द्रव्यमेव च ॥
घृतपक्वं तैलपक्वं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम् । अभक्ष्यं ब्राह्मणानाञ्च शूद्रभक्ष्यञ्च पीठकम्
सर्वेषामशुचीनाञ्च जलमन्नं परित्यजेत् । अशौचान्तात्परदिने शुद्धमेव न संशयः ॥
विपाकं कर्मणामेव दुष्करं श्रुतिसम्मतम् । भक्ष्याभक्ष्यञ्च कथितं यथाज्ञानं व्रजेश्वर ॥
क्रमाच्चतुर्षु वेदेषु चोक्तं मतचतुष्टयम् । सर्वेषां सारभूतञ्च कथयामि पितः शृणु ॥३५॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
तीर्थानाञ्च सुराणाञ्च साहाय्येन नृणामपि । किञ्चिद्भवति साहाय्यं कायव्यूहेन सर्वतः

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि निश्चितं मत्पराङ्मुखम् ।

न निष्पुनन्ति हे तात सुराकुम्भमिवापगाः ॥ ३८ ॥

प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः। सर्वारम्भेण वैश्येन्द्र दानेन योगतोपि वा

शुभाशुभञ्च यत् कर्म विना भोगान्न च क्षयः।

भोगेन शुद्धिमाप्नोति ततो मुक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ ४० ॥

न नष्टं दुष्कृतं कर्म सुकृतेन च कर्मणा। न नष्टं सुकृतं कर्म कृतेन दुष्कृतेन च ॥ ४१ ॥

यज्ञेन तपसा वापि व्रतेनानशनेन च। तीर्थस्नानेन दानेन जपेन नियमेन च ॥ ४२ ॥

भुवः प्रदक्षिणेनैव पुराणश्रवणेन च। उपदेशेन पुण्येन पूजया गुरुदेवयोः ॥ ४३ ॥

स्वधर्माचरणेनैवातिथीनां पूजनेन च। ब्रह्मणां पूजनेनैव भोजनेन विशेषतः ॥ ४४ ॥

यद्दत्तमपि विप्राय तत् प्राप्तं पूर्णरूपतः। बीजरूपञ्च तद्दानं क्षेत्ररूपञ्च ब्राह्मणः ॥ ४५ ॥

एकेन कर्मणा तात स्वर्गं प्राप्नोति मानवः।

कर्मणा न हि मोक्षञ्च तदेव मम सेवया ॥ ४६ ॥

स्वर्गञ्च सुकृतेनैव नरकं दुष्कृतेन च। व्याधिर्जन्म च योनौ च कुत्सिते न ततः शुचिः

गोघ्नो यो ब्राह्मणानाञ्च कामतश्चोपपातकी।

दन्दशूकत्वमाप्नोति गोलोमसमवर्षकम् ॥ ४८ ॥

सर्पेण भक्षितस्तेन ज्वालया गरलस्य च। तृषितो व्यथितश्चैव निराहारः कृशोदरः ॥

ततः कुण्डात् समुत्थाय गौर्भवेल्लोमवर्षकम्।

ततः कुष्ठी च चाण्डालो वर्षलक्षं ततो नरः ॥ ५० ॥

तदा भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठयुक्तो हि कर्मणा।

भोजयित्वा विप्रलक्षं निर्व्याधिश्च भवेच्छुचिः ॥ ५१ ॥

अकामतस्तदर्धञ्च क्षत्रियस्यापि कामतः। अकामतस्तदर्धञ्च तदर्धञ्चविशस्तथा ॥ ५२ ॥

तदर्धं शूद्रगोघ्नश्च भुंक्ते पापं न संशयः। प्रायश्चित्तेन शुद्धश्च भुंक्ते शेषञ्च कर्मणः ॥५३॥

अनुकल्पे चतुर्थञ्च पापं भुंक्ते न संशयः। चतुर्गुणञ्च गोघ्नानां ब्राह्मणानाञ्च पातकम् ॥

भुंक्ते पापञ्च ब्रह्मघ्नो ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा।

क्रमेणानेन वोध्यञ्च कामतोऽकामतोऽपि वा ॥ ५५ ॥

प्रायश्चित्तं जन्मकर्मव्याधिरेव न संशयः ।
गोघ्नो भवति गौश्चापि यावद्वर्षञ्च निश्चितम् ॥ ५६ ॥
चतुर्गुणञ्च तेषाञ्च ब्रह्मघ्नो विट्कृमिर्भवेत् । ततोभवति म्लेच्छश्च तावद्वर्षचतुर्गुणम् ॥
ततश्चान्धो भवेद्विप्रः पूर्वेषाञ्च चतुर्गुणम् । ब्राह्मणानां चतुर्लक्षं भोजयित्वा शुचिर्भवेत्
चक्षुष्मांश्च यशस्वी च भवेत्सोऽप्यतिपातकात् ।
स्त्रीघ्नश्चतुर्णां वर्णानां वेदे सोऽप्यतिपातकी ॥ ५९ ॥
कालसूत्रञ्च प्राप्नोति स्त्रीलोमसमवर्षकम् । भक्षितः कृमिणा तत्र निराहारो व्यथायुतः
ततो भवति लोके च तावद्वर्षञ्च पातकी ।
ततः पापी भवेत्सोऽपि यक्ष्मग्रस्तश्च कर्मणा ॥ ६१ ॥
वर्षाणां शतकञ्चैव विप्रलक्षञ्च भोजयेत् । ततः शुद्धो ब्राह्मणश्च विद्वांस्तपसि संयतः
किञ्चिद्भुङ्क्ते पापशेषं स्वर्णदानाच्छुचिर्भवेत् ।
गर्भघ्नश्च महापापी संप्राप्नोति शुनीमुखम् ॥ ६३ ॥
वर्षाणां शतकञ्चैव घोटकश्च भवेद् ध्रुवम् । वर्षाणां शतकञ्चैव सूक्ष्मशस्त्रेण पीड़ितः
ततः पापी भवेद्वैश्यो द्रव्ययुक्तो हि कर्मणा ।
पञ्चाशद्वर्षपर्य्यन्तं स्वर्णदानाद्भवेच्छुचिः ॥ ६५ ॥
ततः स्वकुलजातोऽपि निर्व्याधिर्ब्राह्मणः शुचिः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियघ्नश्च क्षत्रियो वा विना रणात् ॥ ६६ ॥
तप्तशूलञ्च प्राप्नोति वर्षाणाञ्च सहस्रकम् । क्वथितं तप्तलोहेन चार्तनादं करोति च॥६७॥
ततो भवेन्मत्तगजो वर्षाणां शतकं तथा । ततो रक्तविकारी च शूद्रो वर्षशतं तथा ॥
गजदानेन मुक्तश्च व्याधितश्च ततो द्विजः ।
वैश्यघ्नश्चापि वैश्यश्च शूद्रघ्नो वैश्य एव च ॥ ६९ ॥
वैश्यघ्नश्चापि शूद्रश्च समपापं लभेद् ध्रुवम् । कृमिकुण्डञ्च प्राप्नोति वर्षाणां शतकंतथा
कृमिभिर्भक्षितो दुःखी किरातश्च भवेत्ततः । वर्षाणां शतकञ्चैव कृमिव्याधिसमन्वितः ॥
ततो मन्दाग्नियुक्तश्च ब्राह्मणो दैन्यवान् व्रज । पञ्चाशद्वर्षपर्य्यन्तं दुर्बलश्च कृशोदरः ॥

मुक्तिर्भवति युक्तेन तीर्थे चाश्वप्रदानतः। शूद्रघ्नो ब्राह्मणश्चैव कामतोऽकामतोऽपि वा
सावित्रीलक्षजाप्येन तदर्धेन शुचिर्भवेत्। चतुर्वर्णः कुक्कुटघ्नो ह्यविशस्तश्च शम्भुना॥
वर्षाणां शतकञ्चैव प्राप्नोति रौरवं नरः। ततो भुङ्क्ते कुक्कुटश्च वर्षाणामपि षोड़श॥
ततः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुटेन च। गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः
मार्जारघ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः। विप्राय लवणं दत्त्वा षट्पलञ्च प्रमुच्यते
हत्वा सर्पांश्चतुर्वर्णो मम पादेन चिह्नितः। ब्रह्महत्याचतुर्थञ्च पातकञ्च लभेद् ध्रुवम्॥

असिपत्रञ्च नरकं वर्षाणां शतकं तथा।
आप्नोति यातनां युक्तो विच्छिन्नस्तीक्ष्णधारया॥ ७६॥

ततो भवति सर्पश्च दुन्दुभो वर्षपञ्चकम्। नरेण तारितो दुःखी मृत्योर्भवति पीड़ितः
ततो भवेन्नरः पापी ज्वरयुक्तो हि दुर्बलः। वर्षाणां पञ्चकेनैव मृतो भवति कर्मणा॥

ततो भवति हस्ती च घोटको वा व्रजेश्वर।
यावद्विंशतिवर्षञ्च ततः शूद्रो भवेद् ध्रुवम्॥ ८२॥

अहङ्कृतीर्व्याधियुक्तो रौप्यदानेन मुच्यते। ब्राह्मणानाञ्च शतकं भोजयित्वाशुचिर्भवेत्
क्षुद्रजन्तुवधेनैव क्षुद्रजन्तुर्भवेन्नरः। वर्षाणां शतकञ्चैव क्षुद्रव्याधिं तरेत्ततः॥ ८४॥

कृपा कार्या सता शश्वदहिंस्रेषु च जन्तुषु।
हिंसायां न हि दोषञ्च हिंस्राणञ्च व्रजेश्वर॥ ८५॥

अश्वत्थघ्नश्चतुर्वर्णा ब्रह्महत्याचतुर्थकम्। पापञ्च लभते तात चासिपत्रं व्रजेद् ध्रुवम्॥

स तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण विच्छिन्नश्च दिवानिशम्।
वर्षाणां शतकञ्चैव भुङ्क्ते परमयातनाम्॥ ८७॥

ततो भवति वृक्षश्च शालमलिर्वर्षलक्षकम्। ततो भवति शूद्रश्च छिन्नाङ्गो व्याधिसंयुतः
यावज्जीवनपर्यन्तं ततो विप्रो भवेद् ध्रुवम्। व्रणव्याधिसमायुक्तो मुच्यते स्वर्णदानतः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदाता च कृतघ्नोऽतिकृतघ्नकः।
विश्वासघाती मित्रघ्नो विप्राणां धनहारकः॥ ६०॥

शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्राणां शवदाहकः। शूद्राणां सूपकश्चैव वृषवाहकपातकी॥६१॥

धावको देवलश्चापि चैतेऽतिपापिनस्तथा ।
कुम्भीपाकं प्रयान्त्येव वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ ६२ ॥
तत्रैव तप्ततैलेन सन्तप्तश्च दिवानिशम् । भक्षितो व्याधितश्चैव सर्पाकारेण जन्तुना ॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ।
श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो रोगी भवेत्ततः ॥ ६४ ॥
मन्दाग्निज्वरसंयुक्तः पञ्चाशद्वर्षकं तथा । सुवर्णानां शतपलं दत्त्वा शुद्धो भवेद् ध्रुवम्
चतुर्वर्णो वस्त्रहारी गव्यहारी च मानवः । रौप्यमुक्तापहारी च शूद्रद्रव्यापहारकः ॥
वर्षणाञ्च सहस्रञ्च वकजातिर्भवेद् ध्रुवम् ।
मूत्रकुण्डञ्च वै भुक्त्वा वर्षाणां शतकं तथा ॥ ६७ ॥
ततो भवेच्छूद्रजातिर्वर्षाणां शतकं व्रज । कुष्ठव्याधिसमायुक्तो गलितश्चैव पातकी ॥
ततो भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठावशेषसंयुतः । स्वर्णषट्पलदानेन व्याधितो मुच्यते शुचिः ॥
कोशापहारकश्चैव फलापहारकस्तथा । यक्षः पृथिव्यां सम्भूतो लीलाद्रव्यापहारकः ॥
वर्षाणां शतकञ्चैव चापपक्षी भवेद् ध्रुवम् । ततो भवेत् कृष्णवर्णः शूद्रश्च भारते भुवि
ततो भवेद् ब्राह्मणश्चाप्यधिकाङ्गोऽपि जन्मभिः ।
पुनर्जन्म द्विजो भूत्वा मुच्यते विप्रभोजनात् ॥ १०२ ॥
पक्कद्रव्यापहारी च पशुयोनिर्भवेद् ध्रुवम् ।
यस्याण्डकोशो गन्धाक्तः कस्तूरी यस्य नाम च ॥ १०३ ॥
सप्तजन्म मृगो भूत्वा ततो भवति गन्धकः । जन्मैकञ्च ततः शूद्रो गलत्कुष्ठीवजन्मनि
ततो रोगावशेषेण संयुतो ब्राह्मणः कृशः । स्वर्णषट्पलदानेन मुच्यते नात्र संशयः ॥
धान्यापहारी दुःखी च कृपणः सप्तजन्मसु ।
विष्ठाकुण्डं वर्षशतं सम्प्राप्य मुच्यते भिया ॥ १०६ ॥
स्वर्णापहारी कुष्ठी च मानवः पतितो भवेत् ।
स्वर्णदानप्रतिग्राही विट्कुण्डञ्च प्रयाति च ॥ १०७ ॥
ततो वर्षशतं भुक्त्वा पुरीषञ्च दिवानिशम् । ततो व्याधो भवेच्छूद्रो रक्तदोषेण संयुतः

तज्जन्म पातकं भुक्त्वा ब्राह्मणश्च पुनर्भवेत्। व्याधिशेषोपयुक्तश्च मुच्यते स्वर्णदानतः

अगम्यानाञ्च गामी च पूर्वोक्तं रौरवं व्रजेत्।
कुम्भीपाकं महाघोरं वर्षाणाञ्चाप्यसंख्यकम् ॥ ११० ॥
ततो भवेत् पुंश्चलीनां योनीनाञ्च कृमिस्तथा।
वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च विट्कृमिर्वर्षलक्षकम् ॥ १११ ॥
पशुयोनिर्भवेत्तस्मात्तस्माच्च क्षुद्रजन्तवः।
ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्ततः शूद्रोऽधमस्तदा ॥ ११२ ॥

ततो भवति विप्रश्च व्याधियुक्तो नपुंसकः। पुनश्च ब्राह्मणो भूत्वा तीर्थपर्य्यटनेन च ॥
क्रमेण शुद्धो भवति वंशहीनश्च पातकात्। भोजयित्वा विप्रलक्षं पुत्रञ्च लभते शुचिः ॥
मानवः क्रोधयुक्तश्च गर्दभः सप्तजन्मसु। मानवः कलहाविष्टः सप्तजन्मसु वायसः ॥

शालग्रामप्रतिग्राही कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्षाणां शतकञ्चैव खञ्जराटी भवेत्ततः ॥ ११६ ॥
लोहचोरश्च निर्वंशो मषीचोरश्च कोकिलः।
शुकोऽप्यञ्जनचोरश्च मिष्टचोरः कृमिर्भवेत् ॥ ११७ ॥

विप्रद्वेषी गुरुद्वेषी शिरसाश्च कृमिर्भवेत्। पुंश्चलीं कामिनीं तात भुक्त्वा च रौरवं व्रजेत्

ततो वृथाकृमिश्चैव वर्षाणां शतकं तथा।
ततोऽपि विधवा चैव वन्ध्या च सप्तजन्मसु ॥ ११९ ॥
अस्पृश्या जातिहीना च छिन्ननासा भवेत् क्रमात्।
रक्तद्रव्यापहारी च रक्तदोषान्वितो भवेत् ॥ १२० ॥

आचारहीनो यवनः खञ्जो भवति हिंसकः। अदीक्षितो वङ्कुरश्च दुष्टदर्शी च काणकः ॥
अहङ्कारी कर्णहीनो बधिरो वेदनिन्दकः। वाक्यहर्ता च मूकश्च हिंसकः केशहीनकः ॥

मिथ्यावादी श्मश्रुहीनो दुर्वाक्यो दन्तहीनकः।
जिह्वाहीनः सत्यहारी दुष्टोऽप्यङ्गुलिहीनकः ॥ १२३ ॥
ग्रन्थापहारी मूर्खश्च व्याधियुक्तो भवेद् ध्रुवम्।

अश्वग्राही च तच्चोरो लालामूत्रं व्रजेदिति ॥ १२४ ॥
वर्षाणाञ्च शतं स्थित्वा घोटकश्च भवेद् ध्रुवम् ।
गजचोरो गजग्राही विट्कुण्डे च सहस्रकम् ॥ १२५ ॥

स्थित्वा वर्षं भवेद्धस्ती तत्पश्चाद् वृषलोभवेत् । अयज्ञे छागहन्ता च छागचोरप्रतिग्रही
पूयकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् । छागश्च वर्षपर्य्यन्तं तदा भवति मानवः

शत्रुशस्त्रेण छिन्नश्च तदा मुक्तो भवेद् द्विजः ।
दत्तापहारी वाग्दानं कृत्वाऽपहरते पुनः ॥ १२८ ॥
स भवन्म्लेच्छयोनौ च भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ।
एकाकी मिष्टमश्नाति कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ १२९ ॥
तत्र वर्षशतं स्थित्वा प्रेतो वर्षसहस्रकम् ।
तदा भवति जन्मैकं मक्षिका च पिपीलिका ॥ १३० ॥

जन्मैकं भ्रमरश्चैव जन्मैकं मधुमक्षिका । जन्मैकं घरलश्चैव जन्मैकं दंश एव च ॥

जन्मैकं मशकश्चैव जन्मैकं पूतिकः स्मृतः ।
जन्मैकं तल्पकीटश्च तदा शूद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ १३२ ॥
असद्बुद्धिर्व्याधियुक्तो तदा मुक्तो भवेद् द्विजः ।
तैलचोरस्तैलकारो मूर्ध्नि कीटस्त्रिजन्मकम् ॥ १३३ ॥

तदा भवेत् स्वर्णकारो जन्मैकं दुष्टमानसः । विश्वैकलिपिकर्ता च भक्ष्यदातुर्धनं हरेत्

तमःकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा स्वर्णवणिग् भवेत् ।
जन्मैकञ्च दुराचारो जन्मैकं करणो भवेत् ॥ १३५ ॥
कायस्थेनोदरस्थेन मातुर्मांसं न खादितम् ।
तत्र नास्ति कृपा तस्य दन्ताभावेन केवलम् ॥ १३६ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् कायस्थश्च व्रजेश्वर । नरेषु मध्ये ते धूर्ताः कृपाहीना महीतले

हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम् ।
शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ ॥ १३८ ॥

सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः । न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे

सीमापहारी दुष्टश्च भूमिचोरश्च हिंसकः ।
भूमिदानापहारी च कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ १४० ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि क्षुत्पिपासार्दितः स्थितः ।
ततोऽपि तानि नामानि विष्ठायां जायते क्रमिः ॥ १४१ ॥

ततो भवेदसच्छूद्रो जन्मैकञ्च ततः शुचिः । तस्माज्ज्ञानैः सावधानं भवेत्प्राज्ञश्चयत्नतः
रक्तवस्त्रापहारी च जन्मैकं रक्तकीटकः । ततः शूद्रश्च जन्मैकं ततो विप्रो भवेच्छुचिः

त्रिसन्ध्यहीनो विप्रश्च प्रातःशायी च यो नरः ।
सन्ध्याशायी दिवाशायी यज्ञसूत्रापहारकः ॥ १४४ ॥

अशुद्धसन्ध्याकारी च वेदवेदाङ्गनिन्दकः । तद्विरुद्धः स्वर्गमार्गस्त्रिजन्म पतितो द्विजः ॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ।
वर्षाणाञ्च त्रिलक्षञ्च पच्यते तत्र पीड़ितः ॥ १४६ ॥

दिवानिशं प्रदग्धश्च तप्ततैले च दारुणे । ततो भवेद्योनिकीटो पुंश्चलीनाञ्च पातकी ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि चाहारं तस्य तन्मलम् ।
ततो भवति चाण्डालो जन्मलक्षं क्रमेण च ॥ १४८ ॥
ततः शूद्रो गलत्कुष्ठी जन्मैकञ्च ततः शुचिः ।
सोऽपि विप्रो व्याधिशेषस्तीर्थपर्य्यटनाच्छुचिः ॥ १४९ ॥

असच्छूद्रश्च भवति सोऽस्थाने सुरपूजिते । दत्त्वा देवाय नैवेद्यमपवित्रञ्च मानवः ॥
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं संपूज्य यवनो भवेत् । दुर्बलेन भवेदन्धः कुत्सितेन च कुत्सितः

अङ्गहीनो दरिद्रश्च व्याधियुक्तश्च मानवः ।
अश्रद्धया च निर्माणे निर्माणसदृशं फलम् ॥ १५२ ॥
मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा वालुकयापि वा ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत् कल्पायुषं दिवि ॥ १५३ ॥

ततोभवति विप्रश्च महाप्राज्ञश्च भूमिमान् । राजा भवेद्भारते च लिङ्गानां शतपूजनात्

सहस्रपूजनात्सोपि लभते निश्चितं फलम् ।
स्थित्वा च सुचिरं स्वर्गे राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ १५५ ॥
अयुते च तदीशश्च लक्षे च पृथिवीश्वरः । पूजने चातिभक्त्या चाप्यतिरिक्तं फलंलभेत्
तीर्थस्नानेन दानेन विप्राणां भोजनेन च । नारायणार्चया चैव विप्रजातिश्च कर्मणा ॥
अतिरिक्तेन तपसा पण्डितो ब्राह्मणो भवेत् ।
पण्डितो ब्राह्मणश्चैव वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥ १५८ ॥
अनेकजन्मपुण्येन जायते भारते भुवि । तस्यांघ्रिस्पर्शनेनैव सद्यःपूता वसुन्धरा ॥१५९॥
तीर्थाः कुर्वन्ति तीर्थानि जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः ।
स्वपुंसाञ्च सहस्रञ्च पुनन्तीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ १६० ॥
पापेन वैद्यजन्मैव दुश्चिकित्सोऽपि ब्राह्मणः ।
दुश्चिकित्सस्तथा वैद्यो व्यालग्राही त्रिजन्मसु ॥ १६१ ॥
अतिक्रूरो दुराचारो द्वेष्टा च सुरविप्रयोः । स भवेत् कुटिलव्यालो वर्षाणाञ्चसहस्रकम्
पुंश्चलीलम्पटानाञ्च दूती या कामिनी व्रज ।
कालसूत्रे वर्षशतं स्थित्वा च गोधिका भवेत् ॥ १६३ ॥
जन्मैकंगोधिका भूत्वा हरिणश्च त्रिजन्मसु । जन्मैकं महिषश्चैव जन्मैकं भल्लुकोभवेत्
जन्मैकं गण्डकश्चैव श‍ृगालश्च त्रिजन्मसु । परकीयतड़ागञ्च सूत्रशस्यं ददाति च ॥
स भवेन्नक्रजातिश्च कच्छपश्च त्रिजन्मसु ।
वृथामांसञ्च यो भुङ्क्ते मत्स्यलुब्धश्च ब्राह्मणः ॥ १६६ ॥
भुङ्क्ते मांसमदत्तञ्च स मीनश्च मृगो भवेत् ।
वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च तात भुक्त्वा च किल्बिषम् ॥ १६७ ॥
कर्मभोगाच्छुचिर्भूत्वा स पुनर्ब्राह्मणोभवेत् । एकादशीविहीनश्च ब्राह्मणः पतितोभवेत्
भक्ष्यस्य द्विगुणं दत्त्वा तेन पापेन मुच्यते । ममजन्मदिने चैव यो भुङ्क्ते मानवोऽधमः
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ।
भुक्त्वा च नरकं सर्वं पश्चाच्चाण्डालतां व्रजेत् ॥ १७० ॥

एवञ्चशिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने। उपवासासमर्थश्च हविष्यान्नं समाचरेत् ॥
ततो शक्तौ दुर्बलश्च भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
कृत्वा महोत्सवं पुण्यं मदीयं पातकाच्छुचिः ॥ १७२ ॥

तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं नामसङ्कीर्तनं मम। गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ॥
श्वापदः शतजन्मानि भवेच्च निशि भोजनात् ।
अदीक्षितो द्विजश्चैव शङ्खचिल्लः शुको भवेत् ॥ १७४ ॥

अनुद्ग्राही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद् ध्रुवम् । चित्रवस्त्रापहारी च मयूरश्च त्रिजन्मसु तैजःपात्रापहारी च भवेत्कारण्डवश्चिरम्। सुराणां प्रतिमाचोरोऽप्यन्धश्च सप्तजन्मसु दरिद्रो व्याधियुक्तश्च बधिरश्चापि कुब्जकः। स्त्रीतैलमधुमांसञ्च रवौ वा पञ्चपर्वसु ॥
सेवते यो महामूढो वज्रदंष्ट्रं व्रजेद् ध्रुवम् ।
पातकी दुःखितस्तत्र वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ १७८ ॥
ततो भवति म्लेच्छश्च चाण्डालः सप्तजन्मसु ।
व्याधियुक्तस्ततः शूद्रो ब्राह्मणश्च ततः शुचिः ॥ १७९ ॥

तस्माद्यत्नान्न भोक्तव्यं भारते धर्मभीरुणा। ब्राह्मणश्च सुरं दृष्ट्वा न नमेद्यो नराधमः ॥ यावज्जीवनपर्य्यन्तमशुचिर्यवनो भवेत्। अभ्युत्थानं न कुरुते दृष्ट्वा चागतब्राह्मणम् ॥ स भवेद् ब्रह्मघाती च सप्तजन्मसु निश्चितम्। शिवद्वेषी कुक्कुटश्च देवलः सप्तजन्मसु ॥ पितृदेवार्चनं हन्ति वेदोक्तं ज्ञानदुर्बलः। स याति नरकं पापी वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ ततश्च रौरवं भुक्त्वा तीर्थकाकस्त्रिजन्मसु। त्रिजन्मसु शृगालश्च तीर्थे भुङ्क्ते शवं व्रज
त्रिजन्मसु भवेत् सोऽपि तीर्थेषु शवरक्षकः ।
शवानां करमादत्ते कर्मणा कृतपातकी ॥ १८५ ॥

नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः। गुरुञ्च नार्चयेद्भक्त्या तस्मै नान्नं ददातियः स भवेद्देवलो दुःखी देवशापेन पातकी। नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः पूजाफलं न लभते देवद्रोही स दारुणः। दीपनिर्वाणकर्ता च खद्योतः सप्तजन्मसु ॥
अतीवमत्स्यलुब्धश्चाप्यनैवेद्यश्च खादति ॥ १८८ ।

स भवेन्मत्स्यरङ्गश्च मार्जारः सप्तजन्मसु ।
गोणीहर्ता कपोतश्च मालाहर्ता विहङ्गमः ॥ १८६ ॥

चटको धान्यचोरश्च मांसचोरश्च कुञ्जरः । कविप्रहर्ता विदुषां मण्डूकः सप्तजन्मसु ॥
असत्कविर्ग्रामविप्रो नकुलः सप्तजन्मसु । कुष्ठी भवेच्च जन्मैकं कृकलासस्त्रिजन्सु ॥
जन्मैकं वरलश्चैव ततो वृक्षपिपीलिका । ततः शूद्रश्च वैश्यश्च क्षत्रियो ब्राह्मणस्तथा ॥

कन्याविक्रयकारी च चतुर्वर्णो हि मानवः ।
सद्यः प्रयाति तामिस्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १९३ ॥

ततो भवति व्याधश्च मांसविक्रयकारकः । ततो व्याधिर्भवेत्पश्चाद्यो यथा पूर्वजन्मनि

मन्नामविक्रयी विप्रो न हि मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।
मृत्युलोके च मन्नाम स्मृतिमात्रं न विद्यते ॥ १९५
पश्चाद्भवेत्सो गोयोनौ जन्मैकं ज्ञानदुर्बलः ।
ततश्छागस्ततो मेषो महिषः सप्तजन्मसु ॥ १९६ ॥

महाचक्री च कुटिलो धर्महीनश्च मानवः । जन्मैकं तैलकारश्च कुम्भकारस्तथैवच ॥
मिथ्याकलङ्कवक्ता च देवब्राह्मणनिन्दकः । स भवेत् स्वर्णकारश्च रजकः सप्तजन्मसु

ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राः कुत्सिताः शौचवर्जिताः ।
जन्म तेषां म्लेच्छयोनौ वर्षाणामयुतं तथा ॥ १९९ ॥
कामतो योषितां श्रोणीस्तनास्यं यश्च पश्यति ।
स भवेद् दृष्टिहीनश्च परत्रापि नपुंसकः ॥ २०० ॥

विप्रोऽभिचारकर्ता च हिंसको ज्ञानदुर्बलः । यात्येवमन्धतामिस्रं वर्षाणामयुतं तथा
तदा भवति दैवज्ञोऽप्यग्रदानी च दुर्मतिः । ततः शूद्रो भवेद्विप्रो भोगेन कर्मणस्तथा ॥

शास्त्रज्ञाता च दैवज्ञो मिथ्या वदति लोभतः ।
स भवेच्च ध्रुवं ज्येष्ठो वानरः सप्तजन्मसु ॥ २०३ ॥
अनेकजन्म तपसा भारते ब्राह्मणो भवेत् ।
सुबुद्धिरतिधर्मिष्ठो धर्महीनश्च पातकी ॥ २०४ ॥

स्वधर्मनिरतो विप्रः परमाच्च हुताशनात्। पवित्रश्चातितेजस्वी तस्माद्भीतः सुरः सदा
नदीषु च यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा। पुरीषु च यथा काशी यथा ज्ञानिषु शङ्करः॥

शास्त्रेषु च यथा वेदा यथाश्वत्थश्च पादपे।
मम पूजा तपस्यासु व्रतेष्वनशनं तथा॥ २०७॥
तथा जातिषु सर्वासु ब्राह्मणः श्रेष्ठ एव च।
विप्रपादेषु तीर्थानि पुण्यानि च व्रतानि च॥ २०८॥

विप्रपादरजः शुद्धं पापव्याधिविमर्दनम्। शुभाशीर्वचनं तेषां सर्वकल्याणकारणम्॥
एतत्ते कथितं तात विपाकः कर्मणामहो। यथाश्रुतं यथाज्ञानं तदशेषं निशामय॥२१०॥

श्रुत्वा धर्मविपाकञ्च वाचकाय सुवर्णकम्।
दद्यात्तस्मै च रौप्यञ्च वस्त्रं ताम्बूलमेव च॥ २११॥
सुवर्णशतकं दद्यात् सद्यो देही च गोकुलम्।
रौप्यं वस्त्रञ्च ताम्बूलं मत्प्रीत्या ब्राह्मणाय च॥ २१२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे कर्मविपाकवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।

षड़शीतितमोऽध्यायः

केदारकन्याविवरणम्।

नन्द उवाच।

केदारकन्याप्रस्तावात् कथितं कर्मकीर्तनम्।
कृत्वा स्त्रीणां प्रसङ्गेन तद् व्यासेन वद प्रभो॥ १॥
केदारकन्या सा का वा को वा केदारभूपतिः।
कस्य वंशे च तज्जन्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुरादौ ब्रह्मणः पुत्रौ मनुः स्वायम्भुवस्तथा ।
तस्य स्त्री शतरूपा च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ ३ ॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ तयोः पुत्रौ बभूवतुः । उत्तानपादपुत्रश्च ध्रुव एव महायशाः ॥४॥
तत्पुत्रो नन्दसावर्णिः केदारश्च तदात्मजः । सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् केदारो वैष्णवःस्वयम्
तस्य रक्षानिमित्तेन तत्सभायां सुदर्शनम् । गवां लक्षं नवं शुद्धं स्वर्णशृङ्गैश्च भूषितम् ॥

वह्निशुद्धानि वस्त्राणि दत्तानि वरुणेन च ।
सुवर्णानां तथा लक्षं सर्वशस्यां वसुन्धराम् ॥ ७ ॥

मणिरत्नश्च मुक्ताश्च हीरकं परमं तथा । माणिक्यमश्वरत्नानां लक्षं लक्षञ्च हस्तिनाम् ॥
रौप्यं प्रवालं मिष्टान्नं शतधान्याचलं वरम् । नित्यं नित्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ च रत्नभूषणम्
शतलक्षं ब्राह्मणानां भोजयामास नित्यशः । जलभोजनपात्राणि सुवर्णानां ददौ नृपः ॥
सुवर्णानां यज्ञसूत्रमङ्गुलीयकमुत्तमम् । आसनं स्वर्णरत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥११
ब्राह्मणानाञ्च लक्षञ्च सूपकारं नृपस्य च । ब्राह्मणानां द्विलक्षञ्च परिवेषणकारकम् ॥

घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मनोहराः ।
गुड़कुल्या दुग्धकुल्या नित्यं प्रार्थनमीप्सितम् ॥ १३ ॥
प्रातरारभ्य सन्ध्यान्तं विप्राणां भोजनं तथा ।
दुःखिनां भिक्षुकाणाञ्च धनदानं यथोचितम् ॥ १४ ॥

फलमूलाशनो राजा वैष्णवश्च जितेन्द्रियः । सर्वं मदर्पणं कृत्वा जपेन्माञ्च दिवानिशम्
एकदा सूपकारश्च तमुवाच नृपेश्वरम् । विप्राणां भोजनायैव दशलक्षमुपस्थितम् ॥१६॥
भुञ्जते ब्राह्मणाश्चाद्य रूक्षमन्नं वद प्रभो । कुर्वन्तु भक्षणं ते वै विप्राः सूपादिना नृप ॥
चतुर्योजनपर्य्यन्तमधिकारं नृपस्य च । यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः ॥

तत्तद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्तितः ।
राजेन्द्राणां पञ्चलक्षं नित्यं केदारसंसदि ॥ १९ ॥

अमूल्यरत्नमाणिक्यं मुक्ताहारं मणीश्वरम् । गजरत्नमश्वरत्नं केदाराय करं ददौ ॥२०॥

कमला कलया जाता यज्ञकुण्डसमुद्भवा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥२१॥

कामुकी कामिनीश्रेष्ठा कन्या कमललोचना।

कन्याऽस्मि ते महाराजेत्युवाच नृपतिञ्च सा ॥ २२ ॥

राजा सम्पूज्यतां भक्त्या तस्यौ पत्नीं समर्प्य च।

सा विज्ञाय प्रसूं तातं कृत्वा च विनयं मुदा ॥ २३ ॥

ययौ पुण्यवनं रम्यं तपसे यमुनान्तिकम्। तत्तपस्यावनं यस्मात् तस्माद्वृन्दावनंस्मृतम्

तपसा वरयामास मां वरञ्च वरं परम्। ब्रह्मा ददौ वरं तस्यै पश्चात् कृष्णं लभिष्यसि

सा चैकदा नदीतीरे वसन्ते सस्मिता सती। शयाना पुष्पशय्यायां रत्नाभरणभूषिता॥

ब्रह्मा परीक्षितुं ताञ्च साध्वीञ्च सुमनोहराम्। ददर्श कन्या रहसि युवानं पुरुषं परम्॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। सस्मितं कामुकं रम्यं रमणीनाञ्च वाञ्छितम्॥

यथा षोड़शवर्षीयं कुमारं कनकप्रभम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं पीताम्बरधरं वरम्॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पद्मसुलोचनम्। दृष्ट्वा तञ्च समुत्थाय वासयामास सन्निधौ

पूजयामास भक्त्या च फलं मूलं ददौ मुदा।

सुवासितं जलं दत्त्वा प्रणनाम मुदान्विता ॥ ३१ ॥

पूजां गृहीत्वा मुदितः सादरं तामुवाच ह।

विप्ररूपी च भगवान् प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा।

कामुकीनाञ्च काम्यञ्च सतीनां दुष्करं व्रज ॥ ३२ ॥

धर्म उवाच।

भवती कस्य कन्या वा किं ते नाम मनोहरे।

किं करोषि रहस्येव तन्मे कथितुमर्हसि ॥ ३३ ॥

कस्य हेतोस्तपस्या ते किं वा वाञ्छसि सुन्दरि।

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ३४ ॥

वृन्दोवाच।

विप्र केदारकन्याऽहं वृन्दा वृन्दावने स्थिता। तपःकरोमि रहसि चिन्तयामि हरिंपतिम्

यदि दातुं समर्थोऽसि देहिमे वाञ्छितं वरम् । असमर्थोऽसि चेद्गच्छ किं ते प्रश्नेनब्राह्मण

धर्म्म उवाच ।

निरीहमवितर्क्यञ्च परमात्मानमीश्वरम् । निर्गुणञ्च निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३७

का क्षमा तं पतिं कर्तुं विना लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।
चतुर्भुजस्य द्वे भार्य्ये हरेर्वैकुण्ठशायिनः ॥ ३८ ॥

गोलोके द्विभुजस्यापि श्रीवंशीवदनस्य च । किशोरगोपवेशस्य परिपूर्णतमस्य च ॥

तस्य भार्य्या स्वयं राधा महालक्ष्मीः परात्परा ।
ब्रह्मस्वरूपा परमा परमात्मानमीश्वरम् ॥ ४० ॥
भजते सततं शान्तं सुरम्यं श्यामसुन्दरम् ।
कोटिकन्दर्पसौन्दर्य्यनिन्दितं सुकलेवरम् ॥ ४१ ॥

अमूल्यरत्नाभरणं सत्यंञ्च नित्यविग्रहम् । पीताम्बरधरं रम्यं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चवैकुण्ठे गोलोकेद्विभुजः स्वयम्
यन्निमेषोभवेद्वृन्दे ब्रह्मणः पतनेन च । पञ्चविंशत्सहस्रेण युगेनेन्द्रस्य पातनम् ॥ ४४ ॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालेन ब्रह्मणो दिनम् । तावतीति निशा तस्य विधातुर्जगतामपि

एवं त्रिंशद्दिने मासं द्विषट्के मासि वर्षकम् ।
एवंशतायुस्तस्यैव निबोध बोधतत्परम् ॥ ४६ ॥

यावज्जीवनपर्य्यन्तं सेवन्ते सनकादयः । कल्पानां कोटिकोटिश्च तन्न साध्यश्चयोविभुः
सहस्रवक्त्रः शेषश्च सेवते च जपेत्सदा । दिवानिशञ्च यंभक्त्या कल्पकोटिशतं शतम्
तन्नसाध्यो हितकरो दुराराध्यः परात्परः । ब्रह्माब्रह्मस्वरूपं तं भजेज्जन्मनि जन्मनि ॥
वक्त्रैश्चतुर्भिः सततं स्तौति नित्यं सनातनम् । वेदेऽनिर्वचनीयश्च वेदानां जनकोविधिः

विधाता फलदाता च दाता च सर्वसम्पदाम् ।
तन्न साध्यो हि भगवान् कालकालान्तकान्तकः ॥ ५१ ॥

संहारकर्त्ता जगतां कलया रुद्ररूपतः । सस्तौतिपञ्चवक्त्रेणकोऽन्योऽन्यस्यापिकाकथा
तत्परश्चप्रियो नास्ति वृन्दे भगवतःशृणु । सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

ब्रह्मस्वरूपा परमा मूलप्रकृतिरीश्वरी। नारायणी विष्णुमाया वैष्णवी सा सनातनी ॥

यन्मायया जगद् भ्रान्तमनित्ये भ्रमते सदा।
सा स्तौति भक्त्या यं देवं वृन्देऽप्यङ्के दिवानिशम् ॥ ५५ ॥
स्तौति भक्त्या स्वशक्त्या च गजवक्त्रः षड़ाननः।
ध्यायतेऽयं गणेशश्च सर्वादौ यस्य पूजनम् ॥ ५६ ॥

भगवान् सर्वदेवेशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः। सिद्धेन्द्रेषु च देवेन्द्रे योगीन्द्रे ज्ञानिनां गुरौ
नगणेशात् परो विद्वान् गणेशश्च सुराधिपः। सरस्वतीं च यं स्तोतुमशक्ता परमेश्वरी
दिवानिशं पादपद्मं भक्त्या पद्मां न सेवते। यत्कटाक्षाज्जगत्सर्वं परिपूर्णतमं शिवम् ॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्य्यस्तपति यद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु
पृथ्वी सेवया यस्य सर्वाधारावसुन्धरां। समुद्रानिश्चलाःशैला यस्य भीताश्च सुन्दरि ॥
तीर्थसारा च सा गङ्गा पवित्रा मुक्तिदायिनी। जगतां पावनी देवी यस्य पादाब्जसेवया

पवित्रा तुलसी देवी स्मरणाद्यस्य सेवनात्।
नवग्रहाश्च दिक्पाला भीता यस्य प्रतापवतः ॥ ६३ ॥

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः। अन्ये ये ये सुरेशाश्च शेषाद्या मुनयस्तथा
केचित्कलास्वरूपाश्चाप्यंशरूपाश्च केतनः। केचित्कलांशाः कृष्णस्य केचिच्च परमात्मनः

पतिमिच्छसि कल्याणि प्रकृतेः परमीश्वरम्।
गोलोके राधिकासाध्यो नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ६६ ॥

मां भजस्व महाभागे नृपाणामीश्वरं पतिम्। बलवन्तञ्च देवेभ्यो दैत्येभ्यश्च वरानने ॥

सुखानि यानि कल्याणि त्रिषु लोकेषु सन्ति वै।
भुंक्ष्व तान्येव सर्वाणि मत्प्रसादान्न संशयः ॥६८ ॥

सप्तसागरपारे च काञ्चनी रुचिरा वरे। देवानां क्रीड़नार्थाय विधात्रा निर्मिता पुरी ॥
तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह। महेन्द्रस्यप्रियवनं पुष्पोद्यानसमन्वितम् ॥७०॥

गच्छ स्वर्णमयीं लङ्कां नानारत्नविभूषिताम्।
तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७१ ॥

विस्पन्दकं सुवसनं नन्दकं पुष्पभद्रकम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥७२॥
सुमेरुगह्वरं वापि क्षीरोदं वा मनोहरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥७३॥
सत्यलोकं ब्रह्मलोकं रम्यं सद्म रहस्थलम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥
मलयं निलयं रम्यं महेन्द्रसारनिर्मितम् । सुगन्धियुक्तं सततं शुद्धश्चन्दनवायुना ॥ ७५ ॥
मालती यूथिका रम्या केतकी माधवी तथा
चारुचम्पकपुष्पाणां गन्धेन सुमनोहरम् ।
तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥ ७६ ॥
पिकानां भ्रमराणाञ्च मधुरध्वनिसंयुतम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥
इन्द्रस्य वरुणस्यैव वायोरिव यमस्य च । धनेश्वरस्य वह्नेश्च धर्मस्य शशिनस्तथा ॥
सुरम्यं लोकमेतेषां मध्ये देवि यथेच्छसि ।
तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७९ ॥
रत्नद्वीपं मणिद्वीपं रम्यं चन्द्रसरोवरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ८०
इत्येवमुक्त्वा सम्भोक्तुं गच्छन्तं तं छलेन च ।
न वास्तवपरीक्षार्थं सतीत्वं बोधितुं व्रज ॥ ८१ ॥
उवाच सा नृपसुता कोपवक्त्रास्यलोचना ।
हितं सत्यं योगयुक्तं धर्मार्थञ्चय शस्करम् ॥ ८२ ॥

श्रीवृन्दोवाच ।

धैर्य्यंकुरु महाभाग श्रेष्ठो जातिषु ब्राह्मणः । ब्राह्मणानां तपोमूलं सत्यं वेदव्रतं धृतिः ॥
परस्त्रीसहसम्भोगः स्वभावश्चाप्यधर्मिणाम् ।
अधर्मेणैव हे विप्र दुष्टो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्ने जयति समूलस्थो विनश्यति ॥ ८४ ॥
पतिव्रतानां गमने बलात्कारेण निश्चितम् । मातृगामी भवेत्सद्यो ब्रह्महत्याशतंभवेत्
कुम्भीपाके पच्यते च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । प्रदग्धस्तैलतप्तेषु न मृतःसूक्ष्मदेहतः ॥८६ ॥
ताड़ितो यमदूतैश्च लोहदण्डे न मूर्धनि । क्षणं सुखं चिरं दुःखं सर्वनाशस्य कारणम् ॥

अगम्यागमनं दुःखं धर्मिष्ठो नैव वाञ्छति। क्षमस्व गच्छ भद्रन्ते ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल ॥

यथा दीपशिखां दृष्ट्वा कीटः पतति निश्चितम्।
मिष्टं दृष्ट्वा वड़िशाग्रे लुब्धमीनो मृगो यथा ॥ ९० ॥

यथा विपाक्तं भक्ष्यञ्च भुङ्क्ते भोक्ता बुभुक्षितः।
गृह्णाति दुष्टो दुष्टञ्च विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ९१ ॥

तथा दृष्ट्वा परस्त्रीणां मुखपद्मं मनोहरम्। विनाशबीजं मोहेन भ्रान्तो भवति लम्पटः ॥
मुखञ्च रुचिरं स्त्रीणां श्रोणीयुग्मं स्तनं तथा। कामाधारं नाशबीजमधर्मस्थलमेव च ॥
भगं नरककुण्डञ्च लालामूत्रसमन्वितम्। दुर्गन्धियुक्तं पापञ्च यमदण्डस्य कारणम् ॥

यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोनौ च योषिताम्।
तथा पुमान् विशत्येव रौरवे च युगे युगे ॥ ९५ ॥

रहस्यञ्चापदं दृष्ट्वा मां त्वं धर्षितुमिच्छसि। अत्रैव सर्वदेवाश्च लोकपालाश्च ब्राह्मण ॥

जाज्वल्यमानो धर्मश्च साक्षी शास्ता च कर्मणाम्।
यमश्च दण्डकर्त्ता च स्थापितो हरिणा स्वयम् ॥ ९७ ॥

स्वयंकृष्णश्च धर्मात्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः। दुर्गाबुद्धिर्मनो ब्रह्मा चेन्द्रियाणि सुरास्तथा

सर्वप्राणिषु तिष्ठन्ति साक्षिणः कर्मणां द्विज।
क्व गुप्तं क्व रहस्यं वा ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल ॥ ९९ ॥

क्षमस्वगच्छभद्रन्ते अवध्याश्चद्विजातयः। शक्ताऽहंभस्मसात् कर्त्तुं गच्छवत्सयथासुखम्
तपस्यासु मम गतमष्टोत्तरशतं युगम्। नास्ति गोत्रं मत्पितुश्च न माता न पिता मम

सर्वान्तरात्मा भगवान् कृष्णो रक्षति मां द्विज।
कृष्णेन स्थापितो धर्मो माञ्च रक्षति नित्यशः ॥ १०२ ॥

आदित्यश्च तथा चन्द्रः पवनश्च हुताशनः। ब्रह्मा शम्भुर्भगवती दुर्गा रक्षति मां सदा
येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः। मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षांकरिष्यति

अनाथबालवृद्धानां रक्षकाः सर्वदेवताः।
नारीबुद्धया न मां धर्मस्त्यक्त्वा गच्छेद्धि सर्वदा ॥ १०५ ॥

मां मातरं परित्यज्य गच्छ वत्स यथासुखम् ।
इत्येवमुक्त्वा देवी सा तस्थौ तत्र धरा यथा ॥ १०६ ॥

आगच्छन्तञ्चसम्भोक्तुं मा यातं बोधनेनच । शशापेतिच सा कोपाद् ब्रह्मबन्धोक्षयोभव क्षयो भव दुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव । पुनः शप्तुं स्वयं सूर्यो वारयामास यत्नतः ॥ एतस्मिन्नन्तरे तात तत्रैव जगदीश्वराः । आजग्मुरतिसन्त्रस्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

धर्मं दृष्ट्वा कलारूपं रुरुदुस्त्रिदशेश्वराः ॥ १०९ ॥
कृत्वा क्रोडेऽतीवकृशं कुह्वा भीतं यथा विधुम् ।
निश्चेष्टं मलिनं दग्धं सतीकोपाग्निना व्रज ॥ ११० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

क्षमस्व वृन्दे मद्भक्ते जन्ममृत्युजराहरे । धर्मं जीवय मद्भक्तं रक्ष धर्मं पतिव्रते ॥१११॥

ब्रह्मोवाच ।

ध्वान्तपूर्णं जगत् सर्वं विना धर्मं बभूव ह ।
कम्पितौ चन्द्रसूर्यौ च शेषश्चापि वसुन्धरा ॥ ११२ ॥

महादेव उवाच ।

प्रनष्टञ्च जगत्सर्वं विना धर्मेण सुन्दरि । धर्मं जीवय भद्रन्ते स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ॥

सूर्य्य उवाच ।

वरं वृणीष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् । धर्मं जीवय भद्रन्ते रक्ष सृष्टिं पतिव्रते

अनन्त उवाच ।

धर्मं करोषि तपसा कथं धर्मं विहंसि च । धर्मं जीवय भद्रन्ते सर्वधर्मो भवेत्तव॥११५॥

चन्द्र उवाच ।

द्विजरूपधरो धर्मस्त्वां परीक्षितुमागतः । ब्रह्मणा प्रेरितश्चैव निर्दोषश्च विहिंसितः ॥

महेन्द्र उवाच ।

तपसोपार्जितो धर्मो धर्मेण च फलं नृणाम् ।
कथं फलञ्च तपसां यदि धर्मः क्षयं गतः ॥ ११७ ॥

वरुण उवाच ।

धर्मं जीवय धर्मिष्ठे धर्मं रक्ष सनातनम् । निष्फलं कर्मिणां कर्म विना धर्मेण धार्मिके

पवन उवाच ।

जगत् पूतं कुरु शुभे धर्मं जीवय साम्प्रतम् । धर्मे प्रनष्टे तपसां तवापूर्वं विनङ्क्ष्यति ॥

वह्निरुवाच ।

स्वधर्मोपार्जनं कर्तुमागतासि च भारतम् । विहंसि धर्ममज्ञात्वा पुनर्जीवय सुन्दरि ॥

यम उवाच ।

वेदोक्तकर्मकर्तॄणामहं विश्वे वरानने । धर्मानुसारात् फलदो धर्मं जीवय सत्वरम् ॥
देवानां वचनं श्रुत्वा समुत्थाय पतिव्रता । नमस्कृत्य सुरेशांश्च तानुवाच तपस्विनी ॥

वृन्दोवाच ।

अहं देव न जानामि धर्मं ब्राह्मणरूपिणम् । कृतः क्षयो मया कोपान्मां परीक्षितुमागतः
जीवयामि ध्रुवं धर्मं युष्माकञ्च प्रसादतः । इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा चेत्युवाच व्रजेश्वर
तपः सत्यं यदि मम सत्यञ्च विष्णुपूजनम् । तेन पुण्येन सद्योऽत्र द्विजो भवतु विज्वरः
यदि मे च भवेत्सत्यं व्रतं सत्यं तपः शुचिः । तेन पुण्येन सत्येन द्विजो भवतु विज्वरः
यदिनारायणःसत्यः सर्वात्मानित्यविग्रहः । ज्ञानात्मकःशिवःसत्यो द्विजोभवतुविज्वरः
ब्रह्म सत्यञ्च ते देवाः प्रकृतिः परमा यदि । यज्ञः सत्यस्तपः सत्यं द्विजो भवतु विज्वरः
इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा धर्मं क्रोड़े चकार च । तं दृष्ट्वा च कलारूपं रुरोद कृपया सती ॥
एतस्मिन्नन्तरे मूर्त्तिर्धर्मभार्य्या शुचाकुला । निपत्य विष्णुपादे च शिरसा चेत्युवाचसा

मूर्त्तिरुवाच ।

हे नाथ करुणासिन्धो दीनवन्धो कृपां कुरु । तूर्णं जीवय कान्तं मे जगन्नाथ कृपामय
पतिहीना च या नारी पापिनी सा भवार्णवे । यथास्यं चक्षुर्विरतं प्राणहीना यथातनूः

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
मितं बन्धुर्मितं माता सर्वदाता पतिः प्रभुः ॥ १३३ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्र तस्थौ रुरोद च । उवाच वृन्दांभगवान् सर्वात्मा प्रकृतेःपरः

श्रीभगवानुवाच ।

त्वयायुस्तपसा लब्धं यावदायुश्च ब्रह्मणः । तदेव देहि धर्माय गोलोकं गच्छ सुन्दरि
तवानया च तपसा पश्चान्माञ्च लभिष्यसि । पश्चाद्गोलोकमागत्य वाराहे च वरानने

वृषभानुसुता त्वञ्च राधाच्छाया भविष्यसि ।
मत्कलांशश्च रापाणस्त्वां विवाहे ग्रहिष्यति ।
मां लभिष्यसि रासे च गोपीभी राधया सह ॥ १३७ ॥

राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता यदा । सा चैव वास्तवीराधा त्वञ्चछायास्वरूपिणी

विवाहकाले रापाणस्त्वाञ्च छायां ग्रहिष्यति ।
त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा सान्तर्धाना भविष्यति ॥ १३९ ॥
राधेवेति विमूढाश्च विज्ञास्यन्ति च गोकुले ।
स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति वल्लवाः ॥ १४० ॥

स्वयंराधा मम क्रोड़े छायारापाणकामिनी । विष्णोश्चवचनं श्रुत्वाददावायुश्चसुन्दरि
उत्तस्थौ पूर्णधर्मश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः । पूर्वस्मात्सुन्दरः श्रीमान् प्रणनाम परात्परम्

वृन्दोवाच ।

देवाः शृणुत मद्वाक्यं दुर्लङ्घ्यं सावधानतः ।
न हि मिथ्या भवेद्वाक्यं मदीयञ्च निशामय ॥ १४३ ॥

क्षयो भवेतिवाक्यञ्च मयोक्तं कोपभीतया । वारत्रयं पुनर्वक्तुं वारयामास भास्करः ॥
सत्ये च परिपूर्णोऽयं यथा पूर्वो यथाऽधुना । त्रिपादश्चापि त्रेतायां द्विपादो द्वापरेतथा
एकपादश्च धर्मोऽयं कलेश्च प्रथमे हरे । शेषः कलाषोड़शांशः पुनः सत्ये यथा पुरा ॥

त्रिर्निर्गतं मम मुखात् क्षयस्तेन ततः क्रमात् ।
पुनरुक्ते च मनसि वारयामास भास्करः ॥ १४७ ॥

तेनैव हेतुनायञ्च कलिशेषे कलामयः । तथा शप्तः स्थितो दुर्गे कलिशेषे तथा ध्रुवम्
एतस्मिन्नन्तरे नन्द ददृशुर्देवतारथम् । गोलोकादागतं वेगादतीवसुन्दरं शुभम् ॥१४९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् । मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वस्त्रैश्च श्वेतचामरैः ॥

विभूषितं भूषणैश्च रुचिरै रत्नदर्पणैः। नत्वा हरिं हरं वृन्दा ब्रह्माणं सर्वदेवताः॥१५१॥
समारुह्य रथं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा।
देवा जग्मुश्च स्वस्थानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १५२ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे केदारकन्याविवरणं नाम षड़शीतितमोऽध्यायः।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः।

नन्द उवाच।

त्वां ज्ञातुं न हि शक्ताश्च वेदा वेदप्रभुं स्वयम्। सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनिसिद्धादयस्तथा
को भवानिति विज्ञातुं परं कौतूहलं मम। तत्सर्वं स्वात्मयाथार्थ्यं निर्जने कथय प्रभो

श्रीनारायण उवाच।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णं द्रष्टुं मुनीश्वराः। आजग्मुः सहसा वत्स ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
पुलहश्च पुलस्त्यश्च क्रतुश्च भृगुरङ्गिराः। प्रचेताश्च वशिष्ठश्च दुर्वासाः कण्व एव च॥
कात्यायनः पाणिनिश्च कणादो गौतमस्तथा। सनकश्चसनन्दश्च तृतीयश्चसनातनः
कपिलश्चासुरिश्चैव वायुः (वोढुः) पञ्चशिखस्तथा।
विश्वामित्रो वाल्मीकिश्च कश्यपश्च पराशरः ॥ ६ ॥
विभाण्डको मरीचिश्च शुकोऽत्रिश्च बृहस्पतिः।
गार्ग्यश्चापि तथा वात्स्यो व्यासश्च जैमिनिस्तथा ॥ ७
मितवाक् ऋष्यशृङ्गश्च याज्ञवल्क्यःशुकस्तथा। सौभरिःशुद्धजटिलो भरद्वाजः सुभद्रकः
मार्कण्डेयो लोमशश्च आसुरिश्च विटङ्कणः। अष्टावक्रः शतानन्दो वामदेवश्च भागुरिः
संवर्त्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहश्चापि नारदः। जाबालिः परशुरामश्चाप्यगस्त्यः पैल एव च

युधामन्युर्गौरमुखोऽप्युपमन्युः श्रुतश्रवाः । मैत्रेयश्च्यवनश्चैव वररुच्यर्षिरेव च ॥ ११

तान् दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य पुटाञ्जलिः ।

सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास सादरम् ॥ १२ ॥

पूजयामास विधिवत् कुशलप्रश्नपूर्वकम् । परस्परञ्च सम्भाष्य मध्ये कृष्ण उवास सः

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तेजोराशिं ददर्श सः। ददृशुस्ते च मुनयोऽप्याकाशे च समुज्ज्वलम्

तेजसोऽभ्यन्तरे वत्स कुमारं कनकप्रभम् । यथैवं पञ्चवर्षीयं नग्नं बालकमीप्सितम् ॥

आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च नारद । उत्तिष्ठमानं सहसा तं दृष्ट्वा मुनिपुंगवाः ॥१६॥

प्रणेमुर्मुनयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम् । सस्मितं स्निग्धनेत्रञ्च कृत्वा शुक्तिञ्च सादरम्

स सर्वानाशिषं कृत्वा समुवास च संसदि । उवाच तांश्च शौरिञ्च भगवन्तं सनातनम्

सनत्कुमार उवाच ।

भद्रं वो मुनयः शश्वत्तपसां फलमीप्सितम् ।

कृष्णस्य कुशलप्रश्नं शिववीजस्य निष्फलम् ॥ १९ ॥

सांप्रतं कुशलं वश्च दर्शनं परमात्मनः । भक्तानुरोधाद्देहस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥ २० ॥

निर्गुणस्य निरीहस्य सर्ववीजस्य तेजसः । भारावतरणायैव चाविर्भूतस्य साम्प्रतम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम् । तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र न विद्यते ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शरीरे प्राकृते नाथ सन्ततञ्च शुभावहम् । नित्यदेहे क्षेमवीजे शिवप्रश्नमनर्थकम् ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो यो विग्रहकारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः ।

देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

रक्तविन्दूद्भवा देहास्ते च प्राकृतिकाः स्मृताः । कथं प्रकृतिनाथस्य वीजस्य प्राकृतं वपुः

सर्ववीजस्य सर्वादिर्भवांश्च भगवान् स्वयम् । सर्वेषामवताराणां प्रधानं वीजमव्ययम्

कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं नित्यं सनातनम् ।
ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ २७ ॥

मायया सगुणञ्चैव मायेशं निर्गुणं परम् । प्रवदन्ति च वेदाङ्गास्तथा वेदविदः प्रभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

साम्प्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं विभुः । कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रश्नमभीप्सितम्

सनत्कुमार उवाच ।

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुर्षु च । पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते ॥३१॥
रक्तवीर्याश्रितो देहः क्व ते वेदे निरूपितः । साक्षिणो मुनयश्चैव धर्मः सर्वत्र एव च ।
साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्रौ च साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥

भृगुरुवाच ।

सत्यं वदसि विप्रेन्द्र त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । स्वागतं कुशलं शश्वत्किं निमित्तमिहागतः

सनत्कुमार उवाच ।

श्रूयतां मुनयः सर्वे श्रूयतां कृष्ण साम्प्रतम् । अहो येन निमित्तेन चातिशीघ्रमिहागतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ किन्निमित्तमिहागतः । सर्वं जानासि सर्वज्ञ त्वमेव विदुषां वर ॥

सनत्कुमार उवाच ।

धन्योऽसि भगवन् शश्वन्मान्योऽसि जगतामपि ।
सर्वेश्वरेश्वरोऽसि त्वं त्वत्परो नास्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

यज्ञानाञ्च व्रतानाञ्च तपस्यानां द्विजेश्वर । सततं फलदाताऽहं दक्षिणाभिः सहेति च
इति श्रुत्वा कुमारश्च जवेन प्रययौ च ते । मत्वाऽऽश्चर्यञ्च वचनं वारयामासतेऽपितम्

ऋषय ऊचुः ।

हे सिद्धेन्द्र महाभाग कुमार करुणामय । का शङ्कितकथा प्रोक्ता भगवत्कृष्णसन्निधौ

किं पुत्र दृष्टमाश्चर्यं श्रुतं किमपि कुत्रचित् । अतीव कृत्वा विस्तीर्णमस्माकं वक्तुमर्हसि
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा पार्वत्या सह शङ्करः । अनन्तश्चापि धर्मश्च श्रीसूर्यश्च निशाकरः ॥

आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाद्याश्च देवताः ।
श्रीकृष्णं सहसोत्थाय सम्भाव्य च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः । प्रणेमुरृषयः सर्वे शेषं शम्भुं विधिंशिवाम्
परस्परञ्च सम्भाषा बभूव द्विजदेवयोः । समुवासासने मध्ये कुमारः कनकप्रभः ॥

कथां कथितुमारेभे संसदि द्विजदेवयोः ॥ ४४ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

मया शतश्च गोलोके न दृष्टो राधिकापतिः । ततो गतश्च वैकुण्ठे तत्र नास्ति चतुर्भुजः
ततो गतश्च क्षीरोदस्तत्र नास्ति हरिःस्वयम् । परिश्रान्तोविषण्णश्च स्नानंक्षीरोदधेस्तटे

विस्तीर्णं वालुकामध्ये कच्छपः शतयोजनः ।
भीतश्च कम्पितस्तत्र दुष्टो दुःखी च शुष्कितः ॥ ४७ ॥

निःसारितो राघवेण मीनेन च महात्मना । धन्योऽसीति मयोक्तश्चनाहंधन्य उवाच सः
क्षीरोदःसागरो धन्यो जन्तवो यत्र मद्विधाः । मत्तोमहत्तराश्चापि ह्यसंख्याश्च महामुने
भवान्धन्योऽसि क्षीरोद तेनोक्तो नाहमेव च । धन्या वसुन्धरादेवी यत्रैव सप्तसागराः

धन्याऽसि वसुधेत्युक्त्वा नाहमेवेत्युवाच सा ।
धन्योऽनन्तो ममाधारः कृष्णांशो नागराड्विभुः ॥ ५१ ॥

सहस्रमूर्ध्नां मध्येऽहं मूर्ध्नि शूर्पे च सर्षपः। धन्योऽसिशेषेत्युक्तोऽयंधन्योनाहमुवाचवै

धन्यः कूर्मो ममाधारो गच्छ तत्रैव वै मुने ! ।
धन्योऽसि कूर्मेत्युक्तोऽयं नाहं धन्योऽस्मि वै मुने ! ॥ ५३ ॥

वायुनाधार्यमाणोऽहं मत्तोधन्यतमश्च सः। धन्योऽसीत्युक्तःपवनोधन्योनाहमुवाच सः

धन्यश्च भगवान् ब्रह्मा विधाता जगतामपि ॥ ५४ ॥
धन्योऽसि तत्र धाता च धन्यो नाहमुवाच सः ।
धन्यो महेश्वरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ५५ ॥

सर्वाराध्यः सर्वपूज्यो धर्मरूपः सनातनः । कालकालश्च संहर्ता स्वयं मृत्युञ्जयः प्रभुः

धन्योऽसि तत्र शम्भुश्च धन्यो नाहमुवाच सः ॥ ५६ ॥

सर्वादौ पूजनं यस्य ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।

धन्यो गणेश्वरो देवो देवानां प्रवरः परः ॥ ५७ ॥

सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवेन्द्रेषु श्रुतौ श्रुतम् । योगीन्द्रेषु च प्राज्ञेषु न गणेशात् परः पुमान्

निम्नगासु यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा । वेदप्रणिहितो धर्मो ह्य धर्मस्तद्विपर्य्ययः ॥

वेदो नारायणः साक्षाद्वयं पूज्या व्यवस्थया ।

तस्माच्छास्त्राणि सर्वाणि पुराणानि च सन्ति वै ॥ ६० ॥

तस्मान्निरूपितो धर्मो चेतिहासश्च संहिताः ।

तस्माद् धन्याश्च ते वेदा वदन्त्यत्र मनीषिणः ॥ ६१ ॥

यूयं धन्याश्च मान्याश्चेत्युक्ता वेदा मया ततः । ऊचुस्तेन वयं धन्या यज्ञसङ्घश्चसांप्रतम्

वयं व्यवस्थाकर्तारो यज्ञौघः फलदः स्वयम् ।

तस्माद्धन्यः स एवापि गच्छ गच्छ महामुने !॥ ६३ ॥

धन्योऽसि यज्ञसङ्घोऽसीत्युक्तस्तत्र मया विभो ।

ऊचुस्ते न वयं धन्या धन्यं कर्म शुभं मुने !॥ ६४ ॥

शुभकर्मासि धन्यं त्वं नाहं धन्यमुवाच तत् । कर्मणां फलदातारो कर्महेतुश्च साम्प्रतम्

धातुर्विधाता भगवान् सर्वादिः सर्वकारकः ।

श्रीकृष्णः परमात्मा च धन्यो मान्यश्च निश्चितम् ॥ ६६ ॥

धर्मालयं ततो गत्वा न दृष्ट्वा जगदीश्वरम् । मथुरामागतं द्रष्टुं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥

यज्ञानां तपसां चैव व्रतानां शुभकर्मणाम् । ईश्वरं फलदातारं परमात्मानमेव च ॥६८॥

कारणं कारणानाञ्च ब्रह्मादीनां पुरःसरम् ।

धन्योऽसीति मयोक्तश्च दक्षिणाभिः सहेति च ॥ ६९ ॥

इत्युक्तेन भगवता कथितं सर्वकारणम् । दक्षिणाभिश्च फलदो हतयज्ञो ह्यदक्षिणः ॥

दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते । एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्

मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् । संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकंव्रजेत्
वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च मूत्रकुण्डे निपत्य च । ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्ष पातकी ॥
दात्रा न दीयते दानं गृहीत्रा चेन्न गृह्यते । उभौ तौ नरकं प्राप्तौ वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥

यजमानश्च चाण्डालो ब्राह्मणस्तत्पुरोहितः ।
व्याधियुक्तावुभौ तौ च पापिनौ कर्मणः फलात् ॥ ७५ ॥

सर्वे देवाश्च मुनयो जहसुर्विस्मयं ययुः । विस्मयञ्च ययौ नन्दस्तत्याज पुत्रभावकम् ॥
रुरोद च सभामध्ये लज्जाहीनः शुचाकुलः । त्यज मोहमितीत्युक्त्वा बोधयामास पार्वती

श्रीनन्द उवाच ।

अमूल्यरत्नं माणिक्यं यथा कुजन्मनो गृहे । स्थितं तेन च देवेश तथाहं वञ्चितः प्रभो
ममापराधं भगवन् क्षमस्व प्रकृतेः परः । यास्यामि न पुनर्गेहं गोकुलं यमुनातटम् ॥
वृन्दावनं तथा वासं क्रीड़ावासं गदाग्रज । तत्सर्वं च यशोदाया गोपिकान्तिकमेव च
किं ब्रवीमि यशोदां च प्रेयसीं राधिकामपि । प्रेमपात्रञ्चबालौघं वद भो कथयामिकिम्

इत्युक्त्वा च सभामध्ये मूर्च्छां संप्राप नारद ।
क्रोड़े कृत्वा जगन्नाथो बोधयामास तत्क्षणम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे यज्ञादौ दक्षिणाकालनियमवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कृष्णस्य शक्तिदर्शनेन नन्दस्य मोहः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

चेतनं कुरु हे तात हे तात चेतनं कुरु । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारं सचराचरम् ॥ १ ॥

त्यज मोहं महाभाग मायां स्तौहि परात्पराम् ।

ब्रह्मस्वरूपां परमां सर्वमोहनिकृन्तनीम् ॥ २ ॥
मुक्तिप्रदां महाभागां विष्णुमायां सनातनीम् । त्रिपुरस्य वधे घोरे महायुद्धे भयाकुले ॥
येन स्तोत्रेण शम्भुश्च तया दैत्यं जघान सः ॥ ३ ॥
स्तोत्रराजं प्रदास्यामि सर्वमोहनिकृन्तनम् । सर्ववाञ्छाप्रदं नन्द श्रूयतामत्र संसदि ॥

श्रीनन्द उवाच ।

सर्वविघ्नविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । विभूतये च यशसे नृणां वाञ्छितसिद्धये ॥ ५॥
स्तोत्रमेकं महादेव्या जगन्मातुर्जगत्प्रभो । परं दुर्गतिनाशिन्या गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
देहि मह्यं विनीताय भक्ताय भक्तवत्सल । वेदानां जनकस्त्वञ्च निर्गणश्च परात्परः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु वक्ष्यामि वैश्येन्द्र स्तोत्रं यत्परमाद्भुतम् । सर्वविघ्नविनाशार्थं मोहपाशनिकृन्तनम्
रणत्रस्तेन विभुना शङ्करेण पुराकृतम् । नारायणोपदेशेन प्रेरितेन च ब्रह्मणा ॥ ६ ॥
शत्रुग्रस्तं शिवं दृष्ट्वा स ब्रह्माणमुवाच ह । उवाच शङ्करं ब्रह्मा रथस्थं पतितं रणे ॥
शूरसङ्कटशान्त्यर्थं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । मूलप्रकृतिमायां तां स्तौहि ब्रह्मस्वरूपिणीम्
हरिणाप्रेरितोऽहं च त्वां वदामि सुरेश्वर । विना शक्तिसहायेन को वा कं जेतुमीश्वरः
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार शङ्करः । पुटाञ्जलिपरोभूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः
स्नातः पादौ च प्रक्षाल्य धृत्वा धौते च वाससी ।
आचान्तः कुशहस्तश्च शुचिर्विष्णुं च संस्मरन् ॥ १४ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । मां भक्तमनुरक्तञ्च शत्रुग्रस्ते कृपामयि ॥ १५ ॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि । ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥१६
त्वञ्च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके । त्वं साकारे च गुणतो निराकारेचनिर्गुणात्
मायया पुरुषस्त्वञ्च मायया प्रकृतिः स्वयम् । तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि
वेदानां जननी त्वञ्च सावित्री च परात्परा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥ १६ ॥

मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः ।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले ॥ २० ॥
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता । सर्वशस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्य्यविधायिनी ॥
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती । प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि । गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दावनवने वने
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी । शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च
दक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा । देवमाता दितिस्त्वञ्च सर्वाधारा वसुन्धरा
त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वञ्च स्वाहा स्वधा सती ।
त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः ॥ २६ ॥
स्त्रीरूपञ्चातिपुरुषं देवि त्वञ्च नपुंसकम् । वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी ॥
वह्नौ च दाहिका शक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी । सूर्य्यतेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च सन्ततम्
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी ।
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसङ्घे च निश्चितम् ॥ २९ ॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका । महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी ॥
क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी ।
तुष्टिस्त्वञ्चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वञ्च क्षमा स्वयम् ॥ ३१ ॥
शान्तिस्त्वञ्च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्त्तिरेव च ।
लज्जा त्वञ्च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी ।
वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन ॥ ३३ ॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि ।
वेदा न शक्ताः को विद्वान् न च शक्ता सरस्वती ॥ ३४ ॥
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः ।
किं स्तौमि पञ्चवक्त्रेण रणत्रस्तो महेश्वरि ॥ ३५ ॥

कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु। इत्युक्त्वा च सकरुणं रथस्थे पतिते रणे ॥३६
आविर्बभूव सा दुर्गा सूर्य्यकोटिसमप्रभा। नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना ॥३७
शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च। इत्युवाच महादेवी मायाशक्त्याऽसुरं जहि

श्रीदुर्गोवाच।

वरं वृणीष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। भवान् वरः सुराणाञ्च जयं तुभ्यंददाम्यहम

श्रीमहादेव उवाच।

क्षयो भवतु दैत्यस्य इति मे वरमीश्वरि। देहीति वाञ्छितं दुर्गे परमाद्ये सनातनि ॥

भगवत्युवाच।

हरिस्मर महाभाग जयदैत्यं जगद्गुरो। स्वयं विधाता भगवान् त्वमेव ज्योतिरीश्वरः
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्वृषरूपो बभूव ह। दधार कलया मूर्ध्ना शूलपाणे रथं विभुः॥
ऊर्ध्वचक्रमधोग्रञ्च प्रकृतिञ्च चकार सः। शस्त्रं ददौ मन्त्रपूतमुद्दधार ततो रथम्॥

शिवः शस्त्रं गृहीत्वा च ध्यात्वा विष्णुं महेश्वरीम्।
जघान त्रिपुरं शीघ्रं स पपात महीतले ॥ ४४ ॥

तुष्टुवुः शङ्करं देवाश्चक्रुश्च पुष्पवर्षणम्। दुर्गा तस्मै ददौशूलं पिनाकं विष्णुरेव च॥
ब्रह्मा शुभाशिषञ्चैव मुनयश्चापि हर्षिताः। ननृतुर्देवताः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः॥
एतस्मिन्नन्तरे तात स्तवराजमनुत्तमम्। विघ्नं विघ्नकरं शीघ्रं शत्रुसंहारकारणम्॥
परमैश्वर्य्यजनकं सुखदं परमं शुभम्। निर्वाणमोक्षदञ्चैव हरिभक्तिप्रदं ध्रुवम् ॥४८॥
गोलोकवासदञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं वरम्। स्तोत्रराजप्रपठनात् प्रसन्ना पार्वती सदा॥
लोभमोहकामक्रोधकर्ममूलनिकृन्तनम्। बलबुद्धिकरञ्चैव जन्ममृत्युविनाशनम् ॥ ५० ॥
धनपुत्रप्रियांभूमिसर्वसम्पत्प्रदं नृणाम्। शोकदुःखहरञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं वरम् ॥ ५१ ॥
स्तोत्रराजप्रपठनात् महावन्ध्या प्रसूयते। बन्धनान्मुच्यते दुःखी भयान्मुच्येत निश्चितम्

रोगाद्विमुच्यते रोगी दरिद्रश्च धनी भवेत्।
दावाग्निमध्ये न मृतो मग्नः पोतो महार्णवे ॥ ५३ ॥

दस्युग्रस्तो रिपुग्रस्तो हिंस्रजन्तुसमन्वितः। स्तोत्रेणानेन वैश्येन्द्र कल्याणं लभते नरः

तैजसानां यथा रत्नमाश्रमाणां द्विजो यथा। नदीनाञ्च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रवरो यथा
तुलसी सर्वपत्राणां धराणाञ्च वसुन्धरा पुष्पाणां पारिजातञ्च काष्ठानां चन्दनं यथा
विष्णुपूजा च तपसां व्रतेष्वेकादशी यथा। ज्ञानिनाञ्च यथा शम्भुःसिद्धानाञ्च गणेश्वरः
देवानाञ्च यथा विष्णुर्वेदा शास्त्रेषु तन्त्रतः। देवीनाञ्च यथादुर्गा शान्तानां कमला यथा
सरस्वती च विदुषां राधिका सुन्दरीषु च। तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नातः परतरं व्रज
पुरा दत्तं ब्रह्मणे च पुष्करे सूर्य्यपर्वणि। दैत्यग्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम् ॥६०॥
शिवाय शत्रुग्रस्ताय ददौ ब्रह्मा मदाज्ञया। शिवश्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्वाससे ददौ॥
सनत्कुमारो भगवान् कृपया गौतमाय च। पुलहाय पुलस्त्याय ददौ चाङ्गिरसे मुदा॥
तथा चन्द्राय सूर्य्याय सूर्य्यश्चापि यमाय च। यमश्च चित्रगुप्ताय कृपया च पुरा ददौ

नित्यं पठिष्यसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय वै।
साक्षात्पश्यसि भो तात तामेव पार्वतीमिह ॥ ६४ ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपनं कुरु। नारायणस्य भक्ताय शान्ताय विदुषे तथा
सर्वज्ञाय च विप्राय प्रदातव्यं प्रयत्नतः। विप्राय वृषवाहाय वृषलीपतये तथा ॥ ६६ ॥
शूद्राणां सूपकाराय शूद्रश्राद्धान्नभोजिने। कन्याविक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः॥
सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद्यदि। दशायुतजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः॥
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा। अश्वमेधसहस्राच्च पृथिव्याश्चप्रदक्षिणात्

स्नानाच्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम् ॥ ६९ ॥

दत्तं तुभ्यं मया तात मम प्राणसमं व्रज। स्तवनं कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा नन्दस्तुष्टाव पार्वतीम्।
स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ॥ ७१ ॥

वरं तस्मै ददौ दुर्गा गोलोकवासमीप्सितम्। दुर्लभं परमं ज्ञानं वेदे यन्न श्रुतं मुने॥
राजेन्द्रत्वं गोकुले च कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम्। तद्दास्यञ्चापि परतो महत्त्वं सिद्धमेव च

वरं दत्त्वा ययौ दुर्गा संभाष्य शम्भुना सह।
जग्मुर्देवाश्च मुनयः स्तुत्वा च नन्दनन्दनम् ॥ ७४ ॥

उवाच नन्दं श्रीकृष्णो व्रज नन्द व्रजान्वितः । प्रहृष्टस्त्यक्तमोहश्च बोधेन दुर्लभेन च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवन्नन्दसंवादे दुर्गाया वरप्रदानं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

नवाशीतितमोऽध्यायः

नन्दम्प्रति श्रीकृष्णवाक्यम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ व्रजराज व्रजं व्रज । सर्वंतत्त्वं त्वया ज्ञातं दृष्टाश्च मुनयः सुराः

श्रुतं मे धन्यमाख्यानं नानाख्यानं सुदुर्लभम् ।
दुर्गायाः स्तोत्रराजञ्च जन्मपापनिकृन्तनम् ॥ २ ॥

स्थितं तत्ते निगदितं हर्षेण च सुखेन च । यत् कृतं बालभावेन चापराधश्च तत्क्षम ॥३

यत् सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे । कृतं सुखं तत्परञ्च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥

मदीयं प्रियवाक्यञ्च प्रहृत्वं विनयं भयम् । परिहासं वहुतरं यशोदां गोपिकागणम् ॥५

बालकानां समूहञ्च राधाञ्चापि विशेषतः । एकत्र च स्थितं तेषु बन्धुवर्गेषु कर्मणा ॥६

इहैवापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम् ।
सार्द्धं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः ॥ ७ ॥

गोपानां बालकैः सार्द्धं वृषभानेन गोपकैः
राधामात्रा कलावत्या राधया सह यास्यसि ॥ ८ ॥

रथानां शतलक्षञ्च गोलोकादागतं पितः । अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् ॥६॥

मणिमाणिक्यमुक्तानां मालाजालविभूषितम् ।
वह्निशुद्धांशुकै रम्यैराच्छिन्नं पीतवर्णकैः ॥ १० ॥

पार्षदप्रवरै रम्यैर्वेष्टितं श्वेतचामरैः । सद्रत्नदर्पणैरम्यैर्गोपिकाभिश्च गोपकैः ॥ १० ॥
वेष्टितश्च तदारुह्य कौतुकाद्यास्यसि ध्रुवम् ॥ ११ ॥
त्यक्त्वा च पार्थिवं देहं दिव्यदेहं विधाय च ।
अयोनिसम्भवा राधा राधामाता कलावती ॥ १२ ॥
यास्यत्येव हि तेनैव नित्यदेहेन निश्चितम् ।
पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या कलावती ॥ १३ ॥
धन्या च सीतामाता च दुर्गामाता च मेनका ।
अयोनिसम्भवा दुर्गा तारा सीता च सुन्दरी ॥ १४ ॥
अयोनिसम्भवास्ताश्च धन्या मेना कलावती । इत्येवं कथितं तात गोपनीयं सुदुर्लभम्
वरोऽयं दत्तस्तुभ्यञ्च मया च दुर्गया तथा ॥ १५ ॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच व्रजेश्वरः । पुनरेव जगन्नाथं तद्भक्तो भक्तवत्सलम्

नन्द उवाच ।

युगानाञ्च चतुर्णाञ्च यं यं धर्मं सनातनम् । क्रमेण कृष्ण विस्तीर्णं कृत्वा मां कथय प्रभो
कलिशेषे भवेद्यद्यद्गुणदोषं कलेस्तथा । का गतिर्वा पृथिव्याश्च धर्मस्य प्राणिनां तथा
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टः कमललोचनः । कथां कथितुमारेभे विचित्रां मधुरान्विताम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे नवाशीतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

चतुर्युगानां धर्मादिकथनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रृणु नन्द प्रवक्ष्यामि सानन्दमानसं यथा । कथां रम्यां सुमधुरां पुराणेषु परिष्कृताम्

परिपूर्णतमो धर्मो धार्मिकाश्च कृते युगे। परिपूर्णतमं सत्यं परिपूर्णतमा दया ॥ २॥
अतीवप्रज्वलद्रूपा वेदाश्चत्वार एव च। वेदाङ्गाश्चापि विविधाश्चेतिहासश्च संहिताः ॥
पुराणानि सुरम्याणि पञ्चरात्राणि पञ्च च।
रुचिराणि सुभद्राणि धर्मशास्त्राणि यानि च ॥ ४ ॥
विप्रा वेदविदः सर्वे पुण्यवन्तस्तपस्विनः। नारायणं ते ध्यायन्ते तन्मनस्का जपन्ति च
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चतुर्वर्णाश्च वैष्णवाः। शूद्रा ब्राह्मणभृत्याश्च सत्यधर्मपरायणाः
राजानो धार्मिकाश्चैव प्रजापालनतत्पराः। गृह्णन्त्येव प्रजानाञ्च षोड़शांशकलां नृपाः
करशून्याश्च विप्राश्च पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः।
सन्ततं सर्वशस्याढ्या रत्नाधारा वसुन्धरा ॥ ८ ॥
गुरुभक्ताश्च शिष्याश्च पितृभक्ताः सुतास्तथा। योषितः पतिभक्ताश्च पतिव्रतपरायणाः
ऋतौ सम्भोगिनः सर्वे न स्त्रीलुब्धा न लम्पटाः।
न भयं दस्युचौर्याणां न तत्र पारदारिकाः ॥ १० ॥
तरवः पूर्णफलिनः पूर्णक्षीराश्च धेनवः। बलवन्तो जनाः सर्वे दीर्घाः सौन्दर्यसंयुताः ॥
लक्षवर्षायुषः केचित् पुण्यवन्तो ह्यरोगिणः।
यथा विप्रा विष्णुभक्तास्त्रिवर्णा विष्णुसेविनः ॥ १२ ॥
जलपूर्णा नदा नद्यः सन्ततं कन्दरास्तथा। तीर्थपूताश्चतुर्वर्णास्तपःपूता द्विजातयः ॥
मनःपूताश्च निखिला खलहीनं जगत्त्रयम्। सत्कीर्तिपरिपूर्णञ्च यशस्यं मङ्गलान्वितम्
पितरः सर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः। सर्वकालेष्वतिथयः पूजिताश्च गृहे गृहे ॥१५
त्रिवर्णा विप्रभक्ताश्च विप्रभोजनतत्पराः। ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूषरमकण्टकम् ॥१६
नारायणोत्कीर्तनेन हर्षयुक्तास्तदुत्सवे। न देवानां द्विजानाञ्च विदुषां तत्र निन्दकाः
नात्मप्रशंसकाः केचित्सर्वे परगुणोत्सुकाः। न शत्रवो जनानाञ्च सर्वे सर्वहितैषिणः ॥
पुरुषा योषितश्चापि न हि मूर्खाश्च पण्डिताः।
न दुःखिनो जनाः सर्वे सर्वेषां रत्नमन्दिरम् ॥ १९ ॥
मणिमाणिक्यरत्नौघरत्नस्वर्णसमन्वितम्। न भिक्षुका न रोगार्ताःशोकहीनाश्च हर्षिता

न हि भूषणहीनाश्च नरा नार्यश्च केचन । न पापिनो न धूर्ताश्च न क्षुधार्ता न कुत्सिताः
जराहीनाः प्राणिनश्च शश्वद्यौवनसंस्थिताः । आधिव्याधिविहीनाश्च निर्विकाराश्च देहिनः
यदुक्तो वै सत्ययुगे धर्मः सत्यं दयादिकम् । पादहीनश्च त्रेतायां सत्यार्द्धं द्वापरेऽपि च
धर्मैकपाच्च प्रथमे कलेश्चापि कृशो वलः । दुष्टानां दस्युचौर्याणामङ्कुरः प्रभवेद् व्रज ॥

अधर्मनिरताः केचिद्भीताः सङ्गोपिनस्तथा ।
भीता गुप्ताश्च पुंश्चल्यो भीताश्च पारदारिकाः ॥ २५ ॥

धर्मिष्ठानां भयं शश्वदधर्मिष्ठाश्च कम्पिताः । स्वल्पधर्मरता भूपाः स्वल्पवेदरता द्विजाः ॥

व्रतधर्मरताः केचित्सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
यावत्तिष्ठन्ति तीर्थानि यावत्तिष्ठन्ति साधवः ॥ २७ ॥
यावत्तिष्ठन्ति ग्रामाणां देवाः शास्त्राणि पूजनम् ।
तावत्किञ्चित्तपः सत्यं स्वर्गधर्मांश एव च ॥ २८ ॥
कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि ।
मानसश्च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम् ॥ २९ ॥

तीर्थादिके गते तात नष्टो धर्मांश एव च । कलारूपश्च धर्मश्च यथा कुह्वां निशाकरः ॥

नन्द उवाच ।

तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येव कियद्दिनम् ।
साधवो ग्राम्यदेवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक ! ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कलौ दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम् ।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥ ३२ ॥

तदर्धमपि तीर्थानि गङ्गादीनि सुनिश्चितम् । तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च विदुषामपि ॥३३
अधर्मःपरिपूर्णश्च तदन्ते च कलौ पितः । एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ॥
न मन्त्रपूतोद्वाहश्च न हि सत्यं न च क्षमा । स्त्रीस्वीकाररतो नित्यं ग्राम्यधर्मप्रधानतः
न यज्ञसूत्रं तिलकं ब्राह्मणानाञ्च नित्यशः । सन्ध्याशास्त्रविहीनाश्च विप्रवंशा श्रुता अपि

सर्वैःसार्धञ्च सर्वेषां भक्षणं नियमच्युतम् । अभक्ष्यभक्षा लोकाश्च चतुर्वर्णाश्च लम्पटाः

नारीषु न सती काचित् पुंश्चली च गृहे गृहे ।
करोति तर्जनं कान्तं भृत्यतुल्यञ्च कम्पितम् ॥ ३८ ॥

जारायदत्त्वा मिष्टान्नं ताम्बूलंवस्त्रचन्दनम् । न ददात्येव चाहारं स्वामिने दुःखिनेपितः ।

पुत्रेण भर्त्सितस्तातः शिष्येण भर्त्सितो गुरुः ।
प्रजाभिस्ताड़ितो भूपो भूपेन ताड़िताः प्रजाः ॥ ४० ॥

दस्युचोरैश्च दुष्टैश्च शिष्टाश्च परिपीड़िताः । शस्यहीना च वसुधा क्षीरहीनाश्च धेनवः ॥

स्वल्पक्षीरे घृतं नास्ति नवनीतञ्च नित्यशः ।
सत्यहीना जनाः सर्वे नित्यं मिथ्या वदन्ति च ॥ ४२ ॥

शौचसन्ध्याशास्त्रहीना ब्राह्मणा वृषवाहकाः । सूपकाराश्च शूद्राणां शूद्राणां शवदाहकाः

शूद्रस्त्रीनिरताः शश्वच्छूद्रा विप्रवधूरताः । खादन्ति यस्य विप्रस्य भक्ष्यञ्च परिपाचकाः

मातुः परां तस्य पत्नीं शूद्रा गृह्णन्ति लम्पटाः ।
भृत्यश्च हत्वा राजानं स्वयं राजा भविष्यति ॥ ४५ ॥
नारी हत्वा पतिं कामाद्व्रजेज्जारञ्च कौतुकात् ।
पुत्रश्च पितरं हत्वा स्वयं भूपो भविष्यति ॥ ४६ ॥

सर्वे स्वच्छन्दनिरताःशिश्नोदरपरायणाः। वञ्चरा व्याधियुक्ताश्चकुत्सिताश्च कुचैलकाः

विक्षुण्णमन्त्रलिप्ताश्च मिथ्यामन्त्रप्रचारकाः ।
जातिहीनाश्च गुरवो वयोहीनाश्च निन्दकाः ॥ ४८ ॥
राजानश्चापि म्लेच्छाश्च यवना धर्मनिन्दकाः ।
सत्कीर्तिमपि साधूनां कुर्वन्त्युन्मूलनं मुदा ॥ ४९ ॥

पितृदेवद्विजातीनामतिथीनाञ्च नित्यशः । पूजा नास्ति गुरूणाञ्च पित्रोश्च पूजनंस्त्रियः

स्त्रीवन्धूनां गौरवञ्च स्त्रीणाञ्च सततं पितः ।
चोरः सत्कुलजातिश्च ब्राह्मणो देवहारकः ॥ ५१ ॥

मानं वहन्ति लोभेन युगे धर्मेण कौतुकात् । देवायतनहीनञ्च जगत्सर्वं भयाकुलम् ॥

अराजकञ्च दुर्नीतं सन्ततं कलिदोषतः। बुभुक्षिताः कुचैलाश्च दरिद्रा व्याधिनो नराः॥
कपर्दकघटाध्यक्षो राजेन्द्रो हि घटेश्वरः। वृद्धाङ्गुष्ठसमा लोका वृक्षाः शाकसमास्तथा
तालानां नारिकेलानां पनसानां तथैव च। फलानि सर्षपाण्येव तत् क्षुद्रञ्च ततः परम्
जलभाजनपात्रेण शस्येन वाससा तथा। विहीनं मन्दिरं सर्वं गृहाणामपरिष्कृतम्॥
गन्धकेन परिवृतं दीपहीनं तमोयुतम्। हिंस्रजन्तुभयाद्भीता जनाः सर्वे च पापिनः॥

सर्वे च फललोभिष्ठाः पुंश्चल्यः कलहप्रियाः।
रूपवत्यो न कामिन्यो नराश्चापि न रूपिणः॥ ५८॥

नद्यो नदाः कन्दराश्च तड़ागाश्च सरोवराः। जलपद्मविहीनाश्च जलहीना घनास्तथा॥
अपत्यहीना नार्यश्च कामुक्यो जारसंयुताः। अश्वत्थच्छेदिनः सर्वे वृक्षहीना वसुन्धरा
फलहीनाश्च तरवः शाखास्कन्धविहीनकाः। फलानि स्वादुहीनानि चान्नानिचजलानिच
मानवाः कटुवक्तारो निर्दया धर्मवर्जिताः। तदन्ते द्वादशादित्याः संहरिष्यन्ति मानवान्
सर्वान् जन्तूंश्च तापेन वहुवृष्ट्या व्रजेश्वर। अवशिष्टा च पृथिवी कथामात्रावशेषिता
कलौ गते च पृथिवी क्षेत्रं वर्षागते तथा। पुनः सत्यप्रवृत्तिश्च भविष्यति क्रमेण वै॥

इत्येवं कथितं सर्वं गच्छ तात व्रजं सुखम्।
अहं दुग्धमुखो बालः पुत्रस्ते कथयामि किम्॥ ६५॥

नवनीतं घृतं दुग्धं दधि तक्रं परिष्कृतम्। स्वस्तिकं शुभकर्माहं मिष्टान्नञ्चसुधोपमम्

मिष्टद्रव्यञ्च यत्किञ्चित् पितृदेवनिमित्तकम्।
भुक्तं बलाच्च तत् सर्वं बालानां रोदनं बलम्॥ ६७॥

तत् क्षमस्वापराधं मे बालदोषः पदे पदे। त्वं पिता तव पुत्रोऽहं यशोदा जननी मम॥
मदीयं परिहासञ्चयशोदां रोहिणींवद। कुमारास्याच्छ्रुतं सर्वंसोऽहमित्येवमीप्सितम्

कीर्तयिष्यसि तत् सर्वं सर्वं गोकुलवासिनम्।
कालः करोति संसर्गं बन्धूनां बन्धुभिः सह॥ ७०॥

कालःकरोति विच्छेदं विरोधं प्रीतिमेव च। कालः सृष्टिञ्चकुरुते कालश्च परिपालनम्
कालः करोति सानन्दं कालः संहरते प्रजाः। सुखंदुःखं भयंशोकंजरां मृत्युञ्च जन्मच

सर्वं कर्मानुरोधेन काल एव करोति च। सर्वं कालकृतं तात विस्मयं न व्रजंव्रज ॥
कुतस्त्वं गोकुले वैश्यो नन्दो वैश्याधिपो नृपः। वसुदेवसुतोऽहञ्च मथुरायामहो कुतः
पित्रा मे कंसभीतेन त्वद्गृहे च समर्पितः। पितुःपरःपिता त्वञ्च मातामातुः परापि वा
मयादत्तेन ज्ञानेन पार्वत्या च व्रजेश्वर। त्यज मोहं महाभाग गच्छ तात सुखंगृहम् ॥

नन्द उवाच।

स्मरवृन्दावनं तात रम्यं पुण्यं महोत्सवम्। गोकुलं गोकुलं रम्यं सुन्दरं यमुनातटम् ॥
रमणीनां सुरम्यञ्च त्वत्प्रियं रासमण्डलम्।
गोपालिका गोपवालान् यशोदां रोहिणीं प्रियाम् ॥ ७८ ॥
प्राणाधिकां राधिकां न कथं स्मरसि पुत्रक। वारमेकं स्वल्पदिनं गोकुलं गच्छवत्सक
इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च क्रोड़े कृष्णं चकार सः।
नेत्राश्रुणा च पूर्णेन तं सिषेच शुचान्वितः ॥ ८० ॥
चुचुम्वतद्गण्डयुगं कृत्वा वक्षसि मोहतः। सानन्दः परमानन्दो भगवांस्तमुवाच सः

इति श्रीव्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
चतुर्युगानां धर्मादिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः।

एकनवतितमोऽध्यायः।

गोकुले उद्धवस्य प्रेषणम्।

श्रीभगवानुवाच।

निषेकेन परिष्वङ्गो विभेदस्तेन वा भवेत्। क्षणेन दर्शनं तेन निषेकः केन वार्यते ॥ १ ॥
गमनागमनार्थञ्चाप्युद्धवः कथयिष्यति। प्रस्थापयामि तं शीघ्रं विज्ञास्यसि ततः पितः
यशोदां रोहिणीञ्चैव गोपिका गोपवालकान्।
प्राणाधिकां राधिकां तां गत्वा सम्वोधयिष्यति ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुदेवश्च देवकी। वलदेवश्चोद्धवश्च तथाऽक्रूरश्च सत्वरम् ॥ ४ ॥

वसुदेवउवाच ।

नन्द त्वं बलवान्ज्ञानी सद्बन्धुश्च सखा मम । त्यज्य मोहंगृहंगच्छवत्सस्तेऽयंयथामम
द्वारभूता गोकुलाच्च मथुरा नास्ति बान्धवः । महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसिपुत्रकम्

श्रीदेवक्युवाच ।

यथायमावयोः पुत्रस्तथैव भवतो ध्रुवम् । सालसः केन हे नन्द शुचा देहो हि लक्ष्यते
एकादशाब्दं सबलः स्थित्वा ते मन्दिरेसुखम् । कथंस्वल्पदिनेनैवशोकग्रस्तोभविष्यसि
तिष्ठ पुत्रेण सार्द्धञ्च मथुरायां कियद्दिनम् । पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं सफलं कुरु॥

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छोद्धव सुखंभद्र भविष्यति तव प्रियम् । प्रहर्षं गोकुलं गत्वा यशोदां रोहिणींप्रसूम्
गोपबालसमूहञ्च राधिकां गोपिकागणम् ।
प्रबोधयाध्यात्मिकेन मद्वृत्तेन च शुच्छिदा ॥ ११ ॥
नन्दस्तिष्ठतु सानन्दं मन्मातुराज्ञया शुचा । नन्दस्थितिं मद्विनयं यशोदां कथयिष्यसि
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः पित्रा मात्रा बलेन च ।
अक्रूरेण समं तूर्णं ययावाभ्यन्तरं गृहम् ॥ १३ ॥
उद्धवो रजनीं स्थित्वा मथुरायाञ्च नारद । प्रभाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
उद्धवप्रेषणं नाम चैकनवतितमोऽध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

गोकुलं गत्वा तत् शोभादिदर्शनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णप्रेरितो हृष्टःप्रणम्य च गणेश्वरम् । स्मरन्नारायणं शम्भुं दुर्गां लक्ष्मींसरस्वतीम्

गङ्गाञ्च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम् ।
प्रजगामोद्धवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसूचकम् ॥ २ ॥

शुश्रावदुन्दुभिं घण्टां नादं शङ्खध्वनिं तथा । हरिशब्दञ्च संगीतं शुश्राव मङ्गलध्वनिम्
पतिपुत्रवतीं साध्वीं प्रदीपमाल्यदर्पणम् । परिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च ॥ ४ ॥
दूर्वाङ्कुरं शुक्लधान्यं रजतं काञ्चनं मधु । ब्राह्मणानां समूहञ्च कृष्णसारं वृषं घृतम् ॥५॥
सद्योमांसं गजेन्द्रञ्च नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम् । पताकां नकुलं चाषं शुक्लपुष्पञ्च चन्दनम् ॥
दृष्ट्वैवं पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम् । ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरवटमक्षयम् ॥ ७

स्निग्धपूर्णं रक्तवर्णं पुण्यदं तीर्थमीप्सितम् ।
मुनेषान् बालकांश्चैव रक्तभूषणभूषितान् ॥ ८ ॥

वदतो बलकृष्णेति रुदतश्च शुचान्वितान् । तानाश्वास्य ययौ दूरं प्रविश्य नगरं मुदा ॥
ददर्श नन्द शिविरं रचितं विश्वकर्मणा । मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥

परिच्छिन्नं मनोरम्यं सद्रत्नकलशान्वितम् ।
द्वारं चित्रं विचित्राढ्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः ॥ ११ ॥

अवरुह्य रथात्तूर्णं तस्थौ तत्प्राङ्गणे मुदा । यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम्
आसनञ्च जलं गाञ्च मधुपर्कं ददौ मुदा । क नन्दः क बलः कृष्णः सत्यं तत् कथयोद्धव
उद्धवः कथयामास सर्वं भद्रं क्रमेण च । सार्द्धञ्च बलकृष्णाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम्
आयास्यति विलम्बेन कृष्णोपनयनावधि । युष्माकं कुशलं तत्त्वं विज्ञाय विधिपूर्वकम्

अहं यास्यामि मथुरां यशोदे शृणु साम्प्रतम् ।
श्रुत्वा मङ्गलवार्ताञ्च यशोदा रोहिणी मुदा ॥ १६ ॥

ब्राह्मणाय ददौ रत्नं सुवर्णं वस्त्रमीप्सितम् । उद्धवं भोजयामास मिष्टान्नञ्च सुधोपमम्
मणिश्रेष्ठञ्च रत्नञ्च ददौ तस्मै च हीरकम् । वाद्यञ्च वादयामासभ द्रं नानाविधं तथा ॥
ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास परमानन्दपूर्वकम् ॥
शङ्करं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम् । नानोपहारनैवेद्यैः पुष्पधूपप्रदीपकैः ॥ २० ॥
चन्दनैर्वस्त्रताम्बूलैर्मधुगव्यघृतादिभिः । भवानीं पूजयामास श्रीवृन्दारण्यदेवताम् ॥

षोड़शोपचारैर्द्रव्यैश्च बलिभिर्विविधैर्मुने ।
महिषाणां शतं शुद्धं छागलानां सहस्रकम् ॥ २२ ॥
मेषाणामयुतं शुद्धं युक्तमादाय पञ्चकम् । ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णशतं धेनूनाञ्च शतं तथा ॥
प्रददौ दक्षिणां तूर्णं कृष्णकल्याणहेतवे । उद्धवं पूजयामास सादरञ्च पुनः पुनः ॥२४॥
समाश्वास्य यशोदाञ्च रोहिणीं गोपबालकान् ।
वृद्धान् गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम् ॥ २५ ॥
ददर्श रासं रुचिरं चन्द्रमण्डलवर्तुलम् । श्रीरामकदलीस्तम्भैः शतकैरुपशोभितम् ॥२६॥
युक्तैश्च स्निग्धवसनैश्चन्दनानाञ्च पल्लवैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च श्रीयुक्तमाल्यजालकैः ॥२७॥
दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्वाङ्कुरैरपि । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः परिसंस्कृतम् ॥ २८ ॥
वेष्टितं रक्षितं यत्नाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः ।
त्रिलक्षैः सुन्दरै रम्यैः संसिक्तं रतिमन्दिरैः ॥ २९
लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णागमनशङ्कितैः । यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीवनम् ॥
चन्दनानां चम्पकानां यूथिकानां तथैव च ।
केतकीमाधवीनाञ्च वनं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३१ ॥
बकुलानां वञ्जुलानामशोकानाञ्च काननम् ।
मल्लिकानां पलाशानां शिरीषाणां तथैव च ॥ ३२ ॥
धात्रीणां काञ्चनानाञ्च कर्णिकानां वनं तथा ।
नागेश्वराणां विपिनं लवङ्गानां तथैव च ॥ ३३ ॥
वनञ्च शालतालानां हिन्तालानां वनं तथा । पनसानां रसालानां लाङ्गलीनां मनोहरम्
मन्दारकाननं रम्यं वामं कृत्वा च सत्वरम् । दृष्ट्वा कुन्दवनं रम्यं सम्प्राप्य मधुकाननम्
पुंस्कोकिलानां शब्देन मधुरेण समन्वितम् । मधुव्रतसमूहानां मधुरध्वनिपूरितम् ॥३६॥
वन्यवृक्षैः परिवृतं माध्वीकाधारमीप्सितम् ।
वातेन वन्यपुष्पाणां परितः सुरभीकृतम् ॥ ३७ ॥
तद्दृष्ट्वा राजमार्गेण यशोदोक्तेन साम्प्रतम् । ययौ शीघ्रं निरुद्विग्नं रहस्यं बदरीवनम् ॥

श्रीफलानाञ्च निम्बानां नारिङ्गाणां वनं तथा।
दृष्ट्वा रक्तिमवर्णञ्च सुपक्वफलमीप्सितम् ॥ ३९ ॥
तदेव वामतः कृत्वा विवेश कदलीवनम्। अतीवनिर्जने रम्ये ददर्श राधिकाश्रमम् ॥४०॥
मणीन्द्राणाञ्च प्राकारं परिखादुर्गवेष्टितम्। अत्यगम्यं रिपूणाञ्च मित्राणां सुगमं सुखम्
गोप्यं सङ्केतमार्गञ्च रक्षकैः परिरक्षितम्।
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारोज्ज्वलं परम्। रत्नेन्द्रसाररचितं रत्नस्तम्भैः सुशोभितम्॥
रत्नसोपानसंसक्तमन्दिरेण मनोहरम्। अमूल्यरत्नरचितं कलशैः परिशोभितम् ॥ ४४ ॥
वह्निशुद्धांशुकाभिश्च पताकाभिः परिष्कृतम्। सद्रत्नदर्पणोत्कृष्टं चर्चितं श्वेतचामरैः ॥
ददर्श सिंहद्वारञ्च युक्तं रत्नकपाटकैः। द्वारोपरि विचित्रञ्च रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥४६॥
कदम्बकाननं रम्यं तद्वस्त्रहरणादिकम्। विश्वकर्मविरचितं सुरम्यं रासमण्डलम्॥४७॥
नानारत्नकुटीरञ्च गोपगोपीसमन्वितम्। रक्षितं गोपिकालक्षैर्वेत्रहस्तैर्मनोहरैः ॥ ४८ ॥
स्वच्छन्दाचरणैः शश्वदभीतैर्वलिभिर्मुदा। तद्द्वारं पुरतो दृष्ट्वा विलङ्घ्य च जगाम सः
द्वितीयद्वारमुल्लङ्घ्य तस्मादुत्तममीप्सितम्।
द्वारं चतुर्थं सम्प्राप्य सर्वस्माच्च विलक्षणम् ॥ ५० ॥
तत्पश्चात् पञ्चमं द्वारं ददर्श चित्रमुत्तमम्। द्वारषट्कञ्च प्रययौ सर्वतो रुचिरं परम् ॥
रामरावणयोर्युद्धं भित्तिचित्रं मनोहरम्। दशावतारं विष्णोश्च कृत्रिमं रासमण्डलम् ॥
यमुनां जलकेलीञ्च रचितां विश्वकर्मणा। गोपिकानां सहस्रेण षष्ठद्वारञ्च रक्षितम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैर्भूषितेन च। सद्रत्नदण्डहस्तेन हीरकैर्भूषितेन च ॥ ५४ ॥
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारान्वितेन च।
माधवी तत्प्रधाना सा पप्रच्छ साम्प्रतं शिवम् ॥ ५५ ॥
ददौ प्रत्युत्तरं सर्वं क्रमेण च स उद्धवः। गत्वा विज्ञापयामास राधाप्रियसखीगणम् ॥
सा माधवी महाहृष्टा तत्र संस्थाप्य तं मुदा ॥ ५६ ॥
श्रुत्वा मङ्गलवार्ताञ्च राधाप्रियसखीगणैः। कृत्वा शङ्खध्वनिं घण्टामृदङ्गपणहस्वनम् ॥

कृत्वा निर्मञ्छनं शीघ्रमुद्धवं प्रियमागतम्। दृष्ट्वाप्रवेशयामास राधाऽभ्यन्तरमुत्तमम् ॥५८॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं गत्वा मन्दिरमुत्तमम्। ददर्श पुरतो राधां कृशां चन्द्रकलोपमाम् ॥
सुपक्वपद्मनेत्राञ्च शयानां शोकमूर्च्छिताम्। रुदन्तीं रक्तवदनां क्लिष्टाञ्च त्यक्तभूषणाम् ॥

निश्चेष्टाञ्च निराहारां सुवर्णवर्णकुण्डलाम्।
शुष्किताधरकण्ठाञ्च किञ्चिन्निःश्वाससंयुताम् ॥ ६१ ॥

प्रणनाम च तां दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्त्या भक्तः स उद्धवः

उद्धव उवाच।

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्। यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥६३॥
नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः। शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः॥
तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः। रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः। वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः

नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै च नमो नमः ॥ ६७ ॥

नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः। विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः। पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः॥

महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः।
नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ७० ॥

नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमोनमः। नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमोनमः
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः। नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः॥

मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः।
नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥

तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा। अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः ॥७४॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः। सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः। नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः॥

नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः। नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः। गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्य्यै नमो नमः

नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्य्यै नमो नमः।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः॥ ७९॥
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्य्यै नमो नमः॥ ८०॥

नमः संहाररूपिण्यै महामार्य्यै नमो नमः। भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः॥

नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः॥ ८२॥

नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः। क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः। सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः॥
अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः। शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः॥

नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा।
यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः॥ ८६॥

यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा। लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा॥
चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति। इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥
इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्ति पूर्वकम्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्

न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः।
प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥ ९०॥

अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्। निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्
रोगाद्विमुच्यतेरोगी बद्धो मुच्येतबन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्नआपदः

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥ ९३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधास्तोत्रे द्विनवतितमोऽध्यायः।

त्रिनवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धवस्तवचनं श्रुत्वा चेतनं प्राप्य राधिका । विलोक्य कृष्णाकारञ्च तमुवाच शुचान्विता

श्रीराधिकोवाच ।

किन्नाम भवतो वत्स केन वा प्रेरितो भवान् ।
आगतो वा कुत इति ब्रूहि मां केन हेतुना ॥ २ ॥

कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये त्वां कृष्णपार्षदम् । कृष्णस्यकुशलंब्रूहिबलदेवस्यसाम्प्रतम्
नन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद । समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं वनम्॥
पुनर्द्रक्ष्यामि तस्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम् । पुनः क्रीड़ां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले
जले च विहरिष्यामि पुनर्वा सखीभिःसह । श्रीनन्दनन्दनाङ्गे च पुनर्दास्यामि चन्दनम्

उद्धव उवाच ।

उद्धवेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं वरानने । प्रेषितः शुभवार्तार्थं कृष्णेन परमात्मना ॥ ७॥
तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि । कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य साम्प्रतम्

श्रीराधिकोवाच ।

अस्ति तद्‌ यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः ।
तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम् । पुंस्कोकिलानां विरुतं तल्पं चन्दनचर्चितम्
चतुर्विधश्च भोज्यश्च मधुपानञ्चसुन्दरम् । दुरन्तोदुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा
ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले । मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम् ॥

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः ।
सुगन्धिपुष्परचितं तल्पं चन्दनचर्चितम् ॥ १३ ॥

ताम्बूलं रतिभोगार्हं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । सुगन्धिमालतीमाल्यं श्वेतचामरदर्पणम् ॥
मुक्तामाणिक्यसंसक्तहीरहारमनोहरम् ।
नानोपकाननं रम्यं रम्यक्रीड़ासरोवरम् ॥ १५ ॥
सुगन्धिपुष्पोद्यानञ्च पद्मश्रेणीमनोहरम् । अस्त्येव सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम ॥
हा कृष्ण हा रमानाथ क्वासि मे प्राणवल्लभ ।
क्व वापराधो दास्याश्च दासीदोषः पदे पदे ॥ १७ ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी पुनर्मूर्च्छामवाप सा । चेतनं कारयामास पुनरेव स उद्धवः ॥
तां दृष्ट्वा परमाश्चर्य्यं मेने क्षत्रियपुङ्गवः ॥ १८ ॥
सखीभिः सप्तभिः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः ।
गोपीनाञ्च त्रिलक्षैश्च सुप्रियैः प्रियसेविताम् ॥ १९ ॥
दिवानिशं वेष्टिताञ्च गोपीनां शतकोटिभिः। काचित् कज्जलहस्ता च काचिन्माल्यधरापरा
काचित् सिन्दूरहस्ता च काचिद्गोरोचनाकरा ।
काचिच्चन्दनपात्रञ्च हस्ते कृत्वा च तिष्ठति ॥ २१ ॥
काचिद्दर्पणहस्ता च काचित् कुङ्कुमवाहिका । कस्तूरीपात्रमिष्टञ्च काचिद्वहति तत्र वै ॥
काचिच्चम्पकपात्रञ्च करे धृत्वा च तिष्ठति । मधुभिर्मधुरैः पूर्णपात्रं धृत्वा शुचान्विता ॥
काचित् सुगन्धितैलञ्च गृहीत्वा परितिष्ठति । काचिद्वहति ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्
काचिद्वासितमिष्टञ्च जलं धृत्वा च तिष्ठति। क्रीड़ापुत्तलिकां काचिच्चित्राढ्यां परिरक्षति
काचिद्वहति कन्दुकं काचिच्च रत्नभूषणम् । वह्निशुद्धांशुकं काचिदमूल्यं परिरक्षति ॥
काचिद्भक्ष्योपहारञ्च गृहीत्वा परिवर्तते ।
काचिच्च केशवेशार्थं करोति माल्यमीप्सितम् ॥ २७ ॥
काचित् कङ्कतिकां धृत्वा पुरतः परितिष्ठति ।
काचिद्यावकहस्ता च काचिद्धात्रीरसं मुदा ॥ २८ ॥
दूरतोऽपि वहत्येवं भीता च परितिष्ठति ।
काचिद्भीता भिया स्तौति काचिद्रोदिति शोकतः ॥ २९ ॥

काचित्तां बोधयत्येव विदग्धा विरहातुराम् ।
काचिदुत्तापतप्ता च स्निग्धतल्पे मनोहरे ॥ ३० ॥
स्थापयेद्देहदूरार्थं स्निग्धपद्मदले शुभे । एवम्भूताञ्च तां दृष्ट्वा प्रोवाच पुनरुद्धवः ॥
सुप्रियं कर्णपीयूषं विनयेन च भीतवत् ॥ ३१ ॥

उद्धव उवाच ।

जाने त्वां देवदेवीशां सुस्निग्धां सिद्धयोगिनाम् ।
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ ३२ ॥
श्रीदामशापाद्धरणीं प्राप्तां गोलोककामिनीम् ।
कृष्णप्राणाधिकां देवि तद्वक्षःस्थलवासिनीम् ॥ ३३ ॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शुभवार्तामभीप्सिताम् ।
सुस्थिरं सखीभिः सार्द्धं हृदयस्निग्धकारिणीम् ॥ ३४ ॥
दुःखदावाग्निदग्धायाः सुधावर्षणरूपिणीम् । विरहव्याधियुक्ताया रसायनसमां शुभाम्
तत्र तिष्ठति नन्दोऽयं सानन्दो मुदितः सदा । निमन्त्रितश्च वसुना कृष्णोपनयनावधि॥
गृहीत्वा स बलं कृष्णं साङ्गे मङ्गलकर्मणि ।
स नन्दो परमानन्दो मुदा यास्यति गोकुलम् ॥ ३७ ॥
आगत्य कृष्णो मुदितः प्रणम्य मातरं पुनः । नक्तमायास्यति मुदा पुण्यं वृन्दावनं वनम्
अचिराद्द्रक्ष्यसि सति श्रीकृष्णमुखपङ्कजम् । सर्वं विरहदुःखञ्च सन्त्यक्ष्यसि च साम्प्रतम्
सुस्थिरा भव मातस्त्वं त्यज शोकं सुदारुणम् ।
वह्निशुद्धांशुकं रम्यं परिधाय प्रहर्षिता ॥ ४० ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणग्रहणं कुरु । गृहाण चन्दनं स्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥४१॥
कुरुष्व केशसंस्कारं मालतीमाल्यभूषितम् । सुवेशं कुरु कल्याणि गण्डे च चित्रपत्रकम्
सिन्दूरविन्दुं सीमन्ते कस्तूरीचन्दनान्वितम् । अलक्तकाक्तं चरणं युक्तं यावकभूषणैः ॥
कुरुष्व तिष्ठ चोत्तिष्ठ रत्नसिंहासने वरे । सपङ्कपङ्कजं तल्पं त्यज सार्द्धं शुचा सति ॥
कृष्णेन मनसा विशुद्धं मधुरं मधु । संस्कृतं भासितं तोयं ताम्बूलञ्च सुवासितम्

रत्नेन्द्रसारनिर्माणपर्य्यङ्के सुमनोहरे। वह्निशुद्धांशुकान्ते च मालतीमाल्यभूषिते ॥ ४६ ॥
सुगन्धियुक्ते कस्तूरीजातीचम्पकचन्दनैः। परितो मालतीमाल्यहीरहारविभूषिते ॥४७॥
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यसुन्दरैश्च परिष्कृते। पुष्पमाल्योपधाने च मङ्गलार्हे मुदान्विता ॥
शयनं कुरु देवेशि गोपीभिः सेविता सदा। करोति सेवनं शश्वत् प्रियाली श्वेतचामरैः

पदारविन्दसेवाञ्च गोपी भक्त्या मनोहरे।
सद्रत्नसारनिर्माणपर्य्यङ्के सुमनोहरे ॥ ५० ॥

इत्येवमुक्त्वा स मुने पुनस्तूष्णीं बभूव ह। प्रणम्य पादपद्मञ्च ब्रह्मादिसुरवन्दितम् ॥५१

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा सस्मिता राधिका सती।
कौतुकञ्च ददौ तस्मै रत्नसाराङ्गुलीयकम् ॥ ५२ ॥
अमूल्यं सुन्दरं रम्यं विश्वकर्मविनिर्मितम्।
सुखशोभं पीतवर्णं सुदीप्तं सुप्रदीपवत् ॥ ५३ ॥

कृष्णाय वह्निना दत्तमपूर्वं रासमण्डले। मणिकुण्डलयुग्मञ्चामूल्यरत्नविनिर्मितम् ॥५४
अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वभूषणमीप्सितम्। वह्निशुद्धांशुकयुगं रत्ननिर्माणनायकम् ॥५५
हीरहारविनिर्माणं हारञ्च सुमनोहरम्। पुरा दत्तञ्च सुप्रीत्या कृष्णाय वरुणेन च ॥५६॥
श्रीसूर्य्येण च यद्दत्तं श्रीकृष्णाय स्यमन्तकम्। प्रदत्तं कौतुकं तस्मै यद्दत्तं हरिणा पुरा
यद्दत्तञ्च महेन्द्रेण रत्नसिंहासनं परम्। तत् प्रदत्तं मुदा देव्या तस्मै प्रीत्या च राधया
मणीन्द्रसारनिर्माणं छत्ररत्नं मनोहरम्। मुक्तामाणिक्यसारेण हीरहारसमन्वितम् ॥५९
विचित्ररत्नपद्मेन चित्रितं वारुणं सदा। शोभितं परितश्चान्यै रत्ननिर्माणदर्पणैः ॥६०॥
यद्दत्तं ब्रह्मणा प्रीत्या हरये रासमण्डले। सुप्रीत्या राधया तत्र प्रदत्तमुद्धवाय च ॥६१
मणिसारविनिर्माणं मणिराजविराजितम्। जपामाल्यं संस्कृतञ्च यद्दत्तं शम्भुना पुरा ॥

तदेव दत्तं तस्मै चाप्यमूल्यं पुण्यदं शुभम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिहरञ्चातिमनोहरम् ॥ ६३ ॥

चन्द्रकान्तमणिं रम्यं चन्द्रदत्तं परिष्कृतम्। चन्द्रावली ददौ तस्मै सुदीप्तं पूर्णचन्द्रवत्
विशुद्धं मधुपर्कञ्च मधुपात्रं यदक्षयम्। धर्मेण यत् प्रदत्तञ्च तद्दत्तं प्रियया हरेः ॥ ६५ ॥

जलभोजनपात्रञ्च शुद्धं स्वर्णविनिर्मितम् । मिष्टान्नं परमान्नञ्च ददौ सुस्वादु मिष्टकम् ॥

भोजनं कारयित्वा च कर्पूरादिसुवासितम् ।

ताम्बूलञ्च ददौ शीघ्रं माल्यं सुस्निग्धचन्दनम् ॥ ६७

शुभाशिषञ्च प्रददौ वाञ्छितं प्रवरं वरम् । ज्ञानकृष्णेन यद्दत्तं गोलोके रासमण्डले ॥

पुरुषाणां शतं यावन्निश्चलां कमलां ददौ ।

विद्यां यशस्करीं शुद्धां यशः कीर्तिं सुनिर्मलाम् ॥ ६९ ॥

सर्वसिद्धिं हरेर्दास्यं हरिभक्तिञ्च निश्चलाम् । पार्षद्प्रवरत्वञ्च पार्षदञ्च हरेरिति ॥ ७० ॥

वरं प्रसादं दत्त्वा च समुत्थाय मुदान्वितम् । वह्निशुद्धांशुके धृत्वा चामूल्यं रत्नभूषणम्

हीरहारं रत्नमालां परिधाय मनोहराम् । सिन्दूरं कज्जलं पुष्पमाल्यं सुस्निग्धचन्दनम्

रत्नसिंहासनस्थं तं पूजिता पूजितं मुदा । वेष्टिता हर्षनिरतं गोपीनां शतकोटिभिः ।

तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥ ७३ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

सत्यमायास्यति हरिःसत्यं निष्कपटं वद । वद तथ्यं भयं त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि

वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात् क्रतुः । वरं क्रतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशतात्किल ॥

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ७५ ॥

उद्धव उवाच ।

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं द्रक्ष्यसिसुन्दरि । ध्रुवंत्यक्ष्यसि सन्तापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखंहरेः

मद्दर्शनान्महाभागे गतस्ते विरहज्वरः ।

नानाभोगं सुखं भुंक्ष्व त्यज चिन्तां दुरत्ययाम् ॥ ७७ ॥

अहं प्रस्थापयिष्यामि गत्वा मधुपुरींहरिम् । विधाय तत्प्रबोधञ्च कार्यमन्यत्करिष्यति

विदायं कुरु मे मातर्यास्यामि हरिसन्निधिम् ।

सर्वं तं कथयिष्यामि तद्वृत्तान्तं यथोचितम् ॥ ७९ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

गमिष्यसि यदा वत्स मथुरांसुमनोहराम् । शृणुदुःखकथां काञ्चित्तिष्ठ वत्सस्थिरोभव

मां विस्मृतो न भवसि विरहज्वरकातराम् ।
कथयिष्यामि मत्कान्तं ध्रुवं प्रस्थापयिष्यसि ॥ ८१ ॥
नारीणां मनसो वार्तां को वा जानाति पण्डितः ।
किञ्चिच्छास्त्रानुसारेण प्रकरोति निरूपणम् ॥ ८२ ॥
वेदा वक्तुं न शक्ताश्च शास्त्राणि किं वदन्ति च ।
कथयिष्यामि त्वां सर्वं पुत्र कृष्णञ्च वक्ष्यसि ॥ ८३ ॥
गेहे वने न भेदो मे पश्वादिषु यथा नृषु । किंवा जलं किमु स्वप्नमज्ञानञ्च दिवानिशम् ॥
आत्मानञ्च न जानामि चोदयं चन्द्रसूर्य्ययोः । क्षणं प्राप्य हरेर्वार्तां चेतनं मे बभूव ह ॥
कृष्णाकृतिञ्च पश्यामि शृणोमि मुरलीध्वनिम् ।
कुलं लज्जां भयं त्यक्त्वा चिन्तयामि हरेः पदम् ॥ ८६ ॥
सम्प्राप्य सर्वजगतामीश्वरं प्रकृतेः परम् । न ज्ञानं मायया तस्य ज्ञात्वा गोपपतेर्मम ॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं वेदा ब्रह्मादयः सुराः ।
स भर्त्सितो मया कोपात् हृदि शल्यमिदं मम ॥ ८८ ॥
तत्पदाम्भोजसेवाभिर्गुणप्रस्तावतोऽपि वा । तद्भक्त्यायत्क्षणोनीतो ध्यानेन पूजयाऽथवा ॥
तत्रापि मङ्गलं सर्वं हर्षमायुर्व्यवस्थितम् । विघ्नञ्च हृदि सन्तापस्तद्विच्छेदे सदोद्धव ॥
क्रीडाप्रीतिर्न भविता तादृशीष्टा पुनर्मम । तादृशं प्रेमसौभाग्यं निर्जनेन च सङ्गमः ॥ ९१॥
वृन्दावनं न यास्यामि तत्सङ्गे पुनरुद्धव । चन्दनं वा न दास्यामि नन्दनन्दनवक्षसि ॥
मालां तस्मै न दास्यामि न द्रक्ष्यामि मुखाम्बुजम् ।
मालतीनां केतकीनां चम्पकानाञ्च काननम् ॥ ९३ ॥
पुनरेव न यास्यामि सुन्दरं रासमण्डलम् । हरिसङ्गे न यास्यामि रम्यं चन्दनकाननम् ॥
पुनरेव न यास्यामि मलयं रत्नमन्दिरम् । माधवीनां वनं रम्यं रहस्यं मधुकाननम् ॥
श्रीखण्डकाननं रम्यं स्वच्छं चन्द्रसरोवरम् । विस्पन्दकं सुरवनं नन्दनं पुष्पभद्रकम् ॥
भद्रकं हरिणा सार्द्धं न यास्यामि पुनः पुनः ।
क सा रम्या विकसिता माधवे माधवीलता ॥ ९७ ॥

क गता माधवी रात्रिः क मधुः क्वापि माधवः ।
इत्येवमुक्त्वा सा राधा ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।
पुनर्मूर्च्छाञ्च सम्प्राप्य रुदती पुलकान्विता ॥ ९८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधोद्धवसंवादे त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

———

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

मूर्च्छितां राधां दृष्ट्वा उद्धवकृत सान्त्वनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धवो विस्मयं प्राप्य भयञ्च विपुलं मुने। चेतनं कारयामास तामुवाच मृतामिव ॥१॥
तद्भक्तिसमभिज्ञाय स्वात्मानं भक्तसंख्यकम् । तुच्छं मेने जगत्सर्वं दृष्ट्वा भाग्यवतींसतीम्

उद्धव उवाच ।

चेतनंकुरु कल्याणि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । त्वमेवप्राक्तनंसर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम्
त्वत्तो विश्वं पवित्रञ्च त्वत्पादरजसा मही । सुपवित्रं त्वद्वदनं पुण्यवत्यश्च गोपिकाः
लोकास्त्वामेवगायन्ति गीतैर्मङ्गलसंस्तवैः। त्वत्सुकीर्तिश्चवेदाश्च सनकाद्याश्चसन्ततम्
कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूजाञ्च निर्मलाम् । हरिभक्तिप्रदां भद्रां सर्वविघ्नविनाशिनीम्॥
त्वमेवराधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान् प्रकृतिःपरा । राधामाधवयोर्भेदो न पुराणे श्रुतौतथा
राधिकांमूर्च्छितां दृष्ट्वा पश्चात्कृत्वातमुद्धवम् । उवाचमाधवीगोपीराधायाःपुरतःस्थिता

माधव्युवाच ।

किंवाचोरस्य कृष्णस्यरूपं वा वेशमुत्तमम् । किं सुखंविभवं किंवा गौरवञ्चाप्यनुत्तमम्
किंवा तद्वीर्य्यमैश्वर्य्यं शौर्य्यं वा दुरतिक्रमम् ।
किंवा सिद्धं प्रसिद्धं वा किंवा तुल्यं गुणोत्तमम् ॥ १० ॥

इतो वा कुत आयातः पुनरेव कुतो गतः। बालको गोपवेशश्च न हि राजात्मजःपुमान्

त्वं किं स्मरसि कल्याणि गोपालं नन्दनन्दनम् ।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ १२ ॥

मालत्युवाच।

धिक् त्वां राधेति निर्लज्जां तवैव जीवनंवृथा। जगतोयुवतीनाञ्च करोषि सुयशःक्षयम्

नारीणां गोपनं कार्य्यं व्यक्तेऽपि स्वयशःक्षये।

यत्नेन चक्षुषो वाहं सखि सञ्चरणं कुरु ॥ १४ ॥

अन्तरे पतिभावञ्च सङ्गोप्य भावनं कुरु। न वै जातिश्च शत्रूणां मित्राणाञ्च सुरेश्वरि

शत्रुः कार्य्यवशेनैव मित्रञ्च कर्मणा भवेत्। स्वकार्य्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्य्यध्वंसेन मूर्खता

कः कस्य वल्लभो राधे कः कस्याप्रिय एव च।

कार्य्यञ्च समयं ज्ञात्वा सन्तः कुर्वन्ति सन्ततम् ॥ १७ ॥

शत्रुर्धनापहारी च प्राणहर्ता ततः परः। कटुवक्ता दुःखदाता शत्रूणां लक्षणं शृणु ॥१८

स्वकुलात् त्वांबहिष्कृत्य विसृज्य शोकसागरे। गृहीत्वा चेतनंप्राणान्निष्ठुरो दारुणोगतः

किं किं स्मरसि मूढ़े हि त्यज शोकं सुदारुणम्।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ २० ॥

पद्मावत्युवाच।

भवता कथितं पूर्णं यमुनाजलसन्निधौ। अरसस्य रतिर्दूरं नारीणां न सुखं प्रिये ॥२१

विद्युज्ज्वाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च। न नीतिर्नातिशास्त्रेषुसुविश्वासःखलेषु च

यदा त्वं यमुनाकूले मुखं वीक्ष्यं हरेरहो। सस्मितं सुकटाक्षञ्च पुनः कृत्वास्यगोपनम्

पुनःपुनस्त्वं संवीक्ष्य त्वया त्यक्तञ्च चेतनम्। गृहं त्यक्त्वा गुरुभयं सखीनांवचनंशुभम्

सन्ततं ध्यायते कृष्णं नाहारं जीवनं तथा।

क्व कृष्णो मथुरायाञ्च क्वापि त्वं कदलीवने ॥ २५ ॥

त्वं यदि त्यजसि प्राणान्नाविर्भवति सोऽधुना।

काले द्रक्ष्यसि स्वात्मानं यदि रक्षसि सुन्दरि ॥ २६ ॥

चन्द्रमुख्युवाच ।

प्राक्तनेन शुभं सर्वं सुखञ्च विभवश्चिरम् । दुःखं शोकं प्राक्तनेन विपत्सम्पच्च साम्प्रतम्
भारते पुण्यभूमौ च सर्वेषामीप्सिते वरे । लभेत् पतिं हरिं कान्तं तपसा प्रकृतेः परम्
तथा विप्रदहेद्गात्रं कामवाणेन साम्प्रतम् । अस्याः शत्रुः कथं चन्द्रो मधुर्वा मधुमाधवौ
शङ्करेण प्रदग्धोऽभूत् पुनरेव स मन्मथः । चन्द्रं भक्षतु राहुश्च पुनश्चोद्गमनं तथा ॥३०॥

मधुश्च मित्रशोकेन प्राणांस्त्यक्त्वा ययौ वनम् ।
सुधासिन्धुश्च चेन्दुर्यो विषसिन्धुश्च मां प्रति ॥ ३१ ॥

सुवेशोऽस्या ज्वलद्वह्निश्चन्दनं तद्घृताहुतिः । सन्ततं प्रदहेद्गात्रं सुगन्धिश्च समीरणः ॥
त्यक्ताहारा मम सखी पश्य श्वसितजीवतीम् । प्रशंसां कुरु कृष्णस्य मुखेन कुरुनन्दन ॥
तन्नामस्मृतिमात्रेण तद्गुणश्रवणेन च । तद्वार्तया च शुभया सहसा चेतनं भवेत् ॥३४॥

शशिकलोवाच ।

त्वं किं माधवि जानासि कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।
यं तं ब्रह्मादयो देवा वेदाश्चत्वार एव च ॥ ३५ ॥
ध्यायन्ति सन्ततं सन्तः पादपद्मं सुरेप्सितम् ।
पद्मा सरस्वती दुर्गा सोऽनन्तोऽपि महेश्वरः ॥ ३६ ॥
यं न जानन्ति सिद्धेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवस्तथा ।
सर्वात्मनः कुतो रूपं निर्गुणस्य कुतो गुणाः ॥ ३७ ॥

सत्यमुक्तञ्च सत्यस्य यत्तदेव यथोचितम् । धत्ते भारावतरणे पृथिव्याश्च मनोहरम् ॥
सुखमाह्लादकं रम्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् । किमनिर्वचनीयञ्च रूपं जनमनोहरम् ॥ ३९ ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम शुभाश्रयम् । यत्पादपद्ममधुरं मधु मन्दाकिनीजलम् ॥

दध्रे शिरसि भक्त्या च सर्वेशः शङ्करः परः ।
शश्वत् करोति वैरागी तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम् ॥ ४१ ॥

क्षणं नृत्यति भक्त्या च पञ्चवक्त्रेण गायति । आहारं भूषणं वस्त्रं परित्यज्य दिगम्बरः
ब्रह्मज्योतिस्वरूपञ्च ध्यात्वा शुभ्रं सुनिर्मलम् । ब्रह्मा च तपसा जन्म नयत्येव हि सेवया

शेषः सनत्कुमारश्च सिद्धसङ्घश्च योगवित् ॥ ४३ ॥

सुशीलोवाच ।

निर्मन्थनार्हं न भवेत्तस्य कामशतं शतम् । चन्द्रोऽश्विनीकुमारौ वा रूपेषु केन गुण्यते
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवःसिद्धाभक्ताः सन्तश्च सन्ततम्

ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं निर्गुणस्यात्मनश्च वै ।
वेदाः स्तोतुं न शक्ताश्चयमीशञ्च सरस्वती ॥ ४६ ॥

जड़ीभूता च भीता च स्तवनेन क्षमापयेत् । सहस्रवक्त्रस्तवने कम्पितश्च निरन्तरम् ॥
वेदानां जनको ब्रह्मा स्तोत्रेण तस्य हीश्वरः । तं सत्यंनित्यमीशञ्चमाधवी परिनिन्दति
अपवित्रासमाभूता गोपीनां जीवनं वृथा । तासु पुण्यवती राधा ध्यायते यं दिवानिशम्
यन्नामस्मृतिमात्रेण कोटिजन्मार्जितं सखि । कृतं पापभयं शोकः प्रणश्यति न संशयः ॥

रत्नमालोवाच ।

दधार वामहस्तेन शैलं गोवर्धनं हरिः ।
ततः किं तद्यशः शौर्य्यं जगतां जनकस्य च ॥ ५१ ॥
शैलानाञ्च सहस्रं यो भेत्तुं शक्तश्च दैत्यराट् ।
लीलामात्रेण तेषाञ्च लक्षं हन्तुं क्षमो हरिः ॥ ५२ ॥

यदंशकलया जातः शूकरो विष्णुरीश्वरः । वसुधां दशनाग्रेण चोद्धार च लीलया ॥
शैलानाञ्च सहस्राणि यत्र सन्ति महीतले । दैत्याश्चवाप्यसंख्याश्चवीराःशूरास्तथैवच
तेनैव कर्मणा तस्य न शौर्य्यं न च पौरुषम् । न यशश्च प्रशंसावासखि सर्वात्मनात्मना

पारिजातोवाच ।

सप्तद्वीपा च वसुधा सशैलवनसागरा । काञ्चनीभूमिसहिता सर्वाधारा मनोहरा ॥
सप्तस्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकावधि प्रिये । विचित्राः सुन्दराश्चैव पातालानाञ्चसप्तच
एतैःपरिमितं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । महद्विष्णोर्लोमकूपे तदेवं चाणुवत् स्थितम्

तस्य यावन्ति लोमानि तानि विश्वानि सन्ति च ।
स एव षोड़शांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५६ ॥

तस्यैव किं यशः शौर्य्यं महिमानमनूपमम् ।
यत्स्मरी गोपकन्या च किंवा जानाति माधवी ॥ ६० ॥

माधव्युवाच ।

मया यदुक्तं न ज्ञात्वा मूढ़ा जल्पन्ति गोपिकाः ।
उद्धव शृणु मे वाक्यं यन्मया कथितं शुभम् ॥ ६१ ॥
स्वेच्छया सगुणो विष्णुः स्वेच्छया निर्गुणो भवेत् ।
भुवो भारावतरणे गोपवेशः शिशुर्विभुः ॥ ६२ ॥
यदि वेदाः पुराणानि सिद्धाः सन्तश्च सन्ततम् ।
ब्रह्म शशेषभक्ताश्च न जानन्ति यमीश्वरम् ॥ ६३ ॥
तं किं जानामि मूढ़ाहं यत्स्मरी गोपकन्यका ।
तथापि मद्वचः सत्यं श्रूयतां वत्स तत्क्षणम् ॥ ६४ ॥
किमनिर्वचनीयञ्च रूपं शौर्य्यं यशो बलम् ।
वीर्यं वेशञ्च सिद्धिं चाप्यन्यो वा यो गुणो हरेः ॥ ६५ ॥

स्वेच्छामयस्य तस्यैव सगुणस्य च साम्प्रतम् । किमनिर्वचनीयञ्च वर्तते तद्विशेषणम्
निर्गुणस्यच विष्णोश्च देहहीनश्चस्वात्मवान् । वर्ततेच किमाख्येयं तस्यरूपादिकञ्चकिम्
मां निन्दति महामूढ़ा न बुद्ध्वा वचनं मम । एषा जानाति किं मूढ़ा तं सत्यं प्रकृतेःपरम्

ज्योतिः स्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ।
तमनिर्वचनीयञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ६६ ॥

यत्पादपद्मं पद्मा सा त्रैलोक्यजननी परा । सेवते कम्पिता भीता दासीवत् सततं भिया
विष्णुमाया च प्रकृतिर्मूलरूपा सनातनी । ब्रह्मस्वरूपा परमा भीता दक्षिणपार्श्वतः॥
सरस्वती जड़ीभूता भीता च परमेश्वरी । स्तोतुं न शक्ता वेदाः किंस्तुवन्तिपरमेश्वरम्
तासां तद्वचनं श्रुत्वा चोद्धवो भक्तिविह्वलः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो रुरोद च पपात च ॥

मूर्च्छां सम्प्राप्य भक्त्या च ध्यात्वा तं परमेश्वरम् ।
तुच्छं मेने स चात्मानं गोपीं भक्त्याप्युवाच सः ॥ ७४ ॥

उद्धव उवाच ।

धन्यं प्रशस्यं द्वीपानां जम्बूद्वीपं मनोहरम् । यत्र भारतवर्षञ्च पुण्यदं शुभदं तथा ॥

वणिजाञ्च पुण्यकृतं वाणिज्यस्थलमीप्सितम् ।

यत्र कृत्वा सुपुण्यञ्च भुङ्क्तेऽन्यत्र शुभं फलम् ॥ ७६ ॥

धन्यं भारतवर्षञ्च पुण्यदं शुभदं वरम् । गोपीपादाब्जरजसा पूतं परमनिर्मलम् ॥ ७७॥

ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते ।

नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपद्मं सुपुण्यदम् ॥ ७८ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तञ्च ब्रह्मणा । राधिकापादपद्मस्य रेणूनामुपलब्धये ॥ ७९ ॥

गोलोकवासिनी राधा कृष्णप्राणाधिका परा । तत्र श्रीदामशापेन वृषभानसुताधुना ॥

ये ये भक्ताश्चकृष्णस्य देवाब्रह्मादयस्तथा । राधायाश्चापिगोपीनांकलांनार्हन्तिषोड़शीम्

कृष्णेभक्तिं विजानाति योगीन्द्रश्चमहेश्वरः । राधागोप्यश्चगोपाश्चगोलोकवासिनश्चये

किञ्चित्सनत्कुमाश्च ब्रह्माचेद्विषयीतथा । किञ्चिद्देवविजानन्तिसिद्धाभक्ताश्च निश्चितम्

धन्योऽहंकृतकृत्योऽहमागतो गोकुलं यतः। गोपिकाभ्यो गुरुभ्यश्चहरिभक्तिलभेऽचलाम्

मथुरां च न यास्यामि तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम् ।

श्रोष्यामि किङ्करो भूत्वा गोपीनां जन्मजन्मनि ॥ ८५ ॥

न गोपीभ्यः परोभक्तो हरेश्च परमात्मनः ।

यादृशीं लेभिरे गोप्यो भक्तिं नान्ये च तादृशीम् ॥ ८६ ॥

कलावत्युवाच ।

पितॄणां मानसीकन्या धन्या मेना कलावती । वयं तिस्रोभगिन्यश्च भ्रमामः पृथिवीतले

धन्याजनकपत्नी च सीतामाता पतिव्रता । अयोनिसम्भवा राधा अहं चायोनिसम्भवा

राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता भुवि । सनत्कुमारशापेन वयमेव महीतले ॥ ८९ ॥

क्षीरोदसागरं रम्यं श्वेतद्वीपं मनोहरम् । तिस्रो भगिन्यो भक्त्या च विष्णुं द्रष्टुं गतावयम्

अभ्युत्थानादि न कृतं कोपादस्मान् शशाप ह ।

सनत्कुमारो भगवान् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ९१ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

मूढास्तिष्ठतभूमौच पुनः स्वर्गं न यास्यथ । मर्त्यप्राणिप्रिया भूत्वा चाहंकारेण हेतुना पुनर्वरञ्च प्रत्येकं ददौ तुष्टो द्विजेश्वरः । विष्णोर्वंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी ज्येष्ठाभवतु त्वत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती । धन्याप्रिया तु भवतु योगिनोजनकस्यच तस्यकन्या महालक्ष्मीःसीतादेवीभविष्यति । वृषभानस्य वैश्यस्य योगिनां प्रवरस्यच दुर्वाससश्च शिष्यश्चं कनिष्ठाचकलावती । भविष्यति प्रिया साध्वी द्वापरान्तेचगोकुले कलावतीसुता राधा देवी गोलोकवासिनी । श्रीदामगोपशापेन भविष्यति न संशयः ईशो ब्रह्मेशशेषाणां भारावतारणेन च । आगमिष्यति पृथ्वीञ्च पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् ॥

कलावती वृषभानः कौतुकात् कन्यया सह ।
जीवन्मुक्तश्चं गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥ ९९ ॥

धन्या च सीतया सार्द्धंवैकुण्ठञ्च गमिष्यति । मेनकायोगिनी सिद्धापार्वत्याश्चवरेण च

कल्पान्ते विष्णुलोके च लक्ष्मीवन्मोदते चिरम् ।
विना विपत्त्या महिमा केषां कुत्र भविष्यति ॥ १०१ ॥

कर्मणा च गते दुःखे प्रभवेद्दुर्लभं सुखम् । पुरापितॄणां कन्याश्चस्वर्ग भोगविलासिकाः लक्ष्मीसमावरेणापि विप्रस्य विष्णुदर्शनात् । कर्मक्षयञ्चाप्यस्माकं बभूवविष्णुदर्शनात् पुण्येन तेन तीव्रेण कुमारस्यापि दर्शनम् । श्रुतं तत्र कुमारास्यात् ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सिद्धानां जगतामपि । ईश्वरः परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥

निर्गुणश्च निरीहश्च परः स्वेच्छामयो वरः ॥ १०५ ॥

तुलस्युवाच ।

सर्वप्राणिषु देवाश्च तिष्ठन्त्येव पृथक् पृथक् ।
प्राणो विष्णुश्च विषयी मनो ब्रह्मा च चेतना ॥ १०६ ॥

प्रकृतिर्बुद्धिरूपा च सर्वशक्त्याधिदेवता । ज्ञानस्वरूपः शम्भुश्च स्वयं धर्मश्च पुरुषः ॥

निर्गुणः परमात्मा च तद्ब्रह्म प्रकृतेः परम् ।
स एव कृष्णः साक्षी च कर्मणां जीविनामपि ॥ १०८ ॥

भोक्ताच्च सुखदुःखानांजीवस्तत्प्रतिबिम्बकः । चक्षुषोश्चन्द्रसूर्यौ च जिह्वायाञ्चसरस्वती
वसुन्धरात्वचि सदा बाह्वोस्ते लोकपालकाः । आत्मनश्चापि ते सर्वे परिचारकरूपिणः
आत्मन्येव प्रियास्ते च सर्वे गच्छन्ति जीविनः । यथा संसदि संसारे नरदेहमिवानुगाः

तस्मात्सर्वात्मनाऽऽत्मानं भजन्ति सन्ततं सदा ।
सन्तश्च परया भक्त्या ध्यायन्ते योगिनो मुदा ॥ ११२ ॥

कर्मिणांकर्मणा साक्षी कुतः कर्म च गोपनम् । अन्तर्यामी च कृष्णश्च प्रचारं कुरुतेमुदा

कालिकोवाच ।

नरावालाश्च वृद्धाश्च युवानस्त्रिविधास्तथा । देवादयश्च ये सिद्धाः सर्वेजानन्ति तं परम्

साम्प्रतं मूर्च्छितां राधां शुको बोधयितुं वुधः ।
अत्र युक्तिः प्रधाना च तां प्रवोधय चोद्धव ॥ ११५ ॥

उद्धव उवाच ।

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्निवोध माम् ।
उद्धवं कृष्णभक्तस्य किङ्करस्यापि किङ्करम् ॥ ११६ ॥

प्रसादं कुरु मातर्मां यास्यामि मथुरां पुनः । न स्वतन्त्रः पराधीना योषा दारुमयीयथा

यथा वृषो वशीभूतो वृषवाहस्य सन्ततम् ॥ ११७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधोद्धवसंवादे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारारायण उवाच ।

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा चेतनं प्राप्य राधिका । सा चोवाच समुत्थाय रत्नसिंहासने वरे

उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता। गोपीभिः सप्तभिर्भक्त्या सेविता श्वेतचामरैः॥

श्रीराधिकोवाच ।

मथुरांगच्छ वत्स त्वं माञ्च विस्मरसम्पदा। अतोऽप्यधर्मोनास्त्येष भवतोभवसागरे

मदीयं वचनं सर्वं गत्वा कथय साम्प्रतम्। श्रीकृष्णं परमानन्दं शीघ्रमानय मत्प्रभुम्॥

योषिज्जन्मनि योषित्सु सम्प्राप्य तादृशं पतिम्।

भेदो बभूव कस्या वा मदन्या कापि दुःखिनी॥ ५॥

किं ददासि प्रबोधं मे नास्ति मे बोधमोचितम्।

निष्फलो देहिनां देहो विनात्मानं सदोद्धव॥ ६॥

संप्रीत्या सह सौभाग्यं गौरवं नित्यनूतनम्। अतीवदुर्लभं प्रेमरहस्यं नवसङ्गमम्॥७॥

स्मरामि मनसा शश्वन्नान्यो मनसि वर्तते। रात्रौनिद्रां परित्यज्य स्मरणं शोकवर्धनम्

मामुद्धर ध्रुवं वत्स निमग्नां शोकसागरे। जीवाभयप्रदानेन तीर्थे स्नानफलं नृणाम्॥

प्रबोधितुं न शक्नोमि दुर्निवारञ्च मानसम्। चिन्तये चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः

तद्गुणं महिमानञ्च प्रीतिञ्च प्रेमसागरम्।

स्मारं स्मारञ्च सौभाग्यं मनो मे न स्थिरं चिरम्॥ ११॥

जगतां युवतीनाञ्च कासां वा दुःखमीदृशम्।

श्रीकृष्णभेददुःखञ्च का वा जानाति मां विना॥ १२॥

किञ्चिज्जानाति सीता साप्यहञ्च विधिबोधितम्।

मत्परा दुःखिनी नास्ति कामिनीषु जगत्त्रये॥ १३॥

का वा याति प्रतीतिं मे श्रुत्वा च मानसीं व्यथाम्।

कासां वा मत्समं दुखं युवतीनां सुतोद्धव॥ १४॥

राधिकासदृशीस्त्रीषु न भूता न भविष्यति। दुःखिनीविरहात्तप्ता सुखसौभाग्यवर्जिता

सम्प्राप्य कल्पवृक्षञ्च पतिञ्च जगतां पतिम्।

वञ्चिताऽहं विधात्रा च निर्दयेन च पापिना॥ १६॥

जीवनं सफलं जन्म सुस्निग्धं चक्षुषी मनः। तत्पादपद्मवक्त्रेन्दुरूपवेशप्रदर्शनात्॥१७॥

यन्नामश्रुतिमात्रेण पञ्चप्राणाः प्रहर्षिताः।
स्मृतिमात्रात् प्रफुल्यन्ते आत्मा सुस्निग्ध एवं च ॥ १८ ॥
यश्च पत्पर्शो सुरतौ यशस्त्रिभुवनेष्वपि। कया वा सम्पदा वत्स विस्मरामि तमीश्वरम्
त्रैलोक्यविजयं रूपं गुणमेव बिभर्ति यत्।
न निर्मितो यो विधिना तेनैव निर्मितो विधिः ॥ २० ॥
तं विधेश्च विधातारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
कल्पवृक्षात्परं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ २१ ॥
सर्वेशं सर्वबीजञ्च परमात्मानमीश्वरम्।
कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं पतिम् ॥ २२ ॥
यस्यनिर्मन्थनार्हश्च न चन्द्रो न च मन्मथः। नैवाश्विनीकुमारश्च गुणसाम्यं न विश्वतः
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः।
कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं प्रभुम् ॥ २४ ॥
स्वप्ने पश्यन्ति ये रूपमतुलञ्च मनोहरम्। तेऽपि सर्वं परित्यज्य ध्यायन्ते तमहर्निशम्
गुणेन शैलः सलिलं शुष्ककाष्ठं द्रवेदिति। मृतवृक्षो मुकुलितः स्तम्भितश्च समीरणः
सूर्य्यश्च जलधिश्चैव स्थगितो भक्तिभावतः।
कया वा सम्पदा पुत्र विस्मरामि च तं प्रियम् ॥ २७ ॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्य्यस्तपति यद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥
यद्भयात्फलिता वृक्षाः पुष्पिताःसमयेऽपि च। समुद्राःस्वात्मविषये ग्रहाश्च मुनयःसुराः
कालस्य कालः संवर्तः संहर्ता स्रष्टुरीश्वरः। स्वाधीनश्च स्वतन्त्रश्च स्वयमेवात्मसंज्ञकः
कया वा सम्पदा भक्त विस्मरामि च तं प्रभुम्।
प्रबोधो नास्ति तद्भेदे येन मां बोधयेद् बुधः ॥ ३१ ॥
माञ्च बोधयितुं शक्ता न सावित्री सरस्वती।
न वेदा न च वेदाङ्गाः के वा सन्तश्च के सुराः ॥ ३२ ॥
सहस्रवक्त्रोऽनन्तश्च वेदानां जनको विधिः। न शम्भुर्न गणेशश्च योगीन्द्राणांगुरोर्गुरुः

स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतोगतिः। कालसाध्यश्च सर्वेश सुखंदुःखंशुभाशुभम् दुर्निवारः स कालश्च कालसाध्यंजगत्सुच। उत्तिष्ठ मथुरां गच्छ सुखं वत्स मनोहरम् व्रजवासं परित्यज्य भवांश्च गमनोत्सुकः। सुचिरंकृष्णविच्छेदो दुःखाय न सुखाय च पश्य चन्द्रमुखं तस्य जन्ममृत्युजरापहम्। राधिकावचनं श्रुत्वा रुरोद भृशमुद्धवः।

रुदन्तीं राधिकां दृष्ट्वा वन्धुविच्छेदकातराम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधोद्धवसंवादे पञ्चनवतितमोऽध्यायः।

———

षण्णवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

श्रीकृष्णस्मरणं कृत्वा गमनोन्मुखमुद्धवम्। नतं राधापदाम्भोजे शिरसा पुलकाञ्चितम् उवाच माधवी गोपी रुदन्ती प्रेमविह्वला। भक्तं रुदन्तमुच्चैश्च राधाविच्छेदकातरम्॥

माधव्युवाच।

उद्धव श्रृणु वक्ष्यामि क्षणं तिष्ठ यथोचितम्।

निगूढं परमं ज्ञानं यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ३ ॥

सुदुर्लभं पुराणेषु वेदेषु गोपनीयकम्। प्रश्नं कुरु महाभाग राधिकां त्रिजगत्प्रसूम्॥ इत्युक्त्वा सा च गोपीशा समुवासस्तु संसदि। उवाचमधुरं शान्तामुद्धवश्चापिराधिकाम्

उद्धव उवाच।

एकाकी भवमायाति यात्येकाकी पुनः पुनः।

प्राणी कर्मानुरोधेन स्वकर्मफलभुक् पुमान् ॥ ६ ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैवाभिपद्यते॥

जन्तुर्भोगावशेषेण भोगं भुङ्क्ते भवेषु च ।
पुनश्च कर्मणो भोगात्समायाति च याति च ॥ ८ ॥
रत्नादिकञ्च यत् किञ्चित् मह्यं दत्तं त्वया सति ।
मया सार्द्धं न यात्येव तेन मे किं प्रयोजनम् ॥ ९ ॥
भवाब्धिसारणे देवी भवती तरणीवरा । कर्णधारः स्वयं कृष्णः सर्वेषां पारकारकः ॥
किञ्चिद्दानं देहि मह्यं भवाब्धिपारकारणम् ।
प्राप्य प्रसादं यास्यामि मथुरां कृष्णमूलकम् ॥ ११ ॥
यां यां कालगतिं मातः सुराणाञ्चनृणामपि । पितॄणां ब्रह्मलोकस्य तदूर्ध्वस्य च तां वद
तामेव दुस्तरां घोरां तीर्त्वा यामि हरेः पदम् । एवम्भूतमुपायञ्च देहि मे कमलालये ॥
दूरतोयत्पदाम्भोजं ध्यायन्तेचदिवानिशम् । देवा ब्रह्मेशशेषाद्यास्त्वंतद्वक्षःस्थलस्थिता
उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहास कमलालया । वाससा नेत्रनीरञ्च संमार्जितमुवाच सा ॥
माधवीवचनेनैव करोषि प्रश्नमुद्धव । स्त्रीजातिरबला लोके किं वा ज्ञानं ददामि ते ॥
शुद्धां कालगतिं वत्स जानातिभगवान् हरिः । ब्रह्मा महेशः शेषश्च वेदाश्चत्वार एव च
किञ्चिद्वेदानुसारेण सन्तो जानन्ति पुत्रक । श्रूयतांकृष्णवक्त्रेण गोलोके रासमण्डले ॥
गोलोके चापि वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च साम्प्रतम् । या च दृष्टाकालगतिस्तामेवकथयामिते
नृणां पितॄणां देवानां ब्रह्मलोकादिकस्य च ।
बहिर्लोकस्य ब्रह्माण्डात् पातालानाञ्च निश्चितम् ॥ २० ॥
दुरत्ययां कालगतिं येनोपायेन पण्डिताः । निस्तरन्ति बुधश्रेष्ठ कथयामि निशामय ॥

श्रीराधोवाच

भजन्ति जगतां नाथं कालकालंजगद्गुरुम् । निर्गुणञ्च निरीहञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥
सद्यःपतति देहोऽयं विनाये न सदात्मना । तं निषेव्य कालगतिं तरत्येव हि केवलम् ॥
आयुर्हरति सर्वेषां प्राणिनां रविरेवच । श्रीहरेः शुद्धभक्तानां सतांपुण्यवतांविना ॥
विधेर्मानसिकान् पुत्रान्चतुरः पश्यपुत्रक । सनकादीन्भागवतान् येषां च सुस्थिरं वयः
रुद्राद्यान्वयसादित्यान् ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरून् । बालाननुपनीतांश्च पञ्चवर्षशिशून् यथा ॥

अभ्यन्तरेमहास्फीतान्सस्मितांश्चदिगम्बरान् । श्रीकृष्णध्यानपूतांश्चतीर्थपूतांश्चवैष्णवान्
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां चिन्ताहीनान् प्रफुल्लितान् ।
भक्त्या दिवानिशं शश्वत् हरिभावेन तत्परान् ॥ २८ ॥
वाह्यपूजाविहीनांश्च पूतान् मानसिकांस्तथा ।
मृत्युञ्जयान् महाभागान् कालव्यालजितस्तथा ॥ २९ ॥
सनकञ्च सनन्दञ्च तृतीयञ्च सनातनम् । परं सनत्कुमारञ्च ये स्मरन्ति च सर्वशः ॥
तीर्थस्नानफलं लब्ध्वा मुच्यन्ते कृतपातकात् । हरिभक्तिर्भवत्येषां हरिदास्यं लभन्ति च
मृकण्डुवालकं पश्य कर्मणा च द्विजोत्तमम् । दशवर्षायुतं तीव्रंज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
हरिसेवनतः पश्चात् सप्तकल्पान्तजीवनम् । वोढुं पञ्चशिखंपश्य लोमकञ्चासुरिं तथा ॥
सर्वकर्मविहीनञ्च हरिसेवनतत्परम् । शतकल्पायुषञ्चैव ध्यायमानं हरेः पदम् ॥ ३४ ॥
जमदग्नेः सुतं पश्य रामं तं चिरजीविनम् । हनुमन्तं वलिं व्यासमश्वत्थामानमेव च ॥
विभीषणं कृपं विप्रं जाम्ववन्तञ्चभल्लुकम् । हरिभावनया चैते शुद्धाः सुचिरजीविनः ॥
सिद्धेन्द्रेषु नरन्द्रेषु नरेष्वन्येषु चोद्धव । हरिभावनशुद्धाश्च सर्वे ते चिरजीविनः ॥ ३७ ॥
प्रह्लादं पश्य दैत्येषु हिरण्यकशिपोः सुतम् ।
हरिद्विषो दुरन्तस्य हरिभावननत्परम् ॥ ३८ ॥
चिरायुषं कालजितं पश्यान्यञ्चाप्यसंज्ञकम् । अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते
ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः । वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः ॥
त्यक्त्वामृतं महामूढो विषं भुङ्क्ते निजेच्छया ।
कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा वान्धवास्तथा ॥ ४१ ॥
कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन विना भुवि ।
तस्मात्सन्तः सदा कृष्णं भजन्त्येव दिवानिशम् ॥ ४२ ॥
जन्मृत्युजराव्याधिहरं सर्वहरं परम् । कालस्य तरणोपायं भजनं परमात्मनः ॥ ४३ ॥
आनन्दनन्दनस्यैव परिपूर्णतमस्य च । शृणु कालगतिं वत्स मदीयज्ञानगोचराम् ॥४४॥
नराणाञ्च पितॄणाञ्च सुराणाञ्चापि ब्रह्मणः । नागानां राक्षसादीनां तदपरेषाञ्च पुत्रक ॥

कथयामि निगूढार्थं सावधानं निशामय। सर्वस्माच्च परस्थानः सर्वाधारोमहान्विराट्
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च तानि च।
सर्वस्माच्च परं सूक्ष्मं परमाणुं निशामय ॥ ४७ ॥
कालारम्भात्मकं सर्वमनूहं परमीप्सितम्। परमः सद्विशेषाणामनेको संयुतः सदा ॥
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः। परमाणुद्वयेनाणुस्त्रसरेणुस्तु ते त्रयः ॥४६॥
त्रसरेणुत्रिकेणापि त्रुटिरुक्ता मनीषिभिः। वेधस्त्रुटिशतेनैव त्रिवेधेन लवस्तथा ॥ ५०॥
त्रिलवेन निमेषश्च त्रिनिमेषेण च क्षणः। काष्ठा पञ्चक्षणेनैव लघुश्च दशकाष्ठया ॥५१॥
लघु पञ्चदशं दण्डस्तत्प्रमाणं निशामय। द्वादशार्द्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥५२॥
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्।
दण्डद्वये मुहूर्तः स्यात् षष्टिदण्डात्मिका तिथिः ॥ ५३ ॥
तदष्टभागः प्रहरः प्रमाणञ्च निरूपणम्। चतुर्भिः प्रहरै रात्रिश्चतुर्भिर्दिनमुच्यते ॥ ५४ ॥
तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमासं प्रकीर्तितम्। पक्षद्वयेन मासः स्याच्छुक्लकृष्णाभिधेन च ॥
ऋतुर्मासद्वयेनैव तत्षट्केनैव वासरः ॥ ५६ ॥
वसन्तो ग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशीतकः।
वर्षाः पञ्चविधा ज्ञेयाः कालविद्भिर्निरूपिताः ॥ ५७ ॥
संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च। अनुवत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः
अब्दो द्विषट्कमासैश्च तन्नाम शृणु चोद्धव।
वैशाखो ज्यैष्ठ आषाढः श्रावणो भाद्र एव च ॥ ५८ ॥
आश्विनः कार्तिको मार्गः पौषो माघस्तु फाल्गुनः।
चैत्रस्तु चरमो ज्ञेयो वर्षशेषो निरूपितः ॥ ६० ॥
वसन्तश्चैत्रवैशाखमासयुग्मेन कीर्तितः। ज्यैष्ठाषाढद्वयेनैव ग्रीष्मस्तु परिकीर्तितः ॥६१॥
वर्षा श्रावणभाद्रे च ह्याश्विने कार्तिके शरत्।
मार्गे पौषे च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुने ॥ ६२ ॥
अब्दस्तु चायने द्वे तु ह्युत्तरे दक्षिणमयने। माघादिषट्कं [illegible]मीप्सितम्।

श्रावणादिमसषट्कं दक्षिणायनमेव च ॥ ६३ ॥
नक्तं वृद्धेः श्रावणाच्च पौषपर्यन्तमेव च । प्रतिपत्पूर्जमां तस्य शुक्लपक्षः प्रकीर्तितः ॥६४
पूर्णिमायाः प्रतिपदश्चामावास्यन्त एव च । कृष्णपक्षस्तु विज्ञेयो वेदविद्भिर्निरूपितः ॥
द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ।
षष्ठी च सप्तमी चैव ह्यष्टमी नवमी तथा ॥ ६६ ॥
दशम्येकाशी चापि द्वादशी च त्रयोदशी । चतुर्दशी कुहूर्यावद्दिनन्तु गणनं स्मृतम् ॥
अश्विनी भरणी चापि कृत्तिका रोहिणी तथा ।
मृगशिरो तथार्द्रा च नक्षत्रे द्वे पुनर्वसू ॥ ६८ ॥
पुष्याश्लेषे मघा चैव पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी ।
हस्तचित्रे तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥ ६९ ॥
ज्येष्ठा मूलं तथा ज्ञेया पूर्वाषाढ़ोत्तरा तथा । श्रवणाभिजिते चैव धनिष्ठा च प्रकीर्तिता
ततः शतभिषा ज्ञेया पूर्वाभाद्रपदस्तथा । तथोत्तरा तु विज्ञेया रेवती चरमा स्मृता ॥
अष्टाविंशति नक्षत्रं कलत्रं शशिनस्तथा । क्रमेण ताभिः सार्द्धञ्च चन्द्रस्तिष्ठति नित्यशः
सप्तविंशतिनक्षत्रं कलत्रञ्च श्रुतौ श्रुतम् । अभिजिच्छ्रवणच्छाया तेनाष्टाविंशतिः स्मृता
एकदा च मधौ चन्द्रो रोहिण्या वामया सह ।
रेमे दिवानिशं नित्यं श्रवणा च चुकोप सा ॥ ७४ ॥
छायाञ्च दत्त्वा चन्द्राय ययौ तातान्तिकं भिया ।
ततो पितरमादाय सा चक्रे च विभागकम् ॥ ७५ ॥
बभूव तेन नक्षत्रमभिजिन्नामकं पुरा । एतच्छ्रुत्वा कृष्णमुखाच्छतशृङ्गे च पर्वते ॥
नक्षत्रं कथितं वत्स तिथ्या भ्रमति नित्यशः । योगञ्च करणञ्चैव मद्वक्त्रेण निशामय ॥
विष्कम्भःप्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यंशोभनस्तथा । अतिगण्डःसुकर्माच धृतिःशूलस्तथैवच
गण्डोवृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातोहर्षणस्तथा । वज्रंसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघःशिवः
सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्रो ब्रह्मैन्द्रो वैधृतिस्तथा ।
कीर्तितस्ते योगगणो करणं श्रूयतामिति ॥ ८० ॥

ववश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा । गरश्च वणिजश्चापि विष्टिश्च शकुनिस्तथा ॥
चतुष्पाच्चापि नागश्च किन्तुघ्न इतिकीर्तितम् । नराणाञ्चापिमासेन पितॄणाञ्चदिवानिशम्
शुक्ले चापि दिनन्तेषां कृष्णे नक्तं प्रकीर्तितम् ।
वत्सरेण नराणाञ्च सुराणाञ्च दिवानिशम् ॥ ८३ ॥
दिनन्तेषामुत्तरे च नक्तञ्च दक्षिणायने । मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥८४॥
मनोरायुःपरिमितं शक्रस्यायुः प्रकीर्तितम् । पञ्चविंशत् सहस्रञ्च तथा पञ्चशतं परम् ॥
तत्र सूर्यगतिर्नास्ति शक्रपातानुसारतः । दिवानिशञ्च जानन्ति ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥
दण्डद्वयं नरपलं शक्रपातेन तत्पलम् । एवं त्रिंशद्दिनेनैव धातुर्मासः प्रकीर्तितः ॥ ८७ ॥
अब्दो द्वादशभिर्मासै रवं तस्य शतायुषः । ब्रह्मणः पतनेनैव निमेषात् श्रीहरेरपि ॥८८॥
धातुः पातानुसारेण वैकुण्ठेन दिवानिशम् ।
तत्र सूर्यगतिर्नास्ति चैवं गोलोकतः स्मृतम् ॥ ८९ ॥
वैकुण्ठवासिनः सर्वे न वै जानन्त्यहर्निशम् ।
चन्द्रस्यापि ग्रहाणाञ्च गतिर्नास्ति च तत्र वै ॥ ९० ॥
चक्रं नैव भ्रमत्येव राशीनामिच्छया हरेः । दिनञ्च तेजसा दीप्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
नक्तं तेजोविहीनञ्च हरौ च मन्दिरं गते । एवं कालगतिस्तत्र विष्णुलोकेऽस्ति सन्ततम्
कालस्वरूपो भगवान् परमात्मा निराकृतिः । चन्द्रसूर्यगतिर्नास्ति पातालेषु च सप्तसु
तद्वासिनश्च जानन्ति शङ्कन्ते न दिवानिशम् ।
दिने च मूर्ध्नि नागानां मणिर्ज्वलति नित्यशः ॥ ९४ ॥
सन्ध्यायां दीप्तमग्निश्च रात्रिश्च तमसावृता । कालन्ताम्रीप्रमाणेन जानन्ति तन्निवासिनः
यथा भुवि तथा तत्र परिमाणं प्रकीर्तितम् । कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्वत्सरैश्चापि तन्मितम् । अष्टौ शतान्यप्यधिकं सहस्राणां चतुष्टयम्
दिव्यैर्वर्षैः कृतयुगं कालविद्भिर्निरूपितम् ।
अष्टाविंशत् सहस्राण्यप्यधिकं परिमाणकम् ॥ ९८ ॥
लक्षाणाञ्च सप्तदशनृमाणं परिकीर्तितम् । अधिकं षट्शतान्येव सहस्राणां शतं तथा ॥

दिव्यैर्वर्षैश्च त्रेतेति वत्स कालविदो विदुः। षण्णवतिसहस्राणि लक्षैर्द्वादशभिः सह॥
नृणां वर्षैश्च त्रेतेति कालविद्भिः प्रकीर्तितः। चतुष्टयं शतानाञ्चाप्यधिकं द्विसहस्रकम्
वर्षं दिव्यं द्वापरञ्च कालज्ञैः परिकीर्तितम्।
चतुःषष्टिसहस्राणि लक्षैरष्टभिरेव च ॥ १०२ ॥
नृणां वर्षैर्द्वापरञ्च कालज्ञैः परिकीर्तितम्। अधिकं द्विशतञ्चैव दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥
एवं मितं कलियुगं वत्स प्राज्ञैर्निरूपितम्। द्वात्रिंशच्च सहस्रञ्च चतुर्लक्षं नृमाणकम्॥
वर्षञ्चेति कलियुगे चकार कालकोविदः। लक्षैर्द्विचत्वारिंशद्भिः सह विंशत्सहस्रकैः।
नृमाणवर्षैः कालज्ञैर्व्यक्तमेव चतुर्युगम्। इति ते कथितं वत्स कालसंख्यानिरूपणम्॥
यथाश्रुतं यथाज्ञानं गच्छ वत्स हरेः पुरम् ॥ १०७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधोद्धवसंवादे कालनिरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।

सप्तनवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादवर्णनम्।

श्रीनारायण उवाच।

गच्छन्तमुद्धवं दृष्ट्वा सन्त्रस्ता श्रीहरेः प्रिया। समुत्थायासनात् शीघ्रं हृदयेन विदूयता
गोपीभिः सहिता शीघ्रं समुद्विग्ना महासती।
ददौ शुभाशिषं तस्मै तस्य मूर्ध्नि करं तथा ॥ २ ॥
स्निग्धदूर्वाक्षतं शुक्लधान्यं पुष्पञ्च मङ्गलम्।
प्रेरयामास लाजांश्च फलं पर्णं तथा दधि ॥ ३ ॥
दर्पणं दर्शयामास पूर्णकुम्भं सपल्लवम्। सफलं गन्धसिन्दूरकस्तूरीचन्दनान्वितम् ॥४॥
पुष्पमाल्यं प्रदीपञ्च रक्तगन्धं द्विजोत्तम। पतिपुत्रवती साध्वी काञ्चनं रजतं तथा॥

तमुवाच महासाध्वी हितं सत्यञ्च मङ्गलम् । सङ्गोप्यं साश्रुनेत्रञ्च पतितं दुःखिता हृदि राधिकोवाच ।

शुभं भवतु मार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम् ।
ज्ञानं लभ हरेः स्थानात् कृष्णस्य सुप्रियो भव ॥ ७ ॥

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् । श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि । अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥
अनेकजन्मतपसा सम्भूय भारते द्विज । हरिभक्तिर्यदि लभेत्तस्य जन्म सुदुर्लभम् ॥१०
सफलं जीवनं तस्य कुर्वतः कर्मणः क्षयम् । पितृणाञ्च सहस्राणि स्वस्य मातुश्चनिश्चितम्
मातामहानां पुंसांच शतानां सोदरस्य च । बान्धवस्यापिपत्न्याश्चगुरूणांशिष्यभृत्ययोः
तत्कर्म शोभनं वत्स यच्च कृष्णे समर्पणम् । तत्कर्म शोभनं शुद्धं कृष्णसन्तोषणं यतः
सङ्कल्पसाधनं कर्म सम्प्रीतिविधिपूर्वकम् । तदेव मङ्गलं धन्यं परिणामसुखावहम् ॥
तद्व्रतं तत्तपः सत्यं तद्भक्तिः पूजनं तथा । तदुद्देश्यमनशनं केवलं दास्यकारणम् ॥१५॥
समस्तपृथिवीदानं प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । समस्ततीर्थस्नानञ्च समस्तञ्च व्रतं तपः ॥
समस्तयज्ञकरणं सर्वदानफलं तथा । समस्तवेदवेदाङ्गपठनं पाठनं तथा ॥ १७ ॥
भीतस्य रक्षणञ्चैव ज्ञानदानं सुदुर्लभम् । अतिथीनां पूजनञ्च शरणागतरक्षणम् ॥ १८॥
सर्वदेवार्चनञ्चैव वन्दनं जपनं मनोः । भोजनं विप्रदेवानां पुरश्चरणपूर्वकम् ॥ १९ ॥
गुरुशुश्रूषणञ्चैव पित्रोर्भक्तिश्चपोषणम् । सर्वं श्रीकृष्णदासस्य कलां नार्हति षोड़शीम्
तस्मादुद्धव यत्नेन भज कृष्णं परात्परम् । निर्गुणञ्च निरीहञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥
नित्यं सत्यं परं ब्रह्म प्रकृतेः परमीश्वरम् । परिपूर्णतमं शुद्धं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२२॥
कर्मिणां कर्मणां साक्ष्यप्रदं निर्लिप्तमेव च । ज्योतिःस्वरूपं परमं कारणानाञ्च कारणम्
सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वसम्पत्प्रदं शुभम् । भक्तिदं दास्यदं स्वस्य निजसम्पत्पदप्रदम् ॥
विसृज्य ज्ञातिबुद्धिञ्च मात्सर्यमशुभप्रदम् । भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥

वेदे कौथुमिशाखायां तस्य नाम्नां सहस्रकम् ।
नन्दनन्दननामोक्तं कृतविघ्नसुदुर्लभम् ॥ २६ ॥

उद्धवः सर्वमाकर्ण्य परमं विस्मयं ययौ । ज्ञानं सम्प्राप्य सम्पूर्णं परिपूर्णो बभूव ह ॥२७

स्ववस्त्रञ्च गले बद्ध्वा दण्डवत् प्रणनाम ताम् ।
मूर्ध्नः केशैश्च तत्पादं निबध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रश्च भक्तितः । तद्विच्छेदशुचा प्रेम्णा रुरोदोच्चैश्च नारद ॥
रुरोद राधा तत्प्रेम्णा रुरोद वल्लवीगणः । उद्धवस्य गलं धृत्वा स्थापयामास लोभतः
उद्धवं मूर्च्छितं दृष्ट्वा जृम्भितं त्यक्तचेतनम् । शीघ्रमुत्थापयामास राधिकाकृष्णमानसम्
चेतनं कारयामास जलं दत्त्वा मुखाम्बुजे । शुभाशिषञ्च प्रददौ वत्स जीवेति नारद ॥
उद्धवश्चेतनं प्राप्य तामुवाच सुसंसदि । रुदन्तीनाञ्च गोपीनां पुरतः परमार्थदम् ॥३३

उद्धव उवाच ।

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बुद्वीपः सुदुर्लभः ।
यत्र भारतवर्षन्तु सर्वेषामीप्सितं वरम् ॥ ३४ ॥

अहो भारतवर्षेषु पुण्यं वृन्दावनं वनम् । राधापादाब्जसंस्पर्शरजःपूतं सुरेप्सितम् ॥

धन्या मान्या च पृथिवी त्रिषु लोकेषु पूजिता ।
राधायास्तीर्थपूतायाः पादाब्जरजसा वरा ॥ ३६ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि पुष्करे पुरा ।
ब्रह्मणा च तपस्तप्तं वेदोक्तं भक्तिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥
गोलोके राधिकाकृष्णदर्शनार्थं मनोरमात् ।
गोलोके राधिकाकृष्णो न दृष्टः स्वप्नतस्तदा ॥ ३८ ॥

श्रुता तेनाकाशवाणी सत्यरूपा च लीलया । वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने ॥
रासोत्सवे महारम्ये तत्रैव रासमण्डले । द्रक्ष्यसीति च देवानां मध्ये सुस्थो न संशयः
श्रुत्वा च विरतो ब्रह्मा तपसः स्वगृहं गतः । कृष्णो दृष्टश्च हृष्टश्च परिपूर्णमनोरथः ॥

गोपानां गोपिकानाञ्च सफलं जन्म जीवनम् ।
नित्यं पश्यन्ति ते पादपद्मं ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥ ४२ ॥
मानिनीं राधिकां सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः ।

योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा वैष्णवास्तथा ॥ ४३ ॥
सतीं पुण्यां तीर्थपूतां स्वतःशुद्धां सुदुर्लभाम् ।
सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ ४४ ॥
यत्पादपद्मनखरं कृतं यावकचिह्नितम् । सर्वेश्वरेश्वरेणैव कृष्णेन परमात्मना ॥ ४५ ॥
चकार यस्याः पूजाञ्च स्तोत्रराजं सुदुर्लभम् ।
शतशृङ्गे स्वयं कृष्णो गोलोके रासमण्डले ॥ ४६ ॥
पारिजातप्रसूनानामञ्जलिं गन्धचन्दनम् । ददौ दूर्वाक्षतं स्निग्धं यस्याः पादारविन्दयोः
त्रिंशत्सहस्रकोटीनां गोपीनामीश्वरी च या ।
तत्षट्त्रिंशत्सखीनाञ्च ईश्वरी राधिकाभिधा ॥ ४८ ॥
ये वा द्विषन्ति निन्दन्ति पापिनश्च हसन्ति च ।
कृष्णप्राणाधिकां देवदेवीञ्च राधिकां वराम् ॥ ४९ ॥
ब्रह्महत्याशतं ते च लभन्ते नात्र संशयः । तत्पापेन च पच्यन्ते कुम्भीपाके च रौरवे ॥
तप्ततैले महाघोरे ध्वान्ते कीटे च यन्त्रके । चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं पितृभिः सप्तभिः सह
ततः परञ्च जायन्ते जन्मैकं लोकजन्मतः । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च विष्ठाकीटाश्च पापतः ॥
पुंश्चलीनां योनिकीटास्तद्रक्तमलभक्षकाः । मलकीटाश्च तन्मानवर्षञ्च पूयभक्षकाः ॥
वेदे च काण्वशाखायामित्याह कमलोद्भवः ॥ ५३ ॥
इत्युक्तवन्तं तं यान्तमुवाच राधिका पुनः ।
रुदन्तञ्च रुदन्ती सा कृष्णविच्छेदकातरा ॥ ५४ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

गच्छ वत्स मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम् । यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुरु
निष्फलञ्च गतं जन्म गच्छ मिथ्या दुराशया ।
आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ ५६ ॥
पश्चाद्विचिन्त्य गोविन्दं जीवन्मुक्ता बभूव सा ॥ ५७ ॥
इत्युक्त्वा राधिका तत्र रुरोद च भृशं पुनः । प्रणम्य तां रुदन्तीं च यशोदाभवनं ययौ

अथोद्धवे गते राधा मूर्च्छां सम्प्राप नारद । तत्याज चेतनं शश्वद् बभूव ध्यानतत्परा ॥
पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले शयने मुने । गोप्यस्तां स्थापयामासुः साश्रुनेत्रोत्पला वराः
तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभूव ह । पुनः स्निग्धस्थले स्निग्धनिचोले चन्दनान्तिके

पुनस्तां स्थापयामासुर्विरहज्वरकातराम् ।
सहसा शुष्कतां प्राप सुगन्धिचन्दनोदकम् ॥ ६२ ॥

निमेषेण शतयुगं तद् बभूवोद्धवं विना । हाहोद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा वदेति च॥६३॥
समानय हरिं शीघ्रं यत् प्राणेश्वरमित्यपि । इत्युक्तवचनां दीनां सन्तापहृतचेतनाम् ॥

रुरुदुर्गोपिकाः सर्वा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ।
चेतनां कारयामासुर्बोधयामासुरीप्सितम् ॥ ६५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधोद्धवसंवादे सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

अष्टनवतितमोऽध्यायः

कृष्णोद्धवसम्वादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथोद्धवो यशोदाञ्च प्रणम्य त्वरया मुदा । खर्जूरकाननं वामे कृत्वा च यमुनां ययौ ॥
स्नात्वा भुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः । ददर्श वटमूले च गोविन्दं रहसि स्थितम्
प्रफुल्लोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा सस्मितं तमुवाच सः । रुदन्तं शोकदग्धञ्च साश्रुनेत्रञ्च कातरम्

श्रीभगवानुवाच ।

आगच्छोद्धव कल्याणं राधा जीवति जीवति ।
कल्याणयुक्ता गोप्यश्च जीवन्ति विरहज्वरात् ॥ ४ ॥

शुभं गोपशिशूनाञ्च वत्सानाञ्च गवामपि । माता मे पुत्रविरहाद्यशोदा कीदृशी च सा

वद बन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच सा ।
त्वयोक्ता जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम् ॥ ६ ॥
दृष्टं तद्यमुनाकूलं पुण्यं वृन्दावनं वनम् । निर्जनो पवनोघैश्च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥७॥
रम्यं कुञ्जकुटीरौघै रम्यं कीड़ासरोवरम् । पुष्पोद्यानं विकसितं सङ्कुलञ्च मधुव्रतैः ॥८॥
भाण्डीरे च वटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः ।
दृष्टो गोष्ठो गवां दृष्टं गोकुलं गोकुलव्रजम् ॥ ६ ॥
यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा तां किमुवाच माम् ।
तत्सर्वं वद हे वन्धो चान्दोलयति मे मनः ॥ १० ॥
किमूचुर्गोपिकाःसर्वाःकिमूचुर्गोपबालकाः । गोपाश्च वृद्धाःकिंवोचुर्वयस्याजनकस्य मे
बलदेवस्य जननी किमूचे रोहिणी सती । किमूचुरपरास्तात वन्धुवल्लभवल्लवाः ॥ १२॥
किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं मात्रा च राधया ।
कीदृक् वाक्यं सुमधुरं सम्भाषा कीदृशीति च ॥ १३ ॥
गोपानां गोपिकानाञ्च शिशूनां मातुरेव च ।
राधायाश्चापि कीदृग् वा मयि प्रेमोद्भवादिकम् ॥ १४ ॥
माञ्चस्मरति माता मे माञ्चस्मरति रोहिणी । माञ्चस्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला
माञ्च स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः ।
भाण्डीरे वटमूले च बालाः क्रीडन्ति मां विना ॥ १६ ॥
दत्तमन्नं ब्राह्मणीभिर्यत्र भुक्तं सुधोपमम् । प्रमदाबालकैःसार्द्धं यत्तद्दृष्टं परीप्सितम् ॥
इन्द्रयागस्थलं दृष्टं दृष्टं गोवर्धनं वरम् । ब्राह्मणा च हृता गावो यत्र तद् दृष्टमुत्तमम्
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम् । उद्धवःसमुवाचेदं भगवन्तं सनातनम्

उद्धव उवाच ।

यद्यदुक्तं त्वया नाथ सर्वं दृष्टं यथेप्सितम् । सफलं जीवनं जन्म कृतमत्रैव भारते ॥
दृष्टं भारतसारञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम् । तत्सारं व्रजभूमौ च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥
तत्सारभूता गोलोकवासिन्यो गोपिका वराः। दृष्टा तत्सारभूता च राधारासेश्वरीपरा

कदलीवनमध्ये च निर्जने सुहृदस्थले। पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते ॥ २३ ॥
शयनेऽतिविषण्णा सा रत्नभूषणवर्जिता। अतीवमलिना क्षीणा छादिता शुक्लवाससा
सेविता सखीभिस्तत्र सततं श्वेतचामरैः। कृशोदरी निराहारा क्षणं श्वसिति च क्षणम्

क्षणं जीवति किं सा वा विरहज्वरपीड़िता।
किं वा जलं स्थलं किं वा नक्तं किं वा दिनं हरे ॥ २६ ॥

परं पशुं न जानाति किं परं किमु बान्धवम्। बाह्यज्ञानविरहिता ध्यायमाना पदं तव
त्रैलोक्ये यशसाभाति तन्मृत्युर्यशसम्भवः। स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञानहीनाश्चदस्यवः
गच्छशीघ्रं जगन्नाथ कदलीवनमीप्सितम्। बहिर्भूता न जगतां सा राधा त्वत्परायणा

अतीवभक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा।
न हि राधापरा भक्ता न भूता न भविष्यति ॥ ३० ॥

मन्मथःशङ्कराद्भीतो भवांश्च तत्पुरःसरः। भवद्विधं पतिं प्राप्य कामदग्धा च राधिका
तस्मात्सर्वपरं कर्म तच्च केनापि वार्यते। मधुर्दहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च ॥३२
शश्वत्सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीड़िता। तप्तकाञ्चनवर्णाभा साधुना कज्जलोपमा॥
सुवर्णवर्णकेशी च वासोवेशविवर्जिता। स्वयं विधाता त्वद्भक्तः सुराणां प्रवरो विभुः
त्वद्भक्तः शङ्करो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। सनत्कुमारस्त्वद्भक्तो गणेशो ज्ञानिनांवरः
मुनीन्द्राश्च कतिविधास्त्वद्भक्ता धरणीतले। त्वद्भक्ता यादृशीराधा न भक्तस्तादृशोऽपरः
ध्यायते यादृशी राधा स्वयं लक्ष्मीर्नतादृशी। हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतंमया

शीघ्रं गच्छ महाभाग तदेव सार्थकं कुरु ॥ ३७ ॥

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः। वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यसुव्रतम्

श्रीभगवानुवाच।

स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्यर्थे प्राणसङ्कटे। गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥
तत्स्वीकारविहीनेन कुतस्त्वं नरकं कुतः। गोलोकं यातिमद्भक्तो नरकं न हि पश्यति
त्वदङ्गीकारसाफल्यंकरिष्यामि तथापि च। यास्यामि स्वप्ने तन्मूलंगोपीनांमातुरेव च
इत्याकर्ण्य ययौ गेहमुद्धवश्च महायशाः। हरिर्जगाम स्वप्ने च गोकुलं विरहाकुलम्॥

स्वप्ने राधां समाश्वास्य दत्त्वा ज्ञानं सुदुर्लभम् ।
सन्तोष्य क्रीड़या ताश्च गोपिकाश्च यथोचितम् ॥ ४३ ॥
बोधयित्वा यशोदाञ्च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम् ।
गोपान् गोपशिशूंश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः ॥ ४४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कृष्णोद्धवसंवादवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

नवनवतितमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे गर्गो वसुदेवाश्रमं ययौ । दण्डी क्षत्री च जटिलो दीप्तश्च ब्रह्मतेजसा ॥१
शुक्लयज्ञोपवीती च तपस्वी संयतः सदा । शुक्लदन्तः शुक्लवासा यदोः कुलपुरोहितः ॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवकी प्रणनाम च । वसुदेवश्च भक्त्या च रत्नसिंहासनं ददौ ॥३
मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा । दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः ॥
मिष्टान्नं परमान्नञ्च पिष्टकं मधुरं मधु । भोजयामास यत्नेन ताम्बूलं वासितं ददौ ॥५॥
प्रणम्य कृष्णं मनसा सबलञ्च विलोक्य च । उवाच वसुदेवञ्च देवकीञ्च पतिव्रताम् ॥

गर्ग उवाच ।

वसुदेव निबोधेदं सबलं पश्य पुत्रकम् । उपनीतोचितं शुद्धं वयसा साम्प्रतं वरम् ॥

वसुदेव उवाच ।

शुभक्षणं कुरु गुरो यदूनां पूज्यदैवते । उपनीतोचितं शुद्धं प्रशस्यञ्च सतामपि ॥ ८ ॥

गर्ग उवाच ।

सर्वेभ्यो बान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपत्रिकाम् । संभारं कुरु यत्नेन वसुदेव ! वसूपम !

परश्वः शुभमेवास्ति चोपनेतुमिहार्हसि । दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः ॥१०
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा वसुदेवो वसूपमः । प्रस्थापयामास सर्वान् बन्धून्मङ्गलपत्रिकाम् ॥
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम् । मधुकुल्यां गुडकुल्यां प्रचकारसमन्वितः
राशिं नामोपहाराणां मणिरत्नं सुवर्णकम् । नानालङ्कारवस्त्रञ्च मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥
श्रीकृष्णो देवगर्गांश्च मुनीन्द्रान्सिद्धपुङ्गवान् । सस्मारमनसाभक्त्याभक्तांश्चभक्तवत्सलः
शुभेदिने च संप्राप्ते ते च सर्वे समाययुः । मुनीन्द्रा बान्धवा देवा राजानो बहुशस्तथा
देवकन्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः। विद्याधर्य्यश्च गन्धर्वाश्चाप्सरसुर्वाद्यभाण्डकाः
ब्राह्मणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः। सन्न्यासिनश्चावधूता योगिनश्च समाययुः
स्त्रीबान्धवाःस्वबन्धूनांवर्गा मातामहस्य च। बन्धूनां बान्धवाःसर्वे स्वाययुःशुभकर्मणि
भीष्मो द्रोणश्चकर्णश्चाप्यश्वत्थामाकृपो द्विजः। सपुत्रो धृतराष्ट्रश्चसभार्य्यश्च समाययौ

कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता ।
नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः ॥ २० ॥

अत्रिर्वशिष्ठश्चच्यवनो भरद्वाजो महातपाः । याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च गार्ग्यो गर्गो महातपाः
वत्सः सपुत्रश्च धर्मो जैगीषव्यः पराशरः । पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यश्चापि सौभरिः
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥

दुर्वासाश्चाङ्गिरा व्यासो व्यासपुत्रः शुकस्तथा ।
कुशिकः कौशिको राम ऋष्यश्रृङ्गो विभाण्डकः ॥ २४ ॥

श्रृङ्गी च वामदेवश्च गौतमश्च गुणार्णवः । क्रतुर्यतिश्चारुणिश्च शुक्राचार्य्यो बृहस्पतिः
अष्टावक्रो वामनश्च पारिभद्रश्च वाल्मिकिः । पैलो वैशम्पायनश्च प्रचेताः पुरुजित् तथा
भृगुर्मरीचिर्मधुजित् कश्यपश्च प्रजापतिः । अदितिर्देवमाता च दितिर्दैत्यप्रसूस्तथा ॥
सुमन्तुश्च सुभानुश्च एकः कात्यायनस्तथा । मार्कण्डेयो लोमशश्च कपिलश्च पराशरः
पाणिनिः पारियात्रश्च पारिभद्रश्च पुङ्गवः । संवर्त्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहञ्चापि नारद ! ॥

विश्वामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तैतिलस्तथा ।
सान्दीपिनिश्च ब्रह्मांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥ ३० ॥

उपमन्युर्गौरमुखो मैत्रेयश्च श्रुतश्रवाः। कठः कचश्च करखो भरद्वाजश्च धर्मवित् ॥३१॥
सशिष्या मुनयः सर्वे वसुदेवाश्रमं ययुः। वसुदेवश्च तान् दृष्ट्वा ववन्दे दण्डवद्भुवि ॥
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः। रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शङ्करः ॥

नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्रः सुभद्रकः।
मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ३४ ॥

गजेन्द्रेण महेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रविस्तथा। कुवेरो वरुणश्चैव पवनो वह्निरेव च ॥ ३५ ॥
यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकूवरः। सर्वे ग्रहाश्च वसवो रुद्राश्च सगणास्तथा ॥

आदित्याश्च तथा शेषो नानादेवाः समाययुः।
वसुदेवश्च भक्त्या च ववन्दे शिरसा भुवि ॥ ३७ ॥

तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्रांश्च तथा सुरान्। भक्तिनम्रात्ममूर्ध्ना च पुलकाञ्चितविग्रहः

वसुदेव उवाच।

परं ब्रह्म परं धाम परमेशः परात्परः। स्वयं विधाता मद्गेहे जगतां परिपालकः ॥३९॥
वेदानां जनकः स्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः। सुराणाञ्च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणांगुरोर्गुरुः
स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च क्षणं द्रष्टुं सुदुर्लभम्। शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः
सर्वसङ्कटमुत्तीर्य्य कल्याणं लभते नरः। सर्वाग्रे पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः ॥४२॥
घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चावाहनेन च। स्वयं गणेशो भगवान् स साक्षाद्विघ्ननायकः

कार्तिकेयश्च भगवान् देवादीनाञ्च पूजितः।
देवानां प्रवरा पूज्या महालक्ष्मीः परात्परा ॥ ४४ ॥

मद्गेहे पार्वती माता जगतामादिरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४५॥
परापराणां परमा परब्रह्मस्वरूपिणी। यस्या अर्चां समाराध्य वाञ्छितं लभते नरः ॥

शरत्काले च भक्त्या च सा साक्षान्मम मन्दिरे।
सर्वदेवैश्च सहिता सगणा भक्तवत्सला ॥ ४७ ॥

कृपामयी च कृपया चाभिर्भूता च भारते। धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम ॥

आगतासि यतो दुर्गे परमाद्या च मद्गृहम्।

एवं सर्वांश्च तुष्टाव क्रमेण च परस्परम् ॥ ४९ ॥
सर्वान् मुनीन्द्रान् विप्रांश्च गले बद्धांशुकं मुदा ।
प्रत्येकं वासयामास रत्नसिंहासने वरे ॥ ५० ॥
पूजयामास विधिवत् क्रमेण च पृथक् पृथक् । प्रत्येकं वरयामास ब्रह्मादींश्च सुरानपि
मुनिवर्गान् ब्राह्मणांश्च भक्त्या गर्गं पुरोहितम् ।
रत्नैः प्रवालैर्मणिभिर्मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥ ५२ ॥
भूषणैर्वसनैश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः । रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ॥५३॥
गणेशं वरयामास पूजार्थं शुभकर्मणि । सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ॥ ५४ ॥
पुष्पचन्दनयुक्तेन शीतेन वासितेन च । स्वर्गगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुण्यतः ॥ ५५ ॥
पञ्चामृतेन शुद्धेन पञ्चगव्येन भक्तितः । हेरम्बं स्नापयामास समुद्रोदेन मन्त्रतः ॥ ५६ ॥
वरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद ! । रत्नेन्द्रभूषणेनैव वह्निशुद्धेन वाससा ॥५७॥
गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम् । तुष्टाव पार्वतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम् ।
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवदुपनयने गणेशाभिषेके नवनवतितमोऽध्यायः ।

शततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथादितिर्दितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः । सरस्वती च सावित्री यशोदा च पतिव्रता
लोपामुद्रारुन्धती च अहल्या तारका तथा । ययुस्ताः पार्वतीं द्रष्टुं वेगेन मन्दिरादपि
परस्परञ्च संभाष्य समाश्लिष्य पुनः पुनः । प्रणम्य वेशयामासुर्मन्दिरं रत्ननिर्मितम् ॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्। वरयामास माल्येन वाससा रत्नभूषणैः ॥
पारिजातस्य पुष्पञ्च शक्रानीतं मनोहरम्। ददौ तत्पादपद्मे च देवकी भक्तिपूर्वकम् ॥
सिन्दूरविन्दुं सीमन्ते भाले चन्दनविन्दुकम्।
कस्तूरीकुङ्कुमादींश्च प्रददौ परितस्तयोः ॥ ६ ॥
मिष्टान्नं भोजयामास शीततोयं सुवासितम्।
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ७ ॥
अलक्तकञ्च प्रददौ नखेषु पादपद्मयोः। कुङ्कुमस्यापि रागञ्च सिषेवे श्वेतचामरैः ॥ ८ ॥
संपूज्य पार्वतीं देवीं मुनिपत्नीः क्रमेण च। पूजयामास विधिवत् पतिपुत्रवतीः सतीः
राजकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः। मुनिकन्या बन्धुकन्याः पूजयामास सुव्रतः
वाद्यं नानाविधं रम्यं वादयामास कौतुकात्।
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् ॥ ११ ॥
भैरवीं पूजयामास मथुराग्रामदेवताम्।
उपचारैः षोड़शभिः षष्ठ्यां मङ्गलचण्डिकाम् ॥ १२ ॥
पुण्यं स्वस्त्ययनं शुद्धं कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥
स्वर्गङ्गासुजलेनैव सुवर्णकलशेन च। स्नापयामास सबलं श्रीकृष्णं पुत्रवत्सला ॥
वस्त्रचन्दनमाल्यैश्च तयोर्वेशञ्चकार सा। रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैश्च मनोहरैः ॥ १५ ॥
मातृभूषणभूषाढ्यः सबलः कृष्ण एव च। आययौ च सभां देवमुनीन्द्राणाञ्च नारद !
दृष्ट्वा तं जगतांनाथमुत्तस्थौ प्रजवेन च। स्वयं विधाता शम्भुश्च शेषो धर्मश्च भास्करः
देवाश्च मुनयश्चैव कार्तिकेयो गणेश्वरः। पृथक् पृथक् क्रमेणैव तुष्टाव परमेश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच।

नाथानिर्वचनीयोऽसि भक्तानुग्रहविग्रह। वेदानिर्वचनीयञ्च कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥

श्रीमहादेव उवाच।

देहेषुदेहिनंशश्वत् स्थितं निर्लिप्तमेव च। कर्मिणां कर्मणां शुद्धं साक्षिणं साक्षतंविभुम्
किं स्तौमि रूपशून्यञ्च गुणशून्यञ्च निर्गुणम् ॥ २० ॥

अनन्त उवाच ।

किंवा जानाम्यहं नाथ ! त्वामज्ञोऽनन्तमीश्वरम् ।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डकारणं दुःखतारणम् ॥ २१ ॥

महाविष्णोश्चलोम्नाश्च विवरेषुजलेषुच । सन्तिविश्वान्यसंख्यानिचित्राणिकृत्रिमाणिच
सन्तिसन्तश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । त्वदंशाःप्रतिविश्वेषु तीर्थानि भारतं तथा
ब्रह्माण्डैकस्थितोऽहञ्च सूक्ष्मनागस्वरूपकः । स्थापितश्चत्वया कूर्मे गजेन्द्रे मशको यथा

परमाणु परं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित् ।
महाविष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित् ॥ २५ ॥
महाविष्णोः परस्त्वञ्च तत्परो नास्ति कश्चन ।
स्थूलात् स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमो महान् ॥ ॥ २६ ॥
आधारश्च महाविष्णो जलरूपो भवान् स्वयम् ।
जलाधारो हि गोलोकस्त्वञ्च स्थावररूपधृक् ॥ २७ ॥

सर्वाधारोमहान् वायुःश्वासनिःश्वासरूपकः । भक्तानुग्रहदेहस्यनित्यस्य भवतोविभोः
वक्त्रैर्बहुतरैर्नाथ त्वया दत्तैः पुरैव च । स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमीश्वरम्

देवा ऊचुः ।

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः ।
न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३० ॥
सरस्वती जड़ीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम् ॥ ३१ ॥

मुनीन्द्रा ऊचुः ।

वेदा न शक्ता स्तोतुञ्चेत्त्वाञ्चैवज्ञातुमीश्वरम् । वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनंतव
इदंस्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिःकृतम् । यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तितः
इहलोके सुखंभुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम् । रत्नयानंसमारुह्य गोलोकं स च गच्छति

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवदुपनयने शततमोऽध्यायः ।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

संस्तूय देवा मुनयो विरेमुश्चैव मानसे । ददृशुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पीतवाससा ॥१॥
यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने ! । बकपङ्क्तियुतञ्चैव मालतीमालया तथा ॥२॥
कपाले मण्डलाकारकस्तूरीयुक्तचन्दनम् । सकलङ्कं मृगाङ्कञ्च शोभितं जलदे तथा ॥३॥

द्विभुजं श्यामलं कान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् । ॥ ४ ॥

रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रुदन्तं पितुरुत्सङ्गे बलेन सहितं परम् ॥ ५ ॥
अथ मङ्गलकाले च शुभलग्ने मनोरमे । संवीक्षिते ग्रहैः सौम्यैर्जाग्रल्लग्नाधिपे स्थिते ॥६॥
असद्ग्रहैरदृष्टे च सद्ग्रहेक्षित एव च । शुभकर्मसमारम्भं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ७ ॥
चकार वसुदेवश्चाप्याज्ञयासुरविप्रयोः । दत्त्वा सुवर्णशतकं ब्राह्मणाय च सादरम् ॥८॥
देवेन्द्रांश्च मुनीन्द्रांश्च नमस्कृत्य पुरोहितम् । गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निञ्च शङ्करं शिवाम्

सम्पूज्य देवषट्कञ्च साक्षतैर्देवसंसदि ।
उपचारैः षोड़शभिः संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥ १० ॥

पुत्राधिवासनं चक्रे वेदमन्त्रेण संसदि । सम्पूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥
दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोड़शमातृकाः । दत्त्वा च वसुधाराञ्च सप्तवारान् घृतेन च
चेदिराजं वसुं नत्वा सम्पूज्य प्रययौ पुनः । वृद्धिश्राद्धं सुनिर्वाप्य यत्किञ्चिद्दैविकंतथा
यज्ञं कृत्वा तु वेदोक्तं यज्ञसूत्रं ददौ मुदा । बलदेवाग्रजायैव कृष्णाय परमात्मने ॥१४॥

गायत्रीञ्च ददौ ताभ्यां मुनिः सांदीपिनिस्तथा ।
भिक्षां ददौ च प्रथमं पार्वती परमादरात् ॥ १५ ॥

अमूल्यरत्नपात्रस्थं मुक्तामाणिक्यहीरकम् । हीरसारविनिर्माणं पित्रा दत्तञ्च हारकम् ॥
शुभाशिषञ्च प्रददौ शुक्लपुष्पेण दूर्वया । ततोऽदितिर्दितिश्चैव मुनिपत्न्यश्च देवकी ॥

यशोदा रोहिणी हृष्टा सावित्री च सरस्वती ।
प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां मणिकाञ्चनभूषिताम् ॥ १८ ॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्याः पतिव्रताः ।
कामिन्यो बान्धवानाञ्च सस्मिताः स्निग्धलोचनाः ॥ १९ ॥
इन्द्राणी वरुणानी च पवनानी च रोहिणी ।
कुवेरपत्नी स्वाहा च रतिः कामस्य कामिनी ॥ २० ॥
प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम् । भिक्षां गृहीत्वा भगवान् सबलो भक्तिपूर्वकम्
किञ्चिद्ददौ च गर्गाय किञ्चित् स्वगुरवे तथा ।
वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ ॥ २२ ॥
देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणांश्चापि सादरम् ।
ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्त्वा शुभाशिषम् ॥ २३ ॥
कृष्णाय बलदेवाय प्रहृष्टाः प्रययुर्गृहम् । नन्दः सभार्य्यो निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य वै
क्रोड़े कृत्वा बलं कृष्णं चुचुम्ब वदनं तयोः । उच्चै रुरोद नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता ॥
श्रीकृष्णस्तं समाश्वास्य बोधयामास यत्नतः ॥ २५ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।
सानन्दं गच्छ हे मातर्यशोदे तात ! सत्वरम् ।
त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थतः ॥ २६ ॥
अवन्तिनगरं तात ! यास्यामि सबलोऽधुना ।
मुनेः सांदीपिनेः स्थानं वेदपाठार्थमीप्सितम् ॥ २७ ॥
तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम् । कालः करोति कलनं स च भेदं करोति च
सर्वं कालकृतं मातर्भेदं संमीलनं नृणाम् । सुखं दुःखञ्च हर्षञ्च शोकञ्च मङ्गलालयम् ॥
मया दत्तञ्च तत्त्वञ्च योगिनामपि दुर्लभम् । सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति
इत्युक्त्वा जगतां नाथो वसुदेवसभां ययौ । तदाज्ञया क्षणं प्राप्य ययौ सांदीपिनेर्गृहम्
वसुदेवं देवकीञ्च सम्भाष्य विनयेन च । नन्दः सभार्य्यः प्रययौ हृदयेन विदूयता ॥

मुक्तामणिं सुवर्णञ्च माणिक्यहीरकं तथा । वह्निशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय देवकी ददौ ॥
श्वेताश्वञ्च गजेन्द्रञ्च सुवर्णं रथमुत्तमम् । नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम् ॥
तयोरनुव्रजन् विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः । वसुदेवस्तथाक्रूरोऽप्युद्धवश्च ययौ मुदा ॥
कालिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुरुदुः शुचा । परस्परञ्च सम्भाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः
कुन्ती सपुत्रा विधवा वसुदेवाज्ञया मुने । नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा ॥
वसुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे । नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥ ३८ ॥
मुक्तामाणिक्यहारञ्च मिष्टान्नञ्च सुधोपमम् । भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सादरं मुदा ॥
महोत्सवं वेदपाठं हरेर्नामैकमङ्गलम् । विप्राणां भोजनञ्चैव कारयामास यत्नतः ॥४०॥

ज्ञातीनां वान्धवानाञ्च पुरस्कारं यथोचितम् ।
चकार मणिमाणिक्यमुक्तावस्त्रैर्मनोहरैः ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे भगवदुपनयनं नामैकशततमोऽध्यायः ।

————

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णस्य गमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृष्णः सान्दीपिनेर्गेहं गत्वा च सवलो मुदा ।
नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १ ॥
शुभाशिषं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नं मणिं हरिम् ।
गुरवे तस्य भार्य्यायै तमुवाच यथोचितम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्वत्तो विद्यां लभिष्यामि वाञ्छितां वाञ्छितं मम ।

कृत्वा शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम् ॥ ३ ॥
ओमित्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठः पूजयामास तं मुदा । मधुपर्कप्राशनेन गवा वस्त्रेण चन्दनैः ॥
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलञ्च सुवासितम् । सुप्रियं कथयामास तुष्टाव परमेश्वरम् ॥

सान्दीपिनिरुवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर । स्वेच्छामयं स्वयं ज्योतिर्निर्लिप्तैको निरङ्कुशः ॥६॥
भक्तैकनाथ भक्तेष्ट भक्तानुग्रहविग्रह । भक्तवाञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणवल्लभ ॥ ७ ॥
मायया वालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः । मायया भुवि भूपालो भुवो भारक्षयाय च
योगिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
ध्यायन्ते भक्तनिवहा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा ॥ ९ ॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं श्यामरूपकम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम्
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् । लीलापाङ्गतरंगैश्च निन्दितानङ्गमूर्च्छितम् ॥११॥
अलक्तभवनं तद्वत्पादपद्मं सुशोभनम् । कौस्तुभोद्भासिताङ्गञ्च दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नञ्च सुवेशं प्रस्तुतं सुरैः । देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥ १३ ॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणौघै न भूषितम् ॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामभीप्सितम् ॥ १४ ॥
चतुर्णामपि वेदानां कारणानाञ्च कारणम् । पाठार्थंमत्प्रियस्थानमागतोऽसि च मायया
पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम् । स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च

गुरुपत्न्युवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । पातिव्रत्यञ्च सफलं सफलञ्च तपोवनम् ॥
मद्दक्षहस्तः सफलो दत्तं येनान्नमीप्सितम् । तदाश्रमं तीर्थपरं तीर्थपादपदाङ्कितम् ॥
तत्पादरजसा पूता गृहाः प्राङ्गणमुत्तमम् ॥ १८ ॥
यस्य त्वत्पादपद्मञ्चैवावयोर्जन्मखण्डनम् । तावद् दुःखञ्च शोकश्च तावद्भोगश्च रोगकः
तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च ।
यावत्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् ॥ २० ॥

हे कालकाल भगवन् स्रष्टुः संहर्तुरीश्वर। कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिकृन्तन ॥२१

इत्युक्त्वा साश्रुनेत्रा सा क्रोड़े कृत्वा हरिं पुनः।
स्वस्तनं पाययामास प्रेम्णा च देवकी यथा ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम्।
गच्छ गोलोकमिष्टञ्च स्वामिना सह साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्वरञ्च कलेवरम्। विधाय निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम्

इत्युक्त्वा चतुरो वेदान् पठित्वा मुनिपुङ्गवात्। मासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतं पुरा

रत्नानाञ्च त्रिलक्षञ्च मणीनां पञ्चलक्षकम्। हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम्

माणिक्यानां द्विलक्षञ्च वस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
हारञ्च दुर्गया दत्तं हस्तरत्नाङ्गुलीयकम् ॥ २७ ॥

दशकोटिं सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ। अमूल्यरत्ननिर्माणं नारीसर्वाङ्गभूषणम् ॥

गुरुप्रियायै प्रददौ वह्निशुद्धांशुकं वरम्। मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह ॥

सद्रत्नरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम्। तमद्भुतं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा ॥

एवं ब्रह्मण्यदेवस्य चरित्रं शृणु नारदम्। इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् ॥३१

श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं लभते नात्र संशयः। अस्पष्टकीर्त्तिः सुयशा मूर्खोभवति पण्डितः

इह लोके सुखं प्राप्य यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्। तत्र नित्यं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
मुनिपत्नीस्तोत्रं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकानिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथागत्य मधुपुरीं प्रणम्य पितरं विभुः । सबलो वटमूले च सस्मार गरुडं हरिः ॥१॥
सादरं लवणोदञ्च विश्वकर्माणमीप्सितम् । तत्याज गोपवेशञ्च नृपवेशं दधार सः ॥२
एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम् । परं सुदर्शनं नाम सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥३॥
तेजसा हरिणा तुल्यं परं वैरिविमर्दनम् । अभ्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम् ॥४॥
रत्नयानं पुरःकृत्वा गरुडो हरिसन्निधिम् । विश्वकर्मा सशिष्यश्च जलधिः कम्पितस्तथा
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्ना च भक्तिपूर्वकम् । सस्मितं सादरं यत्नात्तानुवाच क्रमाद्विभुः

श्रीकृष्ण उवाच ।

हे समुद्र महाभाग स्थलञ्च शतयोजनम् ।
देहि मे नगरार्थञ्च पश्चाद्दास्यामि निश्चितम् ॥ ७ ॥

नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । रमणीयञ्च सर्वेषां कमनीयञ्च योषिताम्॥
वाञ्छितञ्चापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम् । सर्वेषामपि स्वर्गाणां परम्पारमभीप्सितम्

दिवानिशं स्वगश्रेष्ठ सन्निधौ विश्वकर्मणः ।
स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्माति द्वारकाम् ॥ १० ॥
दिवानिशञ्च मत्पार्श्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु ।
ओमित्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं विना मुने ॥ ११ ॥

कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम् । नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि ॥ १२॥
विजित्य च जरासन्धं निहत्य यवनं तथा । उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः॥

श्रीभगवानुवाच ।

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम् । पद्मरागैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः ॥ १४ ॥

रुचकैः पारिभद्रैश्च पलङ्कैश्च स्यमन्तकैः। गन्धकैर्गालिमैश्चैव चन्द्रकान्तादिभिस्तथा ॥

सूर्य्यकान्तादिभिश्चैव पुत्रैश्च स्फाटिकाकृतैः।

हरिद्वर्णैश्च मणिभिः श्यामैर्गौरमुखैश्चयैः ॥ १६ ॥

गोरोचनाभिः पीतैश्च दाडिमीवीजरूपकैः। पद्मवीजनिभैश्चैव नीलैः कमलवर्णकैः ॥

मणिभिः कज्जलाकारैरुज्ज्वलैश्च परिष्कृतैः। श्वेतचम्पकवर्णाभैस्तप्तकाञ्चनसन्निभैः ॥

स्वर्णमूल्यशतगुणैरीषद्रक्तैः सुशोभनैः। गरिष्ठैश्च वरिष्ठैश्च मणिश्रेष्ठैश्च पूजितैः ॥ १९ ॥

यथाविधानं यद्योगं यत्र यन्मुक्तमीप्सितम्।

मणीनां हरणञ्चैव यक्षसङ्घा हिमालयात् ॥ २० ॥

दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्निर्माणपूर्वकम्। यक्षैश्च सप्तभिर्लक्षैः कुवेरप्रेरितैरपि ॥२१॥

वेताललक्षैः कुष्माण्डलक्षैः शङ्करयोजितैः। दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः ॥

कुरु दिव्यञ्च पत्नीनां सहस्राणाञ्च षोड़श। अन्यपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च

शिविरं परिखायुक्तमुच्चैः प्राकारवेष्टितम्। युक्तद्वादशशालञ्च सिंहद्वारपरिष्कृतम् ॥२४॥

युक्तञ्चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः। निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम् ॥

सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्राङ्गणञ्च तथैव च। यदूनामाश्रमं दिव्यं किङ्कराणां तथैव च ॥२६॥

सर्वप्रसिद्धं निलयमुग्रसेनस्य भूभृतः। आश्रमं सर्वतोभद्रं वसुदेवस्य मत्पितुः ॥ २७ ॥

विश्वकर्मोवाच।

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन।

भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान् वदस्व जगद्गुरो ॥ २८ ॥

केषामस्थिनियुक्तञ्च शिविरञ्च शुभाशुभम्। दिशि कुत्र जलं भद्रमभद्रञ्च वद प्रभो ॥

भद्रप्रदश्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्त्तते। किं प्रमाणं गृहाणाञ्च प्राङ्गणानां सुरेश्वर ॥

मङ्गलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा। प्राकाराणां किं प्रमाणं परिखानां सुरेश्वर

द्वाराणाञ्च गृहाणाञ्च प्राकाराणां प्रमाणकम्।

कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिविरे प्रभो।

अमङ्गलं वा केषाञ्च सर्वं मां वक्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणाञ्च धनप्रदः । शिविरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तरुः ॥३३॥

सर्वत्र मङ्गलार्हश्च तरुराजो मनोहरः ।

रसालवृक्षः पूर्वस्मिन् नृणां सम्पत्प्रदस्तथा ॥ ३४ ॥

शुभप्रदश्च सर्वत्र सूरकारो निशामय । बिल्वश्च पनसश्चैव जम्बीरो बदरी तथा ॥३५॥

प्रजाप्रदश्च पूर्वस्मिन् दक्षिणे धनदस्तथा । सम्पत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि वर्द्धते गृही ॥

जम्बूवृक्षश्च दाड़िम्बः कदल्याम्रातकस्तथा । बन्धुप्रदश्च पूर्वस्मिन् दक्षिणे मित्रदस्तथा

सर्वत्र शुभदश्चैव धनपुत्रशुभप्रदः । हर्षप्रदो गुवाकश्च दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥ ३८ ॥

ईशाने सुखदश्चैव सर्वत्रैव निशामय । सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि भद्रप्रदस्तथा ॥३९॥

अलाम्बुश्चापि कूष्माण्डमायाम्बुश्च सकिंशुकः ।

खर्जुरी कर्कटी चापि शिविरे मङ्गलप्रदा ॥ ४० ॥

वास्तूककारविल्वश्च वार्ताकुश्च शुभप्रदः ॥ ४१ ॥

लताफलञ्च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम् । प्रशस्तं कथितं कारो निषिद्धञ्च निशामय ।

धन्यवृक्षो निषिद्धश्च शिविरे नगरेऽपि च ॥ ४२ ॥

वटो निषिद्धः शिविरे नित्यं चोरभयं यतः । नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात् पुण्यदस्तथा ॥

निषिद्धः शाल्मलिश्चैव शिविरे नगरे पुरे ।

दुःखप्रदश्च सततं भूमिपानां सदापि च ॥ ४४ ॥

न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । विद्यामतिनिषिद्धश्च सततं दुःखदस्तथा ॥

हे कारो तिन्तिड़ीवृक्षो यत्नात्तं परिवर्जयेत् ।

शतेन धनहानिः स्यात् प्रजाहानिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

शिविरेऽतिनिषिद्धश्च नगरे किञ्चिदेव च । न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ॥

विद्यामतिनिषिद्धश्च प्राज्ञस्तं परिवर्जयेत् । खर्जूरश्च गहुश्चैव निषिद्धः शिविरे तथा ॥

न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । वृक्षश्च चणकादिनां धान्यञ्च मङ्गलप्रदम् ॥

ग्रामेषु नगरे चापि शिविरे च तथैव च । इक्षुवृक्षश्च शुभदः सन्ततं शुभदस्तथा ॥५०॥

अशोकश्च शिरीषश्च कदम्बश्च शुभप्रदः ।
क्वचित् हरिद्रा शुभदा शुभदश्चार्द्रकस्तथा ॥ ५१ ॥
हरीतकी च शुभदा ग्रामेषु नगरेषु च ।
नवाद्या भद्रदा नित्यं तथा चामलकी ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

गजानामस्थिशुभदमश्वानाञ्च तथैवच । कल्याणमुच्चैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम्
न शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम् । वानराणां नराणाञ्च गर्दभानां गवामपि ॥५४॥
कुक्कुटानां शृगालानां मार्जाराणाममभद्रकम् । भेटकानां शूकराणां सर्वेषाञ्च शुभप्रदम् ॥
ईशाने चापि पूर्वस्मिन् पश्चिमे च तथोत्तमे । शिविरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च ॥

दीर्घे प्रस्थे समानञ्च न कुर्य्यान्मन्दिरं बुधः ।
चतुरस्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम् ॥ ५७ ॥
दीर्घः प्रस्थः परिमितो नेत्राङ्केनापि संहृतम् ।
शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शून्यप्रदं नृणाम् ॥ ५८ ॥
प्रस्थे हस्तद्वयात् पूर्वं दीर्घे हस्तत्रयं तथा ।
गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च ॥ ५६ ॥

न मध्यदेशे कर्त्तव्यं किञ्चिन्न्यूनाधिके शुभम् । चतुरस्रं चन्द्रवेधं शिविरं मङ्गलप्रदम् ॥
अभद्रदं सूर्य्यवेधं शिविरं मङ्गलप्रदम् । अभद्रदं सूर्य्यवेधं प्राङ्गणञ्च तथैव च ॥ ॥ ६१ ॥

शिविराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम् ।
धनपुत्रप्रदात्री च पुण्यदा हरिभक्तिदा ॥ ६२ ॥

प्रभाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानफलं लभेत् । मालती यूथिका कुन्दमाधवी केतकी तथा

नागेश्वरं मल्लिकाञ्च काञ्चनं वकुलं शुभम् ।
अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमोप्सितम् ॥ ६४ ॥

पूर्वे च दक्षिणेचैव शुभदं नात्र संशयः । ऊर्ध्वं षोड़शहस्तेभ्यो नैव कुर्य्याद् गृहं गृही

ऊर्ध्वं विंशतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुभप्रदम् ।
सूत्रधारं तैलकारं स्वर्णकारञ्च हीरकम् ॥ ६६ ॥

वाटीमूले ग्राममध्ये न कुर्य्यात् स्थापनंवुधः । ब्राह्मणंक्षत्रियं वैश्यं सच्छूद्रंगणकंशुभम् भट्टं वैद्यं पुष्पकारं स्थापयेच्छिविरान्तिके । प्रस्थे च परिखामानं शतहस्तं प्रशस्तकम् परितः शिविराणाञ्च गम्भीरं दशहस्तकम् । सङ्केतपूर्वकञ्चैव परिखाद्वारमीप्सितम् ॥

शत्रोरगम्यं मित्रस्य गम्यमेव सुखेन च ।
शाल्मलीनां तिन्तिड़ीनां हिन्तालानां तथैव च ॥ ७० ॥
निम्बानां सिन्धुवाराणामु(म)स्वराणामभद्रकम् ।
धत्तूराणां वटानाञ्चाप्येरण्डानामवाञ्छितम् ॥ ७१ ॥

एतेषामतिरिक्तानां शिविरे काष्ठमीप्सितम् । वृक्षञ्च वज्रहस्तञ्च भूधरो वर्जयेद्वुधः ॥ पुत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः । कथितं लोकशिक्षार्थं कुरु काष्ठं विना पुरीम् ॥ शुभक्षणञ्चाप्यधुना गच्छ वत्स यथा सुखम् । विश्वकर्मा हरिं नत्वा जगामपक्षिणासह समुद्रस्य समीपञ्च वटमूलं मनोहरम् । सुष्वाप तत्र नक्तं च कारुश्च पक्षिणा सह ॥

स्वप्ने द्वारवतीं रम्यां ददर्श गरुड़स्तथा ।
यत्किञ्चित् कथितं कारुं कृष्णेन परमात्मना ॥ ७६ ॥
तदेव लक्षणं सर्वं ददर्श नगरे मुने ।
कारुं हसन्ति स्वप्ने च सर्वे ते शिल्पकारिणः ॥ ७७ ॥

गरुड़ं गरुड़ाश्चान्ये वलवन्तश्च पक्षिणः । वुद्धो ददर्श गरुड़ो विश्वकर्मा च लज्जितः

अतीव द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम् ।
ब्रह्मादीनाञ्च नगरं विजित्य च विराजिताम् ।
तेजसाच्छादितं सूर्यं रत्नानाञ्च परिष्कृताम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे द्वारकानिर्माणारम्भे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

———

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकादर्शनार्थं देवादीनामागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या च भवः स्वयम् । अनन्तश्चापि धर्मश्च भास्करश्च हुताशनः
कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा । महेन्द्रश्चापि चन्द्रश्च रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ २ ॥

अन्ये देवाश्च मुनयो वसवः सप्त एव च ।
आदित्याश्चापि दैत्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ३ ॥

आययुर्द्वारकां द्रष्टुं श्रीकृष्णञ्च बलं तथा । आगच्छन्तञ्च सहसा वटमूलं मनोहरम् ॥

दृष्ट्वा च देवताः सर्वास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥

आकाशाच्च विमानैश्च सम्प्राप्य वटमूलकम् ॥ ५ ॥

ददृशुर्द्वारकां रम्यामतीवसुमनोहराम् । मुक्तामाणिक्यहीरेण रत्नराजिविराजिताम् ॥६॥

परितश्चतुरस्राञ्च शतयोजनसंमिताम् ।
सप्तभिः परिखाभिश्च गम्भीराभिश्च वेष्टिताम् ॥ ७ ॥

प्राकारैर्नवभिर्युक्तां लक्षैः क्रीड़ासरोवरैः । मनोहरैः सपद्मैश्च सहितैश्च मधुव्रतैः ॥८॥
शोभितां सर्वतोभद्रैः पुष्पोद्यानत्रिलक्षकैः । प्रफुल्लपुष्पै पवनैः सर्वत्र सुरभीकृताम् ॥

आमोदिताञ्च शीतेन मन्दचन्दनवायुना ।
तरुभिर्नारिकेलानां शोभितां शतकोटिभिः ॥ १० ॥

गुवाकानाञ्च वृक्षैश्च भूषितां तच्चतुर्गुणैः । चतुर्गुणैर्गुवाकानां युक्तामाम्रमहीरुहैः ॥११
परीतां पनसानाञ्च वृक्षैराम्रसमैर्मुने । सुशोभिताञ्च तालानां द्रुमैराम्रसमैर्मुने ॥ १२ ॥

अश्वत्थैर्वदरीभिश्च विल्वैराम्रातकैर्वटैः ।
शाल्मलीभिश्च जम्बूभिः कदम्बैश्चापि शोभिताम् ॥ १३ ॥

वंशैश्च तिन्तिड़ीभिश्च चम्पकैर्वकुलैस्तथा । नागेश्वरैर्नागरङ्गैर्जम्बीरैर्दाड़िमैर्युताम् ॥१४

खर्जूरैरर्जुनैः पिष्टैरिक्षुभिः काञ्चनैरपि ।
हरीतकीभिर्धात्रीभिरिन्दुभिः परितः प्लुताम् ॥ १५ ॥

शालैः प्रियालैर्हिन्तालैः शिशिरैःसप्तपर्णकैः । अन्यैर्नानाद्रुमैरिष्टैरिष्टां युक्तां परिप्लुताम्
असंख्यैर्मन्दिरै रम्यैरत्युच्चैरपि संस्कृताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्मुक्तामाणिक्यभूषितैः ॥
माणिक्यहीरकैश्चित्रैः सद्रत्नकलशान्वितैः । मणिभिर्निर्मितैरिष्टैः सोपाननिकरैर्वरैः ॥
कपाटैः कठिनैर्दिव्यैरर्गलाकीलकैर्युताम् । हरिण्मणीनां स्तम्भानां कदम्बैरपि संयुतैः ॥
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च सुचित्रैश्च परिष्कृतैः । दर्पणैः सूक्ष्मवस्त्रैश्च शोभितैःश्वेतचामरैः
प्राङ्गणैः पद्मरागाद्यैरिन्द्रनीलपरिष्कृताम् । वीथीभीरत्नखचितै राजमार्गैः समन्विताम्

ग्रीष्ममध्याह्नसूर्य्याभां ज्वलितां रत्नतेजसा ।
गवाक्षलक्षैः संयुक्तां वाजिशालोत्परिष्कृताम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च द्वारकां रम्यां ते देवा विस्मयं ययुः । प्रसन्नवदनो देवो लाङ्गली भगवानजः ॥
सस्मार यदुवंशानां समूहमुग्रसेनकम् । वसुदेवं देवकीञ्च पाण्डवांश्च समातृकान् ॥

नन्दं यशोदां गोपालान् राजेन्द्रमुनिपुङ्गवान् ।
गन्धर्वान् किन्नरांश्चैव सहितो यदुपुङ्गवैः ॥ २५ ॥

नन्दोयशोदा गोपाश्च जनन्या सहपाण्डवाः । गन्धर्वाः किन्नराश्चैवविद्याधर्यश्चनारद

किन्नर्यश्चापि नर्तक्यो गायका वाद्यभाण्डकाः ।
भिक्षुका भाण्डकाश्चैव भट्टाश्च गणकास्तथा ॥ २७ ॥

नानादेशोद्भवा भूपा वैद्याश्चान्येचमानवाः । सन्यासिनश्च यतयोऽवधूताब्रह्मचारिणः ॥
आययुर्मुनयः सर्वे सशिष्याः सिद्धपुङ्गवाः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥
सनत्कुमारो भगवान्ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिःसार्द्धं पञ्चवर्षो दिगम्बरः
शिष्यैस्त्रिलक्षैःसहितोदुर्वासाभगवानजः । लक्षशिष्यैः कश्यपश्चवाल्मीकश्चत्रिलक्षकैः ॥
लक्षशिष्यैर्गौतमश्च कोटिभिश्च वृहस्पतिः । शुक्रस्त्रिकोटिभिःसार्द्धंभरद्वाजश्चलक्षकैः ॥

शिष्यैःस्त्रिकोटिभिः सार्द्धमङ्गिरा भगवानजः ।
वशिष्ठः कोटिभिः शिष्यैः प्रचेताः कोटिभिस्तथा ॥ ३२ ॥

त्रिलक्षैश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यःकोटिभिः सह । पुलहोलक्षशिष्यैश्चक्रतुर्लक्षैस्तथैव च

अत्रिस्त्रिकोटिभिः सार्द्धं भृगुश्च पञ्चकोटिभिः ।
त्रिकोटिभिर्मरीचिश्च शतानन्दः सहस्रकैः ॥ ३५ ॥
सार्द्धं त्रिकोटिभिः शिष्यै ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ।
पाणिनिः कोटिभिःशिष्यैर्लक्षैः कात्यायनस्तथा ॥ ३६ ॥

याज्ञवल्क्यः सहस्रैश्च व्यासःशिष्यत्रिकोटिभिः । शिष्यैर्लक्षैश्चसहितोगर्गःकुलपुरोहितः
गालवश्चसहस्रैश्चसहस्रैःसौभरिस्तथा । त्रिकोटिभिर्लोमशश्चमार्कण्डेयस्त्रिकोटिभिः

सान्दीपिनिर्देवलश्च सच्छिष्यैश्च त्रिकोटिभिः ।
वोढुः शिष्यैः कोटिभिश्च लक्षैः पञ्चशिखस्तथा ॥ ३९ ॥

अहंनारायणश्चैव नरोममसहोदरः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्द्धंविश्वामित्रश्च कोटिभिः

त्रिकोटिभिर्जरत्कारुरास्तीकश्च त्रिकोटिभिः ।
त्रिकोटिभिःपर्शुरामो वत्सो लक्षैश्च शिष्यकैः ॥ ४१ ॥

दक्षस्त्रिलक्षैः शिष्यैश्च कपिलः पञ्चकोटिभिः । संवर्तश्चत्रिलक्षैश्चाप्युतथ्यश्चतथैवच
सहस्रैर्जैमिनिश्चैव पैलो लक्षैस्तथैव च । सुवर्णश्च सहस्रैश्च वैशम्पायन एव च ॥
शिष्यैर्लक्षैः समेतश्च व्यासशिष्यःपुरोगमः । लक्षैःशिष्यैस्तथाशृङ्गीचोपमन्युस्तथैव च
सहस्रैश्च गौरमुखः कचो लक्षैर्गुरोःसुतः । अश्वत्थामातथाद्रोणः कृपाचार्यःसशिष्यकः
भीष्मःकर्णश्च शकुनी राजादुर्योधनस्तथा । नृपस्यभ्रातरः सर्वे चान्ये भूपा जगद्गुरुम्

श्रीभगवानुवाच ।

शुभकर्मणि निष्पन्ने याष्यन्ति येसमागताः । शिवब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तथापरे ॥
तत्रापि यादवैः सार्द्धं प्रविशद् द्वारकांपुरीम् । मत्पित्रामातृभिः सार्द्धं माहेन्द्रेचक्षणेनृप
अपरेयदवोऽन्ये चयास्यन्ति मथुरांपुरीम् । श्रुत्वेति विरसो राजा तमुवाच भयाकुलः ॥

उग्रसेन उवाच ।

वासुदेव न यास्यामि भूमिं तां पैतृकीं पुनः । सर्वतीर्थपरांशुद्धां देवे कर्मणि पैतृके ॥
पावकेभूमिदेशेच पितॄणां निर्वपेत्तु यः । मद्भूमिःस्वामिपितृभिःश्राद्धकर्मणि हन्यते ॥

पितॄणां निष्फलं श्राद्धं देवानामपि पूजनम् ।
किञ्चित्फलप्रदञ्चैव सम्पूर्णं पैतृकेस्थले ॥ ५२ ॥
पुत्रपौत्रकलत्रेभ्यः प्राणेभ्यःप्रेयसीसदा । दुर्लभा पैतृकी भूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी ॥
तत्शस्यञ्च पवित्रञ्च दैवे कर्मणि पैतृके । क्रीड़ाञ्च दत्ते दानञ्च परद्रव्यमशुद्धकम् ॥५४॥
म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थतुल्यफलंलभेत् । गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे ॥
तत्रस्नात्वा जलेपूते गङ्गास्नानफलं लभेत् । पितॄणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ॥
पैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तद्द्विगुणं लभेत् । पैतृकीभूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि

वासुदेव उवाच ।

भोगास्ते वचनं किंवा निषेकः केन वार्यते ।
पैतृकी तीर्थतुल्या सा किं तीर्थं द्वारकापरम् ॥ ५८ ॥
सर्वतीर्थपराश्रेष्ठा द्वारका वहुपुण्यदा । यस्याः प्रवेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम् ॥
दानञ्च द्वारकायाञ्च श्राद्धञ्च देवपूजनम् । चतुर्गुणञ्च तीर्थानां गङ्गादीनाञ्च भूमिप ॥६०
गच्छ ब्रह्मादिभिः सार्द्धं मुनिभिर्यादवैः सह । राजेन्द्रभवनं तत्र गृहाणां सादरं पुनः ॥
करोति शश्वन्न्यकारं महेन्द्रस्यामरावतीम् ।
निवस त्वं सुधर्मायां माहेन्द्रे च क्षणे नृप ॥ ६२ ॥
जम्बूद्वीपस्थिता भूपा राजेन्द्रमण्डलेश्वराः । करं दास्यन्ति तुभ्यञ्च महेन्द्राय सुरा यथा
भूयाज्जितः कुवेरश्च धनेन धनसम्पदा । तेजसा भास्करश्चापि महेन्द्रःसम्पदा तथा ॥
देवाजिता रणेनैव पुण्येन मुनयो जिताः । तपस्विनश्च तपसा व्रतिनश्च व्रतेन च ॥
उग्रसेनसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।
सभायां यस्य भगवान् वलदेवो महावलः ॥ ६६
विश्वञ्च यस्य शिरसां सहस्राणां नरेश्वर । एकस्मिन्शिरसिन्यस्तं शूर्पे च सर्षपोयथा
न ह्यनन्तसमोदेवो वलेन वलवत्तरः । यद्गुणानांनाश्चनास्त्यन्तस्तेनानन्तं जगुर्वुधाः ॥
वसवोऽष्टौ महाभागा रुद्राश्च शङ्करं विना । वलिनोद्वादशादित्यामहेन्द्रश्च सुरैःसमः
न समर्था ध्रुवंजेतुमुग्रसेनं नृपेश्वरम् । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ७०

प्रययौ यादवैःसार्द्धं महेन्द्रभवनात् परम् ।
स्वालयं द्वारकामध्ये ज्वलन्तं मणितेजसा ॥ ७१ ॥

सहस्रैर्द्वारपालैश्च शूलिभिर्दण्डहस्तकैः। नियुक्तै रक्षितं द्वारं ददर्श मानवेश्वरः ॥ ७२

अभ्यन्तरे च शिविरं द्वारेभ्यः षड्भ्य एव च ।
मन्दिराणाञ्च शतकै रत्नानां परिभूषणम् ॥ ७३ ॥
कोटिं मत्तगजेन्द्राणां ददर्श गजमन्दिरे ।
चतुर्युगं गजौघञ्च गजानां षड्गुणं तथा ॥ ७४ ॥

महाबलांश्च तुरगान् सूर्य्याश्वञ्च हसन्ति च। गजेन्द्रौघञ्च सर्वेषां वाहनानामपीश्वरम् ॥
हसत्यैरावतं शश्वन्महेन्द्रस्य च नारद। अत्युच्चैरुच्चैःश्रवसं ददर्श कोटिमीप्सितम् ॥
खराणां दशकोटिञ्च पादातं षड्गुणं तथा। निर्माणं रत्नसाराणां रथानां पञ्चलक्षकम्
पञ्चलक्षं सारथीनां तत्राश्वं षड्गुणं तथा। अश्ववाटं तत्समञ्च सुधर्माञ्च सतामपि ॥
ददर्शाभ्यन्तरे रम्ये देवाञ्च मुनिसंयुताम्। वह्निशुद्धांशुकै रम्यैर्भूषितां रक्तकम्बलैः ॥७६
रत्नसिंहासनै रम्यैर्भूषितां रक्तपिङ्गलैः। अमूल्यरत्ननिर्माणवीथीनां तेजसोज्ज्वलाम् ॥

वेष्टिताञ्च महाभीतैः किङ्करैः शतकोटिभिः ।
प्रविवेश सभां रम्यां श्रुत्वा शङ्खध्वनिं शुभाम् ॥ ८१ ॥
वाद्यञ्च दुन्दुभीनाञ्च मुनीनां वेदमन्त्रकम् ।
दृष्ट्वा नृपं समुत्तस्थौ वेगेन सबलो हरिः ॥ ८२ ॥

ब्रह्मा महेश्वरश्चैव शेषश्च देवपुङ्गवाः। समुत्तस्थुः सुराः सर्वे मुनयश्च महाव्रताः ॥
राजेन्द्राश्चापि सिद्धेन्द्रा वसुदेवपुरोगमाः। रत्नसिंहासने रम्ये चोग्रसेनो महाबलः ॥
समुवास महेन्द्रस्य मुनीनामाज्ञया हरेः। देवानाञ्च गुरूणाञ्च गर्गस्यापि तथैव च ॥
सप्ततीर्थोदकेनैव पूर्णकुम्भेन नारद। चकार वेदमन्त्रैश्च नृपस्याप्यभिषेचनम् ॥ ८६ ॥
तस्मै वस्त्रयुगं दत्तं वह्निशुद्धं मनोहरम्। वरुणेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥ ८७ ॥
माल्यञ्च पारिजातानां चन्दनं रत्नभूषणम्। रत्नच्छत्रं ददौ तस्मै बलदेवो महाबलः ॥
ब्रह्मा कमण्डलुञ्चैव शूलञ्चापि महेश्वरः। पार्वती रत्नमाल्यञ्च हारञ्च मालती सत

अन्ये देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ।
कौतुकञ्च ददौ तस्मै क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ ९० ॥

वसुदेवो ददौ तस्मै शुभदं श्वेतचामरम् । पवनेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥९१॥

नन्दो ददौ च सुरभिं कामधेनुञ्च पूजिताम् ।
यशोदा देवकी तस्मै रत्नश्रेष्ठं ददौ मुदा ॥ ९२ ॥

सप्तभिः किङ्करैश्चापि संवीतः श्वेतचामरैः । दधार छत्रमक्रूरो भक्त्या चैवाज्ञया हरेः ॥

रत्नसिंहासने रम्ये ददर्श रत्नदर्पणम् । अतीवपुण्यावाप्यञ्च हरिणा च पुरस्कृतः ॥

चक्रुःस्तुतिञ्च भट्टाश्च भिक्षुका ब्राह्मणास्तथा ।
ददुः शुभाशिषं तस्मै देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ९५ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा रत्नकोटिश्च भक्तितः ।
भट्टेभ्यो रत्नशतकं भिक्षुकेभ्यस्तथैव च ॥ ९६ ॥

अभिषिच्य नृपेन्द्रञ्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान् ।
सम्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भट्टा भिक्षुं द्विजं गुरुम् ॥ ९७ ॥

स्वालयञ्च ययुः सर्वे यादवाश्च मुदान्विताः । ये ये हरेः पार्षदाश्च ते सर्वे स्वालयं ययुः

प्रभाते चाययुः सर्वे सुधर्माञ्च सभां हरेः । नमस्कृत्य महेन्द्रञ्च चोषुः सर्वे च संसदि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
द्वारकाप्रवेश उग्रसेनाभिषेके चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

———

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्युद्वाहप्रस्तावर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ वैदर्भराजेन्द्रो महाबलपराक्रमः । विदर्भदेशे पुण्यात्मा सत्यशीलश्च भीष्मकः ॥१॥

राजा नारायणांशश्च दाता च सर्वसम्पदाम् । धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च वरिष्ठश्चापि पूजितः ॥
तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां वरा ।
अतीवसुन्दरी रम्या रमा रामासुपूजिता ॥ ३ ॥
नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिता । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तेजसोज्ज्वलिता सती ॥४॥
शुद्धसत्वस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता ।
शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी ॥ ५ ॥
इन्द्राणी वरुणानी च चन्द्रनारी च रोहिणी ।
कुबेरपत्नी सूर्य्यस्त्री स्वाहा शान्ता कलावती ॥ ६ ॥
अन्यासु रमणीयासु श्रेष्ठा च सुमनोहरा ।
रुक्मिण्या भीष्मकन्यायाः कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ७ ॥
तां दृष्ट्वा राजराजेन्द्रो बालक्रीडारतां पराम् ।
बालां सुशोभां कुर्वन्तीं यथाभ्रेषु विधोः कलाम् ॥ ८ ॥
शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यां शरत्कमललोचनाम् ।
विवाहयोग्यां युवतीं लज्जानम्राननां शुभाम् ॥ ९ ॥
सहसा चिन्तितो धर्मो धर्मशीलश्च सुव्रतः ।
सुतां पप्रच्छ पुत्रांश्च ब्राह्मणांश्च पुरोहितान् ॥ १० ॥

भीष्मक उवाच ।

कं वृणोमि सुतार्थञ्च वराहं प्रवरं वरम् । मुनिपुत्रं देवपुत्रं राजेन्द्रसुतमीप्सितम् ॥११॥
विवाहयोग्या कन्या मे वर्द्धमाना मनोहरा । शीघ्रं पश्य वरं योग्यं नवयौवनसंस्थितम्
धर्मशीलं सत्यसन्धं नारायणपरायणम् । वेदवेदाङ्गविज्ञञ्च पण्डितं सुन्दरं शुभम् ॥
शान्तं दान्तं क्षमाशीलं गुणिनं चिरजीविनम् ।
महाकुलप्रसूतञ्च सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥
करोषि राजपुत्रञ्चेद्रणशास्त्रविशारदम् । महारथं प्रतापार्हं रणमूर्ध्नि च सुस्थिरम् ॥
करोषि देवपुत्रञ्चेद्देवं गुणयुतं तथा । करोषि मुनिपुत्रञ्चेच्चतुर्वेदविशारदम् ॥ १६ ॥

सुवाचकं विचारज्ञं सिद्धान्तेषु नितान्तकम् । नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच मुनेः सुतः ॥
गौतमस्य शतानन्दो वेदवेदाङ्गपारगः । आप्तः प्रवक्ता विज्ञश्च धर्मी कुलपुरोहितः ॥
पृथिव्यां सर्वतत्त्वज्ञो निष्णातः सर्वकर्मसु ॥ १८ ॥

शतानन्द उवाच ।

राजेन्द्र त्वञ्च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारद । पूर्वाख्यानञ्च वेदोक्तं कथयामि निशामय
भुवो भारावतरणे स्वयं नारायणो भुवि । वसुदेवसुतः श्रीमान् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥
विधातुश्च विधाता स ब्रह्मेशशेषवन्दितः । ज्योतिःस्वरूपः परमो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥
परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रकृतेः परः । निर्लिप्तश्च निरीहश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम्
राजेन्द्र तस्मै कन्याञ्च परिपूर्णतमाय च । दत्त्वा यास्यसि गोलोकं पितृभिःशतकैःसह
लभ सारूप्यमुक्तिञ्च कन्यां दत्त्वा परत्र च । इहैव सर्वपूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा महालक्ष्मीञ्च रुक्मिणीम् ।
समर्पणं कुरु विभो कुरुष्व जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥
विधात्रा लिखितो राजन् सम्बन्धः सर्वसम्मतः ।
द्वारकानगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम् ॥ २६ ॥
कृत्वा शुभक्षणं तूर्णं सर्वेषामपि सम्मतम् । आनीय परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
ध्यानानुरोधहेतुञ्च नित्यदेहमनुत्तमम् । दृष्टिमात्रात् कुरु नृपं स्वजन्मकर्मखण्डनम् ॥
यं न जानन्ति चत्वारो वेदाः सन्तश्च देवताः ।
सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ २९ ॥
ध्यायन्ते ध्यानपूताश्च योगिनो न विदन्ति यम् ।
सरस्वती जड़ीभूता वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ ३० ॥
सहस्रवक्त्रः शेषश्च पञ्चवक्त्रः सदाशिवः । चतुर्मुखो जगद्धाता कुमारः कार्तिकस्तथा
ऋषयो मुनयश्चैव भक्ताःपरमवैष्णवाः । अक्षमाःस्तवने यस्य ध्यानासाध्यश्च योगिनाम्
बालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम् ।
शतानन्दवचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ॥ ३३ ॥

आलिङ्गनं ददौ तस्मै समुत्थाय जवेन च । नानारत्नं सुवर्णञ्च वस्त्रञ्च रत्नभूषणम्
ददौ तस्मै प्रदानञ्च प्रसादसुमुखो नृपः । गजेन्द्रं तुरगं श्रेष्ठं रथञ्च मणिनिर्मितम् ॥
रत्नसिंहासनं रम्यं धनञ्च विपुलं तथा । भूमिञ्च सर्वसस्याढ्यां शश्वद्वृष्टिकरींशुभाम

अकृष्टसाध्यां पूज्याञ्च ग्रामं सर्वप्रशंसितम् ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रुक्मिश्चुकोप नृपनन्दनः । कम्पितो धर्मयुक्तश्च रक्तास्यो रक्तलोचनः ॥
उवाच पितरं विप्रं सभायामस्थिरस्तदा । उत्थाय तिष्ठन् पुरतः सर्वेषाञ्च सभासदाम्

रुक्मिरुवाच ।

शृणु राजेन्द्र वचनं हितं तथ्यं प्रशंसितम् ।
त्यज वाक्यं भिक्षुकाणां लोभिनां क्रोधिनामहो ॥ ४० ॥

नर्त्तकानाञ्च वैश्यानां भट्टानामर्थिनामपि । कायस्थानाञ्च भिक्षूणामसत्यं वचनं सदा

घटकानां नाटकानां स्त्रीलुब्धानाञ्च कामिनाम् ।
दरिद्राणाञ्च मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा ॥ ४२ ॥

निहत्य कालयवनं राजेन्द्रं पुरतो भिया । उपायेन महाबाहो लब्धं कृष्णेन तद्धनम् ॥
द्वारकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च । जरासन्धभयेनैव समुद्राभ्यन्तरे गृही ॥४४
जरासन्धशतञ्चैव क्षणेनैव च लीलया । क्षमोऽहं हन्तुमेकाकी राज्ञश्चान्यस्य का कथा
दुर्वाससश्च शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः । ध्रुवं भीष्मक तेनैव विश्वं संहर्त्तुमीश्वरः
मत्समः पर्शुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः । सखा च बलवान् शूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः
महेन्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च । जित्वा युद्धे जरासन्धं दुर्बलं योगिनं नृप ॥

अहङ्कारयुतः कृष्णो वीरं स्वं मन्यते धिया ।
यद्यायास्यति मद्ग्रामं विवाहं कर्त्तुमीप्सितम् ॥ ४९ ॥

ध्रुवं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममन्दिरम् । अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च

साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने ।
करोषि कन्यां स्वीकारं देवयोग्याञ्च रुक्मिणीम् ॥ ५१ ॥

दातुमिच्छसि वाक्येन भिक्षुकस्य द्विजस्य च । राजेन्द्रबुद्धिहीनोऽसिवचनाद्धद्गलस्यच

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुचिः ।
मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥ ५३ ॥

कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप । बलेन रुद्रतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च ॥ ५४ ॥
निमन्त्रणं कुरु नृप नानादेशभवान् नृपान् । बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्चपत्रद्वारा त्वरान्वितः
अङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं वल्कलं वरम् । राटं वरेन्द्रं वङ्गञ्च गुर्जराटञ्च पेठरम्॥
महाराष्ट्रं विराटञ्च मुद्गलञ्च मुरङ्गकम् । भल्लकं गल्लकं सर्वं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम्॥
घृतकुल्यासहस्रञ्च मधुकुल्यासहस्रकम् । दधिकुल्यासहस्रञ्च दुग्धकुल्यासहस्रकम्॥
तैलकुल्यापञ्चशतं गुड़कुल्याद्विलक्षकम् । शर्कराणां राशिशतं मिष्टान्नानां चतुर्गुणम्॥
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टराशिशतं शतम् । पृथुकानां राशिलक्षमन्नानाञ्च चतुर्गुणम् ॥६०
गवां लक्षं छेदनञ्च हरिणानां द्विलक्षकम् । चतुर्लक्षं शशानाञ्च कूर्माणाञ्च तथा कुरु
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम् । पर्वणि ग्रामदेव्यै च वलिं देहि च भक्तितः॥
एतेषां पक्वमांसञ्च भोजनार्थञ्च कारय । परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप॥
अथ श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजेन्द्रः सपुरोहितः । चकारामन्त्रणं पूर्णं निर्जने मन्त्रिणा सह

द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमीप्सितम् ।
कृत्वा च शुभलग्नञ्च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥ ६५ ॥

राजा सम्भृतसम्भारो बभूव सत्वरं मुदा । निमन्त्रणञ्च सर्वत्र चकार च सुताज्ञया॥
विप्रः सुधर्मां संप्राप्य नृपैर्देवैश्च वेष्टिताम् । प्रददौ पत्रिकां भद्रामुग्रसेनाय भूभृते॥
प्रफुल्लवदनो राजा श्रुत्वा पत्रं सुमङ्गलम् । सुवर्णानां सहस्रञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥

दुन्दुभिं वादयामास द्वारकायाञ्च सर्वतः ।
देवान् मुनीन् नृपाश्चैव ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥ ६८ ॥

भट्टांश्चभिक्षुकांश्चैव भोजयामास सादरम् । श्रीकृष्णस्य सुवेशं च कारयामास भूपतिः
अतीवरम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । यात्राञ्च कारयामास जगतां प्रवरं वरम् ॥७१
वेदमन्त्रेण रम्येण माहेन्द्रे सुमनोहरे । आदौ ब्रह्मा रथस्थश्च सावित्र्या सहितो ययौ
रथस्थश्च महाहृष्टो भवान्या च भवःस्वयम् । शेषश्चापि दिनेशश्च गणेशश्चापिकीर्त्तितः

महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो वरुणः पवनस्तथा । कुवेरश्चयमो वह्निरीशानोऽपि ययौमुदा ॥
देवानाञ्च त्रिकोट्यश्चमुनीनां षष्टिकोटयः । गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च श्वेतक्षत्रं त्रिलक्षकम्
उग्रसेनो ययौ राजा नक्षत्रेषु यथा शशी । ययौ प्रसन्नवदनः कुण्डिनाभिमुखो बली ॥
रत्ननिर्माणयानेन बलदेवो महाबलः । वसुदेवश्चोद्धवश्चनन्दोऽक्रूरश्च सात्यकिः ॥

गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुर्य्योधनपुरोगमाः ॥ ७८ ॥

युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा । सहदेवश्च यानैश्चप्रययुः पञ्च पाण्डवाः

भीष्मो द्रोणश्चकर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः ।
कृपाचार्य्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुदा ॥ ८० ॥
भटानाञ्च त्रिकोट्यश्च विप्राणां शतकोटयः ।
सन्न्यासिनां सहस्रञ्च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८१ ॥

द्विसहस्रं जितक्रोधाश्चावधूतास्तथैव च । उत्पलानां सहस्रञ्च सहस्रं पुष्पकारिणाम् ॥
नानाशिल्पकराश्चैव विचित्रं चित्रमेव च । लक्षञ्च वाद्यभाण्डानां नर्त्तकानाञ्चलक्षकम्
गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेवन्तु नारद । तत्र कल्पे भवत्येव गन्धर्वश्चोपवर्हणः ॥
पञ्चाशत्कामिनीभिश्चत्वमेव तेषु मध्यगः । विद्याधरीणां लक्षञ्च लक्षमप्सरसां तथा

किन्नराणां त्रिलक्षञ्च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम् ॥ ८६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
रुक्मिण्युद्वाहे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।

षष्ठाधिकशततमोऽध्यायः

रेवतीवलयोर्विवाहवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे राजा ककुद्मी च महाबलः । वरार्थं कन्यकायाश्च ब्रह्मलोकात्समागतः

प्रददौ रैवतींकन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। अमूल्यरत्नभूषाढ्यां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्
बलाय बलदेवाय सम्प्रदानेन कौतुकात्। वयो यस्यागतं सत्ये युगानां सप्तविंशतिः॥
दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि। गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च जामात्रे यौतुकं ददौ
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च। रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनाञ्चापि लक्षकम्॥
मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिञ्च सादरम्।
वह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामाणीक्यहीरकम्॥ ६॥
दत्त्वा कन्याञ्च राजेन्द्रो बलाय बलशालिने। रत्नेन्द्रसारयानेन तैः सार्द्धं कुण्डिनं ययौ
अथान्तरे च निर्वन्धे साङ्गे मङ्गलकर्मणि। रैवतीं वेशयामास योषितां कमलाकलाम्॥
देवकीं रोहिणीञ्चैव यशोदा नन्दगेहिनी।
अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम्॥ ९॥
ब्राह्मणान् भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा। मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा
अथ देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः कटकैः सह। सम्प्रापुर्लीलामात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा॥
ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीवसुमनोहरम्। सप्तभिः परिखाभिश्च गभीराभिश्च वेष्टितम्॥
प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा।
नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा॥ १३॥
नगरस्य वहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः। रक्षितं रक्षकैः सार्द्धं चतुर्भिश्च महारथैः॥ १४॥
रुक्मिश्च शिशुपालश्च दन्तवक्रो महाबलो। शाल्वोमायाविनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः
नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च रथस्थश्च रणोन्मुखः। विलोक्यकृष्णसैन्यञ्च चुकोपनृपनन्दनः
उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम्।
उपहास्यं मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान्॥ १७॥
रुक्मिरुवाच।
अहो कालकृतं कर्म दैवञ्च केन वार्य्यते। किंवाहं कथयिष्यामि देवेन्द्राणाञ्च संसदि॥
गृहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम्। आयाति देवैर्मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षकः
साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजकः।

जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा ॥ २० ॥
किन्तु राजेन्द्रपुत्रस्य किन्तु वा मुनिपुत्रकः। वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्यमन्दिरे
शिशुकाले च स्त्रीहत्याकृतानेनदुरात्मना। कुब्जा मृता च सम्भोगात्वासरजकोमृतः
राजेन्द्रस्य वधाद्दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम्।
मथुरायाञ्च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातितः ॥ २३ ॥

शाल्व उवाच।

यदुक्तं रुक्मिणा देव किमसत्यञ्च तत्र वै। को वायं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुपालकः

शिशुपाल उवाच।

अहो भुवि किमाश्चर्य्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा। मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राश्चाययुर्मानवाज्ञया

दन्तवक्र उवाच।

सन्ततं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः। आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राज्ञया कथम्
तेषाञ्च वचनं श्रुत्वा चुकोप देवसङ्घकः। मुनिराजेन्द्रसङ्घश्च लाङ्गलीत्यादिकं तथा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
रुक्मिण्युद्वाहे षष्ठाधिकशततमोऽध्यायः।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीविवाहे युद्धम्।

श्रीनारायण उवाच।

अथ कोपपरीतश्च बलदेवो महाबलः। हलेन रुक्मिमानञ्च बभञ्ज मुनिपुङ्गव ॥ १ ॥
घोटकान् सारथिञ्चैव निहत्य जगतीपतिः। भूमिष्ठञ्चापि पापिष्ठं रुक्मिं हन्तुं जगाम सः
रुक्मी च शरजालेन वारयामास लीलया। नागास्त्रं योजयामास बद्धुं हलिनमीश्वरम्
नागास्त्रं गारुडेनैव संजहार हली स्वयम्। गृहाण कोपाद्रुक्मी च परं पाशुपतं मुने ॥

अव्यर्थं वीरमर्दञ्च शतसूर्य्यसमप्रभम् । अभितो हलिना रुक्मी जृम्भणास्त्रेण जृम्भितः
भूमिष्ठः स्थाणुवद्रुक्मीनिद्रास्त्रेणैव निद्रितः । शाल्वस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतबाणंमुमोच तम्
शैलवृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः । ज्वलदङ्गारवृष्टिञ्च शरवृष्टिं चकार ह ॥७॥
बलाचास्त्रेण सर्वाणि वारयामास लाङ्गली । हलेन तद्रथं चूर्णं चकार रणमध्यतः ॥

घोटकान् सारथिञ्चैव जघान चैव लीलया ।
कोपाद् बलेन तं हन्तुं वाग् बभूवाशरीरिणी ॥ ६ ॥
त्यज शाल्वं कृष्णवध्यं तव किं पौरुषं रणे ।
यस्य मूर्ध्नि च ब्रह्माण्डं शूर्पे च सर्षपं यथा ॥ १० ॥

तच्छ्रुत्वा बलदेवश्च हलेन तस्य मस्तकम् । चकार चूर्णं व्यथितः पपात रणमूर्धनि ॥
शाल्वस्य पतनं दृष्ट्वा शिशुपालो महाबली । चकार शरवृष्टिञ्च जलवृष्टिं तथा भुवि ॥
हली तस्य रथं चूर्णं चकार लाङ्गलेन च । अर्द्धचन्द्रेण तद्बाणान् वारयामास लीलया

तं हन्तुं शङ्करः साक्षात् निषेधश्च चकार तम् ।
कृष्णवध्यं त्यज बल पार्षदप्रवरं हरेः ॥ १४ ॥

दन्तवक्त्रस्य दन्तश्च बभञ्ज स हलेन च । सुप्रवृत्तस्य युद्धेन ते सर्वे जहसुश्च तम् ॥१५॥

बलस्य विक्रमं दृष्ट्वा सर्वे वीराः पलायिताः ।
चक्रुः प्रवेशनं सर्वे कुण्डिनं वरयात्रिकाः ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शतानन्दो महामुनिः । कोटिभिर्मुनिभिः सार्द्धमाजगाम हरेः पुनः ॥
पुरं प्रवेशयामास शतद्वारञ्च दुर्गमम् । अगम्यञ्चापि शत्रूणां मित्राणाञ्च सुखप्रदम् ॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्यास्तथैव च । मुनिकन्या वरं द्रष्टुं सस्मिताश्च समाययुः
ददृशुर्योषितः सर्वा निमेषरहितेन च । प्रसन्नं कारयामास सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥२०॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथस्थं परमेश्वरम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ २१ ॥
नवीनजलदश्यामं शोभितं पीतवाससा । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम् ॥२२॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमालाकुलोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥२३॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीरराजितम् । सस्मितं मुरलीहस्तं पश्यन्तं रत्नदर्पणम् ॥

सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरः । नवयौवनसम्पन्नं शरत्कमललोचनम् ॥२५॥

शरत्पूर्णेन्दुनिन्दास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं सत्यं नित्यं सनातनम् ॥ २६ ॥

तीर्थपूतं कीर्तिपूतं ब्रह्मेशशेषवन्दितम् । परमाह्लादकं रूपं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥ २७ ॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं परमं प्रकृतेः परम् । दूर्वया पट्टसूत्रञ्च रत्नेन्द्रसारदर्पणम् ॥२८॥

ध्यानं कर्तृकासाध्यं कदल्याः स्फुटमञ्जरीम् ।
चूडां त्रिविक्रमाकारां मालतीमाल्यभूषिताम् ॥ २९ ॥

पुष्पं नारीप्रदत्तञ्च मुकुटं मस्तकोज्ज्वलम् । दृष्ट्वा वरं युवत्यश्च मूर्च्छां संप्रापुरीश्वरम्

रुक्मिणीजीवनं धन्यं श्लाघ्यमित्यूचुरीप्सितम् ।
जामातरं सा ददर्श राज्ञी भीष्मककामिनी ॥ ३१ ॥

निमेषरहिता तुष्टा प्रसन्नवदनेक्षणा । राजा प्रसन्नवदनः सामात्यः सपुरोहितः ॥३२॥

समागत्य सुरान् विप्रान् भूतांश्च प्रणनाम सः । ददौ योग्याश्रमं तेभ्यो भक्ष्यपूर्णं सुधोपमम्

दिवानिशञ्चाप्युवाच दीयतां दीयतामिति । सुखं निनाय रजनीं देवैश्च बान्धवैः सह ॥

वसुदेवः प्रभाते च प्रातःकृत्यं चकार सः ।
स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥ ३५ ॥

चकार वेदमन्त्रेण शुभाधिवासनं हरेः । संपूज्य मातृकाः सर्वाः साक्षाच्च सर्वदेवताः ॥

प्रदाय वसुधाराञ्च वृद्धिश्राद्धादिकं तथा ।
ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च बान्धवांस्तथा ॥ ३७ ॥

वाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम् । सुवेशं कारयामास वरस्याप्रतिमस्य च ॥

सज्जञ्च कारयामास वरयानं सुशोभनम् । एवं राजा भीष्मकश्च विवाहार्हञ्च मङ्गलम् ॥

पुरोहितैर्वेदमन्त्रैः सर्वं कर्म चकार सः ।
मणिरत्नं धनं वापि मुक्तामाणिक्यहारकम् ॥ ४० ॥

भक्ष्यद्रव्यञ्च वस्त्रञ्चाप्युपहारमनुत्तमम् ।
भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि भिक्षुकेभ्यो ददौ मुदा ॥ ४१ ॥

वाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम् । सुवेशं कारयामास रुक्मिण्याश्च मनोहरम् ॥
राज्ञीभिर्मुनिपत्नीभिर्विधानञ्च यथोचितम् । ततः शुभे क्षणे प्राप्ते माहेन्द्रे परमोदये ॥
विवाहोचितलग्ने च लग्नाधिपतिसंयुते । सद्ग्रहे क्षणशुद्धे चाप्यसतां दृष्टिवर्जिते ॥
शुभक्षणे शुभर्क्षे च विशुद्धे चन्द्रतारयोः । वेधदोषादिरहिते शलाकादिविवर्जिते ॥४५॥
दम्पत्योः शर्मयोग्ये च परिणामसुखप्रदे । एवंभूते च समये भीष्मकप्राङ्गणं हरिः॥४६॥

आजगाम सुरैः सार्द्धं मुनिविप्रपुरोहितैः ।
ज्ञातिभिर्बान्धवैः सार्द्धं पित्रा मात्रा नृपैस्तथा ॥ ४७ ॥

गोपालकैः पार्षदैश्च वयस्यैश्च मनोहरैः । भट्टैश्च गणकैश्चैव ज्योतिःशास्त्रविशारदैः ॥
वाद्यैर्नानाविधैश्चैव नर्त्तकैर्गायनैस्तथा । नानाशिल्पकरैश्चैव मालाकारैस्तथापरैः॥४९॥

विद्याधर्य्यश्चाप्सरोभिः किन्नरीभिश्च सत्वरम् ।
स्थलञ्च ददृशुर्देवा मुनयश्च नृपेश्वराः ॥ ५० ॥

सर्वे समागता ये च विवाहदर्शनोत्सुकाः । रम्भास्तम्भसहस्रैश्च पट्टसूत्रपरिष्कृतैः॥५१॥

चम्पकानां चन्दनानां रसालानाञ्च पल्लवैः ।
माल्यैर्नानाविधैश्चैव पीतरक्तसितान्वितैः ॥ ५२ ॥

परितो मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । कस्तूरीचन्दनाक्तैश्च कुङ्कुमेन विराजितैः ॥ ५३ ॥
पर्णैर्लाजैः फलैः पुष्पैर्दूर्वाभिरुपशोभितैः । मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव राजेन्द्रैरपि वेष्टितम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणवेदीयुक्तं मनोहरम् । चर्चितं चन्दनस्निग्धैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः ॥
सुगन्धिशीतमन्दैश्च पवनैः सुरभीकृतम् । रत्नानाञ्च सहस्रैश्च ज्वलितं ज्वलदीप्तकैः ॥

नानाप्रकारधूपैश्च गन्धद्रव्यैः सुवासितम् ।
चित्रैर्विचित्रैर्विविधैः शिल्पिनां पुण्यकारिणाम् ॥ ५७ ॥

परितः परितश्चैव शोभनार्हैः सुशोभनैः । गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतैर्मधुरैर्मधुरीकृतम् ॥५८॥

विद्याधरीणां नृत्यैश्च नर्त्तकीनाञ्च शिल्पिनाम् ।
तत्र निश्चेष्टचित्रैश्च जनराजिविराजितम् ॥ ५९ ॥

गुप्तद्वारैर्गवाक्षैश्च युवतीभिश्च वीक्षितम् । मङ्गलेन घटेनैव विदुषा च पुरोधसा ॥ ६० ॥

कुशहस्तेन भूपेन दानेन दानवस्तुना । दृष्ट्वा च प्राङ्गणे राज्ञो देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ ६१ ॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं तिष्ठन्ति प्राङ्गणे मुदा । राजेन्द्रा दानवेन्द्राश्च मुनयः सनकादयः ॥

श्रीकृष्णश्चापि भगवान् पार्षद्प्रवरैः सह ।
तान् दृष्ट्वा सहसोत्थाय जवेन भीष्मकस्तथा ॥ ६३ ॥

मूर्ध्ना ववन्दे देवांश्च मुनीन्द्रांश्च नृपांस्तथा । रत्नसिंहासने चैव सुरम्येषु पृथक् पृथक् ।

क्रमतो वासयामास संपूज्य सादरेण च ॥ ६४ ॥
राजा तुष्टाव भक्त्या च तान् सर्वान् भक्तिपूर्वकम् ।
वसुदेवं वासुदेवं साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः ॥ ६५ ॥

भीष्मक उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् । वभूव जन्मकोटीनां कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥

स्वयं विधाता जगतां प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।
स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च द्रष्टुं नैव क्षमः प्रभो ॥ ६७ ॥

तपसां फलदाता च संस्रष्टा प्राङ्गणे मम । स्वात्मारामेषु पूर्णेषु शुभप्रश्नमभीप्सितम् ॥

योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रकैः ।
ध्यानादृष्टश्च यो देवः स शिवः प्राङ्गणे मम ॥ ६९ ॥
कालस्य कालो भगवान् मृत्योर्मृत्युश्च यः प्रभुः ।
मृत्युञ्जयश्च सर्वेशो नराणां दृष्टिगोचरः ॥ ७० ॥
यस्य मूर्ध्नां सहस्रेषु मूर्ध्नि विश्वं चराचरम् ।
नास्त्यन्तः सर्ववेदेषु सोऽयञ्च मम प्राङ्गणे ॥ ७१ ॥

सर्वकामप्रणेयो हि सर्वाग्रे यस्य पूजनम् । श्रेष्ठो देवगणानाञ्च स गणेशो ममाङ्गणे ॥
मुनीनां वैष्णवानाञ्च प्रवरो ज्ञानिनां गुरुः । सनत्कुमारो भगवान् प्रत्यक्षः प्राङ्गणे मम
ब्रह्मपुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चापि वंशजाः । ते सर्वे मद्गृहेऽद्यैव ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
अहो कल्पान्तपर्य्यन्तं तीर्थीभूतो ममाश्रयः । येषां पादोदकैस्तीर्थं विशुद्धं तद्गृहं मम

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ।

सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥ ७६ ॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत् पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विप्रपादोदकं भुक्त्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्।

स्नातानां सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ७८ ॥

निकृन्तनञ्च विपदां व्याधिनिर्मूलकारणम्। सुखदं शुभदं सारं विप्रपादोदकं नृणाम् ॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवो माधवात् परः। सनत्कुमाराद्भक्तो न न हि कल्पतरोस्तरुः

न पुष्पं पारिजाताच्च न व्रतं हरिवासरात्। पूजनेन हि पूज्यश्च न पत्रं तुलसीपरम् ॥

न देवी प्रकृतेश्चापि नाधारः पवनात् परः।

न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः ॥ ८२ ॥

न ब्राह्मणात् परः पूतो नाश्रमश्च परःप्रभुः। न देवो न परः कोऽपि इत्याह कमलोद्भवः

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रकृतेश्च परः प्रभुः।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो योगिनामपि निश्चितम् ॥ ८४ ॥

निर्गुणश्च निराकारो भक्तानुग्रहविग्रहः। स एव चक्षुषो नृणां साक्षाद् देवश्च मद्गृहे

देवैर्ब्रह्मेशशेषैश्च ध्यातं यत्पदपङ्कजम्। धनेशेन गणेशेन दिनेशेनापि दुर्लभम् ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा भीष्मकः कृष्णं समानीय स्वयं पुरः।

तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥ ८७ ॥

भीष्मक उवाच।

सर्वान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च। कर्मिणां कर्मणामेव कारणानाञ्चकारणम्

केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम्।

केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिविम्बकः ॥ ८९ ॥

केचित प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्धयः। केचिन्नित्यशरीरञ्च वृद्धाश्च सूक्ष्मबुद्धयः

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं देहरूपं सनातनम्। कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमीश्वरं विना ॥

एवं स्तुत्वा स चाचान्तः स्मरन् विष्णुञ्च नारद !।

पाद्यं पद्मार्चिते पादपद्मे चार्घ्यं ददौ मुदा ॥ ९२ ॥

अर्घ्यञ्च प्रददौ तत्र दूर्वापुष्पजलान्वितम् । मधुपर्कञ्च सुरभिं सर्वाङ्गे गन्धचन्दनम् ॥
यत् प्रदत्तं महेन्द्रेण शुभकर्मणि यौतुकम् । पारिजातस्य माल्यञ्च जामातुश्च गले ददौ
कुवेरेण च यद्दत्तममूल्यरत्नभूषणम् । चकार वरणं तस्य स राजा भक्तिपूर्वकम् ॥९५॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं यद्दत्तं वह्निना पुरा । ददौ तदेव कृष्णाय परिपूर्णतमाय च ॥ ९६ ॥
ज्वलितं रत्नमुकुटं यद्दत्तं विश्वकर्मणा । ददौ तन्मस्तके राजा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
धूपं रत्नप्रदीपञ्च नैवेद्यं सुमनोहरम् । नानाप्रकारपुष्पञ्च रत्नसिंहासनं ददौ ॥ ९८ ॥
सप्ततीर्थोदकञ्चैव पुनराचमनीयकम् । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥९९॥

शय्यां रतिकरीं रम्यां पानार्थं वासितं जलम् ।
कृत्वा च वरणं राजा परिहारं चकार तम् ॥ १०० ॥
कृताञ्जलिपुटो राजा तस्मै पुष्पाञ्जलिं ददौ ॥ १०१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
रुक्मिण्युद्वाहे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णाय रुक्मिणीसम्प्रदानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युता
रत्नसिंहासनस्था च रत्नालङ्कारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना कवरीभारभूषिता ॥ २ ॥

पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम् ।
कस्तूरीविन्दुभिर्युक्ता स्निग्धचन्दनचर्चिता ॥ ३ ॥

सिन्दूरविन्दुना शश्वत् भालमध्यस्थलोज्ज्वला । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता । सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकैः ॥

देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुङ्गवाः ।
ददृशू रुक्मिणीं देवीं महालक्ष्मीं पतिव्रताम् ॥ ६ ॥
सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वपतिं सती । सिषेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः ॥
तां सिषेच जगत्कान्तः कान्तां शान्ताञ्च सस्मिताम् ।
ददर्श कान्तः कान्ताञ्च कान्तं कान्ता शुभक्षणे ॥ ८ ॥
अथ देवी पितुः क्रोड़े समुवास शुभानना । लज्जया नम्रवदना ज्वलन्ती च स्वतेजसा
राजा देवेश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च । प्रददौ सम्प्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद ॥ १० ॥
वसुदेवाज्ञया कृष्णः स्वस्तीत्युक्त्वा स्थितो मुदा ।
जग्राह देवीं देवश्च भवानीञ्च भवो यथा ॥ ११ ॥
सुवर्णानां पञ्चलक्षं कृष्णाय परमात्मने । दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च ॥
शुभकर्मणि निष्पन्ने कृत्वा कन्याञ्च वक्षसि । रुरोद राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ॥
परीहारेण वचसा कृत्वा तस्मै समर्पणम् । सिषेच कन्यां धन्याञ्च नेत्रयुग्मजलेन च ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
रुक्मिण्युद्वाहे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्युद्वाहवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी रुक्मिणीजननी शुभा । पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः सहिता मुदा
आगत्य मङ्गलं कृत्वा तत्र निर्मन्थनादिकम् । दम्पती वेशयामास रत्ननिर्माणमन्दिरम्
नानाविचित्रचित्राढ्यं हीरहारेण भूषितम् ।
मुक्तामाणिक्यरत्नेन सुदीप्तं दर्पणेन च ॥ ३ ॥

ददर्श कृष्णस्तत्रैव दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्। सरस्वतीञ्च सावित्रीं रतिञ्च रोहिणीं सतीम्
देवपत्नीं राजपत्नीं मुनिपत्नीं पतिव्रताम्। रत्नसिंहासनस्थाञ्च रत्नभूषणभूषिताम्॥ ५॥
उत्तस्थु राराइदृष्ट्वा च श्रीकृष्णं जगतीपतिम्। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास ता मुदा
स्तुतिं चक्रुश्च देवाश्च मुनिपत्नीश्च माधवम्। पुटाञ्जलियुतास्तत्र क्रमेण च पृथक्पृथक्
भोजयामास राज्ञी च वरेण सह कन्यकाम्। सकर्पूरं सताम्बूलं प्रददौ वासितंजलम्
दुर्गा कृष्णाय प्रददौ तत्र मङ्गलपत्रिकाम्। सर्वासामाज्ञया देवी पठेति तमुवाच सा
पपाठ पत्रिकां कृष्णो देवीसंसदि सस्मितः। लक्ष्मीःसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकासती
तुलसी पृथिवी गङ्गाऽरुन्धती यमुना दितिः। शतरूपा च सीता च देवहूती च मेनका
देव्यश्चैताश्च दम्पत्योः कुर्वन्तु मङ्गलं परम्। पपाठ चेति कृष्णश्च शुश्रुवुर्जहसुश्च ताः॥

पार्वत्युवाच।

रुक्मिणीं रुक्मिणीकान्त त्वां पश्यन्तीञ्च सस्मिताम्।
पश्य प्रौढ़ां रूपवतीं सुन्दरीं नवयौवनाम्॥ १३॥

सरस्वत्युवाच।

तव योग्या च युवती रत्नभूषणभूषिता। त्वां प्रार्थयन्ती सुचिरमवमन्यान्यमीश्वरम्॥

सावित्र्युवाच।

यथा वरस्तथा कन्या विधिना योजिता पुरा। विदग्धाया विदग्धेन सर्वत्र सङ्गमःशुभः

रत्युवाच।

ईश्वरेण परीहासं का वा कर्त्तुं क्षमा भुवि।
ध्यानासाध्यो दुराराध्यो चावमन्यान्यमीश्वरम्॥ १६॥

गायत्र्युवाच।

यथा वरस्तथा कन्या चाक्षुषो भैष्मके गृहे॥ १७॥

रोहिण्युवाच।

सत्यं ब्रूहि जगन्नाथ कामिनीनाञ्च संसदि।
कीदृशी राधिका रम्या रुक्मिणी चापि कीदृशी॥ १८॥

सरस्वत्युवाच ।

राधायांयादृशी प्रीतीरुक्मिण्यां नैव तादृशी । सा सङ्गिनीपूर्वकाले सर्वक्रीडासुवर्धिनी
प्राणाधिष्ठातृदेवी सोपञ्चप्राणाधिका सती । रुक्मिणी कमलासाक्षात्सम्पदामधिदेवता
सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । बुद्धेरप्याधिदेवी च दुर्गा नारायणी परा ॥
देवाधिष्ठातृदेवी त्वं सावित्री देवमातृका । विद्याधिदेवताऽहञ्च ततोऽन्याश्च कलाकलाः
न ब्रह्मणि शिवे शेषे गणेशे च दिनेश्वरे । न भक्तेषु च पद्मायां न शिवायाञ्च मय्यपि
प्रसादो यादृशस्तस्यामन्येषु च न तादृशः । त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सुपुण्यं भारतं यतः
तत्र वृन्दावनं धन्यं राधापादाब्जचिह्नितम् । सर्वासामपिदेवीनां राधापुण्यवती सती
राधापादाब्जनखरे ददौ स्निग्धमलक्तकम् । अयमेवमिति श्रुत्वा जहसुः सर्वयोषितः ॥
ध्यायन्ते दूरतः सर्वा राधावक्षःस्थलस्थिता । तस्माद्राधां नमस्कृत्य तुलनांमन्यतेकिल
सरस्वतीवचःश्रुत्वा सावित्रीपार्वती सती । अन्याश्चयोपितःसर्वाःसाध्वित्यूचुश्चसंसदि
लोपामुद्रानुसूया चाप्यहल्यारुन्धती तथा । सर्वास्ता मुनिपत्न्यश्च रभसं चक्रुरीश्वरम्
अथदेवांश्च भूपांश्च मुनीन्द्रांश्चापि भीष्मकः । पूजयामास विधिना भोजयामास सादरम्
खाद्यतां खाद्यतां लोका दीयतां दीयतामिति । शब्दो बभूव नगरे वाद्यसंगीतमङ्गलैः ॥
अथ प्रभाते ब्रह्मेशशेषाद्यास्त्रिदशास्तथा । यानस्यारोहणं भूपाश्चक्रिरे च त्वरान्विताः

राजा महोग्रसेनश्च वसुदेवस्त्वरान्वितः ।
कारयामास यात्राञ्च श्रीकृष्णं रुक्मिणीं सतीम् ॥ ३३ ॥
सुभद्रा रुक्मिणीमाता कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि ।
रुरोदोच्चैस्तत्सखीभिर्बान्धवैरित्युवाच सा ॥ ३४ ॥

सुभद्रोवाच ।

क्व यासि मां परित्यज्य वत्से मातरमीश्वरीम् ।
कथं जीवामि त्वां त्यक्त्वा कथं त्वं वापि जीवसि ॥ ३५ ॥

महालक्ष्मीर्मम गृहात् कन्यारूपा च मायया । वसुदेवालयं यासि वासुदेवप्रिया सती
इत्युक्त्वा कन्यकां शोकात् सिषेच नेत्रजैर्जलैः । भीष्मकःसाश्रुनेत्रश्चकन्यांकृष्णेसमर्प्यं

तञ्च कृत्वा परीहारं रुरोदोच्चैरतीव सः । रुरोद रुक्मिणीदेवी श्रीकृष्णश्चापि मायया ॥
रथमारोपयामास वसुदेवः सुतं वधूम् । एतस्मिन्नन्तरे राजा जामात्रे यौतुकं ददौ ॥
गजेन्द्राणां सहस्रञ्च षड्गुणञ्च तुरङ्गमम् । दासीनाञ्च सहस्रञ्च किङ्कराणां शतं शतम्
रत्नानाञ्च सहस्रञ्चैवामूल्यरत्नभूषणम् । स्वर्णानां परिशुद्धानां पञ्चलक्षञ्चसादरम् ॥ ४१
तोयभोजनपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा । सौवर्णानि च रम्याणिसुरभीः प्रददौ मुदा
दुग्धवतीधेनूनाञ्च सवत्सानां सहस्रकम् । अमूल्यानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च
वसुदेवश्चोग्रसेनो देवैश्च मुनिभिः सह । प्रहृष्टवदनः शीघ्रं द्वारकाभिमुखं ययौ ॥ ४४
प्रविश्य स्वपुरीं रम्यां कारयामास मङ्गलम् । वाद्यञ्च वादयामास सुन्दरं सुमनोहरम् ॥
देवकी रोहिणी रम्या यशोदा नन्दगेहिनी । अदितिश्चदितिश्चैव तथा च वरकामिनी

श्रीकृष्णं रुक्मिणीं रम्यां विलोक्य च पुनः पुनः ।
गृहं प्रवेशयामास कारयामास मङ्गलम् ॥ ४७ ॥

चतुर्विधं भोजयित्वा देवांश्च मुनिपुङ्गवान् । नृपांश्च बान्धवांश्चैव परिहारं चकार च

भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि ददौ रत्नादिकं मुदा ।
तांश्चापि भोजयामास परितुष्टांश्च सस्मितान् ॥ ४६ ॥

एवं भुक्त्वा धनं लब्ध्वा ययुः सर्वे गृहंमुदा । मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
रुक्मिण्युद्वाहे नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

राधायशोदासंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

आगतेषु गतेष्वेवं साङ्गे मङ्गलकर्मणि । नन्दो यशोदया सार्द्धं पुत्राभ्यासं समाययौ ॥

यशोदा उवाच ।

ज्ञानञ्चभवता दत्तं पित्रे नन्दाय माधव । माञ्चापि मातरंवत्स कृपां कुरु कृपानिधे ॥
मामुद्धर महाभाग धरोद्धरणकारण । भवाब्धितरणे भीमे भीताञ्च पतितामपि ॥ ३ ॥
मायामयी सा प्रकृतिर्भवाब्धितरणे तरी । त्वमेव कर्णधारश्च भक्तोत्तीर्णंकृपामय ॥४
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । उवाच मातरं भक्त्या ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥५

श्रीभगवानुवाच ।

सिद्धियोगात्मकं मातर्ज्ञानञ्च विषयात्मकम् ।
ज्ञानं भक्त्यात्मकं श्रेष्ठं मद्दास्यकारणं शुभम् ॥ ६ ॥
ज्ञानंपञ्चविधं प्रोक्तं सर्ववेदेषु सम्मतम् । भक्त्यात्मकं सर्वपरं तेषाञ्च लक्षणं शृणु ॥७॥
क्षुत्पिपासादिकानाञ्च खण्डनं स्वान्तशोधनम् ।
नाड़ीनां शोधनञ्चैव चक्राणामपि भेदनम् ॥ ८ ॥
शक्तिकुण्डलिनीयुक्तमीश्वरं चिन्तयेत्ततः । इन्द्रियाणाञ्च दमनं लोभादीनाञ्च वर्धनम् ॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धञ्च तथाज्ञाख्यं चक्रषट्कं प्रकीर्त्तितम्
नारीणामपि दुर्बोधं मूर्खाणाञ्च विशेषतः ।
ज्ञानं योगात्मकं साध्वी सिद्धानां साध्यमीप्सितम् ॥ ११ ॥
जन्तूनामपि सर्वेषां ज्ञानं स्वविषये तथा । सन्तःसर्वे विजानन्ति स्वेच्छया च मदीयया
सिद्ध्यात्मकञ्च सिद्धानां नियुक्तं सर्वकर्मसु ।
चतुस्त्रिंशत्सुसिद्धानां साधनं बोधनं तथा ।
ज्ञानं मोक्षात्मकं सिद्धं परं निर्वाणकारणम् ॥ १३ ॥
निवृत्तिमार्गमारूढं भक्तस्तन्नैव वाञ्छति । भक्तात्मकञ्च यज्ज्ञानं तुभ्यं राधा प्रदास्यति
तस्याञ्च मानवं भावं त्यक्त्वाज्ञाञ्च करिष्यति ।
नन्दाय दत्तं यज्ज्ञानं तच्च तुभ्यं प्रदास्यति ॥ १५ ॥
गच्छ नन्द व्रजं मातर्नन्देन सह सादरम् ।
इत्युक्त्वा विनयं कृत्वा जगामाभ्यन्तरं हरिः ॥ १६ ॥

नन्दो यशोदया सार्द्धं प्रययौ कदलीवनम् । ददर्श राधां तत्रैव निद्रितां त्यक्तभूषणाम् ॥
दधानां शुक्लवस्त्रञ्च निराहारां कृशोदरीम् । पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते॥१८॥

शयानां शुष्किताष्ठीञ्च साश्रुनेत्राञ्च मूर्च्छिताम् ।
ध्यायमानां पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥
बाह्यज्ञानपरित्यक्तां तन्निविष्टैकमानसाम् ।
पश्यन्तीं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीमुन्मुखाम्बुजम् ॥ २० ॥

हसन्तीञ्चरुदन्तीञ्च स्वप्ने कान्तसमीपतः । सखीभिःपरितः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः
दिवानिशं रक्षिताञ्च गोपीभिः शतकोटिभिः । सावधानपराभिश्च वेत्रहस्ताभिरीश्वरीम्

सप्तद्वारेषु युक्ताभिः परितः प्राङ्गणेषु च ॥ २२ ॥

तां दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्य सभार्य्योनन्द एव च । ननामपरया भक्त्या दण्डवत् प्रणिपत्यच
निद्रां त्यक्त्वा च सहसा बुबुधे सेश्वरेच्छया । क्षणेन चेतनां प्राप विषयज्ञानवर्जिता ॥
पुरतो दम्पती दृष्ट्वा पप्रच्छ सादरं सती । उवाच मधुरञ्चैवं तत्रैव सखिसंसदि ॥ २५ ॥

राधिकोवाच ।

कस्त्वञ्चात्र समायातो ब्रूहि वा किं प्रयोजनम् ।
न च मे विषयज्ञानं न जानामि नरं पशुम् ॥ २६ ॥
किं जलं वा स्थलं किं वा किं वा नक्तं दिनं श्रृणु ।
स्त्रियं पुमांसं क्लीवं वा नाहं जानामि भेदकम् ॥ २७ ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा नन्दश्च विस्मयं ययौ । भीता यशोदानिकटं गोपीसम्भाषिता ययौ
उवास निकटे तस्याः समुवाच प्रियं वचः । उवास तत्र नन्दश्च गोपीदत्तासनेन च ॥

यशोदोवाच ।

चेतनं कुरु राधे त्वमात्मानं रक्ष यत्नतः । द्रक्ष्यसिप्राणनाथञ्च संप्राप्ते मङ्गले दिने॥३०॥
त्वत्तो विश्वं पवित्रञ्च स्वकुलञ्च सुरेश्वरि । गोप्यश्च पुण्यवत्यश्च त्वत्पादाम्बुजसेवया

लोका गास्यन्ति त्वत्कीर्त्तिं तीर्थपूतां सुमङ्गलाम् ।
सन्तो वेदाश्च चत्वारः पुराणानि पुरातनम् ॥ ३२ ॥

अहं यशोदा नन्दोऽयं बुद्धिरूपे निबोध माम्। वृषभानुसुता त्वञ्च मां निशामय सुव्रते
द्वारकानगराद्भद्रे श्रीकृष्णसन्निधानतः। तवान्तिकमागताहं प्रेरिता हरिणा सति ॥३४॥
शृणु मङ्गलवार्ताञ्च मङ्गलञ्च गदाभृतः। आराद् द्रक्ष्यसि कृष्णं तं हे देवि चेतनं कुरु॥
भक्त्यात्मकं परिज्ञानं देहि मह्यञ्च साम्प्रतम्। त्वद्भर्तुरुपदेशेन त्वत्समीपं समागतौ॥
पश्चादायास्यति हरिस्त्वां मुहूर्तं वरानने। भविष्यत्यचिरेणैव श्रीदाम्नः शापमोचनम्
यशोदावचनं श्रुत्वा वार्तां प्राप्य गदाभृतः। श्रीकृष्णनामस्मरणाद् दूरीभूतममङ्गलम्॥

संप्राप चेतनं राधा सम्भाष्य कृष्णमन्तरम्।
उवाच मधुरं शान्ता लौकिकीं भक्तिमुत्तमाम्॥ ३६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधायशोदासंवादे दशाधिकशततमोऽध्यायः।

————

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

रामादिशब्दानां व्युत्पत्तिस्तेषाञ्च प्रशंसा।

राधिकोवाच।

ज्ञानात्मकश्च परमो ब्रह्मेशशेषपूजितः। ज्ञानञ्च न ददौ तुभ्यं मन्मूलं प्रेषिता सति ॥१॥

तेनैव छद्मना नेतुं भावार्थं बोधयामि किम्।
वेदाः सन्तश्च भावार्थं नैव जानन्ति तस्य च॥ २॥

स्त्रीजातिरबला मूढ़ा वस्तुतोऽज्ञानतत्परा। ततस्तद्विरहेणैव सन्ततं हतचेतना॥ ३॥
किं वाहं कथयिष्यामि ज्ञानं पञ्चविधेषु च। भक्त्यात्मकं सर्वपरं निबोध कथयामि ते
श्रीकृष्णस्य वरेणापि त्वं साधो निर्भयोभव। गोलोकेचापि पतनं सम्भवेच्चकुयोगिनः
तस्मात् सर्वं परित्यज्य भजस्व परमेश्वरम्। पुत्रबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं निशामय॥
सर्वं यशोदे भवति परित्यज्य च नश्वरम्। गत्वा वृन्दावनं रम्यं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम्

कृत्वा त्रिकालज्ञानञ्च निर्मले यमुनाजले । कृत्वाष्टदलपद्मञ्च स्निग्धेन चन्दनेन च ॥८॥
ध्यानेन गर्गदत्तेन शुद्धेन मनसा सति । सम्पूज्य परमानन्दं सानन्दं व्रज तत्पदम् ॥९॥
कृत्वा निकृन्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह । वैष्णवेन सहालापं कुरुष्व सततं सति ॥
वरं हुतवहज्वालां भक्तो वाञ्छति पञ्जरम् । वरञ्च कण्टके वासं वरञ्च विषभक्षणम् ॥
हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम् । स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च
अङ्कुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तिसङ्गेन वर्धते । परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च ॥ १३ ॥
अभक्तालापदीपाग्निज्वालायाः कलयापि च । अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते
तस्मादभक्तसङ्गञ्च सावधानः परित्यज । यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीत्वा पलायते ॥
यशोदे च प्रयत्नेन स्वात्मनः पुत्रमीश्वरम् । राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन ॥१६॥
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन । इत्येकादश नामानि पठेद्वा पाठयेदिति ।
जन्मकोटिसहस्राणां पातकादेव मुच्यते ॥ १७ ॥
राशब्दोविश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः । विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामःप्रकीर्तितः
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः । रमाया रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः ॥
रा चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः। लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
नाम्नां सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत् फलं लभेत् ।
तत् फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः ॥ २१ ॥
सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः। यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणःस्मृतः
नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् । यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणःस्मृतः
सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्
नारञ्च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम् ।
तयोर्ज्ञानं भवेद्‌ यस्मात् सोऽयं नारायणः प्रभुः ॥ २५ ॥
नास्त्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च । शास्त्रेष्वन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्बुधाः
मुकुमध्ययमानञ्च निर्माणं मोक्षवाचकम् । तद्ददाति च यो देवो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः
मुकुं भक्तिरसप्रेमवचनं वेदसम्मतम् । यस्तं ददाति भक्तेभ्यो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः ॥

सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात् स मधुसूदनः । इति सन्तो वदन्तीशं वेदे भिन्नार्थमीप्सितम्
मधुक्लीबञ्च माध्वीके कृतकर्मशुभाशुभे । भक्तानां कर्मणाञ्चैव सूदनं मधुसूदनः ॥ ३० ॥
परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु । करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदनः ॥
कृषिरुत्कृष्टवचनो नश्च सद्भक्तिवाचकः । अश्चापि दातृवचनः कृष्णंतेन विदुर्बुधाः॥३२॥
कृषिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि । तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥
कोटिजन्मार्जिते पापे कृषिःक्लेशे च वर्तते । भक्तानां नश्च निर्माणे तेन कृष्णःप्रकीर्तितः

नाम्नां सहस्रं दिव्यानां त्रिरावृत्त्या च यत् फलम् ।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य तत् फलं लभते नरः ॥ ३५ ॥

कृष्णनाम्नः परं नाम न भूतं न भविष्यति । सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः

कृष्ण कृष्णेति हे गोपी यस्तं स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धरेच्च सः ॥ ३७ ॥

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते । भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः ॥
अश्वमेधसहस्रेभ्यः फलं कृष्णजपस्य च । वरं तेभ्यः पुनर्जन्म नातो भक्तपुनर्भवः ॥
सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च । तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च

वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम् ।
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ४१ ॥

तेषां लोभाद्भवेत् स्वर्गफलञ्च सुचिरं नृणाम् । स्वर्गादवश्यं पुंसश्च जपकर्तुर्हरेः परम्
के जले सर्वदेहेऽपि शयनं यस्य चात्मनः । वदन्ति वैदिकाः सर्वे तं देवं केशवं परम् ॥

कंसश्च पातके विघ्ने रोगे शोके च दानवे ।
तेषामरिर्निहन्ता च स कंसारिः प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

रुद्ररूपेण संहर्ता विश्वानामपि नित्यशः । भक्तानां पातकानाञ्च हरिस्तेन प्रकीर्तितः ॥
माञ्च ब्रह्मस्वरूपा या मूलप्रकृतिरीश्वरी । नारायणीति विख्याता विष्णुमाया सनातनी

महालक्ष्मीस्वरूपा च वेदमाता सरस्वती ।
राधा वसुन्धरा गङ्गा तासां स्वामी च माधवः ॥ ४७ ॥

ब्रह्मेशशेषादिभवैश्च वन्द्यं ध्यानैर्न किञ्चित् सनकादिभिश्च ।
वेदैः पुराणैर्न निरूपितञ्च भजस्व भक्त्या नवनीतचोरम् ॥ ४८ ॥
क्व चापि दुग्धं क्व दधि घृतं वा नवोद्धृतं वा क्व च तक्रमीप्सितम् ।
तेषां क्व चोरो भवति क्व चापि क्व वन्धनं ते भवमूलमध्ये ॥ ४९ ॥
न योगिभिः सिद्धगणैर्मुनीन्द्रैर्न भक्तसङ्घैर्भवपाद्मशेषैः ।
योगैर्न वद्धो न हि रक्षितुं क्षमैः कथं स वद्धस्तव मूलमध्यतः ॥ ५० ॥
प्रेम्णानुभक्त्या स्तवनेन पूजया भजस्व पुत्रं तरसा च भारते ।
हृत्पद्ममध्ये स्थितमीश्वरं परं ध्यानेन यत्नेन च सन्ततं सति ॥ ५१ ॥
वरं वृणुष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।
सर्वं दास्यामि जगति देवानामपि दुर्लभम् ॥ ५२ ॥

यशोदोवाच ।

हरौच निश्चला भक्तिस्तद्दास्यं वाञ्छितंमम । तवनाम्नश्च व्युत्पत्तिर्का वा तद्वक्तुमर्हसि

श्रीराधिकोवाच ।

भवेद्भक्तिर्निश्चला ते हरेर्दास्यञ्च दुर्लभम् । लभस्व मद्वरेणापि कथयामि सुनिर्णयम् ॥
पुरा नन्देन दृष्टाहं भाण्डीरे वटमूलके । मया च कथितो नन्दो निषिद्धश्च व्रजेश्वरः ॥
अहमेव स्वयं राधा छाया रापाणकामिनी । रापाणः श्रीहरेरंशः पार्षदप्रवरो महान् ॥
रा शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु ।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः ॥ ५७ ॥
धात्रीमाताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी । तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः ॥
अहं सुदामशापेन वृषभानसुताधुना । शतवर्षञ्च विच्छेदो हरिणा सह साम्प्रतम्॥५९॥
वृषभानश्च कृष्णस्य पार्षदप्रवरो महान् । पितॄणां मानसी कन्या मम माता कलावती
अयोनिसम्भवाऽहञ्चमम माता च भारते । पुनःसार्धञ्चयुष्माभिर्यास्यामि श्रीहरेःपदम्
इति ते कथितं सर्वं व्रजं व्रज व्रजेश्वरि ।
व्रजेश्वरेण सहिता स्वामिना ज्ञानिना सति ॥ ६२ ॥

ममाधुना च भवती ध्यानस्य व्यवधारिका । ध्यानभङ्गे महादोषो नराणामपि सुन्दरि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधायशोदासंवादे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

———

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

वासुदेवो द्वारकायां वसुदेवाज्ञया मुने । प्रययौ रत्नरचितं रुक्मिणीमन्दिरं वरम् ॥१॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशममूल्यरत्ननिर्मितम् । पुरतः परितोरम्यं नाना चित्रेणचित्रितम् ॥२॥
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणैः । वह्निशुद्धांशुकैः शुद्धैः परितः परिशोभितम् ॥ ३ ॥
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीवनवयौवनाम् । रत्नपर्य्यङ्कमारुह्य शयानां सस्मितं मुदा ॥४॥
अप्रौढाञ्च नवोढाञ्च नवसङ्गमलज्जिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ॥५॥
सुचारुकवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । दृष्ट्वा कृष्णं भीष्मकन्या सहसा प्रणनाम सा
तां सम्भाष्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवास सः । शुभक्षणे च शुभया स रेमे रमया सह
सुखसम्भोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदासती । तस्यां जज्ञे कामदेवो भस्मीभूतश्च शम्भुना
स शंवरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम् । रती मायावतीनाम्ना सङ्केतेन सुरस्य च ।
छायां दत्त्वा च शयने गृहिणी शंवरालये ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

जहार शंवरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः । कथयस्व महाभाग विस्तरेण शुभां कथाम् ॥

नारायण उवाच ।

समतीते च सप्ताहे रुक्मिणी सूतिकागृहम् ।
गृहीत्वा बालकं दैत्यो जगाम स्वालयं जवात् ॥ ११ ॥

अपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः । मायावत्यै ददौ हृष्टो हृष्टा मायावती सती ॥
अतीवपालनेनैव वर्धयामास बालकम् । सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने ॥१३॥

सरस्वत्युवाच ।

शिवकोपानले पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव । स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनैव समाहृतः ॥

मायया पि च मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात् ।
समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चात्मजः ॥ १५ ॥
कामञ्च कथयामास जगन्माता च सा सती ।
तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्व रमया सह ॥ १६ ॥
त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः ।
कुररीव सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना ॥ १७ ॥
इत्युक्त्वा च ययौ वाणी ब्रह्माणी ब्रह्मणः पदम् ।
स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः ॥ १८ ॥

एकदा मन्मथं दैत्यो ददर्श रहसि स्थितम् । शृङ्गारं रामया सार्द्धं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥

सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम् ।
रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छितां सुरतोत्सुकाम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जग्राह खड्गमुत्तमम् । उवाच खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम् ॥

शंबर उवाच ।

धिक् त्वां महाकामुकञ्च मूर्खं पण्डितमानिनम् ।
महापातकिनां श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम् ॥ २२ ॥
धिक् त्वाञ्च पुंश्चलीं मत्तां कामुकीं हतचेतनाम् ।
पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति ॥ २३ ॥

इत्येवमुक्त्वा खड्गञ्च तामेव हन्तुमुद्यतः । जिघांसन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः ॥
पपात दूरतो ब्रह्मन् मूर्च्छितः स्वाङ्गपीड़ितः । पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रज्वलन्निव ॥
शिवदत्तञ्च शूलञ्च जग्राह निर्भरेण च । शतसूर्य्यप्रभं शूलं प्रलयाग्निसमं मुने ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा जग्मुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः । पवनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः ॥

स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ।
पवनस्य वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः ॥ २८ ॥
शूलं बभूव तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम् ।
ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा ॥ २६ ॥

रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरीम् । प्रययुर्देवताःसर्वाः स्तुत्वाच पार्वतीस्वयम्
रुक्मिणीमङ्गलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम् । उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं हरिः

ब्राह्मणान् भोजयामास पूजयामास पार्वतीम् ।
अथ कृष्णः क्रमेणैव वेदोक्ते मङ्गले दिने ॥ ३२ ॥
सप्तानां रमणीनाञ्च पाणिग्राहञ्चकार ह ।
कालिन्दीं सत्यभामाञ्च सत्यां नाग्निजितीं सतीम् ॥ ३३ ॥

जाम्बवतीं लक्ष्मणाञ्च समुद्वाहं चकार सः । ताभिः सार्द्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं चकारह
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रञ्च नृपेश्वरम् ॥
बलवन्तं सुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि । ददर्श कन्यास्तत्रस्थाः सहस्राणाञ्च षोडश ॥
शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । प्रफुल्लवदनाः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः ॥
शुभक्षणे च तासाञ्च पाणिं जग्राह माधवः । ताभिः सार्धं स रेमे च क्रमेण च शुभक्षणे
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । हरेरेतान्यपत्यानि बभूवुश्च पृथक् पृथक् ॥
एकदा द्वारकांरम्यां दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्द्धमाजगामावलीलया
राजा महोग्रसेनश्च सपुत्रः सपुरोहितः । वसुदेवो वासुदेवोऽप्यक्रूरश्चोद्धवस्तथा ॥४१

नीत्वा षोडशोपचारं प्रणेमुर्मुनिपुङ्गवम् ।
शुभाशिषञ्च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन् पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥
एकानंशाञ्च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभक्षणे ।
मुक्तामाणिक्यहीरांश्च रत्नञ्च यौतुकं ददौ ॥ ४३ ॥

स रेमे रामया सार्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरे । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै शुभाश्रमम् ॥

एकदा स मुनिश्रेष्ठः समालोच्य स्वचेतसा । शयानं कुत्रचिद्रम्यपर्य्यङ्के रत्ननिर्मिते ॥
श्रुतवन्तं पुराणञ्च श्रद्धया कुत्रचिद्विभुः । महोत्सवे नियुक्तञ्च कुत्रचित् प्राङ्गणे शुभे ॥
ताम्बूलं भुक्तवन्तञ्च भक्त्या दत्तञ्च सत्यया । कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्याश्वेतचामरैः
कालिन्दीसेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा । सर्वत्र समसंभाषां चकार भगवान् मुनिः ॥
विस्मयं प्रययौ विप्रो दृष्ट्वा तत् परमद्भुतम् । तुष्टाव जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः ॥
वसन्तञ्च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम् ॥ ५० ॥

दुर्वासा उवाच ।

जय जय जगतां नाथ जितसर्व जनार्दन सर्वात्मक सर्वेश सर्ववीज पुरातन निर्गुण निरीह निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूप सनातन निःस्वरूप नित्यनूतन ब्रह्मेशशेषधनेशवन्दित पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिरनिर्वचनीय वेदाविदितगुणरूप महाकाशसमासमानीय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥
इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च । प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ॥५२॥
तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम् । ज्ञानञ्च वेदविहितं सर्वेषाञ्च सतां मतम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः ।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ ५४ ॥
अहमात्मा च सर्वेषां शवाः सर्वे मया विना ।
प्राणिदेहान् मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः ॥ ५५ ॥
जातावप्येक एवाहं व्यक्ता एव पृथक् पृथक् ।
यो भुङ्क्ते तस्य तृप्तिः स्यान्नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ५६ ॥
पृथक् जीवादिसर्वेषां प्रतिमानञ्च प्राणिनाम् ।
परिपूर्णतमोऽहञ्च गोलोके रासमण्डले ॥ ५७ ॥
श्रीदामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाधुना । सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तदंशतः ॥
रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः ।

ममापि कुत्रचिच्चांशं कुत्रचिच्च कलाकलाः ।
कलाकलांशाः कुत्रापि प्रतिमासु च देहिषु ॥ ५९ ॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्याभ्यन्तरं ययौ ।
दुर्वासाश्च प्रियां त्यक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः ॥ ६० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे मुनिकृष्णसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

अकारणात् पत्नीत्यागदोषः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सशिष्यश्चापि दुर्वासास्त्यक्त्वा च द्वारकां पुरीम् ।
कैलासं प्रययौ भक्त्या शङ्करं द्रष्टुमीश्वरम् ॥ १ ।
गत्वा मुनिश्च कैलासं प्रणनाम शिवं शिवाम् ।
तुष्टाव परया भक्त्या सशिष्यः प्रणतः शुचिः ॥ २ ॥
तत्सर्वं कथयामास वृत्तान्तं श्रीहरेरपि । आत्मनस्तपसस्तत्त्वं स्ववैराग्यञ्च चेतसः ॥३॥
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य पार्वती सती । तमुवाच हितं सत्यं साक्षाच्छङ्करसन्निधौ ॥

पार्वत्युवाच ।

धर्मतत्त्वं न जानासि धर्मिष्ठं मन्यसे स्वकम् ।
अनपत्यां परित्यज्य क यासि तपसे मुने ॥ ५ ॥
अनपत्याञ्च युवतीं कुलजाञ्च पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वा भवेयुः सन्न्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ॥ ६ ॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।

तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥ ७ ॥
न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् । अभिशापेन भार्याया नरकञ्च परत्र च ।
इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः ॥ ८ ॥
द्वारकां गच्छ हे विप्र स्वधर्मं रक्ष साम्प्रतम् । एकानंशां मदंशाञ्च धर्मतः परिपालय ॥
पादपद्मार्जितं पादपद्मं सर्वं सुदुर्लभम् । सन्ततं शम्भुना गीतं मुनीन्द्रैः सनकादिभिः ॥
परित्यज्य सुरतरोःकृष्णस्य परमात्मनः । क्व यासि तपसेवत्स सुधां त्यक्त्वामनोहराम्
श्रीकृष्णपादपद्मञ्च स्वप्ने जपति यो मुने । शतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ।
कामतोऽकामतो वापि भस्मीभूतञ्च पातकम् ॥ १३ ॥
साक्षाद्यो भारते वर्षे श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।
दृष्ट्वा सद्यो भवेत् पूज्यो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ १४ ॥
कोटिजन्मार्जितात् सद्यः कृतपापाद्विमुच्यते ।
सर्वाण्येव हि तीर्थानि यतः पूतानि नित्यशः ॥ १५ ॥
तद् व्रतं तत्तपः सत्यं तत् पुण्यं तच्च पूजनम् ।
सफलं कृष्णसम्बन्धि स्वजन्मखण्डनं यतः ॥ १६ ॥
कृष्णभक्तिविहीनश्च ब्राह्मणो वेदपारगः । तत्सङ्गाच्च तदालापाद्भक्तभक्तिः प्रणश्यति ॥
कृष्णस्योच्छिष्टभोजी यः कृष्णश्च ब्राह्मणः स्वयम् ।
आवह्निपवनात् पूतः पूतं कर्त्तुं जगत् क्षमः ॥ १८ ॥
श्रीकृष्णञ्च परित्यज्य क्व यासि तपसे द्विज । तपसां फलमाप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च
यतो भक्तिर्न च भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि । स गुरुः परमो वैरी करोति जन्मनिष्फलम्
पार्वतीवचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रेमविह्वलः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥२१॥
दुर्वासाः प्रणतिं कृत्वा शिवदुर्गापदाम्बुजे । स्मारं स्मारं कृष्णपदं पुनश्च द्वारकां ययौ
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम् । एकानंशालयं गत्वा स च रेमे तया सह ॥
कृष्णो युधिष्ठिरध्यानात् प्रययौ हस्तिनापुरम् ।

कुन्तीं सम्भाष्य भूपञ्च भ्रातॄंश्च प्रमुदान्वितः ॥ २४ ॥
उपायेन जरासन्धं निहत्य शाल्वमेव च ।
कारयामास यज्ञञ्च विधिवोधितदक्षिणम् ॥ २५ ॥
मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम् । शिशुपालं दन्तवक्रं तत्र यज्ञे जघान सः ॥
अतीवनिन्द्रां कुर्वन्तं सभायां सुरभूपयोः । पपात तच्छरीरञ्च जीवो गत्वा हरेः पदम् ॥
न दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टावागत्य माधवम् ॥ २७ ॥

शिशुपाल उवाच ।

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानाञ्च माधव ।
सुराणामसुराणाञ्च प्राकृतानाञ्च देहिनाम् ॥ २८ ॥
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदं करोषि च । मायया च स्वयं ब्रह्मा शङ्करः शेष एवच
मनवो मुनयश्चैव वेदाश्च सृष्टिपालकाः । कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादयः
स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः ।
कारणञ्च स्वयं कार्य्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥ ३१ ॥
यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च श्रुतौ श्रुतम् ।
सर्वे यन्त्रा भवान् यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३२ ॥
मम क्षमस्वापराधं मूढ़स्य द्वारिणस्तव । ब्रह्मशापात् कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥
इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च । मुदा तौ ययतुः शीघ्रं वैकुण्ठद्वारमीप्सितम्
शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः । परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरे कृष्णमीश्वरम् ॥
कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान् । कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयामास भेदतः ॥
भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः । पुनर्ययौ द्वारकाञ्च चिरं स्थित्वा नृपाज्ञया ॥
विप्राया मृतवत्साया जीवयामास पुत्रकान् ।
मृतस्थानात् समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान् ॥ ३८ ॥
तद् दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययाचे मृतपुत्रकान् ।
मृतस्थानात् समानीय ददौ मात्रे सहोदरान् ॥ ३९ ॥

सद्यो जहार दारिद्र्यं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च। समागतस्यस्वगृहाद् द्वारकांशरणार्थिनः
तस्मै ददौ राजलक्ष्मीं निश्चलां सप्तपौरुषीम्। पृथुकानांकणं भुक्त्वाभक्तस्यभक्तवत्सल
बभूव तस्य राजश्च यथेन्द्रस्यामरावती। यथा धनेश्वरो देवो धनाढ्यः स बभूव ह॥
निश्चलां हरिभक्तिञ्च ददौ दास्यं सुदुर्लभम्।
अविनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम्॥ ४३॥
जहार पारिजातञ्च शक्राहङ्कारमेव च। सत्यां च कारयामास पुण्यकं व्रतमीप्सितम्॥
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां ददौ
ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा। सत्यभामातिमानञ्च वर्धयामाससर्वतः
रुक्मिण्याअतिसौभाग्यमन्यासाञ्च नवंनवम्। वैष्णवानांसुराणाञ्च विप्राणामपिपूजनम्
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। परमाध्यात्मिकं ज्ञानमुद्धवाय ददौ प्रभुः॥
अर्जुनं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि। कृत्वा निष्कण्टकञ्चैव कृपया च कृपानिधिः
युधिष्ठिराय पृथिवीं राज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः।
दुर्गाञ्च कारयामास वैष्णवीं ग्रामदेवताम्॥ ५०॥
यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्। नानाप्रकारनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः॥ ५१॥
ब्राह्मणान् भोजयामास पार्वतीप्रीतये तथा। रैवते पर्वते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे॥५२
गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम्। लड्डुकानां तिलानाञ्च सुस्वादु सुमनोहराम्
परितुष्टिं पञ्चलक्षं नैवेद्यञ्च ददौ मुदा। लड्डुकं स्वस्तिकानाञ्च सप्तलक्षं सुधोपमम्॥
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतराशिकम्। पक्वरम्भा फलानाञ्च दशलक्षमपूपकम्॥ ५५
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वादु स्वस्तिकपिष्टकम। घृतञ्च नवनीतञ्च दधि दुग्धं सुधोपमम्
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभीप्सितम्। सुगन्धि चन्दनं गन्धं वह्निशुद्धांशुकं ददौ॥
यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्।
ब्राह्मणान् भोजयामास तुष्टाव स गणेश्वरम्॥ ५८॥
वाद्यं दशविधञ्चैव वादयामास तत्र वै। सूर्यञ्च पूजयामास साम्बः कुष्ठक्षयाय च॥
हविष्यं कारयामास तञ्च साम्बं समातरम्। परिपूर्णं वत्सरञ्चाप्युपहारैरनुत्तमैः॥ ६०

वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रञ्च भास्करः स्वयम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे गणेशपूजा नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धोपाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महाबल पराक्रमः । तत्पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एव च ॥१
एकदासावनिरुद्धो नवयौवनसंयुतः । सुप्तो रहसि पर्य्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ २ ॥
स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सुगन्धिपुष्पतल्पेमस्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३॥
शयानां सुस्मितां रम्यां नवयौवनसंयुताम् । अमूल्यरत्ननिर्माण भूषणेनविभूषिताम् ॥
चारुकेयूरवलयशङ्खकङ्कणशोभिताम् । मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥ ५ ॥
अतीवसूक्ष्मवसनां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठीञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥ ६
शरत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम् । मुक्तापङ्क्तिसमासाद्यदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥
त्रिवक्रकबरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमालक्तस्निग्धचन्दनकज्जलैः ॥८
पत्रावलीविरचितसुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् । दाडिम्बकुसुमाकारसिन्दूरबिन्दुभूषिताम् ॥
श्रीरामकदलीस्तम्भनिन्दितोरुस्थलोज्ज्वलाम् । अत्युच्चैर्वर्तुलाकारस्तनयुग्मविभूषिताम्
नितम्बभारनम्राञ्च कामबाणप्रपीड़िताम् । कामुकीं कमनीयाञ्च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥
कुङ्कुमालक्तरक्ताक्तपादपद्मविराजिताम् । वायुप्रेरणवस्त्रेण व्यग्रगुप्तस्थलोज्ज्वलाम् ॥१२
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः । उवाच मधुरं मत्तः काममत्तां सुकोमलाम्
चारुचम्पकवर्णाभां कामेन पुलकान्विताम् । अतिप्रौढ़ांनवोढ़ाञ्चश्रृङ्गारेच्छासुचञ्चलाम्

अनिरुद्ध उवाच ।

किं देवी किञ्च गान्धर्वी का त्वं कामिनि कानने ।

कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि ॥ १५ ॥

त्रैलोक्यातुलसौन्दर्य्यान्मुनिमानसमोहिता । न बिभेषि कथंब्रूहि स्वयमेकाकिनीचमाम्

अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्रः कामात्मजोऽधुना । कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवनाहतः

कमनीयश्च कामी च कामशास्त्रविशारदः । कामुकीकामनां पूर्णां कर्तुमेवेश्वरः स्वयम्

मां भजस्व सुशीले त्वं सुवेशश्च सुशीलकम् । रतिशूरं रतिरसप्राज्ञं रतिरसप्रियम् ॥

रतिपुष्टं रतिरसं प्रमत्तं रसिकं प्रिये । युवानं व्याधिहीनञ्च कामुकं कामुकीच्छति ॥

विदग्धा सुविदग्धञ्च कान्तमायाति कामतः ।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ २१ ॥

प्रच्छाद्य लोचनास्यञ्च नवसङ्गमलज्जिता । विलोकयन्ती वक्राक्षिकोणेन तमुवाच सा

कामिन्युवाच ।

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना ।

भवांश्चेत् कामुकीयोग्यो न कामश्चिन्तितः कथम् ॥ २३ ॥

पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः सम्भावितस्य च ।

स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं कुरु ॥ २४ ॥

विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यव्रता सती ।

निश्चला सततं साध्या वर्धिनी सङ्गिनी सदा ॥ २५ ॥

भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नीत्वनिश्चला ।

नैमित्तिका न नित्या सा सा च वेदविवर्जिता ॥ २६ ॥

परं नरकसोपाना परत्रेहायशस्करा । साधुस्तत्र न हि रतो वंशजो वैष्णवो यदि ॥

यदि पूर्वं भवेद्भ्रान्तो निवृत्तः साधुसङ्गतः । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला

प्रायश्चित्ती पुनर्लिप्तो निवृत्तः पातकी यदि । उपहास्यो भुवि भवेत्सर्वं कुञ्जरशौचवत्

सुशीला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता ।

पतिव्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी ॥ ३० ॥

कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिसुखप्रदा ।

एवम्भूतां परित्यज्य वैष्णवस्तपसे व्रजेत् ॥ ३१ ॥
साचेत् परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा।
अन्यथा च वृथा सर्वं तपसः स्खलनं भवेत् ॥ ३२ ॥
असाधुश्च कुवंशश्चेत् परनारीं प्रयाति चेत्।
स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिः सह ॥ ३३ ॥
अहमूषा वाणकन्या वाणः शङ्करकिङ्करः। वाणस्त्रैलोक्यविजयी शङ्करो जगतां पतिः ॥
न स्वतन्त्रा पराधीना त्रिषु कालेषु कामिनी।
पुंश्चली या स्वतन्त्रा साप्यसद्वंशप्रसूतिका ॥ ३५ ॥
पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च।
कन्या वरं न याचेत धर्म एष सनातनः ॥ ३६ ॥
त्वं च योग्योऽसि योग्याहं मामिच्छसि यदि प्रभो।
वाणं प्रार्थय शम्भुं वाप्यथवा पार्वतीं सतीम् ॥ ३७ ॥
इत्युक्त्वा सुन्दरी साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह।
निद्रां तत्याज सहसा कामी कामात्मजो मुने ॥ ३८ ॥
बुद्ध्वा स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितातुरः।
बभूव व्याकुलो शान्तो न दृष्ट्वा प्राणवल्लभाम् ॥ ३९ ॥
त्यक्त्वाहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कृशोदरः। क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिति ॥
पुत्रं दृष्ट्वा तु क्रन्दन्तं देवकीरुक्मिणी सती। अन्याश्चयोषितःसर्वाःकथयामासुरीश्वरम्
तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमानसः ॥

श्रीभगवानुवाच।

कामातुरा वाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः। वरं सम्प्राप दुर्गाया व्याकुला मदनास्त्रतः
स्वप्नश्च दर्शयामास सानिरुद्धश्च पार्वती। मम पौत्रं प्रमत्तश्च चकार कौतुकेन च ॥४४
तत्पुत्रीश्च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्नतोऽधुना।
स्वच्छन्दं तिष्ठ न चिरं नास्ति चिन्ता मनोऽन्यथा ॥ ४५ ॥

इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिवित् ।
स्वप्नञ्च दर्शयामास वाणपुत्रीञ्च कामुकीम् ॥ ४६ ॥
सुप्ता सुतल्पे वाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते । नवयौवनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥४७॥
शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम् । अतीवनिर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥४८॥
नवीननीरदश्याममतीवनवयौवनम् ।
कोटिकन्दर्पलीलाभं सस्मितं सुमनोहरम् ॥ ४९ ॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥ ५० ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा । सुचारुमालतीमाल्यवक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥
शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते । तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रययौ मुदा ॥
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता । कामात्मजप्रिया कान्ता कामवाणप्रपीड़िता ॥

उषोवाच ।

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरातुराम् ।
अतिप्रौढ़ां नवोढ़ाञ्च नवसङ्गमलालसाम् ॥ ५४ ॥
तवानुरक्तां भक्ताञ्च गान्धर्वेण समुद्वह । विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥
अनुरक्तां प्रियां प्राप्य त्यजेद्यः कपटी पुमान् ।
तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ५६ ॥

पुमानुवाच ।

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्वयम् ।
कथं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ॥ ५७ ॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः ।
कामेन व्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम् ॥ ५८ ॥
निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहरात् । विषसाद सखीमध्ये प्रमत्तारुदती भृशम्
पप्रच्छ तां वरालीनां किं किमित्येव निश्चितम् ।
उवाच वोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ॥ ६० ॥

चित्रलेखोवाच ।

चेतनं कुरु कल्याणि कस्मात्ते भीतिरुल्वणा ।

स्वयं शम्भुः शिवासाक्षाद् दुर्लंघ्ये नगरे सति ॥ ६१ ॥

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते । शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥६२

ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति । ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

चित्रलेखावचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्भृशं सती । बाणश्च शङ्कराभ्यासे विषसाद प्रमूर्च्छितः

जहास शङ्करो दुर्गा कार्त्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ६४ ॥

गणेश्वर उवाच ।

यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः । सूक्ष्मधर्मविचारेण स विन्दति चतुर्गुणम्

शिवेशयोश्च क्रीडाश्च दृष्ट्वा या काममोहिता ।

वरं तस्मै ददौ दुर्गा वरमेव सुदुर्लभम् ॥ ६६ ॥

स्वप्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम् ।

अधुना वामपार्श्वेश्च शम्भोस्तिष्ठति मूकवत् ॥ ६७ ॥

सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान् हरिरीश्वरः । स्वप्ने सुवेशं पुरुषं दर्शयामासकन्यकाम्

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं युवती सती । परमेच्छा भवेत्तस्या धर्मभीत्या निवर्तते ॥ ६९

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा पुंश्चली पापवंशजा । त्यजेन्निद्राश्च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम् ॥७०

चेतनं गृहकार्यञ्च कुललज्जां कुलद्वयम् । युवानं रतिशूरञ्चाप्यतिनीचं न हि त्यजेत् ॥

त्यजेज्जातिञ्च धर्मञ्च प्राणांश्च परिणामतः ॥ ७१ ॥

तस्मात् प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा । परिरक्षेच्च सततंमायायुक्तां न विश्वसेत्

हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः । तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिकाः

प्रयातु द्वारकां सद्यश्चित्रलेखा सुयोगिनी । अनिरुद्धं समाहृत्य प्रमत्तमवलीलया ॥ ७४

इतिश्रुत्वा महादेवो गणेशं तमुवाच ह । न श्रृणोति यथा बाणः शुभकार्य्यं तथा कुरु

चित्रलेखा ययौ तूर्णं द्वारकाभवनं हरेः । सर्वेषामपि दुर्लंघ्या लीलया प्रविवेश सा ॥

निद्रितं चानिरुद्धञ्च समाहृत्य च योगतः । रथमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा ॥

सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्वा बालकं मुने ।
मुहूर्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ ॥ ७८ ॥
अथाश्रमाभ्यन्तरे च रुरुदुः सर्वयोषितः । अहो बाणहरो वत्सः क गतः प्राणवल्लभः ॥
कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित् ।
साम्बः कामबलैः सार्धं कृष्णः सात्यकिना तथा ॥ ८० ॥
गृहीत्वा गरुडं वीरं रथमारुह्य सत्वरः । सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पद्मं कौमोदकीं गदाम् ॥
पश्चाद्याम्पति देवेशो नगरं शोणितं तथा । सगणैः शङ्करेणैव पार्वत्या परिरक्षितुम् ॥
अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्या च योषिताम् ।
शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन सिद्धिदा ॥ ८३ ॥
बालकं बोधयामास रुदन्तं मातरं स्मरन् । स्नापयित्वा ददौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम्
कृत्वा सुवेशं बालस्य कन्यान्तः पुरमीप्सितम् । चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम्
तामुषां रक्षितां दृष्ट्वा निराहारां कृशोदरीम् । शीघ्रञ्चबोधयामास सखीभिःपरिवारिताम्
उषां कृत्वा च सुस्नातां वस्त्रभूषणभूषिताम् । वस्त्रैर्माल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः
द्वयोःसम्भाषणंतत्र माहेन्द्रे च शुभक्षणे । कारयामास गोष्ठ्या च सखीनां सङ्गमेन च
पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रेमे विगतज्वरा । गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः ॥
रतिर्बभूव सुचिरमुभयोः सुखकारणम् । दिवानिशं न बुबुधे स्मरपुत्रः स्मरातुरः ॥ ६० ॥
उषा कामातुरा प्रौढा नवोढा नवसङ्गमात् ।
मूर्च्छां सम्प्राप पुंसश्च स्पर्शमात्रेण कामुकी ॥ ६१ ॥
एवं नित्यञ्च रहसि सङ्गमः सुमनोहरः । बभूव सुचिरं विप्र राजा शुश्राव रक्षकात् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
बाणयुद्धेऽप्युषानिरुद्धयोःसंवादे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

———

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

बाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

अथ भीता रक्षकास्ते समूचुर्बाणमीश्वरम् । स्कन्दं गणेशं दुर्गाञ्च दण्डवत् प्रणिपत्य च

रक्षका ऊचुः ।

अहो दुष्टश्च कालोऽयमतीवदुरतिक्रमः ।

स्वतन्त्रा बालिका प्रौढ़ा पतिमिच्छति साम्प्रतम् ॥ २ ॥

असङ्गसङ्गमनाथ साधूनां दुःखकारणम् । संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति सन्ततं नृणाम्

चित्रलेखा स्वयं दूती समानीय परं वरम् । रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रञ्च महारथम् ॥ ४ ॥

युवानं व्याधिहीनञ्च कन्दर्पादपि सुन्दरम् ।

सम्भोगं कारयामास बुबुधे न दिवानिशम् ॥ ५ ॥

साम्प्रतं तव कन्यास्याप्युषा गर्भवती सती । कुलजा कुलयोश्चैव तप्ताङ्गारस्वरूपिणी

दौहित्रो वापि दौहित्री बभूव साम्प्रतं तव ।

कन्यां पश्य महाप्रौढ़ां नगरीं नागरान्विताम् ॥ ७ ॥

नखविक्षतसर्वाङ्गीं वराधीनाञ्च चञ्चलाम् । पुंसश्च सङ्गिनीं शश्वद्रहस्ये रतिसङ्गिनीम् ॥

सस्मितां सकटाक्षञ्च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम् । एवं श्रुत्वा लज्जितश्च बाणस्तत्र चुकोप ह

युद्धाय च मतिं चक्रे वारितः शम्भुना भृशम् ।

वारितश्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा ॥ १० ॥

भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीभिश्च सन्ततम् । अष्टभिर्भैरवैश्चैव रुद्रैरेकादशात्मकैः ॥

भूतैः प्रेतैश्च कूष्माण्डैर्वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः । योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैरुद्रैश्चण्डादिभिस्तथा ॥

कोट्या च ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताय च ।

उवाच शङ्करो बाणं मूढ़ं पण्डितमानिनम् ।

हितं सत्यं नीतिशास्त्रं परिणामसुखावहम् ॥ १३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु बाण प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । भुवो भारावतरणे भारते स्वयमीश्वरः ॥

निहत्य सर्वान् राजेन्द्रान् द्वारकायां विराजते ।

यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासोः सदीश्वरः ॥ १५ ॥

वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः ।

धातुर्विधाता भगवान् चक्रपाणिः स्वयं भुवि ॥ १६ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । निर्गुणश्च निरीहश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१७॥

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः ।

यस्मिन् गते शवो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत् ॥ १८ ॥

शल्यविद्धो महाकाले यथा मूढदिशस्तथा । तथात्मा च निराकारो देही च ध्यानहेतुना

तस्यपुत्रोऽनिरुद्धश्च महावलपराक्रमः । त्रैलोक्यमपि संहर्तुं क्षणेन च क्षमः स्वयम् ॥

सर्वे देवाश्च दैत्याश्च वलवन्तोमहारथाः । ते सर्वे चानिरुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम् । तयोर्विवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥

वलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः । क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरेः कला ॥

सर्वे चांशकलाः पुंसः परिपूर्णतमस्य च । वृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥

पार्वत्युवाच ।

ध्यायते ध्याननिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम् ।

ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम् ॥ २५ ॥

दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम् ॥

सनत्कुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा । ध्यायते हृदयाम्भोजे भगवन्तं सनातनम् ॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां वराः ।

ध्यानासाध्यश्च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥

सर्वादिं सर्वबीजञ्च सर्वेशञ्च परात्परम् । ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम् ॥

गणेश उवाच ।

अभाग्यश्च बलेश्चापि वैष्णवस्य महात्मनः । मूढोऽयमीदृशः पुत्रः प्रह्लादस्य च धीमतः

स्कन्द उवाच ।

अये भ्रातर्न श्रुता च हिरण्यकशिपोः कथा ।

हिरण्याक्षस्य च मधोः कैटभस्य महात्मनः ।

पूर्वजास्तेऽपि ते दैत्या महाबलपराक्रमाः ॥ ३१ ॥

क्रमेण विष्णुना नीता लीलया यमसादनम् । भगवान्यस्य संहर्ता स्वयं नारायणः प्रभुः

तस्य को रक्षिता भ्रातर्निवर्तस्व शुभाय च । तेषाञ्च वचनं श्रुत्वा तानुवाचासुरेश्वरः

कोपरक्तास्यनयनो धनुष्पाणिर्यथान्तकः । श्रृणु मातः प्रवक्ष्यामि श्रृणु तात महेश्वर

श्रृणु भ्रातर्गणपते श्रृणु भ्रातश्च कार्त्तिक । शुभाशुभं प्राक्तनेन प्राणिनां कर्मणां यथा ॥

कृतकर्मातिरिक्तश्च कार्य्यं केषाञ्च वर्तते । नाप्राप्तकाले म्रियते विद्धः शरशतैरपि ॥३६॥

तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।

यस्माच्च यस्य निर्वाणं विधात्रा लिखितं पुरा ॥ ३७ ॥

तदेव नित्यं सत्यञ्च निषेकः केन वार्य्यते ।

संग्रामे कातरो यो हि निष्फलं तस्य जीवनम् ॥ ३८ ॥

जयी यशश्च लभते मृतः स्वर्गञ्च गच्छति । प्रविश्य कन्यां गृह्णाति नगरं शिवरक्षितम्

पार्वत्या च गणेशेन युद्धेन बलिना तथा ।

को वा गृह्णाति कन्याञ्च कस्य वा जीवितस्य च ॥ ४० ॥

सगर्भा तव कन्येति सभायां रक्षको वदेत् । इति मे वज्रतुल्यञ्च श्रुतिकौटं परं वचः ॥

अतोऽनिरुद्धं हत्वा च घातयिष्यामि कन्यकाम् ।

अन्यथा ज्वलदग्नौ च धक्ष्यामि च कलेवरम् ॥ ४२ ॥

कोटर्युवाच ।

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि माताहं तेऽपि धर्मतः । दुरन्तेनापि पुत्रेण पित्रोर्दुःखं पदे पदे ॥

कन्या परगृहीता साप्यन्यस्मै दातुमक्षमा ।

श्रीकृष्णस्यापि पौत्राय प्रद्युम्नस्य सुताय च ॥ ४४ ॥

अनिरुद्धाय महते स्वेच्छया देहि कन्यकाम् । पूतोऽसि भारतेवर्षे सप्तभिः पितृभिःसह
यौतुकं देहि सर्वस्वं यशसे महते भुवि । अन्यथा रणमध्ये च त्वां हनिष्यति माधवः
सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः । कोटरीवचनं श्रुत्वा चुकोप दैत्यपुङ्गवः ॥
प्रययौ रथमारुह्य यत्र पौत्रो हरेर्मुने । स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शङ्कराज्ञया॥४८॥

वाणस्वस्त्ययनं चक्रे गणेशश्च शिवः स्वयम् ।
वाणं शुभाशिषं चक्रे पार्वती कोटरी तथा ॥ ४९ ॥

अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते । सर्वे युद्धाय हन्तारो बभूवुः शस्त्रपाणयः ॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह । पार्वत्या प्रेरितश्चैव वाणपत्न्या च सत्वरम् ॥

दूत उवाच ।

अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं श्रृणु । भव सान्नाहिको वत्स कुरु युद्धं बहिर्भव ॥५२॥

भीतोषा रुदती त्रस्ता सस्मार पार्वतीं सतीम् ।
रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सितम् ॥ ५३ ॥

अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदारुणे । त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः ॥
अथानिरुद्धः सन्नाही शस्त्रपाणिर्बभूव ह । उषादत्तं रथं प्राप्य चकारारोहणं मुदा ॥
बहिः सम्भूय शिविराद्ददर्श वाणमीश्वरः । सान्नाहिकं शस्त्रपाणिं रक्तास्यलोचनं परम्
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं वाणश्च तमुवाच रुषान्वितः । घोरसंग्राममध्ये च विषोक्तिं प्रज्वलन्निव ॥

वाण उवाच ।

अये वीर महादुष्ट नीतिशास्त्रविवर्जित । चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशस्कर ॥५८॥

पिता ते शंवरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनीम् ।
ततो जातो भवानेव निरोधं स्वकुलक्षमम् ॥ ५९ ॥

पितामहो वासुदेवो मथुरायाञ्च क्षत्रियः । गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः ॥
वृन्दावने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः । साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः ॥

जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः ।

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥ ६२॥
दुर्बलं नरकं हत्वा स्त्रीसमूहं मनोहरम् । जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमतिनिष्ठुरः॥६३॥
भीष्मकं मानवं जित्वा तत्पुत्रञ्चापि दुर्बलम् ।
जग्राह कन्यकां तस्य देवयोग्याञ्च रुक्मिणीम् ॥ ६४ ॥
सत्राजितः सूर्यभृत्यो देवात् प्राप्य मणीश्वरम् ।
घातयित्वा ह्युपायेन जग्राह मणिकन्यकाम् ॥ ६५ ॥
कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयित्वा च दारुणम् । युधिष्ठिरस्य यज्ञे च शिशुपालं जघान सः
दन्तवक्रञ्च शाल्वञ्च जरासन्धञ्च दारुणः । सञ्जहार भुवो भूपसमूहमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥
उपायान्नरकं हत्वा सर्वस्वं तज्जहार सः । दुर्बलो राजभीतश्च समुद्रं शरणं गतः ॥६८॥
जित्वा च भ्रातरं शक्रं भार्याया वचनेन च । जग्राह पारिजातञ्च पुष्पञ्च स्वर्गदुर्लभम्
कंसं निहत्याधर्मिष्ठो भ्रातरं मातुरेव च । जग्राह तस्य सर्वस्वं परं किं कथयामि ते ॥
जित्वा च भल्लूकं युद्धे जग्राह तस्य कन्यकाम् ।
तत्पितुर्भगिनी कुन्ती चतुर्णां कामिनी भुवि ॥ ७१ ॥
द्रौपदीभ्रातृपत्नी च पञ्चानां कामिनी तथा । गोष्ठीने योनिलुब्धश्च शश्वत् परमलम्पटः
तज्ज्येष्ठो बलदेवश्च शश्वत् पिबति वारुणीम् ।
यमुनां भ्रातृपत्नीञ्च करोत्याह्वानमीप्सितम् ॥ ७३ ॥
जहार भगिनीं तस्य कौन्तेयः शक्रनन्दनः । सुभद्रां मातुलसुतां सन्निबोध कुलक्रमम्
बाणस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप कामनन्दनः । उवाच परमार्थञ्च योग्यं प्रत्युत्तरं मुने ॥

अनिरुद्ध उवाच ।

पिता मे कामदेवश्च ब्रह्मपुत्रः पुरा शुचिः । यस्यास्त्रेण वशीभूतं त्रैलोक्यं सततं शृणु ॥
शिवकोपानलेनैव भस्मीभूतः स्वकर्मतः । कृष्णस्य पुत्रोऽप्यधुना सर्वेषां परमात्मनः ॥
पतिव्रता रती माता पतिशोकेन साम्प्रतम् ।
शंबरस्य गृहे तस्थौ हृता तेन बलेन च ॥ ७८ ॥
छायां मायावतीं दत्त्वा मायया शयनेन च । रतीं स्वधर्मं संरक्ष्य धर्मसाक्षी च तद्गृहे

निहत्यशंबरं शत्रुं गृहीत्वा स्वप्रियांसतीम् । आजगाम द्वारकाञ्च चन्द्रसूर्य्यौच साक्षिणौ

पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मुढ़वत् ।

यञ्च सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च ॥ ८१ ॥

वासुः सर्वनिवासस्य विश्वानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतिस्मृतः

शङ्करं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान् ।

कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किङ्करात्मकः ॥ ८३ ॥

गोकुले वैश्यपुत्र त्वं ब्रूहि त्वं ज्ञानदुर्बल । भोजनं वेदविहितं शश्वत् क्षत्रियवैश्ययोः

द्रोणः प्रजापतिः श्रेष्ठो धरा तस्य प्रिया सती । पुत्रञ्च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम्

द्रोणोनन्दोवैश्यराजो यशोदा सा धरासती । वृषभानुसुताराधा सुदाम्नःशापकारणात्

त्रिंशत्कोटिश्च गोपीनां गृहीत्वाभर्त्तुराज्ञया । पुण्यञ्च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगामसा

ताभिः सार्धं स रेमे च स्वपत्नीभिर्मुदान्वितः ।

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥ ८८ ॥

गोपकोटिश्च गोलोकादाजगाम मुदान्वितः । तेजसा हरितुल्यास्ते पार्षदप्रवरा हरेः ॥

गोरक्षणं हरेरेव गोपवेशस्य चात्मनः । गोपानां शिशुरक्षार्थं मायेशस्यापि मायया ॥

पूतना बलिकन्या च भगिनी च तवासुर । दृष्ट्वा च वामनं वन्ध्यां चकार पुत्रमानसम्

एवंभूतो यदि मम पुत्रो भवति साम्प्रतम् । स्तनं ददामि तनयं कृत्वा वक्षसि सुन्दरम्

तस्याःपूर्णं मानसञ्च चकारभगवान्प्रभुः । स्तनंदत्त्वा च गोलोकं ययौ सा रत्नयानतः

कुब्जा सा भगिनी पूर्वं रावणस्य दुरात्मनः । श्रीरामञ्चकमे कामान्नाम्ना शूर्पणखासती

नासां चिच्छेद तस्याश्च लक्ष्मणो धार्मिकेश्वरः ।

तपसा च परं लेभे ब्रह्मणः प्रियमीश्वरम् ॥ ९५ ॥

तेन पुण्येन तं लब्ध्वा गोलोकं सा जगाम ह ।

गोपी बभूव गोलोके कृष्णस्यालिङ्गनेन च ॥ ९६ ॥

नरको हरिवध्यश्च स्वपूर्वप्राक्तनेन च । पाणिं जग्राह कन्यानां साक्षिणौ शशिभास्करौ

भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती ।

वैकुण्ठादागता साध्वी ब्रह्मणोऽनुमतेन च ॥ ९८

सत्राजितस्य कन्या सा सत्यभामा वसुन्धरा ।

ददौ कृष्णाय राजा स तां मणिं यौतुकेन च ॥ ९९ ॥

भुवो भारावतरणहेतुनागमनं हरेः । संजहार भुवो भारं कुरुपाण्डवयुद्धतः ॥ १०० ॥

शिशुपालो दन्तवक्रो जयो विजय एव च । द्वारिणो द्वारि षट्के च वैकुण्ठे श्रीहरेरपि

कुमारशापात् पतितौ प्राप्य जन्मत्रयं भुवम् । हिरण्यकशिपुश्चैव तयैव पूर्वपूरुषः ॥

तस्य भ्राता हिरण्याक्षस्तेनैव वरुणो जितः ।

हरिर्नृसिंहरूपेण तं जघानावलीलया ॥ १०३ ॥

शूकरेण हतोऽन्यश्च पूर्वजन्मकथां शृणु । द्वितीये जन्मनि पुरा रावणः कुम्भकर्णकः ॥

श्रीरामेण हतौ तौ द्वौ शेषजन्म कलौ तयोः। श्रीकृष्णेन हतौ तौ द्वौ धर्मपुत्रावुभौ तथा

जरासन्धश्चशाल्वश्च दुरात्मा कंस एव च । प्राक्तनात्तस्यवध्यास्ते भुवो भारजिहीर्षया

मांधातुः सुतमध्ये च यवनश्चापि प्राक्तनात् ।

लक्ष्मीश्वरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम् ॥ १०७ ॥

प्रतिज्ञया च सत्यायाः पुण्यकव्रतकारणात् । पारिजातंसमानीय चकार स्वात्मनोव्रतम्

स्वयंजाम्ववती देवी दुर्गांशा भल्लुकात्मजा । पाणिं जग्राह तस्याश्च तपसा भारते हरिः

कुन्त्याश्च क्षेत्रजाः पुत्राः केवलं भर्तुराज्ञया ।

कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः । महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि

यस्मै पाशुपतं शम्भुः प्रददौ च स्वयं पुरा ।

अश्वमेधं गवालम्भं सन्न्यासं पलपैतृकम् ॥ ११२ ॥

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् । द्रौपद्याः पञ्च भर्तारो शाङ्करेण वरेण च ॥

बलदेवः पुष्पमधु पूतं पिबति नित्यशः । चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः ॥

सुभद्राञ्च ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने ।

कन्यकां मातुलानाञ्च दाक्षिणात्यः परिग्रहात् ॥ ११५ ॥

देशेष्वन्येषु दोषोऽयमित्याह कमलोद्भवः ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे बाणानिरुद्धसंवादे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

षोड़शाधिकशततमोऽध्यायः

बाणानिरुद्धसंवादवर्णनम् ।

बाण उवाच ।

अनिरुद्ध बुधोऽसि त्वं त्वयोक्तं सत्यमेव च । शम्भुना चैवमुक्तञ्च सर्वबुद्धं स्वचेतसा ॥

त्वयोक्तं शङ्करवरात् पञ्चानां स्वामिनां प्रिया ।

द्रौपदी च महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

शंवरेण हृता पूर्वं तव माता कथं रती । देवैरपि कथं दत्ता देवास्तेन जिताः कथम् ॥

अनिरुद्ध उवाच ।

एकदा रघुनाथश्च सीतया लक्ष्मणेन च । स्नातः सरसि तत्रस्थो रम्ये पञ्चवटीतटे ॥४॥

उवाच सीतां हेमन्ते जलं सुस्वादु निर्मलम् ।

तथान्नं व्यञ्जनं रम्यं सर्वं वस्तु सुशीतलम् ॥ ५ ॥

फलावचयनञ्चक्रे सीतायै प्रददौ मुदा । ततो ददौ लक्ष्मणाय पश्चाद्भुङ्क्ते स्वयं प्रभुः ॥

लक्ष्मणस्तद् गृहीत्वा च नैव भुङ्क्ते फलं जलम् ।

मेघनादवधार्थञ्च सीतोद्धारणकारणात् ॥ ७ ॥

निद्रां न याति नो भुङ्क्ते वर्षाणाञ्च चतुर्दश ।

य एवं पुरुषो योगी तद्वध्यो रावणात्मजः ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं द्रष्टुं कमललोचनम् । वह्निस्तत्र समायातो द्विजरूपी कृपानिधिः ॥

भविष्यत् कथयामास श्रुतिकीटपरं वचः ॥ ९ ॥

वह्निरुवाच ।

शृणु राम महाभाग सीतासङ्गोपनं कुरु । सप्ताहाभ्यन्तरे चैव रावणो दुष्टराक्षसः ॥

दुर्निवार्यः प्राक्तनेन जानकीञ्च हरिष्यति ॥ १० ॥

विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते ।

देवैश्चतुर्भिः कथितं न च दैवात् परं वरम् ॥ ११ ॥

श्रीराम उवाच ।

सीतां गृहीत्वा त्वं गच्छ छायात्रैव तु तिष्ठतु । कलत्रवर्जनं कर्म सर्वेषाञ्च जुगुप्सितम्

सीतां गृहीत्वा प्रययौ रुदन्तीञ्च हुताशनः । सीतया सदृशीछायायातस्थौ रामसन्निधौ

सा च छाया हृता पूर्वं रावणेनावलीलया । समुद्दधार तां रामो निहत्य तं सबान्धवम्

वह्नौ परीक्षाकाले च छाया वह्नौ विवेश या ।

अग्निश्छायाञ्च संरक्ष्य ददौ रामाय जानकीम् ॥ १५ ॥

रामस्ताञ्च गृहीत्वा च प्रययौ स्वाश्रमं मुदा । छाया तस्थौ वह्निपार्श्वे हृदयेन विदूयता

सा च छाया तपश्चक्रे नारायणसरोवरे । तपश्चकार दिव्यञ्च शतवर्षञ्च शूलिनः ॥१७॥

वरं वृणुष्व भद्रे त्वमुवाच शङ्करश्च ताम् । उवाच सा शिवं व्यग्रा भर्तृदुःखेन दुःखिता

पतिं देहि पञ्चधा सा वरं वव्रे त्रिलोचनम् । सर्वसम्पत्प्रदस्तुष्टस्तस्यै शर्वो वरं ददौ

श्रीमहादेव उवाच ।

साध्वि त्वं पञ्चधा ब्रूहि पतिं देहीति व्याकुला ।

पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव ॥ २० ॥

ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राश्चाधुना पञ्च पाण्डवाः ।

सा च छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥ २१ ॥

कृते युगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा । द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी ॥

वैष्णवी कृष्णभक्ताच तेनकृष्णा प्रकीर्तिता । स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणांसाचपश्चाद्भविष्यति

राजा ददौ फाल्गुनाय कन्यायाञ्च स्वयंवरे ।

पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाधुना ॥ २४ ॥

तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह।
शम्भोर्वरेण पूर्वञ्च परत्र मातुराज्ञया ॥ २५ ॥
द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः।
चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः ॥ २६ ॥

शङ्करेणाभिसंशप्ता सा मात्रा भर्त्सितेन च। भर्ता ते भस्मसाद्भूतो हरकोपानलेन च हे रतित्वं महाशप्ता दैत्यग्रस्ता भवाधुना। विजित्यदेवान् सेन्द्रांश्च शंवरस्त्वां हरिष्यति पुनरुक्तं वरं प्रादात्सतीत्वं ते न यास्यति। छायां दत्त्वा तिष्ठ गेहे यावज्जीवति ते पतिः इति ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्। देवानां गुप्तचरितं शृणु दैत्येन्द्र साम्प्रतम् ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महावलः। कुम्भाण्डभ्राता वलवान् वाणसेनापतीश्वरः ॥ निर्भर्त्स्य वाणसमरे शस्त्रपाणिर्महारथः। श्रीकृष्णपौत्रं शूलञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निवत् ॥ अर्धचन्द्रेण तच्छूलं चिच्छेद कामपुत्रकः। शक्तिं चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्य्यसमप्रभाम् ॥ वैष्णवास्त्रेण चिच्छेद तां शक्तिं कामपुत्रकः। नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि प्रणम्य शेते निर्भीतो मदनस्य सुतो बली। ऊर्ध्वमस्त्रञ्च वभ्राम शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥ प्रलीनमस्त्रमाकाशे विश्वसंहारकारणम्। अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्वाच महानसिम् प्रवभज्ञ भद्ररथं जघानाश्वांश्च सारथिम्। जघान तं सुभद्रञ्च लीलया रणमूर्धनि ॥३७॥ हते सुभद्रे वाणश्च महावलपराक्रमः। बाणानां शतकञ्चापि चिक्षेप रणमूर्धनि ॥३८॥

कामात्मजोऽग्निवाणेन वाणौघं प्रददाह सः।
वाणश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम् ॥ ३६ ॥
दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सवीजं मन्त्रपूर्वकम्।
ब्रह्मास्त्रेणैव सहसा संजहाराबलीलया ॥ ४० ॥

बाणः पाशुपतं क्षेप्तुं समारेभे च कोपतः। निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन शम्भुना तथा ॥ तद् दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं धनुर्बाणौघसंयुतम्। मुमोच जृम्भणं युद्धे शीघ्रं तञ्च महारथम् जड़ो वभूव बाणश्च निश्चेष्टो रणमूर्धनि। पुनश्चिक्षेप निद्रास्त्रं निद्रितं तं चकार सः ॥

वाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्।

वाणं हन्तुं समुद्यन्तं वारयामास कार्त्तिकः ॥ ४४ ॥
स्कन्दश्च शतवाणैश्च वारयामास लीलया । अनिरुद्धं महाभागं वलवन्तं धनुर्धरम् ॥
अनिरुद्धश्च सहसा तया शक्त्या दुरन्तया । वभञ्जकार्त्तिकरथं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥
गदया कार्त्तिकः क्रुद्धोऽप्यनिरुद्धरथं मुदा । वभञ्ज लीलया तत्र क्षणेन रणमूर्धनि ॥
अनिरुद्धोऽर्धचन्द्रेण क्षुरधारेण लीलया । चिच्छेद कार्त्तिकधनुर्भल्लास्त्रेण नियोजितम्
जघान कार्तिकस्तञ्च गदया च दुरन्तया । गदां जग्राह तद्धस्ताज्जवेन मदनात्मजः ॥
शूलं गृहीत्वा स्कन्दश्च तमेव हन्तुमुद्यतम् । अनिरुद्धश्च कोपेन प्रेरयामास दूरतः ॥५०॥
कार्तिकः पुनरागत्य गृहीत्वा कामपुत्रकम् । गृहीत्वा च करेणैव पातयामास भूतले ॥
अनिरुद्धो गृहीत्वासिं समुत्तस्थौ महावलः । तयोर्विरोधं दूरञ्च प्रचकार गणेश्वरः ॥
कार्तिकः प्रययौ गेहमुपागेहं स्मरात्मजः । सर्वं निवेदितुं शम्भुं प्रययौ स गणेश्वरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
वाणयुद्धे षोड़शाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

शिवलम्बोदरसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा नत्वा महेश्वरम् ।
सर्वं विज्ञापयामास क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥
वाणानिरुद्धयोर्युद्धं सुभद्रनिधनं तथा । स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धमनिरुद्धस्य विक्रमम् ॥२॥
गणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य भगवान् भवः । उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुगुप्तं वेदसम्मतम्

श्रीमहादेव उवाच ।

गणेश्वर महाभाग श्रूयतां वचनं मम । हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥४॥

असंख्यविश्वसङ्घञ्च सर्वं कृष्णात्मजं सुतम्।
कृष्णं जानीहि यत् कार्य्यं कारणानाञ्च कारणम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं जगत् सर्वं गणेश्वर। निबोध सत्यं कृष्णञ्च भगवन्तं सनातनम् ॥
गोलोके द्विभुजं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। शिशुरूपं गोपवेशं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥७
गोपीभिर्गोपनिकरैः सहितं कामधेनुभिः। पुण्ये वृन्दावने रम्ये सुन्दरे रासमण्डले ॥
चरन्तं मुरलीहस्तं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्। शतभृ(शृ)ङ्गे च शैलेशे वटमूले निराकुले ॥ ९॥
गोष्ठे भाण्डीरनिकटे निर्मले विरजातटे। नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा ॥१०॥
यथा नवं घनौघञ्च सौदामिन्या विराजितम्।
आविर्भावश्च तेषां वै गोलोके रासमण्डले ॥ ११ ॥
तावन्तो गोकुले रम्ये पुण्ये वृन्दावने वने।
सर्वे चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ १२ ॥
परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात् स्वविस्मृतः।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः ॥ १३ ॥
मया प्रस्थापितः स्कन्दो महायुद्धे सुदारुणे। मृतो बाणश्च संग्रामे तेन स्कन्देनरक्षितः
स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धे समत्वं तु गणेश्वर। अष्टौ च भैरवाः सर्वे रुद्राश्चैकादशैव ते ॥
अष्टौ च वसवश्चैते देवाः शक्रादयस्तथा। तथैव द्वादशादित्याः सर्वे दैत्येश्वरास्तथा
देवानामग्रणीः स्कन्दो बाणश्च सगणस्तथा।
सर्वे ते चानिरुद्धञ्च संग्रामे जेतुमक्षमाः ॥ १७ ॥
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्मा प्रद्युम्नः काम एव च। बलदेवः स्वयं शेषः कृष्णश्च प्रकृतेः परः ॥
एतत्ते कथितं सर्वं बाणं रक्ष गणेश्वर। भवान् शुभस्वरूपश्च विघ्नखण्डनकारकः ॥
आराद्यायास्यति हरिर्गृहीत्वा च सुदर्शनम्। अव्यर्थमस्त्रप्रवरं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२०

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
बाणयुद्धे शिवलम्बोदरसंवादे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।

———

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

वाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशं वोधयित्वा तु शम्भुरभ्यन्तरं ययौ । तत्र सिंहासने रम्ये दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥१
भैरवी भद्रकाली च उग्रचण्डा च कोटरी । ताः समुत्थाय सहसा प्रणेमुर्जगदीश्वरम्
तत्रायया गणेशश्च कार्तिकेयश्च वीर्यवान् । वाणश्च वीरभद्रश्च स्वयं नन्दी सुनन्दकः

महाकालो महामन्त्री ह्यथाष्टौ भैरवास्तथा ।
सिद्धेन्द्राश्चापि योगीन्द्रा रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मणिभद्रः समाययौ ।
सिंहद्वारे स्वयं द्वारी तमीश्वरमुवाच सः ॥ ५ ॥

मणिभद्र उवाच ।

असंख्यानि च सैन्यानि यादवानां महेश्वर । वलदेवश्च प्रद्युम्नःसाम्बश्च सात्यकिस्तथा
राजा महोग्रसेनश्च भीमश्च स्वयमर्जुनः । अक्रूरश्चोद्धवश्चैव जयन्तः शक्रनन्दनः ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथेन्द्रे सुमनोहरे । विधेर्विधाता भगवान् श्रीकृष्णः परमेश्वरः ॥८॥
सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितः श्वेतचामरैः । कन्दर्प कोटिलीलाभो वनमालाविभूषितः ॥
दधार चक्रमतुलं कोटिसूर्यसमप्रभम् । गदां कौमोदकीं शूलमव्यर्थं सन्निधाय च ॥१०
रथमध्ये महाशङ्खं विश्वसंहारकारणम् । महारथानां लक्षैश्च रथानाञ्च त्रिकोटिभिः ॥११

त्रिकोटिभिर्गजेन्द्राणां मल्लानाञ्च त्रिकोटिभिः ।
शतकोटिभिरश्वानां चर्मिणां तच्चतुर्गुणैः ॥ १२ ॥

खड्गिनां तत्सप्तगुणैर्द्विगुणैस्तद्धनुष्मताम् । एभिः सार्धञ्च त्वरितमाययौ शोभितंपुरम्
परितो वेष्टयामास लङ्कां दाशरथिर्यथा । सहस्रतालमानाञ्च ज्वलदग्निशिखोज्ज्वलाम्
ऊर्ध्वे च परिखायुक्तां दुर्लङ्घ्यामसुरैः सुरैः । स्वर्गगङ्गाम्बुराशीनां समूहैर्घृष्टिभिस्तथा

पक्षीन्द्रो गरुड़ः साक्षान्निर्वाणञ्च चकार सः। मणीन्द्रसारनिर्माणं प्राकाराभ्रंलिहं पुरम्
वभञ्ज लक्षं मल्लानां वलदेवश्च लाङ्गलैः। उद्यानानां त्रिलक्षञ्च प्राकारोत्पाटनं प्रभोः॥
प्रविवेश महाद्वारं द्वारपालान्निहत्य च। एवं श्रुत्वा महादेवश्चोवाच सुरसंसदि॥
पार्वतीं भद्रकालीञ्च स्कन्दं गणपतिं तथा। अष्टौ च भैरवांश्चैव रुद्रांश्च वीरभद्रकम्

महाकालं नन्दिनञ्च सर्वान् सेनापतीन्नव॥ १९॥

श्रीमहादेव उवाच।

गोलोकनाथो भगवांश्चक्रपाणिः समागतः।
विश्वौघं भङ्क्तुमीशो यः क्षणेन नगरञ्च किम्॥ २०॥

सर्वोपायैश्च सर्वे ते वाणं रक्षन्तु यत्नतः। वाणो गच्छतु संग्रामं स्मृत्वा लम्बोदरंपरम्
वाणस्य दक्षिणे स्कन्दः पुरतश्च गणेश्वरः। वामे च भैरवा रुद्राः स्वयं नन्दी महारथः
महाकालो वीरभद्रो ये चान्ये सैनिकास्तथा। ऊर्ध्वे दुर्गा भद्रकाली ह्युग्रचण्डाचकोटरी
वाणं रक्ष महाभागे दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। कृष्णस्य भवती शक्तिस्तेन नारायणी स्मृता
विष्णुमाये जगन्मातः सर्वमङ्गलमंगले। अव्यर्थाच्चक्रसाराच्च रक्ष वाणं सुदर्शनात्॥

वाणप्रियो मे सर्वेभ्यो गणेशात् कार्तिकादपि।
वाणमूर्ध्नि करं धेहि पादाब्जरजसा सह॥ २६॥

शिवस्य वचनं श्रुत्वा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। प्रहस्योवाच मधुरं याथार्थ्यं समयोचितम्

पार्वत्युवाच।

मणिरत्नादिकं यद्यन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्। सर्वस्वं कन्यकामूषां रत्नभूषणभूषिताम्॥
रत्नभूषणभूषाढ्यमनिरुद्धं परं वरम्। पुरस्कृत्य देहि वाण कृष्णाय परमात्मने॥ २९॥

राज्यं कुरुष्व निर्विघ्नं किं युद्धमात्मना सह।
यस्मिन् गते गताः प्राणाः स जीवश्चेन्द्रियैः सह॥ ३०॥
शक्तिश्चाहं मनो ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः।
सद्यः पतति देहश्च शिवं त्यक्त्वा शवो भवेत्॥ ३१॥
को वा तिष्ठति संग्रामे चक्रस्य तेजसा शिव।

नात्माकाशो वाणयुद्धे युद्धं किं स्वात्मना सह ॥ ३२ ॥

परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः । नित्यः सत्यो हि कृष्णश्च परिपूर्णतमः प्रभुः

गणेशः कार्तिकेयश्च भवानपि तयोः परः ।

किङ्करेषु प्रियो वाणो न हि कृष्णात् परः प्रियः ॥ ३४ ॥

वैकुण्ठेऽहं महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका स्वयम् ।

शिवाऽहं शिवलोकेऽपि ब्रह्मलोके सरस्वती ॥ ३५ ॥

अहं निहत्य दैत्यांश्च दक्षकन्या सती पुरा । त्वन्निन्दयात्यक्तदेहा सा चाहंशैलकन्यका

रक्तबीजस्य युद्धे च काली च मूर्त्तिभेदतः । सावित्री वेदमाताहं सीता जनककन्यका

रुक्मिणी द्वारवत्याञ्च भारते भीष्मकन्यका । सुदाम्नः शापतो दैवाद् वृषभानुसुताधुना

धर्मपत्नी च कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने । भगवन्तञ्च सर्वज्ञं त्वां शिवञ्च सनातनम्

किंवाहं कथयामीति कर्त्तव्यं समयोचितम् ॥ ४० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वाणयुद्धेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनविंशाधिकशततमोऽध्यायः

शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

पार्वती वचनं श्रुत्वा गणेशश्च शिवः स्वयम् ।

कार्तिकेयश्च काली च तां प्रशंसां चकार ह ॥ १ ॥

उवाच भगवान् शम्भुर्जगतां मातरं परम् । ज्योतिःस्वरूपां परमां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्

श्रीमहादेव उवाच ।

त्वया यदुक्तं देवेशि सर्ववेदोक्तमीप्सितम् । अयुक्तमुपहास्यञ्च समरं परमात्मना ॥३॥

वाणो ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम् ।
सामञ्जस्यं यशस्यञ्च शुभदं सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

न ददाति यदा वाणो हिरण्यकशिपोःप्रजाः । युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्करः
वाणो गच्छतु सन्नाही रणशास्त्रविशारदः । पश्चाच्चागमनं कुर्मो वयं सान्नाहिकाःशिवे
उवाचवाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह । दुर्गा तं बोधयामास न बुबोध च सद्वचः
एतस्मिन्नन्तरे ताञ्च सभामध्ये मनोरमाम् । आजगाम महाधर्मो बलिश्च वैष्णवाग्रणीः
रथं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारुह्य महाबलः । प्रततैः सप्तभिर्दैत्यैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥ ६॥
दैत्येन्द्राणां सप्तलक्षैरावृतः परमास्त्रवित् । अवरुह्य रथात्तूर्णं गणेशञ्च शिवां शिवम् ॥
प्रणम्य कार्तिकेयञ्च स उवास च संसदि । उतस्थुरारात्तं दृष्ट्वा ते सर्वे शङ्करं विना ॥
तमुवाच महादेवः सम्भाष्य प्रियभाषणम् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

भगवंश्चतुरस्त्वञ्च प्रदाता सर्व सम्पदाम् । अयं हि परमो लाभो वैष्णनां समागमः ॥
तीर्थान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः । सर्वेषामाश्रमाणाञ्च पूजितो ब्राह्मणःशुचिः
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः ।
न हि पूतञ्च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात् परम् ॥ १४ ॥
स पूतः पवनादेव स पूतश्च हुताशनात् । तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो बिभेति च ततःसुरः
न हि पापानि तद्देहे वह्नौ शुष्कतृणादिवत् ॥ १६ ॥

बलिरुवाच ।

कथं स्तौषि जगन्नाथ भृत्यस्तव महेश्वर । प्रदत्तं परमैश्वर्य्यं त्वयानाथ सुदुर्लभम् ॥
अधुनास्थापितो दैवात्सर्गाधःसुतलेऽपि च । इन्द्रायदत्तमैश्वर्य्यं मत्तो भक्तात् सुरेश्वर
त्वया वामनरूपेण सर्वरूपोऽसि सर्वतः । बाणं बोधयभद्रञ्च मम प्राणात्मजं परम् ॥
आत्मनासह युद्धञ्च देवेष्वपिविगर्हितम् । इत्युक्त्वा च शिवं नत्वा शिरसा प्रणनामतम्
सामवेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिविह्वलः ॥
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरः । शुक्रेण दत्तं मन्त्रञ्च जप्त्वा चैकादशाक्षरम्

बलिरुवाच ।

अदित्या प्रार्थनेनैव मात्रा देव्या व्रतेन च । पुरा वामनरूपेण त्वयाहं वञ्चितः प्रभो ॥

सम्पद्रूपा महालक्ष्मीर्दत्ता भक्ताय भक्तितः ।

शक्राय मत्तो भक्ताय भ्रात्र पुण्यवते ध्रुवम् ॥ २४ ॥

अधुना मम पुत्रोऽयं बाणः शङ्करकिङ्करः । आराच्च रक्षितः सोऽपि तेनैव भक्तबन्धुना ॥

परिपुष्टश्च पार्वत्या यथा मात्रा सुतस्तथा । गृहीतवांश्च तत्कन्यां बलेन युवतीं सतीम् ॥

समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्त्तिकेनापि वारितः ।

आगतोऽसि पुनर्हन्तुं पौत्रस्य दमने क्षमम् ॥ २७ ॥

सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः श्रुतौ श्रुतः । करोषि जगतां नाथ कथमेवं व्यतिक्रमम् ॥

त्वया च निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि ।

सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्य्यकोटिनिभं परम् ॥ २९ ॥

केषां सुराणामस्त्रेण तदेवमनिवारितम् । यथा सुदर्शनश्चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम् ॥३०॥

तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः । तथा भवांस्तथा कृष्णो विधातावेधसामपि

विष्णुः सत्वगुणाधारः शिवः सत्वाश्रयस्तथा ।

स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्त्ता पितामहः ॥ ३२ ॥

कालाग्निरुद्रो भगवान् विश्वसंहारकारकः । तमसश्चाश्रयः सोऽपि रुद्राणांप्रवरोमहान्

स एव शङ्करांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः । भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा ॥

सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुस्वरूपिणः ।

मानसश्च स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३५ ॥

प्रवरा सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी । स्वात्मनः प्रतिबिम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु ॥

जीवःस्वकर्मणां भोगीस्वयं साक्षीभवांस्तथा । सर्वेयान्ति त्वयि गते नरदेवेयथानुगाः

सत्यः पतति देहश्च शवोऽस्पृश्यस्त्वया विना ।

बुद्धाः सन्तो न जानन्ति वञ्चितास्तव मायया ॥ ३८ ॥

त्वांभजन्त्येव ये सन्तो मायामेतांतरन्ति ते । त्रिगुणाप्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी

परा नारायणीशानी तव माया दुरत्यया। त्वदंशाः प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः

सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान् विराट्।

स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा॥ ४१॥

स एव वासुर्भगवान् तस्य देवो भवान्परः। वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्भिःप्रकीर्तितः

त्वमेव कलया सूर्य्यस्त्वमेव कलया शशी। कलया च हुताशश्च कलया पवनः स्वयम्

कलया वरुणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा। कलया त्वं महेन्द्रश्च कलया धर्म एव च॥४४॥

त्वमेव कलया शेष ईशानो नैर्ऋतिस्तथा। मुनयो मनवश्चैव ग्रहाश्च फलदायकाः॥

कलाकलायाश्चांशेन सर्वे जीवाश्चराचराः।

त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनस्तथा॥ ४६॥

तत्त्वाद्भिन्ते भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरे। नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम्॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं द्विभुजं मुरलीधरम्॥४८॥

मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यभूषितम्। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरं वलयान्वितम्॥४९॥

मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्। रत्नसाराङ्गुलीयञ्च क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्॥५०॥

कोटिकन्दर्पलीलाभं शरत्कमललोचनम्। शरत्पूर्णेन्दुनिन्दास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥

वीक्षितं सस्मिताभिश्च गोपीनां कोटिकोटिभिः।

वयस्यैः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः॥ ५२॥

गोपबालकवेशञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम्। ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्

सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः प्रणतंस्तुतम्। वेदानिर्वचनीयञ्च परस्वेच्छामयं विभुम्

स्थूलात्स्थूलतमंरूपं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम्। सत्यं नित्यं प्रशस्तञ्च प्रकृतेः परमीश्वरम्

निर्लिप्तञ्च निरीहञ्च भगवन्तं सनातनम्।

एवं ध्यात्वा च ते पूताः स्निग्धदूर्वाक्षताचलम्॥ ५६॥

पादपद्मार्चिते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः। वेदाःस्तोतुमशक्तास्त्वामशक्ता सा सरस्वती

शेषःस्तोतुमशक्तश्च स्वयम्भुः शम्भुरीश्वरम्। गणेशश्च दिनेशश्च महेन्द्रश्चन्द्र एव च॥

स्तोतुं कालं धनेशश्च किमन्ये जड़बुद्धयः।

गुणातीतमनीहञ्च किं स्तौमि निर्गुणं परम् ॥ ५९ ॥

अपण्डितोऽयमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हति । बलेस्तु वचनं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः ॥

परिपूर्णतमः श्रीमान् भक्तश्च भक्तवत्सलः ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्वत्स गृहं गच्छ सुतलं रक्षितं मया । मद्वरेण प्रसादेन त्वत्पुत्रोऽप्यजरामरः ॥

दर्पहानिं करिष्यामि तस्य मूर्खस्य दर्पिणः ।

प्रह्लादाय वरो दत्तो भक्ताय च तपस्विने ॥ ६२ ॥

ममावध्यश्च त्वद्वंशश्चेति प्रीतेन चेतसा । तव पुत्राय दास्यामि ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम् ॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीप्सितम् । पुरा सनत्कुमाराय प्रदत्तं ब्रह्मणा तथा
सिद्धाश्रमे पुण्यतमे प्रशस्ते सूर्य्यपर्वणि । गौतमाय प्रदत्तञ्च गौर्य्या मन्दाकिनीतटे ॥
शङ्करेण च शिष्याय भक्ताय च दयालुना । ब्रह्मणे च मया दत्तं शिवाय विरजातटे ॥
भृगवे च पुरा दत्तं कुमारेण च धीमता । त्वञ्चदास्यसिबाणाय बाणस्तोष्यत्यनेनमाम्
इदं स्तोत्रं महापुण्यमुपदिश्य गुरोर्मुखात् । वृतस्य पूजितस्यापि वस्त्रभूषणचन्दनैः ॥

सुस्नातो यः पठेन्नित्यं पूजाकाले च भक्तितः ।

कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६९ ॥

विपदां खण्डनं स्तोत्रं कारणं सर्वसम्पदाम् ।

वारणं दुःखशोकानां भवाब्धिघोरतारणम् ॥ ७० ॥

खण्डनं गर्भवासानां जरामृत्युहरं परम् । बन्धनानाञ्च रोगाणां खण्डनं भक्तमण्डनम्
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । व्रताव्रतेषु सर्वेषु तपस्वी च तपःसु च ॥७२॥
स सत्यं सर्वदानानां फलञ्च लभतेध्रुवम् । लक्षधास्तोत्रपाठेन स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्

सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद् यदि ।

इह लोके देवतुल्योऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ७४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे बाणयुद्धे बलिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रं नामोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

विंशाधिकशततमोऽध्यायः

बाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धवेन बलेन च । दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रिणं शुभम् ॥
शिवो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । कार्तिकेयो भद्रकाली चोग्रचण्डा च कोटरी
आगत्यनत्वा दूतश्चगणेशञ्च शिवंशिवाम् । मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाचयथोचितम्

दूत उवाच ।

बाणमाह्वयते कृष्णः संग्रामार्थं महेश्वर । किंवानिरुद्धमूषाञ्च गृहीत्वा शरणं व्रज ॥४॥
रणे निमन्त्रितो यो हि न याति भयकातरः ।
परत्र नरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह ॥ ५ ॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा सभामध्ये यथोचितम् । उवाच पार्वती देवी स्वयं शङ्करसन्निधौ

पार्वत्युवाच ।

गच्छ बाण महाभाग गृहीत्वा वद कन्यकाम् ।
सर्वस्वं यौतुकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज ॥ ७ ॥
सर्वेषामीश्वरं बीजं दातारं सर्वसम्पदाम् । वरं वरेण्यं शरणं कृपालुं भक्तवत्सलम् ॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः । प्रशशंसुः सभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा ॥
कोपाविष्टश्च बाणोऽयमुत्तस्थौसहसाऽसुरः । सान्नाहिकोधनुष्पाणिःप्रणम्य शङ्करंययौ
सर्वैर्निषिध्यमानश्च कम्पितो रक्तलोचनः ।
सान्नाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोट्या च महाबलः ॥ ११ ॥
कुम्भाण्डःकूपकर्णश्च निकुम्भःकुम्भ एवच । सेनापतीश्वराश्चैते ययुः सान्नाहिकास्तथा
उन्मत्तभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा । असिताङ्गो भैरवश्च रुरुभैरव एव च ॥ १३ ॥
महाभैरवसंज्ञश्च कालभैरव एव च । प्रचण्डभैरवश्चैव क्रोधभैरव एव च ॥ १४ ॥

प्रययुः शक्तिभिः सार्द्धं सर्वे सान्नाहिकाश्च ते ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् रुद्रैः सान्नाहिको ययौ ॥ १५

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ।
चण्डेश्वरी च चामुण्डा चण्डी चण्डकपालिका ॥ १६ ॥

अष्टौ च नायिकाः सर्वाः प्रययुः खर्परान्विताः । कोटरीरत्नयानस्था शोणितग्रामदेवता
प्रययौ सा प्रफुल्लास्या खड्गखर्परधारिणी । चन्द्राणीवैष्णवी शान्ता ब्रह्माणीब्रह्मवादिनी
कौमारी नारसिंही च वाराही विकटाकृतिः । माहेश्वरी महामाया भैरवी भीमरूपिणी
अष्टौ च शक्तयः सर्वा रथस्थाः प्रययुर्मुदा । रत्नेन्द्रसारयानस्थाः प्रययुर्भद्रकालिका॥२०॥
रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा । शूलशक्तिगदाहस्ता खड्गखर्परधारिणी ॥२१
प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः । स्कन्दश्च शिखियानस्थः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः

एवञ्च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्वतीं विना ॥ २२ ॥
एभिर्युक्तं महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम् ।
प्रचक्रे चक्रपाणिश्च सम्भाषाञ्च यथोचिताम् ॥ २३ ॥

वाणःशङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्यपार्वतीश्वरम् । धनुर्दधार सगुणं दिव्यास्त्रेणनियोजितम्

वाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परवीरहा ।
निषिध्यमानस्तैः सर्वैः सन्नाही प्रययौ मुदा ॥ २५ ॥

वाणश्चिक्षेपदिव्यास्त्रमाञ्छलं नामनारद । अव्यर्थं ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डाभंसुतीक्ष्णकम्

दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात् किञ्चिन्नम्रो बभूव ह ।
किंवा न दग्धः प्रययौ नभोमध्यं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

वह्निं चिक्षेप वाणञ्च सात्यकिर्वारुणेन च । प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणञ्च चकारसः
चिक्षेप पावनं वाणःप्रचण्डघोरसुल्वणम् । चिच्छेदसात्यकिश्चैव पार्वतास्त्रेण लीलया

नारायणास्त्रं चिक्षेप वाणश्च रणमूर्धनि ।
सात्यकिर्दण्डवद् भूमौ पपातार्जुनशिक्षया ॥ ३० ॥

माहेश्वरं प्रचिक्षेप वाणः शस्त्रविदां वरः । सात्यकिर्वैष्णवास्त्रेण प्रचिच्छेदावलीलया

ब्रह्मास्त्रञ्चापि चिक्षेप वाणश्च रणमूर्धनि। क्षणंचकार निर्वाणं ब्रह्मास्त्रेणच सात्यकिः
नागास्त्रञ्चापि चिक्षेप वाणो रणविशारदः। सात्यकिर्गरुड़ेनैव सञ्जहार क्षणेन च॥
जग्राह शूलमव्यर्थं शङ्करस्य सुदारुणम्। तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गां गले माल्यं वभूव ह॥

जग्राह धनुषा वाणो वाणं पाशुपतं तथा।
वाणं स वाणं जृम्भञ्च सात्यकिश्च चकार ह॥ ३५॥

वाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयोमहावलः। अर्धचन्द्रञ्च चिक्षेप कामश्चिच्छेदलीलया
गदांचिक्षेप च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम्। वैष्णवास्त्रेणकामश्च निर्वाणञ्च चकारसः
नारायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः। पपातदण्डवद्भूमौ प्रद्युम्नःकृष्णशिक्षया

स्कन्दः शक्तिञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निसमप्रभाम्।
कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणञ्च चकार ताम्॥ ३९॥

ब्रह्मास्त्रञ्च प्रचिक्षेप कार्तिको रणमूर्धनि। ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणञ्च चकार सः
जग्राह कार्तिकः कोपाद्दिव्यं पाशुपतं तथा। निद्रास्त्रेणापि मदनो निद्रितञ्च चकार तम्
कार्तिकंनिद्रितं दृष्ट्वा वाणञ्च जृम्भितंतथा। कोपात्कामञ्च सरथं जग्राहभद्रकालिका
क्रोड़े कृत्वा च वाणञ्च स्कन्दञ्च जगतां प्रसूः। रणस्थलाच्च प्रययौ यत्रैव पार्वतीसती

कार्तिकं वोधयामास वाणं सुस्थं चकार सा।
सहसा सरथः कामो नासारन्ध्रेण वर्मना॥ ४४॥

वहिर्वभूव सन्त्रस्तो प्रययौ च रणस्थलम्। दृष्ट्वा कामञ्च सरथं जहसुर्यादवास्तदा

सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः।
अथ वाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः॥ ४६॥

कार्तिकेयश्च भगवान् युद्धाय पुनरागतः। वाणः पञ्चशरांश्चैव चिक्षेप रणमूर्धनि॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद वलदेवो महावलः। रथं वभञ्ज वाणस्य लाङ्गलेन च लाङ्गली॥४८॥
जघान सूतमश्वांश्च मुषलेनावलीलया। छेत्तुमुद्यमं कुर्वन्तं हालिनञ्च महावलम्॥४९॥
कालाग्निरुद्रो भगवान् वारयामास लीलया। रथं कालाग्निरुद्रस्य वभञ्ज लाङ्गली रुषा
हलेन सूतमश्वांश्च जघान रणमूर्धनि। कालाग्निरुद्रः कोपेन चिक्षेप ज्वरमुल्वणम्॥५१॥

बभूवुर्यादवाः सर्वे ज्वराक्रान्ता हरिं विना ।
तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः ससर्ज वैष्णवं ज्वरम् ॥ ५२ ॥
तं चिक्षेप ज्वरं हन्तुं माहेशं रणमूर्धनि । बभूव ज्वरयोर्युद्धं मुहूर्तमतिदारुणम् ॥५३॥
वैष्णवज्वरनिष्क्रान्तो रणमूर्ध्नि पपात सः । परं बभूव निश्चेष्टस्तुष्टाव माधवं पुनः ॥

ज्वर उवाच ।

प्राणान् रक्ष जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह । त्वमात्मा पुरुषः पूर्णः सर्वत्र समता तव ॥
ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा सञ्जहार स्वकं ज्वरम् ।
माहेश्वरो ज्वरो भीतो रणादेव हि निर्ययौ ॥ ५६ ॥
बाणश्च पुनरागत्य बाणानाञ्च सहस्रकम् । चिक्षेप मन्त्रपूतञ्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥
फाल्गुनः शरजालेन वारयामास लीलया । चिक्षेप शक्तिबाणञ्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥
चिच्छेद लीलया ताञ्च सव्यसाची महाबलः । स जग्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम् ॥
अत्यर्थमतिघोरञ्च विश्वसंहारकारकम् । तद्दृष्ट्वा चक्रपाणिश्च चक्रं चिक्षेप दारुणम् ॥
हस्तानाञ्च सहस्रञ्च स पाशुपतमुल्बणम् । चिच्छेद रणमध्ये च पपाताचलसिंहवत् ॥
शस्त्रं पाशुपतञ्चैव ययौ पशुपतेः करम् । अव्यर्थं दारुणंलोके प्रलयाग्नि शिखोपमम् ॥
बाणरक्तसमूहेन बभूव च महानदः । बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः ॥ ६३
तत्राजगाम भगवान् महादेवो जगद्गुरुः ।
रुरोदागत्य मोहेन बाणं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ६४ ॥
शिवाश्रुपतनेनैव संबभूव सरोवरम् । चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः ॥ ६५ ॥
बाणं गृहीत्वा प्रययौ यत्र देवो जनार्दनः । चक्रे पद्मार्चिते पादपद्मे बाणसमर्पणम् ॥
तुष्टाव जगतां नाथं शक्तीशं चन्द्रशेखरम् । बलिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च ॥
हरिर्मृत्युञ्जयं ज्ञानं ददौबाणाय धीमते । करपद्मं ददौ गात्रे तं चकाराजरामरम् ॥६८॥
बाणस्तोत्रेण तुष्टाव भक्त्या बलिकृतेन च । वरां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम् ॥
प्रददौ हरये भक्त्या तत्रैव देवसंसदि । गजेन्द्राणां पञ्चलक्षमश्वानाञ्च चतुर्गुणम् ॥ ७०
दासीनाञ्च सहस्रञ्च रत्नभूषणभूषितम् । सहस्रं कामधेनूनां वत्सयुक्तञ्च सर्वदम् ॥ ७१

माणिक्यानाञ्च मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम् ।
मणीन्द्राणां हीरकाणां शतलक्षं मनोहरम् ॥ ७२ ॥
जलभाजनपात्राणि सुवर्णनिर्मितानि च । सहस्राणि ददौ तस्मै भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥
वराणि सूक्ष्मवस्त्राणि वह्निशुद्धांशुकानि च ।
ददौ बाणश्च सर्वाणि स्वभक्त्या शङ्कराज्ञया ॥ ७४ ॥
ताम्बूलानाञ्च चूर्णानां पूर्णपात्राणि नारद ।
सहस्राणि ददौभक्त्या वराणि विविधानि च ॥ ७५ ॥
कन्यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि । रुरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः
कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा वेदोक्तञ्च सुभाषितम् । शङ्करानुमतेनैव प्रययौ द्वारकापुरीम् ॥
मत्वा कन्यां नवोढ़ां तां बाणस्यापि महात्मनः ।
रुक्मिण्यै प्रददौ शीघ्रं देवक्यै च हरिः स्वयम् ॥ ७८ ॥
महोत्सवं मङ्गलञ्च कारयामास यत्नतः । ब्राह्मणान् भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
बाणयुद्धं नाम विंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

शृगालोपाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथकृष्णः सुधर्मायां निवसन् सगणस्तथा । तत्राजगाम विप्रश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा
आगत्य दृष्ट्वा तुष्टाव भक्त्या च पुरुषोत्तमम् । उवाच मधुरं शान्तो भीतोविनयपूर्वकम्

ब्राह्मण उवाच ।

शृगालो वासुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वरः । तमुवाच स यद्वाक्यं सावधानं निशामय

श्रृगाल उवाच ।

वैकुण्ठे वासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः । लक्ष्मीपतिश्च जगतां धाता धातुश्च पालकः
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहञ्च भारावतारणाय च । भुवो भारतवर्षञ्च तदर्थं गमने मम ॥ ५ ॥
वसुदेवसुतः कृष्णः क्षत्रियश्चाप्यहङ्कृतः । जनं जनेन निर्जित्य दुर्बलं बलिना सह ।
बोधयित्वा महाधूर्तो घातयामास भूपतीन् ॥ ६ ॥
दुर्योधनं जरासन्धं भूपमन्यञ्च दुर्बलम् । भीमेन घातयामास बलिनाल्पेन भूतले ॥ ७ ॥
द्रोणं भीष्मञ्च कर्णञ्च यं यमन्यञ्च भूतले । बलीयसार्जुनेनैव घातयामास लीलया ॥ ८
यं यमन्यं दुर्बलञ्च प्रसिद्धमप्रसिद्धकम् । प्रसिद्धेन बलवता घातयामास लीलया ॥ ९
शिशुपालं दन्तवक्रं कंसञ्च चिररोगिणम् । मत्पुत्रं नरकञ्चैव दुर्बलंनरकं मुरम् ॥ १०
स्वयं जघान सङ्केताच्छलेन सहसा बत । न धर्मयुद्धेकपटी स च बालो ह्यधार्मिकः ॥
जघान पूतनां कुब्जां स्त्रीघाती वस्त्रहेतुना । जघान रजकं शिष्टमशिष्टञ्च प्रतारकः ॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम् ।
मधुञ्च कैटभञ्चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः ॥ १३ ॥
अहमेव स्वयंब्रह्मा ह्यहमेव स्वयं शिवः । अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टापहारकः ॥ १४
अंशेन कलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा । स्वयं नारायणोऽहञ्च निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
लज्जया कृपया चैव मित्रबुद्ध्या क्षमाकृता । यद्गतं तद्गतं भद्र युद्धं कुरु मया सह ॥
श्रृणोमि दूतद्वारेण ह्यतीवोच्चैरहङ्कृतम् । उचितं दमनं तस्याप्युन्नतानां निपातनम् ॥
राज्ञश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोधुना ।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गृहीत्वाऽहं चतुर्भुजः ॥ १८ ॥
द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयम् ।
युद्धं कुरु यदीच्छास्ति मा माञ्च शरणं व्रज ॥ १९ ॥
यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः । भस्मीभूतं करिष्यामि द्वारकाञ्च क्षणेन च
सबलञ्च सपुत्रं त्वां सगणञ्च सबान्धवम् । क्षणेन दग्धुं शक्तोऽहमसहायश्च लीलया ॥
तपस्विनञ्च वृद्धञ्च जित्वा युद्धे च शङ्करम् । शक्रं भग्नाशं जित्वा च रोगिणंब्रह्मशापतः

अस्तोऽसिवीरमात्मानं मन्यमानस्त्वमेव च । स्त्रीजितो हि वृथार्थश्च पारिजातस्यहेतुना
लम्पटो योनिलुब्धश्च राधाधीनश्च गोकुले । अधुना किङ्करसमः सत्यादीनाञ्चयोषिताम्
इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तूष्णीम्भूय स्थितो मुने । श्रीकृष्णः सगणः श्रुत्वा भृशमुच्चैर्जहासस:

भोजयित्वा च सम्पूज्य ब्राह्मणञ्च चतुर्विधम् ।
निनाय रजनीं दुःखात् वाक्शल्यमानसज्वरात् ॥ २६ ॥

प्रभाते रथमारुह्य सगणः सत्वरं मुदा । लीलामात्रेण प्रययौ शृगालो नृपतिर्यथा ॥२७

श्रुत्वा शृगालो वार्त्तां तां कृत्रिमश्च चतुर्भुजः ।
आजगाम हरेः स्थानं युद्धाय सगणः स्वयम् ॥ २८ ॥
कृष्णश्चक्रे च सम्भाषां मित्रबुद्ध्या च लौकिकीम् ।
आश्लेषं मधुरालापं स्निग्धनेत्रश्च सस्मितः ॥ २९ ॥
राजा निमन्त्रणं चक्रे कृष्णो न स्वीचकार तत् ।
उवाच कृष्णभीतश्च त्यक्त्वा दम्भञ्च दर्शनात् ॥ ३० ॥

शृगाल उवाच ।

चक्रेण मच्छिरं छित्वा सुशीघ्रं द्वारकां व्रज ।
पापः पततु देहोऽयमनित्यो नश्वरस्तथा ॥ ३१ ॥

अहं सुभद्रो ते द्वारि जयश्च विजयो यथा । सर्वं जानासि सर्वज्ञ मा विलम्बं कुरु प्रभो
लक्ष्मीशापेन भ्रष्टोऽहं कालः पूर्णो बभूव मे । शतवर्षेण शापान्ते यास्यामि भवनं तव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

पूर्वं मां मित्र प्रहर पश्चाद्युद्धं करोम्यहम् ।
सर्वं जानामि वैकुण्ठं गच्छ वत्स यथासुखम् ॥ ३४ ॥
शृगालो दशबाणांश्च चिक्षेप माधवं प्रति ।
ते प्रणम्य ययुः शीघ्रमाकाशं कालरूपिणः ॥ ३५ ॥
गदां चिक्षेप राजा स प्रलयाग्निशिखोपमाम् ।
कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च ॥ ३६ ॥

धनुश्चिक्षेप खड्गञ्च कालरूपं सुदारुणम् । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च ॥
दृष्ट्वा निरस्तं राजानमित्युवाच कृपानिधिः । गृहं गत्वा सुतीक्ष्णञ्च मित्रास्त्रमानयेति च ॥

शृगाल उवाच ।

नात्माकाशोऽस्त्रविद्धश्च किं युद्धमात्मना सह ।
मामुद्धर भवाब्धेश्च धरोद्धारणकारण ॥ ३९ ॥
भवाब्धिविषमं नाथ विषयञ्च विषाधिकम् ।
छिन्धि मे निगड़ं मायां मोहजालं स्वकर्मणः ॥ ४० ॥

कर्मणामीश्वरस्त्वञ्च विधाता धातुरेव च । दाता शुभफलानाञ्च प्रदाता सर्वसम्पदाम्
कारणं प्राक्तनानाञ्च तेषां च खण्डने क्षमः । यामि गेहञ्च वैकुण्ठं तवैव द्वारसत्तमम् ॥
त्यक्त्वा च नश्वरं देहं प्राकृतं पाञ्चभौतिकम् । मित्रस्य स्तवनं श्रुत्वा वचनं च सुधोपमम्
रुरोद समरे तत्र कृपया च कृपानिधिः । बभूव तत्र सहसा कृष्णनेत्राश्रुबिन्दुना ॥४४॥
दिव्यं बिन्दुसरो नाम तीर्थानां प्रवरं परम् । तत्तोयस्पर्शमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥
सप्तजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कथमेतादृशी बुद्धिर्मित्र ते निर्मलं मनः । दूतद्वारा कथञ्चोक्तं निष्ठुरं दारुणं वचः ॥४६

नारद उवाच ।

गणेशपूजनाख्यानं पुराणेषु च दुर्लभम् ।
श्रुतं तद् ब्रह्मणो वक्त्रात् सामान्यञ्च समासतः ॥ ४७ ॥

महिमानं गणपतेः सर्वपूज्येश्वरस्यच । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः
सिद्धाश्रमे महापूजा दिवौकोभिः कृता पुरा । राधामाधवयोस्तत्र पुनः संमीलनं पुरा
अतीते वर्षशतके श्रीदाम्नः शापमोक्षणे । आदौ चकार पूजाञ्च सा च राधा कथं मुने
स्थितेषु च सुरेन्द्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु । नागेन्द्रे च स्थिते शेषे नागेषु च महत्सु च
राजेन्द्रेषु च भूमौ च बलिष्ठेष्वसुरेषु च । गन्धर्वेषु च रक्षःसु चान्येषु बलवत्सु च ॥
विस्तरेण महाभाग तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥ ५२ ॥

श्रीनारायण उवाच।

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या मान्या पुण्यवती सती।
तत्र भारतवर्षञ्च कर्मणां फलदं शुभम्॥ ५३॥
धन्यं यशस्यं पूज्यञ्च पुण्यक्षेत्रे च भारते।
सिद्धाश्रमं महापुण्यक्षेत्रं मोक्षप्रदं शुभम्॥ ५४॥

सनत्कुमारो भगवान् तत्र सिद्धो बभूव ह। स्वयं विधाता तत्रैव तप्त्वा सिद्धो बभूव ह
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः। शतक्रतुर्महेन्द्रश्च तत्र कृत्वा बभूव ह
तेन सिद्धाश्रमं नाम सर्वेषामपि दुर्लभम्। अधिष्ठानं गणेशस्य तत्रैव सततं मुने॥५७॥
अमूल्यरत्ननिर्माणगणेशप्रतिमां शुभाम्। वैशाखीपूर्णमायाञ्च पूजां कुर्वन्ति देवताः॥

नागाश्च मानवाश्चैव दैत्या गन्धर्वराक्षसाः।
सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयः॥ ५९॥

तत्राजगाम शम्भुश्च पार्वत्या सह शङ्करः। सगणः कार्त्तिकेयश्च स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः
तत्राजगाम शेषश्च नागेन्द्रैः सह सत्वरम्। तत्राजग्मुः सुराः सर्वे मनवो मुनयस्तथा॥
आजग्मुस्ते नृपाः सर्वे पूजार्थं हृष्टमानसाः।आययौ भगवान् कृष्णो द्वारकावासिभिःसह

आजगाम तथा नन्दः सार्द्धं गोकुलवासिभिः।
गोपीनां त्रिंशत्कोटीभिर्गोलोकवासिभिः सह॥ ६३॥
गजेन्द्रकोटितुल्याभिर्बलिष्ठाभिः सहालिभिः।
आययौ सुन्दरी राधा कृष्णप्राणाधिदेवता॥ ६४॥

रासेश्वरी सुरभिश्च शतवर्षे गते सती। सुस्नात्वा सुदती शुद्धा धृत्वा धौते च वाससी

संयता सा निराहारा गत्वा च मणिमण्डपम्।
सुप्रक्षालितपादाब्जा कान्ता भुवनपावनी॥ ६६॥

श्रीकृष्णप्राप्तिकामश्च सुसङ्कल्पं विधाय च। गङ्गोदकेन हेरम्बं स्नापयामास भक्तितः॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं चकार शुक्लपुष्पतः। माता चतुर्णां वेदानां वसोश्च,जगतामपि॥
बुद्धिरूपा भगवती ज्ञानिनां जननी परा। ध्यानात्मकं स्वपुत्रं तं परध्यानं चकार सा॥

खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तमनन्तकम् ॥७०॥
सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुम्। ध्यानं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः ॥
सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम्। ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम् ॥७२॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम्। भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारञ्च कर्मिणाम्
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम्। ध्यायेद्ध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि दत्त्वा पुष्पं पुनः सती।
सर्वाङ्गशोधनं न्यासं वेदोक्तञ्च चकार सा ॥ ७५ ॥

पुनश्च ध्यात्वा ध्यानेन तेनैव शुभदायिना। ददौ पुष्पं पादपद्मे राधा लम्बोदरस्य च ॥
सप्ततीर्थोदकेनैव शीतेन वासितेन च। ददौ पाद्यं पादपद्मे तैः पद्मादिभिरर्चिते ॥७७॥
दूर्वाक्षतैः शुक्लपुष्पैः सुगन्धिचन्दनोदकैः। अर्घ्यं ददौ तच्छिरसि स्वयं गोलोकवासिनी

सचन्दनस्निग्धमाल्यं पारिजातस्य सुन्दरम्।
ददौ गले गणेशस्य स्वयं रासेश्वरी मुदा ॥ ७९ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम्। सर्वाङ्गे प्रददौ तस्य वृन्दावनविनोदिनी
सुगन्धिशुक्लपुष्पञ्च सुगन्धिचन्दनार्चितम्। ददौ तस्य पदाम्भोजे महापद्मालया सती
सुगन्धियुक्तं धूपञ्च पूतैर्वस्तुभिरन्वितम्। ददौ कृष्णप्रिया तस्मै जगतामीश्वराय च ॥
दीपं घृतप्रदीप्तञ्च ध्वान्तविध्वंसकारणम्। ददौ तस्मै सुरेशाय परमाद्या सनातनी ॥
नैवेद्यं विविधं रम्यं सुस्वादुं सुमनोहरम्। चोष्यं चर्व्यं लेह्यपेयं सुधातुल्यं चतुर्विधम्

फलानि च सुपक्वानि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च।
मधुराणि च मूलानि ग्राम्यारण्यानि नारद ॥ ८५ ॥
तानि त्वानन्त्यसंख्यानि तिलानां लड्डुकानि च ॥
सुपक्वानि सुरम्याणि स्वादूनि सुरसानि च ॥ ८६ ॥
यवगोधूमचूर्णानां पक्वानि पिष्टकानि च।
घृताक्तानि च रम्याणि शर्करासहितानि च ॥ ८७ ॥
स्वस्तिकानां लड्डुकानि स्थूलानि सुन्दराणि च।

अष्टद्रव्यञ्च विविधमक्षतं शर्करान्वितम् ॥ ८८ ॥
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां मधुकुल्यां मनोहराम् ।
गुडस्य दध्नः कुल्याञ्च पायसानां तथैव च ॥ ८९ ॥
पिष्टकानां स्वस्तिकानां रम्भाणां राशिरेव च ।
मिष्टव्यञ्जनयुक्तानि शाल्यन्नानि शुभानि च ॥ ९० ॥

ददौ तस्मै सुरेशाय कृष्णप्राणाधिदेवता । अमूल्यरत्ननिर्माणं रम्यं सिंहासनं वरम् ॥ ९१
ददौ विघ्नविनाशाय विरजातटवासिनी । सूक्ष्मवस्त्रयुगं रम्यममूल्यं वह्निशुद्धकम् ॥ ९२
ददौ शैलात्मजायैव शतशृङ्गनिवासिनी । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ९३
सर्वसंपत्प्रदात्रे च वृषभानुसुता ददौ । सप्ततीर्थोदकं शुद्धं सुपूतञ्च सुवासितम् ॥ ९४
पानार्थञ्च जलं तस्मै ददौ गोपीश्वरी मुदा । अमूल्यं दुर्लभञ्चैव विशुद्धं श्वेतचामरम् ॥
ददौ तस्मै परेशाय मूलप्रकृतिरीश्वरी । अमूल्यरत्ननिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥ ९६॥
परिष्कृतं सुतल्पञ्च पुष्पचन्दनचर्चितम् । सितसूक्ष्मांशुकेनैव परितश्च परिष्कृतम् ॥ ९७॥

ददौ शिवात्मजायैव कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
दत्त्वा च कामधेनुञ्च सवत्सां वाञ्छितप्रदाम् ॥ ९८ ॥

कृत्वाऽतीवपरीहारं वृन्दा पुष्पाञ्जलिं ददौ । दिव्येनानेन मनुना सवीजेनोज्ज्वलेन च ॥
ददौ षोडशोपचारं कालिन्दीकुलवासिनी । ओं गङ्गौ गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा
इत्येवमेव मन्त्रञ्च गणेशं षोडशाक्षरम् । सा जजाप सहस्रञ्च परं कल्पतरुं वरम् ॥
तुष्टाव परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकन्धरा । साश्रुनेत्रा पुलकिता स्तोत्रेण कौतुकेन च

श्रीराधिकोवाच ।

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम् । विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम् ।
सुरपद्मदिनेशञ्च गणेशं मङ्गलायनम् ॥ १०४ ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम् ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते ॥ १०५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे गणेशपूजनंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

———

द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाम्प्रतिगणेशोक्तिः ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधा संपूज्य विधिना स्तुत्वा लम्बोदरं सती ।
अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददौ ॥ १ ॥
राधायाः स्तवनं श्रुत्वा पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च ।
उवाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम् ॥ २ ॥

श्रीगणेश उवाच ।

तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे । ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥
यत्पादपद्ममतुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम् । सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः ॥
जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः ।
तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा ॥ ५ ॥
वामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः । महालक्ष्मीर्जगन्माता तव वामाङ्गनिर्मिता
वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी । वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ७ ॥
सर्वाःप्रकृतिका मातः सृष्ट्याञ्चेत्त्वद्विभूतयः ।
विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी ॥ ८ ॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि । आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं परात्परम्
सएव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया । व्यतिक्रमेमहापापीब्रह्महत्यांलभेद्ध्रुवम्

जगतां भवती माता परमात्मा पिताहरिः । पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्यापरात्परा ॥

भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम् ।

पुण्यक्षेत्रे महामूढ़ो यदि निन्दन्ति राधिकाम् ॥ १२ ॥

वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च । पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१३॥

गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।

स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिःस्याद् युवयोर्यतः ॥ १४ ॥

निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवी जन्मनि जन्मनि । भक्तिर्भवति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे

निषेव्य मन्त्रं शम्भोश्च जगतां कारणस्यच । तदा प्राप्नोतियुवयोःपादपद्मं सुदुर्लभम् ॥

युवयोः पादपद्मञ्च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान् । क्षणार्द्धं षोड़शांशञ्च न हि मुञ्चति दैवतः

भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृहित्वा वैष्णवादपि । स्तवं वा कवचं वापि कर्ममूलनिकृन्तनम्

यो जपेत् परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते । पुरुषाणां सहस्रञ्च स्वात्मनासार्द्धमुद्धरेत्

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कवचं धारयेद् योहि विष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम्

यद्दत्तं वस्तु मे मातस्तत् सर्वं सार्थकं कुरु ।

देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ २१ ॥

देवे देयानि दानानि देवे देया च दक्षिणा । तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तदानन्त्याय कल्पते

ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम् ।

विप्रभुक्तञ्च यद्द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः ॥ २३ ॥

विप्रांश्च भोजयामास तत् सर्वं राधिका सती । बभूव तत्क्षणादेव प्रीतोलम्बोदरो मुने

एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।

आययुर्वटमूलञ्च देवपूजार्थमेव च ॥ २५ ॥

तत्रगत्वा शिवचरो देवान् देवीरुवाच सः । श्रीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च भयभीतश्च रक्षकः

रक्षक उवाच ।

गणेशं पूजयामास सर्वादौ च शुभक्षणे । वृषभानुसुता राधा प्रकृत्य स्वस्तिवाचनम्

सहितासा बलवती गोपीत्रिशतकोटिभिः । वारितोऽहं बलिष्ठाभिर्युष्मांश्चकथयामितत्

सर्वादौ पूजयेद् यो हि सोऽनन्तं फलमालभेत् ।
मध्ये मध्यविधं पुण्यं शेषे स्वल्पमिति स्मृतम् २९ ॥
देवेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवस्त्रीषु स्थितासु च । गोपीभिश्च सह तया राधाया पूजितःपरः॥
दूतवाक्यं समाकर्ण्य जहसुः सर्वदेवताः । मुनयो मनवश्चैव राजानो देवयोषितः ॥
रुक्मिण्याद्या रमण्यश्च या देव्यो विस्मयं ययुः । सरस्वतीचसावित्री पार्वतीपरमेश्वरी
रोहिणी च सतीसंज्ञा स्वाहाद्या देवयोषितः ।
मुदिताः प्रययुः सर्वा मुनिपत्न्यः पतिव्रताः ॥ ३३ ॥
मुनयो मनवः सर्वे देवाश्चापि नरास्तथा । श्रीकृष्णः सगणैः सार्द्धं ये चान्येप्रययुर्मुदा
तेसर्वे विविधैर्द्रव्यैः पूजां चक्रुः शुभक्षणे । बलिष्ठा दुर्बलाश्चैवं क्रमेण च पृथक् पृथक्
लड्डुकानाञ्च राशीनां शतकोटिर्बभूव ह । शर्कराणां तदर्द्धञ्च स्वस्तिकानां तथैव च ॥
अन्नानां भव्यवस्तूनां शतकोटिर्बभूव ह । असंख्यानि फलान्येव स्वादूनिमधुराणि च
मधुकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या घृतस्य च । बभूवुः शतसंख्याश्च त्रैलोक्यानाञ्च पूजने
पूजां कृत्वा तु ते सर्वे समूषुश्च सुखासने । पार्वती परमा प्रीत्या राधास्थानंसमाययौ
सा राधा पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय जवेन च ।
यथायोग्याञ्च सम्भाषां चकार सादरं मुदा ॥ ४० ॥
आश्लेषणं चुम्बनञ्च बभूव च परस्परम् । उवाच मधुरं दुर्गा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥

पार्वत्युवाच ।

किंवा प्रश्नं करिष्यामि त्वां राधां मङ्गलालयाम् ।
गता ते विरहज्वाला श्रीदाम्नः शापमोक्षणे ॥ ४२ ॥
सततं मन्मनः प्राणास्त्वय्येव मयि ते तथा । नह्येवमावयोर्भेदः शक्तिपुरुषयोस्तथा ॥
येत्वां निन्दन्ति मद्भक्तास्त्वद्भक्ताश्चापिमामपि । कुम्भीपाकेचपच्यन्तेयावच्चन्द्रदिवाकरौ
राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः । वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरकेचिरम् ॥ ४५
यान्ति शूकरयोनिञ्च पितृभिः शतकैः सह । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा ॥
त्वयैव पूजितः पुत्रो न मया च गणेश्वरः । सर्वादौ सर्वपूज्योऽयं यथा तव तथामम ॥

यावज्जीवनपर्य्यन्तं न विच्छेदो भविष्यति ।
राधामाधवयोर्देवि दुग्धधावल्ययोर्यथा ॥ ४८ ॥

सिद्धाश्रमे महातीर्थे पुण्यक्षेत्रे च भारते । निर्विघ्नं लभ गोविन्दं सम्पूज्यविघ्नखण्डनम्
रासेश्वरी त्वं रसिकाश्रीकृष्णोरसिकेश्वरः । विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमोगुणवान्भवेत्
श्रीदाम्नः शापनिर्मुक्ता शतवर्षान्तरे सती । कुरुष्व मद्वरेणाद्य कृष्णेन सह सङ्गमः ॥ ५१
ममाज्ञया दुर्लभया सुवेशं कुरु सुन्दरि । सुदुर्लभः कामिनीनां सत्पुंसा सह सङ्गमः ॥
चक्रुः सुवेशं राधायाः प्रियालयश्चशिवाज्ञया । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्
पुरतो रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ । राधाया दक्षिणे हस्ते क्रीड़ापद्मं मनोहरम्
ददौ पद्ममुखी पादपद्मयुग्मेऽप्यलक्तकम् । प्रददौ सुन्दरी गोपी सिन्दूरं सुन्दरं वरम् ॥
चन्दनेन समायुक्तं सीमन्ताधस्थलोज्ज्वलम् । सुचारुकबरीं रम्यां चकार मालती सती
मनोहरां मुनीनाञ्च मालतीमाल्यभूषिताम् ॥ ५६

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च चारुचन्दनपत्रकम् । स्तनयुग्मे सुकाठिने चकार चन्दनं सती ॥ ५७
चारुचम्पकपुष्पाणां मालां गन्धमनोहराम् । मालावती ददौ तस्यै प्रफुल्लांनवमल्लिकाम्
रतीषु रसिका गोपी रत्नभूषणभूषिताम् ।
तां चकारातिरसिकां वरां रतिरसोत्सुकाम् ॥ ५६ ॥

शरत्पद्मदलाभञ्च लोचनं कज्जलोज्वलम् । कृत्वा ददौ सुललितं वस्त्रञ्च ललिता सती
महेन्द्रेण प्रदत्तञ्च पारिजातप्रसूनकम् । सुगन्धियुक्तं तस्याश्च पारिजातं करे ददौ ॥ ६१
सुशीलं मधुरोक्तञ्च भर्तुः पार्श्वे यथोचितम् । शिक्षांचकारनीतिञ्चसुशीलागोपिकासती
स्त्रीणाञ्च षोड़शकलां विपत्तौ विस्मृतांतयोः। स्मरणं कारयामास राधामाताकलावती
शृङ्गारविषयोक्तञ्च वचनञ्च सुधोपमम् । स्मरणं कारयामास भगिनी च सुधामुखी ॥
कमलानांचम्पकानां दले चन्दनचर्चिते । चकार रतितल्पञ्च कमला चाशु कोमलम् ॥
चारुचम्पकपुष्पञ्च कृष्णार्थं पुटकस्थितम् । चकार चन्दनाक्तञ्च स्वयं चम्पावती सती
पुष्पं केलिकदम्बानां स्तवकञ्च मनोहरम् । कदम्बमालां कृष्णार्थं विद्यमानं चकार सा
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । कृष्णप्रिया च कृष्णार्थं चकारवासितं जलम्

एतस्मिन्नन्तरे सर्वमाश्रमं सजलस्थलम् । साक्षाद्गोरोचनाभञ्च ददृशुर्मुनयः सुराः ॥ ६९
ते सव विस्मयं गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमीश्वरम् । उवाच भगवांस्तांश्च सर्वज्ञः सर्वकारणः

श्रीभगवानुवाच ।

अभिशप्ता च श्रीदाम्ना भ्रष्टशोभा च राधिका ।
सर्वं ज्ञानं विसस्मार मद्विच्छेदज्वरातुरा ॥ ७१ ॥

विमुक्ते वर्षशतके ज्ञानं सस्मार सा सती । सिद्धाश्रमञ्च पीताभं रासेश्वर्य्याश्च तेजसा ॥
परमाह्लादकं तेजश्चन्द्रकोटिसमप्रभम् । सुखदृश्यञ्च सुखदं चक्षुषा प्राणिनामपि ॥७३॥
तच्छ्रुत्वा परमाश्चर्य्यं मुनयो मनवस्तथा । देव्यश्च सर्वदेवास्ते ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥

जवेन गत्वा तत्स्थानं भक्तिनम्रात्मकन्धराः ।
सर्वे जनास्ते ददृशुस्त्रैलोक्यस्थाश्च राधिकाम् ॥ ७५ ॥

श्वेतचम्पकवर्णाभामतुलां सुमनोहराम् । मोहिनीं मानसानाञ्च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥

सुकेशीं सुन्दरीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् ।
नितम्बकठिनश्रोणीस्तनयुग्मोन्नताननाम् ॥ ७७ ॥
कोटीन्दुनिन्दितास्यां तां सस्मितां सुदतीं सतीम् ।
कज्जलोज्ज्वलरूपाञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥ ७८ ॥
महालक्ष्मीं बीजरूपां परमाद्यां सनातनीम् ।
परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥ ७९ ॥

स्तुताञ्च पूजिताञ्चैव पराञ्च परमात्मने । ब्रह्मस्वरूपां निर्लिप्तां नित्यरूपाञ्च निर्गुणाम् ॥
विश्वानुरोधात् प्रकृतिं भक्तानुग्रहविग्रहाम् । सत्यस्वरूपां शुद्धाञ्च पूतां पतितपावनीम्

सुतीर्थपूतां सत्कीर्तिं विधात्रीं वेधसामपि ।
महाप्रियाञ्च महतीं महाविष्णोश्च मातरम् ॥ ८२ ॥
रासेश्वरेश्वरीं रम्यां रसिकां रसिकेश्वरीम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां स्वेच्छारूपां शुभालयाम् ॥ ८३ ॥
गोपीभिः सप्तभिः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः ।

चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेविताम् ॥ ८४ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणोच्चैर्विभूषिताम्। चारुकुण्डलयुग्मेन श्रुतिगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ॥

सुनासां गजमुक्ताढ्यां खगेन्द्रचञ्चुनिन्दिताम्।

कुङ्कुमालक्तकस्तूरीस्निग्धचन्दनचर्चिताम् ॥ ८६ ॥

दधानां सुकपोलाञ्च कोमलाङ्गीं सुकामुकीम्।

गजेन्द्रगामिनीं रामां कमनीयां सुकामिनीम् ॥ ८७ ॥

कामास्त्रजयरूपाञ्च कामकाम्यलयां वराम्। क्रीडाकमलमम्लानं पारिजातप्रसूनकम ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दर्पणोज्ज्वलम्। नानारत्नविचित्राढ्यरत्नसिंहासनस्थिताम्

पादपद्मार्चितं कृष्णपादपद्मञ्च मङ्गलम्। हृत्पद्मे ध्यायमानाञ्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥

कर्मणा मनसा वाचा स्वप्ने जागरणेऽपि च।

तत्प्रीतिं प्रेमसौभाग्यं स्मरन्तीं नित्यनूतनम् ॥ ९१ ॥

भावानुरक्तसंसिक्तां शुद्धभक्तां पतिव्रताम्।

धन्यां मान्यां गौरवर्णां शश्वद्वक्षःस्थलस्थिताम् ॥ ९२ ॥

प्रियासु प्रियभक्तेषु सुप्रियां प्रियवादिनीम्। कृष्णवामाङ्गसम्भूतामभेदां गुणरूपयोः ॥

गोलोकवासिनीं देवदेवीं सर्वोपरिस्थिताम्। वृषभानुसुताख्यां तां पुण्यक्षेत्रे च भारते

गोपीश्वरीं मुक्तिरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम्।

ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्तवन्दिताम् ॥ ९५ ॥

ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्यानतत्पराः।

इहैव जीवन्मुक्तास्ते परत्र कृष्णपार्षदाः ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वा ब्रह्मा च सर्वादौ तुष्टाव परमेश्वरीम्। स्वयं विधाता जगतां मातरं वेधसामपि ॥

ब्रह्मोवाच।

षष्टिर्वर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि। पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥९८॥

त्वत्पादपद्ममधुरमधुलुब्धेन चेतसा। मधुव्रतेन लोभेन प्रेरितेन मया सति ॥ ९९ ॥

तथापि न मया लब्धं त्वत्पादपदमीप्सितम्।

न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता वागशरीरिणी ॥ १०० ॥

वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने । सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मञ्च द्रक्ष्यसि ॥

राधामाधवयोर्दास्यं कुतो विषयिणस्तव । निवर्त्तस्व महाभाग परमेतत् सुदुर्लभम् ॥

इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः । परिपूर्णं तदधुना वाञ्छितं तपसः फलम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

पादपद्मार्चितं पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम् ।

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद् ब्रह्मादयः सुराः ॥ १०४ ॥

मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः । द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि

अनन्त उवाच ।

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते । अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालञ्च सन्ततम्

अस्माकं स्तवने यस्य भ्रूभङ्गश्च सुदुर्लभम् । तवैव भर्त्सने भीतश्चावयोरन्तरं हरिः ॥

एवं देवाश्च देव्यश्च चान्ये ये च समागताः । प्रणतास्तुष्टुवुः सर्वे मुनिमन्वादयस्तथा

लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योषितः । मलीमसञ्च चक्रुस्ताः श्वासेन रत्नदर्पणम्

मृततुल्या सत्यभामा निराहारा कृशोदरी । मनसोऽप्यभिमानञ्च सर्वं तत्याज नारद ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे सिद्धाश्रमतीर्थयात्राप्रसङ्गे गणेशपूजनेब्रह्मेशशेषादिकृतं राधिकास्तोत्रं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

वसुदेवम्प्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः ।

नारद उवाच ।

गणेशपूजनादेव राधास्तोत्रात् परं विभो । बभूव किं रहस्यं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीभगवानुवाच ।

गणेशपूजने तीर्थे ये देवाश्च समाययुः । मुनयश्चापि योगीन्द्रा वसन्तो वटमूलके ॥२॥

वसुदेवो देवकी च परमादरपूर्वकम् । पप्रच्छ शम्भुं ब्रह्माणमनन्तं मुनिपुङ्गवान् ॥ ३ ॥
भवे भवाब्धितरणमावयोरुत्तमा गतिः । शीघ्रं ब्रूत महाभागा दीनयोर्दीनबान्धवाः ॥
भवाब्धितरणे तर्य्यां तत्र यूयञ्च नाविकाः ।
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ५ ॥
ब्रह्मरूपाणि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च । तपांसि नानादानानि विप्रदेवार्चनानि च ॥
चिरं पुनन्ति सर्वाणि दर्शनादेव वैष्णवाः । सताञ्च विष्णुभक्तानां रजसां स्पर्शमात्रतः
पूतानां पादपद्मानां सद्यःपूता वसुन्धरा । तीर्थानि च पवित्राणि समुद्राः पर्वतास्तथा
सुरा दर्शनमिच्छन्ति पातकेन्धनपातकम् । सोऽज्ञानी नैव बुबुधे ज्ञानञ्च ज्ञानिना सह
परमं स्वादुरूपञ्च दधि दुग्धं रसं यथा । यथा कृष्णस्य तातोऽहं सङ्गी सुचिरमेव च
तथैव देवकी माता ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरो ! ॥ १० ॥
वसुदेववचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । चतुर्णामपि वेदानामुवाच जनको गुरुः ॥

महादेव उवाच ।

सन्निकर्षोज्ञानिनाञ्चाप्यनादरणकारणम् । यान्ति गङ्गाम्भसापूतास्तीर्थान्यन्यानिसिद्धये
वासुदेवस्य तातोऽयं वसुदेवश्च पण्डितः ।
ज्ञानिनः कश्यपस्यांशो वसोस्तातस्य चात्मनः ॥ १३ ॥
पृच्छति ज्ञानमस्मांश्च कृष्णाज्ञान् पुत्रबुद्धितः ।
अहो दुर्गा महामाया ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ १४ ॥
विष्णुमायादुराराध्या न साध्या जगतामपि । वयञ्च मोहिताःशश्वद्वेदानां जनकास्तथा
ब्रह्माविष्णुं परीक्षेत मोहितस्तस्य मायया । ध्यायते यत्पदाम्भोजं तपसा जीवनावधि
इन्द्रेषु दशलक्षेष्वप्यधिकाष्टशतेषु च । पातेषु ब्रह्मणःपाते निमेषो माधवस्य च ॥१७॥
सह तेनेन्द्रयुद्धञ्च पारिजातस्य हेतुना । पारिजाततरुं दत्वा मायाशक्रश्च रक्षितः ॥
यज्ज्ञानमज्ञिनामेव तत्त्वं बा विषयात्मकम् । न हि किञ्चित्तदज्ञानं तत्साध्यानांसदैवहि
प्राणिनामात्मनो ज्ञानमस्माकं ज्ञानमस्ति च । तदूर्ध्वं तत्समंनैव कृष्णं पृच्छशुभाशुभम्
ब्रह्मणश्च चतुर्यामं कल्पं कल्पविदो विदुः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयो महामुनिः

अष्टौ नवति शक्रेषु पातेषु तपनं मुनेः। ततः प्राप्तं हरेर्दास्यं मुनिना तपसः फलात्॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते पतनं लोमशस्य च। दिक्पालानां ग्रहाणाञ्च तदायुश्चिरजीविनाम्
अन्येषामपि देवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। तदेवायुश्च रुद्राणां माञ्च मृत्युञ्जयं विना॥

प्रलये च विधेः पातो शिवलोकेऽप्यहं शिवः।
ब्रह्मभालोद्भवः शम्भुः सर्वादिगर्गभाषणम्॥ २५॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता यथा राधा तथैव च।
तथैव दुर्गा लक्ष्मीश्च सावित्री च सरस्वती॥ २६॥
आदित्योऽप्यदितेः पुत्रः कायव्यूहेन द्वादश।
तथैव च महेन्द्रश्च कायव्यूहाश्चतुर्दश॥ २७॥

तथैव वसवश्चाष्टौ रुद्राश्चैकादशैव ते। मनुपाते चेन्द्रपातो विषयात् पतनं भवेत्॥२८
समायुश्च सर्वेषां निधनं प्रलयेऽपि च। प्रलये दर्शयामास ब्रह्माण्डे च जलप्लुते॥२९

ब्रह्माणञ्च स्वलोकञ्च स्वात्मानं शक्तिभिश्च माम्।
सर्वेषां मूलरूपश्च सर्वेशः कृष्ण एव च॥ ३०॥
भज पुत्रं राजसूये यज्ञेशं यज्ञकारणम्।
विधिवद्दक्षिणां दत्त्वा भवाब्धिं तर यादव॥ ३१॥
मुक्तिस्तेनास्ति निर्वाणं विषयी कश्यपो भवान्।
न ते दास्यं भक्तधनमदितिर्देवकी तथा॥ ३२॥
व्रज सर्गं भोगबीजं स्वस्थानममरालयम्॥ ३३॥

शिवस्य वचनं श्रुत्वा संयतश्च शुभक्षणे। तत्र संभृतसम्भारो राजसूयञ्चकार सः॥३४
वसुदेवस्य हव्यञ्च साक्षाच्च जगृहुः सुराः। यत्र साक्षाच्च यज्ञेशो यज्ञोऽयं दक्षिणासह
पूर्णाहुतिं दत्तवन्तं वसुदेवमुवाच सः। सनत्कुमारो भगवान् वासुदेवाज्ञया मुने॥३६

सनत्कुमार उवाच।

सर्वस्वं दक्षिणां देहि तूर्णं लक्ष्मीपतेः पितः। सार्थकं कुरु कर्मेदं वेदोक्तं वचनं शृणु॥
दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालञ्चेन्न दीयते। मुहूर्त्ते तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणा भवेत्

वासरे च वहिर्भूते भवेत्सापि चतुर्गुणा। त्रिरात्रे समतीते तु षड्गुणा दक्षिणा भवेत्
पक्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते तु चतुर्गुणा। षण्मासेऽप्यधिके न्यूने साहस्रञ्चगुणीतथा
वर्षान्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तश्च यादव। उभौ च नरकं यातः कर्मकर्तृपुरोहितौ॥

वसुदेवश्च तच्छ्रुत्वा सर्वस्वमुत्ससर्ज सः।
अधिकारांश्च साह्लादो वासुदेवाज्ञया तथा॥ ४२॥

अमूल्यानाञ्च रत्नानां दशकोटिमनुत्तमाम्। ददौ गर्गाय सर्वादौ स्वयं लक्ष्मीपतेः पिता

शतकोटिं मणीन्द्राणां स्वर्णानां तच्चतुर्गुणम्।
माणिक्यानाञ्च मुक्तानां हीरकाणां तथैव च॥ ४४॥

रौप्यं प्रवालं परमं स्वर्णपात्राणि यानि च। स्वस्त्रीणां स्ववधूनाञ्चाप्यमूल्यरत्नभूषणम्
श्वेतचामरलक्षञ्च लक्षञ्च रत्नदर्पणम्। कामधेनुगणं सर्वशतकोटिं गजानपि॥ ४६॥
शतकोटिर्गजेन्द्राणामश्वानां तच्चतुर्गुणम्। यद्धनं यादवानाञ्च राज्ञो राजानुमोदनात्
ग्रामाणां शतलक्षञ्च सशस्यं फलितं तरुम्। धान्याचलानां लक्षञ्च शाल्यन्नानां तथैवच

पायसं पिष्टकञ्चैव मिष्टान्नञ्च सुधोपमम्।
स्वस्तिकानां तिलानाञ्च रम्याणि लड्डुकानि च॥ ४९॥

दध्नां मधूनां दुग्धानां गुड़ानां हविषामपि। कुल्यानां शतकं दत्त्वा परिहारं चकार सः

सकर्पूरञ्च ताम्बूलं सुशीतं वासितं जलम्।
सुगन्धिचन्दनञ्चैव पारिजातस्य मालिकाम्॥ ५१॥

आसनानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानिच। रत्ननिर्माणतल्पानि पुष्पाणि च फलानिच
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः। देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणानां मुखैः शुभैः॥
देवाश्च मुनयो रात्रौ स्वरामाभिश्च रेमिरे। प्रभाते प्रययुः सर्वे श्रीकृष्णानुमतेन च॥
यादवा प्रययुः सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम्। अमूल्यरत्नपूर्णाञ्च रुक्मिणीदर्शनेन च॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
दक्षिणाकालनिर्णयंनाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशपूजनं कृत्वा माधवो यादवैः सह । देवैर्मुनिभिरन्यैश्च देवीभिः सह नारद ॥ १ ॥

अंशेन देवो देवीभी रुक्मिण्याद्याभिरेव च ।

प्रययौ द्वारकां रम्यां तस्थौ सिद्धाश्रमे स्वयम् ॥ २ ॥

कृत्वा सुप्रीतिसम्भाषां सार्द्धं गोलोकवासिभिः ।

गोपैः सुहृद्भिर्नन्देन मात्रा गोप्या यशोदया ॥ ३ ॥

उवाच मातरं तातं सुनीतञ्च यथोचितम् । गोपांश्चगोकुलस्थांश्च बन्धुवर्गांश्च साम्प्रतम्

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छ नन्दव्रजं नन्द तातप्राणस्य वल्लभ । मातर्यशोदे त्वमपि परमार्ये यशस्विनी ॥५॥

भुक्त्वा कालावशेषञ्च गच्छ गोकुलमुत्तमम् ।

सालोक्यमुक्तिं दास्यामि सार्द्धं गोकुलवासिभिः ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः पित्रोरनुमतेन च । जगाम राधिकास्थानंनन्दश्च गोकुलंतथा

ददर्श राधां रुचिरां मुक्ताहाराञ्च सस्मिताम् ।

यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ ८ ॥

रत्नोच्चैरासनस्थाञ्च गोपीत्रिशतकोटिभिः ।

आवृतां वेत्रहस्ताभिः सस्मिताभिश्च साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा च दूरतो राधा श्रीकृष्णं प्राणवल्लभा । शिशुवेशं सुवेशञ्च सुन्दरेशञ्च सस्मितम् ॥

नवीनजलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ११ ॥

मयूरपिच्छचूड़ञ्च मालतीमाल्यशोभितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१२॥

क्रीड़ाकमलमम्लानं धृतवन्तं मनोहरम् । मुरलीहस्तविन्यस्तं सुप्रशस्तञ्च दर्पणम् ॥१३॥

जवेन च समुत्थाय गोपीभिः सह सादरम्। प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव परमेश्वरम्

राधिकोवाच।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।
यद् दृष्ट्वा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः ॥ १५ ॥

पञ्च प्राणाश्च स्निग्धाश्च परमात्मा च सुप्रियः। उभयोर्हर्षबीजञ्च दुर्लभं बन्धुदर्शनम्
शोकार्णवे निमग्नाहं प्रदग्धाविरहानलैः। तां दृष्ट्वामृतदृष्ट्या च सुषिक्ताद्य सुशीतला
शिवा शिवप्रदाहञ्च शिवबीजा त्वया सह। शिवस्वरूपा निश्चेष्टाप्यदृष्टा च त्वया विना

त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमान् शुचिः स्वयम्।
सर्वशक्तिस्वरूपा च शिवरूपो गते त्वयि ॥ १६ ॥
स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदारुणः।
यान्त्येव शक्तिभिः प्राणा विच्छेदात् परमात्मनः ॥ २० ॥

इत्युक्त्वाराधिका देवी परमात्मानमीश्वरम्। स्वासने वासयामास कृत्वा पादार्चनंमुदा
रत्नसिंहासने श्रीमानुवास राधाया सह। गोपीभिः सहितः शश्वत्सेवितः श्वेतचामरैः
चन्दना सा ददौ गात्रे सुगन्धिचन्दनं हरेः। सस्मितारत्नमाला सा रत्नमालां गलेददौ
पादपद्मार्चिते पादपद्मे पद्मावती सती। अर्घ्यं ददौ सा सजलं दूर्वापुष्पञ्च चन्दनम् ॥
मालती मालतीमाल्यं चूड़ायाञ्च हरेर्ददौ। चम्पा पुष्पस्य पुटकं ददौ च पार्वती सती ॥
पारिजातञ्च हरये पारिजातं ददौ मुदा। सकर्पूरञ्च ताम्बूलं वासितं शीतलं जलम् ॥

ददौ कदम्बमाला सा कदम्बमालिकां शुभाम्।
क्रीड़ाकमलमम्लानममूल्यं रत्नदर्पणम् ॥ २७ ॥

ददौ हस्ते हरेरेव कमला सा सुकोमला। वरुणेन पुरादत्तं वस्त्रयुग्मञ्च सुन्दरम् ॥२८॥
साक्षाद्गोरोचनाभञ्च सुन्दरो हरये ददौ। मधुपात्रं वधूस्तस्मै मधुरं मधुपूर्णकम् ॥२६॥

सुधापूर्णां सुधापात्रं ददौ भक्त्या सुधामुखी।
चकार पुष्पशय्याञ्च गोपी चन्दनचर्चिताम् ॥ ३० ॥

अम्लानमालतीपुष्पमालाजालविभूषिताम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरे सुमनोहरे ॥ ३१ ॥

मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविभूषिते । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥३२॥
रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिश्च सुदीपिते । धूपितैः सततं धूपैर्नानावस्तुसमन्वितैः ॥ ३३ ॥
कृत्वा शय्यां रतिकरीं ययुर्गोप्यश्चसस्मिताः । दृष्ट्वारहसि तल्पञ्च सुरम्यं सुमनोहरम्

माधवो राधया सार्धं विवेश रतिमन्दिरम् ।

नानाप्रकारहास्यञ्च परिहारं स्मरोचितम् ॥ ३५ ॥

द्वयोर्बभूव तल्पे च मदनातुरयोस्तथा । माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलञ्च सुवासितम्
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च चन्दनं श्यामवक्षसि । चारुचम्पकपुष्पञ्च चूड़ायां प्रददौ सती ॥
सहस्रदलसंसक्तक्रीड़ापद्मं करे ददौ । प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात् प्रददौ रत्नदर्पणम् ।

पारिजातस्य कुसुममम्लानं पुरतो ददौ ॥ ३८ ॥

उवाच मधुरं राधा रहस्यं मधुरं वचः ।

सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्तामनोहरम् ॥ ३९ ॥

श्रीराधिका उवाच ।

निष्फलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गलं मङ्गलालये । सर्वमङ्गलबीजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे ॥ ४० ॥

तथापि कुशलप्रश्नं साम्प्रतं समयोचितम् ।

लौकिको व्यवहारोऽपि वेदेभ्यो बलवांस्तथा ॥ ४१ ॥

कुशलं रुक्मिणीकान्त सत्यभामेश साम्प्रतम् । महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाज्ञया

पारिजाततरुं स्वर्गादुत्पाट्य चामरावतीम् ।

गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम् ॥ ४३ ॥

पुण्यकञ्च कृतन्तेन पारिजातेन सुव्रतम् । त्वामेव साध्यं कान्तञ्च सम्पूर्णे दक्षिणां ददौ

ब्रह्मेशशेषासाध्यस्त्वं तयासाध्यः कृतः कथम् ।

सर्वाभ्यः कामिनीभ्यश्च सत्यभामां बिभर्षि च ॥ ४५ ॥

रुक्मिण्याः प्रेमसौभाग्यमतिरिक्तञ्चगौरवम् । भयंमानञ्च धन्यायां सत्यायां सततंश्रुतम्

सत्यं जाम्बवतीकान्त वद माञ्च सुनिश्चितम् ।

तासु सर्वासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम् ॥ ४७ ॥

शृङ्गारे सर्वभावे वा तासु का रसिका परा।
त्वयि स्निग्धा विदग्धाःका तासु धन्यातिसुव्रता ॥ ४८ ॥
सा स्त्री भावानुरक्ता या भार्यां पाति पतिश्च सः।
प्रेमातिरिक्तं स्त्रीपुंसोस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम् ॥ ४९ ॥
रसिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम् । गुणज्ञं रसिकं शूरं सुशीलं सुरतौसदा
दूराद्धावति पद्मार्थं मधुलोभान्मधुव्रतः। भेकस्तन्न हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत्
यन्त्रीजानाति सङ्गीतरसं यन्त्रञ्च नैव च। दुग्धस्वादंविदग्धश्च न दर्वी नैव च भाजनम्
परिपक्वफलास्वादं जानन्ति भोगिनः सुखम्।
एकत्रावस्थिताः सश्वन्न किञ्चित् फलिनो यथा ॥ ५३ ॥
सुशीतलजलास्वादं विजानन्तितृषालवः । न च वापी न च घटश्चेत् कुत्रावस्थितोयथा
भोगिनो हिविजानन्ति शालिस्वादुरसं परम्।
एकत्रावस्थितश्चेत्तु न क्षेत्रं भाजनं यथा ॥ ५५ ॥
बुबुधे चन्दनाघ्राणं चन्दनार्थी च भोगवित् । न गर्दभो भारवाही न तस्य पात्रिकायथा
यं न जानन्ति वेदाश्च ब्रह्मेशानादयस्तथा।
योगिनो मुनयः सिद्धास्तं किं जानन्ति योषितः ॥ ५७ ॥
सौभाग्यं गौरवं प्रेम दुर्लभं नित्यनूतनम्। योषिताञ्च परं नैव चूर्णीभूतं क्षणेन च॥
अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोत्येव ध्रुवं प्रभो।
आराद्विपत्तिवीजञ्च वैष्णवानां विहंसनम् ॥ ५९ ॥
श्रीदामा च मया शप्तस्त्वद्भक्तो भक्तवत्सलः।
एतादृशी विपत्तिर्मे पुत्र श्रीदामशापतः ॥ ६० ॥
ईश्वरःकस्य वा बन्धुःप्रियो वा विप्रियस्तथा। सततंभक्तिसाध्यश्चयो भक्तश्चतदीश्वरः
वेदाश्च वैदिकाः सन्तः पुराणानि वदन्ति च।
राधाया माधवः साध्यो भगवानिति निष्फलम् ॥ ६२ ॥
जित्वाच सगणंशम्भुं बाणस्यभुजकृन्तनम्। कृत्वाचरुक्मिणीपौत्रः समानीतःसभार्यकः

अहोत्वयि समायाते रुक्मिणीकिमुवाच ह। प्रेमस्थितं समानं ते किं विवृद्धमगौरवम्
कुरुपाण्डवयुद्धेन कुरवो निहतास्त्वया। पाण्डवार्थे तथा भूपाः क्व साम्यं परमात्मनः
साक्षान्महेन्द्रजातस्य कौन्तेयस्यार्जुनस्य च। राजमण्डलमध्यस्थो भवानेव हि सारथिः
तेन भक्तेन शुद्धेन भीष्मेण च महात्मना। लज्जितेन किमुक्तं ते महतीषु सभासु च॥
देवैरपि कथं दृष्टो ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः। भक्तसिंहैर्मृतैः सर्वैर्न चोक्तं किञ्चिदेव सः॥
यश्चानिर्वचनीयश्च वेदेषु च चतुर्षु च। पुराणेष्वितिहासेषु प्रकृतेः पर ईश्वरः॥ ६९॥
निर्गुणश्च निरीहश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मणाम्। कर्मणां साक्षिरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहः॥
परं ब्रह्म परं ज्योतिः परमेशः परात् परः। परमात्मा च सर्वेषां सूतो नरस्थस्थितः॥

त्वया कुब्जा च सम्भुक्ता वृद्धा क्षत्रियकामिनी।
अपुत्रिणी चाधिकाङ्गी मूलास्पृश्या च प्राक्तनात्॥ ७२॥
त्वया च निहतः कंसो मातुलः केन हेतुना।
आयास्यतीति कृत्वा च गतं न पुनरागतम्॥ ७३॥
निहत्य यादवान् सर्वान् विभज्य द्वारकां पुरीम्।
त्वां निबध्य समानेतुमीश्वरी वारिता जनैः॥ ७४॥

इत्युक्त्वा राधिकादेवी भृशमुच्चै रुरोद सा। मूर्छां सम्प्राप सहसा निर्निश्वासा बभूवह
गोप्योगवाक्षजालस्थाः शुश्रुवुर्ददृशुस्तथा। दृष्ट्वा तामाययुः सर्वा ऊचू राधा मृतेतिच

उच्चैस्ता रुरुदुः सर्वाः क्रोड़े कृत्वा च राधिकाम्।
ऊचुस्ता रक्ष रक्षेति हरे नरहरे प्रभो॥ ७७॥

गोप्य ऊचुः।

किं कृतं किं कृतं कृष्ण त्वया राधा मृता च नः।
राधां जीवय भद्रं ते यास्यामः काननं वयम्।
अन्यथा स्त्रीवधं तुभ्यं दास्यामः सर्वयोषितः॥ ७८॥

गोपीनां वचनं श्रुत्वा राधिकायाश्च माधवः। उवाच जीवयामास सुधादृष्ट्याचनारद

उत्तस्थौ राधिका देवी रुदन्ती मानिना सती।

गोप्यस्तां बोधयामासुः क्रोडे कृत्वा पुनः पुनः ॥ ८० ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राधे प्रवक्ष्यामि ज्ञानमाध्यात्मिकं परम् ।
यच्छ्रुत्वा हालिको मूर्खः सद्यो भवति पण्डितः ॥ ८१ ॥
जात्याहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम् ।
कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक पृथक् ॥ ८२ ॥
एकात्माहञ्च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम् ।
सर्वप्राणिषु व्यक्तया चाप्याब्रह्मादितृणादिषु ॥ ८३ ॥
एकस्मिंश्च भुक्तवति न तुष्टोऽन्यो जनस्तथा ।
अध्यात्मनि गतेऽप्येको मृतोऽप्यन्यः सुजीवति ॥ ८४ ॥

जात्याहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम् । गोलोके गोकुले रम्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने ॥
द्विभुजो गोपवेशश्च स्वयं राधापतिःशिशुः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च सहितःकामधेनुभिः
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः । लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तविग्रहः
यन्मानसीसिन्धुकन्यामर्त्यलक्ष्मीपतिर्भुवि । श्वेतद्वीपे च क्षीरोदे तत्रापि च चतुर्भुजः
अहं नारायणर्षिश्च नरो धर्मः सनातनः । धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवर्त्म प्रवर्तकः ॥८६॥
शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता । अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते

सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात् कपिलोऽहं सतीपतिः ।
नानारूपधरोऽहञ्च व्यक्तिभेदेन सुन्दरि ॥ ९१ ॥

अहंचतुर्भुजः शश्वद् द्वार्वत्यां रुक्मिणीपतिः । अहंक्षीरोदशायी च सत्यभामा गृहेशुभे

अन्यासां मन्दिरेऽहञ्च कायव्यूहात् पृथक् पृथक् ।
अहं नारायणर्षिश्च फाल्गुनस्यास्य सारथिः ॥९३॥

स नरर्षिर्धर्मपुत्रो मदंशो बलवान् भुवि । तपसाराधितस्तेन सारथ्येऽहञ्चं दुष्करे ॥

यथा त्वं राधिकादेवी गोलोके गोकुले तथा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ॥ ९५ ॥

भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनःप्रिया। धर्मपुत्रवधूस्त्वञ्च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी

कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।

त्वं सीता मिथिलायाञ्च त्वच्छाया द्रौपदी सती ॥ ९७ ॥

द्वारवत्यांमहालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती । पञ्चानांपाण्डवानाञ्च भवती कलयाप्रिया

रावणेनहृता त्वञ्चत्वञ्च रामस्यकामिनी । नानारूपायथा त्वञ्च छाययाकलयासति

नानारूपस्तथाहञ्च स्वांशेन कलया तथा । परिपूर्णतमोऽहञ्च परमात्मा परात् परः

इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति । राधे सर्वापराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि ॥

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा परितुष्टा च राधिका । परितुष्टाश्च गोप्यश्च प्रणेमुः परमेश्वरम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधाकृष्णसंवादे चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टा गोपिका मुदा । मन्दिरंप्रययुः सर्वाः प्रणम्य राधिकांप्रभुम्

राधा शृङ्गारभावञ्च कलाषोड़शपूर्वकम् ।

चकार सस्मिता साध्वी वक्रचञ्चललोचना ॥ २ ॥

दत्त्वा च चन्दनं माल्यं स्वामिने पुनरेव च । रहस्यञ्च परीहास्यं पुनरेव चकार सः ॥

आकृष्य राधिकां कृष्णः समानीयस्ववक्षसि । ओष्ठाधरं कपोलञ्च गण्डयुग्मंचुचुम्बच

राधा चुचुम्ब कृष्णस्य मुखचन्द्रं मनोहरम् ।

चकार कृष्णं प्राणेशं बाहुभ्याञ्च स्ववक्षसि ॥ ५ ॥

शृङ्गारंषोड़शविधं कामशास्त्रोक्तमीप्सितम् । स्त्रीपुंसोस्तोषजनकं चकार भगवान्प्रभुः

नखविक्षतसर्वाङ्गा दशनेनाधरक्षता । पुलकाञ्चितदेहा सा तन्द्रिता वामनस्तनी ॥ ७ ॥
मूर्च्छिता सुखसम्भोगाद्विलग्ना हतचेतना । श्वासमात्रावशेषा च निद्रामुद्रितलोचना ॥
रतिशूरा कोमलाङ्गी कान्तवक्षःस्थलस्थिता ।
शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे सा सुखशीतला ॥ ९ ॥
शृङ्गारकाले सुखदा सान्द्रश्रोणिपयोधरा । नितम्बभारनम्रा च प्रसङ्गसुखदायिका ॥
विदग्धारसिकाश्रेष्ठा कामुकी च वराङ्गना । सहसाचेतनंप्राप्य शुश्राव कोकिलध्वनिम्
श्रुत्वा परमभीता सा दीना दीनविशङ्कया ॥
उवाच परमा सा च परमेशं परात् परम् । बाहुश्रोणीयुगाभ्याञ्च निबध्य च पुनः पुनः
राधिकोवाच ।
रासं गच्छ महाभाग पुण्यं वृन्दावनं वनम् । तत्रक्रीड़ां करिष्यामि जलेन च स्थलेनच
पुनर्यास्यामि मलयं सुन्दरं मणिमन्दिरम् । अपरं यद्रहस्यं वा जन्मना न श्रुतं मया ॥
तत्तद्यामि त्वया सार्द्धमिति मे लालसा परा । परस्परैकालापेन प्रययौ रजनी शुभा ॥
अरुणोदयकालेऽपि न त्यज्येन्माधवं सती ।
माधवः प्रीतिवचसा बोधयामास साधनात् ॥ १६ ॥
प्रातःकृत्यं ततः कृत्वा स्वारुरोह रथं हरिः । गोपीभी राधया सार्धं शरत्कमललोचनः
योजनायतविस्तीर्णं गृहैस्त्रिशतकोटिभिः । मणीन्द्रसारनिर्माणैर्ज्वलद्भिरुपशोभितम्
गोलोकादागतं तत्र मनोयायि मनोहरम् । सहस्रचक्रसंयुक्तं सहस्राश्वैः प्रचालितम् ॥
मणिस्तम्भैस्त्रिकोटीभी रत्नराजिविराजितम् । मुक्तामाणिक्यपवनैर्हीरहारैःसुशोभितम्
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च श्वेतचामरदर्पणैः । वह्निशुद्धांशुकैर्दीप्तैर्मालाजालैर्विभूषिताम् ॥२१॥
रत्ननिर्माणतल्पैश्च पुष्पचन्दनचर्चितम् । समानरूपवेशैश्च गोपीलक्षैः समावृतम् ॥२२॥
रथेन तेन भगवान् पुनर्वृन्दावनं ययौ । तत्र गत्वा निशाकाले विजहार जले स्थले ॥
शृङ्गारं सुचिरं कृत्वा वनेषूपवनेषु च । राधिकां दर्शयामास यथा सर्वञ्च नूतनम् ॥
विष्पन्दके सुरसने माहेन्द्रे नन्दने वने । सुमेरुशिखरे रम्ये पर्वते गन्धमादने ॥ २५ ॥
शैले शैले सुन्दरे च कन्दरे कन्दरे वने । पुष्पोद्याने सुरहसि नद्यां नद्यां नदे नदे ॥२६॥

समुद्रपुलिने रम्ये पारिजातवने वने। सुभद्रे पुष्पभद्रे च नारायणसरोवरे ॥ २७ ॥
पवनस्यैव निलये मलये च सुरालये। त्रिकूटे भद्रकूटे च पञ्चकूटे सुकुर्कुटे ॥ २८ ॥
देवानां कमनीयायां काञ्चन्याञ्च तथैव च। समुद्रे च समुद्रे च द्वीपे द्वीपे मनोहरे ॥२९
स्वर्वरे प्रवरे रम्ये पुण्यचन्द्रसरोवरे। सुपार्श्वे मुनिपार्श्वे च स रेमे राधया सह ॥३०॥
शीघ्रञ्च पुनरागत्य जम्बूद्वीपञ्च पुण्यदम्। द्वारकां दर्शयामास पर्वतं रैवतं तथा ॥३१॥
गोकुलं पुनरागत्य गोपगोकुलसङ्कुलम्। तत्र दृष्ट्वा च भाण्डीरं पुण्यं वृन्दावनं ययौ

श्रीकृष्णगमनं श्रुत्वा यशोदा नन्द एव च।
गोपीगोप्यश्च वृद्धाश्चाप्यश्रुनेत्रा निराकुलाः ॥ ३३ ॥

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य वेश्याश्च नटनर्तकाः। पतिपुत्रवतीं साध्वीं ब्राह्मणीं ब्राह्मणं तथा ॥

यथा देवाश्च वह्निश्च दृष्ट्वा नन्दश्च मातरम्।
आययुर्बालकृष्णश्च राधया सह माधवः ॥ ३५ ॥

मातुः क्रोड़मारुरोह प्रहस्य मधुसूदनः। नन्दं यशोदया सार्द्धं चुचुम्ब मुखपङ्कजम् ॥
आश्लिष्य भृशमुच्चैश्च सिषेचनेत्रजैर्जलैः। स्वयं च भगवान् कृष्णो यशोदायास्स्तनंपपौ
तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां ययौ। मुरलीहस्तविन्यस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥३८॥
यथैकादशवर्षीयं शोभितं पीतवाससा। मयूरपिच्छचूड़ञ्च मालतीमाल्यमण्डितम्॥३९॥

मन्दिरं वेषयामास राधया सह माधवम्।
यशोदा मङ्गलं कृत्वा भोजयामास ब्राह्मणान् ॥ ४० ॥
पूजां चकार गोपीनां मुनीनाञ्च यथा जनः।
मणिरत्नं प्रवालञ्च सुवर्णं परमं तथा ॥ ४१ ॥

मुक्तामाणिक्यहीरञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा। गजरत्नं गवां रत्नमश्वरत्नं मनोहरम् ॥

आसनानि च पात्राणि भूषणानि तथैव च।
धान्यान्यपि च शस्यानि वस्त्राणि च तथा ददौ ॥ ४३ ॥

अपूर्वं दर्शयामास राधया सह माधवम्। गोपीगणञ्च मिष्टान्नं सादरेणापि नारद ॥

दुन्दुभीन् वादयामास कारयामास मङ्गलम्।

देवांश्च भोजयामास सानन्दञ्च मनोहरम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

कलिधर्मवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णश्च समाह्वानं गोपांश्चापि चकार सः । भाण्डीरे वटमूले च तत्र स्वयमुवासह
पुरान्नञ्च ददौ तस्मै यत्रैव ब्राह्मणीगणः । उवास राधिकादेवी वामपार्श्वे हरेरपि॥२॥
दक्षिणे नन्दगोपश्च यशोदासहितस्तथा । तद्दक्षिणे वृषभानुस्तद्वामे सा कलावती ॥३ ॥

अन्ये गोपाश्च गोप्यश्च बान्धवाः सुहृदस्तथा ।
तानुवाच स गोविन्दो याथार्थ्यं समयोचितम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं समयोचितम् । सत्यञ्च परमार्थञ्च परलोकसुखावहम् ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं भ्रमं सर्वं निशामय । विद्युद्दीप्तिः जले रेखा यथा तोयस्य बुद्बुदम्
मथुरायां सर्वमुक्तं नावशेषञ्च किञ्चन । यशोदां बोधयामास राधिका कदलीवने ॥७॥
तदेव सत्यं परमं भ्रमध्वान्तप्रदीपकम् । विहाय मिथ्यामायाञ्च स्मर तत् परमं पदम् ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं हर्षकरं परम् । शोकसन्तापहरणं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥
मामेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । ध्यायं ध्यायं पुत्रबुद्धिं त्यक्त्वा लभ परं पदम् ॥
गोलोकं गच्छ शीघ्रं त्वं सार्द्धं गोकुलवासिभिः । आरात्कलेरागमनं कर्ममूलनिकृन्तनम्

स्त्रीपुंसोर्नियमो नास्ति जातीनाञ्च तथैव च ।
विप्रे सन्ध्यादिकं नास्ति चिह्नं यज्ञोपवीतकम् ॥ १२ ॥

यज्ञसूत्रञ्च तिलकं शेषं लुप्तं सुनिश्चितम्। दिवाव्यवायनिरतं विरतं धर्मकर्मणि ॥ १३ ॥
यज्ञानाञ्च व्रतानाञ्च तपसां लुप्तमेव च। केदारकन्याशापेन धर्मो नास्त्येव केवलम् ॥
स्वच्छन्दगामिनीस्त्रीणां पतिश्च सततं वशे। ताड़येत् सततं तञ्च भर्त्सयेच्च दिवानिशम्

प्राधान्यं स्त्रीकुटुम्बानां स्त्रीणाञ्च सततं वशे।
स्वामी च भक्तस्तासाञ्च पराभूतो निरन्तरम् ॥ १६ ॥

कलौ च योषितः सर्वा जारसेवासु तत्पराः। शतपुत्रसमस्नेहस्तासां जारे भविष्यति

ददाति तस्मै भक्ष्यञ्च यथा भृत्याय कोपतः।
सस्मिता सकटाक्षा सामृतदृष्ट्या निरन्तरम् ॥ १८ ॥

जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा। सततं गौरवं तासां स्नेहश्च जारबान्धवे।
पत्यौ करप्रहारञ्च नित्यं नित्यं करोति च। मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जारायप्रददातिच
वेशयुक्ता च सततं जारसेवनतत्परा। प्राणा बन्धुर्गतिश्चात्मा कलौ जारश्च योषिताम्
लुप्ता चातिथिसेवा च प्रलुप्तं विष्णुसेवनम्। पितृणामर्चनञ्चैव देवानाञ्च तथैव च ॥
विष्णुवैष्णवयोर्द्वेषी सततञ्च नरो भवेत्। वाममन्त्रोपासकाश्च चतुर्वर्णाश्चतत्पराः ॥
शालग्रामञ्च तुलसीं कुशं गङ्गोदकं तथा। नस्पृशेन्मानवो धूर्तो म्लेच्छाचाररतः सदा ॥
कारणं कारणानाञ्च सर्वेषां सर्ववीजकम्। सुखदं मोक्षदं शश्वद्दातारं सर्वसम्पदाम् ॥

त्यक्त्वा मां परया भक्त्या क्षुद्रसम्प्रत्प्रदायिनम्।
वेदनिन्द्यं वाममन्त्रं जपेद्‌ विप्रश्च मायया ॥ २६ ॥

सनातनी विष्णुमाया वञ्चितं तं करिष्यति। ममाज्ञया भगवती जगताञ्च दुरत्यया ॥
कलेर्दशसहस्राणि मदर्चा भुवि तिष्ठति। तदर्धानि च वर्षाणां गङ्गा भुवनपावनी ॥ २८
तुलसी विष्णुभक्ताश्च यावद्गङ्गा च कीर्तनम्। पुराणानि च स्वल्पानि तावदेवमहीतले

मम चोत्कीर्तनं नास्ति एतदन्ते कलौ व्रज।
एकवर्णा भविष्यन्ति किराता बलिनः शठा ॥ ३० ॥

पित्रोः सेवा गुरोःसेवा सेवा च देवविप्रयोः। विवर्जिता नराः सर्वेचातिथीनांतथैवच

शस्यहीना भवेत् पृथ्वी सा चावृष्ट्या निरन्तरम्।

फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा ॥ ३२ ॥

वेदहीनो ब्राह्मणश्च वलहीनश्च भूपतिः । जातिहीना जनाःसर्वेम्लेच्छो भूपो भविष्यति॥
भृत्यवत्ताड़येत्तातं पुत्रः शिष्यस्तथागुरुम् । कान्तश्चताड़येत्कान्तालुब्धकुक्कुटवद्गृही

नश्यन्ति सकलालोकाः कलौ शेषे च पापिनः ।

सूर्याणामातपात् केचिज्जलौघेनापि केचन ॥ ३५ ॥

हेवैश्येन्द्र सति कलौ न नश्यन्ति वसुन्धरा । पुनः सृष्टिर्भवेत् सत्यं सत्यवीजंनिरन्तरम्
एतस्मिन्नन्तरे विप्र रथमेव मनोहरम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं मूर्ध्वे च पञ्चयोजनम् ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् । अम्लानपारिजातानां मालाजालविराजितम् ॥
मणीनां कौस्तुभानाञ्च भूषणेन विभूषितम् । अमूल्यरत्नकलशं हीरहारविलम्बितम् ॥
मनोहरैः परिष्वक्तं सहस्रकोटिमन्दिरैः । सहस्रद्वयचक्रञ्च सहस्रद्वयघोटकम् ॥ ४० ॥

सूक्ष्मवस्त्राच्छादितञ्च गोपीकोटीभिरावृतम् ।

गोलोकादागतं तूर्णं ददृशुः सहसा व्रजे ॥ ४१ ॥

कृष्णाज्ञया तमारुह्य ययुर्गोलोकमुत्तमम् । राधा कलावतीदेवी धन्या चायोनिसम्भवा
गोलोकादागता गोप्यश्चायोनिसम्भवाश्च ताः । श्रुतिपत्न्यश्चताःसर्वाःस्वशरीरेणनारद

सर्वे त्यक्त्वा शरीराणि नश्वराणि सुनिश्चितम् ।

गोलोकञ्च ययौ राधा सार्द्धं गोकुलवासिभिः ॥ ४४ ॥

ददर्श विरजातीरं नानारत्नविभूषितम् । तदुत्तीर्य ययौ विप्र शतशृङ्गञ्च पर्वतम् ॥ ४५
नानामणिगणाकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । ततो ययौ कियद्दूरं पुण्यं वृन्दावनं वनम्
सा ददर्शाक्षयवटमूर्ध्वे त्रिशतयोजनम् । शतयोजनविस्तीर्णं शाखाकोटिसमावृतम् ॥
रक्तवर्णैः फलौघैश्च स्थूलैरपि विभूषितम् । गोपीकोटिसहस्रैश्च सार्द्धं वृन्दा मनोहरा ॥
अनुव्रजं सादरञ्च सस्मिता सा समाययौ । अवरुह्य रथात्तूर्णं राधां सा प्रणनाम च
रासेश्वरीं तां सम्भाष्य प्रविवेश स्वमालयम् । रत्नसिंहासने रम्ये हीरहारसमन्वितम्
वृन्दा तां वासयामास पादसेवनतत्परा । सप्तभिश्च सखीभिश्च सेविता श्वेतमाचरैः ॥
आययुर्गोपिकाः सर्वा द्रष्टुं तां परमेश्वरीम् । नन्दादिकंप्रकल्प्यैतद्राधावासं पृथक्पृथक

परमानन्दरूपा सा परमानन्दपूर्वकम्। स्ववेश्मनि महारम्ये प्रतस्थे गोपिकासह ॥५३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कलिधर्मवर्णनं नाम षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

———

सप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्णस्य गोलोकगमनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः ।
दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षञ्च सद्यो गोकुलवासिनाम् ॥ १ ॥

उवास पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरे वटमूलके । ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुलं व्याकुलं तथा ॥२॥
अरक्षकञ्च व्यस्तञ्च शून्यं वृन्दावनं वनम् । योगेनामृतवृष्ट्या च कृपयाचकृपानिधिः
गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः । तथावृन्दावनञ्चैव सुरम्यञ्च मनोहरम्

गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाश्वासं चकार सः ।
उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतञ्च दुर्लभम् ॥ ५

श्रीभगवानुवाच ।

हे गोपगण हेवन्धो सुखं तिष्ठन् स्थिरो भव ।
रमणं प्रियया सार्द्धं सुरम्यं रासमण्डलम् ॥ ६ ॥

तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने । अधिष्ठानञ्च सततं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि ।
स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्या च भवः स्वयम् ॥ ८ ॥
सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः ।
कुवेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा ॥ ६ ॥

ईशानश्चापि देवाश्च वसवोऽष्टौ तथैव च। सर्वे ग्रहाश्च रुद्राश्च मुनयो मनवस्तथा॥
त्वरिताश्चाययुः सर्वे यथास्ते भगवान् प्रभुः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तमुवाच विधिः स्वयम्॥ ११॥

ब्रह्मोवाच।

परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप नित्यविग्रह। ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर॥१२॥
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना। स्वेच्छामय परं धाम परमात्मन्नमोऽस्तु ते
सर्वकार्यस्वरूपेश कारणानां च कारण। ब्रह्मेशशेषदेवेश सर्वेश ते नमो नमः॥ १४॥
सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर। हे सावित्रीश राधेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते॥
सर्वेषामादिभूतस्त्वं सर्वः सर्वेश्वरस्तथा। सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते॥
त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुन्धरा। शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम्॥
यत् पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम्।
त्यक्त्वेमां स्वपदं यासि रुदन्तीं विरहातुराम्॥ १८॥

श्रीमहादेव उवाच।

ब्रह्मणा प्रार्थितस्त्वञ्च समागत्य वसुन्धराम्। भूभारहरणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विभो
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सद्यःपूता पदाङ्किता।
वयञ्च मुनयो धन्याः साक्षाद् दृष्ट्वा पदाम्बुजम्॥ २०॥
ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
अस्माकमनघश्चेशः सोऽधुना चाक्षुषो भुवि॥ २१॥
वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। देवस्तस्य महाविष्णोर्वासुदेवो महीतले
सुचिरं तपसा लब्धं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम्। यत्पादपद्ममतुलं चाक्षुषं सर्वजीविनाम्

अनन्त उवाच।

त्वमनन्तो हि भगवान्नाहमेव कलांशकः। विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा॥
असंख्यशेषाः कूर्माश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
असंख्यानि च विश्वानि तेषामीशः स्वयं भवान्॥ २५॥

अस्माकमदूरं नाथ सुदिनं च भविष्यति । स्वस्थानञ्च यथेशः स दृष्टःसर्वजीविनाम्

नाथ प्रयासि गोलोकं पूतां कृत्वा वसुन्धराम् ।

तामनाथां रुदन्तीञ्च निमग्नां शोकसागरे ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः ।

वेदास्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा । तमेव स्तवनं किंवा वयं कुर्मो नमोऽस्तु ते

इत्येवमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम् । तत्रस्थं भगवन्तञ्च द्रष्टुं शीघ्रं मुदान्विताः ॥

अथ तेषाञ्च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम् । पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तःसप्तसागराः

हतश्रियं द्वारकाञ्च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः । मूर्तिं कदम्बमूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः ॥

ते सर्वे चैरकायुद्धे निपेतुर्यादवास्तथा । चितामारुह्य देव्यश्च प्रययुः स्वामिभिः सह ॥

अर्जुनःस्वपुरं गत्वा ह्युवाच युधिष्ठिरम् । स राजा भ्रातृभिःसार्धं ययौ स्वर्गञ्च भार्यया

दृष्ट्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥

तुष्टुवुः परमात्मानं देवं नारायणं प्रभुम् । श्यामं किशोरवयसं भूषितं रत्नभूषणैः ॥३५॥

वह्निशुद्धांशुकाधानं शोभितं वनमालया । अतीवसुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥

व्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिवन्दितम् । दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ ॥

पृथिवीं तां समाश्वास्य रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् । व्याधं प्रस्थापयामास परंस्वपदमुत्तमम्

बलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम् । प्रद्युम्नस्य च कामैके चानिरुद्धस्य ब्रह्मणि ॥

अयोनिसम्भवा देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । वैकुण्ठं प्रययौ साक्षात् स्वशरीरेणनारद

सत्यभामा पृथिव्याञ्च विवेश कमलालया । स्वयं जाम्बवतीदेवी पार्वत्यां विश्वमातरि

या या देव्यश्च यासाञ्चाप्यंशरूपाश्च भूतले ।

तस्यां तस्यां प्रविविशुस्ता एव च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

साम्बस्य तेजः स्कन्दे च विवेश परमाद्भुतम् । कश्यपे वसुदेवश्चाप्यदित्यां देवकी तथा

रुक्मिणी मन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम् । स जग्राह समुद्रश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः

लवणोदः समागत्य तुष्टाव पुरुषोत्तमम् । रुरोद तद्वियोगेन साश्रुनेत्रश्च विह्वलः ॥

गङ्गा सरस्वती पद्मावती च यमुना तथा । गोदावरी स्वर्णरेखा कावेरी नर्मदा मुने ॥

शरावती वाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा। समाययुश्च ताः सर्वाः प्रणेमुः परमेश्वरम् ॥
उवाच जाह्नवी देवी रुदन्ती परमेश्वरम्। साश्रुनेत्रातिदीना सा विरहज्वरकातरा ॥४८

भागीरथ्युवाच।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ यासिगोलोकमुत्तमम्। अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति कलौयुगे

श्रीभगवानुवाच।

कलेः पञ्चसहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले।
पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥ ५० ॥

मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद्भस्मीभूतानितत्क्षणात्। भविष्यन्तिदर्शनाच्च स्नानादेव हि जाह्नवि
हरेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि। तत्र गत्वा सावधानमाभिःसार्द्धञ्च श्रोष्यसि
पुराणश्रवणाच्चैव हरेर्नामानुकीर्तनात्। भस्मीभूतानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥
भस्मीभूतानि तान्येव वैष्णवालिङ्गनेन च। तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पावका यथा

तथापि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि ॥ ५५ ॥

मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु सन्ततम्। मद्भक्तपादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा ॥५६॥
सद्यःपूतानि तीर्थानि सद्यःपूतं जगत्तथा। मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मदुच्छिष्टभोजिनः

मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः।
तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः ॥ ५८ ॥

कलेर्दशसहस्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले। एकवर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च ॥
मद्भक्तशून्या पृथिवी कलिग्रस्ता भविष्यति। एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः ॥
चतुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः। शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ ६१ ॥
सुन्दरं रथमारुह्य क्षीरोदं स जगाम ह। सिन्धुकन्या च प्रययौ स्वयं मूर्त्तिमती सती
श्रीकृष्णमानसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनोहरा। श्वेतद्वीपं गते विष्णौ जगत्पालनकर्तरि
शुद्धसत्वस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव ह। दक्षिणाङ्गश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः ॥६४
नवीनजलदश्यामः शोभितः पीतवाससा। श्रीवंशवदनः श्रीमान् सस्मितः पद्मलोचनः

शतकोटीन्दुसौन्दर्यः शतकोटिस्मरप्रभाम् । दधानः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ॥ ६६

परं धाम परब्रह्मस्वरूपो निर्गुणः स्वयम् ।
परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ ६७ ॥
नित्यदेही च भगवानीश्वरः प्रकृतेः परः ।
योगिनो यं विदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥ ६८ ॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यरूपं भक्त्या विदन्ति यम् ।
वेदा वदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः ॥ ६९ ॥
यं वदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम् ।
सिद्धेन्द्रमुनयः सर्वे सर्वरूपं वदन्ति यम् ॥ ७० ॥

यमनिर्वचनीयञ्च योगीन्द्रः शङ्करो वदेत् । स्वयं विधाता प्रवदेत् कारणानाञ्च कारणम् शेषो वदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम् । धर्माणामेव षण्णाञ्च षड्विधं रूपमीप्सितम् वैष्णवानामेकरूपं वेदानामेकमेव च । पुराणानामेकरूपं तस्मान्नवविधं स्मृतम् ॥७३॥ न्यायोऽनिर्वचनीयञ्च यं मतं शङ्करो वदेत् । नित्यं वैशेषिकाश्चायं तं वदन्तिविचक्षणाः

सांख्यो वदति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम् ।
ममांशः सर्वरूपञ्च वेदान्तः सर्वकारणम् ॥ ७५ ॥
पातञ्जलोऽप्यनन्तञ्च वेदाः सत्यस्वरूपकम् ।
स्वेच्छामयं पुराणञ्च भक्ताश्च नित्यविग्रहम् ॥ ७६ ॥
सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः ।
गोकुले गोपवेशश्च पुण्ये वृन्दावने वने ॥ ७७ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम् ।
नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥ ७८ ॥

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद ॥ सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिवारितः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ ८० ॥ कौस्तुभेन मणीन्द्रेण भूषितो वनमालया । वेदैः स्तुतश्च यानेन वैकुण्ठं स्वपदं ययौ

गते वैकुण्ठनाथे च राधेशश्च स्वयं प्रभुः । चकार वंशीशब्दञ्च त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥
मूर्च्छां प्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नारद । अचेतना बभूवुश्च मायया पार्वतीं विना ॥
उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम् । विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी ॥
परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी । सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सती

पार्वत्युवाच ।

एकाहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले । रासशून्यञ्च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥
गच्छ त्वं रथमारुह्य मुक्तामाणिक्यभूषितम् । परिपूर्णतमाहञ्च तव वक्षःस्थलस्थिता ॥
तवाज्ञया महालक्ष्मीरहं वैकुण्ठगामिनी । सरस्वती च तत्रैव वामे पार्श्वे हरेरपि ॥८८॥

तवाहं मानसा जाता सिन्धुकन्या तवाज्ञया ।
सावित्री वेदमाताहं कलया विधिसन्निधौ ॥ ८९ ॥

तेजःसु सर्वदेवानां पुरा सत्ये तवाज्ञया । अधिष्ठानं कृतं तत्र धृतं देव्या शरीरकम् ॥
शुम्भादयश्च दैत्याश्च निहताश्चावलीलया । दुर्गं निहत्य दुर्गाहं त्रिपुरा त्रिपुरे हते ॥९१
निहत्य रक्तबीजञ्च रक्तबीजविनाशिनी । तवाज्ञया दक्षकन्या सती सत्यस्वरूपिणी ॥
योगेन त्यक्त्वा देहञ्च शैलजाहं तवाज्ञया । त्वया दत्त्वा शङ्कराय गोलोके रासमण्डले

विष्णुभक्तिरता तेन विष्णुमाया च वैष्णवी ।
नारायणस्य मायाहं तेन नारायणी स्मृता ॥ ९४ ॥
कृष्णप्राणाधिकाहञ्च प्राणाधिष्ठातृदेवता ।
महाविष्णोश्च वासोश्च जननी राधिका स्वयम् ॥ ९५ ॥

तवाज्ञया पञ्चधाहं पञ्चप्रकृतिरूपिणी । कलाकलांशयाहञ्च वेदपत्न्यो गृहे गृहे ॥ ९६ ॥
शीघ्रं गच्छ महाभाग तत्राहं विरहातुरा । गोपीभिः सहितावासं भ्रमन्ती परितः सदा
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः । रत्नयानं समारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् ॥
पार्वती बोधयामास स्वयं देवगणं तथा । मायावंशीरवाच्छन्नं विष्णुमाया सनातनी
कृत्वा ते हरिशब्दञ्च स्वगृहं विस्मयं ययुः । शिवेन सार्धं दुर्गा सा प्रहृष्टा स्वपुरं ययौ
अथ कृष्णं समायान्तं राधा गोपीगणैः सह । अनु व्रजं ययौ हृष्टा सर्वज्ञा प्राणवल्लभम्

दृष्ट्वा समीपमायान्तमवरुह्य रथात् सती । प्रणनाम जगन्नाथं शिरसा सखीभिः सह ॥
गोपा गोप्यश्च मुदिताः प्रफुल्लवदनेक्षणाः । दुन्दुभिं वादयामासुरीश्वरागमनोत्सुकाः ॥
विरजाञ्च समुत्तीर्य दृष्ट्वा राधां जगत्पतिः ।
अवरुह्य रथात् तूर्णं गृहीत्वा राधिकाकरम् ॥ १०४ ॥
शतशृङ्गे च बभ्राम सुरम्यं रासमण्डलम् । दृष्ट्वा क्षयवटं पुण्यं पुण्यंवृन्दावनं तथा ॥
तुलसीकाननं दृष्ट्वा प्रययौ मालतीवनम् । वामे कृत्वा कुन्दवनं माधवीकाननं तथा ॥
चकार दक्षिणे कृष्णश्चम्पकारण्यमीप्सितम् । चकार पश्चात्तूर्णञ्च चारुचन्दनकाननम्
ददर्श पुरतो रम्यं राधिकाभवनं परम् । उवास राधया सार्धं रत्नसिंहासने वरे ॥१०८
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं बुभुजे वासितं जलम् । सुष्वाप पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते ॥
स रेमे रामया सार्धं निमग्नो रससागरे । इत्येवं कथितं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम्
गोलोकारोहणं रम्यं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १११ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
गोलोकारोहणं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

———

अष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

नारदाख्यानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

सर्वं श्रुतं महाभाग नावशेषमभीप्सितम् । किमपूर्वं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ॥ १ ॥
अधुना किं करिष्यामि तन्मां ब्रूहि जगद्गुरो ।
आज्ञां कुरु तपस्याञ्च कर्तुं यामि हिमालयम् ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उपबर्हणगन्धर्वः पञ्चाशत्कामिनीपतिः । जन्मान्तरे भवानासीदधुना ब्रह्मपुत्रकः ॥ ३ ॥

तास्वेका च सती रम्या तपसा शङ्करं परम् ।
आराध्य च वरं लेभे वाञ्छितं नारदं पतिम् ॥ ४ ॥
सा च सृञ्जयकन्या च स्वर्णष्ठीवीसहोदरा ।
तां विवाहं कुरुष्वेति शङ्कराज्ञा कथं वृथा ॥ ५ ॥
सुन्दरीं सुन्दरीष्वेव कोमलां कमलाकलाम् ।
पतिव्रतां महाभागां रम्यां सुप्रियवादिनीम् ॥ ६ ॥
कामुकीं कमनीयाञ्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ।
विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते ॥ ७ ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ८ ॥

सूत उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा हृदयेन विदूयता । प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं नारदः सृञ्जयालयम् ॥

शौनक उवाच ।

अहो सूत महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् । किमपूर्वं रहस्यञ्च सरसञ्च पुरातनम् ॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि विवाहं नारदस्य च । अतीन्द्रियस्य च मुनेर्ब्रह्मपुत्रस्य साम्प्रतम्

सूत उवाच ।

नारदो मूढरूपश्च दृष्ट्वा सृञ्जयकन्यकाम् । तपस्विनीं महाभागां विष्णुव्रतपरायणाम्
ययौ ब्रह्मसभां रम्यां सर्वदेवैः समावृताम् । प्रणम्य पितरं शान्तः सर्वं तत्त्वमुवाच तम्
ब्रह्मा प्रहृष्टवदनः श्रुत्वा वार्तां शुभावहाम् । तपस्विनश्च पुत्रश्च सम्भाष्य जगतां पतिः
रत्ननिर्माणयानेन सार्धं देवैः शुभे क्षणे । पुत्रं कृत्वा च पुरतो ययौ सृञ्जयमन्दिरम् ॥
तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो राजा रत्नभूषणभूषिताम् । गृहीत्वा कन्यकां रम्यां नारदाय ददौ मुदा
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा मणिमुक्तादिकं तथा । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा परिहारं चकार सः

कन्यां समर्प्य ब्रह्माणं राजा च योगिनां वरः ।
रुरोद भृशमुच्चैश्च वत्से वत्स इतीरितम् ॥ १८ ॥

क यासि त्यक्त्वा मद्गेहं शून्यं कमललोचने।
अहं यामि वनं घोरं त्वां त्यक्त्वा जीवितो मृतः॥ १९॥
प्रणम्य पितरं कन्या रुदन्तं मातरं तथा।
रुदन्तीं तां रुदन्ती साप्यारुरोह रथं विधेः॥ २०॥
गृहीत्वा च सभार्यञ्च पुत्रं धाता मुदान्वितः।
प्रययौ ब्रह्मलोकञ्च देवेन्द्रैर्मुनिभिः सह॥ २१॥
ब्राह्मणान् भोजयामास साङ्गे मङ्गलकर्मणि।
देवानपि च सिद्धांश्च वादयामास दुन्दुभिम्॥ २२॥
नारदस्तु मुनिश्रेष्ठो राधितः पुण्यकर्मणा।
यस्य यत् प्राक्तनं विप्र दुर्लङ्घ्यं केन वार्यते॥ २३॥
सुरम्ये पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते।
स रेमे रामया सार्धं बुबुधे न दिवानिशम्॥ २४॥
एवं कृत्वा विवाहञ्च चिरतो मुनिसत्तमः। उवास ब्रह्मलोकेषु वटमूले मनोहरे॥ २५॥
तत्राजगाम नग्नश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा। सनत्कुमारो भगवान् साक्षाच्च बालको यथा
सृष्टेः पूर्वञ्च वयसा यथैव पञ्चहायनः। अचूडोऽनुपनीतश्च वेदसन्ध्याविहीनकः॥२७॥
कृष्णेति मन्त्रं जपति यस्य नारायणो गुरुः।
अनन्तकालकल्पञ्च भ्रातृभिश्च त्रिभिः सह॥ २८॥
वैष्णवानामग्रणीशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः। आराद् दृष्ट्वा नारदस्तं भ्रातरञ्च सतां वरम्॥
सहसा शिरसा भूमौ दण्डवत् प्रणनाम तम्। उवाच नारदं बालः प्रहस्य परमार्थकम्॥

सनत्कुमार उवाच।

अये भ्रातः किं करोषि कुशलं युवतीपते।
स्त्रीपुंसोर्वर्द्धते प्रेम नित्यं तन्नित्यनूतनम्॥ ३१॥
अर्गलं ज्ञानमार्गस्य भक्तिद्वारकपाटकम्। मोक्षमार्गव्यवहितं चिरं बन्धनकारणम्।
पीयूषबुद्ध्या गरलं भुङ्क्ते पापी नराधमः॥ ३२॥

परंनारायणं त्यक्त्वायस्यास्ते विषयेमनः। सवञ्चितोमायया,चामृतं त्यक्त्वाविषंभजेत्

सर्वेषां कामभोगोऽस्ति कर्मिणामीश्वरं विना।

वयं विधातुः पुत्राश्च सा बुद्धिरिति देहिनाम् ॥ ३४ ॥

यदिते नास्ति भोगश्च कथं गन्धर्वजन्म च। कथंदासीसुतस्त्वञ्च मुक्तश्चभक्तसङ्गतः॥

निर्गच्छ तपसे भ्रातस्त्यज मायामयीं प्रियाम्।

सुपुण्ये भारते वर्षे तपसा भज माधवम् ॥ ३६ ॥

स्थितो नारायणे स्वेशे परे स्वपददातरि। विषयी विषयान्धश्च वञ्चितो माययाध्रुवम्

गृहाण मम मन्त्रञ्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। सर्वेषामेव मन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ॥

सर्वेषु च पुराणेषु वेदेषु च चतुर्षु च। धर्मशास्त्रेषु तन्त्रेषु नास्त्येवास्मात्परो मनुः ॥

नारायणेन दत्तो मे पुष्करे सूर्य्यपर्वणि। असंख्यकल्पं जप्त्वाहं भ्रमामि सर्वपूजितः

इत्युक्त्वा स्नापयित्वा तं ददौ तस्मै परं मनुम्।

दिवानिशं स जपति पूतया मणिमालया ॥ ४१ ॥

तस्मै शुभाशिषं दत्त्वा मन्त्रञ्च वैष्णवाग्रणीः। गोलोकं प्रययौ द्रष्टुं भगवन्तं सनातनम्

नारदस्तु मनुं प्राप्य सर्वसिद्धिप्रदं वरम्। श्रीकृष्णे निश्चलाभक्तिपदं कर्मनिकृन्तनम् ॥

त्यक्त्वा मायामयीं भार्य्यां भारतं तपसे ययौ। कृतमालानदीतीरे ददर्श शङ्करं परम् ॥

दृष्ट्वा च सहसा मूर्ध्ना प्रणनाम शिवं मुनिः। तमुवाच जगन्नाथो भक्तश्च भक्तवत्सलः

श्रीमहादेव उवाच।

अहो नारद दृष्ट्वा त्वां प्रसन्नोऽहं स्वतेजसा।

भक्तानां दर्शनं यत्र सुदिनं तच्छरीरिणाम् ॥ ४६ ॥

अयं हि परमो लाभो देहिनांभक्तसङ्गमः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो ददर्श च वैष्णवम्

अपि प्राप्तो महामन्त्रः सर्वतन्त्रसुदुर्लभः।

मया दत्तो गणेशाय स्कन्दाय स्वात्मजाय च ॥ ४८ ॥

मह्यं दत्तश्च कृष्णेन गोलोके रासमण्डले। ब्रह्मणे चापि धर्माय धर्मो नारायणाय च ॥

ब्रह्मा सनत्कुमाराय तुभ्यं दत्तश्च तेन वै। मन्त्रग्रहणमात्रेण जनो नारायणो भवेत् ॥

विचारणञ्च नास्त्यत्र कालाकालं शुभाशुभम् । पञ्चलक्षजपेनैव पुरश्चरणमस्य च ॥५३॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं तेन ध्यायेच्च वैष्णवः । ध्यानञ्च पापदहनं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥
कृष्णं नवघनश्यामं किशोरं पीतवाससम् । शतकोटीन्दुसौन्दर्य्यं दधानमतुलं परम् ॥
भूषितं भूषणौघैस्तैरमूल्यरत्ननिर्मितैः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥

मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डितम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं नित्योपास्यं शिवादिभिः ॥ ५५ ॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।

वेदानिर्वचनीयं तं वरं सर्वेश्वरं भजे ॥ ५६ ॥

ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा भगवन्तं सनातनम् ।
भजन्तं परमानन्दं सत्यं नित्यं परात्परम् ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वा स्वपदं शम्भुर्जगाम परमेश्वरः । तं प्रणम्य जगन्नाथं नारदस्तपसे ययौ ॥५८॥

नारदः श्रीहरिं स्मृत्वा योगात् त्यक्त्वा कलेवरम् ।
विलीनः पादपद्मे च पादपद्मार्चिते हरेः ॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
नारदप्रकरणं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

वह्निसुवर्णयोरुत्पत्तिः ।

शौनक उवाच ।

अत्यपूर्वमुपाख्यानं श्रुतं परममद्भुतम् । सुगोप्यञ्च सुगोप्यञ्च रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥१॥
किमनिर्वचनीयञ्च कमनीयं मनोहरम् । सुदुर्लभा कथा प्रोक्ता पुराणेषु पुरातनी ॥२॥
एवंभूतञ्च सुदिनं कदास्माकं भविष्यति । तज्जन्म सफलं धन्यं यत्र वैष्णवसङ्गमः ॥

गर्भवासोच्छेदनञ्च कर्ममूलनिकृन्तनम् । हरिदास्यप्रदं शुद्धं भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥४॥
असाधुसङ्गदुर्बुद्धिपापोन्मूलनकारणम् । गणेशजन्मोपाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥५॥
तुलसीराधिकाख्यानं किमपूर्वं श्रुतं परम् । नवं यद्यद्गोपनीयं व्यक्तमव्यक्तमीप्सितम् ॥

सर्वं श्रुतं महाभाग परिपूर्णं मनोरमम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि वह्नेरुत्पत्तिमीप्सिताम् ।
स्वर्णस्य च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥

सूत उवाच ।

सामग्रीकरणं सृष्टेर्जलमेव हुताशनः । यथैव प्रकृतिर्नित्या महानेव तथैव च ॥ ८ ॥
यथा दिशो महाकाशो यथैव सृष्टिगोलकम् । प्रकृतेर्महतश्च स्यादहङ्कारस्तथैव च ॥९॥
यथैव शब्दस्तन्मात्रं तथैव च हुताशनः । तथापि तत्समुत्पत्तिं कथयामि निशामय ।
एकदा सृष्टिकाले च ब्रह्मानन्तमहेश्वराः । श्वेतद्वीपं ययुः सर्वे द्रष्टुं विष्णुं जगत्पतिम्
परस्परञ्च सम्भाषां कृत्वा सिंहासनेषु च । ऊचुः सर्वे सभामध्ये सुरम्ये पुरतो विभोः

विष्णुगात्रोद्भवास्तत्र कामिन्यः कमलाकलाः ।
तत्र नृत्यन्ति गायन्ति विष्णुगाथाश्च सुस्वरम् ॥ १३ ॥
तासाञ्च कठिनां श्रोणिं कठिनं स्तनमण्डलम् ।
सस्मितं मुखपद्मञ्च दृष्ट्वा ब्रह्मा सुकामुकः ॥ १४ ॥

मनोनिवारणं कर्त्तुं न शशाक पितामहः । वीर्य्यं पपात चच्छाद लज्जया वाससा विभुः
तद्वीर्यं वस्त्रसहितं प्रतप्तं कामतापतः । क्षीरोदे प्रेरयामास सङ्गीते विरते द्विज ॥ १६ ॥
जलादुत्थाय पुरुषः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । उवास ब्रह्मणः क्रोड़े लज्जितस्य च संसदि
एतस्मिन्नन्तरे रुष्टो जलादुत्थाय सत्वरः । प्रणम्य वरुणो देवान् बालं नेतुं समुद्यतः ॥

बालो दधार ब्रह्माणं बाहुभ्याञ्च भयाद्रुदन् ।
किञ्चिन्नोवाच जगतां विधाता लज्जया द्विज ॥ १९ ॥

बालकस्य करे धृत्वा चकाराकर्षणं रुषा । वरुणश्च सभामध्ये तं चिक्षेप प्रजापतिः ॥
पपात दूरतो देवो वरुणो दुर्बलस्ततः । मूर्च्छां सम्प्राप मृतवत् कोपदृष्ट्या विधेरहो ॥

चेतनं कारयामास मृतदृष्ट्या च शङ्करः। सम्प्राप्य चेतनं तत्र तमुवाच जलेश्वरः॥२२॥

वरुण उवाच।

बालो जले समुद्भूतो मम पुत्रोऽयमोप्सितः।
अहं गृहीत्वा यास्यामि ब्रह्मा मां ताड़येत् कथम्॥ २३॥

ब्रह्मोवाच।

बालकः शरणापन्नो मयि विष्णो महेश्वर। कथं दास्यामि भीतश्च रुदन्तं शरणागतम्
शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः। पच्यते निरये तावद् यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥२५॥
उभयोर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच तत्र सर्वज्ञः सर्वेशश्च यथोचितम्॥२६॥

श्रीभगवानुवाच।

दृष्ट्वा तु कामिनीश्रोणीं वीर्य्यं धातुःपपात तत्। लज्जया प्रेरयामास क्षीरोदे निर्मलेजले
ततो वभूव बालश्च धर्मतो विधिपुत्रकः। क्षेत्रजश्च सुतः शास्त्रे वरुणस्यापि गौणतः

श्रीमहादेव उवाच।

योऽविद्या योनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः।
शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः॥ २६॥

मन्त्रं ददातु वरुणो विद्याश्च बालकाय च। पुत्रो विधातुर्वह्निश्च शिष्यश्च वरुणस्य च

विष्णुर्ददातु बालाय दाहिकां शक्तिमुज्ज्वलाम्।
सर्वदग्धो हुताशश्च निर्वाणो वरुणेन च॥ ३१॥
विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाज्ञया।
मन्त्रविद्याश्च वरुणो रत्नमालां मनोहराम्॥ ३२॥

क्रोड़े कृत्वा च तं बालं चुचुम्ब मायया सुरः। ब्रह्मणे च ददौ साक्षाद्विष्णुशङ्करयोरपि

प्रणम्य विष्णुं ब्रह्मा च ययौ शम्भुः स्वमन्दिरम्।
अग्न्युत्पत्तिश्च कथिता स्वर्णोत्पत्तिं निशामय॥ ३४॥

एकदा सर्वदेवाश्च समूषुः स्वर्गसंसदि। तत्र कृत्वा च नित्यश्च गायन्त्यप्सरसां गणाः

विलोक्य रम्भां सुश्रोणीं सकामो वह्निरेव च।

पपात वीर्य्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा ॥ ३६ ॥

उवास्थौ स्वर्णपुञ्जश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभम् । क्षणेन वर्धयामास स सुमेरुर्बभूवह
हिरण्यरेतसं वह्निं प्रवदन्ति मनीषिणः । इति ते कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
वह्निसुवर्णोत्पत्तिर्नामोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

अस्य पुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

श्रुतं सर्वं नावशेषं धर्मेश ब्राह्मणञ्च माम् । कथयस्व महाभाग पुराणं पुनरेव हि ॥१॥
एवंविधं पुराणञ्च जन्मनैव न हि श्रुतम् । न दृष्टं न श्रुतं तात तादृशं वाचकं तथा ॥

सूत उवाच ।

श्रूयतां भो महाभाग सावधानश्च संयतम् । अध्यायश्रवणेनैव पुराणफलमालभेत् ॥३॥
ब्रह्मखण्डे च कथितं परं ब्रह्मनिरूपणम् । तदनिर्वचनीयञ्च येषामपि यथागमम् ॥ ४ ॥

साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं पृथक् ।
येषामपि यथा शक्तिस्तथैव ध्यानमेव च ॥ ५ ॥
गोलोकादेर्वर्णनञ्च क्रमेण च पृथक् पृथक् ।
यत्रोपयुक्तोपाख्यानं यद्यत् प्रासङ्गिकं विभो ॥ ६ ॥

जातीनां निर्णयश्चैव सङ्कराणां तथैव च । यद्यद्विशिष्टोपाख्यानं तत्तत् प्रश्नानुरोधतः ॥
राधामाधवयोः क्रीडा महाविष्णोः समुद्भवः । निरूपणञ्च विश्वेषां समासेन द्विजोत्तम
ब्रह्मनारदयोश्चैव संवादः परमार्थतः । विवेको नारदस्यैव मुनीन्द्रस्य तथैव च ॥ ९ ॥
आज्ञया ब्रह्मणश्चैव नरनारायणाश्रमः । गमनं नारदस्यैव तेन सार्धञ्च दर्शनम् ॥१०॥

तयोः सम्भाषणञ्चैव नारदाद्यं निवेदनम् । तत्र देवब्रह्मखण्डक्रमेणोक्तं द्विजोत्तम॥११॥
श्रूयतां प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डसमं मुने । प्रकृतेर्लक्षणं प्रोक्तं प्रकृतीनाञ्च वर्णनम् ॥
उपाख्यानञ्च तासाञ्च वर्णनं पूजनादिकम् ।
लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका तथा ॥ १३ ॥
एतासांचरितञ्चैवमन्यासाञ्च पृथक्पृथक् । उपाख्यानंमहालक्ष्म्याः सरस्वत्यास्तथैव च
अपूर्वंराधिकाख्यानं सावित्र्याश्च तथैवच । संवादोयमसावित्र्योः सत्यवज्जीवदानकम्
कुण्डानां वर्णनं प्रोक्तं तेषाञ्च लक्षणं तथा । जीविकर्मविपाकश्च भोगनिर्णय एव च
अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुगोप्यकम् । सुयज्ञस्य नृपेन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥
प्रोक्तं तुलस्युपाख्यानं परमाद्भुतमेव च । महायुद्धश्च संवादे महेशशङ्खचूड़योः ॥ १८ ॥
तुलसीकृष्णसंवादस्तयोः सम्भोग एव च । निधनं शङ्खचूड़स्यश्रीदाम्नः शापमोक्षणम्
पदप्राप्तिः सुराणाञ्च विपदां खण्डनं तथा ।
जीविनां मोक्षवीजञ्च गङ्गोपाख्यानमीप्सितम् ॥ २० ॥
तथैव मनसाख्यानं परं हर्षविवर्धनम् । स्वाहास्वधाख्यानमेवमन्यासाञ्च निरूपणम् ॥
यद्यत् प्रासङ्गिकाख्यानं वक्तुः प्रश्नानुरोधतः ।
प्रोक्तं तत् प्रकृतेः खण्डं खण्डं गणपतेः शृणु ॥ २२ ॥
अतीवमधुरं रम्यं स्वादु स्वादु पदे पदे । सुगोप्यं तत् पुराणेषु रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥
सुदुर्लभमुपाख्यानं श्रोतृप्रीतिकरं परम् । प्रोक्ता क्रीड़ा च परमा पार्वतीपरमेशयोः ॥
स्कन्दोत्पत्तिः प्रथमतः क्रीड़ाभङ्गस्तयोस्तथा ।
पार्वतीतोषणञ्चैवमभिमानविमोक्षणम् ॥ २५ ॥
पुण्यकञ्च व्रतं विष्णोर्देव्याश्चरितमुत्तमम् । वरदानं हरेरेव सुव्रतां पार्वतीं प्रति ॥ २६॥
हरेश्च दर्शनञ्चैव ब्राह्मणातिथिरूपिणः । आविर्भावो गणेशस्य कृपया शिवमन्दिरे ॥
दर्शनं पुत्रवक्त्रस्य पार्वतीपरमेशयोः । परमानन्दरूपञ्च शिवगेहे महोत्सवम् ॥ २८ ॥
देवाद्या ददृशुः सर्वे बालं नित्यमजं विभुम् । सत्यस्वरूपं परमं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

तपसां जपयज्ञानां व्रतानां फलदं विभुम् ॥ ३० ॥

अतीवकमनीयञ्च रमणीयञ्च योषिताम् । प्राणाधिकं प्रियतमं पार्वतीपरमेशयोः ॥ ३१॥

परमात्मस्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम् । सर्वेशं सर्वबीजञ्च साक्षान्नारायणात्मकम् ॥

यद्दर्शनाञ्च स्तवनात् प्रणामात् पूजनात्तथा ।

ध्यानात्साध्यं दुरासाध्यं जन्मकोट्यघनाशनम् ॥ ३३ ॥

कार्त्तिकोद्धरणं प्रोक्तं तस्याभिषेक एव च । गणेशपूजनञ्चैव सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

जमदग्नेश्च युद्धञ्च कार्तवीर्य्यार्जुनेन च । सुरभिहरणञ्चैव निधनञ्च मुनेस्तथा ॥ ३५ ॥

पतिव्रतारेणुकायाश्चितारोहणमेव च ।

प्रतिज्ञातं भृगोश्चैव दारुणञ्च सुदारुणम् ॥ ३६ ॥

निःक्षत्रीकरणञ्चैवमेकविंशतिकं द्विज । संवासो ज्ञानलाभश्च गणेशपर्शुरामयोः ॥३७॥

तयोर्युद्धं दारुणञ्च हैरम्बं दन्तभञ्जनम् । दुर्गायाश्च विलापश्चाभिशापो भार्गवं प्रति ॥

स्मरणे पर्शुरामस्याप्याविर्भावो हरेरपि । पार्वतीं बोधयामास स्वयं नारायणः प्रभुः ॥

वर्णनं शिवलोकस्य परमाश्चर्य्यमीप्सितम् ।

प्रदत्तं पर्शुरामाय महास्त्रं शङ्करेण च ॥ ४० ॥

मन्त्रञ्च कवचञ्चैव कृष्णस्य परमात्मनः । वरदानञ्चाभयञ्च प्रदाता सर्वसम्पदाम् ॥

त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निधनञ्च चकार सः । बभूव भृगुणा विप्र भुवश्च भारहारणम् ॥

प्रश्नानुरोधक्रमतः पूर्वोपाख्यानमेव च ।

प्रोक्तं गणपतेः खण्डं समासेन द्विजोत्तम ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च श्रूयतां सावधानतः ।

जन्ममृत्युजराव्याधिहरं मोक्षकरं परम् ॥ ४४ ॥

हरिदास्यप्रदं शुद्धं सुश्रवञ्च सुधोपमम् । अत्यपूर्वमुपाख्यानं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥४५॥

न श्रुतं जन्मना यद्यत् स्वादु स्वादु पदे पदे । प्रदीपं सर्वसत्वानां भवाब्धितारणं परम् ॥

कर्मोपभोगरोगाणां मर्दनञ्च रसायनम् । श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम् ॥

श्रीदामराधाकलहवर्णनं दारुणं द्विज । तयोः शापप्रकथनं ततस्तेषां विसर्जनम् ॥४८॥

ब्रह्मणा प्रार्थितस्यैव हरेर्जन्म महीतले । प्रोक्तञ्च जन्मखण्डञ्च परमाद्भुतमेव च ॥४९॥
आविर्भावो हरेरेव वसुदेवस्य मन्दिरे । कंसासुरभयेनैव गोकुले गमनं हरेः ॥ ५० ॥
वृषभानुसुता राधा श्रीदाम्नः शापहेतुना । बालक्रीड़ावर्णनञ्च गोकुले परमात्मनः ॥५१
दैत्यादिनिधनञ्चैव कीर्तितं हरिणा तथा । गर्गस्यागमनं प्रोक्तं शुभान्नप्राशनं हरेः ॥
निधनं पूतनायाश्च सद्यःशकटभञ्जनम् । श्रीकृष्णबन्धमोक्षश्च यमलार्जुनभञ्जनम् ॥५३॥
त्रैलोक्यदर्शनं वक्त्रे गोवत्साहरणं तथा । कृत्वा गोवत्सनिर्माणं ब्रह्मणः स्तवनं हरेः

सहसा गोकुलं त्यक्त्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।
भयाज्जगाम नन्दश्च सार्धञ्च नन्दनेन च ॥ ५५ ॥
वृन्दावनस्य निर्माणं प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ।
सार्धञ्च बालकैः सार्धं तत्र संक्रीड़नं हरेः ॥ ५६ ॥

सदन्नं ब्राह्मणीनाञ्च भोजनं कथितं हरेः । वरदानञ्च तासाञ्च प्राक्तनेन निरूपणम् ॥
ऋतूनां वर्णनञ्चैव वस्त्रापहरणं तथा । वरदानञ्च गोपीनां कृष्णेनैव कृतं द्विज ॥५८॥

कात्यायनीव्रतं प्रोक्तं श्रीदुर्गापूजनं तथा ।
पार्वत्या च वरो दत्तो गोपीभ्यो यमुनातटे ॥ ५९ ॥
तालानां भक्षणं प्रोक्तं शक्रयागविमर्दनम् ।
राधया सह कृष्णस्य विरहो मेलनं तथा ॥ ६० ॥
गोपीक्रीड़ा च संप्रोक्ता कृष्णक्रोड़े च राधिका ।
छाया रायाणगेहे च संप्रोक्ता मायया हरेः ॥ ६१ ॥

शृङ्गारं षोड़शविधं कृत्वा तं रासमण्डले । अन्तर्धानं हरेरेव राधया सह कानने ॥६२॥
मलयागमनञ्चैव तया सार्धं द्विजोत्तम । राधामाधवयोश्चैव संवादस्तत्र निर्जने ॥६३
कैवल्यमपि गोपीनां प्रोक्तं नानाविधं मुने । पुनरागमनञ्चैव पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥
श्रीकृष्णदर्शनञ्चैव गोपीनां हर्षवर्धनम् । नानाप्रकारक्रीड़ा च प्रोक्ता तस्य जले स्थले

गोपीनामपि सौभाग्यं राधायाश्च विशेषतः ।
प्रोक्तं व्यासेन सौन्दर्यं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥ ६६ ॥

नभःस्थितानां देवानां दर्शनं प्रोक्तमेव च। मनसः स्खलनञ्चैव देवीनां रासमण्डले ॥
अंशेन लेभिरे जन्म देवश्चोक्तमिदं द्विज। अक्रूरागमनञ्चैव गोपीनाञ्च विलापनम् ॥

प्रोक्तं सर्वं क्रमेणैव चाक्रूरभर्त्सनं तथा।
मथुरागमनं विष्णोः शोको गोकुलवासिनाम् ॥ ६६ ॥
राधिकाविरहज्वालाजालं प्रोक्तं यथोचितम्।
स्वमूर्त्तिदर्शनञ्चैवमक्रूरं यमुनातटे ॥ ७० ॥

मथुराप्रवेशनं प्रोक्तं निधनं रजकस्य च। कुब्जया सह सम्भोगस्तस्य मोक्षणमेव च ॥
प्रसादनं कुविन्दस्य मालाकारस्य मोक्षणम्। धनुषो भञ्जनं शम्भोर्हस्तिनो निधनं तथा
सभाप्रवेशनं प्रोक्तं नानारूपप्रदर्शनम्। कंसस्य निधनं प्रोक्तं तद्बन्धूनां विलापनम् ॥
सत्कारस्तस्य विधिवद्राजत्वं तत्पितुस्तथा। विलापनञ्च नन्दस्य स्तवनं परमाद्भुतम्
प्रोक्तस्तयोश्च संवादो निर्जने तातपुत्रयोः। परमाध्यात्मिकं ज्ञानं नन्दाय च ददौ विभुः
मुनीनां गमने चैवं धन्योपाख्यानमेव च। कथितञ्च कुमारेण प्रोक्तमेव सुदुर्लभम् ॥

उद्धवागमनं प्रोक्तं राधास्थानञ्च निर्जनम्।
ज्ञानं तयोश्च संवादे प्रोक्तमेव शुभावहम् ॥ ७७ ॥

यज्ञोपवीतं कृष्णस्य विद्यादानं गुरोर्गृहे। मृतपुत्रप्रदानञ्च प्रोक्तं तद्गुरवे पुरा ॥ ७८ ॥
जरासन्धस्य दमनं निधनं यवनस्य च। द्वारकायाश्च निर्माणं विश्वकारोद्यमं तथा ॥
द्वारकावेशनं प्रोक्तमुग्रसेनविलापनम्। रुक्मिणीहरणञ्चैव नृपाणां दमनं तथा ॥८०॥
सर्वासां कामिनीनाञ्च प्रोक्तमुद्वहनं तथा। मायावतीमोक्षणञ्च निधनं शंबरस्य च ॥
धर्मपुत्रराजसूये शिशुपालस्य मोक्षणम्। दन्तवक्रस्य च मुने शाल्वस्य निधनं तथा ॥
मणेश्च हरणञ्चैव पारिजातस्य स्वर्गतः। कुरुपाण्डवयुद्धे च भुवश्च भारमोक्षणम् ॥
उषाया हरणं प्रोक्तं बाणस्य भुजकृन्तनम्। बलेश्च स्तवनं प्रोक्तमनिरुद्धस्य विक्रमः ॥
राधायशोदासंवादः प्रोक्तः परमदुर्लभः। मोक्षणञ्च शृगालस्य प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गणेशपूजनं तथा। दर्शनं राधिकासार्धं कृष्णस्य परमात्मनः ॥८६॥
राधाया दर्शनं देव्या राधातेजःप्रकाशनम्। राधाया रमणं तीर्थे भ्रमणं रहसि स्मृतम्

निधनं यदुवंशानां ब्रह्मशापेन शौनक । मोक्षणं पाण्डवानाञ्च स्वपदे गमनं हरेः ॥
विवाहो नारदस्यैवोत्पत्तिर्वह्निसुवर्णयोः । प्रोक्तं सर्वं महाभाग पुनरेव समासतः ॥
चतुःखण्डैः पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्त्तमेव च । अतः परं मुनिश्रेष्ठ किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे चानुक्रमणिकं नाम त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

पुराणपठनश्रवणादिमाहात्म्यम् ।

शौनक उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।
यत् फलं ब्रह्मवैवर्त्ते निर्विघ्नं मोक्षकारणम् ॥ १ ॥
अभयं देहि हे वत्स हे तात मह्यमेव च ।
तदा निवेदनं किञ्चिदस्तीति च करोम्यहम् ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

त्यज भीतिं महाभाग प्रश्नं कुरु यदिच्छसि ।
सर्वं ते कथयिष्यामि यद्यद्गोप्यं मनोहरम् ॥ ३ ॥

शौनक उवाच ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणानाञ्च लक्षणम् ।
संख्यानमपि तेषाञ्च फलमस्यैव पुत्रक ! ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

विस्तराणि पुराणानि चेतिहासांश्च शौनक ।
संहितां पञ्चरात्राणि कथयामि यथागतम् ॥ ५ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥
एतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्बुधाः । महताञ्च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥ ७ ॥

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्चेत् स्थितिस्तेषाञ्च पालनम् ।
कर्मणां वासनावार्ता चामूनाञ्च क्रमेण च ॥ ८ ॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥
दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम् ।
संख्यानञ्च पुराणानां निबोध कथयामि ते ॥ १० ॥

परं ब्रह्म पुराणञ्च सहस्राणां दशैव तु । पञ्चोनषष्टिसाहस्रं पाद्ममेव प्रकीर्तितम् ॥११॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवञ्च विदुर्बुधाः । चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवञ्चैव निरूपितम् ॥
ग्रन्थाष्टादशसाहस्रं श्रीमद्भागवतं विदुः । पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदीयं प्रकीर्तितम् ॥१३
मार्कण्डं नवसाहस्रं पुराणं पण्डिता विदुः । चतुःशताधिकं पञ्चदशसाहस्रमेव च ॥
परमग्निपुराणञ्च रुचिरं परिकीर्तितम् । चतुर्दशसहस्रञ्च परं पञ्चशताधिकम् ॥ १५ ॥
पुराणप्रवरञ्चैव भविष्यं परिकीर्तितम् । अष्टादशसहस्रञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ॥ १६ ॥

सर्वेषाञ्च पुराणानां सारमेव विदुर्बुधाः ।
एकादशसहस्रं तु परं लिङ्गं पुराणकम् ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परिकीर्तितम् । एकादश(शीति)सहस्रञ्च परमेव शताधिकम् ॥
वरं स्कन्दपुराणञ्च सद्भिरेव निरूपितम् । वामनं दशसाहस्रं कौर्मं सप्तदशैव तु ॥१९॥
मात्स्यं चतुर्दश प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा । ऊनविंशतिसाहस्रं गारुडं परिकीर्तितम्
परं द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् । एवं पुराणसंख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम् ॥२१
अष्टादशपुराणानामेवमेव विदुर्बुधाः । एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥
इतिहासो भारतञ्च वाल्मीकं काव्यमेव च । पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्यपूर्वकम्
वाशिष्ठं नारदीयञ्च कापिलं गौतमीयकम् । परं सनत्कुमारीयं पंचरात्रञ्च पञ्चकम् ॥२४
पञ्चकं संहितानाञ्च कृष्णभक्तिसमन्वितम् । ब्रह्मणश्च शिवस्यापि प्रह्लादस्य तथैव च ॥

गौतमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्तिताः । इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पृथक्पृथक् अत्येवं विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम् । उवाचेदं पुराणञ्च गोलोके रासमण्डले

श्रीविष्णुर्भगवान् साक्षाद् ब्रह्माणञ्च स्वभक्तकम् ।
ब्रह्मा धर्मञ्च धर्मिष्ठं धर्मोनारायणं मुनिम् ॥ २८ ॥
नारायणो नारदञ्च नारदो मां च भक्तकम् ।
अहं त्वाञ्च मुनिश्रेष्ठ वरिष्ठं कथयामि तत् ॥ २९ ॥
सुदुर्लभं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ।
यद्वृणोत्येव विश्वौघं जीविनां परमात्मकम् ॥ ३० ॥
तद्ब्रह्म साक्षिरूपञ्च कर्मणामेव कर्मिणाम् ।
तद्ब्रह्म विवृतं यत्र तद्विभूतिमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥

तेनेदं ब्रह्मवैवर्तमित्येवञ्च विदुर्बुधाः । पुण्यप्रदं पुराणञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥ ३२ ॥ सुगोप्यञ्च रहस्यञ्च यत्र रम्यं नवं नवम् । हरिभक्तिप्रदञ्चैव दुर्लभं हरिदास्यदम् ॥३३ सुखदं ब्रह्मदं सारं शोकसन्तापनाशनम् । सरिताञ्च यथा गङ्गा सद्योमुक्तिप्रदा शुभा ॥ तीर्थानां पुष्करं शुद्धं यथा काशी पुरीषु च । सर्वेषु भारतं वर्षं सद्योमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ यथा सुमेरुः शैलेषु पारिजातञ्च पुष्पतः । पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशीव्रतम् ॥ वृक्षेषु कल्पवृक्षश्च श्रीकृष्णश्च सुरेषु च । ज्ञानीन्द्रेषु महादेवो योगीन्द्रेषु गणेश्वरः ॥ सिद्धेन्द्रेष्वेककपिलो सूर्यस्तेजस्विनां यथा । सनत्कुमारो भगवान् वैष्णवेषु यथाग्रणीः

भूपेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम् ।
देवीषु च यथा दुर्गा महापुण्वती सती ॥ ३९ ॥
प्राणाधिका यथा राधा कृष्णस्य प्रेयसीषु च ।
ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पण्डितेषु सरस्वती ॥ ४० ॥

तथा सर्वपुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमेव च । नातो विशिष्टं सुखदं मधुरञ्च सुपुण्यदम् ॥४१॥ सन्देहभञ्जनञ्चैव पुराणं परिकीर्तितम् । इहलोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम् ॥४२॥ शुभदं पुण्यदञ्चैव विघ्ननिघ्नकरं परम् । हरिदास्यप्रदञ्चैव परलोके प्रहर्षदम् ॥ ४३ ॥

यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा।
भुवः प्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम् ॥ ४४ ॥
चतुर्णामपि वेदानां पाठादपि वरं फलम्। शृणोतीदं पुराणञ्च संयतश्चेह पुत्रक ॥४५
गुणवन्तञ्च विद्वांसं वैष्णवं पुत्रमालभेत्।
शृणोति दुर्भगा चेत्तु सौभाग्यं स्वामिनो लभेत् ॥ ४६ ॥
मृतवत्सा काकवन्ध्या महावन्ध्या च पापिनी।
पुराणश्रवणाल्लेभे पुत्रञ्च चिरजीविनम् ॥ ४७ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम्। अस्पृष्टकीर्त्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्यते बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ४९ ॥
अरण्ये प्रान्तरे भीतो दावाग्नौ मुच्यते ध्रुवम्।
अघं कुष्ठञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकञ्च दारुणम् ॥ ५० ॥
पुण्यवान् श्रवणादेव नैव जानात्यपुण्यवान्।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा यः शृणोति सुसंयुतः ॥ ५१ ॥
गोलक्षदानपुण्यञ्च लभते नात्र संशयः।
चतुःखण्डं पुराणञ्च शुद्धकाले जितेन्द्रियः ॥ ५२ ॥
संकल्पितो यः शृणोति भक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम्।
यद् बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ॥ ५३ ॥
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
रत्ननिर्माणयानेन धृत्वा श्रीकृष्णरूपकम् ॥ ५४ ॥
नित्यं गत्वा च गोलोकं कृष्णदास्यं लभेद् ध्रुवम्।
असंख्यब्रह्मणः पाते न भवेत्तस्य पातनम् ॥ ५५ ॥
समीपे पार्षदो भूत्वा सेवाञ्च कुरुते चिरम्।
श्रुत्वा च ब्रह्मखण्डञ्च सुस्नातः संयतः शुचिः ॥ ५६ ॥

पायसं पिष्टकञ्चैव फलं ताम्बूलमेव च ।
भोजयित्वा वाचकञ्च तस्मै दद्यात् सुवर्णकम् ॥ ५७ ॥
चन्दनं शुक्लमाल्यञ्च सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम् । निवेद्य वासुदेवञ्च वाचकाय प्रदीयते ॥
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्रवञ्च सुधोपमम् ।
भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥ ५९ ॥
सवत्सां सुरभीं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम् । श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयतः
स्वर्णयज्ञोपवीतञ्च श्वेताश्वच्छत्रमाल्यकम् ।
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकम् ॥ ६१ ॥
परिपक्वफलान्येव कालदेशोद्भवानि च । श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च श्रुत्वा भक्तश्च भक्तितः ॥
वाचकाय प्रदद्याच्च परं रत्नाङ्गुलीयकम् ।
सूक्ष्मवस्त्रञ्च माल्यञ्च स्वर्णकुण्डलमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
माल्यञ्च वरदोलाञ्च सुपक्वं क्षीरमेव च । सर्वस्वं दक्षिणां दद्यात् स्तवनं कुरुते ध्रुवम्
शतकं ब्राह्मणानाञ्च भोजयेत्परमादरम् ।
ब्राह्मणं वैष्णवं शास्त्रनिष्णातं पण्डितं वरम् ॥ ६५ ॥
कुरुते वाचकं शुद्धमन्यथा निष्फलं भवेत् ।
श्रीकृष्णविमुखान् दुष्टान्नोपदेष्टा च ब्राह्मणः ॥ ६६ ॥
श्रीकृष्णभक्तियुक्तञ्च पुराणं यः शृणोति च ।
भक्तिं पुण्यञ्च लभते हन्ति पापं पुराकृतम् ॥ ६७ ॥
एतत्ते कथितं सर्वं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः ।
विदायं देहि विप्रेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ॥ ६८ ॥
दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्तुं समागतः । कथितं ब्रह्मवैवर्तं भवतामाज्ञया परम् ॥६९॥
नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च कृष्णाय परमात्मने । शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः
कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम् ।
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥ ७१ ॥

नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः। सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः॥

युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक।
अद्य सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः॥ ७३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सूतशौनकसंवादे पुराणपठनश्रवणमाहात्म्यं नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणस्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
५२८	१०	विजहार	विजहार
५४१	१०	द्वाच्छितश्च	द्वाञ्छितश्च
५४६	२३	द्वयस्य	द्वयस्या
५४७	१६	सद्ररत्न	सद्रत्न
५५०	२०	पारिजाता	पारिजात
,,	२४	चञ्चनां	चञ्चूनां
५५१	६	परामाश्चर्यं	परमाश्चर्यं
५५२	२१	सर्ववाज	सर्ववीज
५५३	१३	ध्यानानुरूञ्च	ध्यानानुरूपञ्च
,,	२०	रसात्सुकम्	रसोत्सुकम्
५५६	११	स्वलु	खलु
,,	२१	कीत्तिः	कीर्त्तिः
,,	२२	वभूव	वभूवु
५५७	३	वे	ते
५५८	६	हन्तर्य्यपस्थिते	हन्तर्य्युपस्थिते
५६०	८	श्वेचामर	श्वेतचामर
,,	१७	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
५६१	३	चञ्च	चञ्चु
५६५	८	अपाक्षणं	अनुक्षणं

५६६	२३	शङ्का	शङ्कां
५६६	१७	श्राहरिः	श्राहरिः
५७१	२२	ममम	मम
५७२	२५	निर्गण	निर्गुण
५७६	२१	क्षद्र	क्षुद्र
५८१	६	विग्र	विप्र
५८६	१०	कोड़े	क्रोड़े
५८७	१७	गर्भों	गर्भो
५८८	१५	घटाकर्ण	घटाकीर्णं
५८९	१३	शतचक्रञ्ज	शतचक्रञ्च
५९३	९	क्षधित	क्षुभित
”	२२	जगतींनाथे	जगतीनाथे
५९६	२५	शमीका	शमीको
६००	२५	भदो	भेदो
६०२	१३	वधूनाञ्ज	वधूनाञ्च
६०५	९	गर्गा	गर्गं
”	१९	विनियान्वितः	विनयान्वितः
६०७	१५	भिक्षका	भिक्षुका
६०८	४	यक्तुं	वक्तुं
६०९	६	कर्त्त	कर्त्तुं
”	२२	गाकुलस्थाश्च	गोकुलस्थाश्च
६१०	२३	समावाप	समवाप
६११	१९	स्वरूषा	स्वरूपा
६१३	२४	विष्णाः	विष्णोः

६१४	६	यत्रे	यत्ते
”	१७	एतस्मिन्नन्नतरे	एतस्मिन्नन्तरे
६१५	६	विभ्रन्तं	विभ्रन्तं
”	”	शुशोभितम्	सुशोभितम्
”	१६	वृत्तान्तं	वृत्तान्तं
६१६	१८	स्तथौ	स्तस्थौ
६२०	१४	कङ्कुम	कुङ्कुम
६२१	११	विहाय	विहाय
”	२३	रूदन्तश्च	रुदन्तश्च
६२३	२१	ईषद्वास्य	ईषद्धास्य
६२६	७	षश्यथे	पश्यथे
६२७	२	पाद्माक्ष	पद्माक्ष
६२८	१६	स्तत	स्तत्
”	२१	”	”
६२९	२०	शुमप्रदे	शुभप्रदे
६३४	२२	चरणाम्भाज	चरणाम्भोज
६३६	६	पतिवत	पतिव्रत
”	१३	प्रभम	प्रभम्
”	१६	कण्ठोष्ठ	कण्ठौष्ठ
६३७	२३	जलदग्नौ	ज्वलदग्नौ
६३८	२	मनौ	मनो
”	७	वैष्णवाणां	वैष्णवानां
”	१८	शप्त्वाहं	शप्त्वाऽहं
६४०	७	कन्येव	कन्येय

६४४	२३	वृन्दयात्र	वृन्दयाऽत्र
६४४	२५	वेदवता	वेदवती
६४८	३	श्राब्रह्म	श्रीब्रह्म
६४९	५	ब्रह्मणा	ब्राह्मणा
६४९	१७	क्षत्पीड़िता	क्षुत्पीड़िता
६५१	१०	यस्यामो	यास्यामो
६५४	१६	रक्षतु	रक्षितु
६६०	४	तूष्णाम्भूताञ्च	तूष्णीभूताञ्च
"	"	समुवाच	तमुवाच
६६१	१४	र्गाचरः	र्गोचरः
६६२	३	विर्भात्त	विभर्त्ति
६६४	७	मङ्लम्	मङ्गलम्
"	२०	त्वा	श्रुत्वा
"	२२	श्वैव	श्चैव
६६५	२०	श्नुत्वा	श्रुत्वा
६६८	५	वहिरेव	बहिरेव
६७०	१६	वालकाः	बालकाः
६७६	१६	ब्देस्त्येव	ब्देऽस्त्येव
"	२५	नणाम्	नृणाम्
६७९	१९	पवत	पर्वत
६८२	४	मक्षो	मक्षमो
"	६	करुणसिन्धो	करुणासिन्धो
६८४	१२	फलाथिनः	फलार्थिनः
६८६	२५	रीश्वरात	रीश्वरात्

६८८	५	यथेक्ष	यथेक्षु
६९७	३	तस्मात्वं	तस्मात्त्वं
६९८	६	सांसगिको	सांसर्गिको
६९९	३	चक्षषा	चक्षुषा
"	१९	स्थिातां	स्थितां
७०१	४	क्षमसंस्था	क्षमासंस्था
"	२०	नियतं	र्नियतं
७०३	१९	तूणं	तूर्णं
७०४	६	शिष्यस्तस्व	शिष्यस्तव
७०६	२५	दग्धं	दग्धुं
७०८	२३	र्वाज	बीज
७१०	१३	ब्राह्मणा	ब्राह्मणो
७१२	१६	महात्म्यं	माहात्म्यं
७१३	६	श्रष्ठं	श्रेष्ठं
"	१६	सहिष्णुनां	सहिष्णूनां
"	१७	दातृणां	दातॄणां
७१५	२२	कथिनं	कथितं
७१६	१२	गृह्मतां	गृह्यतां
७२३	३	र्गापिका	र्गोपिका
७२६	२०	भक्या	भक्त्या
७२९	२	वृद्धयः	वृद्धयः
७३३	२३	तच्छ्रत्वा	तच्छ्रुत्वा
७३६	१५	श्चन्दनाक्ताभा	श्चन्दनाक्ताभि
"	१९	र्चावत	चर्वित

७३८	७	श्रोणिदशे	श्रोणिदेशे
"	१६	नावी	नीवी
७४०	२०	र्मालतील्यै	र्मालतीमाल्यै
७४१	१८	एवं	एवं
७४३	३	सुखु	सुख
७४४	२	ज्ञलन्तं	ज्वलन्तं
"	३	परम	परम्
"	२४	मुमुक्षणां	मुमुक्षूणां
७४७	२३	सन्निधम्	सन्निधिम्
७४८	११	वरस्तमै	वरस्तस्मै
७५३	२	विन्दं	विन्दुं
"	२२	प्रियाऽस्ति	प्रियोऽस्ति
७५५	४	क्षण	क्षणं
"	२५	नमोऽस्तते	नमोऽस्तुते
७५६	१८	विह्लः	विह्वलः
७५८	१५	वया	त्वया
"	१७	त्वद्वक्र	त्वद्वक्त्र
७५९	१६	र्निन्दिताऽ	र्निन्दिताऽहं
७६०	६	वुवुधे	बुबुधे
"	१३	त्सापान	त्सोपान
७६१	१	व्रह्माण	ब्रह्माणं
७६२	४	पियूष	पीयूष
"	१९	र्मनय	र्मुनय
७६३	२४	तत्रावास	तत्रोवास

७६३	२५	कष्ठोष्ठ	कण्ठौष्ठ
७६६	२	पट्टिशकरो	पट्टिशधरो
,,	५	सर्चाङ्गा	सर्वाङ्गा
,,	६	कण्ठैकतानेत्र	कण्ठैकतालेन
,,	१८	स्पशवायोश्च	स्पर्शवायोश्च
७६८	२	माहिनी	मोहिनी
७७०	८	स्रष्टं	स्रष्टुं
,,	१७	व्रह्मावाच	व्रह्मोवाच
७७१	२४	कुर्मा	कुर्मो
,,	२५	गुरा	गुरो
७७३	२	कार्तिर्या	कीर्तिर्या
,,	२५	वाह्ये	वाह्यो
७७४	२३	कण्ठोष्ठ	कण्ठौष्ठ
७७५	६	श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण
,,	८	पूर्णा	पूर्णो
,,	१२	जसा	तेजसा
७७७	१६	प्रतिविम्वश्च	प्रतिविम्वश्च
७७८	१४	अताव	अतीव
,,	१७	लाँचने	लोँचने
,,	२३	चक्षंषि	चक्षुंषि
७८०	१६	स्तोत्रेश्च	स्तोत्रैश्च
७८१	७	तत्सप्रन्न	तत्प्रसन्न
७८२	२	भुङ्क्त	भुङ्क्ते
,,	,,	सङ्कतः	सङ्गतः

७८२	२३	साकार	साकारे
७८३	१३	वाच्छितम्	वाञ्छितम्
७८४	८	तच्चालयिन्तुं	तच्चालयितुं
”	१४	जगाह	जग्राह
”	२१	विभति	विभर्ति
७८७	४	पुलकाञ्चिति	पुलकाञ्चित
७८८	११	महाविष्णुं	महाविष्णुं
७८९	८	प्रविशामा	प्रविशामो
७९०	२१	घूणंन्	घूर्णन्
७९३	१२	अहा	अहो
”	२३	नारायण	नारायणे
७९४	१६	तद्दह	तद्देह (यं देवमित्यपि पाठः)
७९६	५	वृद्धा	वृद्धा
”	१२	नत्य	नृत्य
”	२१	भिक्षकम्	भिक्षुकम्
७९९	६	सुरांस्तस्था	सुरांस्तथा
८०२	४	मद्वाकं	मद्वाक्यं
८०३	२	देवेशं	देवेशं
८०४	१९	स्वरूपिणा	स्वरूपिणी
८०६	१८	सावणि	सावर्णि
”	२०	”	”
८१०	१६	सर्वषां	सर्वेषां
”	”	सर्वज्ञ	सर्वज्ञ
८१२	२०	विवजिते	विवर्जिते

८१४	६	त्यागान्तरं	त्यागानन्तरं
८१५	११	बभ्रामं	बभ्राम
८१६	६	वं	हं
८२४	११	वह्नि	वह्नि
८२७	२५	क ैलासञ्च	कैलासञ्च
८२६	२	कर्त्तू	कर्त्तु
"	१८	निमग्नानन्दऽऽसागरे	निमग्नाऽऽनन्दसागरे
८३०	१२	इत्युत्वा	इत्युक्त्वा
"	२०	पुष्व	पुष्प
८३१	६	सर्ष	सर्व
"	७	सामदाय	समादाय
"	२०	चन्दनागुरू	चन्दनागुरु
"	२३	क्रीडा	क्रीडां
८३२	१४	दिव्व	दिव्य
८३३	१६	मद्भृत्यानत्ञ्च	मद्भृत्यानाञ्च
८३४	१६	लभे	लेभे
८३७	६	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
८३६	१६	कतिचितां	कतिचित्रं
८४०	२५	शुष्कक्रण्ठो	शुष्ककण्ठौ
८४६	१२	"	"
८४६	२	षरं	परं
८५०	२१	जगद्गोरि	जगद्गौरि
८५५	८	प्रेमणा	प्रेरणा
८५७	२१	जगाम्	जगाम

८५६	२२	षड़	षड्,
८६२	२३	क्लष्ट	क्लिष्ट
८६३	२१	पुत्रतस्त:	पुत्रस्तत:
८६४	२	ब्रह्मणशापेन	ब्रह्मशापेन
”	१७	वंभूव	वभूव
८६७	५	निष्ठरं	निष्ठुरं
८७१	६	चन्द्र	चन्द्रे
”	१८	विवजितम्	विवर्जितम्
”	२१	द्रुष्टा	द्रुष्ट्वा
८७२	४	दुर्लमम्	दुर्लभम्
८७५	७	वरवणिनी	वरवर्णिनी
८७६	१७	गृहिष्यसि	ग्रहीष्यसि
८८५	१०	गजखञ्जन	गजखञ्जन
८८६	२३	त्वक्ष्यामि	त्यक्ष्यामि
८८७	१५	प्रक्कारेण	प्रकारेण
८८८	१८	धर्मा	धर्मो
८८९	३	जटांम्	जटाम्
”	६	भत्रा	भर्त्रा
”	२१	तालुक्का	तालुका
८९२	२	जानका	जानकी
”	८	करिष्यमि	करिष्यामि
”	१७	प्रययौ	प्रययौ
”	१९	शीघ्रं	शीघ्रं
८९३	१५	मह्य भूषायां	मह्यमूषायां

८९८	२२	सोऽक्रो	सोऽक्रूरो
८९९	७	समाहर्तं	समाहर्त्तुं
९००	६	दक्ष्याम्यद्य	द्रक्ष्याम्यद्य
"	१३	धर्मिर्णासर्वकर्मिणाम्	धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्
९०१	११	रत्नसिंहासन	रत्नसिंहासने
९०२	१२	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
९०५	१४	केचिद्द्वाः	केचिद्देवाः
९०५	१६	मूति	मूर्ति
९०८	१०	रमणश्रष्ठ	रमणश्रेष्ठ
९०९	७	शुचिस्मता	शुचिस्मिता
९१०	१८	र्मनीन्द्रैः	मुनीन्द्रैः
९१२	१०	कुत्वा	कृत्वा
"	१५	तार्सा	तासां
"	१७	गोपीमिः	गोपीभिः
९१४	२०	बोधयासु	बोधयामासु
"	२३	मातृसमापतः	मातृसमीपतः
९१५	७	विवजितः	विवर्जितः
९१६	१२	सिद्धान्नं	सिद्धान्नं
९१९	१७	भातृ	भ्रातृ
९२०	"	विप्रहम्	विग्रहम्
"	२०	नित्यविहः	नित्यविग्रहः
"	२२	रूपश्च	रूपश्च
"	"	वेशश्च	वेशश्च
९२१	१९	सहाक्रूरगणै	सहाक्रूरगणैः

६२२	३	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
„	२०	ग्रणम्य	प्रणम्य
६२३	५	प्रसस्ता	प्रशस्ता
„	१८	गच्छतं	गच्छन्तं
६२७	१५	या	यो
६२९	१४	मसन्वितः	समन्वितः
६३०	७	सुशाभितं	सुशोभितं
६३१	२	चतुर्भुजा	चतुर्भुजो
„	२२	कपिला	कपिलो
६३२	२०	शस्त्राणं	शस्त्राणां
६३३	४	काननेषु	काननेषु च
„	७	मत्कारण	मत्कारणं
६३७	६	वैष्णवाणां	वैष्णवानां
„	२५	लभेच्छ्रुचम्	लभेच्छुचम्
६४२	६	खञ्जनाञ्च	खञ्जनानां
६४३	४	पूणिमा	पूर्णिमा
„	१५	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
„	१७	क्षयोध्या	अयोध्या
„	१६	प्रयोगे	प्रयागे
„	२३	दोलयामानं	दोलायमानं
६४५	२	परमात्मन	परमात्मनः
६४६	६	पतत्त	पतत्ते
„	१३	सुस्वप्रदशने	सुस्वप्नदर्शने
„	१६	ब्रह्मवैघत्त	ब्रह्मवैवर्त्ते

९५२	२०	र्वह्निरूपा	र्व्ह्निरूपा
९५३	८	सर्वसिद्धश्वरः	सर्वसिद्धेश्वरः
९५६	५	जमग्निश्च	जमदग्निश्च
९६४	७	भगवात्	भगवान्
९७६	८	केशवेणा	केशवेणी
९७७	२५	भर्त्तें	भर्त्रे
९७९	२५	नरवुद्धिश्च	नरवुद्धिश्च
९८५	२१	चन्दनाचितम्	चन्दनार्चितम्
९८६	१३	वुदुध्या	र्वुद्ध्या
९८७	११	मक्ष्यं	ममक्ष्यं
९९१	१४	अहङ्कृती	अहङ्कृतो
"	१७	हिंस्राणश्च	हिंस्राणाश्च
"	१८	श्चतुर्वर्णा	श्चतुर्वर्णो
९९२	६	वर्षणाश्च	वर्षाणाश्च
९९६	२४	पापं	पापं
९९८	५	जन्तु	जन्मसु
१००१	१२	लीलामं	लीलाभं
१००२	१४	द्वन्दे	द्वन्द्वे
१००३	१४	प्रतापवतः	प्रतापतः
"	१६	केतन	केचन
१००४	४	रहस्थलम्	रहःस्थलम्
"	२३	ब्रह्महत्या	ब्रह्महत्या
"	२५	क्षणं	क्षणं
१००६	११	घृन्दे	वृन्दे

१००८	२०	धर्माऽयं	धर्मोऽयं
१०१४	३	व्याधियुश्च	व्याधियुक्तश्च
"	४	गृहीत्रा	ग्रहीत्रा
१०१५	६	निर्गणश्च	निर्गुणश्च
"	१५	जेतुमाश्वरः	जेतुमीश्वरः
१०२०	२०	चतुर्युगानां	चतुर्युगाणां
१०२८	१८	कणिकानां	कर्णिकानां
१०३१	१८	लोले	लोके
१०४२	१०	ब्रह्म	ब्रह्मे
१०४३	४	माप्सितम्	मीप्सितम्
"	१३	कुमाश्च	कुमारश्च
१०४५	२	चक्षषो	चक्षुषो
"	२१	नारारायण	नारायण
१०४७	२५	गंरुः	गुंरुः
१०४८	१३	माधवा	माधवी
१०५०	२३	जन्मृत्यु	जन्मसृत्यु
१०५२	२	मसषट्कं	मासषट्कं
"	३	पूणिमा	पूर्णिमा
"	७	दशम्येकाशी	दशम्येकादशी
१०५३	२५	नृमाणं	नृमानं
१०५४	३	नृणा	नृणां
"	६	चगुर्युगम्	चतुर्युगम्
१०५८	४	भस्मीभृतं	भस्मीभूतं
"	१८	कातरम	कातरम्

१०५९	५	कीड़ा	क्रीड़ा
१०६०	१५	श्वयं	स्वयं
१०६३	२४	चाभिर्भूता	चाविर्भूता
१०६८	१६	उशाच	उवाच
१०७१	१८	षदम्	पदम्
१०७२	१५	स्वगश्रेष्ठ	खगश्रेष्ठ
१०७४	१६	ग्रसिद्धश्च	प्रसिद्धश्च
,,	२४	चणक्कादिनां	चणकादीनां
१०७७	१५	प्रफुल्लपुष्पै	प्रफुल्लपुष्पैः
१०७८	१०	ग्रीष्मध्याह्न	ग्रीष्ममध्याह्न
१०७९	११	त्निकोटिभिः	त्रिकोटिभिः
,,	२०	याष्यन्ति	यास्यन्ति
,,	२१	प्रविशद्	प्राविशद्
१०८०	१५	न्यकारं	न्यक्कारं
,,	२३	गुणां	गुणा
१०८१	२५	सत	सती
१०८४	२३	योगिनाम	योगिनाम्
,,	२५	नपः	नृपः
१०८५	४	सस्याढ्यां	शस्याढ्यां
,,	११	भिक्षण्गा	भिक्षूणा
१०८६	२१	नृपाश्चैव	नृपांश्चैव
१०८७	३	श्वेतक्षत्रं	श्वेतच्छत्रं
१०८८	७	माणीक्य	माणिक्य
,,	२४	गृहीतुं	ग्रहीतुं

१०६१	२५	मिक्षुकेस्यो	भिक्षुकेभ्यो
१०६७	१२	रुक्रिमणी	रुक्मिणी
,,	,,	साम्मिताम्	सुस्मिताम्
१०६८	२५	समर्प्यय	समर्प्य च
११००	१८	सिद्ध्यात्मकश्च	सिद्ध्यात्मकश्च
११०४	२	वदन्ता	वदन्ती
११०६	११	मारुह्म	मारुह्य
१११३	४	यभूव तस्य राजश्च	बभूव तस्य राजश्च
१११४	१०	पुष्पतत	पुष्पित
१११५	२३	सुशाला	सुशीला
१११७	२०	गृह्णामि	गृह्णामि
,,	२३	रुदता	रुदती
१११६	१४	चन्दनै	श्चन्दनै
११२०	८	दुःस्व	दुःख
११२२	१७	कन्या	कन्यां
११२४	१६	वचनं	वचनं
११२५	३	मुढ़वत्	मूढ़वत्
११२६	१६	भल्लुकात्मजा	भल्लूकात्मजा
११२६	२१	गवालस्वं	गवालम्भं
११३०	६	चन्देंण	चन्द्रेण
११३३	१०	सर्वापायैश्च	सर्वोपायैश्च
,,	१५	कातिकादपि	कार्तिकादप
११३५	१३	वैष्णनां	वैष्णवानां
,,	१६	वैण्णव	वैष्णव

११३५	१८	तद्देहे	तद्देहे
११३६	५	भ्रात्र	भ्रात्रे
११३८	१०	कृतमिढं	कृतमिदं
११४०	२३	रण भूर्धनि	रणमूर्धनि
११४१	१७	वर्मना	वर्त्मना
११४४	१६	निर्गोणः	निर्गुणः
,,	१६	भुवोधुना	भुवोऽधुना
११४७	१०	पूणिमायाञ्च	पूर्णिमायाञ्च
११५२	४	निविघ्नं	निर्विघ्नं
,,	७	द्रुर्लभया	दुर्लभया
,,	१२	सुक्काठने	सुकठिने
११५४	३	सव	सव
,,	८	परमाह्वादकं	परमाह्लादकं
११५५	८	प्रसूनकम	प्रसूनकम्
११६०	१४	गाकुलं	गोकुलं
११६१	१४	राधाया	राधया
११६३	१०	सश्वन्न	शश्वन्न
,,	१७	चूर्णाभूतं	चूर्णीभूतं
११६४	२५	मानिना	मानिनी
११६७	१४	त्यज्येन्	त्यजेन्
,,	२०	दीप्ते	दीप्ते
११६६	६	तस्मे	तस्मै
११७१	१४	मुत्तमम	मुत्तमम्
,,	२२	रथातूर्णं	रथात्तूर्णं

११७३	७	सुनिलिप्त	सुनिर्लिप्त
११७३	१६	त्रैलोक्ये	त्रैलोक्ये
११७७	७	परिपूर्ण	परिपूर्णं
११७८	६	दृष्ट्वा	दृष्ट्वाऽ
११८७	७	कातिकोद्धरणं	कार्तिकोद्धरणं
११९१	१८	चतुविशति	चतुर्विंशति
११९२	५	नारायणं	नारायणं
„	२०	महापुण्वती	महापुण्यवती

समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणस्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम् ।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु



Printed by :
Gopal Printing Works,
87/A, Raja Dinendra St.,
Calcutta-6.

संचालक : राजगुरु पण्डित हरिदत्त शास्त्री